गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
विषय संख्या २२५
पुस्तक संख्या ५ I (२)
आगत पंजिका संख्या ५२५५८ — ५२६४९

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

42649

COMPILED

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ल कांगड़ी विश्व
पुस्तका
गुरुकुल कांगड़ी विश्ववि
षय संख्या
स्तक संख्या
गत पंजिका संख्या
पुस्तक पर किसी
न लगाना वर्जित
दिन से अधिक समय
पास न रखें ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

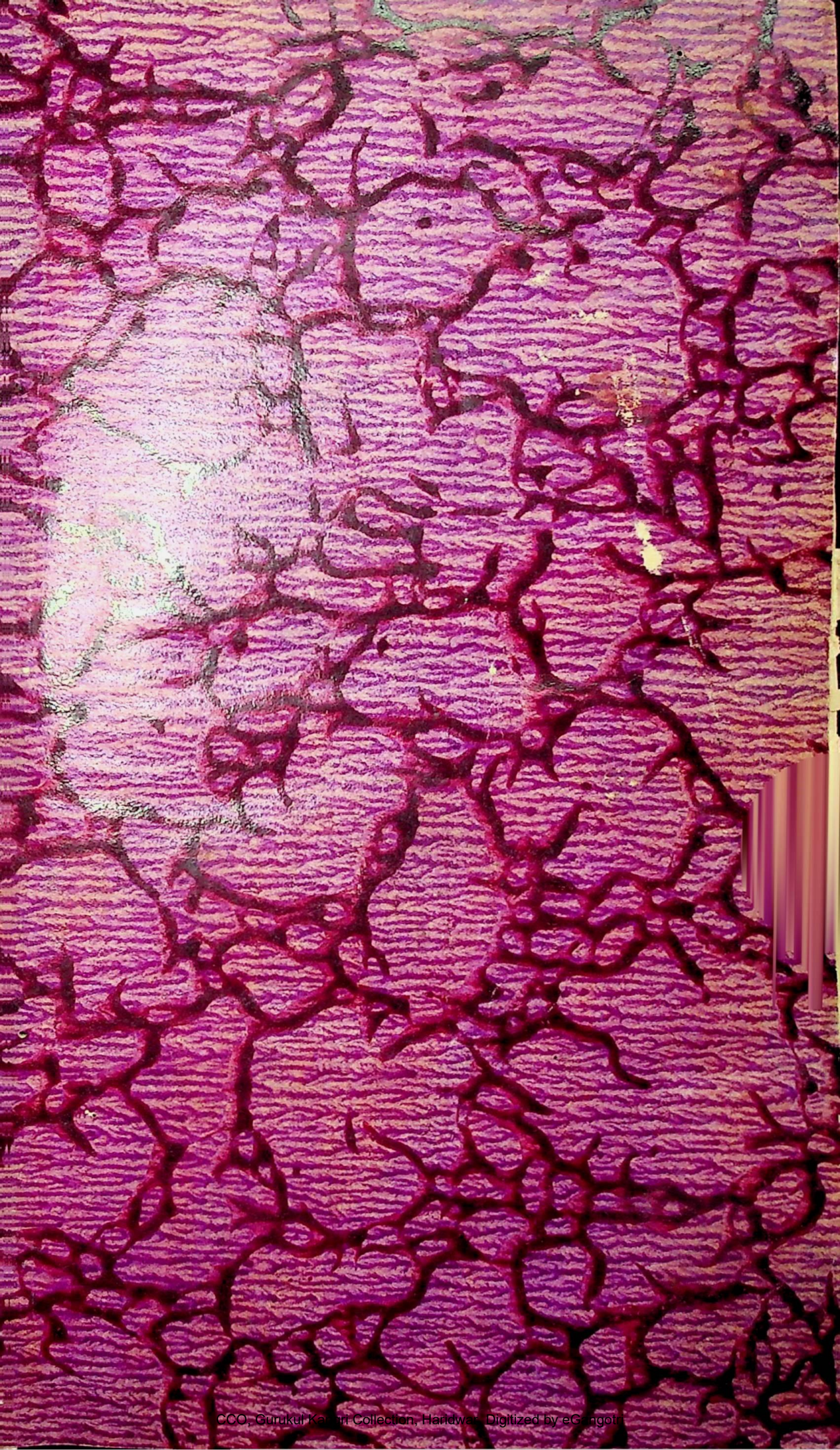
CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

REFERENCE BOOK

ओ३म्

सामवेदभाष्यम्

1973

पूर्वार्धम्

COMPILED

करवदशोद्धवेन

तुलसीराम स्वामिना प्रणीतम्

संस्कृतभाषया देशभाषया च सरलीकृतम्

यच्च तत्रैव

मेरठस्थे "स्वामि मेशीन यन्त्रालये" मुद्रयित्वा प्रकाशितम्

(मुद्रणाद्यधिकाराः स्वायत्तीकृताः)

THE

SAMA VEDA BHASHYAM

A

COMMENTARY ON SAMA VEDA SANHITA,

IN SANSKRIT AND HINDI

By

TULSI RAM SWAMI EDITOR VED PRAKASH

MEERUT.

मूल्यम् ५)

यह पुस्तक बिक्री के लिए नहीं है
NOT TO BE ISSUED

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

SAMA VEDA BHASHYAM

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अत्र हि प्राचीनसम्मतास्तु प्रपाठकादिविभागा एव, ते च मूलपुस्तकेषु यथायथं विन्यस्ता एव। तेनैव क्रमेण चाऽत्र प्रकरणबन्धश्च विद्यते। प्रकरणानुसारि चेदं भाष्यं मया विधास्यमानं तत्प्रकरणसूची च ग्रन्थसमाप्तौ निर्माय संकलिता भवित्री ॥

श्लोकार्थ—वेद जिस के श्वासवत् हैं और जिसने सम्पूर्ण जगत् के लिये समस्त वेद दिये हैं उस अविनाशी परमात्मा को मैं स्तुत करता हूं ॥१॥

क्योंकि मैं वेदों की ओर झुका हूं इसलिये कहीं भूल होजावे तौ भी अपवाद के योग्य नहीं हूं। जैसे कोई स्वच्छ मार्ग में चलता हुवा रपट गिरे तौ भी निन्दायोग्य नहीं होता ॥ २ ॥

चारों वेदों में सामवेद तीसरा है, उस का प्रथम भाग "छन्दआर्चिक" है। दूसरा "महानाम्न्यार्चिक" नाम। और तीसरा "उत्तरार्चिक" नाम भाग है। इन में से पहिले छन्दआर्चिक नाम भाग में ६ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में जितनी दशति और प्रत्येक दशति में जितने मन्त्र हैं वह सब ऊपर लिखित चक्र के अनुसार जानो ॥

इस प्रकार छन्दआर्चिक के छः अध्याय हैं, उन में ६४० छःसौ चालीस मन्त्र हैं ॥ (देखो चक्र १)

दूसरे महानाम्न्यार्चिक में १० दश मन्त्र हैं ॥

तीसरे उत्तरार्चिक के २२ अध्यायों में ४०२ सूक्त हैं उन में १२२३ मन्त्र हैं (देखो चक्र २) यह सब मिला कर सामवेद की १८७३ ऋचा हुई ॥

इस प्रकार महानाम्न्यार्चिक के अतिरिक्त २८ अध्याय हुवे। परन्तु सायणाचार्य्य ने उत्तरार्चिक के २१ ही अध्याय माने हैं जो सब मूल ग्रन्थों से बे मेल हैं! इन के मत में २० वां और २१ वां अध्याय मिलाकर एक ही २० वां अध्याय है तथा छन्दआर्चिक के ६ मिलाकर सब २७ ही हैं ॥

इस सामवेद संहिता में प्राचीन काल से तौ प्रपाठक आदि विभाग ही समस्त मूल पुस्तकों में ठीक २ लिखे ही हैं। और उसी क्रम से इस के प्रकरण बन्धे हुए हैं। तदनुसार मैं जो यह भाष्य करूंगा सो भी प्रकरणानुसार होगा इस के प्रकरणों का एक सूचीपत्र बनाकर ग्रन्थ की समाप्ति में जोड़ा जायगा ॥

गानप्रक्रिया तु "नारदीशिक्षा"ऽऽदिप्रोक्तविधा, गानादयश्च

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तत्परा ग्रन्था मुद्रिताः सन्ति ते च कलिकातादितोऽलभ्यन्तएव। गीतिश्च सायणभाष्ययुक्तेषु बाङ्गग्रन्थप्रसारणसमित्या मुद्रापितेषु सामवेदपुस्तकेषु सर्वसुलभैव। अतस्तन्मुद्रणे व्ययाधिक्यं विशिष्टफलाभावं च पश्यताऽत्रमुद्रणोपेक्षा क्रियते। अपरं च—मन्त्रार्थ एवाऽयुक्तियुक्तोनुपकारकोन्यूनोपकारकोऽपकारको वा कुत्रचिद्भाष्येष्वस्ति, येन वैदिकधर्मप्रचारक्षतिर्महीयसी प्रतिभाति, तन्निवारणायैव चैष नूतनभाष्यकरणोद्योगः। सा च गीतौ न विद्यतेऽतस्तत्र प्रयासोऽफलकल्पएव। परन्तु दिग्दर्शनायाऽत्र—"अग्न आयाहि वीतय" इत्यस्यामृचि यद्गानं यन्नामकं साम, यश्च तस्य ऋषिः, तदिदमित्थम्बोध्यम्—

(सामवेदीयः प्रथमो मन्त्रः—)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
अग्न आयाहि वीतये गृणानोहव्यदातये।
१ र २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

अत्र त्रीणि सामानि, आद्यं तृतीयं चेति द्वे पर्कनामके सामनी, मध्यमं तु बर्हिष्यं नाम साम। एषां साम्नां नामानि ऋषयश्चार्षेयब्राह्मण—द्वितीयखण्डारम्भे लिपिकृतानि तानि यथा—

"गोतमस्य पर्कावभितः कश्यपस्य बर्हिष्यम्" अस्यायमर्थः—अभित उभयतः प्रथमतृतीयौ गोतमेन ऋषिणा गीतौ पर्कसंज्ञकौ सामविशेषौ, मध्ये चैकः कश्यपेन गीतो बर्हिष्यनामा सामविशेषः। तत्र गोतमस्याद्यः पर्को यथा—

४ २र र १ २ - १ -
(१) ओग्नाइ। आ या ही ३ वी इ तो या २इ। तो या २ इ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ र २र १ - १ - १ २र १
गृणानो ह। व्यदातो या २ इ। तो या २ इ। ना इ होता सा२ ३ त्सा
३ ५र र ३
२ इ। बा २३४ औहोबा। हीं २३४ षी ॥ १ ॥

कश्यपस्य मध्यमं बर्हिष्यं यथा—

४ ५ ४र ५र ४ १ र र २
(२)अग्न आ याहि वी। तया इ। गृणानो हव्यदाता। २३ याइ।
१र र २ १ ५ १ ३ ५र र
नि होता सत्सि बर्हा २३ इषि। बर्हा २ इषा २३४ औहोबा।
२ १ १ १ १
बर्हीं ३ षी २३४५ ॥२॥१॥

पुनर्गोतमस्य पर्कस्तृतीयो यथा—

४ ५ ४र ५र ४ ४ १ र र २ २
(३)अग्न आ या हि। वा ५ तया इ। गृणानो हव्यदा १ ता
२ ३ ५ १ २ १
३ ये। नि हो ता २ ३ ४ सा। त्सा २ ३ ४ इ बा ३। हीं
५ ५
२ ३ ४ ४ इषी ६ हा इ ॥३॥१॥

एवं यस्यामृचि यावन्ति सामान्यार्षेयब्राह्मणाद्यनुसारीणि निःसृतानि तानि यथाक्रमं बहुशोमुद्रितेषु लिखितेषु च पुस्तकेषूपलभ्यन्त एव। अस्मदीयं पुस्तकं तु भाष्यसहितं बहुद्रव्यसाध्यं यथा न स्यात्तथा कृत्वा सामगानरहितमेव मुद्राप्यते।

यदि च पिपठिषूणामुत्कण्ठा रुचिश्च विज्ञास्यते तर्हि भाष्यान्ते ऋग्विज्ञापनपुरस्सरं सर्वसामसंग्रहःपृथक् मुद्रापयिष्यते॥

गानप्रक्रिया का प्रकार वही है जो "नारदीशिक्षा" आदि ग्रन्थों में

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कहा है। और गानादि उस विषय के ग्रन्थ छप ही गये हैं। जो कि कलकत्ता आदि से मिलते ही हैं। तथा गीति भी "बंगाल एसियाटिक सुसाइटी" के छपाये सायणभाष्ययुक्त सामवेद के पुस्तकों में सब को मिलनी सुगम ही है। इसलिये उस गीति के छापने में धनव्यय अधिक है तथा कोई विशेष फल भी नहीं है इसलिये सम्प्रति हम उसे नहीं छापते हैं। इस के अतिरिक्त यह भी है कि गीति अन्यत्र की छपी और हमारी छापी (यदि छापें तो) भी समान ही हों क्योंकि उस में कोई अन्तर नहीं है, केवल मन्त्रों के अर्थ ही प्रायःअन्य टीकाकारों के किये हुए कहीं २ युक्तिविरुद्ध अनुपकारक न्यूनोपकारक अथवा हानिकारक हो गये हैं जिन से वैदिक धर्म के प्रचार में बड़ी बाधा आपड़ी है, उस के निवारणार्थ ही इस नवीन (परन्तु प्राचीन ऋषिसिद्धान्ताऽनुकूल) भाष्य का उद्योग है। और उस प्रकार की कोई हानि गीति में नहीं है। इसलिये गीति छाप कर ग्रन्थ बड़ा करना निष्फल नहीं तो उस के ही लगभग है (समस्त गीतियों के छापने से मूल से चार पांच गुणा पाठ बढ़ जाता) परन्तु निदर्शन (नमूना) के लिये यहां सामवेद के प्रथम मन्त्र में जो ३ गान निकलते हैं उन्हें हम ने ऊपर संस्कृत में छाप दिया है सो देख लीजिये। पहिले गान का (१) नाम "पङ्क्ति" है, दूसरे का (२) "बर्हिष्य" और तीसरे का भी (३) "पङ्क्ति" ही नाम है। इन सामगानों के नाम और ऋषि का वर्णन "आर्षेय ब्राह्मण" के द्वितीय खण्ड के आरम्भ में इस प्रकार लिखा है कि-" प्रथम तृतीय पङ्क्ति नाम वाले हैं उन का ऋषि गोतम है, दूसरा बर्हिष्य नामक साम है उस का कश्यप ऋषि है"

इसी प्रकार जिस ऋचा में जितने साम आर्षेयब्राह्मणानुसार निकले हैं वे प्रायः लिखे और छपे पुस्तकों में मिलते ही हैं। परन्तु हमारा पुस्तक गान सहित भाष्ययुक्त छापने से बहुत बड़ा होकर अधिक मूल्य का होने से अल्पधन वालों को दुर्लभ न हो जावे, इसलिये गान छोड़कर ही छपाया जाता है। तथापि यदि पाठक महाशयों की रुचि और चाव समझेंगे तो ग्रन्थ के अन्त में ऋचा के पदों सहित समस्त सामगानों का सङ्ग्रह एक साथ छाप देंगे ॥

ये खलूदात्तादयः स्वरास्ते हि सामवेदे पृथग्विधया व्यवह्रियन्ते। तद्यथा नारदीशिक्षायाम्-

नोट-(१) देखो पृष्ठ ४ पं० २१ (२) देखो पृष्ठ ५ पं० ४ (३) देखो पृष्ठ ५ पं० ८

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथातः स्वरशास्त्राणां सर्वेषां वेदनिश्चयम् ।
उच्चनीचविशेषाद्धि स्वरान्यत्वं प्रवर्त्तते (१।१)

स्पष्टम् ॥

तथा च तत्रैव पाणिनिसम्मतानामुदात्तादीनां त्रयाणां मध्ये मानविद्यायाः सप्त स्वरा एवं संनिवेशिताः—

उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्तऋषभधैवतौ ॥
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः (८।८)

अर्थात्—निषादगान्धारौ खलु उदात्तान्तर्गतौ । ऋषभधैवतौ ह्यनुदात्तान्तर्भूतौ । शेषास्त्रयः षड्जमध्यमपञ्चमाः स्वरिते संनिविष्टाश्च ज्ञातव्याः । एवं सप्त स्वरास्त्रयाणामन्तर्भूतास्ते च तत्रैव—

षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा ।
पञ्चमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः (२।५)

एवं संज्ञिता अपि सामवेदार्थं विशिष्टसंज्ञाभिस्तत्रैव संज्ञिताः। यथा—

प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोऽथ चतुर्थकः ।
मन्द्रः कुष्टोह्यतिस्वारएतान्कुर्वन्ति सामगाः (१।१२)

अर्थात् मध्यमादिसप्तानां प्रथम—द्वितीय—तृतीय—चतुर्थ—मन्द्र—कुष्ठा—ऽतिस्वारशब्दैरत्र व्यवहारः । स च तत्रैव यथा—

यः सामगानां प्रथमः सवेणोर्मध्यमः स्वरः ।
योद्वितीयः सगान्धारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः (१३।१)
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पञ्चमो धैवतो भवेत् ।
षष्ठो निषादोविज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः (१३।२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

एवम्-१=मध्यमः। २=गान्धारः। ३=ऋषभः। ४=षड्जः। ५=मन्द्रोधैवतो वा। ६=कृष्टोनिषादो वा। ७=पञ्चमोऽतिस्वारोवा।

तत्रैव षड्जादिस्वराणां नामार्थाश्च यथा—

"नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्चसंश्रितः।
षड्भिः संजायते यस्मात्तस्मात्षड्जइतिस्मृतः (५।७)
वायुः समुत्थितोनाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।
नर्दत्यृषभवद्यस्मात्तस्मादृषभ उच्यते (५।८)
वायुः समुत्थितोनाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।
नासागन्धावहः पुण्योगान्धारस्तेन हेतुना (५।९)
वायुः समुत्थितोनाभेरुरोहृदि समाहतः।
नाभिं प्राप्तोमहानादो मध्यमत्वं समश्नुते (५।१०)
वायुः समुत्थितोनाभेरुरोहृत्कण्ठशिरोहतः।
पञ्चस्थानोत्थितस्यास्य पञ्चमत्वं विधीयते (५।११)
अतिसन्धीयते यस्मादेतान्पूर्वोत्थितान्स्वरान्।
तस्मादस्य स्वरस्यापि धैवतत्वं विधीयते (५।१७)
निषीदन्ति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना।
सर्वांश्चाभिभवत्येषयदादित्योऽस्यदैवतम् (५।१८)"

गानविद्याप्रेप्सुना तु सर्वैव "नारदीशिक्षा" ऽन्ये च "रागविबोधादयो" ग्रन्था अध्येतव्याः॥

उदात्तादि स्वरों का व्यवहार सामवेद में निराले ढंग से है जैसा कि नारदीशिक्षा में कहा है कि-(श्लोक संस्कृत भाष्य पृष्ठ ७।८ में देखो)

अर्थः-"अब सब स्वरशास्त्रों का वेद निश्चय (वर्णन करते हैं क्योंकि) ऊंचे नीचे के विशेष से स्वर में भेद प्रवृत्त होता है (१।१)"

तथा उसी नारदीशिक्षा में पाणिनि के माने हुए उदात्तादि ३ स्वरों के बीच गानविद्या के ७ स्वर इस प्रकार निवेशित किये हैं। जैसे-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

"उदात्त में निषाद और गान्धार, अनुदात्त में ऋषभ और धैवत, तथा स्वरित में षड्ज मध्यम और पञ्चम उपजे हैं (८।८)"

इस प्रकार ७ स्वर, ३ के भीतर आगये हैं। और वे वहीं:-

"षड्ज ऋषभ गान्धार मध्यम पञ्चम धैवत और निषाद ७ वां स्वर है (२।५)"

इस प्रकार नाम रखकर भी सामवेद के लिये विशेष संज्ञाओं से बोले जाते हैं जैसा कि वहीं कहा है कि:-

"१ प्रथम २ द्वितीय ३ तृतीय ४ चतुर्थ ५ मन्द्र ६ क्रुष्ट और ७ अतिस्वार इन्हें सामग लोग उच्चारते हैं। (१।१२)"

अर्थात् मध्यमादि ७ स्वरों के गान में ये विशेष नाम हैं जैसा कि वहीं फिर लिखा है कि-:

" जो सामगों का प्रथम स्वर है वह वेणु का मध्यम नामक है। जो द्वितीय है वह गान्धार। और तृतीय ऋषभ को मानना है। चतुर्थ को षड्ज कहते हैं। पञ्चम धैवत है। षष्ठ निषाद जानना चाहिये। और सप्तम का नाम पञ्चम है। (१३। २)"

इस प्रकार १=मध्यम २=गान्धार। ३=ऋषभ। ४=षड्ज। ५=मन्द्र वा धैवत। ६=क्रुष्ट वा निषाद। ७=पञ्चम वा अतिस्वार है॥

इसी नारदीशिक्षा में षड्जादि स्वरों के नामार्थ भी लिखे हैं कि:-

"नासिका कण्ठ उरः तालु जिह्वा और दान्त इन छः से उत्पन्न होता है इस कारण षड्ज कहाता है (५। ७)। नाभि से उठा वायु, कण्ठ और शीर्ष से टकराया हुवा ऋषभ (बैल) की नांई नादता है इस कारण ऋषभ कहा जाता है (५। ८)। नाभि से उठा वायु, कण्ठ और शीर्ष से टकराया हुवा नासिका में पवित्र गन्ध को लाने वाला है इस हेतु गान्धार है (५। ९)। नाभि से उठा वायु उरः और हृदय में टकराया हुवा (मध्य) नाभि को प्राप्त हुवा वही स्थानाद मध्यमत्व को प्राप्त होता है (५। १०)। वायु १ नाभि से उठा हुवा और २ उरः ३ हृदय ४ कण्ठ और ५ शीर्ष से टकराया हुवा होता है इस लिये इस ५ स्थानों से उत्पन्न होने वाले को पञ्चमत्व किया जाता है (५। ११)। इन पूर्व उठे हुवे स्वरों को अतिसन्धान करता है इसलिये इस स्वर को धैवतत्व किया गया है (५। १७)। जिस कारण इस (निषाद) से सब स्वर बैठ जाते (दब जाते) हैं इस से यह निषाद है इत्यादि० (नारदी० ५। १८)" ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जो सामगानविद्या की प्राप्ति चाहता है उसे तो सम्पूर्ण "नारदी शिक्षा" तथा "राणवेद्यो य" आदि अन्य ग्रन्थ ही पढ़ने चाहियें ॥

परमिहास्माभिस्त्वर्थावगमायोदात्तादय एव भेदा विज्ञापयितव्याः । अन्यथा-

दुष्टः शब्दः स्वतोवर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ॥

अर्थविकाराय स्वरैरुदात्तादिभिरेव वा दोषभाग्भिरर्थान्तरं जायते । यथा-"इन्द्रशत्रुः" इत्यस्मिन्पदे, तत्पुरुषे समासे-इन्द्रस्य शत्रुः = इन्द्रशत्रुः । इत्यन्तोदात्तो भवति "समासस्य ६।१।२२३ पाणि० । बहुव्रीहौ तु इन्द्रः शत्रुर्यस्य सः = इन्द्रशत्रुः । अत्र हि "बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्" ६।२।१ पाणि० इत्यनेनान्तोदात्तं बाध्यते पूर्वपदप्रकृतिस्वरश्च विधीयते । तेन चेन्द्र शब्द आद्युदात्तो भवति । एवं तत्पुरुषे-इन्द्रशत्रुः इत्युच्चार्यमाणेऽयमर्थो जायते-इन्द्रस्य सूर्यस्य शत्रुः शातयिता नाशकर्ता मेघः । स चाऽसम्मतः । न हि मेघः सूर्येणाभिभवितुं शक्यः । बहुव्रीहिसमासे तु-इन्द्रशत्रुः इत्युच्चार्यमाणेऽर्थोयं भवति-इन्द्रः शत्रुः शातयिता नाशकर्ताऽस्य सोयमिन्द्रशत्रुर्मेघः । अयमेव च निर्दोषोऽर्थः । एवं स्वरे ज्ञातेऽर्थो ज्ञातोऽज्ञाते चाऽज्ञातोभवति ॥

परन्तु हम ने तो अर्थ समझने के लिये यहां केवल उदात्तादि स्वर ही बतलाये हैं क्योंकि-जब शब्द में वर्ण का दोष वा स्वर का दोष हो जाता है तब वह शब्द जिस के लिये बोला गया है उस (ठीक) अर्थ को नहीं कहता, जैसे स्वर-दोष-"इन्द्रशत्रुः" इस पद में तत्पुरुष समास में "इन्द्रस्य शत्रुः=इन्द्रशत्रुः" ऐसा अन्तोदात्त प्रयोग होता है । परन्तु बहुव्रीहि में-"इन्द्रः शत्रुर्यस्य सः= इन्द्रशत्रुः" यहां अन्तोदात्त न होकर पूर्वपदप्रकृतिस्वर हो जाता है और उस से इन्द्र शब्द आद्युदात्त हो जाता है । अष्टाध्यायी के सूत्र तथा स्वर के चिह्न संस्कृत में हमने लिखे हैं वहां देख लीजिये । इस प्रकार तत्पुरुष समास में तो इन्द्रशत्रु का अर्थ यह है कि "इन्द्र जो सूर्य उस का काटने वाला" । परन्तु

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यह अर्थ असम्भव है क्योंकि वृत्र जो मेघ है वह इन्द्र=सूर्य्य के साथ लड़ कर सूर्य्य को काट नहीं सक्ता किन्तु स्वयं ही कट कर बर्षता है इसलिये बहुव्रीहि समास ही ठीक है जिस में यह अर्थ होता है कि "इन्द्र=सूर्य्य है काटने वाला जिस का" वह मेघ इन्द्रशत्रु पद का वाच्य है। परन्तु यह ठीक अर्थ तभी हो सक्ता है जब कि कोई बोलने वाला बहुव्रीहि समास वाले स्वर से उच्चारण करे। और यदि स्वर का ज्ञान न हो और इस कारण तत्पुरुषसमास वाले स्वर से बोल देवे तो वही असम्भव अनर्थ आवेगा जो ऊपर लिखा गया॥

एकस्यामेवर्चि यत्सूक्तं समाप्यते तदेकर्चम् इत्युच्यते। द्वयोर्ऋचोस्तु "प्रगाथः" इत्युच्यते। तिसृणामृचां च "तृचम्" इत्युच्यते। एवं चतुर्ऋचम्। पञ्चर्चम्। षडृचम्। सप्तर्चम् इत्यादयः पूर्वाचार्यव्यवहृताः संज्ञा विज्ञातव्याः॥

जो सूक्त एक ही ऋचा में समाप्त होता है उसे "एकर्च" कहते हैं और दो ऋचाओं में पूर्ण होने वाले को "प्रगाथ" कहते हैं। तीन ऋचा वाले को "तृच"। ४वाले को "चतुर्ऋच" इसी प्रकार पञ्चर्च, षडृच, सप्तर्च इत्यादि संज्ञा जानो, जिन का पूर्व आचार्य लोग व्यवहार करते रहे हैं॥

यद्यपि ऋषि–देवता–छन्दांसि प्रतिमन्त्रं तत्र तत्र विज्ञापयिष्यन्ते तथाप्यत्र सप्तच्छन्दांसि सप्ताऽतिच्छन्दांसि सप्त विच्छन्दांसि च यत्संख्याकाक्षरात्मकानि भवन्ति तन्निदर्श्यते॥

तत्र सप्तच्छन्दांसि यथा–

१ चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री। २ अष्टाविंशत्यक्षरा उष्णिक्। ३ द्वात्रिंशदक्षराऽनुष्टुप्। ४ षट्त्रिंशदक्षरा बृहती। ५ चत्वारिंशदक्षरा पङ्क्तिः। ६ चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप्। ७ अष्टचत्वारिंशदक्षरा जगती॥

सप्ताऽतिच्छन्दांसि यथा–

१ द्विपञ्चाशदक्षराऽतिजगती। २ षट्पञ्चाशदक्षरा शक्वरी। ३ षष्ट्यक्षराऽतिशक्करी। ४ चतुःषष्ट्यक्षराऽष्टिः। ५ अष्टषष्ट्यक्षराऽ-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

त्यष्टिः । ६ हिसप्तत्यक्षरा धृतिः । ७ षट्सप्तत्यक्षराऽतिधृतिः ॥

सप्त विच्छन्दांसि यथा-

१ अशीत्यक्षरा कृतिः । २ चतुरशीत्यक्षरा प्रकृतिः । ३ अष्टाशीत्यक्षराऽऽकृतिः । ४ हिनवत्यक्षरा विकृतिः । ५ षण्णवत्यक्षरा संस्कृतिः । ६ शताक्षरा धृतिः । ७ चतुरुत्तरशताऽक्षरोत्कृतिश्चेति । तथा हि-

"गायत्र्या वसवः" ३।३ इत्यारभ्य, "चतुःशतमुत्कृतिः" ४।१। इत्यन्तानि पिङ्गलसूत्राणि । भुरिक्स्वराड्विराड्निचृद्विचृदादयो भेदाश्च तत्रैव पिङ्गले द्रष्टव्याः ॥

यद्यपि जिस मन्त्र का जो ऋषि देवता और छन्द होगा वह प्रतिमन्त्र के ऊपर वहां २ लिखा जायगा तथापि यहां केवल यह दिखलाया जाता है कि सात ७ छन्दों ७ अतिच्छन्दों और ७ विच्छन्दों में से किस २ में कितने २ अक्षर होते हैं । जैसे-

१-२४ अक्षर की गायत्री । २-२८ अक्षर की उष्णिक् । ३-३२ अक्षर की अनुष्टप् । ४-३६ की बृहती । ५-४० की पङ्क्ति । ६-४४ की त्रिष्टुप् । ७-४८ की जगती । ये ७ छन्द हुवे ॥ और १-५२ अक्षर की अतिजगती । २-५६ की शक्करी । ३-६० की अतिशक्करी । ४-६४ की अष्टि । ५-६८ की अत्यष्टि । ६-७२ की धृति । ७-७६ की अतिधृति । ये ७ अतिच्छन्द हुवे ॥ तथा १-८० अक्षर की कृति । २-८४ की प्रकृति । ३-८८ की आकृति । ४-९२ की विकृति । ५-९६ की संस्कृति । ६-१०० की अतिकृति । ७-१०४ की उत्कृति । ये ७ विच्छन्द हुवे ॥ जैसो कि-

गायत्र्या वसवः (३ । ३ सूत्र) से लेकर-चतुश्शतमुत्कृतिः (४ । १) पर्य्यन्त पिङ्गलसूत्रों में निकलता है । और भुरिक् स्वराट् विराट् निचृत् विचृत् आदि भेद तो पिङ्गल में ही देखने चाहियें ॥

सामवेदोपव्याख्यानभूतान्यष्ट ब्राह्मणानि यथा-

अष्टौ हि ब्राह्मणग्रन्थाः (१) प्रौढं ब्राह्मणमादिमम् ।
(२) षड्विंशाख्यं द्वितीयं स्यात्ततः (३) सामविधिर्भवेत् ॥१॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(४) आर्षेयं (५) देवताध्यायं (६) भवेदुपनिषत्ततः ॥
(७) संहितोपनिष (८) द्वंशो ग्रन्था अष्टावितीरिताः ॥ २ ॥

तत्र चतुर्थपञ्चमब्राह्मणानुसारीणि ऋषिदेवताच्छन्दांसि बोध्यानि । मन्त्रब्राह्मणे सर्वे संस्कारमन्त्राः पठिताः । वंशब्राह्मणे च ब्रह्मण आरभ्य सामगानामनुक्रमोवंशइति यावत् । एवमन्येष्वपि सामवेदीयब्राह्मणेषु नास्ति कश्चिद्विशिष्टो मूलाक्षरव्याख्याविधायकोंऽशः ॥

सामवेद के उपव्याख्यान रूप ८ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उन के नाम ये हैं–१–प्रौढ वा ताण्डयमहाब्राह्मण २–षड्विंश ३–सामविधान ४–आर्षेय ५–देवताध्याय ६–उपनिषद् ७–संहितोपनिषद् वा मन्त्रब्राह्मण । ८–वंश । इन में से चौथे और पांचवें ब्राह्मणों के अनुसार सामवेद के ऋषि देवता और छन्द जानने चाहियें। मन्त्रब्राह्मण में सब संस्कारों के मन्त्र पढ़े हैं । वंश ब्राह्मण में ब्रह्मा से आरम्भ करके सामगों की वंशावली का वर्णन है । इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणों में भी प्रायश्चित्त प्रयोगादि का ही वर्णन है किन्तु मूल सामवेद के अक्षरों की व्याख्या का अंश विशेष कर नहीं है । इसलिये इस भाष्य में उन २ ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाणों की आवश्यकता प्रायः नहीं है ॥

भाष्यकार–तुलसीराम स्वामी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओ३म्

छन्दआर्चिकः

अधुना प्रकरणशोमन्त्रार्थोऽभिधीयते । अस्मिञ्छन्दआर्चिके आग्नेयमैन्द्रं पावमानं चेति पर्वत्रयं तत्राद्य आग्नेयनाम्नि चतुर्दशोत्तरशत ११४ मन्त्रात्मके पर्वणि काण्डे वा विशेषेणाऽग्निर्वर्ण्यते–

अथाग्नेयं पर्व काण्डं वा

तत्र

प्रथमे प्रपाठके–प्रथमार्द्धः ॥

(प्रथमाध्याये–प्रथमा दशतिः)

अग्न आयाहीत्यस्या भरद्वाज * ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३१२ ३ २ ३ १
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य-
२ १ २ २ ३ १ २
दातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

पदपाठः सविभक्तिस्वरः–अग्ने सं० । आयाहि क्रि० । वीतये ४ । गृणानः १ । हव्यदातये ४ । नि अ० । होता १ । सत्सि क्रि० । बर्हिषि ७ ॥

अन्वितपदार्थः–हे (अग्ने) प्रकाशमय ! (वीतये) वी, गति व्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु इति वीधातोः-मन्त्रेवृषेषपचमन विदभूवीरा उदात्तः । पा० ३।३।९६। इति क्तिन्प्रत्यये रूपम् । कान्तये प्रक्षेपाय हव्यखादनाय वा (आयाहि), किंभूतः (गृणानः) स्तूयमानः । व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः शानच् । (होता)

* वाजस्यान्नस्य भरणाद्भरद्वाजः इति सार्थयं संज्ञा=अन्नके भरण से "भरद्वाज" नाम हुवा ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हव्यप्रापणार्थानां दाता ग्रहीता वा (बर्हिषि) यज्ञे (नि, सत्सि) निषीद। किमर्थम्-(हव्यदातये) देवेभ्यो हव्यदानाय हव्यप्रापणाय ॥

एवंविधेषु मन्त्रेषु "अग्ने" इत्यादि सम्बोधनपदं दृष्ट्वा केचिच्छङ्कन्ते-वेदेषु प्रायोऽचेतनानां संबुद्ध्या प्रयोगो दृश्यते स किंहेतुकः ? इति। उच्यते निरुक्तेनात्र-"तास्त्रिविधाऋचः परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिकयश्च" दैवतकाण्डे ७ अध्याये १ खण्डे। तत्रैव च द्वितीये खण्डे-"अथ प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना"। अतएव वेदेष्वग्न्यादयः प्रत्यक्षा इवा मध्यमपुरुषप्रयोगैः सम्बोध्य च वर्ण्यन्ते। अर्थात् वैदिकोयं शैलो सर्वत्राग्रेऽपि बोध्या। अयंभावः-अग्निः परमेश्वरो भौतिको वा भक्तहृदयेऽग्निकुण्डे वा आयाति निहितो भवति। किमर्थं-हव्यदातये=भक्तिफलदानाय हुतद्रव्यप्रसारणाय वा। यथा परमेश्वरगुणकीर्तनेन तत्सेवनश्रद्धा जायते तथैव भौतिकाग्न्यादिपदार्थगुणवर्णनेन तत्तदुपयोगग्रहणश्रद्धाऽपि जायते, तथासति च महतोपकारेण भाव्यम् ॥

वेदेषु प्रायः * श्लेषालङ्कारेणार्थद्वयं तत्रापि परमार्थविषयक ईश्वरार्थस्तु मुख्य एव। तथा च-"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" इत्यादीनि कठोपनिष (२।१५) दार्ढ्यवचनानि संगच्छन्ते। वस्तुतः प्रकाशादयो ये दिव्या गुणाः परमात्मन्यसीमभावेन वर्त्तन्ते त एव ससीमभावेन भौतिकेष्वग्न्यादिषु देवेष्वपि विद्यन्ते अतएव तदंशे तेषां देवत्वम्। अतएव च सर्वदैवतपदैः पूर्णत्वेन

* श्लेषालङ्कारे शब्दश्लेषलक्षणम् यथा-
श्लेषः स वाक्य एकस्मिन्यत्राऽनेकार्थता भवेत्।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तु वेदेषु परमात्मैव विवक्षितः परन्तु यौगिकार्थबलेन कस्मिंश्चिद्देशेऽग्न्यादयो भौतिका अपि विवक्षिता विज्ञातव्याः ॥

एवं सर्वत्र देवतया वर्णनीयः पदार्थः, ऋषिणा तदर्थानुभवकर्त्ता, स्तुत्या तद्गुणवर्णनम्, संबुद्ध्या च तत्तत्प्रत्यक्षवर्णनं बोध्यं, नहि सर्वत्रेदमग्रे वक्ष्यते ॥ ऋग्वेदेपि (६।१६।१०) एवंविधएवाऽविकलः पाठः ॥१॥

अब प्रकरणशः मन्त्रभाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

इस छन्दआर्चिक नामक सामवेद के प्रथम भाग में ३ पर्व हैं १–आग्नेय २–ऐन्द्र और ३–पावमान। इन में से पहिले आग्नेय पर्व में ११४ मन्त्र हैं जिन में विशेष कर अग्निपदवाच्य का वर्णन है ॥

उस में–

प्रथम प्रपाठक का प्रथमार्ध ॥

(पहिले अध्याय की पहिली दशति)

भाषार्थः– (अग्ने) हे प्रकाश के पुञ्ज ! (वीतये) कान्ति प्रक्षेप वा हव्य खाने के लिये (आयाहि) प्राप्त हूजिये। कैसे हो तुम ? (गृणानः) स्तुति किये हुवे और (होता) हव्य पदार्थों के लेने वाले हो। (बर्हिषि) यज्ञ में (नि, सत्सि) विराजिये (हव्यदातये) वायु आदि देवों को हव्य देने=पहुंचाने के लिये ॥

इस प्रकार के मन्त्रों में "हे अग्ने" इत्यादि सम्बोधन के व्यवहार को देख कर कोई लोग शङ्का करते हैं कि "वेदों में विशेष कर के अचेतन जड़ों का सम्बोधन देखा जाता है सो किस कारण ?"

उत्तर–निरुक्त (अध्याय ७। खं० १) में लिखा है कि वेद में तीन प्रकार की ऋचा हैं। १–परोक्षकृता २–प्रत्यक्षकृता ३–और आध्यात्मिकी। फिर उसी निरुक्त (७।२) में लिखा है कि १–प्रत्यक्षकृता वे हैं जिन में मध्यम पुरुष का योग है और "त्वम्" इस सर्वनाम से व्यवहार है। इसीलिये वेदों में अग्नि आदि प्रत्यक्ष देवताओं (व्यावहारिकों) का मध्यम पुरुष के प्रयोगों और "तुम" इस सर्वनाम से सम्बोधन कर के वर्णन किया है। अर्थात् वेद की यह शैली (मुहावरा) है कि प्रत्यक्ष अग्न्यादि पदार्थों का वर्णन इस ढंग से

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

किया जाता है। ऐसा ही आगे भी सर्वत्र जानो। वार २ न लिखेंगे। तात्पर्य्य यह है कि—

अग्नि को अग्निकुण्ड में बुलाना अर्थात् आधान करना चाहिये इस लिये कि होमे हुवे द्रव्यों को वायु आदि में फैलावें और हुतद्रव्यों को प्रक्षेप करके फैलाने वा भक्षण करने के लिये। प्र०—वह अग्नि कैसा है उ०—जिस की स्तुति की जाती है। प्र० अग्नि आदि जड़ पदार्थों की स्तुति से क्या फल है? उ० जिस प्रकार परमेश्वर की स्तुति अर्थात् गुणानुवाद करने से उन में श्रद्धा उत्पन्न होती है इसी प्रकार अग्नि आदि जड़ पदार्थों के गुण वर्णन करने से उन गुणों के द्वारा उपकार लेने की श्रद्धा उत्पन्न होती है अर्थात् होमादि करने का क्या फल है, शिल्पादि में अग्नि क्या काम देता है, इत्यादि विदित होता है। इसलिये गुणकीर्त्तन व्यर्थ नहीं। इस मन्त्र का अग्नि देवता है अर्थात् अग्नि का इस में वर्णन=स्तुति है। अग्नि शब्द मुख्य करके परमात्मा का वाचक है इसलिये ईश्वरपक्ष के श्लेषालङ्कार वाले अर्थ में यह आशय होगा कि—

हे (अग्ने) प्रकाशमय! आप हमारे (बर्हिषि) यज्ञ में अर्थात् ज्ञानयज्ञरूप ध्यान में (आयाहि) प्राप्त हूजिये, (गृणानः) आप स्तुत किये हुवे हैं, (होता) आप सब को सब पदार्थों के दाता हैं। (नि, सत्सि) विराजिये। किस लिये? (वीतये) हृदय में प्रकाश करने के लिये और (हव्यदातये) भक्ति का फल देने के लिये॥

वेदों में प्रायः *श्लेषालङ्कार है जिस से दो अर्थ होते हैं जिन में से परमार्थ विषयक ईश्वरार्थ तो मुख्य ही है। क्योंकि कठोपनिषद् (२। १५) में लिखा है कि:—

"समस्त वेद जिस पद का सब प्रकार से मनन करते हैं वह ओंकार है" ओ३म् परमात्मा का नाम है। जैसा कि योगशास्त्र में लिखा है कि "परमात्मा का वाचक प्रणव ओङ्कार है (१। २७)" तो जब कि अग्नि आदि पदों से परमात्मा का ग्रहण किया जावे तभी यह ठीक घट सक्ता है कि समस्त वेद परमात्मा का वर्णन करते हैं। वास्तव में प्रकाशादि जो दिव्य गुण हैं सो परमात्मा में असीम (बेहद्द) भाव से वर्त्तमान हैं इस लिये अग्नि आदि पदों का मुख्य अर्थ तो परमात्मा ही है परन्तु वे प्रकाशादि गुण ससीम (हद्दवाले) होकर

* श्लेषालङ्कार के २ भेद हैं, शब्दश्लेष और अर्थश्लेष। जिन में से अर्थश्लेष वह कहाता है जिस में एक पद वा वाक्य में अनेक अर्थ हों॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अग्नि आदि भौतिक पदार्थों में भी किसी अंश तक रहते हैं इसलिये उस अंश में वे भौतिक पदार्थ देवता कहे जाते हैं। इसी लिये सम्पूर्ण देवतावाचक पदों से पूर्ण भाव से तो परमात्मा ही वेदों में विवक्षित है परन्तु यौगिकार्थ से किसी अंश तक भौतिक पदार्थ भी विवक्षित जानने चाहियें ॥

इस प्रकार सब जगह देवता शब्द से उस मन्त्र का वर्णन किया पदार्थ और ऋषि शब्द से उस २ मन्त्र के अर्थ का अनुभव करने वाला ऋषि, तथा स्तुति शब्द से उस के गुणों का वर्णन (बयान), और संबोधन से उस २ पदार्थ का प्रत्यक्ष होना, समझना चाहिये। यह ठीक स्मरण रखना चाहिये क्योंकि आगे बार २ यह नहीं लिखा जायगा। यह ऋचा ऋग्वेद मं० ६। सूक्त १६। ऋ० १० में भी ज्यों की त्यों है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया। ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वमग्ने यज्ञाना ँ होता विश्वेषा ँ

३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हितः। देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥

पदपाठः-त्वम् १। अग्ने सं०। यज्ञानाम् ६। होता १। विश्वेषाम् ६। हितः १। देवेभिः ३। मानुषे ७। जने ७॥

अन्वितपदार्थः-हे (अग्ने) अग्ने! त्वम् (विश्वेषाम्) सर्वेषाम् (यज्ञानाम्) अग्निष्टोमादीनाम् (होता) होमनिष्पादनशीलः। जुहोतेस्ताच्छीलिकस्तृन्। आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु। तृन्। पा० ३। २। १३४, १३५ (देवेभिः) विद्वद्भिर्ऋत्विग्भिः (मानुषे, जने) यजमाने तद्धितचिकीर्षया (हितः) आहितोभवसि ॥ ईश्वरपक्षे-यज्ञानाम्=ज्ञानयज्ञानाम्। देवेभिः=उपासकैः। मानुषे जने=मनुष्यलोके ॥ ऋग्वेदेपि (६। १६। १) अविकलः पाठः ॥ २ ॥

भाषार्थः-(अग्ने) हे अग्ने! तुम (विश्वेषाम्) सब (यज्ञानाम्) अग्निष्टोमादि कर्मयज्ञों के (होता) होम करने वाले (देवेभिः) विद्वान् ऋत्विजों द्वारा (मानुषे, जने) यजमान के यहां (हितः) स्थापन किये जाते हो ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भावार्थ स्पष्ट है कि अग्नि ही सब यज्ञों का होता है, वही हव्यपदार्थों को होमता=फूंकता है, उसे ही होता उद्गाता अध्वर्यु आदि ऋत्विज् लोग यजमान के घर कुण्ड में स्थापित करते हैं सो करें ॥

ईश्वर विषय में-(अग्ने) हे प्रकाशमान! तुम (विश्वेषाम्) समस्त (यज्ञानाम्) ब्रह्मयज्ञादि ज्ञानयज्ञों के (होता) ग्रहण करने वाले यज्ञस्वामी हो, तुम (देवेभिः) विद्वान् उपासकों से (मानुषे, जने) मनुष्य वर्ग में (हितः) धारण किये जाते हो ॥

इस से विदित कराया गया है कि परमात्मा सब ज्ञानयज्ञों का स्वामी अधिष्ठाता है, सब मनुष्यों में वे मनुष्य जो उपासक हैं उस का ध्यान करते हैं सो करें ॥ यह ऋचा भी ऋग्वेद (६।१६।१) में ज्यों की त्यों है ॥२॥

अथ तृतीया अग्निं दूतमित्येषा कण्वपुत्रेण मेधातिथिना दृष्टा।
छन्दोदेवते पूर्ववत्।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववे-
३ २ ३ १ २ ३ १ २
दसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

पदपाठः-अग्निम् २। दूतम् २। वृणीमहे क्रि०। होतारम् २। विश्ववेदसम् २। अस्य ६। यज्ञस्य ६। सुक्रतुम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(विश्ववेदसम्) अग्नौ प्रकाशः, प्रकाशश्च ज्ञानसाधनम्, यत्र प्रकाशस्तत्र ज्ञायते किमस्ति किंनास्तीत्यादि। अत एव विश्वं सर्वं वेदयति प्रकाशयति ज्ञापयति स विश्ववेदास्तम्। अन्तर्भूतोणिजर्थः। यद्वा-विदिभुजिभ्यां विश्वेऽसिः। उणा० ४। २३८ विश्वं सर्वं वेत्ति जानाति स विश्ववेदा जगदीश्वरः। विश्वस्मिन्विद्यते विश्वं वा विन्दति सूक्ष्मरूपेण स वा विश्ववेदा अग्निस्तम्। (होतारम्) देवानामाह्वातारम्। ह्वयतेः "तृन्। पा० ३। २।१३५।" इति तृन्। बहुलं छन्दसि। पा० ६।१।३४। इति सम्प्रसारणम्। अतएव (दूतम्) दूतसंज्ञम् (अस्य, यज्ञस्य) अस्मा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भिरनुष्ठीयमानस्य (सुक्रतुम्) निष्पादकत्वेन शोभनकर्माणम्। क्रतुरिति कर्मनाम निघं० २।१। (वृणीमहे) स्वीकुर्मो वयं यजमाना इति शेषः ॥ ईश्वरपक्षे-दूतम् = सर्ववस्तुप्रदातारम् । होतारम् = सर्वस्य व्यापकत्वेन ग्रहीतारम्। यज्ञस्य = ज्ञानयज्ञस्य। सुक्रतुम् = सुष्ठु सम्पादकम् शोभनप्रज्ञं वा । क्रतुरिति प्रज्ञानाम निघं० ३।९॥

अत्राग्नेर्दूतत्वमभिधीयते। यथा दूतो यत्र तत्र प्रेषितं द्रव्यादिकं प्रापयति तथैवाग्निरपि स्वस्मिन् हुतं द्रव्यं लघु कृत्वाऽऽकाशे वाय्वादिष्वर्पयति। काश्चिद्देवताश्चाऽऽह्वयतेऽग्निकुण्डे यदा होमो विधीयते तदा कुण्डस्योपरितनो वायुस्तदन्तर्भूतोऽन्यो वा देव विशेषस्त्रयस्त्रिंशत्सु देवेषु कोपि भवेत्। सहि वायुरग्निसंयोगेन लघुत्वमापन्न उपरि गच्छति। लघूनि द्रव्याणि गुरूणामुपरि गच्छन्ति जले तैलविन्दुवत्। यदा चाग्नेरुपरितनो वाय्वादिर्लघुर्भूत्वोपरिगच्छति तदा तत्स्थानं रिक्तं जायते परं तत्र तदैव समन्तात् अन्ये वाय्वाधारदेवा आगच्छन्ति तेऽपि तथैव स्वभागं गृहीत्वोपरि गच्छन्ति, एवं पुनः पुनर्जायते। इत्थमग्निः समन्ताद्दर्त्तमानान्देवानाहूयेव तत्तद्भागं संविभजते। तदुक्तं तैत्तिरीयके "अग्निर्वै देवानां दूत आसीदिति" सायणः। ऋग्वेदेपि (१।१२।१) अविकलः पाठः ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(विश्ववेदसम्) सब को जताने वाले (होतारम्) देवों के बुलाने वाले (अस्य) इस (यज्ञस्य) यज्ञ के (सुक्रतुम्) सुधारने वाले (दूतम्) दूत को (वृणीमहे) हम वरण करते हैं अर्थात् स्वीकार करते हैं ॥

तात्पर्य्य यह है कि यज्ञ का अग्नि दूत है। जिस प्रकार दूत द्वारा बुलाने वा सत्कार करने योग्यों को बुलाते हैं इसी प्रकार अग्नि द्वारा वायु आदि देवों को बुलाया जाता है। इस का प्रकार यह है कि जब कुण्ड में अग्नि स्थापन

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

करके होम करते हैं तो अग्निकुण्ड के ऊपर छाये हुवे वायु और वायु के अन्तर्गत अन्य ३३ में से कई भौतिक देवों को आहुति पहुंचा कर अग्नि अपनी उष्णता से हलका कर देता है, तब हलकी (लघु) वस्तु स्वाभाविक रीति पर जल पर तैल के समान ऊपर को हट जाती है और उस का स्थान रिक्त (ख़ाली) हो जाता है परन्तु चारों ओर का वायु और उस के अन्तर्गत अन्य देव फिर उस स्थान को भर देते हैं, अग्नि फिर उन्हें भी अपनी उष्णता से आहुति पहुंचाय हलका करके ऊपर को हटा देता है। इसी प्रकार वारवार होता है, इस रीति से अग्नि दूत है जो वायु आदि देवतों का आवाहन कर कर के विसर्जन करता जाता है। अग्नि सब का जताने वाला इसलिये है कि अग्नि में प्रकाश है और प्रकाश ज्ञान का साधन है, जहां प्रकाश होता है वहां जाना जाता है कि क्या है क्या नहीं है, अन्धकार में अज्ञान छाता है ॥

ईश्वर विषय में–(विश्ववेदसम्) सब के लिये वेदों द्वारा ज्ञान के दाता (होतारम्) व्यापकता से सब के ग्रहण करने वाले (दूतम्) कर्मों का फल पहुंचाने वाले (अस्य) इस (यज्ञस्य) योगयज्ञ के (सुक्रतुम्) संवारने वाले [परमात्मा को हम यजमान उस के भक्त उपासक लोग] (वृणीमहे) वरण करते हैं स्वीकार करते हैं ॥

परमात्मा ही वेद द्वारा सब को ज्ञान का दाता, सब को कर्मफलप्रदाता, सब को सर्वत्र व्यापक होता हुवा पकड़ रहा है वा धारण कर रहा है, वही हमारी उपासना के सुन्दर फल का सम्पादक है, उसी की हम भक्ति करें यह आशय है ॥

अष्टाध्यायी ३।२। १३५॥ ६। १। ३४ ॥ उणादिकोष ४। २३८ ॥ निघण्टु २। १ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखो। सायणाचार्य्य भी लिखते हैं कि तैत्तिरीय में कहा है कि "अग्नि देवों का दूत है" इत्यादि ॥ यह ऋचा भी ऋग्वेद (१। १२। १) में भी ऐसे ही है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी–अग्निर्वृत्राणीत्येषा भरद्वाजेन दृष्टा। छन्दोदेवते पूर्ववत्।

२ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विप-

१ २ १ २ ३ १ २ २

न्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—अग्निः १। वृत्राणि २। जङ्घनत् क्रि०। द्रविणस्युः १। विपन्यया ३। समिद्धः १। शुक्रः १। आहुतः १॥

अन्वितपदार्थः—(विपन्यया) विविधगुणकीर्त्या कीर्त्तितः। पनतिरर्चतिकर्मा। निघं० ३।१४। (द्रविणस्युः) द्रविणमिति बलनाम निघं० २। १। आत्मनो द्रविणं बलं वृद्धिमिच्छति स द्रविणस्युः। "क्यचि च" ७।४।३३ न छन्दस्यपुत्रस्य ७। ४।३५ इत्येताभ्यां 'क्यचि' इति 'छन्दसि' इति चानुवर्त्त्य—"दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति" ७।४।३६ अनेन निपात्यते। (समिद्धः) दीपितः। ञि इन्धी दीप्तौ। (शुक्रः) शुक्लवर्णो ज्वलन्निति यावत् (आहुतः) समन्ताद्दत्विग्भिः कृतहोमः (अग्निः) प्रसिद्धः (वृत्राणि) वाय्वादिगतानि दुःखदानि अणुरूपाणि द्रव्याणि जगतामावरणकराणि रक्षांसि (जङ्घनत्) हन्यात्। यङ्लुगन्ताद्धन्तेः "लिङर्थे लेट्" ३।४।७ इति लेट्प्रयोगः। ईश्वरपक्षे-द्रविणस्युः = उपासकानामात्मिकबलमिच्छुः। छन्दसि परेच्छायामिति वक्तव्यम्। इति क्यच्। सनाशंसभिक्षउः ३।२।१६८ इत्यस्मात् उः इत्यनुवर्त्त्य—क्याच्छन्दसि ३।२।१७० इत्युप्रत्यये रूपम्। समिद्धः उपासितः। सम्यग्हृदयकुहरे ध्यातः। शुक्रः = बलवान् बलप्रदाताच आहुतः=सर्वथा कृतभक्तिः। वृत्राणि = आवरणकराणि अविद्यातमांसि हन्यादिति योज्यम्॥

भौतिकाग्निपक्षेऽयंभावः—वेदोक्तमन्त्रैर्ज्ञातगुणोऽग्निर्वृद्धिमिच्छति। अर्थात् समिदादिप्रक्षेपपूर्वकमात्मनोवर्धनमिच्छति, यदा च समिद्धो भवति, होमश्च समन्तात्स्थितैर्ऋत्विग्भिःक्रियते, तदा सोऽग्निः सर्वतस्तमांसि रोगकारकद्रव्याणि च विनाशयति। तानि चैव रक्षांसि दुःखदानीति वेद्यम्। केचिच्छङ्कन्ते—क-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

थमचेतनेऽनाविच्छा सम्भवतीति। उच्यते-पतिष्यमाणायाभित्तौ कथमुच्यते "भित्तिः पिपतिषतीति" ? तथैवाऽत्रापि बोध्यम् । ऋग्वेदेपि (५।१६।३४) अविकलपाठः ॥४॥

भाषार्थः-(विपन्यया) कीर्त्तन से कीर्त्तित (द्रविणस्युः) बल चाहता हुवा (समिद्धः) सुलगाया हुवा (शुक्रः) श्वेत=प्रज्वलित होता हुवा (आहुतः) सब ओर से होमा हुवा (अग्निः) अग्नि (वृत्राणि) दुःखदायक रोगादिकों को (जङ्घनत्) हनन करे ॥

आशय यह है कि वेदोक्त मन्त्रों से अग्नि का कीर्त्तन करना चाहिये इस से होम के साथ मन्त्र पढ़ने से तात्पर्य है। जिस से अग्नि के गुण ज्ञात होकर उस के उपयोग की शिक्षा मिले, वह अग्नि बल को चाहता अर्थात् समिधा आदि द्वारा अपने को बढ़ाना चाहता है, उसे बढ़ाना चाहिये, यह शिक्षा है। प्र० अग्नि जड़ है उस में चाहना नहीं बन सक्ती। उ० भींत गिरना चाहती है, आग फूंकना चाहती है। जैसे यह व्यवहार है वैसे ही यहां भी जानो। जब वह अग्नि सुलगाया जाता है और प्रदीप्त होता है और चारों ओर से होम किया जाता है तब सब ओर के वृत्र अर्थात् अन्धकारों दुःखदायक रोगों और अनावृष्ट्यादि दुःखों को हनन करता है सो करे। इसलिये मनुष्यों को यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये ॥

ईश्वर विषय में-(विपन्यया) स्तुति से (द्रविणस्युः) भक्तों को आत्मिक बल का चाहने वाला (समिद्धः) अच्छे प्रकार ध्यान किया हुवा (शुक्रः) बलवान् और बलप्रदाता (आहुतः) सर्वथा भक्ति किया हुवा (वृत्राणि) अविद्यादि अन्धकारों दुःखों और दुःखसाधनों को (जङ्घनत्) हनन करे। इस लिये सब को नित्य परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना श्रद्धा भक्ति से करनी चाहिये। निघण्टु ३। १४ ॥ २। ९ ॥ अष्टाध्यायी ७।४।३३ ॥ ७।४।३५॥ ७।४।३६ ॥ ३।४।७॥ ३।२।१६८ ॥ ३।२।१७० ॥ के प्रमाण संस्कृत में देखने चाहियें। यह ऋचा भी ऋ० ५। १६। ३४ में ठीक इसी प्रकार है ॥४॥

अथ पञ्चमी-उशनसा दृष्टा। छन्दोदेवते उक्ते।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्रेष्ठं वो अतिथिꣳस्तुषे मित्रमिव
३ २ २ ३ २ ३ १ २ २
प्रियम्। अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-प्रेष्ठम् २। वः ४। अतिथिम् २। स्तुषे क्रि०। मित्रमिव अ०। प्रियम् २। अग्ने सं०। रथम् २। न अ०। वेद्यम् २॥

अन्वितपदार्थः-हे मनुष्याः (मित्रमिव, प्रियम्) हितकरम् (प्रेष्ठम्, अतिथिम्) अतिप्रियमतिथिं सततं गमनशीलम्। अग्निर्हि निरन्तरं गमनशील ऊर्ध्वं गच्छति। अत सातत्यगमने। ऋतन्यृञ्जि० उणा० ४।२। इतीथि-प्रत्ययः। (वेद्यम्) वेद्यां भवम् (रथं, न) रथमिव देववाहनम्। नेत्युपमार्थे निरुक्तकारआह-"नेति प्रतिषेधा०" इत्यारभ्य-"उपमार्थीय उपरिष्टादुपाचारस्तस्य येनोपमिमीते" इत्यन्तम् १।४। (अग्ने) अग्निम्। विभक्तिव्यत्ययः। ऋग्वेदे तु (मं० ८ सू० ७३ ऋ० १) "अग्निम्" इत्येव पाठः साक्षात्। (वः) युष्मभ्यम् युष्मद्धिताय। (स्तुषे) कीर्त्तये उपदिशामि। ष्टुञ् स्तुतौ-लेट्व्यत्ययेन। सिब्बहुलं लेटि पा० ३।१।३४॥

परमात्मोपदिशति-हे मनुष्याः युष्माकं हिताया ऽहम्-मित्रमिव हितसाधकं, वेद्यां कृताधानं, रथं हव्यवोढारम्, प्रेष्ठमग्निं कीर्त्तयामि। ईश्वरपक्षे-अतिथिम्=सर्वगम्। रथम्=सर्वाधारम्। वेद्यम्-वेद्यामन्तःकरणे हृदि ज्ञानयज्ञकुण्डे वर्त्तमानम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः- हे मनुष्यो! (मित्रमिव प्रियम्) मित्र के समान हितसाधक (प्रेष्ठम्, अतिथिम्) अत्यन्त प्रिय, अतिथि (वेद्यम्) वेदी में स्थित (रथं, न) रथ के समान देवतों के वाहन (अग्ने) अग्नि को (वः) तुम्हारे उपकारार्थ (स्तुषे) कीर्त्तन करता कहता अर्थात् उपदेश करता हूं॥

परमात्मा उपदेश करता है कि अग्नि तुम्हारा मित्र के समान हितसाधक है, तुम को उस से अत्यन्त प्रीति करनी चाहिये, वह अतिथि के समान एक स्थान में स्थित नहीं रहता, उस का स्वभाव सदा चलने का है, तुम उसे वेदी में स्थापन करो, वह रथ के समान वायु आदि का वाहन है अर्थात्

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अग्नि की सहायता से वायु चलता और अन्य सब भौतिक देव चलते हैं इसी अग्नि से आन्धी आती तथा वायु का संचार होता है, इत्यादि जानो ॥

उणादिकोष ४ । २ ॥ निरुक्त १ । ४॥ ऋग्वेद ८ । ७३ । १ ॥ अष्टाध्यायी ३ । १ । ३४ । के प्रमाण संस्कृत में पृष्ठ २४ पं० ६ से देखने चाहियें ॥

ईश्वर विषय में–हे मनुष्य ! (मित्रमिव, प्रियम्) मित्र के समान, कल्याणकारक (प्रेष्ठम्) अतिप्रिय (अतिथिम्) निरन्तर व्यापक (वेद्यम्) जानने योग्य वा हृदयरूप वेदी में ध्यान करने योग्य (रथं, न) रथ के समान सब के आधार और वाहक पहुंचाने वाले (अग्निम्) प्रकाशमान परमात्मा की (स्तुषे) स्तुति कर तू ॥ ऋ० ८ । ७३ । १ में "अग्ने" के स्थान में "अग्निम्" यही भेद है अन्य सब पद तुल्य हैं ॥५॥

अथ षष्ठी–सुदीतिपुरुमीढाभ्यां तयोरन्यतरेण वा दृष्टा । छन्दोदेवते उक्ते ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या

१ २ ३ २ ३ १ २ २ २

अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥

पदपाठः--त्वम् १। नः २। अग्ने सं० । महोभिः ३। पाहि क्रि० । विश्वस्याः ५। अरातेः ५। उत अ० । द्विषः ५। मर्त्यस्य ६॥

अन्वितपदार्थः–हे (अग्ने, त्वम्) (महोभिः) पूजाभिस्तुष्टःसन् । अग्नौ होम एव तत्पूजा तदानुकूल्यकरः । प्र० अचेतने कथं तोषसम्भवः । उ० प्रसन्नं नभः, प्रसीदति मनः, तुष्यति गुरुः, इत्यादयो व्यवहाराश्चेतनाऽचेतनयोः साम्येनैव भवन्ति । तस्मान्नैष दोषः । यद्वा पदार्थविद्यायामग्नेरुपकारग्रहणं तेनोपकारकः (विश्वस्याः) सर्वस्मात् । लिङ्गव्यत्ययः । (अरातेः) दुःखदाद्रोगादिशत्रोः (उत) (मर्त्यस्य) अस्मदादेर्मनुष्यस्य (द्विषः) अप्रीतिकरात् (नः) अस्मान् (पाहि) रक्ष ॥

अग्निर्हि सुहुतः सन् सर्वदुष्टतानिवारकोऽस्ति । मनुजस्यापकारका ये वाय्वादिगता दोषास्तद्गतसूक्ष्मसंक्रामककीटादिदोषा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

श्चाग्निना सुहुतेन निवार्यन्ते। ईश्वरपक्षेपि सएवार्थः। ऋग्वेदेऽपि (८।६०।१) अविकलः पाठः ॥६॥

भाषार्थः-(अग्ने, त्वम्) अग्ने! तुम (महोभिः) हवनादि से (विश्वस्याः) सब (अरातेः) दुःखदायक (उत) और (मर्त्त्यस्य, द्विषः) मनुष्य के शत्रु से (नः) हम को (पाहि) बचाओ ॥

अर्थात् जब मनुष्य होमादि से अग्नि का उपयोग लें और अग्नि को अपने अनुकूल करें तब वह अग्नि वायु आदि की शुद्धि द्वारा मनुष्य के शत्रु दुःखदायक जो रोग शोक दुःखादि हैं उन सब से बचाता है। इस लिये मनुष्यों को अग्निद्वारा यज्ञ करना चाहिये जिस से मनुष्य के हानिकारक जो वाय्वादिगत दोष हैं और उस में उत्पन्न हुवे जो सूक्ष्म संक्रामक कीड़े आदि हैं उन का नाश हो और मनुष्य सुखी हों ॥ प्र० अग्नि जड़ है वह प्रसन्न वा अनुकूल कैसे हो सक्ता है? उ०-जब जिस पदार्थ के गुण भले प्रकार सेवन किये जाते हैं तब वह चेतन वा अचेतन कोई हो, अनुकूल हो जाता है। पित्तकोप वा कफप्रसाद के समान जड़ में भी कोप और शान्ति का व्यवहार होता है। इसलिये प्रश्न को अवकाश नहीं ॥

ईश्वरपक्ष में भी यही अर्थ है कि मनुष्यों को परमात्मा की पूजा अर्थात् स्तुति प्रार्थना उपासनादि करनी चाहिये जिस से सब प्रकार के मनुष्य के दुःख और दुःखदायक शत्रु निवृत्त हों ॥ ऋग्वेद ८।६०।१ में भी ऐसी ही ऋचा है ॥६॥

अथ सप्तमी-भरद्वाजेन दृष्टा। छन्दोदेवते उक्ते ॥

२ ३ १ र २ र ३ १ २ ३ १ २ ३
एहसूषुब्रवाणि तेऽग्नइत्थेतरा
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गिरः। एभिर्वर्द्धसि इन्दुभिः ॥७॥

पदपाठः-एहि क्रि०। उ अ०। सु-ब्रवाणि क्रि०। ते३=४। अग्ने सं०। इत्थेतराः २। गिरः २। एभिः ३। वर्धसि क्रि०। इन्दुभिः ३॥

अन्वितपदार्थः—हे (अग्ने) (एहि) अस्मान् प्राप्नुहि (ते) (उ) पादपूरणे, त्वयैव साधनभूतेन। तृतीयार्थे व्यत्ययेन चतुर्थी।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(इत्थेतराः) इत्था इति सत्यनाम निघं० ३। १०। इत्थानिश्चिता अन्यथा भवितुमनर्हा वैदिका इतरा लौकिकाश्चेति ताः (गिरः) वाचः (सु, ब्रवाणि) सुष्ठु उच्चारयाणि अहं यजमानइतिशेषः। त्वं च (एभिः) अस्माभिरनुष्ठितैः (इन्दुभिः) यज्ञैः। इन्दुरितियज्ञनाम निघं० ३। १७। (वर्द्धसे) वृद्धं प्राप्नोषि परस्मैपदमार्षम्॥

अयमर्थः—मनुष्यादयोहि वैदिका लौकिकाश्च सर्वप्रकारिका वाणीरग्निसाहाय्यनैव ब्रुवन्ति, आग्नेयं हि वागिन्द्रियम्। मुखादग्निरजायत (यजुः ३१। १२) शब्दः स्पर्शश्च रूपं च त्रिगुणं ज्योतिरुच्यते। (महाभा० शान्ति० १८४। ३२) इत्यादीन्यनेकशः प्रमाणान्यनुसंधेयानि। सचाग्निर्यज्ञैर्वृद्धोवृद्धश्च भवति अतएव यज्ञानुष्ठानेन वाक्सौष्ठवमपि सम्पद्यते इतिविज्ञातव्यम्। सर्वदा सर्वेन्द्रियैः स्वस्वनियमानुकूलं सर्वस्याग्न्यादेर्ग्रहणस्य प्रवृत्तत्वात् तेनैव च सर्वव्यवहारसिद्धेः। ईश्वरपक्षेपि सएवार्थः। तद्वत्तेदवाचैव सर्वव्यवहारसिद्धेः (ऊ) इति—निपातस्यचेतिदीर्घः॥ ऋग्वेदे तु ६।१६।१६ "वर्धास" इति पाठोऽन्तरम् ७

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्ने (एहि) आओ (ते) तुम्हारे द्वारा (इत्था) सत्य [वैदिक] और (इतराः) अन्य लौकिक (गिरः) वाणियों को (सु,ब्रवाणि) उच्चारण करूं। और तुम (एभिः) इन (इन्दुभिः) यज्ञों से (वर्द्धसि) बढ़ते हो ॥

तात्पर्य यह है कि लौकिक वैदिक सब प्रकार की वाणी अग्नि ही की सहायता से बोली जाती हैं। क्योंकि वाक् इन्द्रिय का अग्नि देवता है वा यह समझिये कि वाक् इन्द्रिय अग्नि का प्रधान कार्य है। इसी से " मुख से अग्नि उत्पन्न हुआ " यह यजुः ३१।१२ में तथा " शब्द स्पर्श और रूप ये तीन अग्नि के गुण हैं " यह महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १८४ श्लोक ३२ में कहा गया है (मूल प्रमाण संस्कृत भाष्य में ऊपर पं० ८में देखो) वह अग्नि यज्ञों से बढ़ता है इसलिये यज्ञानुष्ठान से वागिन्द्रिय का सुधार भी जतलाया गया है। क्योंकि सदा वाणी आदि सब इन्द्रियां अपने २ नियमानुकूल निज २

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अग्न्यादि भौतिक देव का ग्रहण करते रहते हैं और इसी से समस्त व्यवहार की सिद्धि है ॥

ईश्वरविषय में भी यही अर्थ होगा कि-(अग्ने) ज्ञानदातः परमात्मन्! (एहि) हमें प्राप्त होओ (ते) तुम्हारे द्वारा ही, मैं (इत्था) सत्य [वैदिक] (इतराः) और लौकिक (गिरः) वाणियों को (सु, ब्रवाणि) भले प्रकार बोलूं और आप (एभिः) इन (इन्दुभिः) ब्रह्मयज्ञों से (वर्द्धसि) हमें बढ़ाते हैं ॥

अर्थात् ईश्वरदत्त वेदवाणी के ही द्वारा मनुष्यों ने लौकिक वैदिक शब्द बोलने का सामर्थ्य प्राप्त किया है और वेदपाठ वा परमात्मा की स्तुति प्रार्थनोपासना आदि ज्ञानयज्ञों के करने से जो हमारा बोलने का ज्ञान बढ़ता है, उसे परमात्मा ही बढ़ाता है ॥७॥

अथाष्टमी-कण्वगोत्रेण वत्सेन दृष्टा । छन्दोदेवते उक्ते ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्स-
१ २ २ ३ १ २ ३ २
धस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥८॥

पदपाठः-आ अ० । ते३=६ । वत्सः १ । मनः १ । यमत् क्रि० । परमात् ५ चित् अ० । सधस्थात् ५ । अग्ने सं० । त्वाम् २ । कामये क्रि० । गिरा ३॥

अन्वितपदार्थः-(अग्ने, त्वाम्) (गिरा) वाचा सह वर्तमानं (कामये) इच्छामि । अन्यच्च (ते) त्वयैव (वत्सः) वदति सः । वृतॄ वदि वचि वसि हनि कमिकषिभ्यः सः । उणा० ३।६२। (मनः) मनोरूपोविद्युत्पदार्थः (परमाच्चित्) उत्कृष्टादपि (सधस्थात्) सहस्थानात् हृदयदेशात् (आ, यमत्) विस्तृतो भवति ॥

अयंभावः-यतोऽग्निसाहाय्येनैव वागिन्द्रियप्रेरको मनोरूपो विद्युत्पदार्थः सर्वस्मिञ्छरीरे आयमत् प्रसरति तस्मादग्निः सर्वैः कमनीयोभवति। यथोक्तं शिक्षायाम्"आत्मा बुद्ध्यासमेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन्मन्दं जनयति स्वरम्" ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ११ । ७

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

"कामया" इति पोठेऽर्थे चान्तरम्॥ अत्र केचित् वत्सपदं दृष्ट्वा वत्सनैवर्षिणा च दृष्टत्वात् शङ्कन्ते, वत्सनिर्मितेयमृगिति। परमृचि वत्सपदं दृष्ट्वैव तद्दृष्ट्रा स्वं नामापि तदेव रक्षितमिति बोध्यम् न तु तद्रचिताऋगिति, वेदस्याऽपौरुषेयत्वात्सर्वत्र मूलपाठे द्रष्ट्रनामाऽदर्शनाच्च ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे भौतिकाग्ने! (गिरा) वाणी के सहित (त्वाम्) तुम को (कामये) कामना करता हूं। क्योंकि (ते) तुम से ही (वत्सः) बोलने वाला (मनः) मन रूप विद्युत्पदार्थ, (परमाच्चित्) उत्कृष्ट (सधस्थात्) हृदय स्थान से (आ—यमत्) फैलता है ॥

अर्थात् अग्नि की ही सहायता से मनरूप बिजुली हृदय से सम्पूर्ण शरीर में फैलती है और उसी से सब कोई बोल सकता है इसलिये प्रत्येक बोलनेवाले को आग्नेय वाणी इन्द्रिय का उपयोग अच्छे प्रकार करना चाहिये और कामना करनी चाहिये कि वह वाणी रूप अग्नि मुझे प्राप्त हो। अग्नि और वाणी में क्या सम्बन्ध है सो मन्त्र १ की व्याख्या में प्रमाणपूर्वक सिद्ध कर चुके हैं और जैसा कि शिक्षा में कहा है कि—

"आत्मा बुद्धि से मिलकर अर्थों के बोलने की इच्छा से मन को युक्त करता है, मन देहस्थ अग्नि का ताडन करता है, वह अग्नि वायु को प्रेरित करता है, वायु उरःस्थल में विचरता हुआ मन्दस्वर को उत्पन्न करता है"

मूल श्लोक संस्कृत भाष्य पृष्ठ २८ पं० २३ में देखिये। ऋग्वेद (८।११।७) में 'कामय' के स्थान में 'कामया' ऐसा पाठान्तर और तदनुसार अर्थान्तर भी है। इस मन्त्र का द्रष्टा ऋषि वत्स नामक है और इस मन्त्र में भी वत्स पद आया है इसलिये कोई लोग यह शङ्का करते हैं कि वत्स ऋषि ने ही यह मन्त्र बनाया है। परन्तु वेद में जो वत्स पद है वह ऋषि विशेष का नाम नहीं किन्तु मन्त्र में वत्स पद देख कर ही उस के द्रष्टा ऋषि ने अपना नाम भी वत्स रख लिया ऐसा समझना चाहिये। लोक में भी जब किसी के पुत्र का जन्म होता है तो उस के नाम रखने को किसी अपूर्व शब्द को नहीं उपजाया जाता किन्तु प्राचीन शब्दसमूह में से छांटकर जो अपने को अच्छा लगता है सो नाम रख देते हैं। इसी प्रकार उक्त वत्स पद को अनादि अपौरुषेय वेद में से लेकर ऋषि विशेष ने वा उस के इष्ट मित्रों ने उस का वत्स नाम रख दिया है। यह

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नहीं है कि वत्स ऋषि ने बनाया इस से उस मन्त्र में वत्स का नाम है। क्योंकि अन्य मन्त्रों में भी उन २ मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों के नाम नहीं हैं तथा अपौरुषेय वेद वा उस का कोई मन्त्र किसी ऋषि का बनाया नहीं है, और वेद में वत्स शब्द का यौगिकार्थ "बोलने वाला" है जैसा कि उणादि सूत्र ३। ६२ हम ऊपर पृष्ठ २८ पं० १८ संस्कृत में लिख आये हैं ॥ ८ ॥

अथ नवमी- भरद्वाजेन दृष्टा। छन्दोदेवते उक्ते ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
३ १र २र ३ १ २
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥

पदपाठः-त्वाम् २। अग्ने सं०। पुष्करात् ५। अधि अ०। अथर्वा १। निरऽमन्थत क्रि०। मूर्ध्नः ५। विश्वस्य ६। वाघतः ५ ॥

अन्वितपदार्थः—हे (अग्ने,त्वाम्) (अथर्वा) परमात्मा। थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधो निपातः इति निरुक्ते। चरणेन भक्षणेन रहितः "अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति"। ऋ० (१। १६४।२०) इत्याद्युक्तत्वात्। (मूर्ध्नः) मूर्धवद्धारकात् (विश्वस्य) सर्वस्य (वाघतः) वाहकात् (पुष्करात्) आकाशात् (अधि) अधिकरणे आकाशे इत्यर्थः। (निरमन्थत) उत्पादितवान्। पुष्करमित्यन्तरिक्षनाम निघं० १।३। ईश्वरपक्षे—अथर्वा = ज्ञानी योगयुक्तः। पुष्करात् = हृदयकमलात्। निरमन्थत = प्रकाशितवान् इति योजनीयम् ॥ ऋग्वेद ६। १६। १३ऽपि स एव पाठः ॥

परमात्मनाऽऽकाशेऽग्निरुत्पादितोऽस्ति येन यज्ञोनुष्ठीयते विश्वस्य धारणं च ततः सम्पद्यतेऽथवा—ईश्वरपक्षे—योगिना परमात्मा हृदि प्रकाशितो ध्यातः क्रियते। हृदयं हि विश्वाधारपरमात्मध्यानस्थानत्वादिना सर्वधारकम् ॥९॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! (त्वाम्) तुझ को (अथर्वा) परमात्मा ने (मूर्ध्नः) शिर के समान धारक और (विश्वस्य) सब के (वाघतः) अग्निजन्य प्रकाश के ले चलने वाले (पुष्करात्, अधि) आकाश में (निरमन्थत) उत्पन्न किया है ॥

तात्पर्य्य यह है कि परमात्मा ने अग्नि को आकाश में उत्पन्न किया है और इस का प्रयोजन वेदमन्त्र बतलाता है कि वह आकाश सब का धारण करता है और उत्पन्न हुवे अग्नि के प्रकाश का वही वाहन है अर्थात् आकाश ही प्रकाश को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाता है (सूर्य्यादि का प्रकाश आकाश द्वारा ही हम तक आता है) ॥

ईश्वर पक्ष में—(अग्ने) हे ज्ञानप्रद ! परमात्मन् ! (त्वाम्) तुझ को (अथर्वा) ज्ञानी पुरुष (मूर्ध्नः) मस्तिष्क [दमाग़] से और (विश्वस्य) सब के (वाघतः) वाहक (पुष्करात्) हृदय कमल (अधि) में (निरमन्थत) आविर्भूत प्रत्यक्ष करता है ॥

अर्थात् परमात्मा ज्ञानियों के हृदय में प्रत्यक्ष होता है। परन्तु सामान्यतया नहीं किन्तु मस्तिष्क से अर्थात् विचार के बल से। इस मन्त्र में हृदय को सब का वाहन बताया गया है। यथार्थ में हृदय के ज्ञान विना प्राणिमात्र जड़ है और हिल चल सकने को असमर्थ है इसलिये हृदय ही सब का वाहन है॥

निघं० १ । ३ ॥ निरुक्त ॥ ऋ० १ । १६४ । २० ॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य पृष्ठ ३० में देखिये ॥ ऋग्वेद ६ । १६ । १३ में भी यही पाठ है ॥ ९ ॥

अथ दशमी—वामदेवेन दृष्टा । छन्दोदेवते पूर्वोक्ते ॥

२ ३ १ २ ३ १२३ १ २ ३१२
अग्ने विवस्वदाभरास्मभ्यमूतये
३ २ ३१र २र ३ २
महे । देवोह्यसि नो दृशे ॥१०॥

पदपाठः—अग्ने सं० । विवस्वत् २ । आभर क्रि० । अस्मभ्यम् ४। ऊतये४। महे ४। देवः १। हि० अ० । असि क्रि० । नः ६। दृशे ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) (महे) महते (ऊतये) रक्षणाय अव रक्षणे इति धातोः—ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्चेति- (पा० ३।३।९७) निपातनात्। (विवस्वत्) सुखविशेषेषु वास-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्य हेतुभूतं यज्ञादिकम् (अस्मभ्यम्) (आभर) सम्पादय
दृग्रहोर्भश्छन्दसि। (हि) यस्मात् कारणात् (दृशे) दर्शनाय (नः)
अस्माकम् (देवः) प्रकाशकः (असि) ॥

अग्निना महती रक्षा सुखं च जायते, कुतः-अग्नेः प्रकाशकत्वात्सर्वप्राणिदृशां सहायकत्वात् । नह्यग्नितत्त्वमन्तरेण नेत्रोत्पत्तिरपि किम्पुनर्दर्शनसामर्थ्यं सम्भवति इति भावः। ईश्वरपक्षेऽपि नास्ति विशेषः ॥ १० ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥१॥

भाषार्थः-(अग्ने) हे अग्ने ! (महे) बड़ी पूरी (ऊतये) रक्षा के लिये (विवस्वत्) सुख में रखने वाले यज्ञादि को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ-भर) सिद्ध कराइये (हि) क्योंकि (नः) हमारे (दृशे) देखने के लिये (देवः) प्रकाशक (असि) हो ॥

तात्पर्य्य यह है कि अग्नि से बड़ी रक्षा और सुख सम्पादन करना चाहिये। तथा अग्नि ही की सहायता से नेत्रेन्द्रिय की उत्पत्ति से देखने का काम सिद्ध होता है सो करना चाहिये। और यज्ञ वा शिल्प कर्म से सुख में निवास करना चाहिये ॥

ईश्वर पक्ष में-(अग्ने) हे जगदीश ! (महे) पूर्ण (ऊतये) रक्षा के लिये (विवस्वत्) सुख में बसाने वाले यज्ञादि कर्म को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ-भर) पूर्ण कीजिये [क्योंकि आप ही] (नः) हमारे (दृशे) देखने के लिये (देवः) प्रकाशक (असि) हैं ॥

अर्थात्-परमात्मन् ! यज्ञादि कार्य्यों में हमारी सहायता कीजिये जिस से हम सुख में निवास करें। आप ही बड़े भारी रक्षक और मार्ग दिखाने वाले हैं। आप ने ही ज्ञान और आंख आदि इन्द्रियां दी हैं, वे इन्द्रियां भी आप ही की सहायता से अपने काम करने में समर्थ होती हैं ॥

अष्टाध्यायी ३ । ३ ।९७ सूत्र संस्कृत ३१ पं० २४ में देखिये ॥ १० ॥

यह प्रथम दशति पूर्ण हुई ॥ १ ॥

—*—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र प्रथमाऽऽयुङ्क्ष्वाहिना दृष्टा । छन्दोदेवते पूर्वोक्ते ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २

नमस्ते अग्नओजसे गृणन्ति

३ १ २ १ २ ३ १ ३

देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१॥ (११)

पदपाठः—नमः अ० । ते ४ । अग्ने सं० । ओजसे ४ । गृणन्ति क्रि० । देव सं० । कृष्टयः १ । अमैः ३ । अमित्रम् २ । अर्दय क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! हे परमात्मन् ! (नमस्ते) अस्तु इतिशेषः (कृष्टयः) भक्तामनुष्याः । कृष्टयइति मनुष्यनाम निघं० २ । ३ । (ओजसे) बलाय (गृणन्ति) स्तुवन्ति त्वामितिशेषः । (देव) हे सर्वप्रकाशक ! (अमैः) रोगैर्भयैर्वा (अमित्रम्) शत्रुं पापिनम् (अर्दय) पीडय नाशय ॥ भौतिकाग्निपक्षे-नमः=अन्नंहविष्यं, नम इत्यन्ननाम निघं० २।७ अमैः=अग्निसाहाय्यसम्पादिताऽऽग्नेयाऽस्त्रादिजन्यभयैः । अन्यत्स्पष्टम् ॥ ऋग्वेदे (८ । ६४ । ११) ऽपि अविकलः पाठः ॥ उत्तरार्चिके च (अ० १७ सू० १२) ॥१॥ (११)

अब दूसरी दशति का प्रारम्भ किया जाता है ॥

भावार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! परमात्मा ! (नमः,ते) आप को नमस्कार है (कृष्टयः) भक्त मनुष्य (ओजसे) बल के लिये (गृणन्ति) स्तुति करते हैं (देव) हे सर्वप्रकाशक ! (अमैः) रोगों वा भयों से (अमित्रम्) [पापी] शत्रु को (अर्दय) पीडित कीजिये ॥

तात्पर्य्य यह है कि परमात्मा की पुनः स्तुति करनी चाहिये, इस से आत्मिक बल बढ़ता है और ज्ञान का प्रकाश होता है । और जो लोग परमात्मा से विमुख होकर अधर्माचरण करते हैं वे उस का फल रोगादि दुःख भोगते हैं ।

अग्नि के पक्ष में:—(अग्ने) हे अग्ने (ते) तेरे लिये (नमः) अन्नादि की आहुति हो (कृष्टयः) मनुष्य लोग (ओजसे) बल के लिये (गृणन्ति) गुणकीर्त्त-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

न करते हैं (देव) दिव्यप्रभाव! (अमैः) रोगों वा भयों से (अमित्रम्) [पापी] शत्रु को (अर्दय) नष्ट करो ॥

अर्थात् अग्नि में अन्न यवादि ओषधियों का होम करना चाहिये जिस से बल की वृद्धि हो। साथ में वेदमन्त्रों द्वारा अग्नि का वर्णन भी करना चाहिये। जिस से अग्नि के गुणों को जान कर रोगादि से बचना ज्ञात हो जावे, जोकि अग्नि के गुण न जानने और वेदोक्त विधि से उपयोग में न लाने वाले और इसी कारण वेदविरुद्ध अधर्माचरण करने वाले पापी जन अनेक प्रकार के रोग तथा भय से पीडित होते हैं इस कारण उस को जान कर यज्ञादि से रोगनिवृत्ति तथा युद्धयज्ञ में आग्नेयाऽस्त्रादि के प्रयोग से शत्रुओं को दूर करना चाहिये ॥

निघं० २।३॥ २।७॥ प्रमाण संस्कृत पृष्ठ ३३ पं० ७।११ में देखो॥ ऐसी ही ऋचा ऋग्वेद (८।६४।११) तथा उत्तरार्चिक अ० १७ सूक्त १२ में है ॥

वेदेषु कुत्रचिदेकमेव मन्त्रम् ऋग्वेदस्थमृग्वेदेऽन्येषु वा वेदेषु पुनः पठ्यमानं दृष्ट्वा, अथवा सामवेदीयमथर्ववेदेऽन्यत्र वा एकस्मिन्नेव वेदपुस्तके वारान्तरं वा पठ्यमानं मन्त्रं सूक्तं वा दृष्ट्वा केचिच्छङ्कन्ते—पूर्वस्मात् पूर्वस्मादुत्तरस्मिन्नुत्तरस्मिन्वेदे स्वस्यैव वा पूर्वभागादुत्तरभागेऽुद्धृत्यैव मन्त्रः सूक्तादिकं वा रक्षितं कैश्चिदिति। नैतत्समीचीनम्—यस्याऽर्थस्य सति प्रयोजने पुनर्जिघृक्षायां पुनरुपादानं यथा क्रियते, तथैव वाक्ये मन्त्रे सूक्तादौ चापि बोध्यम्। यथा च कस्यचिदग्न्यादिपदस्य पुनरुपादानेन पूर्वस्मादुद्धृतमिति न शङ्क्यते, तथैव पुनरुपात्ते वाक्ये मन्त्रे सूक्तादौ चापि न शङ्कनीयम् ॥

भा०—कोई लोग ऐसी शङ्का करते हैं कि ऋग्वेद के मन्त्र वा सूक्त यजुः साम और अथर्व में आते कहीं २ देखे जाते हैं और इसी प्रकार अन्य वेदों के वाक्य मन्त्र वा सूक्तादि दूसरे वेदों में देखे जाते हैं, तथा एक ही वेद में एक वाक्य, मन्त्र वा सूक्तादि अनेक वार आते हैं, सो ऐसा जान पड़ता है कि पूर्व २ से उत्तरोत्तर में उद्धृत करलिया गया है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उत्तर–यदि ऐसा हो तो आप को यह भी शङ्का होनी चाहिये कि काक शब्द में प्रथम ककार आकर फिर कर्पूर शब्द में भी ककार देखा जाता है तो काक शब्द का ककार कर्पूर शब्द में उद्धृत किया गया है !!! इसी प्रकार एक अक्षर एक पुस्तक में सहस्रों वा लक्षों वार आता है और एक ही अग्नि वायु आदि शब्द सैंकड़ों वार ग्रन्थों में आते और हम आप सब एक ही शब्द को दिन भर में अनेक वाक्यों में सम्मिलित करके बोलते हैं तो क्या पूर्वोच्चारित को ही उठा२ कर रक्खा करते हैं? यदि नहीं, तो फिर अक्षर, पद वा वाक्य के समान मन्त्र वा सूक्त के द्वितीय वार आने से भी शङ्का कहां रहती है? यथार्थ यह है कि जिस२ अक्षर, पद, वाक्य, मन्त्र वा सूक्त का जितनी वार प्रयोजन आता है उतनी वार उस२ अक्षर, पद, मन्त्र, वाक्य वा सूक्तादि को पुनः पुनः एक ही वेद वा अनेक वेदों में प्रयुक्त किया गया है ॥ १ ॥ (११)

अथ द्वितीया–वामदेवेन दृष्टा । उक्ते छन्दोदेवते ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

दूतं वो विश्ववेदस ꣳ हव्यवाहमम-

१ २ ३ २

र्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ २ ॥ (१२)

पदपाठः–दूतम् २ । वः २ । विश्ववेदसम् २ । हव्यवाहम् २ । अमर्त्यम् २ । यजिष्ठम् २ । ऋञ्जसे क्रि० । गिरा ३ ॥

अन्वितपदार्थः–"अग्ने!" इति पूर्वतोऽनुवर्त्तते । (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञम् (अमर्त्यम्) अविनाशिनम् (हव्यवाहम्) कर्मफलप्रापकम् । अतएव (दूतम्) (यजिष्ठम्) अतिशयेन पूजनीयम् (वः) त्वाम् । वचनव्यत्ययः । (गिरा) वाचा (ऋञ्जसे) स्तौमि परिचरामि । पुरुषव्यत्ययः । ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्म्मा । निरु० ६ । २१ ॥ भौतिकाग्निपक्षे–विश्ववेदसम्=सर्वधनवन्तम्, सुवर्णादिसर्वधनानि आग्नेयानि हि । अमर्त्यम्=अमनुष्यं देवमित्यावदन्त्यभिन्नार्थम् ॥ ऋग्वेदे (४ । ८ । १)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऽप्येवमेव पाठः ॥ २ ॥ (१२)

भाषार्थः-हे "अग्ने" यह पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति करी जाती है। हे ज्ञान स्वरूप! परमात्मा! (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (अमर्त्यम्) अविनाशी (हव्यवाहम्) कर्मफल के पहुंचाने वाले। इसीलिये (दूतम्) दूत के समान (वः) आप को (गिरा) वाणी से (ऋञ्जसे) स्तुत करता हूं, प्रसन्न करता हूं॥

भोगने योग्य कर्मफल हव्य है, उस को परमात्मा यथायोग्य दूत के समान विभागपूर्वक पहुंचाता है इसलिये उस को हव्यवाह कहा है॥

भौतिक पक्ष में-(विश्ववेदसम्) सब प्रकार के धनों वाले (अमर्त्यम्) अमनुष्य अर्थात् देव (यजिष्ठम्) अतिशय से यज्ञ के योग्य (हव्यवाहम्) होम किये पदार्थों के पहुंचाने वाले (दूतम्) दूत [अग्नि] को (ऋञ्जसे) अनुकूल=प्रसन्न करता हूं वा करूं॥

अग्नि को सब धनों वाला इस कारण कहा है कि सुवर्णादि समस्त धन आग्नेय हैं। इसी से सुवर्ण रत्न मणि माणिक्यादि सब रत्न चमकीले और देखने में रमणीय हैं। अमर्त्य इसलिये कहा है कि मनुष्यादि प्राणियों के समान अग्नि नहीं है किन्तु दिव्य प्रभाव और शक्ति रखने से देव है। (वः) त्वाम् के स्थान में और (ऋञ्जसे) ऋञ्जामि वा ऋञ्जानि के स्थान में व्यत्यय से हुवा है॥ ऋग्वेद (५।८।१) में भी ऐसा ही पाठ है॥२॥

अथ तृतीया-प्रयोगेण दृष्टा। छन्दोदेवते पूर्ववत्॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

उप त्वा जामयो गिरो देदेशतीर्हविष्कृ-

२ ३ १ २ २ २

तः। वायोरनीके अस्थिरन्॥३॥ (१३)

पदपाठः-उप अ०। त्वा २। जामयः १। गिरः १। देदेशतीः २=१। हविष्कृतः ६। वायोः ६। अनीके ७। अस्थिरन् क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-" अग्ने " इत्यनुवर्तते। (हविष्कृतः) भक्तिं कुर्वाणस्य पुरुषस्य (जामयः) स्त्रियइव (देदेशतीः) अत्यन्तं ददतः (गिरः) वाचः (वायोः, अनीके) वायुदले वायुमण्डले

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(त्वा) त्वाम् (उप, अस्थिरन्) उपतिष्ठन्ते। छन्दसिलुङ्लङ्-लिटः (३। ४। ६) इति सामान्ये लङ्। प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च-(१। ३। २३) त्यात्मनेपदं, शिष्टं व्यत्ययेन। भौतिकाग्निपक्षे-हविष्कृतः=होमं कुर्वाणस्य यजमानस्य। अन्यत्पूर्ववत् ॥

अयमर्थः—भक्तेन स्तुतिकर्त्रोच्चारिताः स्त्रियइव मन्त्रवाचो वायुमण्डले परमात्मानमुपतिष्ठन्तेऽथवा यजमानेन यज्ञे होमं कुर्वाणेनोच्चारिताःस्वाहादयो वा "इदन्न मम" इत्यादयो वा वाचः अग्निकुण्डपार्श्वे वायुमण्डलमलङ्कुर्वन्ति। अनेनाऽयमपि विद्यांशोविज्ञाप्यते यत्—अग्नितत्त्वेन वागुत्पत्तिर्वायुमण्डलाधारेण च वाक्स्थितिर्भवतीति। उच्चारिता वाचो वाय्वाधारेण देशान्तरं गच्छन्त्यो देशान्तरस्थैः श्रोतुं शक्यन्ते ॥ ऋग्वेदेऽपि (८।९१।१३) तथैव पाठः ॥ ३ ॥ (१३)

भाषार्थः—प्रथम ऋचा से "अग्ने" यह अनुवृत्ति आती है। हे उपासनीय देव! (हविष्कृतः) भक्ति करने वाले की (जारयः) स्त्रियों के समान (देदेशतीः) अत्यन्त त्याग वाली (गिरः) वाणी, (वायोः, अनीके) वायु के, मण्डल में (त्वा) आप का (उप, अस्थिरन्) उपस्थान करती हैं ॥

अर्थात् हे जगत्पति! आप के भक्तों की वाणी जो यज्ञादि कर्मों में अत्यन्त दक्षिणादि द्वारा दान वा त्याग वा विरक्त भाव को उच्चारती हैं उन वाणियों ने इस वायु मण्डल को भर रक्खा है, और मानो वे वाणी वायुमण्डल में आप का उपस्थान कर रही हैं यथार्थ में जो परमात्मा की भक्ति की और झुकते हैं उन्हें क्रमशः सांसारिक धनादि पदार्थों में वैराग्य भाव उत्पन्न होता जाता है, और वे उन धनादि पदार्थों का सत्पात्रों में दान करने के लिये प्रायः त्याग किया करते हैं और करना चाहिये। तथा तदनुकूल वाणी भी उन की वैसा ही दानादि शब्दों का प्रयोग करती हैं और जितना धनादि का त्याग करती जाती हैं उतना ही परमात्मा का उपस्थान (सामीप्य) करती जाती हैं ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भौतिक पक्ष में-हे अग्ने! (इविष्कृतः) यज्ञ करने वाले की (जामयः) स्त्रियों के समान (देदेशतीः) अत्यन्त त्यागशील (गिरः) वाणियें (वायोः) अनीके) वायुमण्डल में (त्वा) तेरे (उप) समीप (अस्थिरन्) ठहरती हैं ॥

अर्थात् यज्ञकर्त्ताओं को चाहिये कि वाणी से दान वा त्याग का प्रयोग करें जैसा कि प्रति मन्त्र के अन्त में हवन करने वाले "स्वाहा" बोलते हैं, वा "इदन्नमम" इत्यादि बोलते हैं, उन स्वाहा आदि का अर्थ दान त्याग वा छोड़ना आदि है। वे वाणियें वायुमण्डल में अग्नि के समीप गूंजती हुई वायुमण्डल को अलंकृत करें। इस मन्त्र से यह भी विज्ञान का अंश जतलाया गया है कि वाणी आग्नेय है और वह वायु के आधार एक मनुष्यादि से उच्चारण की हुई दूसरे मनुष्यादि के श्रोत्र द्वारा उसे प्राप्त होती है ॥

अष्टाध्यायी ३।४।६॥१।३।२३ संस्कृत भाष्य पृष्ठ ३७ पं० १ से देखिये ॥ ऐसी ही ऋचा ऋग्वेद (८।९१।१३) में आई है ॥३॥ (१३)

अथ चतुर्थी-मधुच्छन्दसा दृष्टा। छन्दोदेवते उक्ते॥

१२ ३१ २३ २ ३२ ३२

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।

२ ३ १२ ३ १२

नमो भरन्तएमसि ॥ ४ ॥ (१४)

पदपाठः-उप अ० । त्वा २। अग्ने सं० । दिवे, दिवे अ० । दोषावस्तः अ० । धिया ३ । वयम् १। नमः अ० । भरन्तः १। एमसि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! दयानिधे! (वयम्) उपासकाः (धिया) मनसा (नमः, भरन्तः) नमस्कुर्वाणाः (दिवे दिवे) प्रतिदिनम् (दोषावस्तः) सायं प्रातश्च (त्वा) त्वाम् (उप, एमसि) उपागच्छेम उपासीमहि। विधिरयं प्रतिदिनं प्रातः सायमीश्वरोपासनस्य सन्ध्योपासनाख्यब्रह्मयज्ञस्य, भौतिकाग्निपक्षेऽग्निहोत्रस्य च। तत्र पक्षे-नमः = अत्र स्थालीपाकादिकम्। नम इत्यन्ननाम निर्घं० २। ७ भरन्तः स्तुवादिषु धारयन्तः। वयम् = यज्ञकर्त्तारः। अन्यत्सामान्यम्।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उप इति आद्युदात्तस्तथा च–"निपाताआद्युदात्ता" इतिशान्तनसूत्रम् (५–११) । त्वामौ द्वितीयायाः (पा० ८ । १ । २३) इतिद्वितीयैकवचनस्थस्य युष्मच्छब्दस्याऽनुदात्तंसर्वमपादादौ८। १। १८ इत्यनुवर्त्तनादनुदात्तस्त्वा आदेशः । दोषा इति रात्रिनाम निघं० १ । ७ । वस्तोरित्यहर्नाम निघं० १ । ९ । भरन्त इत्यत्र–अनुदात्तौसुप्पितौ (३। १। ४ पा०) इति पित्त्वात्, तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमन्ङितः (पा० ६। १। १८६) इतिशतुर्लसार्वधातुकत्वाच्चाऽनुदात्तत्वम् । तथासति–धातोः (६।१।१६२) इतिभकारोत्तरवर्त्तिनोऽकारस्य धातुस्वरेणान्तोदात्तत्वादुदात्तस्वरः शिष्यते । सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वं च वक्तव्यम् (महाभाष्ये ६ । १। १५८) इतिनियमात् । एमसि इत्यत्र–इदन्तोमसि (७।१।४६) इतीकारान्तः ॥ ऋग्वेदेऽपि (१।१।७) इत्थमेव पाठः ॥ ४ ॥ (१४)

भाषार्थः–(अग्ने) मार्गदर्शक! परमात्मन्! (वयम्) हम लोग (धिया) मन से (नमः, भरन्तः) नमस्कार, लिये हुवे (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं और प्रातः (त्वा) आप की (उप, एमसि) उपासना करें ॥

इस मन्त्र से प्रातः सायं नित्य प्रति मनुष्यमात्र को परमात्मा की उपासना मन लगाकर करने की शिक्षा दी गई है । ब्रह्मयज्ञ सन्ध्योपासन के अनुष्ठान का समय बताया गया है । दोषा रात्रि और वस्तः दिन को कहते हैं सो जिन गृहाश्रमी आदि मनुष्यों से अन्य कार्य्यों के वश समस्त दिन रात्रि में उपासना नहीं हो सक्ती, क्योंकि वेद ने उन २ आश्रमों के अन्य कर्त्तव्य भी बतलाये हैं जिन का करना भी आवश्यक है और समय चाहता है । इसलिये रात्रि दिन के अर्थ में संकोच विवक्षित समझ कर प्रातः सायं समझना ठीक है ॥

भौतिक पक्ष में– (अग्ने) प्रत्यक्ष अग्नि ! (वयम्) हम लोग (दिवेदिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं प्रातः (धिया) मन लगाकर (नमः) चरु वा आहुति के अन्न को (भरन्तः) [स्तुवादि में] लिये हुए (त्वा) तेरे (उप) समीप (एमसि)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आवें ॥

अर्थात् मनुष्य को योग्य है कि प्रातः सायं नित्य विधिपूर्वक मन लगा कर श्रद्धा से होम करने को होमसामग्री लिये हुवे अग्निकुण्ड के समीप जावे॥

शान्तनसूत्र ५ । ११ ॥ अष्टाध्यायी ३ । १ । ४ ॥ ६ । १ । १८६ ॥ ६ । १ । १६२ ॥ ७ । १ । ४६ ॥ ८ । १ । २३ ॥ निघं० २ । ७ ॥ १ । ७ ॥ १ । ९ ॥ महाभाष्य ६ । १ । १५८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य पृष्ठ ३९ से देखो ॥ ऋग्वेद (१ । १ । ७) में भी ऐहा ही पाठ है ॥ ४ ॥ (१४)

अथ पञ्चमी-शुनःशेपेन दृष्टा । छन्दोदेवते पूर्वोक्ते ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २

जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय ।

१ १ ३ १ २ ३ २

स्तोमꣳरुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥ (१५)

पदपाठः-जराबोध सं० । तत् २ । विविड्ढि क्रि० । विशे विशे ४ । यज्ञियाय ४ । स्तोमम् २ । रुद्राय ४ । दृशीकम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(जराबोध) हे स्तुत्या बोध्यमान ! (विशे विशे) सर्वप्रजाहितार्थम् (तत्) पूर्वमन्त्रोक्तमस्मन्मनः (विविड्ढि) व्याप्तोभवसि तत्र ध्यानपथमाप्नोषि इतिभावः। वयमिति पूर्वस्याऋचोऽनुवर्त्तते । (यज्ञियाय) यज्ञे ज्ञानयज्ञे हिताय (रुद्राय) पापिनां रोदयित्रे तुभ्यं (दृशीकम्) दर्शनीयं समीचीनं (स्तोमम्) स्तोत्रं "कुर्म" इति क्रियापदमध्याहर्त्तव्यम् ॥

अयंभावः-हे दयानिधे ! त्वं स्तुत्याऽस्माभिः स्तूयसेऽतः कृपयाऽस्माकं सर्वासां प्रजानां मनसि प्रकाशं कुरु । येन तव परमोत्तमां स्तुतिं विदधतो वयं धमार्थकाममोक्षाख्यं चतुर्वर्गं साध्नुयाम ॥

भौतिकपक्षे-जराबोध = स्तुत्यासहाऽस्माभिः प्रदीपित ! अग्ने ! तत् = अग्निकुण्डम् । विविड्ढि = आहितो भव । यज्ञि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

याय = यज्ञे साधवे। (रुद्राय)अनाहिताग्नीनां रोदयित्रे तीव्राय प्रज्वलितायेतियावत् । अन्यत्समानम् ॥

अयं भावोऽत्र पक्षे निस्सार्यः—अस्माभिः प्रत्यहं प्रतिसन्ध्यम् च यज्ञकुण्डेऽग्निराधातव्यः । ततश्च "उद्बुध्यस्वाग्नेप्रतिजागृहि" (यजुः १५।५४) इत्यादिमन्त्रोक्तस्तुतिपूर्वकं प्रदीपयितव्यः, तथाकृत्वाऽग्निकुण्डे समित्सु व्यापयितव्यश्च ॥

अत्र प्रमाणानि—इमामृचं यास्क एवं व्याख्यातवान् "जरा स्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणस्तां बोध तयाबोधयितरिति वा। तद्विविड्ढि तत्कुरु । मनुष्यस्य मनुष्यस्य। यजनाय । स्तोमं रुद्राय दर्शनीयम् । निरु० १०।८ ज्हष् धातुरत्र स्तुत्यर्थः तस्माच्च—षिद्भिदादिभ्योऽङ् (पा० ३।३।१०४) इत्यङ्प्रत्ययः ततष्टाप् । जरया बोध्यतेऽसौ जराबोधः, अकर्त्तरिचकारके संज्ञायाम् (पा० ३।३।१९) इति कर्मणि घञ् । आमन्त्रितस्य च (६।१।१९८) इत्याद्युदात्तत्वम् । विविड्ढि—विष्लृ व्याप्तौ, सेर्ह्यपिच्च (३।४।८७) इति सेर्हिरादेशः, अभ्यासस्य गुणाभावः । विशेविशे—सर्वस्यहे (८।१।१) इत्यनुवर्त्त्य, नित्यवीप्सयोः (८।१।४) इति हित्त्वम्, तस्यपरमाम्रेडितम् (८।१।२) इति परस्याऽऽम्रेडितत्वम्, अनुदात्तं च (८।१।३) इत्यनुदात्तत्वञ्च । यज्ञियाय—यज्ञर्त्विग्भ्यांघखञौ (५।१।७१) इति घः । दृशीकम्—दृश प्रेक्षणे, अनिदृशिभ्याञ्चेति कीकन्, तस्य नित्त्वात्—ञ्नित्यादिर्नित्यम् (पा० ६।१।१९७) इति चाद्युदात्तत्वम् ॥ ऋग्वेदे(१।२७।१०) ऽपि इत्थमेव पाठः ॥५॥ (१५)

भाषार्थः—(जराबोध) हे स्तुति से बोध्यमान! (विशे विशे) सर्व प्रजा के हितार्थ (तत्) उस [पूर्व मन्त्रोक्त हमारे मन] को (विविड्ढि) प्राप्त हूजिये

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अर्थात् ध्यानपथ को प्राप्त हूजिये। "वयम्" यह पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति होती है। हम लोग (यज्ञियाय) तुम योगयज्ञ के हितकर (रुद्राय) न्यायकारी के लिये (दृशीकम्) मनोहर (स्तोमम्) स्तोत्र [करते हैं]॥

अर्थात् हे परमात्मन्! हम आप को स्तुतिपूर्वक सम्बोधन करते हुए प्रार्थना करते हैं कि कृपया हमें हमारे हृदय में प्राप्त हूजिये। अर्थात् आप का प्राप्त होना कठिन है जब तक कि हमारी भक्ति से प्रसन्न वरद होकर आप स्वयं हमें प्राप्त न हों किसी प्रकार तर्कादि के बल से आप का साक्षात्कार नहीं हो सक्ता। इसलिये दया करके हमें प्राप्त हूजिये। और हमारे इस ध्यान यज्ञ के आप हितैषी यज्ञस्वामी हैं, परन्तु आप पापियों को दण्ड देकर रुलाने वाले रुद्र हैं, इस कारण आप न्यायकारी के लिये हम लोग दर्शनीय उत्तम स्तुति करते हैं जिस से आप के कृपाकटाक्ष से समस्त पापों से बचे रहें, आप के दण्डपात्र न बनें॥

भौतिक पक्ष में-(जराबोध) गुण कीर्त्तनपूर्वक प्रदीप्त किये हुवे! अग्ने! (तत्) उस [अग्निकुण्ड] में (विविड्ढि) आहित हो (यज्ञियाय) यज्ञ के सिद्ध करने वाले (रुद्राय) तीव्र प्रज्वलित के लिये (दृशीकम्) मनोहर (स्तोमम्) वेदपाठ से स्तुति "करते हैं" यह क्रियापद जोड़ना चाहिये॥

इस पक्ष में भाव यह है कि हम को प्रत्येक दिन की सायं प्रातः की वेला में पूर्व मन्त्र के अनुसार अग्नि के समीप आकर-इस मन्त्र के अनुसार कुण्ड में अग्न्याधान करना चाहिये जिस से अग्नि उस कुण्ड में आहित हो। फिर स्तुतिपूर्वक अर्थात् अग्नि के गुणों का कीर्त्तन करने वाले "उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते०" इत्यादि (यजुः १५।५४) मन्त्र से प्रदीप्त वा उद्बुद्ध करके समिधाओं में अग्नि प्रविष्ट करना चाहिये। यह अग्नि, यज्ञ का साधने वाला और रुद्र अर्थात् अनाहिताग्नि लोगों को जोकि होम नहीं करते हैं पीड़क प्रतीत होता तथा दुष्ट शत्रुओं का आग्नेयास्त्रादि में प्रयुक्त होकर रुलाने वाला है। हम को योग्य है कि कुण्ड के समीप बैठ कर पुष्कल मनोहर अग्नि देवता वाले मन्त्रों का पाठ करें॥

निरु० १०।८॥ अष्टाध्यायी ३।३।१०४॥ ३।३।१९॥ ६।१।१९८॥ ३।४।८७॥ ८।१।१॥ ८।१।४॥ ८।१।२॥ ८।१।३॥ ५।१।७१॥ ६।१।१९७॥ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ४१ से देखियेऋग्वेद १। २७।१० में भी ऐसा ही पाठ है॥५॥ (१५)

अथ षष्ठी-मेधातिथिना दृष्टा। छन्दोदेवते उक्ते॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२३ १ २ २ ३ १ २ ३ २३ १२
प्रति त्यञ्चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।
३ १ २ ३ १ २
मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ६ ॥ (१६)

पदपाठः—प्रति अ० । त्यम् २ । चारुम् २ । अध्वरम् २ । गोपीथाय ४ । प्र—हूयसे क्रि० । मरुद्भिः ३ । अग्ने सं० । आगहि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) हे विज्ञानमय ! त्वम् (मरुद्भिः) ज्ञानयज्ञस्य ऋत्विग्भिरुपासकैः (गोपीथाय) सोमपानायेवाऽऽनन्दलाभाय (त्यम्) तम् (चारुम्) रमणीयम् (अध्वरम्) कौटिल्यवर्जितं ज्ञानयज्ञस्थलं हृदयाऽवकाशमिति यावत् (प्रति) लक्ष्य (प्र—हूयसे) प्रकृष्टया भक्त्या ध्यायसे, स त्वम् (आगहि) प्राप्नुहि कृपया तानुपासकाननुगृहाण ॥ भौतिकाग्निपक्षे च—हे अग्ने यज्ञसाधक ! त्वं तमऽस्माभिरनुष्ठीयमानं चारुं सुखदमध्वरं यज्ञं प्रति लक्ष्य, गोपीथाय सोमाद्योषधिरसस्य पानाय होमाय, प्रहूयसे आधीयसे, स त्वं मरुद्भिर्वायुभिः सह आगह्यागच्छ ॥

अयंभावः—यज्ञसाधकोऽग्निः सुन्दरे सुखदे यज्ञस्थले सुनिर्मिते यज्ञकुण्डे आधातव्यः । कस्मै प्रयोजनाय—सोमाद्योषधिहोमाय । सचाग्निर्वायुभिः सहागच्छति अर्थादग्नेः सखायोवायवोऽपि तेनाग्निना सहाऽऽगच्छन्ति अतएव यत्र यत्राग्निराधीयते स्वयं वा प्रज्वलितो भवति तत्र तत्र तदैव वायुप्रवाहोप्याधिक्येन जायते॥

अत्र प्रमाणानि—" तं प्रति चारुमध्वरं सोमपानाय प्रहूयसे सोग्ने मरुद्भिः सहागच्छेति " निरु० १०।३६ । त्यं—त्यच्छब्दस्तच्छब्दपर्य्यायः, त्यदादीनामः (७।२।१०२) । चारुम्—दृसनिजनिचरिचटिरहिभ्योऽञुण्।उणा० १।३। चरति चक्षुरादिष्विति चारुः

शोभनः । गोपीथाय-निशीथगोपीथावगथाः । उणा० २।९। इति निपातितः । प्रति-लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः (पा० १।४।८८) इति लक्षणे कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया (पा० २।३।८) इति प्रतियोगे चारुमध्वरमिति च द्वितीया । ईश्वरपक्षे-मरुद्भिः = ऋत्विग्भिरिति । अत्र प्रमाणम्-मरुतइति ऋत्विङ्नाम निघं० ३।१८ । इयमृग्वेदे (१।१९।१) ऽपि अविकलाक्षरा ॥६॥ (१६)

भाषार्थः-(अग्ने) हे ज्ञानमय ! तुम (मरुद्भिः) उपासकों से (गोपीथाय) आनन्द लाभ के लिये (त्यम्) उस (चारुम्) रमणीय (अध्वरम्) ज्ञानयज्ञभूमि=हृदयदेश को (प्रति) लक्ष्य करके (प्र-हूयसे) ध्यान किये जाते हो । वह तुम (आगहि) प्राप्त हो ओ ॥

अर्थात् परमात्मा जो ज्ञानमय है उस का, ज्ञानयज्ञ के ऋत्विज् (मरुत्) उपासक लोग, (गोपीथाय) सोमपान के तुल्य परमानन्द की प्राप्ति के लिये ध्यान करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि सुन्दर यज्ञस्थल जो हमारा हृदयदेश है उस में परमात्मा हमें मिले ॥

भौतिक पक्ष में- (अग्ने), तू (चारुम्) सुन्दर (अध्वरम्) यज्ञस्थल (प्रति) को (गोपीथाय) सोमादि रस पीने के लिये (प्रहूयसे) बुलाया जाता है, सो तू (मरुद्भिः) वायुओं के साथ (आगहि) आ ॥

तात्पर्य यह है कि कर्मयज्ञ का साधक अग्नि चारु=सुन्दर सुनिर्मित यज्ञकुण्ड में बुलाया जाता अर्थात् स्थापित किया जाता है और वायुओं के साथ आता है अर्थात् स्थापित होकर प्रदीप्त होते ही अपने मित्र वायुओं को प्रेरित करता है । विज्ञान की रीति से यह नियम है कि अग्नि अपने आस पास के वायु को हलका करके उस में गति उत्पन्न करता है । इसी लिये जहां अग्नि अधिक प्रचण्ड होता है वहां वायु भी वेग से बहने लगता है ॥

निरुक्त १०।३६॥ अष्टाध्यायी ७।२।१०२॥ १।४।८९॥ १।३।८॥ उणादि १।३॥९॥ निघण्टु ३।१८॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ४३ से देखिये । ऐसी ही ऋचा ऋग्वेद १।१९।१ में है ॥६॥ (१६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ सप्तमी—शुनःशेपेन दृष्टा । छं० दे० उष्णिक् ॥

२३ २ ३ १२ ३१ २ ३ १ २२

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।

३ १ २ ३१ २

सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥ (१७)

पदपाठः—अश्वम् २ । न अ० । त्वा २ । वारवन्तम् २ । वन्दध्यै अ० । अग्निम् २ । नमोभिः ३ । सम्ऽराजन्तम् २ । अध्वराणाम् ६॥

अन्वितपदार्थः—अग्ने इति पूर्वतोऽनुवर्त्तनीयम् । (अध्वराणाम्) ज्ञानयज्ञानां मध्ये (सम्राजन्तम्) सम्यक् प्रकाशमानम् (अग्निम्) पूजनीयं (त्वा) त्वाम् (नमोभिः) नमस्कारैः (वन्दध्यै) वन्दितुम् "आहुवे" इत्युत्तरेण सम्बन्धः (वारवन्तम्) बालवन्तम् (अश्वं,न) अश्वमिव। यथा बालवानश्वो दंशमशकादीन्बालैःपरिहरति तथैव त्वमप्यस्मद्बाधकान् कामक्रोधादिदुर्गुणान् स्वकीयैः सर्वोपकारकैः सामर्थ्यैः परिहरसि इत्यर्थः ॥

भौतिकाग्निपक्षे—अध्वराणां कर्मयज्ञानां, सम्राजन्तं सम्यक् दीप्तिमन्तमग्निं, त्वा त्वां,नमोभिःअन्नैःस्थालीपाकादिभिःसह, वन्दध्यै गुणान्कीर्त्तयितुम् "आहुवे" ॥

अयमर्थः—अग्निर्हि कर्मकाण्डानां सम्राट् । यथाऽश्वोबालैर्मशकादिबाधकान्निवारयति तथैवाग्निः सर्वदुष्टरोगान्वाय्वादिशुद्ध्या विनाशयति, तस्मात्सर्वैः स्थालीपाकादिभिर्होमकरणाय सोग्निरग्निकुण्डे आधातव्यः । शिल्पसिद्धये वा तत्र तत्रोपयोक्तव्यः ॥

प्रमाणानि—वारवन्तम्—वारयन्ति दंशमशकादीनिति वाराः, नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यचः (३।१।१३४) इत्यच् । कपिलादित्वाल्लत्वविकल्पः । वन्दध्यै—वदि अभिवादनस्तुत्योः, तुमर्थेसे

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सेनसे असेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैनित्यादिना (३।४।९) सिद्धम् । नम इति अन्ननाम २।७॥ अध्वर इति च यज्ञनाम निघं० ३।१७॥ "अश्वमिव त्वां बालावन्तं,बाला दंशनिवारणार्था भवन्ति। दंशो-दशतेः" । निरु० १।२० इयमृगपि ऋग्वेदे (१।२७।१) ॥७॥

भाषार्थः-पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति करके "हे अग्ने" प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (अध्वराणाम्) ज्ञानयज्ञों के मध्य में (सम्राजन्तम्) भले प्रकार प्रकाशमान (अग्निम्) पूजनीय उपासनीय (त्वा) आप को (नमोभिः) प्रणामों से (वन्दध्यै) वन्दना करने के लिये "आहुवे" ध्यान करता हूं,यह अगले मन्त्र से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। (वारवन्तम्) बालों वाले (अश्वं, न,) अश्व के समान। जिस प्रकार बाल वाला घोड़ा दंश मशकादि का निवारण करता है इसी प्रकार आप भी हमारे बाधक काम क्रोधादि दुर्गुणों को अपने बाल तुल्य सर्वोपकारक सामर्थ्यों से दूर करते हैं ॥

भौतिक पक्ष में-अग्ने ! (अध्वराणाम्) कर्मयज्ञों के मध्य में (सम्राजन्तम्) अच्छे प्रकार प्रदीप्त (त्वा) तुझ (अग्निम्) अग्नि को (नमोभिः) स्थालीपाकादि सहित (वन्दध्यै) स्तुति करने=गुण वर्णन करने के लिये "आहुवे" आधान करता हूं (वारवन्तम्) बालों वाले (अश्वं, न) घोड़े के समान। अर्थात् जिस प्रकार घोड़ा पुच्छादि के बालों से ईति मच्छर आदि को निवृत्त करता है इसी प्रकार अग्नि में होम करने से अग्नि भी अपने चारों ओर से वायु आदि में रहने वाले दोषों वा कीड़ों को निवृत्त करता है इसलिये यज्ञों के सम्राट् अग्नि को स्थालीपाकादि साथ ले कर कुण्ड में आहित करना चाहिये और साथ में उस अग्नि के गुणों का कीर्त्तन करना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ३।१।११४॥३।४।९॥ निघं० २।७॥३।१७॥ निरुक्त १।२०॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ४५ से देखिये ॥ ऋग्वेद १।२७।१ में भी ऐसा ही पाठ है ॥७॥ (१७)

अथाऽष्टमी-प्रयोगेण दृष्टा । छं० दे० उक्ते ॥

३ १ २र ३१ २र
और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे ।
३ १ २३१२
अग्निꣳसमुद्रवाससम ॥८॥ (१८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—और्वभृगुवत् अ० । शुचिम् २ । अप्नवानवत् अ० । आ—हुवे क्रि० । अग्निम् २ । समुद्रवाससम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(और्वभृगुवत्) यथौर्वभृगवः पृथिवीस्था उपदेष्टारोज्ञानकाण्डिन ऋग्वेदज्ञाः (अप्नवानवत्) यथाऽप्नवानाः कर्मानुष्ठातारो यजुर्वेदज्ञाः तथाऽहमपि ज्ञानयज्ञानुष्ठाता (समुद्रवाससम्) आकाशे व्यापकम् (शुचिम्) पवित्रम् (अग्निम्) पूजनीयं परेशम् (आ—हुवे) उपासे ॥

भौतिकपक्षे—समुद्रवाससम् आकाशव्यापिनं, शुचिं शोधकम् अग्निम् आहवनीयादिष्वन्यतमम्, आ—हुवे आदधे, अग्निकुण्डे शिल्पकार्येषु वेति शेषः ॥

अत्रेदं विचारणीयं—कोसावौर्वभृगुशब्दस्यार्थः कश्चाऽप्नवानशब्दस्येति । उच्यते—उर्वी इति पृथिवीनाम निघं० १।१ द्यावा पृथिवीनाम च निघं० ३।३० तत्र भवा और्वाः । भृगव इति पदनाम निघं० ५।५ तेन च ज्ञानादयोऽर्थाः सम्भवन्ति, और्वाः पृथिवीस्थाः सर्वे भृगवो ज्ञानकाण्डिन ऋग्वेदज्ञाः । ते यथा "अग्निमीडे पुरो०" इत्यादिनाऽग्नेराह्वानं कुर्वन्ति तथाऽहमपीत्यर्थः । अप्न इतिकर्म नाम निघं०२।१ अप्नांसि कर्माणि वन्यन्ते संभज्यन्ते येषु ते कर्मानुष्ठानपराः कर्मकाण्डिनोयजुर्वेदज्ञाः, तद्वत् । अप्नसः सलोपश्छान्दसः । वन संभक्तौ—हलश्च (पा० ३।३।१११) इति घञ् । समुद्र इत्यन्तरिक्षनाम निघं० १।३ तं वस्ते आच्छादयति व्यापयति सःसमुद्रवासाः । वसेर्णित् ४।२१८ उणा० । शुचिम्—ईशुचिर् पूतीभावे, इगुपधात्कित् । उणा० ४।१२०॥

अयंभावः—सर्वे ज्ञानकाण्डिनो वा कर्मकाण्डिनो वा यथा परमात्मनमुपासते यथा वा अग्निमुपयुञ्जते तथाऽहमपि । ऋग्वेदे

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(८।९१।१) ऽपि अविकलः पाठः ॥८॥ (१८)

भाषार्थः-(और्वभृगुवत्) पृथिवी के उपदेष्टाओं के समान और (अप्नवानवत्) कर्मकाण्डियों के समान, मैं (समुद्रवासम्) आकाश में व्यापक (शुचिम्) पवित्र (अग्निम्) पूजनीय परमात्मा को (आ-हुवे) आह्वान करता हूं कि वह मुझे प्राप्त हो ॥

भौतिक पक्ष में-(और्वभृगुवत्) पृथिवी के ज्ञानकाण्डियों के समान और (अप्नवानवत्) कर्मकाण्डियों के समान, मैं (समुद्रवासम्) आकाश में व्यापी (शुचिम्) शोधने वाले (अग्निम्) अग्नि को (आ-हुवे) आधान करता हूं ॥

उत्तम पुरुष दो प्रकार के हैं १-और्वभृगु ज्ञानकाण्डी जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, ऋग्वेद में "अग्निमीडे पुरोहितं" इत्यादि मन्त्रों से मुख्य करके अग्न्यादि पदार्थों के गुणों का वर्णन किया है, २-अप्नवान जो कर्मकाण्ड में कुशल हैं, "इषेत्वोर्जेत्वा" इत्यादि मन्त्रों से यजुर्वेद में मुख्य करके कर्मकाण्ड यज्ञ जिस का शिल्पविद्या का उपयोग भी अङ्ग है उस का वर्णन है। तो तात्पर्य यह हुआ कि ऋग्वेदज्ञ ज्ञानकाण्डियों के समान मैं अग्नि के गुणों को जान कर यजुर्वेदज्ञ कर्मकाण्डियों के समान अग्नि को यज्ञकुण्ड में वा शिल्पसाधक यन्त्रादि में आधान करता हूं। वह अग्नि शुचि है अर्थात् स्वयं मलिनतादि दोष रहित है और अपने संसर्ग से अन्य पदार्थों के मलिनता आदि दोषों का दूर करने वाला है। और अन्तरिक्ष में वायु के समान व्याप रहा है। जब हम कहीं अग्नि जलाते हैं तो थोड़ी देर में भस्म शेष रह जाता है और अग्नि गतिशील होने से आकाश में फैल जाता है इस प्रकार अग्नि की अदृश्य अवस्था होजाती है और वह आकाश में व्यापा रहता है ॥

निघण्टु १।१॥३।३०॥५।५॥२।१॥१।३॥ अष्टाध्यायी ३।३।१२१॥ उणादि ४।२१८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ .... में देखिये ॥८॥ (१८)

अथ नवमी-प्रयोगेण दृष्टा छं० दे० उक्ते ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धानो मनसा धियञ्चसचेत मर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ १ ॥ (१९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—अग्निम् २ । इन्धानः १ । मनसा ३ । धियम् २ । सचेत क्रि० । मर्त्यः १ । अग्निम् २ । इन्धे क्रि० । विवस्वभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(मर्त्यः) मनुष्यः (मनसा) श्रद्धया (अग्निमिन्धानः) परमात्मानं ध्यायन् हृदि प्रकाशयन् (धियम्) प्रज्ञाम् (सचेत) समियात्। अत एव (विवस्वभिः) सूर्यकिरणैः सह प्रातरेव (अग्निमिन्धे) परमात्मानमुपासीत ॥

परमात्मोपासनयाऽनुत्तमः प्रज्ञालाभस्तदर्थं प्रत्यहं प्रातः प्रातस्तदुपासनं कर्त्तव्यम् ॥

भौतिकपक्षे—धियम्=कर्म। विवस्वभिः=सूर्यकिरणसाहाय्येन। इन्धे = प्रज्वलयति ॥

सर्वं कर्मकाण्डमग्निना सम्यक् सम्भवति तस्मान्मनुष्येण सूर्यकिरणसाहाय्येनाऽग्निरुपयोक्तव्यः। शीतर्त्तौ सूर्यकिरणमान्द्यादग्निरपि मन्दोनातिप्रखरःसञ्जायते इदमपि विज्ञापयति मन्त्रः॥

धीरिति प्रज्ञानाम निघं० २।९ कर्मनाम च निघं० २।१॥ ऋग्वेदे (८।९१।२२) तु "इन्धे" इत्यस्य स्थाने "ईधे" इत्येव पाठेऽन्तरम् ॥९॥ (१९)

भाषार्थः—(मर्त्यः) मनुष्य (मनसा) श्रद्धा से (अग्निम्, इन्धानः) परमात्मा का, ध्यान करता हुआ (धियम्) बुद्धि को (सचेत) अच्छे प्रकार प्राप्त हो, इसलिये (विवस्वभिः) सूर्य्यकिरणों के साथ (अग्निम्) परमेश्वर को (इन्धे) हृदय में विराजित करे ॥

अर्थात् परमात्मा की उपासना "तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्" इत्यादि मन्त्रों से करने वाला मनुष्य बुद्धि को प्राप्त करता है। इसलिये उसे चाहिये कि सूर्य की किरणों के साथ ही (प्रातः ही) परमात्मा की उपासना करे। "मर्त्यः" पद से यह दिखलाया है कि मनुष्य मरणधर्मा है और मृत्यु से बचना चाहता है तो परमात्मा की उपासना करे। उस का फल मन्त्र में यह सुझाया है कि बुद्धि बढ़ती है।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बुद्धि बढ़ने से मिथ्याज्ञान निवृत्त होता है, मिथ्याज्ञान की निवृत्ति से "दुःख जन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः" न्यायदर्शन सू० २ के अनुसार मोक्ष होने से मर्त्य=मनुष्य की मृत्यु छूट जाती है। "मनसा" पद इसलिये है कि मन से अर्थात श्रद्धा से उपासना करे, न कि देखने के लिये दम्भमात्र। "इन्धानः" का ठीक अर्थ "सुलगाता हुआ" है। सो ध्यान करके परमात्मा को हृदय में प्रकाशमान करना ही हृदयकुण्ड में ज्योतिःस्वरूप अग्नि परमात्मा का सुलगाना है। सूर्यकिरणों के साथ प्रातः होते ही तमोगुण वा अन्धकार क्षीण होता है और ज्ञान वा प्रकाश की उन्नति होती है इसलिये उस प्रातःकाल को विशेष करके उपासना का काल ठहराया गया है॥

भौतिकपक्ष में-(मर्त्यः) मनुष्य (मनसा) जी लगाकर (अग्निम्, इन्धानः) अग्नि को, प्रदीप्त करता हुआ (धियम्) कर्म को (सचेत) संप्राप्त हो, इस लिये (विवस्वभिः) सूर्य की किरणों की सहायता से (अग्निम्) अग्नि को (इन्धे) सुलगावे॥

इस में मुख्य करके दो बातों का ज्ञानोपदेश है। एक तो यह कि मनुष्य अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ कर्म को प्राप्त हो, इस से यह शिक्षा है कि यज्ञ शिल्प युद्ध आदि समस्त कर्त्तव्य कर्मकाण्ड की सिद्धि अग्नि द्वारा होती है। यथार्थ में अग्नि का गुण प्रकाश ही प्राणियों को विशेष करके कर्म में प्रवृत्त करता है, अन्धकार में सब कर्म बन्द होना चाहते हैं, रात्रि में कर्म करने वालों को अग्नि के प्रकाश की आवश्यकता होती है। दूसरी बात यह कि सूर्यकिरणों की सहायता से मनुष्य अग्नि को प्रदीप्त करता है, जब शीतऋतु में सूर्य की किरणें अधिक तीव्र नहीं पड़तीं तब उतना ही अग्नि का बल घटजाता है, ग्रीष्मऋतु में सूर्य की प्रचण्डता के साथ आहवनीयादि अग्नि में कैसी तीव्रता होजाती है, जिस से स्पष्ट है कि अग्नि के प्रदीप्त वा उद्बुद्ध होने के लिये सूर्यकिरणों की सहायता अपेक्षित है। जिस को जान कर मनुष्य नाना प्रकार अग्निसम्बन्धी कार्य सिद्ध कर सुख पासकते हैं॥

निघण्टु ३।९ और ३।१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ४९ से देखिये॥ तथा तीसरी बात इस मन्त्र में यह भी सिखाई गई है कि होम का काल नित्य प्रातःकाल है। क्योंकि इस में कहा गया है कि "सूर्यकिरणों के साथ"॥ ऋग्वेद ८।९१।२२ में केवल " इन्धे " के स्थान में "ईधे" इतना पाठभेद है

॥ ९ ॥ (१९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ दशमी—वत्सेन दृष्टा । छ० दे० उक्ते ॥

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

वासरम् । परोयदिध्यते दिवि ॥१०॥(२०)

पदपाठः—आत् अ० । इत् अ० । प्रत्नस्य ६ । रेतसः ६ । ज्योतिः २ । पश्यन्ति क्रि० । वासरम् २ । परः १ । यत् १ । इध्यते क्रि० । दिवि ७ ॥

अन्वितपदार्थः—यं सूर्य्यं प्रत्यहं पश्यामः सोपि अग्निपदवाच्यस्य स्वयंप्रकाशस्य परमात्मन एव ज्योतिषा प्रकाशते ऽथवा सोऽपि भौतिकाग्निज्योतिषैव प्रकाशते इत्याह—(आत्, इत्) अपि, च (यत्) यः (परः) अतिशयितः । लिङ्गव्यत्ययः। (दिवि) आकाशे (इध्यते) प्रकाशते [सूर्य्यः], व्यत्ययेन कर्मणि प्रत्ययः । यं च (वासरम्) दिनं यावत्, जनाः (पश्यन्ति) ईक्षन्ते तत्राऽपि (प्रत्नस्य) सनातनस्य (रेतसः) वीर्यवतोऽनन्तसामर्थ्यवत ईश्वरस्यैव (ज्योतिः) प्रकाशः ॥

प्रकरणादग्नेरेवैष महिमेति गम्यते । ईश्वरपक्षे—"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (श्वेताश्व० ६।१४) इत्युपनिषद्वाक्ये इव सूर्यः परेशप्रकाशेन प्रकाशते इत्यवगन्तव्यम् । भौतिकपक्षे च—अग्निनैव सूर्य्यो दिवि रोचतेऽग्निमयोऽसौ लोक इति सुस्फुटमेव ॥

प्रत्न इति पुराणनाम निघं० ३।२७। री गति रेषणयोः, सुरीभ्यां तुड्वा । उणा० ४।२०२ गत्यर्थवशात्सर्वज्ञं ब्रह्म रेतस्तस्य । वासरमित्यहर्नामनिघं० १।९॥ ऋग्वेदे (८।६।३०) तु "दिवा" इति पाठान्तरम् ॥१०॥ (२०) * इति द्वितीया दशतिः ॥२॥ *

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(आत्, इत्) यह, भी कि (यत्) जो (परः) अतिशयित (दिवि) द्युलोक में (इध्यते) चमकता है [सूर्य से तात्पर्य है] जिसको (वासरम्) दिन भर (पश्यन्ति) देखते हैं, उस में भी (प्रत्नस्य) सनातन (रेतसः) सामर्थ्यवान् परमात्मा की (ज्योतिः) ज्योति है ॥

अर्थात् जिस प्रकार सोना चान्दी पीतल आदि पदार्थ सूर्य की ज्योति की सहायता से प्रकाशित होते हैं, इसी प्रकार सूर्य स्वयं भी परमात्मा की ज्योति से प्रकाशित होता है। जैसा कि श्वेताश्वतरोपनिषद्वाक्य (६।१४) संस्कृतभाष्य पृष्ठ ५१ में लिख आये हैं कि " न वहां सूर्य चमकता है, न चन्द्र, तारे, न ये विजुलियां चमकतीं, फिर यह अग्नि कहां । किन्तु उसी की चमक से लौटे हुवे प्रकाश से सब कुछ अनुप्रकाशित है, उसी की चमक से यह सब चमकता है " ॥

भौतिक पक्ष में-(आत्, इत्) यह, भी कि (यत्) जो (परः) अत्यन्त (दिवि) आकाश में (इध्यते) चमकता है [सूर्य], जिसे (वासरम्) दिन भर (पश्यन्ति) देखते हैं, उस में भी (प्रत्नस्य) नित्यस्वरूप (रेतसः) वीर्यवान् कारणाग्नि का ही (ज्योतिः) प्रकाश है ॥

अर्थात् कारण रूप अग्नि तत्त्व जो नित्य है उसी से सूर्यादि प्रकाशक लोक भी प्रकाशित हैं। इस में एक बात यह निकलती है कि सूर्य्य का प्रकाश अत्यन्त है, दूसरी यह कि सूर्य से दिन बनता है, तीसरी यह कि कारणाग्नि से सूर्य बना है ॥

निघं० ३।२७ ॥ १।९ ॥ उणादि ४।२०२ के प्रमाण संस्कृतभाष्य पृष्ठ ५१ में देखिये। ऋग्वेद ८।६।३० में " दिवि " के स्थान में "दिवा " यह पाठभेद है ॥ १० ॥ (२०)

यह दूसरी दशति समाप्त हुई ॥२॥

अथ तृतीया दशतिस्तत्र प्रथमा प्रयोगेण दृष्टा । छन्दोदेवते प्रकृते ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।

२ ३ २ ३ १ २

अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥ (२१)

पदपाठः-अग्निम् २ । वः ६ । वृधन्तम् २ । अध्वराणाम् ६ । पुरूतमम् २ । अच्छ अ० । नप्त्रे ४=२। सहस्वते ४=२॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(वः) युष्माकं सम्बन्धिनां युष्माभिरनुष्ठीयमानानाम् (अध्वराणाम्) ज्ञानयज्ञानाम् (पुरूतमम्) अतिशयितम् (वृधन्तम्) वृद्धिं कुर्वन्तम् (नप्त्रे) नप्तारम् बन्धुमिव सहायकम् (सहस्वते) बलवन्तम् (अग्निम्) ज्ञानप्रदं परमात्मानं (अच्छ) सुष्टु यूयमुपाध्वमिति शेषः। भौतिकपक्षे—युष्माकं क्रियामययज्ञानां विशेषेण वृद्धिकरं सहायकं बलवन्तमग्निं यूयं सुष्टु उपयुङ्ग्ध्वम् ॥

अयमर्थः—अग्निर्हि मनुष्याणां होमादिक्रियाकलापमयज्ञवर्धको बन्धुरिव हितसाधको बलवांश्च वर्त्तते, तस्मात्सर्वैः सुष्टु क्रियाकलापेषूपयोजनीयः ॥

वृधन्तम्=वृद्धिं कुर्वन्तमित्यत्राऽन्तर्हितोणिजर्थोव्यत्ययेन परस्मैपदप्रत्ययश्च। अच्छा=इति—निपातस्य च (पा० ६।३।१३६) इति दीर्घः। नप्त्रे=नप्तृनेष्टृत्वष्टृ० इत्यादिना (उणा० २।९५) निपात्यते, व्यत्ययेन हितीयार्थे चतुर्थी। इत्थमेवर्ग्वेदे (८।९१।७) ऽपि याथातथ्येन पठिता ॥१॥ (२१)

अब तीसरी दशति का आरम्भ किया जाता है ॥

भाषार्थः-(वः) तुम्हारे (अध्वराणाम्) ज्ञानयज्ञों को (पुरूतमम्) अतिशयित (वृधन्तम्) बढ़ाते हुवे (नप्त्रे) बन्धुतुल्य सहायक (सहस्वते) बलवान् (अग्निम्) तेजोमय परमात्मा को (अच्छ) तुम अच्छे प्रकार उपासित करो ॥

परमात्मा तुम्हारे ज्ञान का सहायक है और बढ़ाने वाला है तथा बल का धारण करने वाला और बल का दाता है तुम उस की अच्छे प्रकार उपासना करो ॥

भौतिक पक्ष में—(वः) तुम्हारे (अध्वराणाम्) कर्मयज्ञों की (पुरूतमम्) अतिशयित (वृधन्तम्) वृद्धि करते हुवे (नप्त्रे) बन्धुतुल्य सहायक (सहस्वते) बलवान् (अग्निम्) अग्नि को (अच्छ) भले प्रकार प्रयुक्त करो ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अर्थात् अग्नि तुम्हारे समस्त देवयजन शिल्प युद्धादि क्रियाकलाप की अत्यन्त सहायता करने वाला है, वह तुम्हारा बन्धु के तुल्य सहायक है। जिस प्रकार बान्धव लोग अपने कार्य्यों की सहायता करते हैं, इसी प्रकार अग्नि भी सहस्रों भाइयों का काम अकेला ही करता है। मेघमण्डलादि दूरवर्त्ती स्थानों में तुम्हारे इष्टसाधक यज्ञ को फैलाता है, शिल्पविद्या में प्रयुक्त होकर अनेकशः कार्यों को साधता, तथा युद्धादि में आग्नेयास्त्रादि द्वारा सहस्रों लक्षों मनुष्यों का काम करता है। इस लिये "अच्छे प्रकार" पूर्ण ध्यान विचार तत्परता से उस के प्रयोग करने में प्रवृत्त होओ॥

अष्टाध्यायी ६।३।१३६ उणादि २।९३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ५३ में देखिये॥ ऐसी ही ऋचा ऋ० ८। ९१। ७ में है॥ १॥ (२१)

अथ द्वितीया-भरद्वाजेन दृष्टा। छं० दे० उक्ते॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यꣳसद्विश्वं न्यत्रिणम्।

३ १ २ ३ ३

अग्निर्नो वꣳसते रयिम्॥ २॥ (२२)

पदपाठः-अग्निः १। तिग्मेन ३। शोचिषा ३। यंसत् क्रि०। विश्वम् २। नि अ०। अत्रिणम् २। अग्निः १। नः ४। वंसते क्रि०। रयिम् २॥

अन्वितपदार्थः-(अग्निः) तेजस्वी परमात्मा (तिग्मेन) वज्रवत्तीक्ष्णेन (शोचिषा) ज्वलता तेजसा (विश्वम्) समस्तम् (अत्रिणम्) दुष्टं शत्रुं हिंसकम् (नि-यंसत्) निगृहीतं करोति (अग्निः) स एव च (नः) अस्मभ्यम् (रयिम्) धनादिकम् (वंसते) कर्मानुसारं विभजति॥

भौतिकपक्षे-आग्नेयास्त्रेषु प्रयुक्तोऽग्निस्तीव्रेण तेजसा सर्वान् दुष्टशत्रून्निवारयति तत्पराजयेन स्वीयजयेन च राज्यादिधनं प्रापयति इत्यर्थः॥

तिग्ममिति वज्रनाम निघं० २।२० युजिरुचितिजां कुश्च (उणा० १।१४६) तिज निशाने, तेजते तीक्ष्णतां करोति तत्ति-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ग्नम् ॥ शोचिरिति ज्वलतो नाम निघं० १।१७ अर्चिशुचिहु-सृपिछादिछर्दिभ्य इसिः (उणा० २।१०८) ॥ अत्रिणम्—अदेस्त्रिनिश्च (उणा० ४।६८) अत्ति भक्षयति विनाशयति सोऽत्री शत्रुः॥ रयिमिति धननाम निघं० २।१० ॥ ऋग्वेदे (६।१६।२८) तु, यंसत्=यासत् इति, वंसते=वनते इति च पाठेन्तरम् ॥२॥ (२२)

भाषार्थः—(अग्निः) तेजोमय न्यायकारी (तिग्मेन) वज्रतुल्य तीक्ष्ण (शोचिषा) तेज से (विश्वम्) सम्पूर्ण (अत्रिणम्) दुष्ट हिंसक शत्रु को (नि—यंसत्) निगृहीत करता है (अग्निः) वही (नः) हमारे लिये (रयिम्) धनादि को (वंसते) बांटता है ॥

परमात्मा न्यायकारी है इस लिये वह परपीडक दुष्टों को दण्ड देता और धर्म्मात्माओं को उन के कर्म्मानुसार धनादि पदार्थ बांटता है ॥

भौतिक पक्ष में (अग्निः) तेजोमय अग्नि (तिग्मेन) तीक्ष्ण (शोचिषा) तेज से (विश्वम्) सब (अत्रिणम्) हिंसक शत्रु को (नि—यंसत्) निगृहीत करता है (अग्निः) वही, तब (नः) हमारे लिये (रयिम्) राज्यादि धन को (वंसते) बांटता है ॥

मनुष्यों को जानना चाहिये कि अग्नि में तीव्रता है, इसलिये उस से आग्नेयादि अस्त्र शस्त्र बन सक्ते हैं, उन से शत्रुओं का निग्रह हो सकता है, इसलिये उसे प्रयुक्त करके अपना जय और परपीडक दुष्ट दस्यु आदि का पराजय करके अपने २ उचित परिश्रमानुसार धनादि पदार्थ बांट लेने चाहियें। इस मन्त्र में ३ बातों की मुख्य शिक्षा है। एक तो यह कि अग्नि की तीव्रता का ज्ञान प्राप्त करो और उस से अस्त्रादि बनाओ, दूसरी यह कि संसार के सभ्य परोपकारक नीतिमान् पुरुषों का विरोध नहीं करना किन्तु दुष्ट हिंसक परपीडक शत्रु का ही निग्रह करना, क्योंकि अपने सुखभोग के लिये पराया राज्यादि धन हरण नहीं करना किन्तु परायी रक्षार्थ, तीसरी बात यह कि इस प्रकार विजय द्वारा प्राप्त हुए धनादि का योग्यतानुसार बांट करना ॥

निघण्टु २।२०।१।१७।२।१० उणादि १।१४६।२।१०८।४।६८। के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ५४।५५ में देखिये ॥ ऋग्वेद ६।१६।२८ में—यंसत्=यासत्, वंसते=वनते, इतना पाठभेद है ॥२॥ (२२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ तृतीया-वामदेवेन दृष्टा । छ० दे० उष्णिक् ॥

१ २ ३२३ २ ३ २३ १ २३१र २र
अग्ने मृड महाँअस्यय आ देवयुं जनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १२
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ ३ ॥ (२३)

पदपाठः-अग्ने सं० । मृड क्रि० । महान् १। असि क्रि० । अयः १। आ अ०। देवयुम् २। जनम् २। इयेथ क्रि० । बर्हिः २। आ-सदम् अ० ॥

अन्वितपदार्थः-(अग्ने) पूजनीयेश्वर ! (मृड) अस्मान्त्सुखय (महान्, असि) नास्ति ते महिन्नःपारावारः (देवयुं,जनम्) ज्ञानयज्ञेन देवं भवन्तं यष्टुमिच्छन्तं भक्तम् प्रति (अयः) प्राप्तिशीलश्चाऽसि (बर्हिः) ज्ञानयज्ञभूमौ हृदयदेशे (आ-सदम्) विराजितुम् (आ, इयेथ) प्राप्नोषि ॥

परमात्मा सर्वस्य प्राणिवर्गस्य सुखप्रदः । स हि तद्भक्तैर्देवयुभिरुपासकैः प्राप्तुं शक्यो नान्यैरभक्तैरनुपासकैर्नास्तिकादिभिः । सर्वाऽतिशयेन महांश्च वर्तते । उपासितः सन्हृदयदेशे सम्यक् प्राप्तउपलब्धो भवति । यद्यपि परमात्मा सर्वगः सर्वान्तर्यामी च, तथापि नह्यज्ञैः स्वहृदयेषु विराजमानोऽप्युपलभ्यते, किन्तु ज्ञानिभिरेवोपलभ्यमानोभवति ॥

भौतिकपक्षे-(अग्ने), पूर्वमन्त्रोक्तरीत्या दुष्टशत्रुजयेनाऽस्मान् (मृड) सुखय । शत्रवस्ते क्षुद्राः, त्वं च (महान्, असि) न हि त्वत्सम्पादिताग्नेयाऽस्त्रादिप्रयोगे क्षुद्रास्तेऽवस्थातुं शक्ता, अतस्त्वमेव महाशक्तिसम्पन्नोऽसि (देवयुम्) देवान्गन्यादींस्तत्तद्गुणान्वेषणपूर्वकं यष्टुं संगमयितुमिच्छन्तं शिल्पविदं (जनम्) मनुष्यम् (अयः) प्राप्तुं शीलं यस्य, तथाभूतः (बर्हिः) शिल्प-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

क्रियायज्ञभूमिम् (आ–सदम्) स्थातुम् (आ, इयेथ) प्राप्नोषि॥

अयंभावः—अग्निर्हि शिल्पविद्भिर्ऋत्विग्निर्वा सुप्रयुक्तः सुखप्रदोऽस्ति। परन्तु साधारणा जनास्तस्य नानाविधशिल्पादिसदुपयोगं न प्राप्नुवन्ति किन्तु देवयुं जनमेव सोऽग्निः प्राप्नोति अर्थात् दैवविज्ञानविदेव तं प्राप्तुं शक्नोति। सह्यग्निः स्वीयगुणैः शक्त्या च महान् अस्ति। बर्हिः=अग्निकुण्डमध्यास्तुमग्निकुण्डे आधानाय तत्प्रयोक्तृभिस्तत्राऽऽनीयत उपयुज्यते चेति॥

अयते इति गतिकर्मा निघं० २।१४ तस्मात् अयः। आ-इयेथ इति–व्यवहिताश्चेति वार्त्तिकेन वैदिकः प्रयोगोऽव्यवहितोपसर्गवान् साधुः। देवयवः इति ऋत्विङ्नाम निघं० ३।१८॥इयेथ इति—छन्दसिलुङ्लुङ्लिटः (३।४।६) इत्यनेन सामान्यकाले लिट्॥ ऋग्वेदे (५।९।१) तु " महां असि यईमादेवयुम् " इत्यन्तरम्॥ ३ ॥ (२३)

भाषार्थः–(अग्ने) पूजनीय ईश्वर! हम को (मृड) सुख दो (महान्, असि) तुम महान्, हो और (देवयुम्, जनम्) देवयजन चाहने वाले, मनुष्य को (अयः) प्राप्त होने वाले हो (बर्हिः) यज्ञस्थल में (आ–सदम्) विराजने को (आ–इयेथ) प्राप्त होते हो॥

परमात्मा अपने धर्म्मात्मा भक्त उपासकों को सुख देता है और प्राप्त होता है जिस से परमानन्ददायक है। परन्तु देवयु अर्थात् देव परमात्मा का यजन पूजन चाहने वाले को ही, न कि अभक्त अनुपासक नास्तिकादि को। वह महान् है। यद्यपि वह सर्वान्तर्यामी होने और सर्वगत होने से सब ही के हृदय में विराजता है परन्तु देवयु पुरुष के ही हृदय में उस को मिलता है अन्य साधारण को नहीं॥

भौतिक पक्ष में–(अग्ने) अग्ने! (मृड़) सुख दो (महान्, असि) तू महान्, है (देवयुं, जनम्) वाय्वादि देवों के गुण खोजने की इच्छा वाले, पुरुष को (अयः) प्राप्त होने वाले हो (बर्हिः) यज्ञ और शिल्पस्थल में (आ–सदम्) स्थापित होने को (आ–इयेथ) प्राप्त होते हो॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आशय यह है कि यदि अग्नि को शिल्पी लोग और ऋत्विज् लोग नाना-विध क्रियाकलाप तथा यज्ञ में अच्छे प्रकार प्रयुक्त करें तो "सुखदायक" है, परन्तु साधारण लोग उस से सुख नहीं प्राप्त कर सके हैं, न उस के इन गुणों को पा सकते हैं, किन्तु "देवयु" लोग जो वाय्वादि पदार्थविद्या की खोज में रहते हैं वे ही प्राप्त होते हैं, वह अग्नि अपने गुणों से "महान्" है, उसे "यज्ञ और शिल्प कार्य्यालय स्थल में" स्थापित करना और सब प्रकार से प्राप्त करना चाहिये ॥

निघं० २।१४॥३।१८॥ अष्टाध्यायी ३।४।६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ५७ में देखिये ॥ ऋग्वेद (५।९।१) में "महांअसि यईमादेवयुम्" इतना पाठभेद है ॥ ३ ॥ (२३)

अथ चतुर्थी-वसिष्ठेन दृष्टा । छ० दे० उष्णिक् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने रक्षाणो अꣳहसः प्रति स्म देव
३ २ १ २ ३ १ २
रीषतः । तपिष्ठैरजरोदह ॥४॥ (२४)

पदपाठः-अग्ने सं० । रक्ष क्रि० । नः २। अꣳहसः २। प्रति अ० । स्म अ० । देव सं० । रीषतः २। तपिष्ठैः ३। अजरः १। दह क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(अग्ने) सदुपदेशकेश्वर ! जरारहित(नः) अस्मान् (रक्ष) पाहि (देव) हे परेश ! (अजरः), त्वम् (अꣳहसः) पापानुष्ठातॄन् (रीषतः) हिंसतोदुःखदातॄन् (तपिष्ठैः) अतिशयेन तापकैस्तेजोभिः (प्रति, दह, स्म) भस्मीकुरु ॥

भौतिकपक्षे-हे (अग्ने) (देव) दिव्यसंहारशक्तिमन् ! त्वम् (अजरः) अशिथिलः सन् (अꣳहसः) अन्यायपरायणान् (रीषतः) हिंसकान्दुष्टशत्रून् (तपिष्ठैः)अतिशयिततापवद्भिरङ्गारैरिवास्त्रैः (प्रति, दह, स्म) भस्मीकुरु । (नः) अस्मान् (रक्ष) पाहि ॥

अग्निना सम्पादितैराग्नेयास्त्रादिसाधनैरग्निः खल्वस्मा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कं दुष्टान् शत्रून्दस्यून् दहति, अस्मांश्च रक्षति, तस्माद्राजादिभिः सदा दस्यवो भस्मीकर्त्तव्याः न्यायपालनपरायणा राजानः प्रजाश्च रक्षणीया इत्यर्थः ॥

रक्षाणइत्यत्र—ऋचितुनुघेति० (पा०६।३।१३३) ऋचि इत्यनुवर्त्त्य, ह्यचोऽतस्तिङः (६।३।१३५) इति दीर्घः, नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः (८।४।२६) इति णत्वम् । अंहसः—अमेर्हुक्च (उणा०४।२१३) अमन्ति दुःखं प्राप्नुवन्ति येन तदंहः पापं, सामर्थ्यात्तद्धन्तोग्राह्याः ॥ ऋग्वेदे (७।१५।१३) तु स्म=ष्म इत्येवाऽन्तरम् ॥४॥ (२४)

भाषार्थः—(अग्ने) सदुपदेशकेश्वर ! (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा करो (देव) हे परमात्मन् ! (अजरः) आप अजर हैं, (अंहसः) पापियों और विशेषतः (रीषतः) हिंसकों को (तपिष्ठैः) तीव्र तेजों से (प्रति, दह, स्म) भस्म करो ॥

भौतिक पक्ष में—(अग्ने) अग्ने ! (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर और (देव) दिव्यगुणयुक्त ! (अजरः) शिथिलता रहित तू, (अंहसः) अन्यायी (रीषतः) हिंसकों को (तपिष्ठैः) अत्यन्त तेजस्वी अस्त्रों से (प्रति, दह, स्म) भस्म कर ॥

अर्थात् अग्नि दिव्यगुणयुक्त देव और शिथिलतारहित अजर होता हुवा उस से सिद्ध हुवे अस्त्रों द्वारा अन्यायियों के दमन और धर्म्मात्माओं की रक्षा में प्रयुक्त करना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ६।३।१३३॥ ६।३।१३५॥८।४।२६॥ उणादि ४।२१३॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में ऊपर देखिये ऋग्वेद ७।१५।१३ में "स्म" के स्थान में "ष्म" इतना पाठभेद है ॥४॥ (२४)

अथ पञ्चमी—भरद्वाजेन दृष्टा । छ० दे० उष्णिक् ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २
अग्ने युङ्क्ष्वाहि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
३ १ २ ३ १ २
अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥ (२५)

पदपाठः—अग्ने सं० । युङ्क्ष्व क्रि० । हि अ० । ये १। तव ६। अश्वासः १। देव सं० । साधवः १। अरम् अ० । वहन्ति क्रि० । आशवः १॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(देव) हे द्योतमान! (अग्ने) परमात्मन्! (ये, तव) ये, त्वदीयाः (साधवः) जगदुत्पत्त्यादिसाधकाः (आशवः) क्षिप्रकारिणः (अश्वासः) व्यापका गुणाः, सन्ति तान् (हि) शीघ्रम् (युङ्क्ष्व) अस्मद्धृदये प्रकाशितान् कुरु, अस्माकं हृदयदेशस्थैरात्मभिः संयोजय, योगफलमस्मान्प्रापयेति यावत्। ते हि गुणाः (अरम्) पर्याप्तं यथा स्यात्तथा (वहन्ति) योगिनो मुमुक्षूनिति शेषः॥

यथा कश्चिद्राजादिर्वेगवदश्वादियानेन त्वरया प्रजाजनरक्षायै समुपस्थितो भवति प्रार्थितः सन्। तथैवाऽत्र मन्त्रे परमात्माऽपि प्रार्थ्यते, यत् "हे दयानिधे! भवदीया गुणाः। क्षणेनैव सर्वापन्निवारणक्षमाः सन्ति, अतएव ते क्षिप्रकारित्वात् आशव इत्युच्यन्ते। तैः सहितोऽस्मद्धृदयं शीघ्रं पुनीहि। ननु किं गुणास्ते देशादेशान्तरं गच्छन्ति? नेत्याह-अश्वासः सर्वव्यापकाः। अशूङ् व्याप्तौ धातोः-अशूप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः कन् (उणा० १।५१) इति कन् प्रत्ययः, अश्नुवते व्याप्नुवन्ति सर्वं जगदिति अश्वाः,। आज्जसेरसुक् (पा० ७।१।५०) इत्यसुगागमेऽश्वासः। ते च मुमुक्षून् परमात्मानमरमलं वहन्ति प्रापयन्तीत्यर्थः॥

भौतिकपक्षे-देव दिव्यशक्तिमन्! आश्चर्यकराग्ने! विद्युदात्मन्! ये तवाऽऽशवः शीघ्रगामिनोऽश्वासस्तीव्राः साधवोजगद्धितसाधकास्त्वामरं सर्वतो वहन्ति, तान् अस्मद्धिताय युङ्क्ष्व प्रयुक्तान्कुरु॥

अर्थात्-अग्नेः स्फुलिङ्गा एवाऽश्वास्ते एव संग्रामे दुष्टशत्रुषु प्रयोक्तव्यास्ते हि शत्रुगणपराजयं कृत्वाऽस्मत्कार्यं साध्नुवन्ति तस्मात्साधवः। नालिकादिगतान्गोलकादीन् त्वरया वहन्ति, ते

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

योजयितव्या इति भावः । आशुः इतिक्षिप्रनाम निघं० (२।१५) सामर्थ्यात्तद्वन्तोग्राह्याः ॥ ऋग्वेदे तु (६।१६।४३) "युङ्क्ष्व" इत्यस्य स्थाने "युक्ष्व" इति, "आशव" इत्यस्य स्थाने "मन्यवे" इति च पाठेन्तरम् ॥५॥ (२५)

भाषार्थः—(देव) द्योतमान—प्रकाशमान ! (अग्ने) पूजनीयेश्वर ! (ये, तव) जो, तेरे (साधवः) साधने वाले (आशवः) शीघ्र करने वाले (अश्वासः) व्यापक गुण हैं, उन्हें (हि) शीघ्र (युङ्क्ष्व) युक्त कर, वे गुण (अरम्) भरपूर (वहन्ति) पहुंचाते हैं ॥

जिस प्रकार कोई राजा आदि वेग वाले अश्वादि पर चढ़कर तत्काल अपनी प्रजा की रक्षार्थ पहुंचता है, इसी प्रकार परमात्मा से इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि आप कृपा करके उन गुणों को जो साधने वाले हैं, जिन से आप अपने कर्त्तव्य समस्त कार्य्यों को सिद्ध करते हैं, और तत्क्षण ही उन उन कार्यों को सिद्ध करने को समर्थ हैं, और अश्वासः जो=व्यापक हैं । अर्थात् राजा आदि तो यानादि द्वारा प्रजा की रक्षार्थ पहुंचें इतने कुछ देर भी लगे परन्तु आप सर्वव्यापक हैं साथ ही आप के वे गुण भी गुणी के साथ २ व्यापक हैं, इसलिये प्रतिक्षण आप अपने गुणों सहित सर्वत्र पहुंचे पहुंचाये हैं । इस लिये आप को शरणागत धर्म्मात्मा भक्तों की रक्षा में देरी करने का कारण नहीं ॥

भौतिकपक्ष में—(देव) दिव्यशक्तियुक्त ! विद्युत् रूप ! (अग्ने) अग्ने ! (ये,तव) जो, तेरे (आशवः) शीघ्रगामी (साधवः) हितसाधक (अश्वासः) तीव्र गुण हैं उन्हें (हि) शीघ्र (युङ्क्ष्व) प्रयुक्त कर । वे तुझ को (अरम्) भरपूर (वहन्ति) बहाते पहुंचाते अर्थात् भौतिकाग्नि में दिव्यगुण हैं इसलिये वह देव है, वे गुण "साधवः" जगत् के कार्य्यसाधक और "अश्वासः" घोड़ों के समान तीव्रगामी हैं तथा "आशु" शीघ्र काम करने वाले हैं, उन गुणों से अग्नि सर्वत्र बड़ी शीघ्रता से पहुंच सक्ता है, इसलिये उन को यथावत् जान कर शिल्प यज्ञ और संग्राम आदि में भले प्रकार शीघ्रता से प्रयुक्त करना चाहिये । जिस से नालिक (बन्दूक) आदि द्वारा वे गुण शीघ्र अपना कार्य आरम्भ करें ॥

निघण्टु २।१५ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में ऊपर देखिये ॥ ऋग्वेद ६।१६।४३ में "युङ्क्ष्व" के स्थान में "युक्ष्व" इतना भेद है ॥५॥ (२५)

अथ षष्ठी—वसिष्ठेन दृष्टा । ऊ० दे० उक्ते ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २ २ २
नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् ।
३ १२
सुवीरमग्न आहुत ॥ ६ ॥ (२६)

पदपाठः—नि अ० । त्वा २। नक्ष्य सं० । विश्पते सं० । द्युमन्तम् २। धीमहे क्रि० । वयम् १। सुवीरम् २। अग्ने सं० । आहुत सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(नक्ष्य) हे उपगन्तव्य ! शरण्य ! (विश्पते) प्रजापते ! (आहुत) समन्तात्कृतादर ! (अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! परमात्मन् ! (वयम्), (सुवीरम्) शोभना वीरा भक्ताः पुरुषा यस्य तम् (द्युमन्तम्) दीप्तिमन्तम् (त्वा) त्वाम् (नि-धीमहे) नितरां—ध्यायामः ॥

भौतिकपक्षे—(नक्ष्य) उपगम्य सेवनीय ! (विश्पते) यज्ञहारा सर्वप्रजापालक ! (आहुत) समन्तात् ऋत्विग्भिःसुहुत ! (अग्ने), (वयम्), (सुवीरम्) शोभना विद्वांस ऋत्विजो यस्य तम् (द्युमन्तम्) देदीप्यमानम् (त्वा) त्वाम् (नि-धीमहे) आहितं कुर्मः ॥

अयंभावः—अग्निर्हि होमे शिल्पसम्पादने च उपगम्यः सेवनीयोस्ति, नानाविधयज्ञशिल्पसम्पादकत्वेन सर्वप्रजापालकः, द्युमान् तेजस्वी, सुवीरश्चास्ति । स हि सर्वजनहितचिकीर्षुणा पुरुषेण सम्यक् अग्निकुण्डे शिल्पसाधनेषुच यथावदाधातव्यः ॥

नि-धीमहे इत्यत्र, व्यवहिताश्चेति धातूपसर्गयोःपार्थक्येन प्रयोगो न दोषाय । नक्ष्य=ननक्षे इति नक्षति इति वा व्याप्तिकर्मसु निघं० २।१८॥ द्युमत् इति ज्वलतिकर्मा निघं० १।१६॥ऋग्वेदे तु (७।१५।७) "धीमहे वयम्" इत्यस्य स्थाने "देव धीमहे" इति पाठेऽन्तरम् ॥६॥ (२६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(नक्षय) हे शरण्य! (विश्पते) हे प्रजापते! (आहुत) हे भक्तों से आह्वान किये हुवे! (अग्ने) परमात्मन्! (वयम्) हम लोग (सुवीरम्) श्रेष्ठ भक्त पुरुषों वाले (द्युमन्तम्) प्रकाशस्वरूप (त्वा) आप का (नि—धीमहे) निरन्तर—ध्यान करते हैं ॥

भौतिक पक्ष में—(नक्षय) सेवनीय! (विश्पते) प्रजापालक! (आ—हुत) सब ओर से जिस में होम किया जावे ऐसे (अग्ने), (वयम्) हम (त्वा) तुझे (नि—धीमहे) नितराम्—आधान करते हैं ॥

आशय यह है कि अग्नि सेवनयोग्य है, यज्ञ और शिल्प द्वारा प्रजा का पालक है, और सब ओर से होम करने योग्य तथा शिल्प में उपयोग लेने योग्य है, द्युमान्=प्रकाशगुणविशिष्ट है, जो उस को होम वा नानाविध शिल्पक्रिया में प्रयुक्त करते हैं वे सुन्दर वीर होते हैं इस लिये उस का बीच में स्थापन करके चारों ओर बैठकर होम करना चाहिये तथा शिल्पक्रिया द्वारा अनेक प्रकार से उपयोग लेना चाहिये ॥

निघं० १।१६।।२।१८।। के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ६२ में देखिये ॥ ऋ० ७।१५।७ में "धीमहे वयम्" के स्थान में "देव धीमहे" इतना पाठान्तर है ॥६॥ (२६)

अथ सप्तमी—विरूपेण दृष्टा। छ०दे० उक्ते ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३१र २र ३ २ ३ २

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।

३ १ २र

अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥ ७ ॥ (२७)

पदपाठः—अग्निः १। मूर्द्धा १। दिवः ६। ककुत् १। पतिः १। पृथिव्याः ६। अयम् १। अपाम् ६। रेताꣳसि २। जिन्वति क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(अयम्) हृदयदेशेऽनुभूयमानः (अग्निः) प्रकाशस्वरूपः परेशः (मूर्द्धा) मूर्द्धवदुत्तमः (दिवः) प्रकाशस्य (ककुत्) ककुहदुत्तुङ्गकाष्ठाभूतः (पृथिव्याः) पृथिव्युपलक्षितलोकलोकान्तराणाम् (पतिः) पालयिताऽस्ति। एष हि (अपाम्) कर्मणाम् (रेताꣳसि) बीजानि, कर्मबीजानि (जिन्वति) जानाति ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इदमत्रोच्यते-परमात्मा हि सर्वस्य मूर्द्धा सर्वापेक्षयोत्तमः, दिवःककुत् प्रकाशस्योच्चांशः। अर्थात् सर्वोत्तमप्रकाशवान्, पृथिव्यादिलोकपालश्चाऽस्ति । स एव सर्वकृतशुभाऽशुभकर्मणां बीजानि तत्तत्फलप्रदानायाऽऽत्मनि निक्षेपवद्रक्षितानि यथावज्जानाति ॥

भौतिकपक्ष—(अयम्)प्रत्यक्षः (अग्निः) प्रसिद्धः (मूर्द्धा) वाय्वादिदेवानां श्रेष्ठः (दिवः, ककुत्) प्रकाशस्योत्तमाङ्गभूतः । यथा बलीवर्दस्य ककुत् तदीयसर्वाऽङ्गोपाङ्गापेक्षयोच्छ्रितो भवति तथैवाऽग्निरपि सर्वमूर्तद्रव्यप्रकाशापेक्षयोच्छ्रितप्रकाशवान् विज्ञातव्यः । (पृथिव्याः, पतिः) यज्ञादिद्वारा पृथिवीपालकः, सहि (अपाम्) अन्तरिक्षस्य मध्ये (रेताꣳसि) जलानि (जिन्वति) प्रापयति । अन्तर्हितोणिजर्थोऽवधेयः ॥

अयमर्थः-भौतिकोऽग्निरूर्ध्वगामित्वात्सर्वेषां वाय्वादीनां मूर्द्धा इव वर्त्तमानः प्रकाशस्योच्छ्रितकाष्ठावान् नानाविधशिल्पसाधकत्वात्पृथिव्याः पतिः पालयिता चास्ति । स एवाऽप्राप्यपारस्याऽन्तरिक्षस्य मध्ये नीचातिनीचस्थानसमुद्रगतानि जलानि लघूनि कृत्वा प्रापयति ॥

अप इति कर्मनाम निघं० २।१ ॥ आपइत्यन्तरिक्षनाम च निघं० १।३॥ जिन्वति इति गतिकर्मसु निघं० २।१४॥ रेतइत्युदकनाम निघं० १।१२ ॥ ऋग्वेदे ८।४४।१६ऽपि इत्थमेव पाठः ॥ ७ ॥ (२७)

भाषार्थः-(अयम्) यह (अग्निः) प्रकाशमान परमात्मा (मूर्द्धा) सर्वोच्च है और (दिवः, ककुत्) प्रकाश की, टाट है । जिस प्रकार बैल की टाट सब अङ्गों से ऊंची होती है इसी प्रकार परमात्मा का प्रकाश अन्य

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सब के प्रकाशों से उत्तम है। (पृथिव्याः) पृथिव्यादि लोकों का (पतिः) पालक है और (अपाम्) कर्मों के (रेताꣳसि) बीजों को (जिन्वति) जानता है ॥

सर्वोच्च सर्वोत्तम प्रकाशस्वरूप परमात्मा सब के कर्मों का साक्षी और फलप्रदाता तथा ज्ञाता है ॥

भौतिक पक्ष में–(अयम्, अग्निः) यह, अग्नि (मूर्द्धा) ऊर्ध्वगमनशील होने से उच्च और (दिवः ककुत्) प्रकाश की टाट है। तथा (पृथिव्याः) पृथिव्यादि लोकों का पालक है और (अपाम्) अन्तरिक्ष के मध्य में (रेताꣳसि) जलों को (जिन्वति) पहुंचाता है ॥

अर्थात् अग्नि सदा ऊपर को जाने वाला वायवादि देवों का मस्तक के समान है, और प्रकाश का उत्तुङ्ग पुञ्ज है, तथा शिल्पक्रियाकलाप यज्ञ आदि द्वारा पृथिव्यादिलोकस्थ प्राणिवर्ग का पति है, और यही अत्यन्त नीचे स्थान समुद्र के जल को अदृष्टपार अन्तरिक्ष के मध्य में पहुंचाय मेघ बनाय वर्षाता है ॥

निघं० २ । १ ॥ १ । ३ ॥ २ । १४ ॥ १ । १२ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ६४ में देखिये ॥ ऋग्वेद (८।४४।१६) में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ७ ॥ (२७)

अथाऽष्टमी–शुनःशेपेन दृष्टा । छ० दे० उष्णिक् ॥

३ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

इममूषु त्वमस्माकꣳसनिं गायत्रं नव्याꣳसम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २

अग्ने देवेषु प्रवोचः ॥ ८ ॥ (२८)

पदपाठः–इमम् २ । ऊ अ० । सु अ० । त्वम् १ । अस्माकम् ६ । सनिम् २ । गायत्रम् २ । नव्याꣳसम् २ । अग्ने सं० । देवेषु ७ । प्रवोचः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः–(अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! (अस्माकम्) (इमम्) पुरोदेशेऽनुष्ठीयमानम् । लिङ्व्यत्ययः (नव्याꣳसम्) नवतरम् (सनिम्) हविर्दानं (देवेषु) देवानां विषये (गायत्रम्) गायत्र्यादिछन्दोविशिष्टं वचः (उ) च, (त्वम्, सु–प्र–वोचः) उपदिष्टवानसि ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हे दयालो ! सन्मार्गोपदेशक ! भगवन् ! यदिदं हव्यमस्माकमस्ति हूयमानं, यच्च मन्त्रपाठात्मकं वचोऽस्माभिरुच्चार्यते तदिदं हयमपि त्वमेवोपदिष्टवानसि । त्वदाज्ञापालनपरायणैरस्माभिरिदमनुष्ठीयते ॥

भौतिकपक्षे-(अग्ने) प्रसिद्ध ! (इमम्, अस्माकं, नव्याꣳसम्, सनिम्, देवेषु, गायत्रम्, उ) (सु-प्र-वोचः) सुष्ठु प्रवदसि प्रापयसि च ॥

अग्निर्हि वाग्रूपेण मन्त्रपाठादिकं सु-प्रवक्ति(पश्यन्तु १ दशतेः षष्ठं मन्त्रं तद्राष्यं च) आहवनीयादिरूपेण चास्मदीयं चरुमपि देवेषु प्रापयति देवानर्पयति ॥

ऊ इति-निपातस्य च (पा० ६ । ३ । १३६) इति दीर्घः । सनिमिति, षणु दाने इत्यस्मात्-छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् (पा० ३ । २ । २७) इति इनि रूपम् । ऊषु इति-सुञः (पा० ८ । ३ । १०७) इति षत्वम् । नव्यांसमिति नवशब्दादीयसुनि ईकारलोपश्छान्दसः । वोचः—छन्दसि लुङ्लङ्लिटः (पा० ३ । ४ । ६) इति सामान्ये लुडि, अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् (पा० ३ । १ । ५२) इति च्लेरङ् । वचउम्, (पा० ७ । ४ । २० इति उमागमः ॥ इत्थमेवर्ग्वेदेऽपि (१ । २७ । ४) पाठः । ८ । (२८)

भाषार्थः-(अग्ने) ज्ञानप्रद ! (अस्माकम्, इमम्, नव्याꣳसम्, सनिम्) हमारे, इस, नवीनतर, हव्य को (उ) और (देवेषु) देवों के विषय में (गायत्रम्) गायत्र्यादि छन्दोविशिष्ट मन्त्रपाठ को (त्वम्) आप (सु-प्र-वोचः) भले प्रकार उपदेश करते हैं । हे परमात्मन् ! आप बड़े दयालु हैं जो कि हमारे लिये हव्यदान और साथ में मन्त्रपाठ के गान का उपदेश करते हैं, जो हमारे कल्याण का हेतु है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भौतिक पक्ष में–(अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (अस्माकम्, इमम्, नव्याꣳसम्, सनिम्) हमारे, इस, नवीनतर, हव्य को (उ) और (देवेषु) देवों के विषय में (गायत्रम्) मन्त्रगान को (सु–प्र–वोचः) भले प्रकार प्राप्त कराता और बोलता है ॥

अग्नि ही आहवनीयादि रूप से हमारे उत्तम २ नवीन (ताज़े) हव्य पदार्थों को देवतों में पहुंचाता है । और अग्नि ही वाणी रूप हो कर मन्त्र-पाठ करता है। अग्नि के वाणीरूप होने में १ दशति के ६ मन्त्रभाष्य में प्रमाण देखिये ॥

अष्टाध्यायी ६।३।१३६॥३।२।२७॥८।३।१०७॥ ३।४।६॥३।१।५२॥७।४।२० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १।२७।४ में भी ऐसा ही पाठ है ॥८॥ (२८)

अथ नवमी–गोपवनेन दृष्टा । छ०दे० उष्णिक् ॥

१ २ ३ १ ३ १र २र
तं त्वा गोपवनोगिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।
१ २ ३ १ २
स पावक श्रुधी हवम् ॥ १ ॥ (२९)

पदपाठः–तम् २। त्वा २। गोपवनः १। गिरा ३। जनिष्ठत् क्रि०। अग्ने सं०। अङ्गिरः सं०। सः १। पावक सं०। श्रुधि क्रि०। हवम् २॥

अन्वितपदार्थः–(अग्ने) ज्ञानवारिधे! (तम्) पूर्वोक्तम् (त्वा) त्वाम् (गोपवनः) गोर्वाचः पवनः वाक्शुद्धिमिच्छन् पूतवाक् स्तोता पुरुषः (गिरा) वाचा (जनिष्ठत्) प्रकटयति, वाचा स्तौति इत्यर्थः । (अङ्गिरः) हे ज्ञाननिधे! (पावक) पवित्रकर्तः! पतितपावन! (सः) एवं गुणगणगरिष्ठस्त्वम् (हवम्) स्तोत्रम् (श्रुधि) अङ्गीकुरु ॥

गोपवनः पूतवाक्स्तोता परमात्मानं पवित्रया वाचा स्तौति-हे पावक ! पवित्रकारक दयानिधे! कृपया मदीयां स्तुतिमङ्गीकुर्वीति भावः ॥

भौतिक पक्षे–(अग्ने),(तम्) पूर्वोक्तम् (त्वा) त्वाम् (गोप-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वनः) पवित्रवागुद्गाता (गिरा) वाचा (जनिष्ठत्) प्रकटयति स्तौति गुणान्वेषणाय वर्णयति (अङ्गिरः) अङ्गारवन्! देदीप्यमान! (पावक) शोधक! (सः) एवंविधस्त्वम् (हवम्) वर्णनम् (श्रुधि) अङ्गीकुरु ॥

स्वयं पवित्रभूतेनाऽन्येषां पवित्रतामिच्छता पुरुषेण अग्निराधातव्यस्तेतव्यश्चाऽस्ति, तथाकृते सति स दीप्यमानःशोधकोऽग्निःस्तुतिमङ्गीकरोति कोऽर्थः—गुणवर्णनाऽनुकूलं स्वीयगुणान् साक्षात् कारयति उपकरोति च ॥

गोपवनपदं मन्त्रे दृष्ट्वा केचिच्छङ्कन्ते तन्नामकेन द्रष्ट्रैवायं मन्त्रो निर्मित इति। तच्च न साधु। समाधानं चाऽस्य प्रथमदशतेरष्टममन्त्रभाष्ये द्रष्टव्यम्।

गौरिति वाङ्नाम निघं० १।११॥ गमेर्डोः। उणा० २।६७ गच्छति यो यत्र यया वा सा गौः। पशुरिन्द्रियं सुखं किरणो वज्रं चन्द्रमा भूमिर्वाणी जलं वेति ॥

गीरितिवाङ्नाम निघं० १।११॥ अङ्गिरसः इति पदनाम निघं० ५।५॥ तेन च ज्ञानं गमनं चेत्यर्थवशात् परमात्मनि भौतिके च संघटते ॥ श्रुधी इति, अन्येषामपिदृश्यते ६।३।१३७ इति दीर्घः ॥ ऋग्वेदे तु (८।६३।११) "तम्" इत्यस्य स्थाने "यम्" इति पाठः ॥९॥ (२९)

भाषार्थः—(अग्ने) ज्ञानसागर! (तम्) पूर्वोक्त (त्वा) आपको (गोपवनः) वाणी का पवित्र रखने वाला (गिरा) वाणी से (जनिष्ठत्) प्रकट करता है, अर्थात् वाणी से स्तुति करता है कि (अङ्गिरः) हे ज्ञाननिधे! (पावक) हे पवित्र कारक! पतितपावन! (सः) ऐसे तुम (हवम्) स्तोत्र को (श्रुधि) अङ्गीकार करो॥

पवित्रवाणी वाला पुरुष परमात्मा से प्रार्थना करे कि दयानिधे! मेरी प्रार्थना स्तुति को अङ्गीकार कीजिये ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भौतिक पक्ष में–(अग्ने) अग्ने ! (तम्) पूर्वोक्त (त्वा) तुझ को (गोपवनः) पवित्र वाणी वाला उद्गाता (गिरा) वाणी से (जनिष्ठत्) प्रकट करता है कि (अङ्गिरः) अङ्गारों वाले दहकते ! (पावक) शोधने वाले ! (सः) इस प्रकार के तुम (हवम्) गुणवर्णन को (अधि) अङ्गीकार करो ॥

संसार भर की पवित्रता चाहने वाले को योग्य है कि प्रथम स्वयं पवित्र होकर अग्नि का आधान और गुणवर्णन वाले मन्त्रों का पाठ करे । ऐसा करने से दहकता हुवा शोधक अग्नि उस के वर्णन को अङ्गीकार करता है। अर्थात् उस के जाने तथा वर्णन किये अनुसार काम देने लगता है। खोजने से मिलता है ॥

मन्त्र में गोपवन शब्द देख कर कोई लोग शङ्का करते हैं कि इस के द्रष्टा का नाम भी गोपवन है इसलिये यह मन्त्र उसी ने रच लिया है । इस का समाधान १ दशति के आठवें मन्त्र के भाष्य में कर चुके हैं ॥

निघं० १।११॥ ५।५ ॥ उणादि २।६७॥ अष्टाध्यायी ३।६।१३७॥ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८।६३।११ में "तम्" के स्थान में "यम्" पाठ है ॥ ९ ॥ (२९)

अथ दशमी–कामदेवेन दृष्टा । छ० दे० उक्ते ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १
परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥ (३०)

पदपाठः–परि अ० । वाजपतिः १ । कविः १ । अग्निः १ । हव्यानि २ । अक्रमीत् क्रि० । दधत् १ । रत्नानि २ । दाशुषे ४॥

अन्वितपदार्थः–(वाजपतिः) अन्नदाता प्राणपोषकः (कविः) मेधावी (अग्निः) ज्ञानस्वरूपः परमात्मा (दाशुषे) दानशीलायोपासकाय (हव्यानि) होतुं ग्रहीतुं योग्यानि (रत्नानि) रमणीयानि द्रव्याणि (दधत्) प्रयच्छन्सन् (परि—अक्रमीत्) सर्वतोव्याप्नोति ॥

सर्वपालकोऽन्नदः परमात्मा सर्वरत्नानि धरन्वर्त्तते । धर्मा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

त्मने पुरुषार्थिने भक्ताय च कर्मानुकूलं प्रयच्छन् सर्वत्र सर्वदा व्याप्नोति ॥

भौतिकपक्षे—(वाजपतिः) वृष्टिहेतुत्वादन्नदः (कविः) प्रकाशेन बुद्धेरुद्बोधकत्वान्मेधावी (अग्निः) सूर्यरूपः (दाशुषे) हविर्दत्तवते यज्ञशीलाय (हव्यानि, रत्नानि, दधत्) (परि-अक्रमीत्) परि—क्रामति सर्वतः प्राप्नोति ॥

मनुष्यैर्यज्ञशीलैर्भवितव्यम् यतोऽन्नस्योत्पादयिता सूर्य्यस्तेभ्यो हव्यानि रत्नानि रमणीयानि अन्नादीनि धनानि प्रयच्छन् व्याप्नुयात् इतिभावः ॥

वाज इत्यन्ननाम निघं० २।७॥ दाशतीति दानकर्मा निघं० ३।२० कविरिति मेधाविनाम निघं० ३।१५॥ रत्नमिति धननाम निघं० २।१०॥ ऋग्वेदेऽपि ४।१५।३ इत्थमेव पाठः ॥१०॥ (३०)

भाषार्थः—(वाजपतिः) अन्नपति अन्नदाता (कविः) बुद्धिमान् (अग्निः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (दाशुषे) दानी के लिये (हव्यानि) ग्रहणयोग्य (रत्नानि) धनों को (दधत्) देता हुआ (परि—अक्रमीत्) सर्वत्र व्याप रहा है॥

यथार्थ में परमात्मा ही सब का अन्नदाता है और अनन्त ज्ञानवान् तथा प्रकाशवान् है। वह दानशीलों को अपनी व्यापकता से कर्मानुसार धनादि पदार्थ देता है॥

भौतिक पक्ष में—(वाजपतिः) अन्न का पालक (कविः) बुद्धितत्त्ववाला (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (दाशुषे) यज्ञ करने वाले के लिये (हव्यानि) हवनयोग्य (रत्नानि) धनों को (दधत्) देता हुआ (परि—अक्रमीत्) सब ओर व्यापता है॥

सूर्यरूप अग्नि वृष्टिद्वारा अन्न का पति है और प्रकाश द्वारा तमोगुण की निवृत्ति और बुद्धितत्त्व की वृद्धि करने से बुद्धितत्त्व वाला है। इसलिये उस सूर्य्य के द्वारा जगत् के उपकारार्थ हवनयोग्य अनेक रमणीय पदार्थों की प्राप्ति के लिये मनुष्यों को हवनशील होना चाहिये॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघं० २।७।। ३।१५।। २।१०।। ३।२०।। के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ।। ऐसा ही पाठ ऋग्वेद ४।१५।३ में है ।।१०।। (३०)

अथैकादशी—कण्वेण दृष्टा । सौरोऽग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ।

२३ २ ३१२ ३१ २ ३१२

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

३१र २र३ १ २

दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥११॥ (३१)

पदपाठः—उत् अ० । उ अ० । त्यम् २ । जातवेदसम् २ । देवम् २ । वहन्ति क्रि० । केतवः १ । दृशे ४ । विश्वाय ४ । सूर्य्यम् २।।

अन्वितपदार्थः—(उ) वितर्के, कथं परमात्मानं जानीयाम इत्यपेक्षायामाह—(त्यम्) पूर्वोक्तम् (जातवेदसम्) वेदोत्पादकम् (देवम्) (सूर्य्यम्) चराऽचरात्मानं (विश्वाय, दृशे) विश्वं, द्रष्टुम् (केतवः) प्रज्ञाः (उत्—वहन्ति) प्रापयन्ति ज्ञापयन्ति ॥

यथा सूर्य्यो भौतिकः किरणैरात्मानं ज्ञापयति तथैव परमात्मापि स्वकीयैश्चेतनत्वादिभिः सर्वं जगत् दर्शयितुं ज्ञापयति । अर्थादीश्वरसत्त्वे ईक्षणपूर्वकं जगद्रचनं ज्ञापकमित्यर्थः । ईदृशा एव मन्त्रा दार्शनिकपरमात्मसिद्धिप्रकरणानां मूलमित्यपिवेद्यम्।।

भौतिकपक्षे—(उ) कथमेकदेशीयोदूरस्थः सूर्य्योऽस्मान् व्याप्नोति ? इत्यपेक्षायामाह—(त्यम्) तं पूर्वोक्तं (देवम्) दिव्यगुणं (जातवेदसम्) प्रकाशेन ज्ञानप्रसारकम् जगतउद्बोधकं (सूर्यम्), (केतवः) तदीयकिरणाः (उत्—वहन्ति) प्रापयन्ति सर्वत इत्युत्तरम् । कस्मै प्रयोजनाय—(विश्वाय) विश्वस्मै (दृशे) दर्शनाय

सूर्य्यो हि किरणद्वाराऽस्मान्व्याप्नोति प्रकाशयति उद्बोधयति प्रेरयति सर्वं वस्तुजातं दृश्यं दर्शयति चेति भावः ।

जातवेदा इति पदनाम निघं० ५।१।। केतुरिति प्रज्ञानाम

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघं० ३।९॥ सूर्य्य इति पदनाम निघं० ५।६॥ विश्वायेति असर्वनामता आर्षी॥ "उद्वहन्ति तं जातवेदसं रश्मयः केतवः सर्वेषां भूतानां दर्शनाय सूर्यम्"। निरु० १२।१५॥ ऋग्वेदेऽपि १।५०।१ इत्थमेव पाठः॥११॥ (३१)

भाषार्थः-(उ) प्रश्ने। हम परमात्मा को कैसे जाने? उत्तर-(त्यम्) उस (जातवेदसम्) वेदों का प्रकाश करने वाले (देवम्) दिव्यगुणी (सूर्य्यम्) चराऽचरात्मा परमात्मा को (केतवः) प्रज्ञा अर्थात् उस के ज्ञानादि गुण (विश्वाय, दृशे) सब के, देखने के लिये (उत्-वहन्ति) जताते हैं॥

जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों से जाना जाता है इसी प्रकार दिव्यगुणों वाला चराऽचर का आत्मा परमात्मा अपने चेतनत्वादि गुणों से सब जगत् को अपना ज्ञान कराता है अर्थात् सृष्टि को ज्ञानपूर्वक ज्ञानी प्रज्ञावान् ने रचा है। जड की रचना सुडौल नहीं होती इत्यादि प्रकार से परमात्मा का ज्ञान उस के गुणों से होता है। इसी प्रकार के वेदमन्त्र उन प्रकरणों का मूल हैं जो दर्शनशास्त्रों में परमात्मा की सिद्धि के विषय तर्कवाद है॥

भौतिकपक्ष में-(उ) प्रश्ने। इतनी दूर का सूर्य्य हम तक कैसे व्यापता है? उत्तर-(त्यम्) उस [पूर्वमन्त्र में वर्णित] (जातवेदसम्) ज्ञान के प्रकाशक अन्धियारे को मिटाकर अज्ञान के नाशक (देवम्) दिव्य आश्चर्यगुणयुक्त (सूर्य्यम्) सूर्य्य को (केतवः) उस की किरणें (विश्वाय) सब के (दृशे) देखने के लिये (उत्-वहन्ति) पहुंचाती हैं॥

अर्थात् सूर्य्य अपनी किरणों द्वारा हमें व्यापता, प्रकाश करता, जगा कर ज्ञान को उत्तेजित करता, और सर्व वस्तुओं को दिखाता है॥

निघण्टु ५।१॥३।९॥५।६॥ तथा निरुक्त १२।१५॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद १।५०।१ में भी ऐसा ही पाठ है॥ इस ऋचा का देवता सूर्य=अग्नि है। इस पर्व का नाम "आग्नेय" है इसलिये अन्य देवता भी इसी प्रसङ्ग का समझना चाहिये॥ ११॥ (३१)

अथ द्वादशी-मेधातिथिना दृष्टा। छ० दे० उष्णिक्॥

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे।
३ १ २ ३ १ २
देवममीवचातनम्॥ १२॥ (३२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—कविम् २ । अग्निम् २ । उप—स्तुहि क्रि० । सत्यधर्माणम् २ । अध्वरे ७ । देवम् २ । अमीवचातनम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(कविम्) सर्वज्ञम् (सत्यधर्माणम्) सत्यो-धर्मायस्य तम् (देवम्) द्योतकम् (अमीवचातनम्) अमीवानां हिंसकानां शत्रूणां वा घातकम् । (अग्निम्) तेजस्विनं परमा-त्मानम् (अध्वरे) ज्ञानयज्ञे ब्रह्मयज्ञादौ (उप—स्तुहि) उपासी-थाः, स्तुहि च ॥

भौतिकपक्षे—(कविम्) उद्बोधकत्वेन ज्ञानप्रसारकम् (सत्यध-र्माणम्) सत्योनियतकालिकउदयोऽस्तमयो वा धर्मो यस्य तम् (देवम्) स्वतःप्रकाशयुक्तम् (अमीवचातनम्) दुष्टरो-गनिवारकम् (अग्निम्) सूर्यात्मानम् (अध्वरे) विज्ञानयज्ञे (उप—स्तुहि) वर्णय ॥

सूर्यो हि प्रकाशं कृत्वा तमोनिवार्य बुद्धितत्त्वं प्रसार्य जग-तश्चेतयितृत्वात् कविः । उदयास्तौ चाऽस्य यथानियमं सत्यतया भवतोऽतःसत्यधर्मा । सर्ववस्तुप्रकाशकत्वाद्देवः । किरणैः शोधकत्वादमीवचातनः । तेजोमयत्वादग्निः । स हि सूर्य्यगुणा-न्वेषणपरेण जनेन स्तोतव्योवर्णनीय इत्युपदेशः ॥ ऋग्वेदेऽपि १ । १२ । ७ इत्थमेव पाठः ॥१२॥ (३२)

भाषार्थः—(कविम्) सर्वज्ञ (सत्यधर्माणम्) सत्यधर्मी (देवम्) प्रकाशक (अमीवचातनम्) रोगविनाशक (अग्निम्) तेजस्वी परमात्मा की (अध्वरे) ब्रह्मयज्ञादि में (उप—स्तुहि) उपासना और स्तुति कर ॥

भौतिक पक्ष में—(कविम्) जगाने वाले (सत्यधर्माणम्) नियम से न डिगने वाले (देवम्) प्रकाशयुक्त (अमीवचातनम्) रोगनिवारक (अग्निम्) सूर्य्याग्नि का (अध्वरे) विज्ञानकाण्ड में (उप—स्तुहि) वर्णन कर ॥

मनुष्य को विहित है कि वह विज्ञान (साइंस) के प्रसंग में सूर्य्य की

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्तुति करे कि सूर्य्य जगाने वाला है क्योंकि उस के उदय से अन्धियारा मिटता, चान्दना होता, निद्रा और तमोगुण निवृत्त होता है, जिस से यह कहा जाता है कि बुद्धि का प्रेरक होने से कवि अर्थात् मेधावी है। वह सत्यधर्मा है, क्योंकि उस के उदय अस्त नियमबन्धू होते हैं। वह प्रकाशक होने से देव है। उस के प्रकाश के साथ गरमी फैलती है, गरमी से वायु बहता है, वायु बहने से सडन निवृत्त होती है और सडन रोगों की उत्पादक है, बस सड़न का निवारक होने से सूर्य्य रोगनिवारक है॥ ऐसा ही पाठ ऋग्वेद १। १२। ७ में आया है॥ १२॥ (३२)

अथ त्रयोदशी-सिन्धुद्वीपेनाऽम्बरीषेण तृतेनाऽऽप्रेण वा दृष्टा।

ऋग्वेदे आपोदेवता अत्र तु प्रसङ्गादनुक्तोऽप्यऽग्निरेव।

गायत्री छन्दः॥

१२३२३१ २३ १ २ ३१२

शन्नोदेवीरभिष्टये शन्नोभवन्तु पीतये।

२३ ३१ २

शंयोरभिस्रवन्तु नः॥ १३॥ (३३)

पदपाठः-शम् अ०। नः ६। देवीः १=२। अभिष्टये ४। शम् अ०। नः ६। भवन्तु क्रि०। पीतये ४। शंयोः अ०। अभि-स्रवन्तु क्रि०। नः ४॥

अन्वितपदार्थः-(देवीः) दिव्याः परमात्मशक्तयः (नः) अस्माकम् (अभिष्टये) इष्टानन्दप्राप्तये (शम्) सुखदात्र्यः (भवन्तु) भूयासुः (नः) अस्माकम् (पीतये) तृप्तये (शम्) सुखदा भूयासुः (नः) अस्मभ्यम् (शंयोः) सुखम् (अभि-स्रवन्तु) सर्वतः सिच्यासुः॥

पूर्वोक्तपरमात्मस्तुतिप्रार्थनोपासनाभिः किं फलमाप्स्यते तदाह-उक्तरीत्योपासितपरमात्मकृपया अस्माकं सदैव सुखं तृप्तिः सर्वतः शान्तिश्च भूयात्॥

भौतिकपक्षेऽपि-सएवार्थः। केवलं परमात्मशक्तिस्थाने भौतिकाग्निशक्तयइति योज्यम्। अर्थात् पूर्वोक्तरीत्याऽग्निसूर्य्या-

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दीनां गुणस्तवनज्ञानयजनादिभिरस्माकं सुखं तृप्तिः सर्वतः शान्तिश्च भूयादित्याशास्महे ॥

शमिति सुखनाम निघं० ३ । ६ ॥ देवाः इति पदनाम निघं० ५ । ६ ॥ स्त्रीलिङ्गेन तच्छक्तयोऽत्र ग्राह्याः । शंयोरिति पदनाम निघं ४ । १ ॥ तेन च प्राप्तव्यं गृह्यते ॥पीतये इत्यत्र स्थागापापचभावे ३ । ३ । ९५ इति क्तिन् । ईद्यति ६ । ४ । ६५ इत्यतईदित्यनुवर्त्त्य—घुमास्थागापाजहातिसां हलि ६ । ४ । ६६ इतीत्वम् ॥ देवीरिति प्रथमार्थे व्यत्ययेन द्वितीया ॥ ऋग्वेदे तु (१० । ९ । ४) शन्नो=आपो इति पाठः ॥१३॥ (३३)

भाषार्थः—(देवीः) परमात्मा की दिव्य शक्तियें (नः) हमारे (अभिष्टये) मन चाहे आनन्द के लिये (शम्) सुखदात्री (भवन्तु) होवें । (नः) हमारी (पीतये) तृप्ति के लिये (शम्) सुखदा होवें । किन्तु (नः) हमारे लिये (शंयोः) अभीष्ट सुख को (अभि—स्रवन्तु) वर्षावें ॥

परमात्मा की स्तुति उपासना का फलरूप आशिष इस मन्त्र में मांगा गया है कि उस की कृपा से इमें सब प्रकार सदा सुख मिले ॥

भौतिक पक्ष में भी—(देवीः) अग्नि आदि की दिव्य शक्तियां जानी हुई हम को सब प्रकार सदा सुखदायिनी हो सक्ती हैं । इस के लिये हम को सूर्य्यादि देवों की क्या २ शक्ति—सामर्थ्य है इस बात के जानने के लिये उस २ पदार्थ के गुणों का वर्णन यजन—मिलान करना चाहिये ॥ ऋग्वेद १० । ९ । ४ में "शन्नो" के स्थान में "आपो" ऐसा पाठ है और तदनुसार "आपोदेवता" है परन्तु यहां पाठ में "आपः" न होने से तथा आग्नेयपर्व के प्रकरण से अग्नि देवता की ही अनुवृत्ति जाननी चाहिये ॥

निघं० ३ । ६ ॥ ५ । ६ ॥ ४ । १ ॥ अष्टाध्यायी ३ । ३ । ९५ ॥ ६ । ४ । ६५–६६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १३ ॥ (३३)

अथ चतुर्दशी—उशनसा दृष्टा । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३१र २र ३ १ २

कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोषाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥ (३४)

पदपाठ-कस्य ६। नूनम् अ०। परीणसि७=२। धियः २ । जिन्वसि क्रि०। सत्पते सं०। गोषाताः १। यस्य ६। ते ६। गिरः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(सत्पते) हे सतां पालयितः ! (यस्य) उपासकस्य भक्तस्य (गिरः) वाचः (ते) त्वत्सम्बन्धे (गोषाताः) गोशब्देनाऽत्र सोम उच्यते, गाः सोमान् सन्वन्ति संभजन्ते यास्ता गोषाताः अमृतद्रवा इत्यर्थः । त्वाममृतवद्रसयुक्ताभिर्वाग्भिर्यः स्तौति, तस्य पुरुषस्य (कस्य) सुखस्य (परीणसि) परीणसः बह्वीः (धियः) प्रज्ञाः (नूनम्) निश्चयेन (जिन्वसि) प्रीणयसि । तं सुखदायिकाभिर्बुद्धिभिः पूरयसि इत्यर्थः ॥

हे सत्पते ! भक्तजनपरिपालक ! योऽमृतायमानैर्वचोभिस्त्वां स्तौति तं सुखदायकबुद्धितत्त्वेन पूरयसि ॥

भौतिकपक्षे-(सत्पते) सतां यजमानानां पालयितः ! (यस्य) यज्ञानुष्ठानशीलस्य (गिरः) वाचः (ते) त्वद्विषयिण्यः (गोषाताः) सोमसंभागकर्त्र्यो भवन्ति, तस्य यज्ञशीलस्य (कस्य, धियः) सुखस्य, प्रज्ञाः (परीणसि) बह्वीः (जिन्वसि) पूरयसि ॥

यो मनुष्योऽग्नौ सोमादिहोमपूर्वकं तद्विषयकमन्त्रपाठपुरस्सरं चाऽग्निं स्तौति तं मनुष्यं सोऽग्निरित्थं सुप्रयुक्तः सुस्तुतो विज्ञातगुणश्च सुखदायकबुद्धितत्त्वेन पूरयति । अग्निहोमेन वाय्वादिदेवप्रसादस्तेन चाऽन्नाद्याहारशुद्धिस्तया च बुद्ध्यादितत्त्वप्रसाद इति सुज्ञेयमेव ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कस्य=कमिति सुखनाम निघं० ३ । ६ ॥ परीणसा इति बहुनाम निघं० ३ । १ ॥ अत्र तु परीणसः इति द्वितीया-बहुवचनस्य स्थाने परीणसि इति सप्तमी व्यत्ययेन । ऋग्वेदे तु (८।७३।७) परीणस इत्येव साक्षात्पाठः ॥ "सत्पते" इत्यस्य स्थाने च "दम्पते" इति च पाठोऽन्तरम् ॥ धीरिति प्रज्ञानाम निघं० ३।९ ॥ १४ ॥ (३४) * इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ *

भाषार्थः—(सत्पते) हे सन्तों के रक्षक ! (यस्य) जिस की (गिरः) वाणी (ते) आप के विषय में (गोषाताः) अमृत भरी हैं, उस के लिये (कस्य) सुख की (परीणसि) बहुत सी (धियः) बुद्धियों को (जिन्वसि) भरपूर करदेते हो ॥

अर्थात् जो मनुष्य परमात्मा के भक्त हैं और अमृत भरी वाणी से परमात्मा का गुणगान करते हैं, उन्हें वह भक्तपरिपालक जगदीश सुख देने वाली बुद्धि से भरपूर कर देते हैं ॥

भौतिक पक्ष में—(सत्पते) यज्ञकर्त्ताओं के पालक ! अग्ने ! (यस्य) जिस की (गिरः) वाणी (ते) तेरे विषय (गोषाताः) सोमादि ओषधियों का विभाग करने वाली हैं उस को तू (कस्य) सुख की (परीणसि) बहुतसी (धियः) बुद्धियों को (जिन्वसि) प्राप्त कर देता है ॥

अर्थात् अग्नि यज्ञकर्त्ताओं का पालक रक्षक है, वह उस मनुष्य के बुद्धितत्त्व को बढ़ाता है और पुष्ट शुद्ध करता है जो सोमादि का होम और अग्न्यादि देवों के गुणवर्णनपूर्वक यज्ञ करता है । क्योंकि अग्नि में होम करने से वायु आदि की शुद्धि, उस से अन्नादि भोज्य पेय पदार्थों का शोधन, उस से शरीरस्थ सांख्यप्रतिपादित बुद्धितत्त्व का परिशोधन वृद्धि और आप्यायन होता है । यह जानना सुगम ही है ॥

निघण्टु ३।६॥३।१॥३।९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ऋग्वेद ८।७३।७ में तो परीणसि=परिणसः । सत्पते=दम्पते, पाठ है ॥१४॥ (३४)

* यह तीसरी दशति पूर्ण हुई ॥३॥ *

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र प्रथमा—शंयुना दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे । प्र प्र-
२ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१॥(३५)

पदपाठः=यज्ञा यज्ञा ७ । वः ६ । अग्नये ४=२ । गिरा गिरा ३ । च अ० । दक्षसे ४=२ । प्र प्र अ० । वयम् १ । अमृतम् २ । जातवेदसम् २ । प्रियम् २ । मित्रम् २ । न अ० । शंसिषम् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-परमात्मोपदशति-हे मनुष्याः! (वयम्) अहं परमेश्वरः । अस्मदोहयोश्च १।२।५९॥ इति बहुवचनप्रयोगः। (वः) युष्माकम् (यज्ञा यज्ञा) सर्वेषु यज्ञेषु (गिरा गिरा) सर्वाभिर्वाग्भिर्ऋग्भिः (अग्नये) आत्मानं भौतिकं वा (दक्षसे) बृहन्तम् (अमृतम्) अमनुष्यम् (जातवेदसम्) वेदप्रकाशकं परेशं, ज्ञानोद्बोधकं भौतिकं वा (प्रियं, मित्रं, न) अनुकूलम्, सुहृदमिव (प्र प्र-शंसिषम्) प्रशंसामि उपदिशामि ॥

सर्वेषु ज्ञानयज्ञेषु सर्वाभिः वाग्भिर्ऋग्भिः परमात्मनः स्तुत्यादिकं विधेयं, स हि सर्वस्य जगतः सुहृद् ॥

यज्ञा यज्ञा इति वीप्सायां द्वित्वम् । सुपां सुलुगिति चाऽऽकारादेशः । अग्नये दक्षसे इति च तेनैव द्वितीयार्थे चतुर्थ्यौ । प्रप्र इति-प्रसमुपोदःपादपूरणे (पा० ८।१।६) इति प्रशब्दस्य द्विरुक्तिः पादपूरणार्था । ऋग्वेदेऽपि ६।४८।१। इत्थमेव पाठः ॥१॥३५

भाषार्थः हे [मनुष्यो !] (वयम्) हम (वः) तुम्हारे (यज्ञा यज्ञा) यज्ञ यज्ञ में और (गिरा गिरा च) वाणी वाणी २ [ऋचा ऋचा] से (अग्नये) ज्ञानस्वरूप (दक्षसे) महान् (अमृतम्) अमर (जातवेदसम्) वेदप्रकाशक [परमात्मा अपने आप] को (प्रियं, मित्रं न) प्यारे, मित्र के समान (प्र, प्र, शंसिषम्) उपदेश करते हैं ॥

परमात्मा उपदेश करते हैं कि हम तुम्हारे समस्त ज्ञानयज्ञों में समस्त

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वेदमन्त्रों से तुम्हें अपना उपदेश करते हैं अर्थात् अपने ज्ञानस्वरूप, महान्, अमर, वेदप्रकाशक, ईश्वरभाव को जताते हैं॥

भौतिकपक्षमें–(वयम्) हम (वः) तुम्हारे (यज्ञा यज्ञा) यज्ञ २ में (गिरा गिरा, च) और मन्त्र २ से (दक्षसे) बड़े भारी (अमृतम्) देव (जातवेदसम्) बुद्धिप्रसारक (अग्नये) अग्नि को (प्रियं, मित्रं न) प्रिय,मित्र के समान (प्र प्र, शंसिषम्) बताते हैं ॥

अर्थात् परमात्मा बताते हैं कि हे मनुष्यो! तुम्हारे यज्ञ २ में हम ऋचा २ से तुम को यह बताते हैं कि अग्नि महान्, देव, बुद्धिप्रसारक है, उस से उपयोग लो, वह तुम्हारा हितसाधक मित्र के समान है ॥

अष्टाध्यायी ८।१।६ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ६।४८।१ में भी ऐसा ही पाठ है ॥ १ ॥ (३५)

अथ द्वितीया–भर्गेण दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया । पाहि
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
गीर्भिस्तिसृभिरूर्जांपते पाहि चतसृभिर्वसो॥२॥(२६)

पदपाठः–पाहि क्रि० । नः २ । अग्ने सं० । एकया ३। पाहि क्रि० । उत अ० । द्वितीयया ३। पाहि क्रि० । गीर्भिः ३। तिसृभिः ३। ऊर्जाम्पते सं० । पाहि क्रि० । चतसृभिः ३। वसो सं० ॥

अन्वितपदार्थः–(ऊर्जांपते) हे बलपते! (वसो) अन्तर्यामिन् (अग्ने) पूजनीयेश्वर ! (नः) अस्मान् (एकया) ऋग्वेदस्थयाऋचा (पाहि) रक्ष। (उत) तथा (द्वितीयया) यजुःस्थया वाचा(पाहि)। (तिसृभिः) ऋग्यजुःसामस्थाभिः (गीर्भिः) वाग्भिः(पाहि) । (चतसृभिः) ऋग्यजुः सामाऽथर्वस्थाभिर्वाग्भिः (पाहि)॥

मनुष्या हि राजपुरुषादिभिस्तथा न रक्ष्यन्ते यथा सदुपदेशेन। तस्मात् सर्वदा वेदचतुष्टयस्थोपदेशेनाऽस्मान् पाहि इति परेशः प्रार्थनीयः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भौतिकपक्षे—(ऊर्जांपते) रसादिद्रव्याणां पालक ! (वसो) अष्टवसुष्वऽन्यतम ! (अग्ने) अग्ने ! (नः) अस्मान् (एकया, पाहि, उत, द्वितीयया, पाहि, तिसृभिः, गीर्भिः, पाहि, चतसृभिः, पाहि,) चतुर्वेदोक्तरीत्या रक्ष ।

अग्निर्हि वृष्ट्यादिरसस्य पालकः सुहुतः सन् वेदचतुष्टयोक्त-फलप्रदत्वेनाऽस्माकं रक्षक इति विज्ञाय सदा यजनं कर्त्तव्यम् ॥

ऊर्गिति अन्ननाम निघं० २।७ ॥ ऊर्ग्वैरसः । शतपथे ५।१।२।८ ऋग्वेदेऽपि (८।४९।९) इत्थमेव पाठः ॥२॥ (३६)

भाषार्थः—(ऊर्जांपते) हे बलपते ! (वसो) हे अन्तर्यामिन् ! (अग्ने) पूजनीयेश्वर ! (एकया) ऋग्वेद के उपदेश से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा करो । (उत) और (द्वितीयया) यजुर्वेद की वाणी से (पाहि) रक्षा करो । (तिसृभिः, गीर्भिः) ऋग्यजुःसामरूप त्रयी की वाणीसे (पाहि) रक्षा करो । (चतसृभिः) चारों [वेदों] से (पाहि) रक्षा करो ॥

क्योंकि मनुष्यों की रक्षा जिस प्रकार वेदों के उपदेश से हो सकती है उस प्रकार की राजा आदि भी नहीं कर सकते । इसलिये मनुष्यों को सदा परमेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह चारों वेदों के सत्योपदेश से हमारी रक्षा करे ॥

भौतिकपक्ष में—(ऊर्जांपते) रसादि के पालक ! (वसो) ८ वसुवों में एक (अग्ने) अग्ने ! (एकया, नः, पाहि) एक [ऋग्वेदस्थवाणी] से हमारी, रक्षा कर । (उत, द्वितीयया, पाहि) और, दूसरी [यजुर्वेदस्थ वाणी] से, रक्षा कर । (तिसृभिः, गीर्भिः, पाहि) तीन [ऋग्यजुःसाम की] वाणियों से, रक्षा कर । (चतसृभिः,पाहि) चारों [वेदोक्त] से, रक्षा कर ॥

अग्नि ही वृष्ट्यादि द्वारा रस का फैलाने वाला, वसुसंज्ञक देव है । वही यजन करने से हम को चार वेदों में लिखे अनुसार फलदायक होता है ॥

निघं० २।७ शतपथ ५।१।२।८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८।४९।९ में भी ऐसा ही पाठ है ॥२॥ (३६)

अथ तृतीया—शंयुना दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

CCO. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा । भरद्वाजे
३ १ २ ३ १ २
समिधानो यविष्ठ रेवत्पावक दीदिहि ॥३॥ (३७)

पदपाठः—बृहद्भिः ३। अग्ने सं० । अर्चिभिः ३। शुक्रेण ३। देव सं० । शोचिषा ३। भरद्वाजे ७। समिधानः १। यविष्ठ सं० । रेवत् १। पावक सं० दीदिहि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(देव) अलौकिकैश्वर्य ! (यविष्ठ) अतिशयेन महन् ! (पावक) पवित्रकर्त्तः, त्वम् (बृहद्भिः) महद्भिः (अर्चिभिः) किरणरूपैर्गुणैः (शुक्रेण) उज्ज्वलेन शुद्धेन (शोचिषा) तेजसा (भरद्वाजे) भरद्वले पुरुषार्थिनि पुरुषे (समिधानः) प्रकाशं कुर्वन् सन् (रेवत्) धनयुक्तं कुर्वन् (दीदिहि) दीप्यस्व ॥

हे देव ! हे महन् ! पापप्रणाशक ! स्वकीयैः शुद्धैर्गुणैः सह निर्मलेन तेजसा पुरुषार्थानुष्ठातरि पुरुषे अर्थात् तद्धृदये प्रकाशं कुर्वन् तं च विद्यादिधनेनाऽनुगृह्णन् ज्ञानं प्रापयेत्यर्थः ॥

भौतिकपक्षे—(देव) द्योतमान ! (यविष्ठ) बलवन् ! (पावक) शोधक (अग्ने) अग्ने ! त्वं (बृहद्भिः) महद्भिः (अर्चिभिः) स्फुलिङ्गैः (शुक्रेण) शुक्लेन (शोचिषा) तेजसा (भरद्वाजे) अन्नस्य स्थालीपाकादेर्धातरि यजमाने तद्गृहे इत्यर्थः (समिधानः) समिद्धः सन् (रेवत्) नानाविधधनयुक्तं सम्पादयन् (दीदिहि) दीप्यस्व ॥

अयं भावः—स्थालीपाकादिचरुमतो यजमानस्य गृहे सम्यक् प्रदीपितोऽग्निकुण्डेऽग्न्यागारे स्थापितोऽग्निः सर्वापन्निवारणपूर्वकं सर्वसुखसञ्चयप्रदो भवति, तस्मात्सर्वेहामकरणाय

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्वस्वगृहसम्बन्धिन्यग्न्यागारे सः स्थापयितव्यः ॥

बृहदिति महन्नाम निघं० ३।३॥ अर्चिरिति ज्वलतो नाम निघं० २।८॥ शोचिरिति ज्वलतोनाम निघं० १।१७॥ बाज इति बलनाम निघं० २।९ अन्ननाम च तत्रैव २।७॥ रेवदिति-रयेर्मतौ बहुलम् इत्यतः सिद्धम्। दीदयतीति ज्वलतिकर्मसु निघं० १।१६ तस्माद्दीदिहि ॥ ऋग्वेदे ६।४८।९ तु "रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि" इति चतुर्थपादपाठेऽन्तरम् ॥३॥ (३७)

भावार्थः-(देव) दिव्यैश्वर्य ! (यविष्ठ) सब से बड़े ! (पावक) पवित्रकर्त्ता ! परमात्मन् ! आप (बृहद्भिः, अर्चिभिः) महान्, किरणरूप गुणों से (शुक्रेण, शोचिषा) शुद्ध, तेज के साथ (भरद्वाजे) पुरुषार्थी उपासक में (समिधानः) प्रकाश करते हुवे (रेवत्) उसे विद्यादिधनयुक्त करते हुवे (दीदिहि) प्रकाश कीजिये ॥

भौतिकपक्ष में-(देव) चमकते ! (यविष्ठ) दहकते ! (पावक) शोधक ! (अग्ने) अग्ने ! तू (बृहद्भिः, अर्चिभिः) भारी, लपटों से हुवे (शुक्रेण, तेजसा) श्वेत, तेज से (भरद्वाजे) स्थालीपाकादि अन्नवाले यजमान के यहां (समिधानः) प्रदीप्त होता हुवा (रेवत्) नानाविध धनादियुक्त करता हुवा (दीदिहि) सुलग ॥

तात्पर्य यह है कि चमकता, दहकता, घर द्वार आदि को शुद्ध करता, भारी लपटों वाला, उज्ज्वल तेजस्वी अग्नि, प्रत्येक यजमान के घर के अग्न्यागार नामक (कमरे) स्थान में सुलगता रहना चाहिये । ऐसा करने से सर्व रोगादि की निवृत्ति होकर विद्या धनादि पदार्थों की वृद्धि होती है ॥

निघं० ३।३॥२।८॥१।१७॥२।९॥२।७॥१।१६ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (६।४८।९) में चतुर्थपाद में केवल "रेवन्नःशुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि" इतना पाठान्तर है ॥३॥ (३७)

अथ चतुर्थी-वसिष्ठेन दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १२ ३१२ ३ २ ३ २

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः। यन्तारो ये

CCO. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३१२ २२ ३ १ २

मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥४॥ (३८)

पदपाठः—त्वे ६। अग्ने सं०। स्वाहुत सं०। प्रियासः १। सन्तु क्रि०। सूरयः १। यन्तारः १। ये १। मघवानः १। जनानाम् ६। ऊर्वम् २। दयन्त क्रि०। गोनाम् ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(स्वाहुत) सुष्ठूपासित! (अग्ने) ज्ञानात्मन्! (ये), (त्वे) तव (प्रियासः) प्रियाः (सूरयः) स्तोतारः ते, (मघवानः) विद्यादिधनवन्तः (जनानां, यन्तारः) मनुष्याणां, नेतारो राजानः (सन्तु) भवन्तु (गोनाम्) गवाम् (ऊर्वम्) समूहम् (दयन्त) रक्षन्तु ॥

अयं भावः—ये मनुष्याणां राजानः सन्ति ते भगवद्भक्ताः, ईश्वरप्रियाः, विद्यादिधनवन्तो, गवां रक्षकाश्च भवन्तु ॥

भौतिकपक्षे—(स्वाहुत) सुष्ठु आहुत! (अग्ने) अग्ने! (ये) पुरुषाः (त्वे) तव (प्रियासः) यजमानाः इतिभावः। ते, (सूरयः) स्तोतारोगुणज्ञाः (मघवानः) धनवन्तः (जनानां, यन्तारः) मनुष्याणां, नेतारः (सन्तु) (गोनाम्) गवाम् (ऊर्वम्) समूहम् (दयन्त) रक्षन्तु ॥

ये मनुष्याः अग्निविद्यां विज्ञाय तदुपयोगज्ञाः सन्ति, ते सर्वप्रियाः, यज्ञशीलाः, विद्वांसः, धनवन्तः, राजानः, गोरक्षकाश्च भवन्ति भवन्तु वा ॥

त्वे=युष्मच्छब्दस्य षष्ठ्येकवचने—सुपांसुलुक् पूर्वसवर्णाच्छेयाडा० (पा० ७।१।३९) इत्यादिना विभक्तेः शेभावे सिद्धम्॥ प्रियासः=इत्यत्र, आज्जसेरसुक् (पा० ७। १। ५०) इत्यसुगागमे रूपम्॥ सूरिरिति स्तोतृनाम निघं० ३। १६॥ यन्तारः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इण् गतौ, शतरि प्रथमाबहुवचनम् ॥ मघमिति धननाम निघं० २ । १० ॥ तद्वन्तोमघवानः ॥ उरु इति बहुनाम निघं० ३ । १॥ अत्र—वाच्छन्दसि (पा० । ६ । १। १०६) इति पूर्वरूपाऽभाव-पक्षाश्रयात्, वोरुपधायादीर्घइकः (पा० ८ । २ । ७६) इत्यनेन दीर्घादेशे ऊर्वमिति सिद्धम् ॥ गोनाम् इत्यत्र-ह्रस्वनद्यापोनुडि-त्यतो (पा० ७ । १ । ५४) नुडित्यनुवर्त्त्य, श्रोग्रामण्योश्छन्दसी-(पा० ७ । १ । ५६) त्यतश्छन्दसीति चाऽनुवर्त्त्य, गोःपादान्ते (पा० ७।१। ५७) इत्यनेननुट् ॥ ऋग्वेदेऽपि ७।१६। ७ ॥ ४॥ (३८)

भाषार्थः-(स्वाहुत) अच्छे प्रकार ध्यान किये हुवे ! (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ! (ये) जो लोग (त्वे) आप के (प्रियासः) प्यारे (सूरयः) स्तुतिकर्त्ता हैं, वे (मघवानः) विद्यादिधनयुक्त और (जनानां, यन्तारः) मनुष्यों के नेता राजा वा उपदेष्टा (सन्तु) होवें और (गोनाम्) गौओं के (ऊर्वम्) बा-हुल्य वा समूह को (दयन्त) रक्षित करें ॥

जो लोग मनुष्यों के अग्रणी मुखिया उपदेष्टा वा राजा हों उन्हें ईश्वर का भक्त, ईश्वर का प्यारा, विद्यादिधनयुक्त और गौ आदि का रक्षक, होना चाहिये ॥

भौतिक पक्ष में-(स्वाहुत) अच्छे प्रकार आहुत ! (अग्ने) अग्ने ! (ये) जो लोग (त्वे) तेरे (प्रियासः) प्यारे हैं, वे (सूरयः) विद्वान् गुणज्ञ, (मघवानः) विद्यादिधनवान्, (जनानां, यन्तारः) मनुष्यों के नेता अग्रणी मुखिया उप-देष्टा वा राजा (सन्तु) हों और (गोनाम्) गौ आदि के (ऊर्वम्) समूह की (दयन्त) रक्षा करें ॥

भावार्थ यह है कि जो मनुष्य अग्निविद्या के द्वारा अग्नि से उपयोग लेना जानते हैं, वे सर्वप्रिय, यज्ञशील, विद्वान्, धनवान्, मुखिया अगुवा वा राजा और गवादि पशुवों के रक्षक, होने चाहियें और होते हैं ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९॥ ७ । १ । ५०॥ ६ । १ । १०६॥ ८ । २ । ७६॥ ७ । १ । ५४ ॥ ७ । १ । ५६ ॥ ७ । १ । ५७ ॥ निघण्टु ३ । १६ ॥ २ । १० ॥ ३ । १ ॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद में भी ७ । १६ । ७ ऐसा पाठ है ॥ ४ ॥ (३९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ पञ्चमी—भारद्वाजेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहतीछन्दः ॥

२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः । अप्रोषि-

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

वान्गृहपते महाꣳ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥५॥ (३१)

पदपाठः—अग्ने सं० । जरितः सं० । विश्पतिः १ । तपानः १ । देव सं० । रक्षसः ६ । अप्रोषिवान् १ । गृहपते सं० । महान् १ । असि क्रि० । दिवः ६ । पायुः १ । दुरोणयुः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(जरितः) हे स्तोतः पदार्थगुणवर्णयितः ! (देव) अलौकिकैश्वर्य्य ! (गृहपते) अस्माकं गृहाणां रक्षक ! (अग्ने) सत्यज्ञान ! त्वं (विश्पतिः) मनुष्याणां पालकः (रक्षसः, तपानः) दुष्टसन्तापकः (अप्रोषिवान्) प्रवासमकुर्वन् सर्वदा स्थिरः सन् (दिवः) द्युलोकप्रभृतिलोकस्य (पायुः) रक्षकः (दुरोणयुः) दुरोणं गृहं याति सः, गृहमत्यजन्वर्त्तमानः (महान्) पूज्यो (ऽसि) भवसि ॥

परमात्मा सर्वमूर्तामूर्तपदार्थगुणज्ञापकः, अलौकिकाश्चर्यैश्वर्य्यः, गृहपतिर्गृहवतां सर्वेषां प्राणिनां पालकः, मनुष्याणां स्वामी, दुष्टानां दण्डयिता, सर्वदा सर्वत्र निवसन्, सर्वलोकानां स्वस्वमर्य्यादायां रक्षकः, प्रतिगृहं प्रत्यात्मादिकं च संयोगेन मिश्रितं कुर्वन्, सर्वोत्पादकः, सर्वस्य पूज्योऽस्ति ॥

भौतिकपक्षे—(जरितः) वाग्रूपेण सर्वव्यवहारप्रवक्तः ! (देव) त्रयस्त्रिंशत्स्वन्यतम ! (गृहपते) गार्हपत्य ! (अग्ने) त्वम् (विश्पतिः) मनुष्याणां रक्षकः (रक्षसः, तपानः) दुष्टशत्रूणां सन्तापकारकः (अप्रोषिवान्) सङ्गाऽन्यागारे स्थापितः, (दिवः, पायुः) प्रकाशस्य, पालयिता (दुरोणयुः) प्रतिगृहं गार्हपत्याग्नि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्वरूपेण निवसन् (महान्) हवनीयः (असि) भवसि ॥

अग्नेर्वाय्यूपत्वं व्याख्यातपूर्वमेव, सहि गृहस्थैः सदैव स्वस्व-गृहसम्बन्धिन्यग्न्यागारे निरन्तरं स्थापयितव्यः। एवं सति गृहस्य रक्षणं तेन जायते, सर्वदुष्टरोगादिशत्रूणां विनाशश्च। तस्मात् सर्वैः सदा हवनीयः सुप्रयोक्तव्यश्चास्ति ॥ अत्र गृहशब्दस्य प्रायःप्रयोगात् गृहमेधिनां गार्हपत्याग्निना विशिष्टः सम्बन्धो न तथाऽन्याश्रमिणामित्यपि सूच्यते ॥

जरिता इति स्तोतृनाम निघं० ३ । १६ ॥ विश इति मनुष्यनाम निघं० २ । ३ ॥ महयत्यर्चतिकर्मा निघं० ३ । १४। दुरोणे इति गृहनाम निघं० ३ । ४ ॥ ऋग्वेदे तु (८ । ४९ । १९), गृहपतिरिति पाठेऽन्तरम् ॥ ५ ॥ ३९ ॥

भाषार्थः-(जरितः) सर्व पदार्थों के गुण बताने वाले! (देव) अलौकिक ऐश्वर्य वाले! (गृहपते) हमारे घरों के स्वामिन्! (अग्ने) हे परमात्मन्! आप (विश्पतिः) मनुष्यों के रक्षक और (रक्षसः, तपानः) राक्षसों के सन्तापक (अप्रोषिवान्) कभी प्रवास न करने वाले (दिवः) द्युलोकादि लोकों के (पायुः) रक्षक (दुरोणयुः) घर २ में ओत प्रोत और (महान्) पूजनीय (असि) हैं ॥

अर्थात् परमात्मा ऊपर कहे गुणों से युक्त सर्व काल में सब का पूज्य है ॥

भौतिक पक्ष में-(जरितः) वाणीरूप से वर्णन करने वाले! (देव) ३३ देवों में एक! (गृहपते) गार्हपत्य नाम (अग्ने) अग्ने! तू (विश्पतिः) मनुष्यों का रक्षक (रक्षसः, तपानः) दुष्ट शत्रु का, नाशक (अप्रोषिवान्) अग्न्यागार से अलग न करने योग्य (दिवः, पायुः) प्रकाश का, रक्षक और (दुरोणयुः) घर २ से मिला हुवा (महान्) हवन द्वारा प्रयोजनीय (असि) है ॥

तात्पर्य यह है कि अग्नि वाणीरूप से प्रत्येक पदार्थ के गुणों का बखानने वाला, गार्हपत्य नाम एक देव है, जो अपने गुणों से मनुष्यों का रक्षक, रोगादि दुष्टशत्रु का नाशक, सदा अग्न्यागार नाम कमरे में रक्खा हुवा, घर २ में निरन्तर रखने योग्य और हवनादि की रीति से नानाविध शिल्प

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

का उपयोगी है ॥ इस में कई वार गृह शब्द के आने से यह भी सूचित होता है कि गृहस्थों का ही गार्हपत्य नाम अग्नि से विशेष सम्बन्ध है । ऐसा अन्य आश्रमों का नहीं ॥ (अग्नि से वाणी–देखो १ दशति ७ वें मन्त्र का भाष्य) निघं० ३ । १६ ॥ २ । ३ ॥ ३ । १४ ॥ ३ । ४ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (८ । ४९ । १९) "में गृहपतिः" इतना पाठान्तर है ॥५॥(३९)

अथ षष्ठी–प्रस्कण्वेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहतीछन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳ राधोअमर्त्य । आदाशुषे

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

जातवेदो वहा त्वमद्यादेवाꣳ उषर्बुधः ॥६॥ (४०)

पदपाठः–अग्ने सं० । विवस्वत् २ । उषसः ६ । चित्रम् २ । राधः २ । अ० मर्त्य सं० । आ अ० । दाशुषे ४ । जातवेदः सं० । वह क्रि० । त्वम् १ । अद्य अ० । देवान् २ । उषर्बुधः २ ॥

अन्वितपदार्थः–(अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! (अमर्त्य) मरणधर्मरहित ! (जातवेदः) वेदप्रकाशक ! भगवन् ! (त्वम्), (राधः) भक्तिधनं (दाशुषे) दत्तवते उपासकाय (उषसः) प्रभातकालविशेषदेवतायाः (विवस्वत्) विविधाच्छादनोपेतम् (चित्रम्) बिम्बम् (उषर्बुधः) उषःकालप्रबुद्धान् देवान् पञ्चज्ञानेन्द्रियाख्यान् च (अद्य) अधुनोपासनासमये प्रभातकाले (आ–वह) प्रापय, कृपयेति शेषः ॥

ये भक्ताः प्रभात उत्थाय ज्ञानस्वरूपं वेदप्रकाशकं भगवन्तं परमात्मानमुपासते तेभ्यः कृपया विविधाच्छादनोपेतमिवोषसश्चित्रं प्रभातप्रबुद्धानीन्द्रियाणि च स आवहति दयालुः ॥

भौतिकपक्षे–(जातवेदः) प्रकाशेन सर्वभूतचैतन्यकृत् (अमर्त्य) देव ! (अग्ने) अग्ने ! (राधः) हव्यधनं (दाशुषे) दत्तवते यज्ञशीलाय (त्वम्), (विवस्वत्, उषसः, चित्रम् ; उषर्बुधः,

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

देवान्, अद्य, आ-वह)

अग्निरेव यज्ञशीलाय प्रभातकालीनं होमं कुर्वाणाय यजमानाय प्रतिदिनं प्रभातकालीनायाउषसो देवतायाश्चित्रंप्रभातोद्बुद्धान्यन्यानि चेन्द्रियाणि प्रेरयति, यतः सत्येवाग्निमये सूर्य्ये उषसो दर्शनं सर्वेन्द्रियचैतन्यं च जायते ॥

राध इति धननाम निघं० २।१०॥ दाशतीति दानकर्मा निघं० ३।२०तस्मात्-दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्चेति (पा०६।१।१२)निपात्यते क्वसुप्रत्ययान्तम् ॥ अद्या=इत्यत्र, निपातस्य च (पा० ६।३।१३६) इति, वहा = इत्यत्र, दृव्यचोऽतस्तिङः (पा० ६।३।१३५) इति दीर्घादेशः ॥ ऋग्वेदेऽपि १।१४।१ इत्थमेव पाठः ॥६॥ (४०)

भाषार्थः-(जातवेदः) वेदों के प्रकाशक ! (अमर्त्य) अमर ! (अग्ने) परमात्मन् ! (त्वम्) आप (राधः) भक्तिधन (दाशुषे) देने वाले उपासक के लिये (उषसः) प्रभात वेला के (विवस्वत्) रंग बिरंगे वस्त्र से धारे हुवे (चित्रम्) चित्र और (उषर्बुधः) प्रभात में चेतने वाले (देवान्) ज्ञानेन्द्रियों को (अद्य) अब (आ-वह) प्राप्त कराइये ॥

जो मनुष्य प्रभात उठ कर परमात्मा का ध्यान उपासना करते हैं उन्हें दयालु जगत्पिता, प्रभात वेला के विचित्र चित्र और ज्ञानेन्द्रियों की चेत देते हैं; जिस से वे उस २ इन्द्रिय से धर्मानुकूल कार्य लेते हुवे सुखी होवें ॥

भौतिकपक्ष में-(जातवेदः) प्रकाश से ज्ञान के उभारने वाले ! (अमर्त्य) देव ! (अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (राधः) हव्यरूप धन (दाशुषे) देने वाले याज्ञिक के लिये (विवस्वत्) विविध वस्त्र से धारे हुवे (उषसः, चित्रम्) प्रभात वेला के, चित्र और (उषर्बुधः, देवान्) प्रभात में चेतनेवाले, इन्द्रियों को (अद्य) अब (आ-वह) प्राप्त करा ॥

आशय यह है कि मनुष्य को प्रभात उठकर होम करना चाहिये। अग्नि के ही प्रभाव से सूर्य से उषा=प्रभातवेला उत्पन्न होती है जो लाल २ वस्त्र से धारती हुई अपने चित्र को दिखाती है और जिस के प्रभाव से मनुष्यों के रात्रि में मृतप्राय ज्ञानेन्द्रिय फिर जागते हैं। जो मनुष्य प्रभातयाजी हैं

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वे विशेष सुखपूर्वक उषा के उदय और ज्ञानेन्द्रियों की चेत को पाते और सुखी होते हैं ॥

निघं० २ । १० ॥ ३ । २० ॥ अष्टाध्यायी ६ । १ । १२ ॥ ६ । ३ । १३५ ॥ ६ । ३ । १३६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऐसा ही पाठ ऋग्वेद १ । ४४ । १ में भी है ॥ ६ ॥ (४०)

अथ सप्तमी–तृणपाणिना दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

त्वं नश्चित्रऊत्या वसोराधाꣳसि चोदय । अस्य

३ १र ३ २र ३ १२ ३ २ ३ २ ३१र ४ २र

रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदागाधन्तुचे तु नः ।७। (४१)

पदपाठः–त्वम् १। नः ६। चित्रः १। ऊत्या ३। वसो सं० । राधाꣳसि २। चोदय क्रि० । अस्य ६। रायः ६। त्वम् १। अग्ने सं० । रथीः १। असि क्रि० । विदाः क्रि० । गाधम् २। तुचे ४। तु० अ० । नः ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(वसो) सर्वप्राण्यऽप्राणिनिवासहेतो ! (त्वम्), (नः) अस्माकम् (ऊत्या) रक्षया सह (राधाꣳसि) विद्यादिधनानि (चोदय) अन्तर्यामितया प्रेरय। (अग्ने,) हे ज्ञान वारिधे ! (त्वम्), (अस्य, रायः) विद्यादेर्धनस्य (चित्रः) आश्चर्यमयः (रथीः) रंहिता नेता (असि) भवसि । (नः) अस्माकं (तुचे) अपत्याय (तु) (गाधम्) आश्रयं (विदाः) लम्भय ॥

ये परमेश्वरोपासकास्तदीयध्यानपरास्तदेकशरणास्सन्ति तांस्तदपत्यं च स दयालुर्विद्यादिधनेन रक्षयाऽपत्यसुखेन च संयुनक्ति । यतः सएव सर्वस्मिञ्जगति वर्त्तमानानां स्वामी रक्षकः प्रेरकोदाता चास्ति, न तत्सम आश्चर्यगुणकर्मस्वभावोऽपरः कश्चिदस्ति ॥

भौतिकपक्षे–(वसो) अष्टवसुष्वन्यतम ! (अग्ने) अग्ने ! (नः) अस्माकम् (ऊत्या) रक्षया (राधाꣳसि) रत्नादिध-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नानि (त्वम्), (चोदय) प्रापय । कुतः ।? (अस्य) युद्धादिनिर्जितस्य (रायः) धनस्य (त्वम्) त्वमेव (चित्रः) आश्चर्यगुणः (रथीः) नेता (असि) भवसीत्यतः, (तु) पुनरर्थे(तुचे) अपत्याय (गाधम्) आश्रयम् (विदाः) लम्भय ॥

मनुष्यैरग्निप्रयोगपूर्वकमाग्नेयास्त्रादिसाधनैस्स्वस्यरक्षणं दुष्टशत्रुजयस्तदीयधनप्राप्तिस्तया च स्वसन्तानाश्रयःसम्पादनीयः । अग्निर्ह्याश्चर्यगुणोन्वेषणेनाऽस्य प्रयोगविधिर्विज्ञातव्यः ॥

रथीरिति रंहते रूपम् । रंहतिश्च गतिकर्मसु निघं० २।१४॥ तुगित्यपत्यनाम निघं० २।२॥ ऋग्वेदेऽपि (६।४८।१) इत्थमेव पाठः ॥७॥ (४१)

भाषार्थः-(वसो) घट घट वासी ! (अग्ने) ज्ञान स्वरूप! (त्वम्) आप (नः) हमारी (ऊत्या) रक्षा के साथ (राधाꣳसि) विद्यादि धनों को (चोदय) प्राप्त कराइये, क्योंकि (त्वम्) आप ही (अस्य, रायः) इस, धन के (चित्रः, रथीः) विचित्र, दाता हैं । (तु) और (तुचे) सन्तान के लिये (गाधं, विदाः) आश्रय, दीजिये ॥

जो परमात्मा के प्यारे सदा उसी का भरोसा, शरण, आश्रय, रखते हैं, उसी के उपासक और आज्ञापालक रहते हैं, वह दयालु परमात्मा उन्हें और उन के सन्तानों को अनेकशः विद्यादि धनों से भरपूर करता और आश्रय देता है तथा उन की रक्षा करता है । क्योंकि वही सम्पूर्ण धन आश्रय और रक्षा के साधनों का स्वामी और उन में वास कर रहा है ॥

भौतिकपक्ष में-(वसो) ८ वसुओं में एक ! (अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (नः) हमारी (ऊत्या) रक्षा से (राधाꣳसि) रत्नादि धनों को (चोदय) प्राप्त करा । क्योंकि (त्वम्) तू (अस्य) इस युद्धादि में निर्जित (रायः) धन का (चित्रः) विचित्र (रथीः) नेता (असि) है । (तु) और (तुचे) सन्तान के लिये (गाधम्) आश्रय (विदाः) मिला ॥

अग्नि ८ वसुओं में एक विचित्र वसु है जिस के प्रभाव से मनुष्य अपनी रक्षा और शत्रु का पराजय करके उस के धनादि को पा सके हैं तथा अपनी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सन्तान के लिये आश्रय दिला सक्ते हैं। अग्नि आश्चर्य्य गुणों से ऊपर कहे कार्य्यों का साधक है उस के गुण खोजने और तदनुसार अग्नि को काम में लाना चाहिये ॥

निघं० २। १४ ॥ २। २ ॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखने चाहियें ॥ ऐसा ही पाठ ऋग्वेद (६। ४८। ९) में भी है ॥ ७ ॥ (४१)

अथाऽष्टमी—विरूपेण दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः ॥

२उ ३१२ ३ १ २ ३ २ ३ २ १र २

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः। त्वां विप्रासः

३ १ २ ३१२

समिधान दीदिव आविवासन्ति वेधसः ॥ ८ ॥ (४२)

पदपाठः—त्वम् १। इत् अ०। सप्रथाः १। असि क्रि०। अग्ने सं०। त्रातः सं०। कविः १। त्वाम् २। विप्रासः १। समिधान सं०। दीदिवः सं०। आ—विवासन्ति क्रि०। वेधसः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(समिधान) हे समिध्यमान ध्यायमान ! (दीदिवः) हे तेजस्विन् ! (त्वम्), (सप्रथाः) सर्वत्र विस्तृतः (ऋतः) सर्वगः सत्यः (कविः) क्रान्तदर्शी (असि) भवसि। (त्रातः) अस्मद्रक्षक ! (अग्ने) परमात्मन् ! (त्वाम्, इत्) त्वामेव (वेधसः, विप्रासः) मेधाविनो, ज्ञानिनः (आ—विवासन्ति) सर्वतः—परिचरन्ति ॥

परमात्मैव ध्यानयोग्यः, तेजस्वी, सर्वव्यापी, सत्यस्वरूपः, सर्वदर्शी, सर्वरक्षकश्चाऽस्ति। स वै सर्वैर्विद्वद्भिः सदा पूजनीयः ॥

भौतिकपक्षे—(समिधान) समिध्यमान ! (त्रातः) रक्षक ! (दीदिवः) दीप्तिमन् ! (अग्ने) अग्ने ! (त्वम्), (सप्रथाः) विस्तरणशीलः (ऋतः) प्राप्तः (कविः) वाग्रूपेणोच्चारयिता च (असि) भवसि (त्वाम्, इत्, वेधसः, विप्रासः, आ—विवासन्ति) ॥

उक्तगुणगरिष्ठमग्निं विद्वांसः परिचरन्ति होमशिल्पादिका-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

र्य्येषु सुष्ठूपयुञ्जते ॥

सप्रथा इतिपदनाम निघं० ४ । ३ ॥ सर्वतोगतिशीलः ॥ ऋत इतिपदनाम निघं० ५ । ४ ॥ विप्रइति, वेधाइति च मेधाविनाम निघं० । ३ । १५ ॥ विवासतीति परिचरणकर्मा निघं० ३ । ५ ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ४९ । ५ इत्थमेव पाठः ॥८॥ (४२)

भाषार्थः-(समिधान) ध्यान किये हुवे ! (दीदिवः) तेजोमय ! (त्रातः) रक्षक ! (अग्ने) परमात्मन् ! (त्वम्) आप (सप्रथाः) सर्वतोव्याप्त (ऋतः) सत्य और (कविः) ज्ञानी (असि) हैं (त्वाम्, इत्) आप को, ही (वेधसः) मेधावी (विप्रासः) विप्र लोग (आ-विवासन्ति) सर्वतोभाव से भजते हैं ॥

भौतिकपक्ष में-(समिधान) समिधाओं में स्थापित ! (दीदिवः) दहकते ! (त्रातः) रोग वा शत्रु से रक्षक ! (अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (सप्रथाः) साथ फैलने वाला (ऋतः) प्राप्त और (कविः) वाणीरूप से, बोलने वाला (असि) है । (त्वाम्, इत्, वेधसः, विप्रासः, आ-विवासन्ति) तुझ को, ही, मेधावी, जानने वाले लोग, सब ओर से, सुप्रयुक्त करते हैं ॥

मन्त्र में लिखे गुणों वाले अग्नि को ही सब विद्वान् काम में लाते हैं और उस की सहायता से बोलते, उस से अपनी रक्षा करते, उसे प्रदीप्त करते और सब काम सिद्ध करते हैं ॥

निघं० ४ । ३ ॥ ५ । ४ ॥ ३ । १५ ॥ ३ । ५ ॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । ४९ । ५ में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ८ ॥ (४२)

अथ नवमी-शुनः शेपेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ १ २

आनो अग्ने वयोवृधꣳरयिं पावक शꣳस्यम् । रास्वा च न

३ २ ३ १ २ ३ १ २

उपमाते पुरूस्पृहꣳ सूनीती सुयशस्तरम् ॥ १ ॥ (१३)

पदपाठः-आ अ० । नः ४ । अग्ने सं० । वयोवृधम् २ । रयिम् २ । पावक सं० । शꣳस्यम् २ । रास्व क्रि० । च अ० । नः ४ । उपमाते सं० । पुरूस्पृहम् २ । सूनीती ३ । सुयशस्तरम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(उपमाते) हे धातः ! (पावक) हे शोधक !

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(अग्ने) हे प्रकाशक! परमात्मन्! (नः) अस्मभ्यम् (वयोवृधम्) अन्नस्य वर्धकम् (शंस्यम्) उत्तमम् (रयिम्) जलम्; (पुरूस्पृहम्) बह्वभीष्टम् (सूनीती) सुनीत्या सह वर्तमानम् (सुयशस्तरम्) अत्यन्तशोभनं यशः (च) (नः) अस्मभ्यम् (आ, रास्व) सर्वतो, देहि ॥

भौतिकपक्षे–(उपमाते, पावक, अग्ने) धातर्जलवायुशोधक! अग्ने! [त्वम्] (नः, वयोवृधं शंस्यं, रयिं; पुरूस्पृहं, सूनीती, सुयशस्तरं, च, नः, आ–रास्व) पूर्ववत् ॥

सुहुतेनाऽग्निना प्रशस्तजलवृष्ट्यान्नाद्युत्पत्तिस्तया चाप्यायितैर्मनुष्यैः सुनीत्या सह यशोविस्तीर्णं कर्त्तव्यम्। यद्धि सर्वैः स्पृहणीयं कमनीयं भवति ॥

सूनीती इत्यत्र–सुपांसुलुगित्यस्योपरि (पा० ७।१।३९) इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम्। इत्यनेन वार्त्तिकेन ईकारादेशः। रास्वा इति, द्व्यचोतस्तिङः (पा०६।३।१३५) इतिदीर्घः। वय इत्यन्ननाम निघं० २।७॥ रयिरित्युदकनाम निघं० १।१२॥ ऋग्वेदेऽपि ८।४९।१४ इत्थमेव पाठः ॥९॥ (४३)

भाषार्थः–(उपमाते) हे धातः! (पावक) हे पतितपावन! (अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक! परमात्मन्! [आप] (नः) हमारे लिये (वयोवृधं, शंस्यं, रयिम्) अन्न उपजाने वाला, उत्तम, जल (च) और (सूनीती) सुन्दर नीति से सहित (पुरूस्पृहं, सुयशस्तरम्) अत्यन्ताऽभीष्ट, अति सुन्दर यश (रास्व) दीजिये।

भौतिकपक्ष में–(उपमाते, पावक) धारने वाले! शोधक! (अग्ने) अग्ने! (नः, वयोवृधं, शंस्यं, रयिम्) हमारे लिये, अन्न उपजाने वाले, उत्तम, जल (च) और (सूनीती, पुरूस्पृहं, सुयशस्तरम्) सुन्दर नीति के सहित, अत्यन्ताऽभीष्ट, अति सुन्दर यश (रास्व) दे॥

तात्पर्य्य यह है कि आग्नेयविद्या और यज्ञ द्वारा सुहुत अग्नि धाता अर्थात् जगत् को धारता है वही पवित्र जल वर्षाता है उस से उत्तम अन्न

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उपजाता है, उस से हृष्टि पुष्टि बल पुरुषार्थ द्वारा सुनीति के बर्त्ताव करने से सुन्दर कीर्त्ति बढ़ती है, जो सब मनुष्यों को चाहने योग्य है और चाहनी चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ७।१।३९॥६।३।१३५, निघण्टु ७।३॥१।१२ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऐसा ही पाठ ऋग्वेद ८।४९।१४ में है । परन्तु वहां "सुयशस्तरम्" के स्थान में "स्वयशस्तरम्" इतना पाठान्तर है ॥९॥ (४३)

अथ दशमी-सौभरिणा दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

२उ ३१२३ २ ३ १ २ ३र २र ३१र
यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् । मधोर्न
२र ३ १ २ ३१र २र ३ ३ १ २
पात्रा प्रथमान्यस्मै प्रस्तोमा यन्त्वग्नये ॥१०॥ (४४)

पदपाठः-यः १ । विश्वा १ । दयते क्रि० । होता १ । मन्द्रः १ । जनानाम् ६=४। मधोः ६। न अ० । पात्रा १। प्रथमानि १ । अस्मै ४। प्रस्तोमा १ । यन्तु क्रि० । अग्नये ४ ॥

अन्वितपदार्थः-(यः) योग्निः परमात्मा (विश्वा) विश्वानि (वसु) वसूनि विद्यादिधनानि (जनानाम्) जनेभ्यः (दयते) ददाति, (होता) कर्मानुकूलफलप्रापकः (मन्द्रः) मोदनः (अस्मै, अग्नये) (मधोः) मधुररसस्य (पात्रा) पात्राणि (न) इव (प्रथमानि) मुख्यानि (प्रस्तोमा) स्तोत्राणि (यन्तु) प्राप्नुवन्तु ॥

जगदीश्वरस्यैव कृपया निजानुष्ठितकर्मानुकुलं फलं सर्वैः प्राप्यते, यदि स न स्यात्तदा कृतहानिरकृताभ्यागमश्च प्रसज्येत तस्मात्सर्वैस्तस्य स्तोत्राणि पठितव्यानि, किं भूतानि-मुख्यानि कानीव-मधोः पात्राणीव मधुरवाग्युतानि ॥

भौतिकपक्षे-(होता) पदार्थानां प्रापणशीलः (मन्द्रः) मोदजनकः (यः) योऽग्निः (जनानां, विश्वा, वसु, दयते) मनुष्येभ्यो, नानाविधानि, धनरत्नानि, प्रयच्छति (अस्मै, अग्नये,

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मधोः, पात्रा, न, प्रथमानि, प्रस्तोमा, यन्तु)

परमात्मोपदिशति—हे मनुष्याः! योऽग्निर्युष्माभिर्हुतः सुगन्धमिष्टपुष्टरोगनाशकादिद्रव्याणां होता उपयुक्तस्थाने प्रापयिता मोदजनकश्चास्ति, तस्मादग्नये युष्माकं मुख्यानि स्तोत्राणि मधुरस्वरेणोच्चार्यमाणानि भवन्तु। येन तद्वर्णितगुणविज्ञानेन कृतकृत्याः सन्तो भवन्तु निजाभीष्टं च साध्नुयुः ॥

विश्वा, पात्रा, प्रस्तोमा, इत्येषु—सुपांसुलुगित्यादिना(पा० ७।१।३९) विभक्तेराकारादेशस्तेनैव च—"वसु" इत्यत्र विभक्तेर्लुक् च । दयते इति पदनाम निघं० ४।१ प्राप्त्यर्थोत्र ग्राह्यः ॥ वसु इति धननाम निघं० २।१०॥ होता—नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ क्षत्तृ होत्रित्यादिना (उणा० २।९५) सिद्धः। मन्द्रः—स्फायि तञ्चि वञ्चि शकिक्षिपि क्षुदि स्रपि तृपि दृपि वन्युन्दिदृविति वृत्यजिनीपदिमदीत्यादिना (उणा०२।११३) मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु इति धातोरक्। मन्दते मोदते मोदयति च स मन्द्रः ॥ जनानामिति—षष्ठी शेषे २।३।५०इत्यतः षष्ठीत्यनुवर्त्त्य, चतुर्थ्यर्थे बहुलंछन्दसि २।३।६२ इत्यनेन चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॥ मधोः—मनधातोः—मनेर्धश्छन्दसि (उणा०२।११६) अनेन, मन्यते बुध्यते येन स मधुर्बुद्धिहितकरो भोज्यपदार्थः ॥ नेत्यु "पमार्थीयउपरिष्टात् " (निरु० १ । ४) ॥ स्तोमशब्दश्च—अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभेत्यादिना (उणा० १।१४०) स्तुधातोः सिद्धः, प्रपूर्वकः सएव प्रस्तोमशब्दः। स्तौतीत्यर्चतिकर्मा निघं० ३।१४ ॥ ऋग्वेदे तु (८।९२।६) "यन्त्यग्नये" इत्यन्तरम् ॥१०॥ (४४)

* इति चतुर्थी दशतिः ॥४॥ *

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(यः) जो (होता) कर्मफलप्रदाता (मन्द्रः) आनन्ददाता (जनानाम्) मनुष्यों के लिये (विश्वा, वसु) सब प्रकार के, विद्यादि धन (दयते) देता है (अस्मै, अग्नये) इस, परमात्मा के लिये (मधोः, पात्रा, न) मधु के, पात्रों के, समान (प्रथमानि) मुख्य उत्तम (प्रस्तोमा) स्तोत्र (यन्तु) प्राप्त हों ॥

परमात्मा ही कर्म का फल पहुंचाता है उस के विना, किये कर्मों की हानि और न किये पापों का शिर मढा जाना होजाता। इसलिये उस दयालु के धन्यवादरूप मधुरवचन जैसे मानो मधुररस के पात्र हों ऐसे मधुर मुख्य स्तोत्र पढ़े जावें, वह हम को नाना प्रकार के विद्यादि रत्नरूप धन देता है ॥

भौतिकपक्ष में-(होता) होमने वाला (मन्द्रः) और उस से आनन्द का दाता (यः) जो (जनानाम्) मनुष्यों के लिये (विश्वा, वसु, दयते) सम्पूर्ण, सुखसाधन धन, देता है (अस्मै, अग्नये) इस, अग्नि के लिये (प्रथमानि, प्रस्तोमा) मुख्य, स्तुतियें (यन्तु) पहुंचें ॥

परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! जिस अग्नि में तुम सुगन्ध मिष्ट पुष्ट रोगनाशकादि नाना पदार्थों को होमते हो और उन पदार्थों को यथास्थान वायु बादल ओषधि वनस्पति आदि में पहुंचाता है और तुम्हें आनन्द देता है तथा सब धान्यादि धन देता है, तुम उस अग्नि के गुणों को स्वयं जानने और अन्योंको जताने के लिये साथ २ अग्नि की स्तुति किया करो अर्थात् अग्नि के गुण वर्णन वाले मन्त्रों का पाठ भी करते जाया करो। जिस से उस अग्निविद्या के द्वारा सब सुखों को प्राप्त करके कृतकृत्य होओ ॥

अष्टाध्यायी ७।१।३९॥२।३।५०॥२।३।६२॥ निघं० ४।१॥२।१०॥३।१४॥ निरुक्त १।५॥ उणादि १।९५॥२।१३॥२।११६॥१।१४०॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (८।९२।६) में "यन्त्यग्नये" इतना पाठ में भेद है ॥१०॥ (४४)

* यह चतुर्थ दशति पूर्ण हुई ॥४॥ *

—*—

अथ पञ्चमी दशतिस्तत्र प्रथमा-वामदेवेन दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहतीछन्दः॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे। प्रियं चेतिष्ठ-

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

मरतिꣳस्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्॥१॥ (४५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—एना ३। वः ४। अग्निम् २। नमसा ३। ऊर्जः ६। नपातम् २। आहुवे क्रि०। प्रियम् २। चेतिष्ठम् २। अरतिम् २। स्वध्वरम् २। विश्वस्य ६। दूतम् २। अमृतम् २॥

अन्वितपदार्थः—परमात्मोपदिशति—हे उपासकाः! अहम् (ऊर्जः, नपातम्) बलस्य, रक्षकं न पातयितारम् (प्रियम्) हितकरम् (चेतिष्ठम्) अतिशयेन प्रज्ञातारम् (अरतिम्) स्वामिनं (स्वध्वरम्) सुयज्ञम् पूजनीयं (विश्वस्य) सर्वस्य (दूतम्) कर्मफलप्रापकम् (अमृतम्) नित्यम् (अग्निम्) निजस्वरूपम्। (एना) एनेन (नमसा) स्तोत्रेण (वः) युष्मभ्यम् (आहुवे) उपदिशामि बोधयामि॥

मन्त्रोक्तस्तुतिरूपेण स्तोत्रेण परमात्माऽऽत्मस्वरूपं बोधयतीति भावः॥

भौतिकपक्षे—हे याज्ञिकाः! अहम् (ऊर्जः, नपातम्) अन्नस्य बलस्य च, रक्षकं (चेतिष्ठम्) अतिशयेन प्रज्ञापकम् (प्रियम्) हितकरम् (अरतिम्) गमनशीलं (स्वध्वरम्) सुष्ठु यज्ञसम्पादकम् (विश्वस्य) चराऽचरस्य जगतः (दूतम्) इतस्ततो गमयितारम् (अमृतम्) यथाऽमरोजीवात्मा देहान्निस्सरति देहान्तरं गच्छति च, न तु नश्यति तथैवाऽग्निरपि काष्ठादेर्वस्त्वन्तरं व्याप्नोति न नश्यत्यतः। (अग्निम्) (एना, नमसा) एतेन, स्तोत्रेण (वः) युष्मभ्यम् (आ—हुवे) उपदिशामि॥

मन्त्रोक्तगुणयुक्तोऽग्निः परमात्मना युष्मभ्यमुपदिश्यते तदनुकूलं विज्ञाय सर्वैः स उपयोक्तव्य इति भावः॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

एना-छान्दसोऽनन्वादेशेऽपि तादृशप्रयोगः विभक्तेराकारादेशश्च-सुपांसुलुगित्यादिना (पा०७।१।३९) ॥ ऊर्गित्यन्ननाम निघं० २।७ अन्नाद्बलं जायते ॥ चेत इति प्रज्ञानाम निघं० ३।९ अतिशयिताऽर्थे चेतिष्ठम् ॥ ऋग्वेदेऽपि ७।१६।१इत्थमेवपाठः ॥१॥(४५)

भाषार्थः-परमात्मा उपदेश करता है कि हे उपासको ! मैं (वः) तुम्हारे लिये (एना, नमसा) इस, स्तोत्र से (ऊर्जः, नपातम्) बल के, रक्षक (प्रियम्) हितकर (चेतिष्ठम्) ज्ञानदाता (अरतिम्) स्वामी (स्वध्वरम्) सुष्ठु पूजनीय (विश्वस्य, दूतम्) सब के, कर्मफल पहुंचाने वाले (अमृतम्) अमर (अग्निम्) अपने स्वरूप का (आ-हुवे) उपदेश करता हूं, जताता हूं ॥

इस मन्त्र तथा पूर्व मन्त्रों में वर्णित स्तोत्र के अनुसार परमात्मा अपने स्वरूप का बोध कराता है ॥

भौतिकपक्ष में-हे याज्ञिको ! मैं (वः) तुम्हारे लिये (ऊर्जः, नपातम्) अन्न और बल के, रक्षक (प्रियम्) हितसाधक (चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेताने वाले (अरतिम्) गमनशील (स्वध्वरम्) यज्ञ के सुधारने वाले (विश्वस्य) संसार भरके (दूतम्) दूत के समान इत उत पदार्थों के पहुंचाने वाले (अमृतम्) अमर (अग्निम्) अग्नि का (एना, नमसा) उक्त, गुणवर्णन से (आ-हुवे) उपदेश करता हूं ॥

मन्त्रोक्त गुणों के साथ अग्नि के जानने का परमात्सा उपदेश करता है। गुणों का वर्णन [बयान] स्तोत्र कहाता है। प्रकाश अग्नि का गुण है और प्रकाश से चेत होता है, इसलिये अग्नि को "चेताने वाला" कहा है। जिस प्रकार अमर जीवात्मा एक देह से दूसरे देह को धारण करता है, मरता नहीं, इसी प्रकार अग्नि एक काष्ठादि से निकल कर अन्य पदार्थों में प्रवेश करता है, मरता नहीं। इसलिये नित्य अग्नितत्त्व को "अमर" कहा गया है। जब तक देहादि में अग्नि रहता है तब तक देहादि का पात [नाश] नहीं होता, इस लिये इस को "बल का रक्षक" कहा है। कर्मकाण्ड का उपयोगी होने से "यज्ञ का सुधारने वाला" कहा है ॥

अष्टाध्यायी ७। १। ३९ ॥ निघण्टु २।७ ॥ ३।९ ॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ७।१६।१ में भी ऐसा पाठ है ॥१॥ (४५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ द्वितीया—भर्गेण दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहतीच्छन्दः ॥

३ १ २ ३ २३ २ ३ २ २ १ २
शेषे वनेषु मातृषु सन्त्वा मर्त्तास इन्धते । अतन्द्रो
३ १ २ ३ २ ३ २३ ३ १ २
हव्यं वहसि हविष्कृत आदिदेवेषु राजसि ॥२॥ (४६)

पदपाठः—शेषे क्रि० । वनेषु ७ । मातृषु ७। सम् अ० । त्वा २। मर्त्तासः १। इन्धते क्रि० । अतन्द्रः १। हव्यम् २। वहसि क्रि० । हविष्कृतः ६ । आत्, इत् अ० । देवेषु ७। राजसि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—आग्नेयकाण्डप्रकरणात्, हे अग्ने ! परमात्मन् ! त्वम् (वनेषु) भस्मान्तेषु वनेष्विव देहेषु (मातृषु) त्वदीय-साक्षात्काररूपोत्पत्तिभूमिषु हृदयभूमिषु (शेषे) शयनं करोषि, तत्र स्थितं (त्वा) त्वाम् (मर्त्तासः) मनुष्या मननशीला योगिनः (समिन्धते) समिद्धमग्निमिव प्रदीप्तं कुर्वन्ति । त्वत्प्रकाशेन प्रकाशिता भवन्ति इति भावः । ननु हृदयेषु शयनेन निद्रासि ? नेत्याह—(अतन्द्रः) निरलसः चेतयान इति यावत् सर्वदैकरसत्त्वेन जागरूकत्त्वात् । (हविष्कृतः) भोगाय कर्माणि कृतवतः (हव्यम्) कर्मफलम् (वहसि) प्रापयसि (आत्-इत्) अन्यच्च (देवेषु) पृथिव्यादिषु, इन्द्रियेषु, विद्वत्सु वा (राजसि) राजसे प्रकाशसे ॥

यथा भौतिकोऽग्निर्वनेषु वनकाष्ठेषु, मातृषु निजोत्पत्तिभूमिषु, मातृष्विव शेते; तथैव परमात्मा वनकाष्ठस्थानिषु देहेषु तत्रापि मातृषु निजसाक्षाद्भावप्राकट्यभूमिभूतासु हृदयभूमिषु, शेते विराजते । तत्रैव मनुष्यास्तं समिन्धते प्रकाशितं कुर्वन्ति साक्षात्कुर्वन्ति । सहि सर्वकृतकर्मफलप्रापणाय सर्वदा जागरूको हव्यं कर्मफलं प्रापयति सर्वत्राऽऽकाशादिषु विराजते च ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भौतिकपक्षे-हे अग्ने ! त्वम् (वनेषु) जङ्गलेषु (मातृषु) वृक्षाद्यात्मिकासु (शेषे) शयनं करोषि व्याप्तोऽसि, अतएव (मर्त्तासः) मनुष्याः (त्वा) त्वाम् (सम्-इन्धते) समिद्धं कुर्वन्ति (अतन्द्रः) चेतयानः प्रदीप्तः त्वं (हविष्कृतः) यजमानस्य (हव्यम्) हुतद्रव्यम् (वहसि) नयसि (आत्-इत्) अनन्तरम्-एव (देवेषु) वाय्वादिषु (राजसि) राजसे ॥

अयं भावः-काष्ठानि हि भौतिकाग्नेरुत्पत्तिभूमयो मातरः सन्ति, स हि तत्र व्याप्तोस्ति अतएव मनुष्या यदाऽग्निं समिद्धं कुर्वन्ति तदोद्भूतो जायते। काष्ठेषु सतएव तस्य समेधनेन प्रादुर्भावसम्भवात्। प्रदीपितश्च सोग्निर्यज्ञकर्त्तृणां हव्यद्रव्याणि नीत्वा वाय्वादिदेवेषु विराजते ॥

सम्, इन्धते इति-व्यवहिताश्च (वा० १।४।८०) इत्यनेन न दोषाय ॥ राजसि-इत्यत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। ऋग्वेदे तु८।७।६०"मात्रोः""हव्या" इति च पाठेऽन्तरम् ॥२॥ (४६)

भाषार्थः-आग्नेयकाण्ड के प्रकरण से हे अग्ने परमात्मन् ! आप (वनेषु) वनस्थानी देहों में (मातृषु) आप के साक्षात्काररूप प्रकट होने के स्थान हृदयों में (शेषे) शयन करते हो। (त्वा) आप का (मर्त्तासः) मनुष्य (सम्-इन्धते) ध्यान करते हैं। (अतन्द्रः) आलस्यरहित जागरूक आप (हविष्कृतः) कर्मकर्त्ता के (हव्यम्) कर्मफल को (वहसि) पहुंचाते हैं। (आत्-इत्) इस के अतिरिक्त (देवेषु) पृथिव्यादि सब पदार्थों में (राजसि) प्रकाश करते हैं।

जिस प्रकार वन के काष्ठों में अदृश्य रूप से अग्नि वर्त्तमान है और वे वन उस अग्नि को माता के समान गर्भ में ले रहे हैं और मनुष्य लोग उस छिपे अग्नि को मन्थन द्वारा प्रकट करके प्रदीप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार परमात्मा रूप महान् अग्नि, देह रूप भस्मान्तभावी वनों में व्याप रहा है, उसे योगी लोग अपने हृदयों की भूमियों में प्रकाशित पाते हैं। वे हृदयभूमियें पर-

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मात्मा को प्रकट (साक्षात्) करने के स्थान हैं। ध्यान रूप मन्थन से वह प्रकट होता है। शयन कहने से निद्रा की भ्रान्ति न हो इसलिये "अतन्द्रः" कहा गया है। अर्थात् वह दयालु आलस्यरहित सब को कर्मों का फल पहुंचाता है तथा सम्पूर्ण देहों इन्द्रियों तथा पृथिव्यादि भूतों में प्रकाश कर रहा है ॥

भौतिकपक्ष में—अग्ने ! तू (मातृषु, वनेषु, शेषे) गर्भरूप से तुझे छिपा हुवा धारने वाले, वनों में, शयन करता है (मर्त्तासः, त्वा, सम्—इन्धते) मनुष्य लोग, तुझे, प्रदीप्त करते हैं (अतन्द्रः) प्रदीप्त हुवा तू (हविष्कृतः, हव्यं, वहसि) यज्ञकर्त्ता के, हव्य को, पहुंचाता और (आत्—इत्) अनन्तर ही (देवेषु) वाय्वादि देवों में (राजसि) जा विराजता है ॥

अर्थात् वन के काष्ठ अग्नि की उत्पत्तिभूमि माता हैं, उन के गर्भ में छिपा हुवा अग्नि है, जिसे मनुष्य लोग यज्ञादि कार्य्यों में मथकर प्रदीप्त करलेते हैं और वह प्रदीप्त होकर हवन किये हुवे द्रव्यों को वाय्वादि देवों में पहुंचाता है ॥

अष्टाध्यायी (वा० १ । ४ । ८०) का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । ७ । ६० में "मात्रोः, हव्या" इतना पाठभेद है ॥ २ ॥ (४६)

अथ तृतीया—सौभरिणा दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१२ ३१२३१२ ३ १२३२ ३२३१२
अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः । उपोषुजात-
२२ २३१२ ३१२
मार्यस्य वर्द्धनमग्निं नक्षन्तु नोगिरः ॥ ३ ॥ (४७)

पदपाठः—अदर्शि क्रि० । गातुवित्तमः १ । यस्मिन् ७ । व्रतानि २ । आ—दधुः क्रि० । उप, उ, सु, अ० । जातम् २ । आर्य्यस्य ६ । वर्धनम् २ । अग्निम् २ । नक्षन्तु क्रि० । नः ६ । गिरः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(गातुवित्तमः) व्यत्ययेनैकवचनं, गातुवित्तमाः योगभूमिज्ञेषूत्तमाः उपासकाः (यस्मिन्) जगदीश्वरे (व्रतानि) कर्माणि (आ—दधुः) अर्पयन्ति, सः (अदर्शि) प्रादुर्भवति । तम् (सु—जातम्) सम्यग्घृदि प्रादुर्भूतम् (आर्य्यस्य) भक्तस्य सज्जनस्य (वर्धनम्) उन्नतिकरम् (अग्निम्) प्रकाश-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्वरूपम् (नः) अस्माकम् (गिरः) स्तुतयः (उप-उ-नक्षन्तु) उपस्थिता भवन्तु ॥

ये योगभूमिज्ञतमाः परमात्मभक्तास्तस्मिन्नेव सर्वाणि कर्माणि समर्प्य निष्कामाभवन्ति, स दयालुस्तेषां हृदयकुहरेषु प्रादुर्भूतो भवति, भक्तात्मोन्नतिं च करोति, अतः साक्षाद्भूतं तं कृपालुमस्मदीयाः स्तुतयः समुपतिष्ठन्ताम् ॥

भौतिकपक्षे-(गातुवित्तमः) यज्ञभूमिज्ञतमाः याज्ञिकाः (यस्मिन्) अग्नौ (व्रतानि) अग्निहोत्रशिल्पकार्य्यादीनि कर्मानुष्ठानानि (आ-दधुः) आहितानि कुर्वन्ति (अदर्शि) स प्रादुर्भवति (सु-जातम्) सुष्ठु प्रदीप्तं तम् (आर्य्यस्य, वर्धनम्) यजमानस्य, वर्धकम् (अग्निम्) भौतिकम् (नः) अस्माकम् याज्ञिकानां (गिरः) स्तुतयः (उप-उ-नक्षन्तु) उपस्थिता भवन्तु ॥

अग्निमुपयुयुक्षुणा तावद्यज्ञभूमिर्यज्ञस्थलं शिल्पसम्पादनस्थलं वा विज्ञातव्यं, सुष्ठु विज्ञाते च तस्मिन्, अग्नेः प्रादुर्भावः कार्य्यः। तथानुष्ठिते च स्वसाध्यकर्माणि अग्न्युपयोगसाध्यानि कर्माणि होमादिशिल्पान्तानि आधातव्यानि, एवं कृते सोऽग्निस्तमार्यं यजमानं शिल्पिनं च वर्धयति उन्नतं करोति। अतोऽस्माकं स्तुतयोऽग्निवर्णनरूपाः उपस्थिता भवन्तु। येन तद्गुणज्ञा वयं तमुपयुञ्जानाः स्वेष्टसुखानि प्राप्नुयाम ॥

अदर्शि-लकारव्यत्ययः। गातुरिति पृथिवी (भूमि) नाम निघं० १।१॥ व्रतमिति कर्मनाम निघं० २।१॥ ऋग्वेदे (८।१०३।१) तु "नक्षन्त" इत्यन्तरम् ॥३॥ (४७)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(गातुवित्तमः) योगभूमि को उत्तम प्रकार से जानने वाले लोग (यस्मिन्) जिस परमात्मा में (व्रतानि) कर्मों को (आ—दधुः) अर्पण करते हैं वह (अदर्शि) साक्षात् होजाता है, उस (सु—जातम्) साक्षात् हुवे (आर्यस्य) उपासक की (वर्धनम्) उन्नति करने वाले (अग्निम्) परमात्मा को (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियें (उप—उ—नक्षन्तु) उपस्थित हों ॥

अर्थात् जो योगभूमियों के उत्तम ज्ञाता योगी लोग उस परमात्मा को ही समस्त शुभ कर्मों का अर्पण कर देते हैं, और निष्काम भजन करते हैं, वह दयालु उन के हृदयकमलों में प्रकट होता है अर्थात् साक्षात् अनुभव में आता है। तथा उन आर्य्यों की वृद्धि—उन्नति करता है। इसलिये उस साक्षात् हुवे जगत्पिता को हमारी स्तुतियें प्राप्त हों ॥

भौतिक पक्ष में—(गातुवित्तमः) यज्ञ वा शिल्पभूमि के ज्ञाता (यस्मिन्) जिस अग्नि में (व्रतानि) कर्मों और शिल्पों को (आ—दधुः) आहित करते हैं वह (अदर्शि) प्रदीप्त होता है और उस (सु—जातम्) भले प्रकार प्रदीप्त हुवे (आर्य्यस्य) आर्य्य याज्ञिक और शिल्पी की (वर्धनम्) उन्नति करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (नः) हमारी (गिरः) वर्णन रूप वाणियें (उप—उ—नक्षन्तु) उपस्थित हों ॥

अर्थात् अग्नि से काम लेना चाहने वाले को प्रथम अग्निस्थापन की भूमि का ज्ञान अच्छे प्रकार प्राप्त करना चाहिये, तब अग्नि को प्रकट करना चाहिये, फिर जो कर्म करना हो अग्नि पर आरम्भ करना चाहिये। ऐसा करने से वह अग्नि उस आर्य्य यज्ञकर्त्ता वा शिल्पी की वृद्धि—उन्नति करता है। इस लिये हमारी वाणी जो अग्नि के गुण वर्णन करने वाली हैं वे उस में उपस्थित रहें, जिस से हम स्वयं अग्नि के गुणों को जानकर उपयोग लेते हुवे इष्ट सुखों को प्राप्त हों और अन्यों को करावें ॥

निघं० १।१ ॥ २।१ ॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८। १०३। १ में "नक्षन्त" इतना पाठभेद है ॥ ३ ॥ (४७)

अथ चतुर्थी—मनुना दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे। ऋचा यामि
३ २ ३ २ ३ १ २
मरुतो ब्रह्मणस्पते देवाअवो वरेण्यम् ॥ ४ ॥ (१८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-अग्निः १। उक्थे ७। पुरोहितः १। ग्रावाणः १। बर्हिः १। अध्वरे ७। ऋचा ३। यामि क्रि०। मरुतः १। ब्रह्मणस्पते सं०। देवाः १। अवः २। वरेण्यम् २॥

अन्वितपदार्थः-(उक्थे) स्तुतिरूपे वाङ्मये (अध्वरे) यज्ञे [पुरोहितादयःकल्प्यन्ते] (अग्निः)वागधिष्ठाता (पुरोहितः) पुरतोहितोभवति, (ग्रावाणः) ताल्वादिस्थानानि (बर्हिः) आसनम्, (देवाः) प्राणादयः (मरुतः) ऋत्विजः सन्ति कल्पिताः। (ब्रह्मणस्पते) हे वेदप्रकाशक! भगवन्! अहम् (ऋचा) वेदमन्त्रेण (वरेण्यम्) वरणीयम् (अवः) रक्षणम् (यामि) याचे॥

यथा कर्मयज्ञे कश्चित् पुरोहितः, किञ्चित् कुशादिनिर्मितं पुरोहितादीनामुपवेशनार्थमासनम्, केचिदृत्विजश्च भवन्ति;तथैव स्तोत्रात्मके वाग्यज्ञे कल्पयति-अस्मिन् उक्थे वाङ्मयेयज्ञे अग्निः पुरोहितः। अग्निदेवताकं वागिन्द्रियं तस्मादत्राग्नेः पुरस्सरत्वं पुरोहितत्वं कल्पितम्॥ तात्वादिस्थानानि ऋत्विजां पीठासनभूतानि बर्हिःपदवाच्यानि, यथा आसनेषूपविश्य तदाधारस्थिता ऋत्विजः स्वस्वसाध्यकार्य्याण्यारभन्ते तथैवाऽत्र यज्ञे ताल्वादिस्थानेषूपविष्टाः प्राणादयो हि ऋत्विजः स्वस्ववर्णोच्चारणादिकर्माण्यारभन्ते॥ यथा कर्मयज्ञे ऋत्विजः कर्माण्यारभन्ते तथैव चात्र मरुतो वायवोहि ऋत्विजः, तएव वर्णोच्चारणादिकर्माणि प्रयत्नगुरुत्वलघुत्वादिविभागपूर्वकमारभन्ते॥ तस्मात् हे दयानिधे! परमात्मन्! अहमृचा स्वकीयं रक्षणं याचे इतिभावः॥

अग्निर्वागिन्द्रियाधिष्ठातेति सप्तममन्त्रभाष्ये प्रतिपादितमेव। उक्थे=वचपरिभाषणे धातुस्तस्मात्-पातृतुदिवचिरिचिसि-

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

चिभ्यस्थक् (उणा० २।७) उच्यते परिभाष्यते यत्तदुक्थम् । ग्रावाणः = यथा ग्रावभिः पाषाणैः पेषणीयं पिंषन्ति तथाभूतास्तालवादयः, राधाकान्तदेवरचितशब्दकल्पद्रुमानुसारि निर्वचनं यथा—"ग्रसते इति ग्रः। ग्रस—(अदने), अन्येषामपीति डः। आ—वनति शब्दायते, वन शब्दे, विन्, ग्रश्चासौ आवा चेति [ग्रावा]" ग्रसनसाधनानि शब्दसाधनानि च तालवादिस्थानानि हि अत्रग्रावपदवाच्यानीति सुवचम्॥ यामि=याञ्चाकर्मा निघं० ३।१९॥ मरुत इत्यृत्विङ्नाम निघं० ३।१८ ॥

अत्र सायणाचार्येण, यामीति याञ्चाकर्मस्वऽदृष्ट्वा तदुल्लेखमकृत्वा "याचामि याचतेर्लटिरूपम् । वर्णलोपश्छान्दसः" इति भ्रान्त्यैव व्याख्यातम्, तत्र याचामीतिव्याख्यानपदे परस्मैपदं च चिन्त्यं, वैदिकनिघण्टुसिद्धो याञ्चाकर्मपाठोऽपि न समालोचितस्तस्मादेव वर्णलोपाद्यायासोऽपि निष्फलएव । अन्यच्च—"वः युष्माकम् " इत्यपि सायणव्याख्यानं निर्मूलमेव, मूलमन्त्रे "वः" इति पाठस्यैवाऽदर्शनात् । गतानुगतिकतया च ज्वालाप्रसादेनाऽपि सायणमनुसरता भ्रान्तित्रितयं तथैव विन्यस्तम् ॥ ऋग्वेदे (८।२७।१) तु " ब्रह्मणस्पतिं देवान् " इत्यन्तरम् ॥४॥ (४८)

भाषार्थः—(उक्थे) शंसय (अध्वरे) यज्ञ में (अग्निः) अग्नि (पुरोहितः) अग्रणी है । (ग्रावाणः) तालवादिस्थान (बर्हिः) कुशासन हैं । (देवाः) प्राणादिवायु (मरुतः) ऋत्विज् हैं । (ब्रह्मणस्पते) हे वेद के प्रकाशक ! भगवन् ! (ऋचा) मन्त्र से (वरेण्यम्, अवः) उत्तम, रक्षा को (यामि) मांगता हूं ॥

जैसे कर्मयज्ञ में पुरोहित, कुशादि के आसन और होता उद्गाता आ-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दि ऋत्विज् होते हैं, वैसे स्तुतिरूप वाणी के यज्ञ में अग्नि पुरोहित है क्योंकि इस के विना अग्रणी हुवे वाणी की उत्पत्ति ही नहीं, अग्नि से वाणी इन्द्रिय का बनना ७ वें मन्त्र के भाष्य में लिख ही चुके हैं। जैसे कर्मयज्ञ में ऋत्विजों के बैठने को आसन होते हैं वैसे इस वाग्यज्ञ में तालवादिस्थान आसन हैं, जिन पर वायु रूप ऋत्विज् लोग बैठकर अपने २ काम करते हैं, अर्थात् प्रयत्न गुरुत्व लघुत्वादि का विभाग करके बोलते हैं। क्योंकि वायु ही तालवादि स्थानों में आधार पाकर वर्णों का यथावत् उच्चारण करता है। इसलिये हे परमात्मन्! मैं ऋचा से अपनी रक्षा की प्रार्थना करता हूं॥

उणादि २।७॥ निघण्टु ३।१८॥ ३।१९॥ राधाकान्त देव बहादुर प्रकाशित "शब्दकल्पद्रुम" के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ तालवादि स्थानों को "ग्रावा" इस लिये कहा है कि यौगिकार्थ इस शब्द का "निगलना और बोलना" है। तथा ग्रावा पत्थर को भी कहते हैं, बस जिस प्रकार ग्रावाओं से यज्ञसामग्री कूट छेत कर ठीक करते हैं इसी प्रकार वाग्यज्ञ की सामग्री दान्त तालु मूर्द्धा आदि से ठीक की जाती है॥

सायणाचार्यने इस मन्त्र के भाष्य में ३ भूल की हैं। १-"यामि" की सिद्धि में वर्णलोपादि वृथा परिश्रम करना और निघं० ३। १९ में यामि का याचना अर्थ न देखना॥ २-"याचामि" यह परस्मैपद का स्वयं प्रयोग करना॥ ३-मूलमन्त्र में "वः" यह पद ही नहीं है फिर निर्मूल "वः, युष्माकम्" यह भाष्य करना॥ यह ही तीनों भूलें गतानुगतिकता से ज्वालाप्रसादभार्गव (आगरा) ने भी की हैं॥ ऋग्वेद (८। २७। १) में "ब्रह्मणस्पतिं देवान्" यह द्वितीयान्त पाठभेद है॥४॥ (४८)

अथ पञ्चमी-सुदीतिना पुरुमीढेन वाष्कम्भेण वा दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहतीछन्दः॥

३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३१ २ ३ २
अग्निमीडिष्वाऽवसे गाथाभिः शीरशोचिषम्। अग्निꣳ
३१२ ३२२ ३ १ २३१२ ३ २
राये पुरुमीढ श्रुतं नरोग्निः सुदीतये छर्दिः॥५॥ (४९)

पदपाठः-अग्निम् २। ईडिष्व क्रि०। अवसे ४। गाथाभिः ३। शीरशोचिषम् २। अग्निम् २। राये ४। पुरुमीढ सं०। श्रुतम् २। नरः सं०। अग्निः १। सुदीतये ४। छर्दिः १॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(पुरुमीढ) पुरु बहु यथास्यात्तथा मीढ सिक्तोपदिष्ट ! जीवात्मन् ! त्वम् (अग्निम्) परमात्मानं भौतिकं वा (अवसे) स्वस्य रक्षणाय (गाथाभिः) स्तुतिरूपाभिर्वाग्भिः (ईडिष्व) स्तुहि वर्णय (अग्निम्) तमेव (राये) धनाय च स्तुहि वर्णय। कथम्भूतम् ? (शीरशोचिषम्) शीरं सर्वतः शयानमिव शोचिर्ज्योतिर्यस्य तम्। पुनः किम्भूतम् ? (श्रुतम्) अनेन वेदद्वारेण श्रुतमुपदिष्टम्। (नरः) हे मनुष्याः ! (अग्निः) पूर्वोक्तः (सुदीतये) सुष्ठु रक्षणाय (छर्दिः) गृहमिवाऽस्ति॥

अनेन जीवात्मना भौतिकः परमात्मा वाऽग्निःस्तोतव्यः। तद्गुणस्तुत्या तदनुकूलाचरणेन च सर्वतो रक्षा सर्वरत्नलाभश्च जायते। तस्य ज्योतिः सर्वतो विस्तृतं शयानमिव वर्त्तते। सहि वेदेषु बहुधा श्रूयते। सहि रक्षायै गृहम्। यथा वातवर्षादिभ्योगृहं रक्षाकरं, तथैव सर्वदुष्टरोगादिशत्रुभ्यः सोऽग्निरपि सर्वथा रक्षकोऽस्ति ॥

गाथेति वाङ्नाम निघं० १।११॥ उषिकुषिगर्तिभ्यस्थन् (उणा०२।४) गीयतेऽनयासा गाथा वाग् ॥ शीङ्स्वप्ने—स्फायितञ्चिवञ्चीत्यादिना (उणा०२।१३) रक्। शेते इति शीरं शोचिरस्य तम् शीरशोचिषम्। श्रुतमिति क्रियापदपक्षे तु—व्यत्ययो बहुलम् (पा० ३।१।८५) इति श्नोरभावे वचनव्यत्यये च—हे मनुष्याः यूयं श्रुतं शृणुतेत्यन्वयः ॥ देङ् रक्षणे, सुदीतिः सुष्ठु रक्षा तस्यै। छर्दिरिति गृहनाम निघं० ३।४॥ ऋग्वेदे तु ८।७१।१४ "अग्नि" मिति पाठः ॥५॥ (४९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(पुरुमीढ) हे बहुधा उपदेश से सींचे हुवे जीवात्मन् ! तू (शीरशोचिषम्) फैली हुई ज्योति वाले (श्रुतम्) वेदों में विख्यात (अग्निम्) परामात्मा वा भौतिक अग्नि को (अवसे) रक्षा के लिये और (अग्निम्) उसी को (राये) धन के लिये (गाथाभिः) स्तुतिरूपा वाणियों से (ईडिष्व) स्तुत वा वर्णित कर (नरः) हे मनुष्यो ! (अग्निः) पूर्वोक्त दोनों अग्नि (सुदीतये) भले प्रकार रक्षा के लिये (छर्दिः) घर हैं ॥

अर्थात् परमात्मा वा भौतिकाग्नि का उपदेश पाये हुवे मनुष्य को वर्णन करना चाहिये, परमात्मा की कृपा और भौतिकाग्नि के उचित व्यवहार से मनुष्य की रक्षा और रत्नादि धनों की प्राप्ति होती है। इस अग्नि की ज्योति सब ओर फैली है और यह वेदों में बहुधा वर्णित है। जिस प्रकार आंधी और वर्षा आदि उपद्रवों से मनुष्य को उस का घर बचाता है, उसी प्रकार पूर्वोक्त अग्नि मनुष्य को सब प्रकार के रोग शत्रु आदि के किये उपद्रवों वा काम क्रोधादि दुर्गुणों से बचाता है। परमात्मा के प्यारे लोगों को कामादि जगद्विध्वंसक शत्रु नहीं सता सक्ते। तथा भौतिकाग्नि से होम वा शिल्प द्वारा काम लेने वाले यजमान आदि शिल्पियों को रोग अकाल मरी शत्रु निर्धनता आदि की पीड़ा नहीं होती ॥ यदि "श्रुतम्" को व्यत्यय से क्रियापद माने तो "हे मनुष्यो ! सुनो" यह अन्वय होगा ॥

उणादि २। ४ ॥ २। १३ ॥ निघण्टु १। ११ ॥ ३। ४ ॥ अष्टाध्यायी ३। १। ८५ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। ऋग्वेद ८। ७१। १४ में "अग्निं" पाठ है ॥ ५ ॥ (४९)

अथ षष्ठी-प्रस्कण्वेन दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
श्रुधि श्रुत्कर्ण वन्हिभिर्देवैरग्ने सयावभिः। आसीदतु
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥ ६ ॥ (५०)

पदपाठः-श्रुधि क्रि०। श्रुत्कर्ण सं०। वन्हिभिः ३। देवैः ३। अग्ने सं०= १। सयावभिः ३। आ-सीदतु क्रि०। बर्हिषि ७। मित्रः १। अर्यमा १। प्रातर्यावभिः ३। अध्वरे ७ ॥

अन्वितपदार्थः-(श्रुत्कर्ण) हेश्रवणसमर्थकर्णयुक्त प्राणिन्!

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(श्रुधि) शृणु, यत्—(प्रातर्यावभिः) प्रातर्यज्ञस्थानं यातैरनुष्ठिते (अध्वरे) यज्ञे (बर्हिषि) स्वासने कुण्डादौ (अग्ने) अग्निः (मित्रः) प्राणवायुर्देवविशेषः (अर्यमा) व्यानवायुर्देवविशेषः (सयावभिः) सहवर्त्तिभिः (वन्हिभिः) हव्यवोढृभिः (देवैः) अंशुमदादिभिः सह (आ—सीदतु) स्थितो भवतु ॥

परमेश्वरोमनुष्यमुपदिशति—हे श्रोतः! त्वया तथानुष्ठेयम् यथाऽग्निस्त्वयाऽनुष्ठिते यज्ञस्थले मित्रार्यमादिदेवविशेषैः सह तत्राऽऽसीदेत्। मित्राऽऽर्यमन्नंशुमदादयो भौतिकवायुभेदादयोज्ञाताऽज्ञातविशेषा देवा वेदोदिताः सन्ति केचित् ॥

अध्यात्मपक्षे तु—(श्रुत्कर्ण) हेश्रोतः मनुष्य! (श्रुधि) शृणु—(अग्निः) परमात्मा (मित्रः) प्राणः (अर्यमा) यमोमारकोऽपानः (प्रातर्यावभिः) प्रातर्ध्यानपरायणैः (अध्वरे) अनुष्ठिते योगयज्ञे (बर्हिषि) स्वस्वासनभूते हृदयदेशस्थसुषुम्णादिस्थानविशेषे (सयावभिः) समानगतिभिः (वन्हिभिः) देहवोढृभिः (देवैः) उदानादिवायुभिः सह (आ—सीदतु) स्थिरोभवतु ॥

परमात्मना मनुष्य उपदिश्यते यत्—हे श्रोतस्त्वं शृणु त्वया तथानुष्ठेयं यथा प्राणादयोवायवः परमात्मा च तव हृदयदेशपार्श्वगसुषुम्णादियोगयज्ञस्थले स्थिरतां गताः स्युः। एतदर्थं त्वयाऽन्यैश्च त्वत्सहवर्त्तिभिः प्रातरुत्थाय योगयज्ञोनुष्ठेय इति ॥

श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि (पा० ६।४।१०२) इति हेर्धिः ॥ वह प्रापणे—वन्हतीति वन्हयस्तैः, वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित् (उणा० ४।५१) ॥ अग्ने इति व्यत्ययेन संबुद्धिरूपम् ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋग्वदे तु (१।३।३०) "आ-सीदन्तु * * * प्रातर्यावाणोअध्वरम्" इत्यन्तरम् ॥ ६ ॥ (५०)

भाषार्थः-(श्रुत्कर्ण) हे सुनने में समर्थ प्राणी ! तू (श्रुधि) सुन-(अग्निः) परमात्मा और (मित्रः) प्राणवायु तथा (अर्यमा) मारक यम अपान वायु (प्रातर्यावभिः) प्रातः उठकर ध्यानस्थल को जाने वालों से अनुष्ठित (अध्वरे) योगयज्ञ के मध्य(बर्हिषि) उन का यज्ञिय आसन है, उस में (सयावभिः) सहवर्त्ती (वन्हिभिः) देह के वहने वाले (देवैः) उदानादि अन्य वायुओं के साथ (आ-सीदतु) स्थिर होवे ॥

तात्पर्य यह है कि मनुष्य को परमात्मा का यह उपदेश सुनना और तदनुकूल आचरण करना चाहिये कि प्रातः काल उठ कर ध्यान करने की जगह को जावे और फिर प्राण अपान तथा इन के सहवर्त्ती उदानादि अन्य वायुओं सहित परमात्मा को उन के ठहरने के आसनरूप सुषुम्णादि में ठहरावें ॥

भौतिकपक्ष में-(श्रुत्कर्ण) हे सुनने वाले मनुष्य ! तू (श्रुधि) सुन-(अग्निः, मित्रः, अर्यमा) भौतिक अग्नि, मित्र और अर्यमा (प्रातर्यावभिः, अध्वरे) प्रातः उठ कर यज्ञ भूमि को जाने वालों से किये हुवे, यज्ञ के मध्य (बर्हिषि) कुण्डादि अपने २ आसन पर (सयावभिः) सहवर्त्ती (वन्हिभिः) हव्य लेजाने वाले (देवैः) अन्य देवों के साथ (आ-सीदतु) आहित होवे ॥

अर्थात् मनुष्यों को परमात्मा का यह उपदेश सुनना और तदनुकूल आचरण करना चाहिये कि प्रातःकाल उठकर यज्ञस्थल पर जावें और फिर अग्नि मित्र अर्यमा आदि देवों का अन्य सहवर्त्ती देवों के साथ स्थापन करें और उन्हें यज्ञ भाग दें। अग्नि के अतिरिक्त मित्र अर्यमा अंशुमान् आदि ऐसे कई देव विशेष हैं जो वायु आदि के भेद हैं और जिन को विशेष करके हम लोग (वैदिकप्रणाली के न रहने से) प्रायः भूल गये हैं ॥

अष्टाध्यायी ६।४।१०२॥ उणादि ४।५१॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (१।३।३०) में "आ-सीदन्तु ..... प्रातर्यावाणो अध्वरम्" इतना पाठभेद है ॥६॥ (५०)

अथ सप्तमी-सौभरिणा दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहतीछन्दः ॥

१र २र ३ २३२उ ३ २ ३ १ २ १२ ३१२

प्र देवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न म*ज्मना । अनु मातरं

* मज्मना इत्यपि बहुषु पुस्तकेषु दृश्यते ।

Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३१र २र ३ १र २र ३ १ २
पृथिवीं विवावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥७॥ (५१)

पदपाठः—प्र अ० । दैवोदासः १ । अग्निः १। देवः १। इन्द्रः १। न अ० । मज्मना ३ । अनु अ० । मातरम् २ । पृथिवीम् २। वि—वावृते क्रि० । तस्थौ क्रि० । नाकस्य ६। शर्मणि ७ ॥

अन्वितपदार्थः—(दैवोदासः) दिवो द्युलोकस्य दासोऽनुचररूपोविद्युदाख्यस्तस्य सम्बन्धी (अग्निः) ज्वलनः (मज्मना) बलेन (इन्द्रः, न) इन्द्र, इव (मातरम्) स्वप्रादुर्भावभूमिम् (पृथिवीम्) (अनु) समन्ततः (प्र—वि—वावृते) प्रकृष्टतया विस्तीर्णो भवति। (नाकस्य) द्युलोकस्य(शर्मणि) गृहे (तस्थौ) तिष्ठति च ॥

अयं भावः—पृथिवीमध्ये कश्चिदूष्मास्ति,सच निरन्तरं पृथिवीगर्भान्निःसरति अतएव पृथिवी तस्य माता जननीव कथ्यते । सहि दैवोदासो विद्युद्रूपं प्राप्तः इन्द्र इव सूर्य इव, यथा सूर्यस्य प्रकाशः पृथिव्याः समन्तात् प्रसरति तथा बलेन स्वमातुः पृथिव्याः समन्तात् विस्तीर्णो जायते। परन्तु पृथिव्याः समन्तात् दूरे वर्त्तमानस्य * द्युलोकस्य गृहे तिष्ठति तत्रस्थो वृष्ट्यादिहेतुश्च सम्पद्यते ॥

मज्मनेति बलनाम निघं० २।९॥ अञ्जेर्नलोपश्च (उणा० ४ ५०) अञ्जति गच्छति प्राप्नोति वा सोऽग्निः॥ इन्द्रः—इदि परमै-

*सूर्यस्य महीयस्त्वात्पृथिव्याश्चततोऽणीयस्त्वात् सूर्यात्प्रवहन्त्यः प्रकाशधाराः पृथिवीप्रान्तौ स्पृशन्त्यश्चन्द्रलोकात्परतो यत्रैकीभवन्ति, यतः परं न भूमेश्छाया प्रसरति स एव द्युलोकारम्भो मध्ये चान्तरिक्षलोकस्तत्रतत्रस्थाश्च मेरुकाः पृथिवीस्थाना अन्तरिक्षस्थाना द्युस्थानाश्च देवताविज्ञेयाः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इवर्ये-ऋज्रेन्द्राग्रवज्रेत्यादिना (उणा०२।२८) सिद्धः ॥ पृथिवीम्-प्रथेः षिवन्षवन्ष्वनः संप्रसारणं च (उणा०१।१५०) प्रथते इति पृथिवी ताम् ॥ शर्मणि-सर्वधातुभ्योमनिन् (उणा०५।१४५) शृणातीति शर्म गृहंतस्मिन्। शर्मेति गृहनाम निघं०३।४॥ नाकइति साधारणनाम निघं०१।४॥ अत्र मन्त्रेसायणेन "न" इति मूलस्थं पदं न व्याख्यातं न जानीमः कथं तथा सत्यन्वयोऽकारि तेन॥ ज्वालाप्रसादेन च "व" इति निर्मूलं व्याख्यातं यत्कचिदपि पुस्तकेषु नास्ति न च तद्भाष्यपुस्तकमूलपाठेपि ॥ ऋग्वेदे तु ८। १०३।२ " अग्निर्देवांअच्छा न मज्मना "" नाकस्य सानवि" इति च पाठभेदः ॥७॥ (५१)

भाषार्थः-(दैवोदासः) द्युलोक का दास अनुचर जो विद्युत, तत्सम्बन्धी (अग्निः) आग (इन्द्रः, न) इन्द्र के समान (मातरम्, पृथिवीम्) माता, पृथिवी के (अनु) चारों ओर (मज्मना) बल पूर्वक (प्र-वि-वावृते) अत्यन्त भाव से फैल रहा है। और (नाकस्य, शर्मणि, तस्थौ) द्युलोक के, घर में, स्थित है ॥

पृथिवी में एक प्रकार की गरमी है जिस को वेद की भाषा में इस मन्त्र में दैवोदास कहा है क्योंकि वह पृथिवी से निरन्तर बाहर को निकलती रहती है। और जिस प्रकार सूर्य्य की धूप पृथिवी के चारों ओर छाती है इसी प्रकार बिजुली के से बल से निकल कर वह भी अपनी माता पृथिवी के चारों ओर दूर २ द्युलोक के घर में अर्थात् द्युलोक रूप घर में स्थित है। और वर्षादि का हेतु है। प्रायः पाठक द्युलोक के जानने की इच्छा रखते होंगे इस लिये हमारी समझ में पृथिवी के दूर चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है वही द्युलोक है और उस में वर्त्तमान समस्त दिव्य पदार्थ निरुक्त में लिखे "द्युस्थानदेवता" हैं। सूर्य्य पृथिवी से बहुत बड़ा है पृथिवी उस की अपेक्षा बहुत ही छोटी है इस कारण सूर्य्य से जो प्रकाश की धारा बहती हैं वे पृथिवी के छोरों को छूती हुई सुकड़ती २ चन्द्र से परे जिस विन्दु स्थान पर मिल जायंगी

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वही द्युलोक का आरम्भ है। बस इस दूरी से आगे पृथिवी के चारों ओर अन्धियारा नहीं है और वहां के स्थान को द्युलोक जानिये ॥

निघण्टु २। ९ ॥ ३। ४ ॥ १। ४ ॥ उणादि ४। ५० ॥ २। २८ ॥ ४। १४५ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ इस मन्त्र में आये "न" पद की व्याख्या ही सायणाचार्य्य ने नहीं की और अन्वय पूरा कर दिया ! ज्वाला प्रसाद जी ने "व" यह पद मूल में न होने पर भी निर्मूल व्याख्यात किया है ॥ ऋग्वेद ८।१०३। २ में "अग्निर्देवांअच्छा न मज्मना" "नाकस्य सानवि" इतना पाठभेद है ॥ ७ ॥ (५१)

अथाऽष्टमी—मेधातिथिना मेध्यातिथिना च दृष्टा। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

२ ३ १र २र ३ १ २३१२ ३१र २र ३ १ २

अध ज्मो अधवा दिवो बृहतोरोचनादधि । अया वर्धस्व

क २र ३ २उ ३ १ २

तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥ ८ ॥ (५२)

पदपाठः—अध अ० । ज्मः ५ । अधवा अ० । दिवः ५ । बृहतः ५ । रोचनात् ५ । अधि अ० । अया ३ । वर्धस्व क्रि० । तन्वा ३ । गिरा ३ । मम ६ । जाता २ । सुक्रतो सं० । पृण क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(सुक्रतो) क्रतोर्यज्ञस्य सौष्ठवकृत् इन्द्र ! त्वम् (ज्मः, अधि) पृथिव्या, उपरिष्टात् (अधवा) चार्थे (बृहतः) महतः (रोचनात्) प्रकाशमानात् (दिवः) द्युलोकात् (अध) अधस्तात् (अया) अनया (तन्वा) विस्तृतया तन्वा देहेन (मम, गिरा) मदीयया, वाचा सह (वर्धस्व) (जाता) प्रादुर्भूतानि सस्याङ्कुराणि (पृण) पुषाण ॥

पूर्वमन्त्रे पृथिवीस्थो दैवोदास ऊष्मा वर्णितः। सच दिवंगत इन्द्रपदं लभते अर्थात् स एवेन्द्रसंज्ञको जायते, इदमेव चाग्नेयपर्वणि ऐन्द्रमन्त्रागमनकारणं, तस्मादत्र यवादिसस्यजातपुष्ट्यै परमात्मा प्रार्थ्यते—परमात्मकृपया यस्येन्द्रस्यानुकूल्याद्यज्ञादिक-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

र्माणि सौष्ठवमापद्यन्ते, स सुक्रतुरिन्द्रो दूरे वर्त्तमानाद्द्युलोकादवतीर्य, पृथिव्याश्चोपरि अन्तरिक्षस्थे मेघमण्डले वर्त्तमानो मम वाचा सह अर्थात् त्वरितं देहमात्मीयं वर्धयतु तथा चास्माकं जातानि सस्यानि पुष्णातु इति भावः ॥

ज्मा इति पृथिवीनाम निघं० १ । १ ॥ बृहदिति महन्नाम निघं० ३ । ३ ॥ अया इत्यत्र छान्दसत्वादनादेशाभावः ॥ ममा इति-ङ्लोपेपूर्वस्य दीर्घोणः (पा० । ६ । ३ । १११) इत्यतो दीर्घ इत्यनुवर्त्त्य, अन्येषामपि दृश्यते (६ । ३ । १३७) इति दीर्घः ॥ पृण-पृण प्रीणने ॥

अत्र ज्वालाप्रसादेनेन्द्रवाचकसुक्रतुशब्देन परमात्मा गृहीतः पक्षान्तरे । तन्न समीचीनं दैवोदासस्य प्रसङ्गात् ॥ अधश्मो इति अन्तस्थमध्यपाठोऽपि बहुपुस्तकेषु दृश्यते ॥ ऋग्वेदेऽपि (८।१। १८) इत्थमेव पाठः ॥ ८ ॥ (५२)

भाषार्थः-(सुक्रतो) इन्द्र ! तू (ज्मः, अधि) पृथिवी से ऊपर (अथवा) और (बृहतः, रोचनात्, दिवः, अध) बड़े, प्रकाशमान, द्युलोक से, नीचे (अया) इस (तन्वा) विस्तृत शरीर से (मम, गिरा) मेरी, वाणी के साथ ही (वर्धस्व) बढ और (जाता) यवादि सस्यों [पैदावार] को (पृण) तृप्त वा पुष्ट कर॥

पूर्वमन्त्र में पृथिवी के ऊष्मा दैवोदास का वर्णन हो चुका है। वही अग्नि दिव्लोक को पहुंच कर इन्द्र नामक हो जाता है। और वही वर्षा का देवता अर्थात् अपनी दिव्यशक्ति से वर्षा का कर्त्ता होता है। और वही दैवोदास इन्द्र पद को प्राप्त हो जाता है। इस ही कारण आग्नेय पर्व में यहां यह एक ऋचा इन्द्र की है। अन्यथा प्रकरणविरोध आता। इस मन्त्र में प्रार्थना है कि वह इन्द्र पृथिवी से ऊपर और दिव्लोक से नीचे उतर कर फैले और हमारी खेती को तृप्त और पुष्ट करे। प्रार्थना मन से चाहना को कहते हैं जो यहां लोट्लकार से विवक्षित है। बस मन में यह चाहना उत्पन्न

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

होती है जिसे ईश्वर पूरी करे कि इन्द्र से हमारी खेती आदि की पुष्टि हो। इसलिये यह भ्रान्ति न हो कि (भौतिक) इन्द्र ही से प्रार्थना की गई है कि वह ऐसा करे। "मेरी वाणी के साथ ही"। इस का यह तात्पर्य है कि हम चाहते हैं कि कहते के साथ ही अर्थात् शीघ्र परमात्मा ऐसी कृपा करे॥

निघण्टु १।१॥ ३।३॥ अष्टाध्यायी ६।३।१११॥ ६।३।१३७॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥

इस मन्त्र के भाष्य में ज्वालाप्रसाद जी ने जो "सुक्रतो" पद से "परमात्मा" अर्थ ग्रहण किया है सो भौतिक दैवोदास के प्रसङ्ग में ठीक नहीं॥ "आप्यमो" ऐसा अन्तस्थ यकार वाला पाठ भी बहुत से पुस्तकों में पाया जाता है॥ ऋग्वेद ८।१।१८ में भी ऐसा ही पाठ है॥ ८॥ (५२)

अथ नवमी—विश्वामित्रेण दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

१ २ ३ २उ ३ १र२र ३ २ १र २र
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः। न तत्तेअग्ने
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रमृषे निवर्त्तनं यदूरे सन्निहा भुवः॥ १॥ (५३)

पदपाठः—कायमानः १। वना २। त्वम् १। यत् अ०। मातृः २। अजगन् क्रि०। अपः २। न अ०। तत् अ०। ते ४। अग्ने सं०। प्र—मृषे क्रि०। निवर्त्तनम् १। यत् अ०। दूरे १। सन् १। इह अ०। आभुवः क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) दहन! (यत्, त्वं) (वना) वनानि रश्मीन् (कायमानः) कामयमानः (सन्) (अपः) व्यापकानि विद्युद्रूपाणि (मातृः) मातृतुल्यानि (अजगन्) गच्छसि [तस्मात् अनुमीयते] (यत्) (इह) पृथिव्यादौ (दूरे, आभुवः) (तत्, निवर्त्तनम्) मातुर्दूरीभवनम् (ते) तुभ्यम् (न) (प्रमृषे) प्ररोचते॥

अयं दैवोदासोऽग्निर्यत्पृथिव्यानिःसृत्य दिवम् याति तदिदं दृष्ट्वेदमनुमीयते यत्—यथा बालकोजायमानो मातरमिच्छति, तथा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अग्निरपि जायमानः पृथिव्यादिषु कार्य्यरूपेण परिणतिं प्राप्तो मातृरिव कारणानि विद्युद्रूपाणि गच्छति । स्वमातृतोदूरीभावश्चास्मा अग्नये न रोचते । निरुक्तकारो यास्काचार्य्य इत्थं व्याचख्यौ-" कायमानश्चायमानः कामयमान इति वा । वनानि । त्वं यन्मातृरपोगम उपशाम्यन् । न तत्ते अग्ने मृष्यते निवर्त्तनं दूरे यत्सन्निह भवसि जायमानः" निरुक्ते ४ । १४ ॥वनमिति रश्मिनाम निघं० १ । ५॥ अजगन्निति गतिकर्मसु निघं० २।१४। आप इति पदनाम निघं० ५ । ३ । तेन च व्याप्तयर्थोगृह्यते ॥ "आभव" इति पाठान्तरम् ॥ ऋग्वेदेऽपि ३ । ९ । २इत्थमेव पाठः ॥ ९ ॥ (५३)

भाषार्थः- (अग्ने) हे अग्ने ! (यत्) जो कि (त्वम्) तू (वना) किरणों को (कायमानः) चाहता (सन्) हुवा (अपः) व्यापक बिजुलीरूप (मातृः) माताओं को (अजगन्) प्राप्त होता है [उस से जाना जाता है कि] (यत्) जो (इह) यहां पृथिवी आदि पर (दूरे, आभुवः) तू दूर हो गया (तत्, निवर्त्तनम्) वह, दूर होना (ते) तुझे (न, प्र-मृषे) नहीं अच्छा लगता ॥

भाव यह है कि कार्य्यरूप अग्नि जो दैवोदासादि संज्ञक है और पृथिव्यादि से प्रति क्षण निकल कर दिव् लोक की ओर जाता है, वह मानो अपने कारण रूप बिजुली में ऐसे जाता है जैसे बालक उत्पन्न होकर फिर अपनी माता की ओर जाता है । ऐसे ही वह अग्नि भी कार्य्यरूप में उत्पन्न होते ही फिर कारणरूप विद्युत् की ओर दौड़ता है और यहां माता (कारण) से दूर रहना इसे अच्छा नहीं लगता ॥

निरुक्त में भी इस का यही व्याख्यान किया है । निरुक्त ४ । १४ ॥ निघं० १ । ५ ॥२ । १४॥ ५ । ३ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ "आभवः" ऐसा भी पाठान्तर है । तथा ऐसी ही ऋचा ऋग्वेद ३ । ९ । २ में भी है ॥९॥ (५३)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ दशमी—कण्वेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२३१ २ ३
नि त्वामग्ने मनुर्दधेज्योति र्जनाय शश्वते । दीदेथ कण्व ऋतजात
३ २१ २२ ३ १ २ ३१ २
उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १० (५४)

पदपाठः—नि अ० । त्वाम् २ । अग्ने सं० । मनुः १ । दधे क्रि० । ज्योतिः २ । जनाय ४ । शश्वते ४ । दीदेथ क्रि० । कण्व ७ । ऋतजातः १ । उक्षितः १ । यम् २ । नमस्यन्ति क्रि० । कृष्टयः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! (मनुः) मननशीलोयोगी (शश्वते, जनाय) शाश्वताय सनातनाय तुभ्यं, त्वत्प्राप्तये इत्यर्थः । (त्वां) (ज्योतिः) ज्योतिः स्वरूपं (नि–दधे) नितरां ध्यायामि । स त्वं (कण्वे) मयि मेधाविनि (दीदेथ) प्रकाशं कुरु । येनाहम् (ऋतजातः) सत्यया वेदविद्यया प्रकाशितः (उक्षितः) महान् [स्याम्] (यम्) भवत्कृपाभाजनं माम् (कृष्टयः) मनुष्याः साधारणाः (नमस्यन्ति) सत्कुर्वन्ति ॥

हे दयालो भगवन् ! योगी विचारशीलस्त्वत्प्राप्तये त्वां ध्यायामि । त्वं ज्योतिःस्वरूपोऽसि अतोमयि प्रकाशं कुरु । येनाहं मेधावी वेदपारंगतो भवद्दत्तज्योतिषा ज्योतिष्मात्महात्मा मनुष्यैर्नमस्यश्च स्याम् ॥

भौतिकपक्षे—(अग्ने) अग्ने ! (मनुः) यजमानोहं शिल्पी च बुद्धिमान् (शश्वते) सनातनाय (जनाय) प्राणिमात्राय, तदुपकारयेति भावः । (त्वाम्) (ज्योतिः) ज्योतिष्मन्तं (नि–दधे)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आदधे । स त्वं (कण्व) मेधाविनि मयि (दीदेथ) प्रकाशं कुरु येनाऽहम् (ऋतजातः) धने प्रसिद्धः (उक्षितः) महान् स्याम् (यं, कृष्टयः, नमस्यन्ति) पूर्ववत् ॥

अस्माभिर्याज्ञिकैर्ज्योतिष्मानग्निः शिल्पे यज्ञकुण्डे च निधातव्यः । यतः प्राणिमात्रोपकारः स्यात् । वयं च तदीयतेजसा तेजस्विनो महात्मानो धनिनो नमस्याश्च स्यामेतिभावः ॥

मनुरिति पदनाम निघं० ५।६ शॄस्वृस्निहित्रप्यसिवसिहनिकिलदिवन्धिमनिभ्यश्च (उणा० १।१०) मनुते शास्त्रामिति मनुर्विद्वान् ॥ दीदयतीति ज्वलतिकर्मा निघं० १ । १६ ॥ कण्व इति मेधाविनाम निघं० ३ । १५ ॥ ऋतमिति सत्यनामनिघं० । ३।१० धननाम च २ । १० ॥ कृष्टयइति मनुष्यनाम निघं० २। ३॥ मनुशब्देन कण्वशब्देन च ऋषिविशेषो न ग्राह्योनिघण्टुविरुद्धत्वाद्वेदस्याऽनादित्वाद्यौगिकार्थप्रधानत्वाच्च ॥ अस्याऋचोद्रष्टर्षिणा च मन्त्रे सनातनं कण्वपदं मेधाविपर्यायं दृष्ट्वैव स्वं नाम कण्व इति रक्षितामिति च विज्ञेयम् ॥ ऋग्वेदेऽपि १ । ३६ । १९ इत्थं पाठः ॥१०॥ (५४)

इति पञ्चमी दशतिः ॥५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! (मनुः) मैं मननशील मनुष्य (शश्वते, जनाय) सनातन, पुरुष के लिये अर्थात् आप की प्राप्तिके लिये (त्वाम्) आप (ज्योतिः) ज्योतिः स्वरूप को (नि–दधे) नितरां ध्यान करता हूं । इस से आप (कण्वे) मुझ मेधावी में (दीदेथ) प्रकाश कीजिये । जिस से मैं (ऋतजातः) सत्य वेद से प्रसिद्ध (उक्षितः) महान् [होऊं] (यम्) जिस मुझको (कृष्टयः) मनुष्य लोग (नमस्यन्ति) सत्कृत करते हैं वा करें ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अर्थात् हे दयालु ! भगवन् ! मैं विचार और ध्यान में परायण योगी, आप का ध्यान करता हूं । आप ज्योतिःस्वरूप हैं कृपया मुझे ज्योति दीजिये । जिस से मैं मेधावी, वेदपारंगत, आप की ज्योति से ज्योतिष्मान्, महात्मा और मनुष्यों से नमस्करणीय होऊं ॥

भौतिक पक्ष में–(अग्ने) अग्ने ! (मनुः) मैं मनन शील यजमान (शश्वते, जनाय) सनातन प्राणिमात्र के लिये अर्थात् प्राणिमात्र के उपकारार्थ (त्वाम्) तुझे (ज्योतिः) ज्योतिष्मान् को (नि–दधे) स्थापित करता हूं । मैं (ऋतजातः) धन में प्रसिद्ध (उक्षितः) महान् होऊं (यस्) जिसे (कृष्टयः) मनुष्य (नमस्यन्ति) सत्कृत करते हैं वा करें ॥

अर्थात् हम यज्ञकर्त्ता लोगों को शिल्प वा यज्ञ में अग्नि का स्थापन करना चाहिये, जिस से प्राणिमात्र का उपकार हो, और हम उस के तेज से तेजस्वी, महात्मा, धनी और नमस्करणीय हो जावें । यथार्थ में यज्ञ और शिल्प द्वारा यह कार्य सिद्ध होसकता है ॥

निघं० ५।६॥१।१६॥३।१५॥३।१०॥२।१०॥२।३॥ उणादि १।१०॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । मनु और कण्व शब्द से किसी ऋषि विशेष का नाम न समझना चाहिये । क्योंकि निघण्टु के विरुद्ध होने, वेद के अनादि और यौगिक अर्थ की प्रधानता होने से । किन्तु मन्त्र में आये हुवे मेधावी के वाचक "कण्व" शब्द को देख कर ही इस ऋचा के द्रष्टाने अपना नाम भी कण्व रक्खा, ऐसा समझना चाहिये ॥ ऋग्वेद १।३६।१९ में भी ऐसा पाठ है ॥१०॥ (५४)

* यह पांचवी दशति समाप्त हुई ॥ ५ ॥ *

—*—

अथ षष्ठी दशतिस्तत्रेयं प्रथमा–वसिष्ठेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् । उद्वा
३ २ ३ १ २ ३ १र २र३१ २
सिञ्चध्वमुपवा पृणध्वमादिद्वोदेव ओहते ॥१॥ (५५)

पदपाठः–देवः १ । वः ६। द्रविणोदाः १। पूर्णाम् २। विवष्टु क्रि० । आसिचम् २। उत्, वा अ० । सिञ्चध्वम् क्रि० । उप, वा अ० । पृणध्वम् क्रि० । आत्, इत् अ० । वः २। देवः १। ओहति क्रि० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(द्रविणोदाः, देवः) अग्निर्देवता (वः) युष्माकम् (पूर्णाम्, आसिचम्) हविषा पूरितां, स्रुचम् (विवष्टु) विवष्टि कामयते। अतो यूयम् (उप-पृणध्वं, वा) हविषा पूरयत (उत्-सिञ्चध्वं, वा) उपरि प्रक्षिपत च (आत्, इत्) अनन्तरमेव (देवः) अग्निः (ओहते) वहति (वः) युष्मदीयामाहुतिमिति शेषः॥

द्रविणोदा इति पदं व्याख्यातं निरुक्ते (अ० ८ खं० २) यथा-"अयमेवाग्निर्द्रविणोदा इति शाकपूणिराग्नेयेष्वेव हि सूक्तेषु द्राविणोदसाः प्रवादा भवन्ति। देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदामित्यपि निगमो भवति" इत्यादि। द्रविणोदा इति पदनाम निघं० ५। २। व्याप्त्यर्थेनाग्नेर्ग्रहणम्, द्रविणमिति धननाम निघं० २। १० बलनाम च निघं० २। ९ बलधनयोर्दातृतमोऽग्निरित्थमेव च तत्रैवोक्तनिरुक्तेऽप्युक्तम् ॥ भित्तिः पिपतिपतीतिवदग्नौ कामनावादो न दोषाय ॥ विवष्टु इति लकारव्यत्ययः। विवष्टीति पाठे तु साक्षाल्लडेव॥ आसिञ्चन्ति अनया तामासिचम् ॥ ऋग्वेदेऽपि ७। १६। ११ इत्थं पाठः ॥ १ ॥ (५५)

भाषार्थः-(द्रविणोदाः, देवः) अग्नि, देवता (वः) तुम्हारी (पूर्णाम्, आसिचम्) भरी हुई, स्रुच् को (विवष्टु) चाहता है। तुम (उप-पृणध्वं वा) भरो और (उत्-सिञ्चध्वं, वा) ऊपर, छोड़ो (देवः) अग्नि (वः) तुम्हारी आहुति को (आत्-इत्) तत्काल, ही (ओहते) पहुंचाता है ॥

अर्थात् परमात्मा विधिवाक्य द्वारा उपदेश करता है कि-अग्नि तुम्हारी भरी हुई स्रुच् को चाहता है, तुम भरो और अग्नि में सींचो अर्थात् छोड़ो। अग्नि में सींचा हुवा घृतादि व्यर्थ नहीं होता, यह बताने के लिये कहा है कि वह अग्नि तत्काल वायु आदि देवों को पहुंचा देता है। दो "वा" शब्द समुच्चयार्थ हैं अर्थात् भरो छोड़ो, भरो छोड़ो, तार बान्ध दो। निघं० २। ९ और २। १० में द्रविण नाम धन और बल का है, अग्नि से ही शरीरों में

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बल है यह तो सब जानते ही हैं तथा अग्नि का बल अग्नियानों को देखने से जाना जासक्ता है और उसी से धन की प्राप्ति भी देखी जासक्ती है। इसी लिये निरुक्त ८। २ में भी धन और बल का दाता होने से अग्नि का नाम 'द्रविणोदा' ठहराया है। निरुक्त का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये जिस का तात्पर्य यह है कि "शाकपूणि आचार्य्य कहते हैं कि यही अग्नि 'द्रविणोदा' है, क्योंकि अग्नि के ही सूक्तों में 'द्रविणोदा' की चर्चा है जैसा कि—देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्। यह वेदवचन है इत्यादि"॥ अग्नि में चाहना ऐसे ही समझिये जैसा—भींत गिरना चाहती है, वा यह रोगी मरना चाहता है अर्थात् अब मरा। इत्यादि॥ 'विवष्टु' के स्थान में 'विवष्टि' ऐसा साक्षात् पाठ भी किन्हीं पुस्तकों में पाया जाता है॥ ऋग्वेद ७। १६। ११ में भी ऐसी ही ऋचा है॥ १॥ (५५)

अथ द्वितीया—कण्वेन दृष्टा। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। बृहती छन्दः॥

२३ १२३ २ ३ २ क२र ३१ २ १ २ ३१र
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं
२२र३ १ २ ३२३१२
नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥२॥ (५६)

पदपाठः—प्रैतु क्रि०। ब्रह्मणस्पतिः १। प्र अ०। देवी १। एतु क्रि०। सूनृता १। अच्छा अ०। वीरम्, नर्य्यम्, पङ्क्तिराधसम् २। देवाः १। यज्ञम् २। नयन्तु क्रि०। नः २॥

अन्वितपदार्थः—(ब्रह्मणस्पतिः) परमात्मा (नः) अस्मान् (प्रैतु) प्राप्नोतु (सूनृता, देवी) वेदवाणी (अच्छा) सुष्ठु (प्र—एतु) प्रापयतु। (देवाः) अग्न्यादयः (वीरम्) गतिमन्तम् (नर्यम्) नरेभ्योहितम् (पङ्क्तिराधसम्) यजमानब्रह्माऽध्वर्युहोत्रुद्गातृभिः पञ्चभिः सेवनीयम् (यज्ञं, नयन्तु)॥

मनुष्यैस्त्रयं कामयितव्यं १—परब्रह्मप्राप्तिः २—वेदविद्या ३—विविधायज्ञाः। अथवा यजमानैर्मनसा ईश्वरचिन्तनम्, वाचा वेदमन्त्रोच्चारणम्, कर्मणाऽऽहुतिदानं च कर्त्तव्यम् इति भावः॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ब्रह्मणस्पतिरिति पदनाम निघं० ५।४॥ ज्ञानार्थोग्राह्यः॥ अच्छा—निपातस्य च (पा० ६।३। १३६) इति दीर्घः॥ ऋग्वेदेऽपि १।४०।३ इथमेव मन्त्रः॥ २॥ (५६)

भाषार्थः—(ब्रह्मणस्पतिः) परमात्मा (नः) हम को (प्रैतु) प्राप्त हो (देवी सूनृता) वेद की सत्यवाणी (अच्छा) भले प्रकार (प्र-एतु) प्राप्त हो (वीरम्) फैलने वाले (नर्यम्) मनुष्यों के हितकारक (पञ्चिराधसम्) पांच पुरुषों से सेवित (यज्ञम्) यज्ञ को (देवाः) अग्नि वायु आदि देवता (नयन्तु) लेजावें॥

मनुष्यों को तीन वस्तुओं की कामना करनी चाहिये। १—परब्रह्म की प्राप्ति, २—वेद विद्या, ३—और यज्ञ। अथवा—१—यज्ञकर्त्ताओं को मन से परमेश्वर का चिन्तन, २—वाणी से वेदमन्त्रों का उच्चारण, ३—और कर्म से आहुति छोड़ना। और यज्ञ का सेवन ५ पुरुषों से किया जाय अर्थात् १—यजमान २—ब्रह्मा ३—अध्वर्यु ४—होता और ५—उद्गाता॥

निघं० ५।४ और अष्टाध्यायी ६।३।१३६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद १।४०।३ में भी ऐसा ही पाठ है॥ २॥ (५६)

अथ तृतीया—ऋग्वेन दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

३ २ ३ १ २ ३२३ १ २ २१र २र३ २ ३ १र २र ३
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता। ऊर्ध्वो वाजस्य
१ २ ३ २३१ २३१ २ ३ १ २
सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे॥ ३॥ (५७)

पदपाठः—ऊर्ध्वः १। ऊ, सु अ०। नः ६। ऊतये ४। तिष्ठ क्रि०। देवः १। न अ०। सविता, ऊर्ध्वः १। वाजस्य ६। सनिता १। यत् अ०। अञ्जिभिः, वाघद्भिः ३। विह्वयामहे क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् हे अग्ने! परमात्मन्! त्वम् (नः) अस्माकम् (ऊतये) रक्षणाय (देवः, सविता, न) सूर्य इव (ऊ) पादपूरणे (ऊर्ध्वः) उच्चभावेन युक्तः (सु, तिष्ठ) शोभनं यथा स्यात्तथा, तिष्ठ (वाजस्य) बलस्य (ऊर्ध्वः) उच्चः (सनिता)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दाता [भूया इति शेषः] (यत्) यस्मात् वयम् (आज्ञिभिः) स्नेहिभिर्भक्तिमद्भिः (वाघद्भिः) मेधाविभिः (वि—ह्वयामहे) अर्चामः ॥

हे दयालो ! जगदीश ! यस्माद्वयं भक्तिमद्भिरुपासकैः सह त्वामर्चामः, तस्मात्कृपयास्मद्रक्षायै उच्चभावेन वर्त्तिषीष्ठाः । यथा सूर्य उपरि प्रकाशते तथोच्चभावेनात्मिकं बलं प्रयच्छ । अर्थात् उच्चां महतीं रक्षां कुरु, महद्बलं च देहि ॥

भौतिकपक्षे—अग्ने ! त्वं (नः, ऊतये, देवः, सविता, न) (ऊर्ध्वः) उच्चशिखः प्रदीप्तो भूत्वा (सु,तिष्ठ) स्थितिं लभस्व । (वाजस्य) अन्नस्य बलस्य वा (ऊर्ध्वः) उच्चः (सनिता) दाता भव । (यत्) यस्माद्वयम् (अज्जिभिः) घृतवद्भिः (वाघद्भिः) ऋत्विग्भिः (वि—ह्वयामहे) आ—सिञ्चामः ॥

अयमग्निः सूर्यइव ज्वलन्प्रदीप्तः स्यात् येन प्रदीप्तेन सुहुतेन रोगादिभ्योऽस्माकं रक्षा स्यात् । अन्नं बलं वा प्राप्नुयाम । एतदर्थमेव वयं घृतादिस्नेहयुक्तैर्होत्रादिभिरेनं सिञ्चामः इतिभावः ।

अत्र "ऊर्ध्वः तिष्ठ" इति लिङ्गेन केचित् यूपोन्नामने इमां विनियुञ्जते। तस्मादेव सायणाचार्येणाऽपि यूपोऽस्यादेवतेति व्याख्यातम् । परन्तु मूलपाठे यूपतद्भावकान्यपदाऽदर्शनात् आग्नेयकाण्डे च पूर्वतोऽग्नेरनुवृत्त्याऽस्माभिस्तु अग्निरेव देवतेति मन्यते । सायणाचार्यनयेऽपि "यद्वा, यूपात्मकदारुनिष्ठाऽग्ने" इति व्याख्यानात् पक्षेऽग्निर्देवताऽपि सम्मतः प्रतीयते ॥

षु—इत्यत्र, सुञः (पा० ८।३।१०७) इति षत्वम् ॥ ण

इत्यत्र-नश्चधातुस्थोरुषुभ्यः । ८ । ४ । २६ इति णत्वम् ॥ तिष्ठा इत्यत्र द्व्यचोतस्तिङः (पा० ६ । ३ । १३५) इतिदीर्घः ॥ वाज इत्यन्ननाम निघं० २।७ बलनाम च २।९॥ सनिता-षणु दाने इत्यस्य रूपम् ॥ अञ्जिभिरिति-अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु इति धातोर्म्रक्षणार्थे रूपम् ॥ वाघतः इत्यृत्विङ्नाम निघं० ३।१८ मेधाविनाम च ३ । १५ ॥ ह्वयते इत्यर्चतिकर्मसु निघं० ३। १४॥ ऋग्वेदे १।३६।१३ऽपि ॥ ३ ॥ (५७)

भाषार्थः-प्रकरण से हे अग्ने ! परमात्मन् ! (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (देवः, सविता, न) सूर्य देव के समान (ऊर्ध्वः) उच्च भाव से युक्त (सु, तिष्ठ) स्थित हूजिये (वाजस्य) आत्मिक बल के (ऊर्ध्वः) उच्च (सनिता) दाता हूजिये। (यत्) क्योंकि हम (अञ्जिभिः) स्नेह भक्तिवाले (वाघद्भिः) मेधावियों सहित (वि-ह्वयामहे) पूजते हैं। (ऊ) पादपूरणार्थ है ॥

हे दयालु ! पिता ! हमारी रक्षा के लिये ऊंचा हाथ करिये और हम को सूर्य के से प्रकाशित उच्च भाव से आत्मिक बल दीजिये अर्थात् महती रक्षा और आत्मिक बल का महादान दीजिये। हम सब बुद्धिमानों सहित आपकी शरण में हैं, आप का पूजन करते हैं ॥

भौतिकपक्ष में-अग्ने ! तू (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (देवः,सविता,न) सूर्य देव के, समान (ऊर्ध्वः) उच्च प्रदीप्त होकर (सु-तिष्ठ) भले प्रकार ठहर और (वाजस्य, ऊर्ध्वः, सनिता) बल और अन्न का, उच्च, दाता हो (यत्) क्योंकि हम (अञ्जिभिः) घृतादियुक्त (वाघद्भिः) होता आदि ऋत्विजों द्वारा (वि-ह्वयामहे) विशेष करके होम करते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि यह भौतिक अग्नि कुण्डादि में उच्चभाव से सूर्य के समान प्रदीप्त किया जाना चाहिये। जिस से रोगादि से हमारी रक्षा हो। क्योंकि हम स्नेह अर्थात् घृतादि उत्तम पदार्थ वाले होता आदि से होम कराते तथा करते हैं। जिस से हमारा वृष्टि द्वारा अन्न और बल बढ़े ॥

इस मन्त्र में (ऊर्ध्वः तिष्ठ) इस चिह्न को देख कर किसी २ ने यज्ञ के "यूप" को खड़ा करने में इस ऋचा का विनियोग किया है। इसी कारण सायणाचार्य ने इस का " यूप " देवता लिखा है। परन्तु मूलमन्त्र में यूप

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वा यूप का वाचक कोई शब्द नहीं आया तथा अग्नि का प्रकरण भी आरम्भ से ही चला आता है इसलिये हम ने तो अग्नि ही देवता माना है। तथा सायणाचार्य ने भी (यद्वा, यूपात्मकदारुनिष्ठाग्ने !) अर्थात् हे यूप के काष्ठ में रहने वाले अग्नि !, यह भी व्याख्या की है जिस से एक पक्ष में सायणाचार्य को भी अग्नि देवता सम्मत प्रतीत होता है ॥

अष्टाध्यायी ८।३।१०७॥ ८।४।२६॥६।३।१३५॥ निघण्टु २।७॥२।९॥३।१४॥ ३।१५॥ ३।१८॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १।३६।१३ में भी ऐसी ऋचा है॥ ३॥ (५७)

अथ चतुर्थी–सौभरिणा दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

२उ ३१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१
प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत्। स वीरं
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
धते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४॥ (५८)

पदपाठः–प्र अ०। यः १। राये ४। निनीषति क्रि०। मर्तः, यः १। ते ४। वसो सं०। दाशत् क्रि०। सः १। वीरम् २। धत्ते क्रि०। अग्ने सं०। उक्थशंसिनम् २। त्मना ३=२। सहस्रपोषिणम् २॥

अन्वितपदार्थः–(वसो) व्यापक ! (अग्ने) परमात्मन् ! (यः,मर्तः) यो मनुष्यः (त्मना) आत्मानं (राये) विद्यादिधनाय (प्र,निनीषति) प्रकर्षेण नेतुमिच्छति (यः) यश्च (ते) तुभ्यम् (दाशत्) आत्मानं ददात्यर्पयति (सः) स मनुष्यः आत्मानं (वीरम्) पुरुषार्थिनम् (उक्थशंसिनम्) स्तोत्रप्रवक्तारम् (सहस्रपोषिणम्) बहूपकारकम् (धत्ते) धरति ॥

यो मनुष्यो विद्यादिधनप्राप्तिमिच्छति तेनाऽऽत्मा जगदीश्वरे अर्पयितव्यः। तथानुष्ठिते स आत्मानं वीरं सर्वपोषकं लोकोपकारकं परेशस्तोतारञ्च धारयति अर्थात् तत्कृपया तथा वीरत्वादिलक्षणयुक्तो जायते ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भौतिकपक्षे-(वसो) अष्टवसुष्वन्यतम ! (अग्ने) अग्ने ! (यः, मर्तः, त्मना, राये, प्र, निनीषति) (यः, ते) (दाशत्) हविर्दाति (सः, सहस्त्रपोषिणं, वीरम्, उक्थशंसिनम्, आत्मानं, धत्ते) ॥

दाशतीति दानकर्मसु निघं० ३ । २० ॥ मर्ता इति मनुष्यनाम निघं० २ । ३ । त्मना इत्यत्र-मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः (पा० ६ । ४ । १४१) इत्याकारलोपः ॥ सहस्त्रमिति बहुनाम निघं० ३।१। सहस्त्रं बहु पुष्णाति स सहस्त्रपोषी, तम् ॥ ऋग्वेदे तु ८।१०३।४ "प्रयं राये निनीषसि" इत्यन्तरं पाठेऽर्थे च॥४॥(५८)

भाषार्थः-(वसो) सब में वास करने वाले ! (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (त्मना) अपने को (राये) विद्यादि धन के लिये (प्र,निनीषति) पहुंचाना चाहता है (यः) और जो कोई (ते) आप को (दाशत्) आत्मा का समर्पण करता है (सः) वह मनुष्य अपने को (सहस्त्रपोषिणम्) बहुतों को पालने वाला (उक्थशंसिनम्) स्तोत्रपाठी (वीरम्) और पुरुषार्थी (धत्ते) धारता बनाता है ॥

जो मनुष्य विद्यादि धन की प्राप्ति की इच्छा करता है । और आत्मा को आप के समर्पित करता है । वह अपने को वीर, सर्वोपकारक और स्तोत्रपाठी बनाता है। अर्थात् परमात्मा की कृपा से वह इन लक्षणों से युक्त हो जाता है ॥

भौतिकपक्ष में-(वसो) आठ ८ वसुओं में एक (अग्ने) अग्ने ! (यः, मर्त्तः, त्मना, राये, प्र, निनीषति) जो, मनुष्य, अपने को, धनादि के लिये, पहुंचाना चाहता है (यः, ते) जो, तेरे लिये (दाशत्) हविः देता है (सः) वह मनुष्य अपने को (सहस्त्रपोषिणम्, उक्थशंसिनम्, वीरं, धत्ते) सर्वोपकारक, स्तोत्रपाठी और वीर बनाता है ॥

निघण्टु ३ । २० ॥ २ । ३ ॥ ३ । १ ॥ अष्टाध्यायी ६ । ४ । १४१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । १०३ । ४ में " प्रयं राये निनीषसि " ऐसा पाठ और अर्थ में भी भेद है ॥ ४ ॥ (५८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ पञ्चमी—कण्वेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् । अग्निꣳ सूक्तेभि-
१ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २
र्वचोभिर्वृणीमहे यꣳ समिदन्य इन्धते ॥५॥ (५९)

पदपाठः—प्र अ० । वः ६ । यह्वम् २ । पुरूणाम्, विशम्, देवयतीनाम् ६। अग्निम् २ । सूक्तेभिः, वचोभिः ३ । वृणीमहे क्रि० । यम् २ । सम्, इत् अ० । अन्ये १ । इन्धते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(वः) युष्माकं (पुरूणाम्) बहूनाम् (देवयतीनाम्) देवं गच्छन्तीनाम् (विशाम्) प्रजानाम् [हितकरमिति शेषः] (यह्वम्) महान्तम् (अग्निम्) परमात्मानम् (सूक्तेभिः) सूक्तरूपैः (वचोभिः) वेदवाक्यैः सह (प्र—वृणीमहे) (यम्) जगदीश्वरम् (अन्ये, इत्) अन्येऽपि (सम्—इन्धते) सम्यग्ध्यायन्ति ॥

भौतिकपक्षे—सम्—इन्धते=सम्यक्प्रदीपयन्ति ॥ यह्वम् इति महन्नाम निघं० ३ । ३ ॥ सूक्तेभिरिति—बहुलं छन्दसि (पा० ७ । १ । १०) इति भिस ऐसऽभावः ॥ ऋग्वेदे तु १ । ३६ । १ "वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते" इत्युत्तरार्धेऽन्तरम् ॥५॥(५९)

भाषार्थः—(वः) तुम (पुरूणाम्) बहुत (देवयतीनाम्) ईश्वरभक्त (विशाम्) प्रजाओं के [हितकर] (यह्वम्) महान् (अग्निम्) परमात्मा का (सूक्तेभिः, वचोभिः) सूक्तरूप, वेदवाक्यों सहित (प्र, वृणीमहे) हम वरण करते हैं (यम्) जिस का कि (अन्ये, इत्) और लोग, भी (सम्-इन्धते) भले प्रकार ध्यान करते हैं ॥

भौतिकपक्ष में—(वः, पुरूणां, देवयतीनां, विशां, यह्वम्, अग्निम्) तुम, बहुत, यज्ञप्रिय, प्रजाओं के [हितकारी], बड़े, अग्नि को (सूक्तेभिः, वचोभिः, प्र—वृणीमहे) हम सूक्त रूप, वेदवाक्यों के साथ, अच्छे प्रकार से आधान करते हैं। (यम्, अन्ये, इत्, सम्—इन्धते) जिस का कि, और लोग, भी, भले

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

प्रकार ध्यान करते हैं ॥

निघण्टु ३।३॥ अष्टाध्यायी ७।१।१० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १।३६। १ में-" वचोभिरीमहे यं सीमिदन्यईऽठते " इतना उत्तरार्ध में पाठभेद है ॥५॥ (५९)

अथ षष्ठी-आत्कीलेन दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ २३ २३ १र २र ३ १ २
अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य । रायईशे

३ १ २ ३ १ २३१ २ ३ १ २
स्वपत्यस्य गोमतईशे वृत्रहथानाम् ॥६॥ (६०)

पदपाठः-अयम्, अग्निः १। सुवीर्यस्य ६। ईशे क्रि०। हि अ०। सौभगस्य, रायः ६। ईशे। स्वपत्यस्य, गोमतः ६। ईशे। वृत्रहथानाम् ६॥

अन्वितपदार्थः-(अयम्, अग्निः) परमेश्वरो भौतिको वा (सुवीर्यस्य, सौभगस्य, हि) (ईशे) ईष्टे अधिकारित्वेन वर्त्तते । (रायः) धनस्य (ईशे) (स्वपत्यस्य) शोभनसन्तानस्य (गोमतः) गवादिपशुमत्त्वस्य (वृत्रहथानाम्) वृत्राणामावरकाणां हथाः वधास्तेषाम् (ईशे) ईष्टे । पुरुषव्यत्ययः ॥

अग्निः परमात्मा सूपासितो भौतिको वा स्वाहितः सुहुतः सुप्रयुक्तश्च,वीर्यसौभाग्यधनशोभनापत्यगवादिपशूनां दाता स्वामीश्वरोऽधिकारीति यावत् । सर्वाऽसुररोगादिशत्रुनाशकर्त्ता च वेदितव्यः ॥

वृत्रहथानाम्-हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यःक्थन् (उणा०२।२ इति सिद्धम् । सत्यव्रतसामश्रमिमुद्रापितसायणभाष्यसहितपुस्तकटिप्पण्यां यत् " नपुंसके भावे क्तः ३।३। ११९ तक्तनक्तनथनाश्चे (७।१।१५५) तिथनादेशेरूपम् " इत्युल्लिखितं

तन्महाप्रामादिकमेव । तदनुसार्य्यन्धपरंपरया ज्वालाप्रसादेनाऽपि तथैवोद्धृतं च । तत्राननेदमपिनालोचितं यत्सप्तमाध्यायस्य प्रथमपादे १५५ सूत्राण्येव न सन्ति किन्तु १०३ सूत्राणि सन्ति, तदशुद्धमुद्रितसूत्रसंख्याऽपि तथैवोद्धृता बत ॥६॥ (६०)

भाषार्थः—(अयम्) यह (अग्निः) परमात्मा वा भौतिक (सुवीर्यस्य, सौभगस्य, हि) सुन्दर वीर्य और सौभाग्य का (ईशे) स्वामी है । (रायः) धन का (स्वपत्यस्य) सुन्दर सन्तान का (गोमतः) और गवादि पशुयुक्त होने का (ईशे) अधिकारी है । तथा (वृत्रहथानाम्) वृत्र जो रोगादि शत्रु असुर उन के नाशों का (ईशे) अधिष्ठाता है ॥

परमात्मा की भक्ति और भौतिक अग्नि में हवन करने वा उस से अनेकविध शिल्पप्रयोगादि द्वारा मनुष्यों को बल वीर्य पुरुषार्थ सौभाग्य धन सुसन्तान और गवादि पशु प्राप्त होते हैं और सर्व दुष्ट रोगादि असुर शत्रुगण का नाश होता है । क्योंकि परमात्मा वा भौतिकाग्नि इन सब का ईशिता है ॥ उणादि २। २ सूत्र संस्कृत भाष्य में देखिये। जिस से 'वृत्रहथानाम्' पद सिद्ध होता है । परन्तु इस पद की सिद्धि में सत्यव्रत सामश्रमी जो की छपाई कलकत्ते की सायणभाष्यसहित सामवेद संहिता की टिप्पणी में भूल से (देखो संस्कृतभाष्य पृ० १२८ पं० २१—२२) दो सूत्र इस पद की सिद्धि में छपे हैं, जिन से यह पद सिद्ध नहीं हो सक्ता । इस की देखा देखी अटकल पच्चू पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने भी वही दोनों सूत्र अपने भाष्य में टीप दिये । यह नहीं विचारा कि यन आदेश से और इस से क्या सम्बन्ध । और यह भी नहीं सोचा कि अष्टाध्यायी के सप्तमाध्याय प्रथम पाद में १५५ समस्त सूत्र भी नहीं किन्तु १०३ हैं फिर "तप्तनप्तनथनाश्च" की संख्या १५५ कैसे हो सक्ती है किन्तु ४५ है । कलकत्ते की छपी ऊपर लिखी ऐसियाटिकसुसाइटी की पुस्तक से ज्यों का त्यों अशुद्ध १५५ का अङ्क उद्धृत कर दिया, न सूत्र संख्या देखी, न उस सूत्र के विषय को विचारा, शोक! ॥६॥ (६०)

अथ सप्तमी—वसिष्ठेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १२३ १र २र ३ १ १र २र

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वꣳहोता नो अध्वरे । त्वं पोता

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १२३ २३ १ २ ३ १२

विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥७॥ (६१)

पदपाठः-त्वम् १। अग्ने सं०। गृहपतिः, त्वम्, होता १। नः ६। अध्वरे ७। त्वम्, पोता १। विश्ववार सं०। प्रचेताः १। यक्षि, यासि क्रि०। च अ०। वार्यम् २॥

अन्वितपदार्थः-(अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! भौतिक ! वा (विश्ववार) विश्वैः सर्वैर्वरणीय ! (त्वं) (नः) अस्माकम् (अध्वरे) ज्ञानयज्ञे कर्मयज्ञे वा (त्वम्) (गृहपतिः) यजमानः (त्वम्) होता (त्वम्) (पोता) शोधयिता (प्रचेताः) प्रकर्षेण चेतयिता च (यक्षि) यजनं करोषि (वार्यम्) वरणीयं हविः (यासि) प्रापयसि (च)॥

यथा यज्ञे यजमानहोतृपोतृप्रचेतोनामकाः यज्ञकर्त्तारो यद्यपि भिन्ना भिन्ना भवन्ति तथाप्यग्नेरेव प्राधान्यं, स एव वस्तुतो यजमानादीनां कार्य्यसहायकः। तथैव ज्ञानयज्ञेऽपि जीवात्मा यजमानः वागादयोहि ऋत्विजःसन्ति,परन्तु परमात्मकृपां विना न सिद्धिरतः स एव गृहपतिहोतृपोतृप्रचेतसां कार्य्यसाधकः॥ ऋग्वेदे तु ७।१६।५ "यक्षि वेषि च" इतिपाठः॥७॥(६१)

भाषार्थः-(अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (विश्ववार) सब को भक्ति करने योग्य ! परमात्मन् ! (त्वम्) आप (नः) हमारे (अध्वरे) ज्ञानयज्ञ में (गृहपतिः) यजमान हैं (त्वम्) आप ही (होता) होता हैं (त्वम्) आप ही (पोता) शुद्ध करने वाले हैं (प्रचेताः) चेताने वाले भी आप ही है (यक्षि) यज्ञ भी आप ही करते हैं (च) और (वार्य, यासि) कर्म फल भी, आप ही पहुंचाते हैं॥

* यद्यपि ज्ञानयज्ञ में जीवात्मा यजमान, और वाणी आदि होता पोता प्रचेता आदि ऋत्विज् हैं, परन्तु परमात्मा की कृपा विना कुछ नहीं, इस

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लिये परमात्मा की मुख्यता दिखाने को यह कहा गया है कि आप ही सब कुछ हैं ॥

भौतिक पक्ष में-(अग्ने) अग्ने ! (विश्ववार) सब को स्वीकार करने योग्य ! (त्वम्) तू ही (नः) हमारे (अध्वरे) कर्मयज्ञ में (गृहपतिः) घर धणी यजमान है और (त्वं, होता) तू ही, होता (त्वं, पोता) तू ही शोधने वाला (प्रचेताः) चेताने वाला है । (यक्षि) तू ही यज्ञ करताहै (च) और (वार्यं, यासि) हव्य, पहुंचाता है ॥

यद्यपि कर्मयज्ञ में भिन्न २ यजमान होता पोता प्रचेता आदि ऋत्विज् होते हैं परन्तु मुख्य अग्नि है इस लिये उन की मुख्यता दिखाने को यह कहा है कि अग्नि ही सब कुछ है ॥ ऋग्वेद १ । १६ । ५ में "यक्षि वेषि च" ऐसे पाठ है ॥ ७ ॥ (६१)

अथाऽष्टमी-विश्वामित्रेण दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१२ ३१ २र ३१२ ३१ २र
सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये । अपान्नपातꣳ
३१२ ३१ २ ३१२ ३१२
सुभगꣳ सुदꣳससꣳ सुप्रतूर्त्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥ (६२)

* इति षष्ठी दशतिः ॥६॥ *

पदपाठः—सखायः १ । त्वा २ । ववृमहे क्रि० । देवम् २ । मर्त्तासः १ । ऊतये ४ । अपान्नपातम्, सुभगम्, सुदꣳससम्, सुप्रतूर्त्तिम्, अनेहसम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(सखायः) सुहृदोवयम् मनुष्याः (त्वा) त्वाम् (देवम्) दिव्यगुणम् (अपान्नपातम्) अपां कर्मणां नपातम् न पातयितारं रक्षकं, कर्मणामाभोगं निक्षेपाणामिव रक्षकम् । (सुभगम्) शोभनैश्वर्य्यम् (सुदꣳससम्) सुकर्माणम् (सुप्रतूर्त्तिम्) शोभनं यथा स्यात्तथा त्वरितं जगदादिकर्त्तारम् (अनेहसम्) उपद्रवरहितं शान्तस्वरूपम् परमात्मानम् (ऊतये) रक्षायै (ववृमहे) वृणीमहे ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मनुष्यैः परस्परं सुहृद्भिर्भूत्वा संभूयोक्तगुणगरिष्ठस्य परमात्मनः स्तुत्युपासने कार्य्ये इति भावः ॥

भौतिकपक्षे-(सखायः,मर्त्ताः, त्वा, देवम्) (अपान्नपातम्) अग्निम् (सुभगम्) शोभनैश्वर्यकरम् (सुदंससम्) शोभनयज्ञादिकर्मकरम् (सुप्रतूर्त्तिम्) सुत्वरायुक्तम् (अनेहसम्) सर्वोपद्रवनाशनम् (ऊतये) रोगादिशत्रुभ्यो रक्षायै (ववृमहे) ॥

मनुष्यैः सौहार्देन सह संभूयोक्तगुणोऽग्निः सुप्रयोगाय वरणीय इति चाशयः ॥

दंस इति कर्मनाम निघं० २।१॥ एह इति क्रोधनाम निघं० २।१३ तेनचोपद्रवो लक्ष्यते। अपान्नपादिति तनूनपादित्यनेन व्याख्यातो निरुक्ते (८।५) यथा-"अग्निरिति शाकपूणिरापोत्र तन्वउच्यन्ते तता अन्तरिक्षे ताभ्य ओषधिवनस्पतयो जायन्त ओषधिवनस्पतिभ्य एष जायते" ऋग्वेदे तु ३।९।१ "सुभगं सुदीदितिम्" इति पाठः।८।(६२)

भाषार्थः-हम (सखायः) मित्र (मर्त्तासः) मनुष्य (त्वा) आप (देवम्) दिव्यगुणयुक्त (अपान्नपातम्) कर्मों के न गिराने वाले अर्थात् कर्मों के अनुसार यथातथ्य फल देने वाले, कर्मों का निक्षेप [अमानत वा धरोहर] रखने वाले (सुभगम्) शोभन ऐश्वर्य्यशाली (सुदंससम्) उत्तम कर्मों के कर्त्ता (सुप्रतूर्त्तिम्) तत्क्षण कार्य्य करने वाले (अनेहसम्) उपद्रवरहित शान्तस्वरूप परमात्मा को (ऊतये) रक्षा के लिये (ववृमहे) सेवित करते हैं ॥

मनुष्यों को परस्पर मित्र होकर उक्त गुणयुक्त परमात्मा की स्तुति उपासना करनी चाहियें ॥

भौतिकपक्ष में-(सखायः, मर्त्तासः) हम मित्र, मनुष्य (त्वा,देवम्) तुझ, देव (सुभगम्) शोभन ऐश्वर्यकारक (सुदंससम्) शुभ कर्म यज्ञादि के सहायक

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(सुप्रतूर्त्तिम्) तीव्रगतियुक्त (अनेहसम्) उपद्रव की शान्ति करने वाले (अपान्नपातम्) अग्नि का (ऊतये) रोगादि शत्रुओं से बचने के लिये (ववृमहे) वरण करते हैं ॥

अर्थात् उक्त गुणयुक्त अग्नि का सुप्रयोग करके मित्रतापूर्वक काम में लाना चाहिये ॥ अग्नि का नाम "अपान्नपात्" इस लिये है कि यह अप्=जलों का, नपात्=पौत्र वा नाती है। इस विषय में निरुक्त ८।५ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। जिस का अर्थ यह है कि "तनूनपात्" और "अपान्नपात्" अग्नि को कहते हैं, ऐसा शाकपूणि आचार्य्य का मत है। क्योंकि अन्तरिक्ष में फैले हुवे जल को अप् और तनू कहते हैं, उन जलों का पौत्र अग्नि को इस कारण माना है कि जल से ओषधि वनस्पति और ओषधि वनस्पति काष्ठों में से अग्नि उत्पन्न होता है। इसलिये अग्नि-जलों का पौत्र=नपात् वा नप्ता है ॥

निघं० २।१ ॥ २।१३ के प्रमाण भी संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ३।९।१ में "सुभगं सुदीदितिम्" ऐसा पाठ है ॥८॥ (६२)

* यह छठी दशति समाप्त हुई ॥ ६ ॥ *

—○०○—

खण्डयोराजुहोतेति त्रिष्टुभो दश पञ्च च ॥
अग्निं नरो विराट्, चित्र-इमं स्तोममिति द्व्यृचः ॥
जागतोऽग्नेर्ऋचः सर्वाः, पूष्णः शुक्रन्तइत्यसौ ॥

अथ सप्तमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-श्यावाश्वो वामदेवो वा ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम्।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
इडस्पदे नमसा रातहव्यꣳ सपर्यता यजतं पस्त्यानाम्।१।(६३)

पदपाठः-आ-जुहोता क्रि०। हविषा ३। मर्जयध्वम् क्रि०। नि अ०। होतारम्, गृहपतिम् २। दधिध्वम् क्रि०। इडः ६। पदे ७। नमसा ३। रातहव्यम् २। सपर्यता, यजतम् क्रि०। पस्त्यानाम् ६ ॥

अन्वितपदार्थः-परमात्मोपदिशति-हे मनुष्याः ! यूयम्

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(पस्त्यानां) गृहाणाम् (इडः) पृथिव्याः (पदे) अधिष्ठाने कुण्डे (गृहपतिम्) गृहस्य रक्षकमग्निं (नि,दधिध्वम्) नितरां, धद्ध्वम्। (हविषा, आ-जुहोता) घृतेन, समन्ताज्जुहुत। (मर्जयध्वम्) इतस्ततोवेद्या मार्जनं कुरुध्वम्। (रातहव्यम्) रातं दत्तं हव्यमनेन तम् (होतारम्) एतन्नामकमृत्विजम् (नमसा) नमस्कारेण (सपर्य्यता) सत्कुरुत (यजतम्) एवं [स्त्रीपुरुषौ] यज्ञं कुरुतम्।

अत्रेदमुपदिश्यते यत्-मनुष्यैर्यज्ञे भूमौ कुण्डेऽग्न्याधानं कर्त्तव्यम्। घृताहुतीर्दत्वा, मार्जनं कृत्वा, होत्रादिभिर्ऋत्विग्भिर्हव्यं दापयित्वा, होत्रुपलक्षितब्रह्माध्वर्यूद्गातृप्रभृतीनां नमस्कारेणाऽन्नादिद्रव्यदानेन च सत्कारः कर्त्तव्यः। एवं यज्ञोनुष्ठेयः। यजतमिति द्विवचनेन स्त्रीपुंसयोर्ग्रहणं कार्य्यम्॥

ईश्वरपक्षे-हे मनुष्या यूयम् (पस्त्यानाम्) ध्यानाय नियतानां मन्दिराणां मध्ये (इडः, पदे) इडानामिकायाः नाड्याः पदेऽधिष्ठाने (गृहपतिम्) गृहादीनां रक्षकमग्निं परमात्मानं (नि, दधिध्वम्) नितरां, ध्यायत। (हविषा) भक्त्या (आ-जुहोता) आत्मसमर्पणं कुरुत। (मर्जयध्वम्) देहादिशुद्धये मार्जनं कुरुत। (रातहव्यम्) स्वीकृतभक्तिम् (होतारम्) तत्फलप्रापकं (नमसा) नमस्कारेण (सपर्यता) अर्चत। (यजतम्) एवं ज्ञानयज्ञेन तं परमात्मानं शिष्यशिक्षकौ स्त्रीपुरुषौ वा पूजयतम्॥

इडेति पृथिवीनाम निघं० १।१॥ सपर्यतीति परिचरणकर्मा निघं० ३।५॥ पस्त्यमिति गृहनाम निघं० ३।४॥ आजुहोता,

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सपर्यता इत्यनयोः—ऋचि तु नु घमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम् (पा० ६।३।१३३) इति दीर्घः ॥१॥ (६३)

भाषार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम (पस्त्यानम्) घरों में (इडः, पदे) पृथिवी के, ऊपर [कुण्ड में] (गृहपतिम्) घर के रक्षक [अग्नि] का (नि, दधिध्वम्) नितरां आधान करो । (हविषा) घृतादि से (आ—जुहोता) सब ओर से होम करो । (मर्जयध्वम्) [इधर उधर वेदी के] मार्जन करो । (रातहव्यम्) जिस ने हव्य दिया उस (होतारम्) होता नामक ऋत्विज् को (नमसा) नमस्कारादि से (सपर्यता) सत्कृत करो । (यजतम्) इस प्रकार यज्ञ करो। इस में मनुष्य को यह उपदेश है कि तुम घरों में पृथ्वीपर अग्निकुण्ड में अग्न्याधान करो । घृतादि की आहुति दो । वेदी के समीप मार्जन (शुद्धि) करो । जिस होता आदि से यज्ञ कार्य कराओ उस का नमस्कारादि से वा अन्नादि द्रव्यों से सत्कार करो। इस प्रकार स्त्री पुरुष मिलकर यज्ञ किया करो ॥

ईश्वरपक्ष में—हे मनुष्यो ! तुम (पस्त्यानाम्) मन्दिरों में (इडः पदे) इडानाड़ी के अधिष्ठान में (गृहपतिम्) घर आदि के स्वामी परमात्मा का (नि—दधिध्वम्) नितरां, ध्यान करो । (मर्जयध्वम्) मार्जन अर्थात् देह और आत्मा की शुद्धि करो । (रातहव्यम्) जिसने भक्ति का स्वीकार किया उस (होतारम्) फलप्रदाता की (नमसा) नमस्कार से (सपर्यता) पूजा करो । (यजतम्) इस प्रकार [स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य दोनो] उपासना किया करो ॥

निघं० १।१॥३।५॥३।४॥ अष्टाध्यायी ६।३।१३३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (६३)

अथ द्वितीयायाः—वाष्टहव्यो वार्षहव्यो वा उपस्तुतो वा ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः ॥

३ २उ ३ १२ ३ २ ३२उ ३ १२३ २ ३ १ २ ३
चित्रइच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे । अ-
१र २र ३१ २ ३ २३१२ ३ १२र ३ २ १२
नूधा यदजीजनदधाचिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥ २ ॥ (६४)

पदपाठः—चित्रः १। इत् अ० । शिशोः, तरुणस्य ६ । वक्षथः १ । न अ० । यः १ । मातरौ २ । अन्वेति क्रि० । धातवे अ० । अनूधाः १। यत् अ० । अजी-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जनत् क्रि० । अध, चित् अ० । आ-ववक्षत् क्रि० । सद्यः अ० । महि २। दूत्यम् २ । चरन् १ ॥

अन्वितपदार्थः-परमेश्वर उपदिशति-हे मनुष्य ! (शिशोः) जातमात्रस्यैव (तरुणस्य) तरुणवत्कार्यं कुर्वतः (वक्षथः) हविर्वहनं (चित्रः इत्) चित्रमाश्चर्यमेव (यः) योग्निः [प्रकरणात्] (धातवे) स्तनपानाय (मातरौ) जनन्यौ द्वे अरण्यौ (न,अन्वेति) नाश्रयते । (यद्, चित्) यदैव (अजीजनत्) भवानेतमुत्पादितवान् (अध, सद्यः) तत्कालमेव (अनूधाः) ऊधोरहित एव (महि) महत् (दूत्यम्] दूतस्य कर्म (चरन्) आचरन्सन् (आववक्षत्) हवींष्यावहति ॥

अयंभावः-बालो यदा जायते तदा बाल्ये न किमपि कार्यं कर्तुं शक्नोत्यपि तु मातृसमीपे स्तनपानं करोति, ततः पुष्टः सन् कार्यजातानि साध्नोति। परन्तु अग्नेर्हविर्वहनमाश्चर्यकरमस्ति,यो हि जातमात्र एव, स्वमात्रोररण्योः स्तनपानमकृत्वैव बाल्येएव, अनूधा ऊधसा स्तनेन वर्जितएव सद्यो महद्दूतकर्म कुर्वन् देवानां भागान्वहति इति ॥

चित्रः इति व्यत्ययेन पुँल्लिङ्गता । यथा ह महाभाष्यकारो व्यत्ययो बहुलमितिसूत्रभाष्ये (३।१।८५ आ० ४) "ततो बहुलम् छन्दसि विषये सर्वेविधयोभवन्तीति । सुपां व्यत्ययः, तिङांव्यत्ययः,वर्णव्यत्ययः,लिङ्गव्यत्ययः, पुरुषव्यत्ययः, कालव्यत्ययः,आत्मनेपदव्यत्ययः,परस्मैपदव्यत्यय इति" तथा चतत्रैव-

"सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च । व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिद्ध्यति बाहुलकेन" इति ॥

वक्षथः इति धातूनामनेकार्थत्वाद्वक्षतेरौणादिकोऽथस्प्रत्ययः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

धातवे इति धेट् पाने धातोः, तुमर्थे सेसेनिति (पा० ३।४।९) तवेनि रूपम् ॥ अन्वेति—लट्यु पसर्गेण समासः। तिङिचोदात्तवति (पा० ८।१।७१) इति गतेरनुदात्तः ॥ अनूधा इति—नञा बहुव्रीहिः समासः, अनेकमन्यपदार्थे (पा० २।२।२४) इत्यस्योपरि, नञो ऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिर्वा चोत्तरपदलोपश्च वक्तव्य इति वचनात्। ऊधसोऽनङ् (पा० ५।४।१३१) इत्यस्य च, ऊधसोऽनङिस्त्री-ग्रहणं कर्तव्यम्। इति वार्तिकेन स्त्रियामेव प्रवृत्तत्त्वादत्र पुँल्लिङ्गे न प्रवृत्तिः ॥ दूत्यम्—दूतस्यभागकर्मणो (पा० ४।४।१२०) इति कर्मणि यत् ॥

अत्र मुद्रणदोषमजानता कलिकातामुद्रिताऽशुद्धसूत्रसंख्या-मनुसरता ज्वालाप्रसादेनाऽपि व्यत्ययविधायकस्य सूत्रस्य सख्या ३ । ४ । ९८ इत्येवमुद्धृता वस्तुतस्त्वस्मल्लिखितसंख्याकं तत्सूत्रम् ॥ "महि=महान्तं, दूत्यं=दूतकर्म" इत्यत्र पुन्नपुंसंकयोर्महान्तं दूतकर्मेत्यनयोः सामानाधिकरण्यमपि ज्वालाप्रसादभाष्ये चिन्त्यमेव ॥ ऋग्वेदे तु १० । ११५। १ "मातरावप्येति धातवे। अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्षसद्योमहि" इति पाठे महदन्तरम् ॥ २ ॥ (६४)

भाषार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्य ! (शिशोः) उत्पन्न होते ही (तरुणस्य) युवा के तुल्य काम करने वाले [अग्नि—प्रकरण से] का (वक्षथः) हविः ले जाना (चित्रः इत्) आश्चर्य्य ही है। (यः) जो कि (धातवे) स्तनपान के लिये (मातरौ) दोनों उत्तरारणि और अधरारणि रूप माताओं को (न, अन्वेति) नहीं, साथ लगता। किन्तु (यत्, चित्) जब, ही (अजीजनत्) तुमने उत्पन्न किया (अध, सद्यः) तत्काल ही (अनूधाः) बाख विना ही (महि, दूत्यम्) भारी, दूत का काम (चरन्) करता हुवा (आ—ववक्षत्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हव्य पहुंचाने लगता है ॥

तात्पर्य्य यह है कि जब बालक उत्पन्न होता है तो कुछ काल पर्यन्त बाल्यावस्था में कोई परिश्रम का काम नहीं करता, केवल माता का दुग्ध पीता और पुष्ट होता है। तब पीछे बड़ी अवस्था होने पर काम कर सक्ता है। परन्तु अग्नि का देवतों को हव्य पदार्थ पहुंचाना आश्चर्य्य है, जो शिशु ही तरुण है अर्थात् उत्पन्न होते ही बाख (स्तन) का सेवन विना किये ही अपनी माता के तुल्य अरणियों में पुष्ट्यर्थ कुछ काल बालक के समान श्रम-रहित वास नहीं करता। किन्तु तुम्हारे रगड़ने से दो अरणियों में उत्पन्न होते ही युवा के तुल्य अपना दूतकर्म अर्थात् वायु आदि देवतों को हव्य पहुंचाना रूप महत् कर्म करने लगता है ॥

महाभाष्य (३।१।८५ आ० ४) ॥ अष्टाध्यायी ३।४।९।८।१।७१॥२।२।२४॥३।४।१३१॥ ४।४।१२०॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने छापे की अशुद्धि जैसी कि कलकत्ते की छपी सायणभाष्ययुक्त पुस्तक में छपी थी ज्यों की त्यों उद्धृत कर दी, अष्टाध्यायी खोल कर नहीं देखी कि 'व्यत्ययो बहुलम्' सूत्र ३। ४। ९८ पर नहीं है किन्तु ३। १। ८५ पर है। तथा 'दूत-कर्म' इस नपुंसकलिङ्ग का अपने संस्कृत में "महान्तम्" यह पुल्लिङ्ग जोड़ कर समानाधिकरण कर डाला है ॥ ऋग्वेद १०। ११५। १ में पाठ में बहुत अन्तर है (संस्कृत में देखिये) ॥ २ ॥ (६४)

अथ तृतीयाया-बृहदुक्थ ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः।

३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व।

३१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

संवेशनस्तन्वे३चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे।३।(६५)

पदपाठः-इदम् १। ते ६। एकम्, परः १। ऊ अ०। ते ६। एकम् १। तृतीयेन, ज्योतिषा ३। संविशस्व क्रि०। संवेशनः १। तन्वे ४। चारुः १। एधि क्रि०। प्रियः १। देवानाम् ६। परमे, जनित्रे ७॥

अन्वितपदार्थः-प्रकरणात् हेअग्ने! (ते) तव (इदम्) विद्युद्रूपम् (एकम्)। (ऊ) चार्थे (ते) तव (परः) परम् आदित्यरूपम् (एकम्)। (तृतीयेन) (ज्योतिषा) पार्थिवाग्निज्योतिषा

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(संविशस्व) आहितोभव । (परमे) श्रेष्ठे (जनित्रे) जन्यतेऽस्मिन्निति जनित्रं कर्म, यागाख्यं तस्मिन् (संवेशनः) स्वाहितः सन् (देवानाम्) वाय्वादीनाम् (तन्वे) विस्तृताय देहाय (चारुः) कल्याणः (प्रियः) प्रीतिप्रदश्च (एधि) भव ॥

अग्निस्त्रिभिर्ज्योतिभिर्जगति वर्त्तते, सूर्यरूपेण, विद्युद्रूपेण, प्रसिद्धेन पार्थिवेन च। तत्र तृतीयेन पार्थिवरूपेण ज्योतिषाऽग्निर्यज्ञे आहितः क्रियते । सच आहितःसन् वाय्वादिदेवानामुपकारको भवति अतएव तेषां तन्वे चारुःप्रियश्चेत्युच्यते ॥

पर इति लिङ्गव्यत्ययेन क्लीबार्थे पुंस्त्वम् ॥ तन्वे = तनुविस्तारे, तनोति कार्याणि यया सा तनूः शरीरम् । कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः । (उणा० १। ८०) ॥ जनित्रे = सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् (उणा० ४।१५९) इति ष्ट्रनि रूपम् ॥ अत्र सायणेनभ्रान्त्या वाजिनामकस्य मृतस्य बृहदुक्थपुत्रस्य प्रसंगो व्याख्यातः। परमत्र तत्तेशो वा गन्धो वाऽपि नास्ति ॥ ऋग्वेदे तु १०।५६।१ "संवेशने तन्वश्चारुः" इत्यन्तरम् ॥३॥ (६५)

भाषार्थः—[प्रकरण से अग्ने !] (ते) तेरी (इदम्) यह विद्युद्रूप (एकम्) एक (ऊ) और (ते) तेरी (परः) दूसरी आदित्य रूप (एकम्) एक [ज्योति है] (तृतीयेन) तीसरी पार्थिव (ज्योतिषा) ज्योतिः से (संविशस्व) आधान किया जावे। (परमे) श्रेष्ठ (जनित्रे) यज्ञ में (संवेशनः) आधान किया हुआ तू (देवानाम्) वाय्वादि देवों के (तन्वे) देह के लिये (प्रियः) प्यारा और (चारुः) सुशोभित (एधि) होवे ॥

जगत् में अग्नि की तीन ज्योतियां हैं—१ विद्युत् । २ आदित्य । ३ सामान्य पृथिवी पर का अग्नि । इन में से तीसरी ज्योति से अग्नि का कुण्ड में आधान होता है और तब वह यज्ञ में स्थित अग्नि, वाय्वादि देवों के शरीरों का सुधार करता है । शोभा और प्रसन्नता को उत्पन्न करता है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सायणाचार्य ने इस के भाष्य में वाजिनामक बृहदुक्थ के मृत पुत्र की कथा लिखी है परन्तु यहां उस का लेश भी मूल में नहीं है ॥

उणादि १।८० और ४।१५९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (१०।५६।१) में " संवेशने तन्वश्चारुः " ऐसा पाठ है ॥३॥ (६५)

अथ चतुर्थ्याः—कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः ॥

३२उ ३१२ ३१२ ३१२ ३१२ ३१२

इमꣳस्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सम्महेमा मनीषया ।

३२उ ३१२ ३१२ ३१२ २२ ३१२

भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सꣳसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव

॥४॥ (६६)

पदपाठः—इमम्, स्तोमम् २ । अर्हते ४=२ । जातवेदसे ४=२ । रथमिव अ० । सम्महेमा क्रि० । मनीषया ३ । भद्रा १ । हि अ० । नः ६ । प्रमतिः १ । अस्य ६ । सꣳसदि ७ । अग्ने सं० । सख्ये ७ । मा अ० । रिषामा क्रि० । वयम् १ । तव ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(वयम्) उपासकाः (इमम्, स्तोमम्) इदं स्तोत्रं (अर्हते) अर्हन्तम् (जातवेदसे) वेदप्रकाशकं परमात्मानं (मनीषया) बुद्ध्या (रथमिव) यथा रथं नाना मार्गेषु दृष्टाऽदृष्टपूर्वेषु गमयन्ति तद्वत् (सम्महेमा) वर्धयाम, तद्विषयकज्ञानवृद्धिं कुर्य्यामेति यावत् । (अस्य) परमात्मनः (सꣳसदि) ध्यानस्थाने (नः) अस्माकं (प्रमतिः) प्रकृष्टा मतिः (भद्रा) कल्याणी (हि) खलु भवति । (अग्ने) हे ज्योतिःस्वरूप ! (तव) (सख्ये) आनुकूल्ये (मा) (रिषामा) हिंसिता भवाम ॥

अर्थात् उक्तप्रकारकं स्तोत्रमर्हन्तं परमात्मानं किञ्चिद्देदतः श्रुत्वा ततो बुद्ध्या तद्विषयकं ज्ञानं वर्धयाम इति विज्ञेयं मनुष्यैः । तदीयध्यानपरा मतिः कल्याणी जायते । तत्पराणां कदाचिद्धिंसा दुखं च न जायते इति भावः ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भौतिकपक्षे—(वयम्) याज्ञिकाः शिल्पिनो वा (इमम्, स्तोमम्) वेदोक्तम्, अग्निगुणवर्णनम् (अर्हते) अर्हन्तम् (जातवेदसे) जातवेदसमग्निं (मनीषया, रथमिव, सम्महेमा) (अस्य) अग्नेः (सधस्थे) यज्ञस्थले (नः, प्रमतिः, भद्रा, हि)। (अग्ने) अग्ने ! (तव, सख्ये, मा, रिषामा)॥

अग्निर्हि वेदोक्तमिदं स्तोत्रमर्हति, तं वयं बुद्धया वर्धयामाऽर्थात् किञ्चिद्वेदतः श्रुत्वा ततः स्वबुद्धया तद्विषयकज्ञानवृद्धिरस्माभिः कर्त्तव्या। अत्राऽग्निस्तोत्रे कृते तद्विषयेऽस्मन्मतिः प्रकृष्टा जायते। एवंविज्ञातगुणस्याग्नेः सुप्रयोगेण सर्वतो हिंसादिदोषदुःखराहित्यं च जायते इति भावः ॥

सम्महेमा, रिषामा इत्यत्राऽन्येषामपीति (पा०६।३।१३७) दीर्घः ॥ ४ ॥ (६६)

भाषार्थः—(वयम्) हम उपासक लोग (इमम्, स्तोमम्) इस, स्तोत्र के (अर्हते) योग्य (जातवेदसे) वेदप्रकाशक परमात्मा को (मनीषया) सूक्ष्म बुद्धि से (रथमिव) रथ के समान (सम्महेमा) बढ़ावें। (अस्य) इस परमात्मा की (सधस्थे) ध्यानशाला में (नः) हमारी (प्रमतिः) पवित्र बुद्धि (भद्रा, हि) सुधरती, ही है। (अग्ने) हे ज्योतिःस्वरूप ! (तव) आप की (सख्ये) अनुकूलता में (मा) न (रिषामा) दुःखी होवें ॥

तात्पर्य यह है कि परमात्मा उक्त प्रकार की स्तुति के योग्य है और हम को उचित है कि उस का वेद की श्रुतियों से थोड़ा सा श्रवण करके फिर अपनी बुद्धि से उसे बढ़ावें अर्थात् जिस प्रकार थोड़े से चलाये हुवे रथ को फिर अपनी बुद्धि से सारथि नवीन मार्गों में भी चला सकता है इसी प्रकार परमात्मविषयक ज्ञान की वृद्धि करें। क्योंकि उस के शरण में रखने से बुद्धि उज्ज्वल होती है और हिंसादि सब दुःख दोष दूर होते हैं ॥

भौतिकपक्ष में—(वयम्) हम याज्ञिक वा शिल्पी लोग (इमम्, स्तोमम्) इस, वेदोक्त गुणवर्णन के (अर्हते) योग्य (जातवेदसे) अग्नि को (मनीषया) बुद्धि से (रथमिव) रथ के समान (सम्महेमा) बढ़ावें। (अस्य) इस

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अग्नि के (सधस्थसदि) यज्ञस्थल पर (नः) हमारी (प्रमतिः) शुद्ध बुद्धि (भद्रा,हि) सुधरती ही है। (अग्ने) अग्ने! (तव) तेरी (सख्ये) अनुकूलता में (मा) न (रिषामा) दुःखी होवें ॥

अग्नि स्तुतियोग्य अर्थात् इस वेदोक्त रीति से वर्णन करने के योग्य है। हम को उचित है कि इस के गुणों को बुद्धि से बढ़ावें अर्थात् थोड़ा वेद से सुनकर फिर अपनी बुद्धि और अनुभव से उस विषय में ज्ञान बढ़ावें। इस अग्नि के वर्णन रूप स्तोत्र से बुद्धि तीव्र होती है तथा इस के गुणों को जान कर सुप्रयोग करने से हिंसादि दुःख निवृत्त होते हैं ॥

अष्टाध्यायी ६।३।१३७ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥४॥ (६६)

अथ यज्ञस्य-भरद्वाजो भारद्वाजो वा ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३१२ ३१ २३१ २३ १ २ ३२३२उ ३२३ २
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
३२ ३२ ३ १ २३ १२ ३२३ १२ ३२
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥

॥ ५ ॥ (६७)

पदपाठः-मूर्धानम् २। दिवः ६। अरतिम् २। पृथिव्याः ५। वैश्वानरम् २। ऋते ७। आ अ०। जातम्, अग्निम्, कविम्, सम्राजम्, अतिथिम् २। जनानाम् ६। आसन् २। नः ६। पात्रम् २। जनयन्त क्रि०। देवाः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(देवाः) विद्वांस ऋत्विजः (नः, ऋते) अस्माकं, यज्ञे (पृथिव्याः, दिवः, मूर्धानम्, अरतिम्) भूमेः सकाशात्, द्युलोकस्य, उच्चभागंप्रति, गन्तारम् (वैश्वानरम्) विश्वेभ्यो नरेभ्यो हितम् (जातम्) उत्पन्नम् (कविम्) दर्शकम् (सम्राजम्) सम्यक् प्रकाशमानम् (अतिथिम्) सततं गमनशीलम् (जनानाम्, पात्रम्) मनुष्यादिप्राणिनां, रक्षकम् (आसन्) देवानामास्यं मुखम् (अग्निम्) (आ, जनयन्त) समन्ततो जनयन्तु अरण्योरुत्पादयन्तु ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अग्निर्हि पृथिव्याः दिवं प्रति ऊर्ध्वं गच्छति, विश्वेषां नराणाम् हितकरः, दर्शनसाधकः, संप्रकाशमानः, सततगामी, जनानां रक्षकः, देवानां मुखम्, येन देवा भुञ्जते वाय्वादयः। एवं गुणगरिष्ठमग्निमस्मद्यज्ञे देवाः विद्वांस ऋत्विजो जनयन्तु। तद्द्वारा देवयजनं कुर्यामेति भावः ॥

अरतिम् = अमेरतिः, वहिवस्यर्तिभ्यश्चित् (उणा० । ४ । ५९, ६०) ऋच्छति गच्छतीत्यऽरतिस्तम् ॥ ऋत इति पदनाम निघं० ५ । ४ । अञ्चियृसिभ्यः क्तः (उणा० ३ । ८९) बहुलवचनात्, ऋगतौ, ऋच्छत्याकाशमिति ऋतो यज्ञः ॥ अत सातत्यगमने, ऋतन्यृञ्जिवन्यञ्जीत्यादिना (उणा० ४ । २) इथिन्प्रत्यये रूपम् । अततीत्यतिथिस्तम् ॥ पद्दन्नोमास्हृदित्यादिना (पा० ६ । १ । ६३) आस्यस्याऽऽसन्नादेशे, सुपां सुलुगित्यादिना (पा० ७ । १ । ३९) द्वितीयाया लुकि, आसन्—आस्यमित्यर्थः ॥ पा रक्षणे, सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् (उणा० । ४ । १५९) पाति रक्षतीति पात्रं रक्षकम् ॥ ऋग्वेदे ६ । ७ । १ "आसन्नापात्र"मिति भेदः ।५। (६७)

भाषार्थः—(देवाः) विद्वान् ऋत्विज् लोग (नः, ऋते) हमारे, यज्ञ में (पृथिव्याः, दिवः, मूर्धानम्, अरतिम्) पृथिवी से, द्युलोक के, ऊर्ध्व भाग को, जाने वाले (वैश्वानरम्) सब मनुष्यों के हितकारी (जातम्) उत्पन्न (कविम्) दिखाने वाले (सम्राजम्) दहकते हुवे (अतिथिम्) सदा चलने वाले (जनानां, पात्रम्) प्राणियों के, रक्षक (आसन्) [देवों के] मुख (अग्निम्) अग्नि को (आ, जनयन्त) सब ओर से प्रकट करें ॥

अग्नि, पृथिवी से हव्य लेकर ऊपर द्युलोक को जाता, वहां जाकर वायु जलादि की पवित्रता द्वारा मनुष्यों का हित करता, उत्पन्न होकर प्रकाश से दिखाने का काम करता, स्वयं प्रकाशित होता, सदा ऊपर को चलता ही

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रहता, प्राणियों की रक्षा करता और वायु आदि देवों का मुख है, इसी से वे हव्य पदार्थ खाते हैं। इस प्रकार के अग्नि को अपने यज्ञमें विद्वान् ऋत्विजों से स्थापित कराके यज्ञ करना चाहिये ॥

उणादि ४। ५९, ६० ॥ ३। ८९ ॥ ४। २ ॥ ४। १५९ ॥ निघं० ५। ४ ॥ अष्टाध्यायी ६। १। ६३ ॥ ७। १। ३९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ६। ७। १ में "आसन्ना पात्रम्" ऐसा पाठ है ॥ ५ ॥ (६७)

अथ षष्ठ्याः—भरद्वाजो भारद्वाजो वा ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

वित्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः।

३ १२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिन्न गिर्वाहो जिग्युरश्वाः॥

॥६॥ (६८)

पदपाठः—वि० अ०। त्वत् ५। आपः १। न अ०। पर्वतस्य ६। पृष्ठात् ५। उक्थेभिः ३। अग्ने सं०। जनयन्त क्रि०। देवाः १। तम्, त्वा २। गिरः, सुष्टुतयः १। वाजयन्ति क्रि०। आजिम् २। न अ०। गिर्वाहः १। जिग्युः क्रि०। अश्वाः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) अग्ने! (देवाः) विद्वांसः (उक्थेभिः) वेदोक्तवर्णनैः (त्वत्) त्वत्तः सकाशात् (वि) विविधास्त्राणि (जनयन्त) जनयन्तु (न) यथा (पर्वतस्य, पृष्ठात्) मेघस्योपरितनभागात् (आपः) जलानि मेघस्थानि विविधविद्युतउत्पादयन्ति तद्वत्। (तम्) (त्वा) त्वाम् (सुष्टुतयः) शोभनाः स्तुतयोगुणवर्णनरूपा यत्र ताः (गिरः) वेदवाचः (वाजयन्ति) बलिनं कुर्वन्ति। तदा च (न) यथा (गिर्वाहः) गिरं वाणीं वहन्ति कथनानुकूलं गच्छन्तितेऽश्वाः) आशुगामिनः (आजिम्) संग्रामं (जिग्युः) जयन्ति, तद्वत् त्वं संग्रामाञ्जय ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अयं भावः—यथा पर्वतस्य मेघस्य पृष्ठात् आपो विविधं विद्योतमाना विद्युत उत्पादयन्ति तथैव विद्वांसोऽपि अग्नेःसकाशात् विविधाऽस्त्राण्युत्पादयन्तु। केनोत्पादयन्तु तत्राह—उक्थेभिरिति, वेदोक्तवचनैः। वेदोक्तानग्निदिव्यगुणान्विज्ञाय तदनुकूलानुष्ठानैरित्यर्थः। एवं सति ताः वेदवाचएवाऽग्निं बलिनं कुर्वन्तु अग्नौ बलमुत्पादयन्तु। तदा च—यथा गिर्वाहो वचनानुगामिनोऽश्वाः संग्रामं जयन्ति तद्देवाऽयमग्निर्नानाऽस्त्रशस्त्रादिपरिणामेन शत्रून्जयतु ॥

पर्वत इति मेघनाम निघं० १। १०। भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहर्यिभ्योऽतच् (उणा० ३। ११०) पर्वति जलेन पूर्णोभवति सपर्वतोमेघस्तस्य॥ विद्वाꣳसो हि देवाः। शतपथ—ब्राह्मणे ॥ वाज इति बलनाम निघं० २। ९ तस्य नामधातुत्वे वाजयन्तीति रूपम्॥ जिग्युरिति—छन्दसिलुङ्लङ्लिटः (पा० ३।४।६) इति सामान्ये लिट् ॥ ऋग्वेदे तु ६।२४।६। इन्द्रो देवता। "उक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः। तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः" इति पाठे च महदन्तरम् ॥६॥ (६८)

भाषार्थः—(अग्ने) अग्ने! (देवाः) विद्वान् लोग (उक्थेभिः) वेदवाक्यों द्वारा (त्वत्) तुझ से (वि) विविध अस्त्रादि को (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं। (न) जैसे (पर्वतस्य, पृष्ठात्) मेघ के, पृष्ठ से (आपः) [मेघस्य] जल, (वि) अनेकविध विद्योतमान बिजुलियों को उत्पन्न करते हैं, तद्वत्। (तं, त्वा) उस, तुझ [अग्नि] को (सुष्टुतयः, गिरः) शोभन स्तुति रूप, वेदवाणियें (वाजयन्ति) बलिष्ठ करती हैं। और तब (न) जैसे (गिर्वाहः) कहने में लेचलनेवाले (अश्वाः) घोड़े (आजिम्) संग्राम को (जिग्युः) जीतते हैं

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

[तद्वत् तू संग्राम को जीतता है] ॥

तात्पर्य्य यह है कि जिस प्रकार मेघस्थ जल अपने में से विविध प्रकार चमकने वाली बिजुलियों को उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार विद्वान् लोग भी वेदवाक्यों से अग्नि के गुणों को जान कर तदनुसार अनुभव करके अनेक विध अस्त्रों को अग्नि से उत्पन्न करें। क्योंकि वेद के वचन उस अग्नि को बलवान् करते हैं अर्थात् ऐसी रीति बताते हैं जिस के द्वारा आग्नेय बल उत्पन्न हो जावे। और जैसे कहने में चलने वाले घोड़ों के द्वारा युद्ध में दूरस्थ शत्रुओं को शीघ्र जीत सकते हैं इसी प्रकार यह अग्नि भी अपने बल से अस्त्रादि रूप में परिणत हुआ, दूरस्थ शत्रुओं का पराजय करके अपना जय कराता है ॥

निघं० १।१०॥ २।९॥ उणादि ३।११०॥ शतपथ ब्राह्मण ॥ अष्टाध्यायी ३।४।६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ६।२४।६ में "उक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः। तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः" ऐसा पाठ और अर्थ में भी भेद है तथा इन्द्र देवता है ॥६॥ (६८)

अथ सप्तम्याः—वामदेवऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३१ २३१ २र ३ २ ३ १२

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रꣳहोतारꣳसत्ययजꣳरोदस्योः।

३ २३१२ ३ २३ २३ १ २ ३१२

अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥७॥ (६९)

पदपाठः—आ अ० । वः ६। राजानम् २। अध्वरस्य ६। रुद्रम्, होतारम्, सत्ययजम् २। रोदस्योः ६। अग्निम् २। पुरा अ० । तनयित्नोः, अचित्तात् ५ । हिरण्यरूपम् २। अवसे ४। कृणुध्वम् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः (वः) युष्माकम् (तनयित्नोः) विद्युत्तुल्यात् (अचित्तात्) नास्ति चित्तं यस्मिंस्तस्मान्मृत्योः(पुरा) प्रागेव (अध्वरस्य) यज्ञस्य (राजानम्) स्वामिनम् (होतारम्) फलप्रदातारम् (रुद्रम्) दुष्टानां रोदयितारम् (रोदस्योः) द्यावा-पृथिव्योर्मध्ये (सत्ययजम्) सत्यं यथार्थं यष्टारम् (हिरण्यरू-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पम्) ज्योतिःस्वरूपम् (अग्निम्) प्रकाशमानम् परमात्मानम् (अवसे) रक्षणाय (आ–कृणुध्वम्) आकारयध्वम् । तदुपासनं तदनुकूलाचरणं च कुरुध्वम् ॥

अर्थात् मृत्युर्विद्युदिव शिरसि गर्जनं करोति तस्मात्पूर्वमेवोक्तगुणात्मानं परमात्मानं भजध्वम्, सति मृत्यौ न किमपि कर्त्तुं शक्यते ॥

भौतिकपक्षे–हे मनुष्याः (वः, तनयित्नोः, अचित्तात्, पुरा, अध्वरस्य, राजानम्, होतारम्) (रुद्रम्) प्रचण्डम् (रोदस्योः) द्यावापृथिव्योर्मध्ये (सत्ययजम्) यथार्थं यष्टारम् (हिरण्यरूपम्, अग्निम्, अवसे) (आ–कृणुध्वम्) आकारयध्वम्। अर्थात् अग्निमाधाय यजध्वम् ॥

रोदसीति द्यावापृथिवीनाम निघं० ३।३०॥ ऋग्वेदेऽपि (४। ३।१) इत्थमेवाऽविकलपाठः ॥७॥ (६९)

भाषार्थः–हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (तनयित्नोः) बिजुली के तुल्य (अचित्तात्) मृत्यु से (पुरा) पहिले ही (अध्वरस्य, राजानम्) योगयज्ञ के, राजा (होतारम्) कर्मफलदाता (रुद्रम्) पापियों को रोदन कराने वाले (रोदस्योः) द्यावापृथिवी के मध्य में (सत्ययजम्) सच्चा यज्ञ करने वाले (हिरण्यरूपम्) ज्योतिःस्वरूप (अग्निम्) प्रकाशमान परमात्मा को(अवसे) रक्षा के लिये (आ–कृणुध्वम्) बुलावो ॥

अर्थात् बिजुली के समान मृत्यु शिर पर गर्जता है उस से पूर्व ही तुम लोग उक्तगुणयुक्त परमात्मा के शरण में प्राप्त होजाओ, पीछे पछितावोगे ॥

भौतिकपक्ष में–हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (तनयित्नोः, अचित्तात्, पुरा) विद्युत्तुल्य, मृत्यु के, पूर्वही (अध्वरस्य, राजानम्) कर्मकाण्ड के,राजा (होतारम्) हव्य ले जाने वाले (रोदस्योः, सत्ययजम्) द्युलोक और पृथिवी के बीच में, यथार्थ देवयजन करने वाले (हिरण्यरूपम्) तेजोयुक्त

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(रुद्रम्) प्रचण्ड (अग्निम्) अग्नि का (अवसे) रोगादि शत्रुओं से बचने के लिये (आ-कृणुध्वम्) आधान करो ॥

अर्थात् मनुष्यो ! तुम को मृत्यु पर्यन्त उक्तगुणयुक्त अग्नि का स्थापन करके यज्ञ करना चाहिये, मरने पर क्या बन पड़ेगा । यह अग्निहोत्र रोगादि की शान्ति वाय्वादि की शुद्धि करके मृत्यु से बचाने वाला है ॥

निघण्टु ३।३० का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ४।३।१ में भी सर्वथा ऐसा ही पाठ है ॥७॥ (६९)

अथाऽष्टम्याः-वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २उ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २

नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ।८। (७०)

पदपाठः-इन्धे क्रि० । राजा १। सम् अ० । अर्यः १। नमोभिः ३। यस्य६। प्रतीकम्, आहुतम् १। घृतेन ३। नरः १। हव्येभिः ३। ईडते क्रि० । सबाधः १। आ अ० । अग्निः १। अग्रम् १=७ । उषसाम् ६। अशोचि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(यस्य) अग्नेः परमात्मनः (प्रतीकम्) स्वरूपम् (घृतेन) दीप्त्या । घृ क्षरणदीप्त्योः, अश्विघृसिभ्यः क्तः (उणा०।३।८९) ॥ (आहुतम्) व्याप्तमस्ति । यं च (सबाधः, नरः) योगयज्ञस्यर्त्विजो, मनुष्याः (हव्येभिः) हव्यैर्ग्रहीतुमर्हैर्भक्तिरूपैर्हविर्भिः सह (ईडते) स्तुवन्ति । यश्च (नमोभिः) नमस्कारैः प्रणामैः (सम्-इन्द्धे) सम्यक् हृदि प्रकाशते । सः (राजा) प्रकाशमानः (अर्यः) स्वामी (अग्निः) परमात्मा (उषसाम्, अग्रम्) प्रातः प्रातः (आ, अशोचि) [उपासकानां हृदयेषु] सर्वतः, पवित्रतां कुर्यात् ॥

मनुष्यैः प्रातः प्रातरुत्थाय परमप्रकाशः उपासकैर्योगिभिर्धृतध्यानःसर्वाध्यक्षः सर्वपूज्यः परमात्मा ध्यातव्यो येनाऽन्तः क-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रणे परमात्मनः प्रकाशेनाऽविद्यानिवृत्त्या सर्वदुःखनिवृत्तिः स्यात् ॥

भौतिकपक्षे—(यस्य) भौतिकाग्नेः (प्रतीकम्) स्वरूपम् (घृतेन) घृतादिचरुणा (आहुतम्) सुहुतम् क्रियते। यं च (सबाधः) ऋत्विजः (नरः) लोकाः (हव्येभिः) हातुर्महैः स्थालीपाकादिभिः सह (ईडते) मन्त्रैर्वर्णयन्ति। यश्च (नमोभिः) मिष्टपुष्टसुगन्ध्याद्यन्नैः (समिन्द्धे) प्रदीप्तो भवति। सः (राजा) (अर्य्यः) क्रियायज्ञस्वामी (अग्निः, उषसाम्, अग्रम्) (आ, अशोचि) सर्वतः, पावयेत् ॥

उक्तगुणाढ्योऽग्निः प्रातरेवोत्थाय प्रज्वाल्य सुष्ठु होतव्य इत्याशयः ॥

राजा=राजृ दीप्तौ इत्यस्य रूपम् ॥ अर्यः स्वामिवैश्ययोः (पा० ३।१।१०३) अनेनार्यशब्दो निपातितोऽत्र स्वाम्यर्थे विज्ञातव्यः॥ सबाध इत्यृत्विङ्नाम निघं ३।१८ बहुवचनम् ॥ अशोचीति, ईशुचिर् पूतीभावे इत्यस्य रूपम् बाहुलकेन छान्दसम्॥ ऋग्वेदे ७।८।१ तु "अग्निरग्र" इतिपाठः ॥ ८ ॥ (७०)

भाषार्थः—(यस्य) जिस परमात्मा का (प्रतीकम्) स्वरूप (घृतेन) प्रकाश से (आहुतम्) सब ओर से व्याप्त है। और जिस की (सबाधः) योगयज्ञ के ऋत्विज् (नरः) लोग (हव्येभिः) भक्ति रूप हव्यों के साथ (ईडते) स्तुति करते हैं। और जो (नमोभिः) नमस्कार वा प्रणामों से (समिन्द्धे) हृदय में भले प्रकार प्रकाश करता है। वह (राजा) तेजोमय (अर्य्यः) चराऽचर का स्वामी (अग्निः) परमात्मा (उषसाम्, अग्रम्) उषः काल में (आ,अशोचि) [उपासकों के हृदय में] सर्वतः पवित्रता करे॥

मनुष्यों को उचित है कि प्रातःकाल उठ कर परमप्रकाश, उपासकों से ध्याये हुवे, सर्वाध्यक्ष, सर्वपूज्य, परमात्मा का ध्यान करें। जिस से वह अन्तःकरण को पवित्र करे और अविद्या की निवृत्तिद्वारा सर्व दुःख दूर हों॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भौतिकपक्ष में-(यस्य) जिस अग्नि का (प्रतीकम्) स्वरूप (घृतेन) घृतादि हव्य से (आहुतम्) सब ओर से होम द्वारा हुत किया गया है। और जिस को (सत्राधः) ऋत्विज् (नरः) लोग (हव्येभिः) होमने योग्य पदार्थों के साथ (ईळते) मन्त्रोक्त वर्णित करते हैं। और जो (नमोभिः) अन्न अर्थात् स्थाली-पाकादि चरु से (सम्-इन्द्धे) सम्यक् प्रदीप्त होता है। वह (राजः) देदीप्यमान (अर्यः) यज्ञ का स्वामी (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (उषसाम्-अग्रम्) प्रातःकाल ही (आ, अशोचि) सर्वतः, पवित्र करे॥

उक्तगुणयुक्त अग्नि में नित्य प्रातःकाल उठते ही होम करना चाहिये जिस से वायु जल घर बाहर को पवित्र शुद्ध स्वच्छ करे॥

अष्टाध्यायी ३।१। १०३ निघण्टु ३।१८॥ उणादि ३। ८९ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ७।८।१ में "अग्निरग्र" पाठ है॥८॥ (७०)

अथ नवम्याः-त्रिशिरास्त्वाष्ट्र ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३.१ २ ३ १ २
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध।९। (७१)

पदपाठः-प्र अ०। केतुना, बृहता ३। याति क्रि०। अग्निः १। आ अ०। रोदसी २। वृषभः १। रोरवीति क्रि०। दिवः ६। चित् अ०। अन्तात् ५। उपमाम् २। उदानट् क्रि०। अपाम् ६। उपस्थे ७। महिषः १। ववर्ध क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(अग्निः) प्रसिद्धः (बृहता, केतुना) महता, ज्वालारूपेण ध्वजेन (दिवः, चित्) द्युलोकस्य, अपि (अन्तात्) पर्य्यन्तात् (प्र, याति)। (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (आ) अभि-व्याप्य (वृषभः) मेघेषु व्याप्तो वृष्टिहेतुः (रोरवीति) अत्यर्थं गर्जति, (अपाम्) मेघस्थजलानाम् (उपस्थे) उपस्थानेऽन्तरिक्षे (उपमाम्) समीपम् (उदानट्) उदश्नुते ऊर्ध्वं व्याप्नोति। एवं (महिषः) महान् अग्निः (ववर्ध) सुहुतः सन् वर्धते॥

अत्र मन्त्रेऽग्नेर्माहात्म्यं वर्णितम्। यत् अयमेवाग्निः ऊर्ध्वं

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

गत्वाऽन्तरिक्षं मेघं द्युलोकं चाभिव्याप्य तिष्ठति, मेघेषु गर्जनहेतुर्वृष्टिहेतुश्चास्ति इत्यादि ॥

केतुना—चायः की (उणा० १।७४) चायते निशामयति ज्ञापयति स केतुर्ध्वजः ॥ वृषभः—प्रजां वर्षतीति वातिवृहति रेत इति वा तद्वृषकर्मा वर्षणाद्वृषभः । निरुक्ते १।२२॥ उपमेति अन्तिकनाम निघं० २।१६॥ महिष इति महन्नाम निघं० ३।३॥ ऋग्वेदे (१०।८।१) तु "दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदा०" इतिपाठः॥१॥ (७१)

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि (बृहता, केतुना) बड़ी, लपट से (दिवः, चित्) द्युलोक के, भी (अन्तात्) पर्य्यन्त तक (प्र, याति) जाता है। (रोदसी) द्यावाभूमियों के मध्य में (आ) अभिव्याप्त होकर (वृषभः) वृष्टि का हेतु (रोरवीति) गर्जता है। (अपाम्, उपस्थे) मेघस्थ जलों के, उपस्थान अन्तरिक्ष में (उपसाम्) समीप (उदानट्) ऊपर को व्यापता है। इस प्रकार (महिषः) महान् (ववर्ध) बढ़ता है ॥

इस मन्त्र में अग्नि का माहात्म्य दिखलाया है कि यही अग्नि ऊपर जाकर अन्तरिक्ष द्युलोक और मेघ को व्याप्त करके स्थित है। मेघों में गर्जन और वर्षा का हेतु भी यही है। इत्यादि ॥

उणादि १।७४। निरुक्त ९।२२। निघण्टु २। १६ ॥ ३।३ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद में (१०।८।१) " दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदान० " ऐसा पाठ है ॥९॥ (७१)

अथ दशम्याः—वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् छन्दः ॥

३ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १० ॥ (७२)

* इति सप्तमी दशतिः ॥७॥ *

पदपाठः—अग्निम् २। नरः सं०। दीधितिभिः ३। अरण्योः ७। हस्तच्युतम् २। जनयत क्रि०। प्रशस्तम्, दूरेदृशम्, गृहपतिम्, अथव्युम् २॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(नरः) हे मनुष्याः ! यूयम् (दूरेदृशम्) दूरतो दृश्यमानम् (गृहपतिम्) गृहस्य पालकम् (अथव्युम्) गमनशीलम् (प्रशस्तम्) श्रेष्ठम् (हस्तच्युतम्) हस्तगतम् (अग्निम्) (अरण्योः) द्वयोः अरण्योर्मध्ये (दीधितिभिः) अङ्गुलिभिः [संघर्ष्य] (जनयत) ॥

अत्र मन्त्रे यज्ञार्थमग्नेरुत्पादनप्रकारोऽभिहित इति सुव्यक्तमेव ॥

अथव्युमिति-छान्दसं रूपम्, अथर्वतिर्गतिकर्मा निघं० २। १४ ॥ अथर्यतीत्यपि तत्र पाठान्तरम् । तस्मात् ॥ हस्तच्युतम्=हस्ते च्युतं गतम्, च्यवते इति गतिकर्मा निघं० २। १४ ॥ दीधितयइत्यङ्गुलिनाम निघं०१।५॥ तथा च-" दीधितयोऽङ्गुलयोभवन्ति धीयन्ते कर्मसु । अरणी प्रत्यृतएने । अग्निः समरणाज्जायत इति वा " ॥ निरुक्ते ५।१०॥ऋग्वेदे तु (७।१।१) "हस्यच्युती जनयन्त"इति"अथर्युम्"इति चान्तरम्।१०। (७२)

भाषार्थः-(नरः) हे मनुष्यो ! (दूरेदृशम्) दूर से दीखने वाले (गृहपतिम्) घर के पालक (अथव्युम्) गमनशील (प्रशस्तम्) उत्तम (हस्तच्युतम्) हस्तगत (अग्निम्) अग्नि को (अरण्योः) दो अरणियों में (दीधितिभिः) अङ्गुलियों से [रगड़कर] (जनयत) उत्पन्न करो ॥

निघण्टु २ । १४ ॥ २ । १४ ॥ निरुक्त ५।१० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ७।१।१ में " हस्तच्युती जनयन्त " और " अथर्युम् " इतना भेद है ॥ १० ॥ (७२)

* यह सातवीं दशति समाप्त हुई ॥ ७ ॥ *

—:*:—

अथाऽष्टमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-बुधगविष्ठिरावृषी । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

CCO. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३१ २ ३ २३ १ २
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
३ २३ २३ २३ १ २३ २ ३१२ ३ २३ १ २
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ १।(७३)

पदपाठः—अबोधि क्रि० । अग्निः १। समिधा ३। जनानाम् ६। प्रति, धेनुमिव अ० । आयतीम्, उषासम् २। यह्वाइव, प्र अ० । वयाम् २। उज्जिहानाः१। प्र अ० । भानवः १। सस्रते क्रि० । नाकम् २। अच्छ अ० ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्निः, जनानां, समिधा, अबोधि) कदेत्यत्राह—(धेनुमिव) दुग्धदात्रीं गामिव (आयतीम्) आगच्छन्तीम् (उषासम्) उषसम् (प्रति) उषःकाले इत्यर्थः । तदा (भानवः) अग्नेर्ज्वालाः (वयाम्) विं पक्षिणमिव (प्र, उज्जिहानाः) त्यजन्तः (यह्वाइव) महान्तः पक्षिण इव । (अच्छ) सुष्ठु यथा स्यात् तथा (नाकम्) द्युलोकं प्रति (प्र, सस्रते) प्रसरन्ति ॥

समिद्भिः प्रदीपितेऽग्नौ प्रातरुषः कालेऽग्नेर्ज्वालाः दिवं प्रसरन्ति महान्तमुपकारं साध्नुवन्ति च। तत्र दृष्टान्तमाह—यथा ऽल्पवयस्कं पक्षिशावकं नीडे परित्यज्य जातपक्षाः महान्तो दीर्घायुष्काःपक्षिणो दिवं प्रत्युड्डीयन्ते तद्वदग्निज्वाला अपि दिवं गत्वोपकुर्वन्ति

'अन्येषामपि दृश्यते (पा० ६ । ३ । १३७) इत्यनेनोषासमित्यत्र दीर्घः ॥ यह्व इति महन्नाम निघं० ३ । ३॥ वयामिति वेः पक्षिवाचकस्य वर्णव्यत्ययेन बाहुलकाच्छान्दसं रूपम् ॥ भानवः—दाभाभ्यां नुः (उणा० ३ । ३२) भान्तीति भानवः किरणा ज्वाला वा ॥ ऋग्वेदे तु (५।१।१) " सिस्रते " इत्यन्तरम् ॥ १ ॥ (७३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(अग्निः) अग्नि (जनानाम्) यज्ञकर्त्ताओं की (समिधा) समिध्से (अबोधि) प्रज्वलित होता तब (धेनुमिव) दुग्ध देने वाली गौ के समान (आयतीम्, उषासम्, प्रति,) आती हुई, उषा के, प्रति अर्थात् प्रातःकाल ही (भानवः) लपटें (वयाम्, प्र, उज्जिहानाः) पक्षि के बच्चे को, छोड़ते हुए (यद्वाड्व) बड़े पक्षियों के समान (अरुक्ष) अच्छे प्रकार (नाकम्) द्युलोक की ओर (प्र, सस्रते) फैलती हैं ॥

जिस प्रकार छोटे बच्चों को छोड़कर पक्षिगण आकाश को उड़ जाते हैं इसी प्रकार प्रातःकाल के हवन समय जब अग्न्याधान करके समिदाधान किया जाता है और अग्नि का उद्बोधन होता है तब लपटें वेदी को छोड़ कर भले प्रकार से आकाश को चलती हैं और उपकार करती हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३१ निघण्टु३ । ३ उणादि ३ । ३२ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ५ । १ । १ में "सिस्रते" इतना पाठभेद है ॥१॥ (७३)

अथ द्वितीयायाः-वत्सप्रिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२३१२ ३१ २३३ ३१र२र ३२ ३१२ १२
प्रभूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् । नयन्तं
३ २३१र २र ३ १२ ३१र २र ३२
गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ।२। (७४)

पदपाठः-प्र अ० । भूः क्रि० । जयन्तम्, महाम्, विपोधाम् २ । मूरैः ३ । अमूरम् २ । पुराम् ६ । दर्माणम्, नयन्तम् २ । गीर्भिः ३ । वना, धियम् २ । धाः क्रि० । हरिश्मश्रुम् २ । न अ० । वर्मणा ३। धनर्चिम् २ ॥

अन्वितपदार्थः- हे मनुष्य ! त्वम् (धनर्चिम्) धनं धृतमर्चिरनेन सोऽग्निस्तम् किम्भूतम्-(जयन्तम्) आग्नेयास्त्रादिना शत्रूणां जेतारम् (महाम्) महान्तं महाबलम् (विपोधाम्) मेधाविरक्षकम् (अमूरम्) मूरं मूलं बन्धनं तद्रहितम् (पुराम्) शत्रुदुर्गाणाम् (मूरैः) मूलैः सह (दर्माणम्) विदारकम् (वना) वनानि रश्मीन् (नयन्तम्) (हरिश्मश्रुं, न) हरिः सूर्य्यस्तस्य श्मश्रुं किरणमिव तेजस्विनम् । (धियम्) कर्म च (वर्मणा)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आच्छादकेन कवचेन सह (गीर्भिः) वेदवाग्भिः (धाः) धेहि (प्र, भूः) प्रभव समर्थो भव ॥

राजादिभिः पुरुषैः संग्रामे वर्म कवचं धार्य्यं तेन सह वेदानुकूलाऽग्नेयास्त्रप्रयोगश्च कार्य्यः । येन शीघ्रं जयः, श्रेष्ठानां मेधाविनां धारणं रक्षा, दुष्टदस्युशत्रुदुर्गाणां समूलनाशः, सर्वथा विजयश्च स्यात् ॥

महाम्, इत्यत्र वर्णव्यत्ययः॥ विपोधाम्-विपइति मेधाविनामनिघं० ३।१५। तेषां धारकम् ॥ मूरैः,रेफस्थाने लकारोव्यत्ययेन। मूङ् बन्धने, मूशक्यबिभ्यः क्लः (उणा० ४।१०८) इतिसिद्धम् ॥ दर्माणम्—दॄ विदारणे, बाहुलकादौणादिको मनिन् ॥ वनमिति रश्मिनाम निघं० १ । ५ ॥ धीरिति कर्मनाम निघं० २ । १ ॥ धनर्चिम्, बाहुलकाद्धाञ् धातोरौणादिकः क्युः । ध्रियते इति धनम्, धृतमर्चिरनेन तं धनर्चिमग्निम् ॥ ऋग्वेदे (१० । ४६ । ५) तु "मूरा अमूरम्" इति "नयन्तोगर्भं वनां धियं धुर्हरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम्" इति च पाठाऽर्थयोरन्तम् ॥ २ ॥ (७४)

भाषार्थः—हे मनुष्य ! तू (जयन्तम्) जीतने वाले (महाम्) बड़े (विपोधाम्) बुद्धिमानों के धारक रक्षक (अमूरम्) बन्धनरहित (पुराम्, मूरैः, दर्माणम्) दुर्गों का, मूल सहित, विदारण करने वाले (वना, नयन्तम्) चिनगारियों को, ले जाने वाले (हरिश्मश्रुं, न) सूर्य की किरण के, समान तेजस्वी (धनर्चिम्) अग्नि को तथा (धियम्) पुरुषार्थ को (गीर्भिः) वेदवचनानुसार (वर्मणा) कवच के साथ (धाः) धारण कर और (प्र, भूः) समर्थ, हो ॥

राजा और योद्धाओं को योग्य है कि युद्ध में कवच पहर कर, आग्नेयास्त्र का प्रयोग करें, जिस से अपना विजय, बुद्धिमान् पुरुषों की रक्षा, शत्रुदुर्गों का दलन हो और सामर्थ्य बढ़े । क्योंकि अग्नि सूर्य्यकिरण के समान सीधी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रेखा में चिनगारियों सहित गोलों द्वारा उक्त कार्य्यसिद्ध कर सक्ता है ॥

निघण्टु ३ । १५ ॥ १ । ५ ॥ २ । १ ॥ उणादि ४ । १०८ के प्रमाण तथा ऋग्वेद १० । ४६ । ५ में जितना पाठ और अर्थ का भी भेद है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

अस्य मन्त्रस्य ज्वालाप्रसाद-भार्गवकृतोऽर्थोऽपि दर्शनीयो, येन तदीयनिर्मूलता स्पष्टीभूता स्यात् तदर्थमन्त्रोद्धृतः क्रियते । यथा-

हे स्तोतः ! त्वं (जयन्तम्) असुरसेनानां जेतारं (महां) षोडशकलावतारं महान्तं (विपोधां) मेधाविनां भक्तानां धर्तारं वा (मूरैः) मुरुदैत्यसेनाजनैः (पुराम्) पूर्णानां प्राकारादीनां (दर्माणम्) विदारकं । दृ विदारे (अमूरम्) दैत्यपाशैर्निर्मुक्तं । मुर वेष्टने (गीर्भिः) षोडशसहस्रकन्यानां स्तोत्रैः (वर्मणा) कवचेन च (वनाम्) तासां निवासस्थानानां (नयन्तम्) द्वारिकायां प्रापयन्तं (न) च (धनर्चिम्) धनदानेन द्वारिकावासिनां पूजकं (हरिश्मश्रुम्) विष्णुवाख्यमग्निं (प्रभूः) स्तोतुं प्रभव समर्थो भव (धियम्) परिचरणरूपं कर्म च (धाः) विधेहि ॥

भाषार्थः-हे स्तोता ! तुम, असुर सेना के जेता, षोडशकलावतार, मेधावी भक्तों के धारक, मुरुदैत्य के सेनाजनों से, पूर्ण प्राकार आदि के, विदारक, दैत्य की पाशों से निर्मुक्त, षोडश सहस्र कन्याओं के स्तोत्र, और कवचों के द्वारा, उन के निवासस्थानों को, द्वारिका में पहुंचाने वाले, और धन दानसे द्वारिकावासियों के पूजक, विष्णु नाम अग्नि के, स्तुति करनेको समर्थ हो और सेवा रूप कर्म को, विधान कर ॥

मूलपदेषु, विष्णु-षोडशकलाऽवतार-दैत्य-पाश-षोडशसहस्रकन्या-द्वारिकापदानां लेशस्याप्यऽभावात् किं ब्रूमोऽस्य निर्मूलतामीदृग्भाष्यजातवेदाऽनर्थनिर्मूलनायैवैषोऽस्मदीयभाष्योद्योगः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव (आगरा) का संस्कृत और भाषा भाष्य देखिये जैसा कि अक्षरशः ऊपर छपा है। सब जानते हैं कि इस काण्ड का नाम आग्नेय काण्ड है। और इस मन्त्र में कहीं भी मूल में, विष्णु, १६ कलावतार दैत्य-पाश-१६००० कन्या-द्वारिका इत्यादि का लेशमात्र भी नहीं है। यदि इस प्रकार के वेदार्थदूषक निर्मूल भाष्य वेदों पर न हुवे होते तो क्यों वैदिकधर्म का इतना ह्रास होता और क्यों उस ह्रास के निवारणार्थ हम को भाष्य करने की आवश्यकता पड़ती ॥२॥ (७४)

अथ तृतीयायाः—भरद्वाज ऋषिः । पूषा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १२ ३ १ २ २ ३

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि । विश्वा

२ ३१र २र ३ १२ ३२ ३ १२

हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥३॥ (७५)

पदपाठः—शुक्रम् १। ते ६। अन्यत्, यजतम् १। ते ६। अन्यत् १। विषुरूपे, अहनी १। द्यौरिव अ०। असि क्रि०। विश्वाः २। हि० अ०। मायाः २। अवसि क्रि०। स्वधावन् सं०। भद्रा १। ते ६। पूषन् सं०। इह अ०। रातिः १। अस्तु क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(स्वधावन्) हे उदकवन्! (पूषन्) पुष्टिकर्त्तर्देव! त्वं (द्यौरिव) द्युलोकइव (असि) वर्तसे (ते) तव (शुक्रम्) वीर्यम् (अन्यत्) विलक्षणम् (यजतम्) सङ्गतम् (ते, अन्यत्)। (विषुरूपे) विषमरूपे (अहनी) दिने, दक्षिणायनोत्तरायणभेदेन तवैव प्रतापेन संजायेते इति शेषः। (विश्वाः) समस्ताः (मायाः) प्रज्ञाः (हि) निश्चयेन (अवसि) पासि (ते) तव (रातिः) पुष्टिदानक्रिया। रा दाने। (इह) लोके (भद्रा) सुखप्रदा (अस्तु) परमेश्वररूपयेति शेषः॥

अग्निमयसूर्य्यप्रकाशेन पूषा देवतोत्पद्यते। तस्या अग्निविकारत्वात् आग्नेयपर्वणि प्रसंगानुगतं वर्णनं बोध्यम् । पृथिव्याः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

समन्तात्सूर्यप्रकाशेन जायमानो देवविशेषोस्ति योहि पृथिवीगत-प्राणयुक्प्राणिजातानि ओषध्यादीनि च विशेषतः पुष्णाति, स एव पूषा देवः । तदुक्तं निरुक्ते-" अथ यद्रश्मिभिरोषं पुष्यति तत्पूषा भवति। तस्यैषा भवति-शुक्रं ते" (१२ । १६) इत्यादि ॥ तस्याग्निजातस्य पूष्णो माहात्म्यमत्र वर्ण्यते-अस्य पूष्णः शुक्रं वीर्यमोषधिवनस्पत्यादिसेचकं विलक्षणम् । अस्य सङ्गतिरपि विलक्षणा, यया विविधं प्राकृतवैलक्षण्यचित्रितं चित्रमुत्पद्यते । अयं हि परस्परविषमरूपाणि दक्षिणायनोत्तरायणभेदभिन्नानि लघूनि महान्ति च दिनानि निष्पादयति, यतोऽयमेव द्यौर्द्युलोकस्तद्दृर्तमानोगतिभेदजन्यप्रकाशभेदात्तत्कारणम्। अयं हि स्वधावान् उदकवद्रश्मिपातेनोषधिपोषकः । अनेन हि सर्वे चेतनावन्तः प्रज्ञावन्तो नूनं प्रज्ञां धारयन्ति । असति सूर्ये तज्जन्ये पूषणि च सर्वोपि लोकस्तमसावृतः प्रज्ञारहितः स्यात् । तदस्य प्रज्ञाप्रसाधनं पोषणं चाऽस्मभ्यं भद्रं स्यादितोऽवरो विदधात्वितिभावः ॥

माया इति प्रज्ञानाम निघं० ३ । ९ ॥ स्वधेति उदकनाम निघं० १ । १२ ॥ ऋग्वेदे तु (६ । ५८ । १) " स्वधाव " इत्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (७५)

भावार्थः-(स्वधावन्) जलयुक्त ! (पूषन्) पुष्टिकारक देव ! तू (द्यौरिव) द्युलोक सा (असि) है । (ते, शुक्रम्, अन्यत्) तेरा, वीर्य, विलक्षण है (ते, यजतम्, अन्यत्) तेरी, सङ्गति, विलक्षण है । (विषुरूपे, अहनी) विषम रूप वाले, दिन [तुझ से ही बनते हैं] (विश्वाः, मायाः, हि, अवसि) समस्त, चेतनाओं की, निश्चय, रक्षा करता है । (ते, रातिः) तेरा, दान (इह) लोक में (भद्रा, अस्तु) सुखदायक, हो [ईश्वरकृपा से] ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अग्निमय सूर्य्य के प्रकाश से पूषा देवता की उत्पत्ति है इसलिये पूषा भी आग्नेय है। अतएव आग्नेय पर्व में पूषा का वर्णन ठीक है। पृथिवी के समीप २ सूर्य्य के प्रकाश से एक देवविशेष होता है जो कि पृथिवी पर के समस्त प्राणी अप्राणी वा ओषधि वनस्पति आदि का विशेष कर के पोषण करता है, उसी को पूषा कहते हैं। निरुक्त १२।१६ में लिखा है कि "किरणों से पुष्टि करता है इस से पूषा कहाता है। इस का उदाहरण यह ऋचा है—शुक्रं ते" इति। उस आग्नेय पूषा का इस मन्त्र में वर्णन है—इस का विलक्षण वीर्य है, ओषध्यादि का सेचन करता है। इस की सङ्गति भी विलक्षण है, जिससे विविध प्राकृत विलक्षणता से युक्त चित्र उत्पन्न होता है। यह ही विषम (छोटे बड़े) दिन उत्तरायण और दक्षिणायन भेद से बनाता है। क्योंकि यही द्युलोक के समान गतिभेद से दिन की छोटाई बड़ाई के भेद का कारण है। यही स्वधावान्—जलयुक्त किरणों के गिराने से ओषध्यादि का पोषक है। इसी से प्रज्ञा पुष्ट होती हैं अर्थात् चेतना का व्यवहार बढ़ता है। यदि सूर्य्य और उस से उत्पन्न पूषा न हो तो सम्पूर्ण लोक अन्धकार तम से आवृत हुवा चेतना से रहित सा हो जाय। इसलिये इस का बुद्धियों का सहायक होना और पुष्टि पहुंचाना, हम को शुभ हो, परमात्मा ऐसी कृपा करें ॥

निघण्टु ३। ९॥ १। १२॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ६। ५८। १ में "स्वधावः" ऐसा पाठ में अन्तर है ॥ ३ ॥ (७५)

अथ चतुर्थ्याः—विश्वामित्रऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१२ ३१ २ २१र २र ३१र २र

इडामग्ने पुरुदꣳ ससꣳसनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध।

१ २ ३१र २र ३ २उ ३ १ २ ३१ २ ३ २

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ४ (७६)

पदपाठः— इडाम् २। अग्ने सं०। पुरुदꣳ ससम् २। सनिम् २। गोः ६। शश्वत्तमम् २। हवमानाय ४। साध क्रि०। स्यात् क्रि०। नः ६। सूनुः, तनयः, विजावा १। अग्ने सं०। सा १। ते ४। सुमतिः १। भूतु क्रि०। अस्मे ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) परमात्मन्! भौतिकाग्ने! वा (ते) तुभ्यं (शश्वत्तमं, हवमानाय) निरन्तरं, यज्ञंकुर्वते (गोः, सनिं) गोशब्दोपलक्षितपशुजातस्य, दातृ (पुरुदꣳससम्) सर्वकर्मणां

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सर्वथा सहायकम् (इडाम्) अन्नं भोज्यादिकं (साध) साध्नुहि। अपरञ्च-(नः) अस्माकं (सूनुः) पुत्रः (तनयः) तनोति वंशं तथाभूतः (विजावा) विविधसन्ततेर्जनयिता (स्यात्)। तथा (अग्ने) परमात्मन्वा भौतिक! (सा) यज्ञप्रीतिवती (अस्मे) अस्माकं (सुमतिः) शोभना मतिः (भूतु) स्थिरा भवतु। [इतीश्वरादाशास्महे] ॥

अत्र यज्ञस्य त्रीणि फलानि प्रार्थितानि सन्ति।

१-वृष्ट्यादिनान्नलाभः। २-वंशपरंपरार्हा सुसन्ततिः। ३-सुमतिश्चेति। इत्थंभूता एव वेदमन्त्राः सस्येष्टिपुत्रेष्ट्यादिविविधयज्ञानां मूलमिति च विज्ञायते ॥

इडेत्यन्ननाम निघं० २।७॥ दंसइति कर्मनाम निघं०२। १ परु बहु भवति कर्म ययेडया सा ताम् ॥ अन्नात्प्राणः प्राणात्कर्मणः सम्भूतिः ॥ सनिम्-छन्दसिवनसनरक्षिमथाम् (पा० ३। २।२७) इति इनि रूपम् ॥ तनयः-तनु विस्तारे, वलिमलितनिभ्यः कयन् (उणा०४।११) इति कयनि रूपम् ॥ भूतु-व्यत्ययो बहुलम् (पा०३।१।८५) इति विकरणाभावादिना रूपम् ॥ अस्मे इतिशेरूपम् ॥ ऋग्वेदेऽपि ३।१।२३॥३।६।१।१॥ ३।७।१।१॥ ३।१५।७॥ ३।२२।५॥ ३।२३।५॥ सूक्तान्ते षड्वारं पाठषट्कम् ॥४॥ (७६)

भाषार्थः-(अग्ने) भौतिकाग्ने! वा परमात्मन्! (ते) तेरे लिये वा तेरी आज्ञानुसार (शश्वत्तमं, हवमानाय) निरन्तर, यज्ञ करने वाले के लिये (गोः, सनिम्) गवादि पशु जाति के, देनेवाला (पुरुदंससम्) सर्व कर्म सहायक (इडाम्) अन्न को (साध) सिद्ध करो। और (नः) हमारा (सूनुः) पुत्र (तनयः) विस्तार करने वाला (विजावा) पुत्र पौत्रादि का जनयिता

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(स्यात्) होवे । तथा (अग्ने) अग्ने ! (सा) वह [यज्ञ से प्रीति करने वाली] (अस्मे) हमारी (सुमतिः) शोभन मति (भूतु) रहे [यह ईश्वर से चाहते हैं] ॥

इस में यज्ञ के ३ फलों की प्रार्थना है । १-धनधान्यादि २-सुसन्तान ३-सुमति । इसी प्रकार के वेदमन्त्र सस्येष्टि पुत्रेष्टि आदि यज्ञों के मूल प्रतीत होते हैं ॥

निघं० २।७॥२।१॥ अष्टाध्यायी ३।२।२७॥३।१।८५॥ उणादि ४।९९ आदि के प्रमाण तथा ऋग्वेद के ६ सूक्तों के पते जहां ६ बार ऐसा पाठ आया है, संस्कृत भाष्य में देखिये ॥४॥ (७६)

अथ पञ्चम्याः—वत्सप्रिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१र २र ३ २३१२३ २ ३१ २ ३१२३२ २३ २ ३ २
प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्त्ते । दधद्यो धायी
३१र २र ३१र २र ३१२३ २
सु ते वयाꣳसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥ (७७)

पदपाठः—प्र अ० । होता, जातः, महान्, नभोवित्, नृषद्मा १ । सीदत् क्रि० । अपाम् ६। विवर्त्ते ७। दधत्, यः, धायी १। सु अ०। ते ४। वयाꣳसि २। यन्ता १। वसूनि २। विधते ४। तनूपाः १॥

अन्वितपदार्थः—(यः) अग्निः (होता) होमनिष्पादकः (प्र, जातः) वेद्यां प्रादुर्भूतः (महान्) सुष्ठु उपयोजनीयः (नभोविद्) ऊर्ध्वगामित्वान्नभ आकाशं विन्दते सः (नृषद्मा) नृषु होत्रादिषु तत्समीपे सद्म यस्य सः (तनूपाः) वाग्वादिशुद्ध्या देहरक्षकः (सु, धायी) शोभनो धाता (वयाꣳसि) वयसे हितान्यन्नानि (वसूनि) धनानि च (दधत्) धारयन् (विधते) होमादिना परिचरते (ते) तुभ्यं याज्ञिकाय (यन्ता) वयसां वसूनां च प्रापयिताऽस्ति सः (अपाम्, विवर्त्ते) पयसां, विवर्त्तनेऽन्तरिक्षे (सीदत्) सीदति मेघादिषु स्थितः सर्वमुक्तं साध्नोति इतिभावः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ईश्वरपक्षे-होता कर्मफलप्रदः । प्रजातः हृदि साक्षाद्भूतः । नृषद्मा नृषु मनुष्येषु मननशीलेषु योगिषु सद्म गतिर्ज्ञानमस्य सः । विधते भक्ताय । अन्यत् पूर्ववत् ॥

वय इत्यन्ननाम निघं० २।७॥ विधेमेति परिचरणकर्मा निघं० ३।५ तस्माच्छत्रन्ताद्विधते ॥ ऋग्वेदे तु (१०।४६।१) " नृषद्मा सीददपामुपस्थे । दधिर्यो धायि स ते" इत्यन्तरम् ॥५॥ (७७)

भाषार्थः-(यः) जो अग्नि (होता) होमकर्म्मसम्पादक (प्र, जातः) वेदी में प्रकट हुवा (महान्) सुष्ठु प्रकार उपयोग के योग्य (नभोवित्) आकाश को प्राप्त होने वाला (नृषद्मा) ऋत्विजों के समीप स्थित (तनूपाः) देह का रक्षक (सु, धायी) भले प्रकार, धारण करने वाला (वयाꣳसि) अन्नों और (वसूनि) धनों को (दधत्) धारता हुवा (ते) तुझ (विधते) परिचारक यज्ञकर्त्ता के लिये (यन्ता) अन्न और धन का पहुंचाने वाला है । वह (अपां, विवर्त्ते) जलों के, लौट पौट होने के स्थान अन्तरिक्ष में (सीदत्) स्थित होता है ॥

तात्पर्य यह है कि होमादि कार्य्यों के मध्य में अग्नि के गुणों को जान कर उपयोग लेने से अन्न धनादि पदार्थों की प्राप्ति होती है क्योंकि वृष्टि आदि के द्वारा अन्नादि की उत्पत्ति और अनेक विधशिल्प द्वारा अनेक धन रत्नादि की प्राप्ति होती है। इस लिये परमात्मा का उपदेश है कि अग्नि का सदुपयोग करो ॥

ईश्वरपक्ष में-(यः) जो जगदीश्वर (होता) कर्मफलप्रद (प्र, जातः) भक्त के हृदय में प्रादुर्भूत (महान्) पूजनीय (नभोविद्) आकाश में व्यापक (नृषद्मा) मनुष्यों के हृदयों में वास करने वाला, इसी से (तनूपाः) देह का पालन करने वाला (सु, धायी) शोभन धारण कर्त्ता (वयाꣳसि, वसूनि) अन्नादि तथा अन्य रत्नादि धनों को (दधत्) धारता हुवा (विधते, ते) भक्ति करने वाले, तुझ उपासक के लिये (यन्ता) उन अन्न धनादि का पहुंचाने वाला, वह (अपां, विवर्त्ते) आकाश भर में (सीदत्) व्याप्त है ॥

निघण्टु २।७॥ ३।५॥ के प्रमाण और ऋग्वेद १०।४६।१ में जो पाठान्तर है वह भी संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (७७)

अथ षष्ठ्याः-वसिष्ठऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२ ३२३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १२३१२
प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
१ २ ३२३१२ ३१ २३१ २३१ २
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥६॥ (७८)

पदपाठः—प्र अ० । सम्राजम् २=६। असुरस्य ६। प्रशस्तम् २। पुंसः,कृष्टीनाम्, अनुमाद्यस्य, ६ । इन्द्रस्येव, प्र० अ०। तवसः ६ । कृतानि, वन्दद्वारा, वन्दमाना २। विवष्टु क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(सम्राजम्) सम्राजः सम्यक् प्रकाशं कुर्वतः (असुरस्य) प्राणप्रदस्य (पुंसः) धारणाकर्षणादिपौरुषवतः (कृष्टीनाम्, अनुमाद्यस्य) मनुष्याणामनुमोदनीयस्य सुखप्रदस्य (तवसः) बलवतः (इन्द्रस्येव) सूर्य्यस्येव (वन्दद्वारा) वन्दद्वाराणि प्रशंसाप्रमुखानि (वन्दमाना) वन्द्यमानानि (प्र,कृतानि) स्वाभाविकानि कर्माणि [प्रकरणादग्नेरीश्वरस्य भौतिकस्य वा] (प्रशस्तम्) प्रशस्तानि कर्माणि (प्र,विवष्टु) प्रकर्षेण कामयताम् ॥

परमात्मोपदिशति—हे मनुष्य ! यथा मन्त्रोक्तगुणविशिष्टस्य सूर्यस्य मेघवर्षणादीनि कर्माणि प्रत्यक्षाणि सन्ति एवमेव अग्नेः प्रसिद्धस्य परमात्मनो वा कर्माणि भवान्कामयताम्। इन्द्रः सूर्यो हि असुरः प्राणत्वादकत्वेन तत्प्रदः । धारणाकर्षणादिगुणैश्च पुमान् पौंस्यविशिष्टः । अतएव च मनुष्याणामनुमोदनीयः । यथा तस्य सूर्यस्य स्तुतियोग्यानि प्रशंसनीयानि कर्माणि सन्ति तथैवाग्नेरपि भवता कामयितव्यानीति भावः ॥

असून्प्राणान् राति ददाति सोऽसुरः सूर्य्यः ॥ सम्राजमिति षष्ठ्यर्थे द्वितीया, ऋग्वेदे (७।६।१) तु " सम्राजो असुरस्य प्रशास्तिम् .... वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि " इति षष्ठ्यन्त

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

एव साक्षात् पाठः ॥ प्रशस्तमिति वचनव्यत्ययः, प्रशस्तानि ॥ तव इति बलनाम निघं० २।९॥ वन्दद्वारा, वन्दमाना इति छान्दसे रूपे ॥६॥ (७८)

भाषार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्य ! भवान् [आप] (सम्राजम्) प्रकाशमान (असुरस्य) प्राणप्रद (पुंसः) पौरुषयुक्त (कृष्टीनाम्, अनुमाद्यस्य) मनुष्यों के, अनुमोदनीय (तवसः) बलवान् (इन्द्रस्येव) सूर्य्य के, जैसे (वन्दद्वारा) प्रशंसाप्रमुख (वन्दमाना) प्रशंसनीय (प्र, कृतानि) स्वाभाविक कर्म हैं [वैसे—प्रकरण से अग्नि वा परमात्मा के] (प्रशस्तम्) उत्तम कर्मों को (प्र, विवष्टु) अधिकता से कामना करिये ॥

अर्थात् जैसे प्रत्यक्ष सूर्य्य प्रकाशमान हो रहा है, प्राण को दे रहा है, (क्योंकि सूर्य्य द्वारा ही प्राणवायु का संचार होता है) धारणाकर्षणादिपुरुषार्थ युक्त है, मनुष्यों का मोदजनक अनुमोदन योग्य है और अत्यन्त बलवान् है और जैसे इस सूर्य्य के प्रशंसार्ह स्वाभाविक कर्म हैं, वैसे ही अग्नि के गुण कर्म भी कामना करने योग्य हैं तथा परमात्मा जो इन दोनों में इन गुणों का नियम पूर्वक रखने वाला तथा असीम भाव से उक्त गुणों का धर्त्ता है क्योंकि सूर्य्यादि धारकों का भी धारक प्रकाशकों का प्रकाशक, प्राणप्रदों का प्राणप्रद, वीरों का वीर्यप्रद, मनुष्यों का परमानुमोदनीय, बलवानों का बलदाता है उस के अतुल प्रशस्त गुण कर्मों की कामना करो।

निघण्टु २।९ आदि के प्रमाण तथा ऋग्वेद ७।६।१ में जो पाठान्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥६॥ (७८)

अथ सप्तम्याः—विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २र ३१२३ १ २३१र २र ३ १ २

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः।

३१२३१ २ ३१२३१ २ क२र ३ २

दिवेदिवईड्योजागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥७॥ (७९)

पदपाठः—अरण्योः ७। निहितः, जातवेदाः १। गर्भइव, इत् अ०। सुभृतः १। गर्भिणीभिः ३। दिवे दिवे अ०। ईड्यः १। जागृवद्भिः, हविष्मद्भिः, मनुष्येभिः ३। अग्निः १॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(जातवेदाः, अग्निः) परमेश्वरो भौतिकश्च (अरण्योः, निहितः) हृदयारण्योः काष्ठारण्योश्च नितरां-स्थितोस्ति। दृष्टान्तमाह—(गर्भिणीभिः, सुभृतः, गर्भइव, इत्) यथाऽदृष्टरूपेण गर्भवतीभिः स्त्रीभिः सुतरां गर्भोधियते तद्वन्निगूढः स च (जागृवद्भिः) कर्मणि जागरूकैः सावधानैः (हविष्मद्भिः) भक्तिमद्भिर्हव्ययुक्तैश्च (मनुष्येभिः) मनुष्यैः (दिवे दिवे) प्रति दिनम् (ईड्यः) स्तोतव्योवर्णनीयः ॥

ऋग्वेदे (३।२९।२) तु "इव सुधित" इति पाठः ॥७॥(७९)

भाषार्थः—(अग्निः, जातवेदाः) परमात्मा वा भौतिक अग्नि, वेदप्रकाशक वा ज्ञान का सहायक (अरण्योः) हृदयारणियों वा काष्ठारणियों में (निहितः) अदृश्य रूप से वर्त्तमान है। दृष्टान्त—(गर्भ इव, इत्, सुभृतो, गर्भिणीभिः) जैसे गर्भवती स्त्रियों के गर्भाशय में अदृश्य भाव से गर्भ रहता है। वह (जागृवद्भिः) सावधान (हविष्मद्भिः) भक्ति वा हव्य वाले (मनुष्येभिः) मनुष्यों से (दिवे दिवे) प्रति दिन (ईड्यः) स्तुति योग्य है ॥

ऋग्वेद ३।२९।२ में " इव सुधितः " इतना अन्तर है ॥७॥ (७९)

अथाऽष्टम्याः—पायुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षाꣳसि पृतनासु जिग्युः।

१ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अनुदह सहमूरान्कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥८॥ (८०)

* इत्यष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ *

पदपाठः—सनात् अ० । अग्ने सं० । मृणसि क्रि० । यातुधानान्२। न अ० । त्वा २। रक्षाꣳसि १। पृतनासु ७। जिग्युः क्रि० । अनुदह क्रि० । सहमूरान्, कयादः २। मा अ० । ते १। हेत्याः ५। मुक्षत क्रि० । दैव्यायाः ५ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) परमात्मन्! भौतिक वा (यातुधानान्) राक्षसान् हिंस्रान्प्राणिनः शत्रून् वायुगतदोषदुष्टान् पदार्था-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

न्वा (सनात्) क्षिप्रम् (मृणसि) मर्दयसि नाशयसि (रक्षांसि) राक्षसाःपूर्वोक्ताः (त्वा) त्वाम् (पृतनासु) संग्रामेषु (न, जिग्युः) न, जयन्ति जेतुं शक्नुवन्ति । तस्मात्-(कयादः) क्रव्यादान् तान् (सहमूरान्) समूलान् (अनुदह) स्वतेजसा भस्मीकुरु (ते) उक्ताःयातुधानाः (दैव्यायाः, हेत्याः) दिव्याच्छस्त्रात् (मा,मुक्षत) न, मुक्ता भवन्तु ॥

मनुष्यैः सर्वदुष्टहिंस्रप्राण्यऽप्राणिनिवारणाय परमात्मा प्रार्थनीयो भौतिकाग्निश्च सुप्रयोक्तव्यः ॥

मृणसि-मृण हिंसायाम् तुदादिः । यातुधानान्-यातयति इति बधकर्मा निघं० २ । १९ यातनाया धारकान् ॥ पृतनेति संग्रामनाम २ । १७ ॥ कयादः—क्रव्यशब्दस्य बाहुलकाद्रेफवकारयोर्लोपे रूपम् क्वचिच्च क्रव्यादइति साक्षात्पाठान्तरमेव॥ हेतिरिति वज्रनाम निघं० २ । २०॥ मुक्षत इति मुच्लृ मोक्षण इत्यस्य लोटि प्रथमपुरुषबहुवचने छान्दसं रूपम् ॥ ऋ० १० । ८७ । १९ ऽपि तथैव पाठः ॥ ८ ॥ (८०)

भाषार्थः-(अग्ने) परमात्मन् ! वा भौतिकाग्ने ! तू (यातुधानान्) राक्षसों वा प्राणदुःखदायी प्राणी और अप्राणियों को (सनात्) शीघ्र (मृणसि) नष्ट करता है (रक्षाꣳसि) वे राक्षस वा उक्त प्राणी अथवा अप्राणी (त्वा) तुझ को (पृतनासु) संग्रामों में (न, जिग्युः) नहीं, जीत सके हैं । इसलिये-(कयादः) मांसभक्षक उन प्राणि वा अप्राणियों को (सहमूरान्) समूल (अनुदह) भस्म कर (ते) वे (दैव्यायाः, हेत्याः) दैवी, वज्र से (मा, मुक्षत) न, बचें ॥

मनुष्यों को शिक्षा है कि वे सम्पूर्ण दुष्ट प्राणियों वा अप्राणियों से [जो वायु आदि में विकार होकर रोग और मृत्यु के कारण होते हैं] बचने के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और अग्नि में होम तथा आग्नेयास्त्रादि का प्रयोग

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

करें, जिस से वे दुष्ट समूल नष्ट हों और धर्मात्माओं को सुख मिले। और यह भी जानना चाहिये कि वे दुष्ट उस दैवी वज्र से बच नहीं सके ॥

निघण्टु २ । १९ ॥ २ । १७ ॥ २ । २० इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १० । ८७ । १९ में भी ठीक ऐसा ही पाठ है ॥८॥ (८०)

* यह आठवीं दशति समाप्त हुई ॥ ८ ॥ *

——:=*=:——

दशत्योरग्नओजीति षोडशाऽनुष्टुभो मताः ।
सोमं राजानमित्येषा वैश्वदेवी ततः परा ।
आङ्गिरसी ततः शिष्टाआग्नेय्यस्तु चतुर्दश ॥

श्लोकार्थः– अग्न ओजिष्ठ० इन दो दशतियों में १६ ऋचा हैं । अनुष्टुप् छन्द है । और १० वीं दशति की पहली (सोमंरा०) के विश्वेदेवाः तथा उस से अगली (इत०) के अङ्गिरस् देवता हैं । शेष १४ का अग्नि देवता है ॥

अथ नवमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः–गयत्रिर्ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न ओजिष्ठमाभर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
१ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रनो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥ (८१)

पदपाठः–अग्ने सं० । ओजिष्ठम् २ । आ–भर क्रि० । द्युम्नम् २ । अस्मभ्यम् ४ । अध्रिगो सं० । प्र अ० । नः २ । राये, पनीयसे ४ । रत्सि क्रि० । वाजाय ४ । पन्थाम् २ ॥

अन्वितपदार्थः–(अध्रिगो) हे अप्रतिहतगमन ! (अग्ने) परमात्मन् ! वा प्रसिद्ध ! (ओजिष्ठम्) अतिबलम् (द्युम्नम्) प्रकाशमानं विद्यासुवर्णादि धनम् (अस्मभ्यम्, आभर) । अपरञ्च–(नः) अस्मान् (पनीयसे,वाजाय) प्रशंसनीयाय, अन्नाद्याय (राये) धनाय (पन्थाम्) पन्थानं मार्गम् (प्र, रत्सि) प्रापय ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

परमात्मनः कृपयाऽग्निगुणविज्ञानपुरस्सरं तत्सुप्रयोगबलेन विद्याधनान्नादिबलं प्राप्तव्यमिति भावः ॥

ओज इति बलनाम निघं० २ । ९ ॥ द्युम्नमिति धननाम निघं० २ । १० ॥ अध्रिगोरिति छान्दसं बाहुलकात् ॥ रत्सि रद विलेखने, बाहुलकाच्छबऽभावः, उपसर्गयुतत्वेनाऽनेकार्थवत्त्वेन च प्रापयेत्यर्थः । लकारव्यत्ययश्च ॥ अन्यानि व्याकृतपूर्वप्रायाणि ॥ ऋग्वेदे (५ । १० । १) "प्र णो राया परीणसा" इति पाठान्तरम् ॥ १ ॥ (८१)

भाषार्थः—(अध्रिगो) हे बेरोक गति वाले (अग्ने) परमात्मन् ! वा भौतिक ! (ओजिष्ठम्) अतिबल (द्युम्नम्) प्रकाशमान विद्यासुवर्णादि धन (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ-भर) प्राप्त करा । और (नः) हम को (पनीयसे, वाजाय) श्रेष्ठ अन्न और (राये) धन के लिये (पन्थाम्) मार्ग (प्र, रत्सि) जतला ॥

तात्पर्य यह है कि साक्षात् अग्नि के सुव्यवहार और आग्नेय तेज के धर्त्ता लोगों और परमात्मा के साहाय्य से विद्या धन बल अन्न आदि की प्राप्ति करनी चाहिये ॥

निघण्टु २ । ९ ॥ २ । १० इत्यादि के प्रमाण और ऋग्वेद (५ । १० । १) का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (८१)

अथ द्वितीयायाः—वामदेवो भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वा ऋषिः ।

अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २उ ३ २३ १ २ ३ १ २

यदि वीरो अनुष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २ ३ १ २

आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥ (८२)

पदपाठः—यदि अ० । वीरः १। अनु अ० । स्यात् क्रि० । अग्निम् २ । इन्धीत क्रि० । मर्त्यः १। आजुह्वत् क्रि० । हव्यम् २। आनुषक् अ० । शर्म २। भक्षीत क्रि० । दैव्यम् २॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(यदि, मर्त्यः, अग्निम्, इन्धीत) (अनु) तदनु (आनुषक्) निरन्तरम् (आजुहुत्) जुहुयात् तर्हि (वीरः, स्यात्) तथा (दैव्यम्) (शर्म) सुखं (भक्षीत) लभेत भुञ्जीत ॥

अर्थहृयं संगमयितव्यम्—नरो यदि परमात्मानं भौतिकं वाग्निं सततं सेवेत, भक्तिं कुर्याज्जुहुयाद्वा तर्हि वीर इहलोके स्यात् परत्र च मोक्षाख्यं दैव्यं सुखमाप्नुयात् ॥

भाषार्थः—(यदि, मर्त्यः, अग्निम्, इन्धीत,) यदि, मनुष्य, परमात्मा का ध्यान करे (अनु) और फिर (आनुषक्) निरन्तर (आजुहुत्) आत्मसमर्पण करे [तो] (वीरः, स्यात्) वीर, होजावे और (दैव्यम्, शर्म, भक्षीत) दिव्य, मोक्षानन्द को, भोगे ॥

भौतिक पक्ष में—(यदि, मर्त्यः, अग्निम्, इन्धीत) यदि, मनुष्य, अग्नि को, प्रदीप्त करे (अनु) और फिर (आनुषक्) निरन्तर (आजुहुत्) हवन कियाकरे [तो] (वीरः, स्यात्) वीर, होजावे और (दैव्यं, शर्म, भक्षीत) दिव्य, सुख, भोगे ॥२॥ (८२)

अथ तृतीयायाः—भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १उ ३ १र २र
त्वेषस्ते धूमऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः ।
३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥३॥(८३)

पदपाठः—त्वेषः, ते ६ । धूमः १ । ऋण्वति क्रि० । दिवि ७ । सन्, शुक्रः, आ—ततः, सूरः १ । न, हि अ० । द्युता ३ । त्वम् १ । कृपा ३ । पावक सं० । रोचसे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(पावक) शोधकाग्ने ! (त्वेषः, ते) दीप्तस्य, तव (शुक्रः) शुद्धिकरः (धूमः) (ऋण्वति) गच्छति (दिवि, आ—ततः, सन्) (सूरो, न) सूर्यइव (कृपा, द्युता) समर्थया, दीप्त्या (हि) निश्चयेन (त्वं, रोचसे) ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

अयमग्निः सूर्य्यइव प्रकाशमानः प्रदीपितः सुहुतश्च शुद्धिकरं धूममुत्पादयति स चाऽऽकाशं गत्वा मेघात्मना परिणतः सन् वृष्ट्यादिरूपेण सुखयतीति वेद्यम् ॥

ऋग्वेदे (६ । २ । ६) ऽप्येवमेव पाठः ॥ ३ ॥ (८३)

भाषार्थः— (पावक) शोधकाग्ने ! (ते, त्वेषः) तुझ, प्रदीप्त हुवे का (शुक्रः) शुद्धिकारक (धूमः) धुवां (दिवि, आततः, सन्) आकाश में, फैला, हुआ (ऋण्वति) [मेघरूप में] परिणत हो जाता है । (हि) निश्चय (त्वम्) तू (सूरो, न) सूर्य्य, सा (कृपा, द्युता) समर्थ, दीप्ति के साथ (रोचसे) प्रकाश करता है ॥

तात्पर्य यह है कि अग्नि में होम करने से उस का शुद्ध धुवां आकाश में मेघ बनता है और जगत् को शुद्ध जल वर्षाकर शुद्ध अन्नादि उत्पन्न कर शुद्ध बुद्ध्यादि द्वारा उपकृत करता है । अग्नि का प्रकाश सामर्थ्ययुक्त है तथा सूर्य्यवत् चमकने वाला है ॥

(ध्यान रहे कि जो बातें कोटिशः वर्ष वेद के प्रकाश को व्यतीत हो जाने से सामान्य प्रतीत होती हैं वे सृष्टि और वेद के आरम्भ समय में बिना वेद के बहुत दुर्ज्ञेय थीं ॥

ऐसा ही पाठ ऋग्वेद ६ । २ । ६ में भी है ॥ ३ ॥ (८३)

अथ चतुर्थ्याः—भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१र २र ३ १र २र ३ १र २र १ २ ३
त्वꣳ हि क्षैतवद्यशोग्ने मित्रो न पत्यसे । त्वं विचर्षणे
२ ३ १ २ ३ १र २र
श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥ (८४)

पदपाठः—त्वम् १ । हि अ० । क्षैतवत्, यशः २ । अग्ने सं० । मित्रः १ । न अ० । पत्यसे क्रि० । त्वम् १ । विचर्षणे सं० । श्रवः २ । वसो सं० । पुष्टिम् २ । न अ० । पुष्यसि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) अग्ने! (त्वम्) (क्षैतवत्) क्षितये पृथिव्यै हितं द्रव्यजातं तद्वत् तद्युक्तं (यशः) जलम् (पत्यसे)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ईशिषे (विचर्षणे) दृष्टिसाहाय्यप्रद ! (वसो) वासयितः त्वं (हि) तस्मात् (मित्रो, न) सुहृदिव (श्रवः) अन्नं सस्यम् (पुष्टिं, न) धातुसाम्यभवां पुष्टिमिव (पुष्यसि) वर्धयसि ॥

पूर्वमन्त्रोक्ताग्निधूमराजन्यमेघवर्षणादि विवृणोति—अयमग्निर्विचर्षणिर्दृष्टिसहायकः । वसुर्वासहेतुः । पृथिवी क्षितिस्तस्या हितकरपरमाणुयुक्तं जलमीष्टे, ततश्च सुहृदिव वर्त्तमानः सस्यजातानि पुष्यति ॥

यश इत्युदकनाम निघं० १ । १२ ॥ पत्यतिरैश्वर्यकर्मा निघं० २ । २१ ॥ विचर्षणिः पश्यतिकर्मा निघं० ३ । ११ ॥ श्रवइत्यन्ननाम निघं० २ । ७ ॥ ऋग्वेदे (६ । २ । १) ऽपि नाऽन्तरम् ॥ ४ ॥ (८४)

भाषार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (क्षेतवत, यशः) पृथिवी के हितकारी अणुयुक्त, जल का (पत्यसे) ईशिता वर्षाने वाला है । (विचर्षणे, वसो !) दृष्टि के सहायक ! और ८ वसुओं में एक ! (त्वम्) तू (हि) ही (मित्रो, न) मित्र के, समान (श्रवः) अन्न [खेती] को (पुष्टिं, न) पुष्टि सी (पुष्यसि) बढ़ाता है ॥

पूर्व मन्त्र में जो अग्नि के धूम का आकाश में जाकर मेघादि परिणाम कहा था उसी को स्पष्ट इस मन्त्र में किया है कि—अग्नि ही पृथिवी के हितकारी परमाणुयुक्त जल को वर्षाय, मित्र के तुल्य, खेती को पुष्ट करता है ॥

निघण्टु १ । १२ ॥ २ । २१ ॥ ३ । ११ ॥ २ । ७ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (६ । २ । १) में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ४ ॥ (८४)

अथ पञ्चम्याः—मृक्तवाहा द्वित ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेताऽतिथिः । विश्वे
२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्त्तास इन्धते ॥ ५ ॥ (८५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—प्रातः अ० । अग्निः, पुरुप्रियः, विशः १ । स्तवेत क्रि० । अतिथिः, विश्वे १ । यस्मिन्, अमर्त्ये ७ । हव्यम् २ । मर्त्तासः १ । इन्धते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(विश्वे, मर्त्तासः, विशः) सर्वे, मरणधर्माणो, मनुष्याः (यस्मिन्, अमर्त्ये) अग्नौ (हव्यम्, इन्धते) जुह्वति सः । (पुरुप्रियः) बहूनां प्रिय इष्टसाधकः (अतिथिः) सततगमनः (अग्निः, प्रातः) (स्तवेत) स्तूयेत वर्णनीयः ॥

पूर्वमन्त्रद्वयोक्तगुणजनितफलप्राप्तये प्रातरुत्थायाऽग्न्याधानं, मन्त्रैस्तद्वर्णनं, हव्यदानं च सर्वैर्मनुष्यैः स्वहितकाङ्क्षिभिः कर्त्तव्यम् । नित्यकर्मैतद्वेदितव्यम् ॥

विश इति मनुष्यनाम निघं० २।३॥ स्तवेतेति छान्दसं कर्मणि लिङि ॥ ऋग्वेदे (५।१८।१) तु उत्तरार्धे "विश्वानि योऽअमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति" इत्यन्तरम् ॥५॥ (८५)

भाषार्थः—(विश्वे, मर्त्तासः, विशः) समस्त, मरणधर्मी, मनुष्य (यस्मिन्, अमर्त्ये) जिस, अमर अग्नि में (हव्यम्, इन्धते) होम करते हैं वा करें, वह (पुरुप्रियः) बहुतों का प्यारा इष्ट साधक (अतिथिः) सदागमनशील (अग्निः) अग्नि (स्तवेत) वर्णित किया जावे ॥

परमात्मा की आज्ञा है कि पूर्व दो मन्त्रों में कहे फल की प्राप्ति के लिये समस्त मनुष्यों को प्रातः ही उठ कर होम तथा मन्त्रों से अग्नि का वर्णन करना चाहिये। यह अग्नि अमर देव है और सब मनुष्य उस की अपेक्षा मरणधर्मी हैं ॥

निघण्टु २।३ तथा ऋग्वेद (५।१८।१) के उत्तरार्ध में जो अन्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥५॥ (८५)

अथ षष्ठ्याः—वसूयव आत्रेया ऋषयः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१र २र३ २३ १२३१२
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
१ २ ३ २३२उ ३१ २
महिषीव त्वद्भयिस्त्वद्वाजाउदीरते ॥६॥ (८६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—यत्, वाहिष्ठम् १। तत् २। अग्नये ४। बृहत् १। अर्च क्रि०। विभावसो सं०=४। महिषीव अ०। त्वत् ५=६। रयिः १। त्वत् ५=६। वाजाः १। उदीरते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्य ! (यत्, बृहत्, वाहिष्ठम्) यत्, महत्, अतिशयितवाहि द्रव्यमस्ति (तत्) (विभावसो) विभावसवे प्रभाधनाय (अग्नये, अर्च) अर्थात् तेनाग्नौ होमं कुरु । एवं कृते (महिषीव) महतीव (त्वत्, रयिः) त्वदीया, लक्ष्मीर्धनम् (त्वत्, वाजाः) त्वदीयानि, गोधूमादीन्यऽन्नानि च (उदीरते) उद्गच्छन्ति ॥

महिष इति महन्नाम निघं० ३।३ स्त्रीत्वे महिषी महती ॥ ऋग्वेदेऽपि (५। २५। ७) इत्थमेव पाठः ॥६॥ (८६)

भाषार्थः—हेमनुष्य ! तू (यत्, बृहत्, वाहिष्ठम्) जो, बड़ा, वाही से वाही द्रव्य है (तत्) उसे (विभावसो, अग्नये, अर्च) प्रकाश से बसे हुवे, अग्नि में, होम कर । [ऐसा करने से] (महिषीव, त्वत्, रयिः) बहुत सा, तेरा, धन और (त्वत्, वाजाः, उदीरते) तेरे, अनाज, उपजते हैं ॥

निघण्टु ३।३ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (५।२५।७) में भी ऐसा ही पाठ है ॥६॥ (८६)

अथ सप्तम्याः—गोपवनः सप्तवधिर्वा ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः॥७॥ ॥८७॥

पदपाठः—विशोविशः, वः ६ । अतिथिम् २। वाजयन्तः सं० । पुरुप्रियम्, अग्निम् २। वः ४। दुर्यम् २। वचः १=३। स्तुषे क्रि० । शूषस्य ६। मन्मभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(वाजयन्तः) हे अन्नमिच्छन्तः ! मनुष्याः ! (वः) युष्माकं (विशोविशः) सर्वमनुष्याणाम् (पुरुप्रियम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बहुहितकरम् (अतिथिम्) सततगामिनम् (शूषस्य, दुर्यम्) सुखस्य, गृहम् (अग्निं) प्रसिद्धम् परमेश्वरं वा (वः) युष्मदर्थम् (मन्मभिः) मन्त्ररूपैः (वचः) वचोभिः (स्तुषे) प्रशंसामि ॥

दुर्येति गृहनाम निघं० ३।४॥ शूषमिति सुखनाम निघं० ३।६॥ ऋग्वेदेऽपि (८।७४।१) इत्थमेव पाठः ॥७॥ (८७)

भाषार्थः-(वाजयन्तः) हे अन्नाभिलाषी पुरुषो ! (वः) तुम्हारे (विशो-विशः) मनुष्यमात्र के (पुरुप्रियम्) अति हितकारी (अतिथिम्) निरन्तर गति वाले (शूषस्य, दुर्यम्) सुख के, धाम (अग्निम्) अग्नि की (मन्मभिः) मन्त्रात्मक (वचः) वचनों से (वः) तुम्हारेलिये (स्तुषे) प्रशंसा करताहूं ॥

अर्थात् परमात्मा का उपदेश है कि हे मनुष्यो ! यदि अन्न धन धान्यादि चाहते हो तो मनुष्यमात्र के हितकर, निरन्तर गतिशील, सुख के घर, अग्नि अर्थात् आहवनीयादि भौतिक वा मुझ परमात्मा के गुण जानो। मैं तुम्हें वेदमन्त्रों से बताता हूं ॥

निघण्टु ३।४॥३।६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (८।७४।१) में भी ऐसाही पाठ है ॥७॥ (८७)

अथाऽष्टम्याः-पुरुरात्रेय ऋषिः। अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ २ऽ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये। यं मित्रं न

२ २र ३ १ २ ३ २ ३ २

प्रशस्तये मर्त्तासोदधिरे पुरः ॥ ८ ॥ (८८)

पदपाठः-बृहत्, वयः २। हि अ०। भानवे ४। अर्च क्रि०। देवाय, अग्नये ४। यम्, मित्रम् २। न अ०। प्रशस्तये ४। मर्त्तासः १। दधिरे क्रि०। पुरः अ०॥

अन्वितपदार्थः-(यम्) अग्निं परमात्मानं वा (मित्रं, न) सुहृदमिव (मर्त्तासः) मनुष्याः (प्रशस्तये) (पुरः, दधिरे) पुरतः स्थापयन्ति अभितोध्यायन्ति वा तस्मै (भानवे) प्रकाशमानाय

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(देवाय) दिव्यगुणाढ्याय (अग्नये) प्रसिद्धाय, परमात्मने वा (बृहत्) महत् (वयः) स्थालीपाकादि, आयुर्वा निश्चयेन (अर्च) अर्पय ॥

वय इत्यन्ननाम ०निघं २ । ७ ॥ ऋग्वेदेऽपि (५ । १६ । १) एवमेव पाठः ॥ ८ ॥ (८८)

भाषार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्य तू (यम्, मित्रं, न) जिस का, मित्र के, समान (प्रशस्तये) स्तुति के लिये (मर्त्तासः) मनुष्य लोग (पुरः, दधिरे) मुख्यतः, ध्यान करते हैं। उस (भानवे, देवाय, अग्नये) प्रकाशमान, देव, परमात्मा के लिये (हि) निश्चय (बृहत्, वयः, अर्च) बड़ी, आयु, अर्पित कर ॥

भौतिकपक्ष में—हे मनुष्य ! तू (यम्, मित्रं, न) जिमे, मित्र के, समान (मर्त्तासः) मनुष्य लोग (प्रशस्तये) वेदोक्त वर्णन के लिये (पुरः, दधिरे) आगे, स्थापित करते हैं। उस (भानवे, देवाय, अग्नये) प्रकाशयुक्त, देव, अग्नि के लिये (हि) निश्चय (बृहत्) बड़े २ (वयः) स्थालीपाकादि अन्न (अर्च) चढाव ॥

सुगन्ध मिष्ट पुष्ट इत्यादि उत्तम अन्नों को घृतादि से पाक करके बड़े भारी हवन करो और साथ में वेदोक्त वर्णन करते जाओ। जिस से पूर्व प्रतिपादित वृष्ट्यादि द्वारा उपकार हो ॥

निघण्टु २। ७ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (५ । १६ । १) में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ८ ॥ (८८)

अथ नवमी—गोपवन ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २

अगन्म बृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥ ९ ॥ (८९)

पदपाठः—अगन्म क्रि० । वृत्रहन्तमम्, ज्येष्ठम्, अग्निम्, आनवम् २ । यः १ स्म अ० । श्रुतर्वन्, आर्क्षे ७ । बृहद्—अनीके ७ । इध्यते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(यः) अग्निः (श्रुतर्वन्) श्रुतार्वाणि विख्याताश्वे प्रसिद्धतैजसकिरणे सूर्ये (आर्क्षे) नक्षत्रसम्बन्धिनि (बृहद-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नीके महासमूहे च (इध्यते, स्म), तम् (वृत्रहन्तमम्) वृत्रस्य मेघस्य आवरणकारकस्य शत्रुप्रभृतेरोगादिकस्य वाऽतिशयेन हन्तारम् (आनवम्) अनवो मनुष्यास्तद्धितकरम् (ज्येष्ठम्) महान्तम् (अग्निम्) प्रसिद्धं परमात्मानं वा (अगन्म) अवगच्छन्तु जानन्तु ॥

यो महानऽग्निः, नक्षत्राधिपे प्रसिद्धकिरणे सूर्य्ये वर्त्तमानस्तं प्रकाशयति तं परमात्मानं भौतिकं वा कारणाग्निं जानन्तु इति भावः । सायणेन व्याख्यातो गोपवनादीतिहासो निर्मूलः ॥

अगन्म इति व्यत्ययेन लकारः पुरुषश्च ॥ अनव इति मनुष्यनाम निघं० २ । ३ ऋग्वेदे (८ । ७४ । ४) तु "आगन्म" इति "यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते" इत्यन्तरम् ॥९॥(८९)

भाषार्थः—(यः) जो परमात्मा (आर्क्षे) नक्षत्रसम्बन्धी (बृहदनीके) बड़े समूह में और (श्रुतर्वन्) विख्यात किरण वाले सूर्य में (इध्यते स्म) प्रकाश कर रहा है। उस (वृत्रहन्तमम्) दुष्टविनाशक (आनवम्) मनुष्यहितकारी (ज्येष्ठम्) महान् (अग्निम्) ज्योतिःप्रद को (अगन्म) जानो ॥

भौतिकपक्ष में (यः) जो अग्नि (श्रुतर्वन्) सूर्य्य तथा (आर्क्षे, बृहदनीके) नक्षत्रसम्बन्धी, बड़े समूह में (इध्यते, स्म) प्रकाश कर रहा है। उस (वृत्रहन्तमम्) मेघविदारक शत्रुविध्वंसक (ज्येष्ठम्) बड़े (आनवम्) मनुष्यों के हितकर (अग्निम्) अग्नि को (अगन्म) जानो ॥

परमात्मा का उपदेश है कि अग्नि ही सूर्य्यादि नक्षत्रमण्डलों को प्रकाशित कर रहा है । और सूर्य्य रूप से मेघ वर्षाता तथा वायु आदि की शुद्धिद्वारा मनुष्यों का हित करता है सो जानिये। सायणाचार्यने गोपवनादि का इतिहास व्याख्यात किया है सो मूल से विरुद्ध है ॥

निघण्टु २। ३ आदि के प्रमाण तथा ऋ० ८ । ७४। ४ में जो पाठभेद है, वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (८९)

अथ दशम्याः—वामदेवः कश्यपो वा मारीचो मनुर्वा, वैवस्वत उभौ वा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋषयः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १र २र३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २उ

जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः । पिता

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ २

यत्कश्यपस्याऽग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ १० ॥ (९०)

पदपाठः—जातः १। परेण, धर्मणा ३। यत् ७। सवृद्भिः ३। सह अ० । अभुवः क्रि० । पिता १। यत् १ । कश्यपस्य ६ । अग्निः, श्रद्धाः, माता, मनुः, कविः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(यत्) यः (अग्निः) (कश्यपस्य) सूर्यस्य (पिता) कारणत्वात् जनकः स एव (यत) यदा [यज्ञे कार्य्यावस्थायाम्] (सवृद्भिः) यज्ञे सहवर्त्तिभिर्ऋत्विग्भिः (सह) (परेण) उत्कृष्टेन (धर्मणा) यज्ञेन (जातः, अभुवः) उत्पन्नो, भवति । तदा (श्रद्धाः) श्रत् सत्यं दधाति सः (मनुः) मननशीलः (कविः) क्रान्तदर्शी पुरुषः [तस्याग्नेः] (माता) जन्मदत्वेन मातेव भवति ॥

योग्निः सूर्य्यस्याऽपि जन्मदः कारणत्वेनाऽस्ति, तस्यैवाग्नेः कार्य्यावस्थायां ऋत्विभिः सह वर्त्तमानस्य यज्ञ उत्पादितस्य विद्वान् पुरुषो माता यथा तथा जन्मदो भवतीति भावः ॥

कशइति उदकनाम निघं० १ । १२ ॥ तदेव कश्यं तत्पिबति शोषयतीति कश्यपः सूर्य्यः । यद्वा पश्यति दर्शयति स पश्यकः सूर्य्यः । वर्णविपर्ययेण कश्यपः । कृतेस्तर्कुः कसेः सिकताः, हिंसेः सिंहः इति हयवरट् सूत्रोपरि महाभाष्ये आ० २ । तद्दत्रापि वर्णविपर्ययो न दोषाय भवति इति विज्ञातव्यम् ॥ तथा श्रदिति सत्यनाम निघं० ३ । १० ॥ शृ स्वृ इत्यादिना (उणा० १ । १०) मनुते इति मनुर्विद्वान् ॥ कविरिति मेधाविनाम निघं० ३ ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१५॥ अहो ज्वालाप्रसादस्य भाष्यकर्तृत्वं दृश्यताम्-यदनेन,घ-कारधकारयोर्लेखकभ्रमकृतं भेदमजानतः श्रीसत्यव्रतसामश्रमिणः टिप्पणीगतं " धर्म इति यज्ञनामसु अन्त्यम् नि० ३।१७ " इति भ्रान्तं पाठमनुसरता स्वयमपि तदेवाऽङ्कितम्। वस्तुतस्तु तत्र धर्म इति कवर्गीयादिः पाठः। कष्टं यत्रेदृशा भाष्यकर्त्तारः स देशो धर्मो वा कथं नाम न रसातलमियात् ॥ १० ॥ (९०)

* इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ *

भाषार्थः-(यत्) जो (अग्निः) अग्नि (कश्यपस्य) सूर्य्य का (पिता) कारण वा जनक है वही (यत्) जब [कार्य्यावस्था में] (सबृद्भिः) सहवर्त्ति ऋत्विजों के (सह) साथ (परेण) श्रेष्ठ (धर्मणा) धर्म यज्ञ से (जातः, अभुवः) उत्पन्न, होता है तब (अद्रुहः) सत्य का धर्त्ता (मनुः) मननशील (कविः) मेधावीपुरुष [उस अग्नि की] (माता) माता के तुल्य जन्मदाता होता है ॥

यह एक चित्र बात है कि जिस कारण रूप अग्नि से महान् तेजस्वी सूर्य्य पुत्र जन्मता है और जो अग्नि इस कारण सूर्य्य का पिता कहा जा सक्ता है वही अग्नि, कार्य्य रूप में परिणत होने से यज्ञ में ऋत्विजोंके साथ होकर उत्पन्न होता है तब अग्न्याधान करने वाले मेधावी मननशील पुरुष का पुत्र होजाता है और वह पुरुष उस अग्नि को जन्म देने वाला होने से माता के तुल्य होजाता है ॥

निघं० १ । १२ ॥ ३ । १० ॥ ३ । १५ ॥ महाभाष्य आ० २ ॥ उणादि १ । १० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने अपने भाष्य में "धर्मशब्द यज्ञनाम है निघं० ३ । १७" ऐसा लिखा है परन्तु निघण्टु के तृतीय पाद सत्रहवें खण्ड में धर्म शब्द है, धर्म नहीं । वास्तव में इन्हों ने निघण्टु तो देखा नहीं केवल सत्यव्रत सामश्रमी जी की टिप्पणी में देख कर ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है । सामश्रमी जी ने लेखभ्रम से घ का ध समझा होगा । भला इस प्रकार के पुरुष भाष्यकार बने तब देश वा धर्म रसातल को न पहुंचे तो क्या हो ।१०। (९०)

* यह नवमी दशति पूर्ण हुई ॥ ९ ॥ *

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ दशमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—अग्निस्तापस ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।

२३ १२ ३ १२ ३ २३ १२ ३ २३
सोमं॰ राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे । आदित्यं
३ १२ ३ १२ ३ २३ १ २
विष्णुं॰ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ १ ॥ (९१)

पदपाठः—सोमम्, राजानम्, वरुणम्, अग्निम्, २ । अन्वारभामहे क्रि० । आदित्यम्, सूर्यम्, ब्रह्माणम् २। च अ० । बृहस्पतिम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—वयम् (अग्निम्) प्रसिद्धं (सोमम्) चन्द्रम् (वरुणम्) वरणीयं जलम् (राजानम्) प्रकाशमानम् (सूर्य्यम्) प्रसिद्धम् (आदित्यम्) अदितेरखण्डाया अव्यक्ताख्यायाः प्रकृतेरपत्यम् । तथा (विष्णुम्) व्यापकं (ब्रह्माणम्) महान्तं जगत्स्रष्टारम् (बृहस्पतिम्) बृहतां पतिं परमात्मानं च (अनु—आ—रभामहे) सत्कुर्मः ॥

प्रकरणगताग्निहोमेन विश्वे देवाः प्रसीदन्ति अनुकूला भवन्ति, परमात्मा च तदाज्ञापालनेन प्रसीदति । अत्रादित्यमिति अग्निसूर्य्यसोमानां त्रयाणामपि विशेषणम् ॥१॥ (९१)

भाषार्थः—हम (आदित्यम्) प्रकृति से उत्पन्न (अग्निम्) अग्नि (वरुणम्) जल और (राजानम्) प्रकाशमान (सूर्यम्) सूर्य को तथा (विष्णुम्) व्यापक (ब्रह्माणम्) जगत्कर्त्ता (बृहस्पतिम्) परमात्मा को (च) भी (अनु—आ—रभामहे) सत्कृत करते हैं ॥

जब हम होम करते हैं तो अग्नि जल सूर्यादि आदित्यमण्डल को अपने अनुकूल करते हैं तथा परमात्मा की आज्ञा के पालने से उसे भी प्रसन्न करते हैं ॥१॥ (९१)

अथ द्वितीयायाः—वामदेव ऋषिः । अङ्गिरसो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३२ ३२ ३१२ ३२ ३१र २र
इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्यारुहन् ।
२ ३२ ३ १ २ ३१र २र
प्रभूर्जयो यथा पथो द्यामङ्गिरसोययुः ॥२॥ (९२)

पदपाठः-इतः अ० । एते १। उदारुहन् क्रि० । दिवः ६। पृष्ठानि २ । आरुहन् क्रि० । प्र अ० । भूः १=६। जयः १। यथा अ० । पथः२। द्याम् २। अङ्गिरसः १। ययुः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-पूर्वोक्तानां विश्वेषां देवानां सत्कारः कथमग्नौ होमेन सम्भवति तदाह-(यथा) (भूः) भुवः (जयः) जेतारः (पथः) परिष्कृतमार्गान् (उदारुहन्) उद्गच्छन्ति तद्वत् (एते) अग्निकुण्डादुद्भूताः (अङ्गिरसः) अङ्गाराः अर्चिषोवा (इतः) पृथिव्याः सकाशात् (दिवः) आकाशतत्त्वस्य (पृष्ठानि) पृष्ठस्थानानि(आ-रुहन्) आरोहन्ति ततश्च (द्याम्) द्युलोकं (प्र, ययुः) प्रयान्ति ॥

अर्थात् यथा जयशालिनः शूराउद्गच्छन्ति उन्नताः सन्तोमार्गान् गच्छन्ति तद्वत् अग्नेः स्फुलिङ्गा अपि तत्र हुतसुगन्धमिष्टपुष्टरोगनाशकादिचर्वऽणून्वहन्त आकाशपृष्ठमारुह्य द्युलोकं गच्छन्ति ।तेन च सूर्यादिद्युस्थानानां विश्वेषां देवानां पूर्वमन्त्रोक्तःसत्कारःसंजायते परमात्मा च प्रसीदति ॥

एते इति प्रथमान्तं पदमेत इति क्रियापदत्वेन व्याख्यातं ज्वालाप्रसादेन । तच्च पदपाठविरुद्धम् ॥ भूः जयः इति पदद्वयं सायणाचार्येणैकीकृत्य " भूर्जयः-भृज्जतिः पाककर्मा-हविषां पक्तारः " इति व्याख्यातं तदपि पदपाठविरुद्धत्वेन स्वरविरुद्ध-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मपि । तत्र च श्री सत्यव्रत सामश्रमिभिरपि तदयुक्ततोररीकृता । यथा–"नेदं व्याख्यानं साधु मन्यते–भूः, जयः इत्येवं पदकारकृताऽवग्रहदर्शनात्, न हि भृज्जतेर्भूर्जय इति रूपे–भूः, जयः, इत्येवमवग्रहः सम्भवति, नापि तदधीनस्वरश्रुतिः । विवरणकारस्तु–भूः पृथिवी तां ये महावीराख्येनानुष्ठानेन जितवन्तः ते "इत्याह" इति । परन्तु सामश्रमिभिरपि यथार्थाऽवग्रहे कोर्थ इति नैवोल्लिखितम् । अत्र भूरिति षष्ठ्यर्थे प्रथमानुसन्धेया । जय इति जि धातोः तुगऽभाव आर्षः । 'पथो' इत्यत्र 'पथा, उ' इति विश्लेषोऽपि सायणज्वालाप्रसादयोः प्रामादिकएव ॥ ज्वालाप्रसादेन च "जया,उ" इति पदपाठविरुद्धं विश्लेषं कृत्वा-'उ' समष्टिमूर्तेः प्रतिष्ठापूजनात्मकेन मार्गेणैव" इति निर्मूलमेव व्याख्यातं,तेनैव च " (द्याम्) महानारायणलोकम् " इति सर्वतन्त्रविरुद्धोऽप्रचरितपूर्वोमहानारायणलोको व्याख्यातस्तत्राऽपि नास्ति किमपि प्रमाणम् ॥२॥ (९२)

भाषार्थः–पूर्व मन्त्र में जो होम से समस्त देवों की अनुकूलता कही है उस की रीति इस मन्त्र में वर्णित की गई है कि–(यथा) जिस प्रकार (भूः) पृथिवी के (जयः) जीतने वाले (पथः) मार्गों को (उदारुहन्) उभर कर चलते हैं, तद्वत् (एते) ये (अङ्गिरसः) अग्निकुण्ड से उठे अङ्गारे वा लपटें (इतः) इस पृथिवी लोक से (दिवः) आकाश के (पृष्ठानि) पीठों को (आरुहन्) चढ़ते और (द्याम्) द्युलोक को (प्र, ययुः) जाते हैं ॥

अर्थात् जिस प्रकार भूमण्डल के विजयी लोग उन्नत होकर चलते हैं, इसी प्रकार अग्नि में होम किये हुवे उत्तम सुगन्ध मिष्ट पुष्ट रोगनाशकादि द्रव्यों सहित अंगारे वा लपटें जब आकाश तल के ऊपर चढ़ते और द्युलोक में पहुंचते हैं तो सूर्यादि द्युलोकस्थ देवों की अनुकूलता कराते और उस से

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

परमात्मा की आज्ञा का पालन होता है इस से परमात्मा की सत्कृति भी होती है। जैसा कि पूर्व मन्त्र में कहा था ॥

पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव (आगरा) ने इस मन्त्र के व्याख्यान में इतनी भूलें की हैं-१-'एते' इस प्रथमान्त पद को पदपाठ के विरुद्ध 'एत' ऐसा क्रियापद लिखा ॥२-'भूः, जयः' इन दो पदों को भी पदपाठ के विरुद्ध 'भूर्जया, उ' इस प्रकार विश्लिष्ट करके 'उ' का अर्थ 'समष्टिमूर्त्ति की पूजा प्रतिष्ठा रूप मार्ग से' किया है। जो प्रमाणरहित और निर्मूल है। तथा(द्याम्) का अर्थ 'महानारायणलोकम्' किया है। यह इन का महानारायण शब्द निज का है जो किसी अन्य संस्कृतसाहित्यकारादि ने प्रयुक्त नहीं किया ॥

सायणाचार्य ने भी इस में कई भूल की हैं। 'भूः, जयः' इन दो पदों को 'भूर्जयः' ऐसा भृज्जति धातु का एक प्रयोग माना है। जो पदपाठ के विरुद्ध है। इस की विरुद्धता को श्री सत्यव्रतसामश्रमी जी ने भी अपनी टिप्पणी में लिखा है कि "यह व्याख्यान ठीक नहीं क्योंकि पदकार ने भूः, जयः ऐसा दो पदों का विश्लेष किया है। जो कि भृज्जति धातु से भूर्जयः बनाने पर सम्भव नहीं और न फिर दो पदों के अधीन स्वर ही सम्भव है। विवरणकार तो-'भू पृथिवी को जो महावीरानुष्ठान से जीतते हैं वे, ऐसा कहते हैं" सामश्रमी जी ने भी विवरणकार और सायण के दोष बताकर निर्दोष क्या अर्थ है, यह नहीं लिखा। अस्तु यहां भूः यह षष्ठ्यर्थ में प्रथमा तथा जि धातु को छान्दस तुक् आगम के अभाव से जयः यह प्रथमा का बहुवचन समझना चाहिये। 'पथो' में सायणाचार्य और ज्वालाप्रसाद जी ने 'पथा, उ' ऐसा विश्लेष भी पदपाठ के विरुद्ध ही किया है ॥ २ ॥ (९२)

अथ तृतीयायाः-कश्यपोऽसितो देवलो वा विवरणमते च वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २

राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ईडिष्वाहि महे वृषन्द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥ (९३)

पदपाठः-राये ४। अग्ने सं०। महे ४। त्वा २। दानाय ४। समिधीमहि, ईडिष्व क्रि०। हि अ०। महे ४। वृषन् सं०। द्यावा ७। होत्राय ४। पृथिवी ७ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः (अग्ने) अग्ने ! (महे, राये) महते, धनधान्यादिलाभाय (दानाय) हविर्दानार्थं वयं (त्वा) त्वाम् (समिधीमहि) प्रदीपयामहे । (वृषन्) वृष्टिहेतो ! (द्यावा) द्यवि आकाशे (पृथिवी) पृथिव्यां (हि) च (महे, होत्राय) महते, होमाय (ईडिष्व) ईड्महे । लकारपुरुषवचनानां व्यत्ययः ॥

अयंभावः—अग्नौ समिदाधानेन महता होमेन च धनधान्यादिप्राप्तिरग्निगुणवर्णनं च सहैव कर्त्तव्यम् । यतोऽयमग्निर्वृषा वृष्टिहेतुरस्ति । तस्मात् पृथिव्यां हव्यं हुत्वाऽऽकाशे प्रसार्यम् ॥

भाषार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (महे, राये) महाधन धान्यादि के लाभार्थ (त्वा) तुझ को (दानाय) हव्य देने के लिये (समिधीमहि) हम प्रदीप्त करते हैं । (वृषन्) वृष्टि के हेतो ! । द्यावा) आकाश (हि) और (पृथिवी) भूमि पर (महे, होत्राय) भारी, होम के लिये (ईडिष्व) हम वर्णित करते हैं ॥

अर्थात् धनधान्यादि महालाभों के लिये मनुष्यों को हव्य होमना चाहिये और होम के लिये समिधों में अग्नि को प्रदीप्त करते हुवे उस का वर्णन करना चाहिये ॥ ३ ॥ (९३)

अथ चतुर्थ्याः—भार्गहुतिः सोमो वा ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २३ २३ २३ २उ ३ २३ २ २३
दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत् । परि
१ २ ३ १ २ ३ २ ३१२
विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥ ४ ॥ (९४)

पदपाठः—दधन्वे क्रि० । वा अ० । यत् २ । ईम् २ । अनु अ० । वोचत् क्रि० । ब्रह्म २ । इति अ० । वेः क्रि० । उ अ० । तत् २ । परि अ० । विश्वानि, काव्या २ । नेमिः १ । चक्रमिव अ० । अभुवत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(ब्रह्म) वेदसूक्तादिकम् (वोचत्) वक्ति होता (वा) निश्चयेन (यत्) हव्यादिकं (ईम्) एतमग्निम् (अनु)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लक्षीकृत्य (दधन्वे) धारयति अध्वर्युः (तत्) (इति) एवं प्रकारेण धार्य्यं यथाऽग्निः (वेः, उ) व्याप्नुयादेव । तथा (विश्वानि) सर्वाणि (काव्या) कवीनां मेधाविनामिमानि हव्यानि (परि, अभुवत्) परितो भावेन स्वायत्तीकुर्य्यात् । दृष्टान्तः नेमिः रथाङ्गबहिर्वलयः (चक्रमिव) रथाङ्गमिव ॥

अयमर्थः—यदा वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वकं होत्रध्वर्य्वादयोऽग्नौ यद्धव्यादिकं धारयन्ति तत्सर्वं तथा धार्य्यं यथा नेमिश्चक्रमिव अग्निः समस्तानि हव्यानि परितोवेष्टयेत् व्याप्नुयाच्च । अर्थात् परितः काष्ठानि संचिनुयुर्मध्ये च हव्यं प्रक्षिपेयुः ॥

अत्राग्नेयप्रकारणादग्निरनुवर्त्तते । ईमिति पदनाम निघं०४।२ तस्य चात्र व्याप्त्यऽर्थो ग्राह्यः ॥ वेरिति वी गति—व्याप्ति—प्रजनकान्त्य-सन-खादनेषु इत्यस्य धातो र्बहुलकृतं रूपम् ॥ ऋग्वेदे तु २।५।३ "ब्रह्माणि" "अभवन्" इति च पाठेऽन्तरम् ॥४॥ (९४)

भाषार्थः—(ब्रह्म) वेद को (वोचत्) बोलता [होता] (वा) निश्चय करके (यत्) जिस [हव्यादि] को (ईम्, अनु) इस अग्नि को, लक्ष्य करके (दधन्वे) धारण करता है [अध्वर्यु] । (तत्) उस [हव्य] को (इति) ऐसी रीति से धारण करना चाहिये [जिस से वह अग्नि] (वेः, उ) व्याप ही जावे । तथा (विश्वानि) समस्त (काव्या) ऋत्विजों के दिये हव्यों को (परि, अभुवत्) सब ओर से घेर लेवे । दृष्टान्त—(नेमिः) रथ के पहिये की पुट्ठी [परिधि] (चक्रमिव) पहिये को जैसे ॥

अर्थात् जब होता वेदमन्त्र पढ़ता और अध्वर्यु अग्नि में हव्य चढ़ाता है तब इस प्रकार चढ़ाना चाहिये कि चारों ओर काष्ठों में प्रज्वलित अग्नि रहे जैसे कि रथ के पहिये की पुट्ठी रहती है और बीच में हव्य छोड़ा जावे जिस से तत्काल अग्नि उस में व्याप सके और द्युलोक को लेजासके ॥

यहां आग्नेय पर्व के प्रकरण से अग्नि पद की अनुवृत्ति है । निघं० ४।२ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद २।५।३ में " ब्रह्मेति " के स्थान में "ब्रह्माणि" और "अभुवत्" के स्थान में "अभवत्" इतना पाठ भेद है ॥४॥ (९४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ पञ्चम्याः—पायुर्ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १२ ३ १२ ३२ ३ २३ १२
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
३ १२ ३२३ २३क२र ३क२र
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम् ॥५॥ (९५)

पदपाठः—प्रति अ० । अग्ने सं० । हरसा ३। हरः २। शृणाहि क्रि० । विश्वतः, परि अ० । यातुधानस्य, रक्षसः ६। बलम् २। न्युब्ज क्रि० । वीर्यम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) परमात्मन्वा भौतिक ! (यातुधानस्य) राक्षसस्य मृत्युकारकस्य दुष्टदस्युरोगादेः (हरः) हरणशीलं (बलम्) (हरसा) स्वतेजसा (विश्वतः) सर्वतः (परि) परिगतं (प्रति, शृणाहि) नाशय। अन्यच्च (रक्षसः) दस्युरोगादेः (वीर्यम्) पराक्रमं (न्युब्ज) निः शेषेण रुज भञ्जयेत्यर्थः ॥

हर इति ज्वलतोनाम निघं० १।१७॥ क्रोधनाम च तत्रैव २।१३॥ऋग्वेदे तु (१०।८७।२५) न्युब्जेत्यस्य स्थाने विरुजेति, परीत्यस्य स्थाने प्रतीति च पाठान्तरम्। शृणाहि शृणीहि इति च पाठौ ॥ ५ ॥ (९५)

भाषार्थः—(अग्ने) अग्ने ! वा परमात्मन् ! (यातुधानस्य) दुष्ट दस्यु वा रोगादि के (हरः) हरने वाले (बलम्) बल को (हरसा) अपने तेज से (विश्वतः) चारों ओर (परि) फैले हुवे को (प्रति, शृणाहि) नष्ट कर और (रक्षसः) दस्यु वा रोगादि के (वीर्यम्) पराक्रम को (न्युब्ज) निःशेष करके भग्न कर ॥

अर्थात् परमात्मा की कृपा और अग्नि के होम और अस्त्रादि प्रयोग से सर्व दुष्ट दोष रोग दस्यु आदि का नाश होसक्ता है। इसलिये मनुष्यों को मन्त्रोक्त अनुष्ठान करना चाहिये ॥

निघण्टु १। १७।२। १३ के प्रमाण और ऋग्वेद १०।८७।२५ में जो पाठान्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (९५)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

अथ षष्ठ्याः—प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ५ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २

त्वमग्ने वसून्छरिह रुद्राꣳ आदित्याꣳ उत । यजा

३ २ उ ३ १ ३ ३ १ २

स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ६ ॥ (१६)

पदपाठः—त्वम् १ । अग्ने सं० । वसून् २ । इह, अ० । रुद्रान्, आदित्यान् २ । उत अ० । यज क्रि० । स्वध्वरम्, जनम्, मनुजातम्, घृतप्रुषम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) (वसून्) अष्ट (रुद्रान्) एकादश (आदित्यान्) द्वादश (उत) चार्थे (घृतप्रुषम्) पवमानम् (स्वध्वरम्) सुष्ठुयज्ञसम्पादकं प्रजापतिम्, तथा (मनुजातम्) ईक्षितुः परमात्मनो जातमात्रम् (जनम्) प्राणिवर्गम् (इह) अस्मिन् यज्ञे (यज) संगमय ॥

अग्नौ होमेन त्रयस्त्रिंशद्देवगणानां यजनं कर्त्तव्यमित्यनेन मन्त्रेणादिश्यते। अष्टौ वसवः, एकादश रुद्राः, द्वादशादित्याः, पवमानः प्रजापतिश्चेति त्रयस्त्रिंशत् ॥

ईश्वरपक्षे—वसुरुद्रादित्यपदैः क्रमेण चतुर्विंशतिचतुश्चत्वारिंशदष्टाचत्वारिंशद्वर्षावधिस्वनुष्ठितब्रह्मचर्य्याः पुरुषा ग्राह्याः । अन्यत्पूर्ववत् ॥

वसूनित्यत्र दीर्घादटिसमानपादे (पा०८ । ३ । ९) अनेन रुः पूर्वस्यानुनासिकश्च । आदित्यानित्यत्राऽपि उक्तसूत्रेण रुत्वादिः । भोभगो० (८।३।१७) इत्यादिना यत्वं च ॥ घृतमित्युदकनाम निघं० १। १२॥ तस्य सेक्तारं घृतप्रुषं वायुम् । उदकसेचनं हि वायोःकर्म, प्रुषस्नेहनसेचनपूरणेषु इति क्र्यादिः ॥ ऋग्वेदे (१। ४५।१)ऽपि तथैव पाठः ॥ ६ ॥ (१६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (वसून्) ८ वसुओं (रुद्रान्) ११ रुद्रों (उत) और (आदित्यान्) १२ आदित्यों तथा (घृतप्रुषम्) पवन और (स्वध्वरम्) प्रजापति इन ३३ देवों और (मनुजातम्) ईश्वरसृष्टिगत (जनम्) प्राणिमात्र को (इह) इस यज्ञ में (यज) अनुकूल और संगत [ठीक] कर ॥

अर्थात् अग्नि में होम करने से ३३ देवगणों की अनुकूलता होती है इसलिये नित्य होम करना चाहिये ॥

ईश्वरपक्ष में—(अग्ने) हे परमात्मन् ! (त्वम्) आप (इह) इस संसार में (वसून्) २४ वर्षावधि ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठानी, (रुद्रान्) ४४ वर्षावधि ब्रह्मचर्य्यानुष्ठानी (उत) और (आदित्यान्) ४८ वर्षावधि ब्रह्मचर्य्यानुष्ठानी पुरुषों तथा (स्वध्वरम्) भले प्रकार यज्ञानुष्ठानी (घृतप्रुषम्) घृतसेचक (मनुजातम्) मनुष्य और (जनम्) प्राणिमात्र को (यज) संगत कीजिये ॥

निघण्टु १ । १२ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १ । ४५ । १ में भी ऐसा ही पाठ है ॥

शतपथब्राह्मणे ३३ देवानां व्याख्यानं यथा—

सहोवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिꣳशत्त्वेव देवा इति । कतमे ते त्रयस्त्रिꣳशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिꣳशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिꣳशाविति ॥ ३ ॥ कतमे वसव इति । अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु होदꣳसर्वं वसु हितमेते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳसर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥ ४ ॥ कतमे रुद्रा इति । दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ ५ ॥ कतमआदित्या इति, द्वादश मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीꣳसर्वमाददाना यन्ति तद्यदिदꣳसर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥ ६ ॥ कतमइन्द्रःकतमः-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रजापतिरिति । स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञःप्रजापतिरिति, कतमः स्तनयित्नुरित्यशनिरिति, कतमो यज्ञ इति पशव इति ॥ ७ ॥ कां० १४ प्रपा० १६ कं० ३-७ ॥

प्र० किं सप्ताहगतानि रव्यादीनि सप्त दिनानि अथवा अहोरात्रोऽथवा शुक्लकृष्णपक्षावपि आदित्यपदवाच्यौ न भवतः? एतेऽपि सर्वमाददाना यन्तिं तत्कथं नादित्याः ? यदीमेप्यादित्याः सन्ति तर्हि कथङ्कारं नाम द्वादशमासा एवादित्यसंज्ञकाः ?

उ० आदित्यादयः सप्त वाराः स्वरूपभेदेनाऽऽवर्त्तन्ते उत्तरोत्तरं सूर्यचन्द्रकिरणतारतम्येन वैलक्षण्यस्य दुर्वारत्वात् । न चैष व्यभिचारो द्वादशमासेषु सम्भवति । चैत्रादिकामासाःसदैव चित्रादिनक्षत्रयुक्तपौर्णमासीयुक्ताभवन्ति, न तत्रैकनक्षत्राधिकोव्यभिचारः कदाचित् सम्भवति । एवमेव शुक्लकृष्णपक्षादावपि महद्वैचित्र्यमुत्तरोत्तरं जायते, न तथा द्वादशमासेषु ॥

ऊपर लिखे शतपथ में इस प्रकार ३३ देवतों के नाम बताये हैं कि ८-वसु-अग्निपृथ्वी वायु अन्तरिक्ष आदित्य द्यौः चन्द्र और नक्षत्र, ११ रुद्र-प्राण अपान उदान समान व्यान नाग कूर्म कृकल देवदत्त और धनञ्जय और ११ वां आत्मा, १२ आदित्य-वर्ष के १२ मास, यह सब पदार्थ देवता हैं। पूर्वोक्त ८ पदार्थ वसु इस लिये हैं कि (एतेषु हीदꣳसर्वं वसु हितम्) इन में ही यह सब सुवर्णादि धन रखा है (एते हीदꣳसर्वं वासयन्ते) ये ही इस सब [जगत्] को बसाते हैं [इस से यह भी सूचित है कि सूर्य्यादि लोकों में भी वसतियां हैं] पूर्वोक्त ११ पदार्थ रुद्र इसलिये हैं कि- (यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रो०) जब मनुष्यदेह से ये प्राणादि ११ रुद्र निकलते हैं तब इष्ट मित्र सम्बन्धियों को रोदन कराते हैं बस रोदन कराने से रुद्र नाम पड़ा । पूर्वोक्त संवत्सर के १२ मास आदित्य इसलिये हैं कि (एते हीदꣳसर्वमाददाना यन्ति०) ये चैत्रादि द्वादश मास ही सब जगत् को लिये हुवे

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जाते हैं इस से आदित्य नाम पड़ा। यह तो शतपथ ब्राह्मण के वचन का अर्थ है। विशेष यह है कि क्या सप्ताह के ७ वार, वा अहोरात्र के दो भाग दिन और रात्री, वा शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष ये सब भी तो जगत् को लिये हुवे जाते हैं ये भी आदित्य हो सक्ते हैं? नहीं, इस में सूक्ष्म विचार है। कल्पना करो कि आज रविवार है और ७ दिन पश्चात् यही रविवार फिर आवेगा परन्तु यह रविवार ठीक आगामी रविवार के तुल्य नहीं हो सक्ता क्योंकि इस रविवार में ४ तिथि है आगामी में ११ तिथि होगी जैसी और जितनी चन्द्र वा सूर्य्यादि की ठण्ड और उष्णतादि आज है आगामी ११ तिथि रविवार को न होगी क्योंकि चन्द्रकला न्यून हो जायंगी, दक्षिणायन के कारण सूर्य की उष्णता घट जायगी इत्यादि अनेक कारणों से आज का रविवार आगामी रविवारों की अपेक्षा बहुत ही भेद रखता है। इसी प्रकार आज के दिन और रात्री के सदृश आगामी दिन रात्री भी सूर्य्यादि की उष्णता आदि के भेद से कभी नहीं हो सक्ते हैं। तथा यही भेद वर्त्तमान शुक्ल कृष्ण पक्ष के सदृश आगामी शुक्लकृष्णपक्ष की तुल्यता में भी बाधक है। इस लिये चैत्रादि १२ मास ही पुनः २ लौट कर अधिकांश में तुल्यावस्था से आते हैं। जैसे—यास्मिन्पौर्णमासीति। अष्टाध्यायी ४। २। २० इस सूत्र के अनुसार चित्रानक्षत्रयुक्त पौर्णमासी जिस मास की वह चैत्र, विशाखानक्षत्रयुक्त पौर्णमासी जिस मास की वह वैशाख, इसी प्रकार ज्येष्ठा न०—ज्यैष्ठ, आषाढा नक्ष०—आषाढ, श्रवण न०—श्रावण, भाद्रपदा न०—भाद्रपद, अश्विनी०—आश्विन, कृत्तिका०—कार्त्तिक, मृगशिर०—मार्गशिर, पुष्य न०—पौष, मघा०—माघ और फल्गुनी०—फाल्गुन ॥

बस जिस नक्षत्र से युक्त जिस मास की पौर्णमासी इस वर्ष है प्रायः उसी नक्षत्र के लगभग सहस्रों वर्ष से उस २ मास की पौर्णमासी होती रहीं हैं। और सौर मास की रीति से संक्रान्तिमास १२—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुः, मकर, कुम्भ, और मीन ये १२ संक्रान्ति भी इस वर्ष के समान सब वर्षों में हुई और होंगी। इस कारण १ वर्ष के १२ सौर वा चान्द्र मास ही १२ आदित्य हो सक्ते हैं, अन्य कालविभाग नहीं ॥

इस प्रकार शाकल्य ऋषि से याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि ३३ देवता कौन से हैं। ८ वसु ११ रुद्र १२ आदित्य ये ३१ हुवे। इन्द्र और प्रजापति ये मिलकर ३३ हुवे। इन्द्र किसे कहते हैं? स्तनयित्नु अर्थात् बिजुली को। प्रजापति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कौन सा है ? यज्ञ प्रजापति है । प्रजापति क्या है ? पशु ही प्रजापति हैं क्योंकि प्रजा का पालन इन्हीं से होता है ॥

* इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ *

एकादशदशत्यां पु-रुत्वेति दश चोष्णिहः ॥
ततो दशत्यां ककुभः प्रमहीत्यष्ट कीर्त्तिताः ॥ १ ॥
जज्ञानः पावमानो स्यादुतस्येत्यदितेः स्तुतिः ॥
शिष्टाः षोडश चाग्नेय्यः समाख्या छत्रिणो यथा ॥ २ ॥

अथैकादशीदशतिस्तत्र प्रथमायाः-दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक्छन्दः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पुरु त्वा दाशिवाङ् वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ॥
३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥ (९७)

पदपाठः-पुरु, त्वा २ । दाशिवाङ् १ । वोचे क्रि० । अरिः १ । अग्ने सं० । तव ६ । स्वित्, आ, तोदस्येव अ० । शरणे ७ । आ अ० । महस्य ६ ॥

अन्वितपदार्थः-(अग्ने) परमात्मन्! वा भौतिक! (दाशिवाङ्) भक्तिरूपं हव्यमर्पितवान् चरुं घृतादिकं वा, (अरिः) परिचरणशीलः अहं (तव, स्वित्, आ) तवैव (शरणे) आश्रयभूते गृहे (त्वा) त्वाम् (पुरु, वोचे) बहु, स्तौमि । दृष्टान्तमाह-कस्य गृहे इव? (महस्य) महतः (तोदस्येव) शिक्षकस्येव । (आ) पादपूरणे ॥

दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च (पा० ६ । १ । १२) इति निपातनं बहुलम् ॥ अरिः-ऋच्छतेः परिचरणकर्मणः । निघं० ३ । ५ ॥ शरण इति गृहनाम निघं० ३ । ४ ॥ ज्वालाप्रसादेन "स्विदा" इत्यत्र पदपाठसम्मतं " स्वित्, आ " इति विश्लेषं परित्यज्य

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्विदा इत्येकीकृत्य स्वदतिरर्चतिकर्मेत्यादि व्याख्यातं तदयुक्तरम्, पदपाठविरोधेऽपि स्वदतेरिकारोपधत्वाभावान्नार्थसिद्धिः। अत्रेदं निरुक्तमप्यनुसन्धेयम्—"बहु दाश्वांस्त्वामभि ह्वयाम्यरिरमित्र ऋच्छतेः। ईश्वरोप्यरिरेतस्मादेव। यदन्यदेवत्या अग्नावाहुतयो हूयन्त" इत्यादि ॥५।७॥ ऋग्वेदे तु १।१५०।१ दाश्वान् इति पाठः ॥ १ ॥ (९७)

श्लोकार्थः—पुरु त्वा० इत्यादि १० ऋचा की ११वीं दशति है। इस का उष्णिक् छन्द है। फिर १२ वीं दशति में ८ ऋचा ककुभ् छन्द की हैं ॥१॥ जिन में से "जज्ञानः०" इत्यादि ११ वीं दशति की ५ वीं ऋचा का पवमान देवता तथा उस से अगली "उतस्या०" इत्यादि ६ ठी का अदिति देवता है। शेष दोनों दशतियों की १६ ऋचाओं का अग्नि देवता है। आग्नेय काण्ड में अन्य देवता वाली ऋचा हैं तो इस पर्व का नाम आग्नेय पर्व कैसे ठीक रहा? इस शङ्का का समाधान यह है कि जिस प्रकार "छत्र वाले जाते हैं" ऐसा कहने से उन छत्रवालों के सहचारी विना छत्रवाले भी का(स प्रे)जाते हों, तब भी मुख्य ही को ध्यान में रखकर "छत्रवाले जाते हैं" ऐसा कहने से विना छत्र वालों का भी ग्रहण होजाता है। इसी प्रकार यहा मुख्य करके अग्नि का वर्णन है उस के साथ में प्रकरण में आवश्यकता पड़ने से अन्य देवता का वर्णन आजाना भी इस पर्व के आग्नेय नाम का बाधक न समझना चाहिये ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) परमात्मन्! (दाशिवाङ्) भक्तिरूप भेंट देने वाला (अरिः) सेवक मैं (तव, स्वित्, आ) तुम्हारे, ही (शरणे) आश्रय में (त्वा) आप की (पुरु) बहुत (वोचे) स्तुति करता हूं। दृष्टान्त—(महस्य) बड़े (तोदस्येव) शिक्षक के आश्रय में जैसे [शिष्य] (आ) पादपूर्त्यर्थ है ॥

जिस प्रकार शिष्य वा भृत्य लोग लोक में अपने शिक्षक गुरु वा स्वामी की आज्ञा में रहते हैं इसी प्रकार परमात्मा की आज्ञा आश्रय और स्तुति में लगना चाहिये ॥

भौतिकपक्ष में—(अग्ने) अग्ने! (दाशिवाङ्) हव्य देने वाला (अरिः) अग्निहोत्रसेवन करने वाला मैं (तव, स्वित्—आ) तेरे ही (शरणे) गृह

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अर्थात् अग्न्यागार नामक शाला [रूम] में (त्वा) तुझे (पुरु, वोचे) बहुत वर्णित करूं । जिस प्रकार (महस्य) बड़े (तोदस्येव) शिक्षक के [आश्रय में शिष्य] ॥

जिस प्रकार शिक्षक के सेवन में शिष्यादि प्रवृत्त रहते हैं तभी विद्यादि प्राप्त कर सकते हैं । इसी प्रकार अग्न्यागार नामक भवन में हवन तथा मन्त्र द्वारा अग्नि का वर्णन करने वाले ही लोग सर्व रोगादि शत्रुओं से बचते और सुख समृद्धि को पासकते हैं ॥

अष्टाध्यायी ६।१।१२॥ निघण्टु ३।५॥३।४॥ निरुक्त ५।७॥ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव (आगरा) ने "स्विदा" के "स्वित, आ" इन दो पदों को "स्विदा" यह एक पद किया और परिचरणार्थक स्वद धातु से बनाया है । सो स्वद से स्विदा नहीं बनता और पदपाठ के विरुद्ध होने से भी अमान्य है ॥१॥ (९७)

अथ द्वितीयायाः—विश्वामित्रऋषिः । अग्निर्देवता । विराडुष्णिक्छन्दः ॥

१र २र ३२उ ३ १ २ ३ २

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोग्नये भरता बृहत् ।

३१र २र ३ १२३ २ ३१२

विपां ज्योतीꣳषि बिभ्रते न वेधसे ॥२॥ (९८)

पदपाठः—प्र अ० । होत्रे ४। पूर्व्यम्, वचः २। अग्नये ४। भरत क्रि० । बृहत् २। विपाम् ६। ज्योतीꣳषि २। बिभ्रते ४। न अ० । वेधसे ४॥

अन्वितपदार्थः—(वेधसे, न) जगतो विधात्रे, इव (विपां, ज्योतीꣳषि, बिभ्रते) मेधाविनामृत्विजां मध्ये, तेजांसि, धारयते (होत्रे) हवनकर्त्रे (अग्नये) प्रसिद्धाय (पूर्व्यम्) पूर्वैः सनातनो-वेदस्तदीयमिदं (बृहत्) महत् (वचः) सूक्तादिरूपं (प्र,भरत) प्रब्रूतेति भावः ॥

अर्थात् यथा जगद्विधाता परमात्मा सूर्यादीनि तेजांसि धारयति, तत्तत्कृतकर्मफलं प्रापयति च । तथैव कस्मिंश्चिदंशे प्रसिद्धोग्निरपि तेजांसि धारयति सर्वप्राण्यप्राणिषु यद्यत्तेजस्तत्त-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

त्सर्वमग्नेरेव, विशेषतश्च विपां विपानां मेधाविनामृत्विजां मध्ये आग्नेयं तेजो विराजते, यतस्ते हि अग्नेः समीपवर्त्तिनो भवन्ति। दृष्टान्तेऽपि परमात्माऽपि स्वोपासकेषु विशिष्टं तेजोदधाति, तेजोसितेजोमयि धेहीत्यादि (यजुषि १९—९) विहितत्वात्। अतस्तं वर्णयन्तु ॥

विपामित्यत्र वाच्छन्दसीति नुडऽभावः। विप इति मेधाविनाम निघं० ३।१५॥ ऋग्वेदेऽपि ३।१०।५ इत्थमेव पाठः।२। (९८)

भाषार्थः—(वेधसे, न) जगत्कर्त्ता के, समान (विपां, ज्योतींष्यृषि, बिभ्रते) मेधावी लोगों में, ज्योतियों को, धारण करते हुवे (होत्रे) हवनकर्त्ता (अग्नये) अग्नि के लिये (पूर्व्यम्) सनातन [वैदिक] (बृहत्) बड़ा (वचः) सूक्त (प्र, भरत) उच्चारित करो ॥

जिस प्रकार जगत्स्रष्टा परमात्मा तेजों का धारण करता है इसीप्रकार किसी अंश में अग्नि भी तेज का धारण करता है। और जिस प्रकार परमात्मा कर्मफल पहुंचाता है, इसी प्रकार अग्नि भी हुत द्रव्यों को मेघमण्डलादि में पहुंचाता है। और जिस प्रकार उपासकों में (तेजोऽसि तेजोमयि धेहि० यजुः १९।९ के अनुसार) विशेष करके परमात्मा तेज का धारण करता है, इसी प्रकार अग्नि भी मेधावी होत्रादि ऋत्विजों में विशेष तेज को धारता है। और साधारणतया जिस प्रकार परमात्मा चराचर में तेज को धारण करा रहा है, इसी प्रकार घट पटादि समस्त पदार्थों में जो तेज है वह सब अग्नि का ही है। इसलिये परमात्मा के वर्णन और अग्नि के वर्णन को करो। जिस से दोनों के गुणकीर्तन से दोनों लोक का सुख प्राप्त करने में सुगमता हो ॥

निघण्टु ३।१५ आदि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ऋ० ३।१०।५ में भी ऐसा पाठ है ॥२॥ (९८)

अथ तृतीयस्याः—गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २३१ २

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥ (९९)

पदपाठः-अग्ने सं० । वाजस्य, गोमतः ६। ईशानः १। सहसः ६। यहो सं० अस्मे ४। देहि क्रि०। जातवेदः सं० । महि, अवः २ ॥

अन्वितपदार्थः-(जातवेदः) प्रकाशेन बुद्धितत्त्वप्रसारक ! (अग्ने) अग्ने ! (गोमतः, वाजस्य) गवादिधनयुक्तस्य, अन्नस्य (ईशानः) स्वामी। त्वमसीति शेषः (सहसः, यहो) बलस्य, पुत्र ! (अस्मे) अस्मभ्यम् (महि) महत् (श्रवः) अन्नादिकं (देहि) ॥

अग्निनैव प्रकाशः प्रकाशेन द्रव्यजातज्ञानम्, तेनैव च सुहुतेन धान्यादिधनस्य गवादेश्च वृष्टितृणसस्यवृद्धया महती वृद्धिः सम्भवति अतोऽग्निर्जातवेदाः पशुधान्यादिमान्, तत्स्वामी, तत्प्रदश्चास्ति। बलेन क्रिया, क्रियया चाग्नेरुत्पादः, तस्मादग्निर्बलस्य पुत्र इत्युच्यते ॥

सह इति बलनाम निघं० २। ९ ॥ यहुरिति अपत्यनाम निघं० २। २॥ श्रवइत्यन्ननाम निघं० २। ७ धननाम च २। १० ॥ ऋग्वेदे १। ७९। ४ तु "धेहि" इत्येवान्तरम् ॥३॥ (९९)

भाषार्थः-(जातवेदः) प्रकाश से बुद्धि तत्त्व के फैलाने वाले ! (अग्ने) प्रसिद्ध ! (गोमतः, वाजस्य) गवादिधनयुक्त, अन्न का (ईशानः) स्वामी [तू है]। (सहसः, यहो) बल की, सन्तान ! (अस्मे) हमारे लिये (महि) बड़ा (अवः) धन वा अन्न (देहि) दे ॥

अग्नि से ही प्रकाश होता और प्रकाश मे घट पटादि द्रव्यों पर बुद्धि तत्त्व फैलता है। इस लिये अग्नि जातवेदा है। और अग्नि में होम द्वारा जल वायु की शुद्धि, वृष्टि, धन धान्य तृणादि की वृद्धि होकर पशु भी बढ़ते हैं। इस लिये

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अग्नि पशुओं तथा धन धान्यादि का स्वामी है। और इसी कारण वह इन पदार्थों का दाता भी है। वह अग्नि बल की सन्तान इसलिये कहा गया है कि बल से क्रिया और क्रिया से अग्नि की उत्पत्ति है॥

निघं० २। ९॥ २। २॥ २। ७॥ २। १०॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० १। ७९। ४ में "धेहि" इतना अन्तर है॥ ३॥ (९९)

अथ चतुर्थ्यर्चः—विश्वामित्र ऋषिः - अग्निर्देवता। उष्णिक्छन्दः॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ र २

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज।

१ ३ ३ १ र २ र २ २ ३ १ २

होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः॥४॥(१००)

पदपाठः—अग्ने सं०। यजिष्ठः १। अध्वरे ७। देवान् २। देवयते ४। यज क्रि०। होता, मन्द्रः १। वि—राजसि क्रि०। अति अ०। स्रिधः २॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) परमात्मन्! (यजिष्ठः) अतिशयेन यष्टा (होता) फलप्रापकः (मन्द्रः) आह्लादकः (त्वम्) (देवयते) देवं कामयमानायोपासकाय (देवान्) इन्द्रियाणि (यज) संगमय (स्रिधः) क्षपयितॄन्कामादीन् (अति) अतिक्रम्य (अध्वरे) उपासनायाम् (वि—राजसि) विशेषेण राजस्व॥

भौतिकपक्षे—(अग्ने) (यजिष्ठः) अतिशयेन यष्टा (होता) हव्यप्रापकः (मन्द्रः) मोदजनकः (त्वम्) (देवयते) देवानिच्छते यजमानाय (देवान्) वाय्वादीन् (यज) संगमयसि (अध्वरे) यज्ञे (स्रिधः) क्षपयितॄन् रोगादीन् (अति) अतिक्रम्य (वि—राजसि) विशेषेण—प्रकाशसे॥

अग्निर्गतिशीलत्वात्तत्तत्पदार्थानां तत्तत्स्थानेषु प्रापकः, वाय्वादीनामतिशयेन संगमयिता, तद्दिदां मोदजनकः, तद्विरोधि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दुष्टरोगदस्युप्रभृतीन् ध्वंसेनातिक्रम्य विराजते। ऋग्वेदेऽपि ३। १०। ७ इत्थमेव पाठः ॥ ४ ॥ (१००)

भाषार्थः-(अग्ने) प्रकाशस्वरूप! (यजिष्ठः) अत्यन्त यज्ञ करने वाले (होता) फलदाता (मन्द्रः) आनन्ददायक [आप] (देवयते) देव की कामना वाले के लिये (देवान्) इन्द्रियों को (यज) संगत कराइये और (स्रिधः) कामादि शत्रुओं को (अति) उल्लङ्घित करके (अध्वरे) उपासना में (वि-राजसि) विशेष प्रकाश कीजिये ॥

भौतिकपक्ष में-(अग्ने) अग्ने! (यजिष्ठः) अत्यन्त यज्ञकारक (होता) हव्य पहुंचाने वाला (मन्द्रः) सुखदायक [तू] (देवयते) वाय्वादि देवों की कामना वाले के लिये (देवान्) वायु आदि को (यज) संगत करता और (अध्वरे) यज्ञ में (स्रिधः) रोगादि शत्रुओं को (अति) उल्लङ्घित करके (वि-राजसि) विशेष प्रकाश करता है ॥

अर्थात् गतिशील होने से अग्नि उस २ पदार्थ का उस २ स्थान में पहुंचाने वाला, वाय्वादि को ठीक करने वाला, उस की विद्या रखने वालों को सुखदायक और विरोधी दुष्ट रोग वा दस्यु आदि को नष्ट करके प्रकाशित होने वाला है ॥ ऋग्वेद ३। १०। ७ में भी ऐसा ही पाठ है ॥४॥ (१००)

अथ पञ्चम्याः-त्रित ऋषिः। पवमानो देवता। उष्णिक्छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३।१र२३।१र३ २र१ ३२

जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।

३२३।१ २३।१ २ ३२

अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥ (१०१)

पदपाठः-जज्ञानः १। सप्त ५। मातृभिः ३=५। मेधाम् २। आशासत क्रि०। श्रिये ४। अयम्, ध्रुवः १। रयीणाम् ६। चिकेतत् क्रि०। आ अ०॥

अन्वितपदार्थः-(अयम्) पवमानः (सप्त) सप्तभ्यः (मातृभिः) मातृभ्यः (जज्ञानः) उत्पन्नस्सन् (श्रिये) धनाय (मेधाम्) स्थिरां बुद्धिम् (आशासत) सर्वथेच्छति। (तदा) (ध्रुवः) स्थिरात्मा यजमानः (रयीणाम्) धनादिपदार्थानाम् (आ,चिकेतत्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

समन्ततो, विचारं करोति ॥

अग्नेर्याः सप्त जिह्वाः प्रसिद्धाः "काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः। इति मुण्डकोपनिषदि १।२।४॥" ताभ्यः शुद्धः पवमानः=पवनो जायते, स च धनधान्यादिश्रीलाभाय यज्ञानुष्ठातुः स्थिरां मतिमिच्छति । तादृशमत्या ध्रुवविचारः स यजमानो धनादिविषये सुष्ठु विचारक्षमस्तत्सारासारौ विजानाति । जडे पवने इच्छाप्रयोगो भित्तिः पिपतिषतीतिवत् ॥

आशासत इत्यत्र, बहुलं छन्दसि (पा० २। ४। ७३) इति शपोलुक् न ॥ मातृभिरिति पञ्चम्यास्तृतीया ॥ छन्दसि परेपि (पा० १। ४। ७९) इत्यनेन आ इति परोऽप्युपसर्गो न दोषाय भवति ॥ ऋग्वेदे (९ । १०२ । ४) हि "जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत" इत्यन्तरम् पाठोऽस्ति, तद्विस्मरता सायणाचार्य्येण सामवेदे पाठभेदाधीनं व्याख्याभेदमकुर्वता (मेधाम्) कर्मणो विधातारमित्येव ऋग्वेदवद्व्याख्यातम्। तच्चिन्त्यम्।अन्यच्च—सायणाचार्य्येण "आशासत" इत्याकारकं मूलम् "अनुशासत" इति विश्लिष्य भ्रान्त्या व्याख्यातं, तदेव च ज्वालाप्रसादेनाऽपि गतानुगतिकतया विन्यस्तम्॥ ऋग्वेदे च "चिकेतयत्" इत्यपि पाठोऽन्तरम् ॥

यद्यपि अग्निदेवतापरं व्याख्यानमस्य सुष्ठु प्रतिभाति परन्तु परम्परामनुसरता पवमानपरैव व्याख्या मयाऽप्यन्वमोदि।५। (१०१)

भाषार्थः—(अयम्) यह पवन (सप्त) सात (मातृभिः) माताओं से (जज्ञानः) जन्मा हुवा (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (मेधाम्) स्थिर बुद्धि को (आशासत) सर्वथा चाहता है और तब (ध्रुवः)स्थिरात्मा [यजमान](रयी-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

णाम्) धनों के (आ,चिकेतत्) विचार को, सब ओर से कर सक्ता है।

अर्थात् मुण्डकोपनिषद् के लेखानुसार जो अग्नि में सात प्रकार की लपटें उठती हैं, उन से एक ऐसा वायु (पवमान) शोधने वाला उत्पन्न होता है जो कि हवनजन्य गुणों को लिये हुवे मनुष्यों के बुद्धितत्त्व की शुद्धि चाहता है। अर्थात् उस से बुद्धि तत्त्व में भी पवित्रता उत्पन्न होती है, जिस की सहायता से व्यवसायात्मक मनुष्य विद्यासुवर्णादि धन लक्ष्मी के लिये उस के विषय में स्थिर विचार कर सक्ता है। जड़ पवन में इच्छा का व्यवहार इसी प्रकार जानो जिस प्रकार "दीवार गिरना चाहती है" इत्यादि में होता है॥

मुण्डकोपनिषद् १।२।४॥ अष्टाध्यायी २।४।७३॥१।४।७९ के प्रमाण तथा ऋग्वेद ९।१०२।४ में जितना पाठ में अन्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद के पाठ में "मेधाम्" की जगह वेधाम् पाठ है और सायणाचार्य ने "मेधां" का भी वही अर्थ किया जो कि वह ऋग्वेद में "वेधां" का कर चुके थे, यह बिचारणीय है। तथा उन्हों ने "आशासत" इस पद की जगह "अनुशासत" का अर्थ किया है। और उन की देखा देखी पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने भी "मक्षिका स्थाने मक्षिका" ही घसीटा है॥

यद्यपि इस मन्त्र का अग्निदेवता मान कर भी व्याख्यान ठीक होसक्ता था, परन्तु परम्परा के अनुरोध से हम ने भी पवनपरक व्याख्या की है॥ ५॥ (१०१)

अथ षष्ठ्याः—इरिमिठिर्ऋषिः। अदितिर्देवता। उष्णिक्छन्दः॥

२ २उ २ १ १ ३ १र २र ३ १ २ १र

उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत्॥ सा

२ ३ १ २ ३२३१ २

शन्ताता मयस्करदप स्रिधः॥ ६॥ (१०२)

पदपाठः—उत अ०। स्या १। नः २। दिवा अ०। मतिः, अदितिः १। ऊत्या ३। आगमत् क्रि०। सा, शन्ताता १। मयः २। करत् क्रि०। अप अ० स्रिधः २॥

अन्वितपदार्थः—(उत) अपि च (स्या) सा पूर्वमन्त्रोक्ता (मतिः) मेधा [पवमानेन शोधिता] (अदितिः) अखण्डि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ता अदितिदेवताख्या (ऊत्या) रक्षया सह (नः) अस्मान् (दिवा) व्यवहारकाले (आगमत्) आगम्यात् [आगत्य च] (सा) शुद्धा मतिः (शन्ताता) शन्तातिः (मयः) सुखम् (करत्) क्रियात् (स्त्रिधः) सर्वशत्रून् (अप) वर्जितान् क्रियात् ॥

मतिरेव बलाद्वरीयसीति सुस्पष्टमेव। सा च पूर्वमन्त्रोक्तप्रकारेणाग्निगतसप्तज्वालाशोधितपवनजनिता सती अदित्याख्या देवता। तयैव सर्वे शत्रवो निवर्त्तन्ते, सुखानि चाप्नुवन्ति, रक्षा च जायते। वेदो हि मतिमेव सर्वबलाधिकां सर्वधनादिकां चाचष्टेऽतः सर्वैरार्यैर्यत्सावित्रीजपद्वारा मतिरेव प्रत्यहं प्रार्थ्यते तदपि वेदोक्तधर्मगौरवकारणमनुसन्धेयम् ॥ ऋग्वेदे ८।१८।७ तु "शन्तातिः" इत्यन्तरम् ॥६॥ (१०२)

भाषार्थः—(उत) और (स्या) वह (मतिः) पूर्वोक्त मेधा (अदितिः) [अखण्डिता स्थिर अदिति नाम देवता] बुद्धि (नः) हम को (ऊत्या) रक्षा के साथ (दिवा) जागरणकाल में (आगमत्) प्राप्त होवे और (सा) वह (शन्ताता) सुखकरी (मयः) सुख को (करत्) करे और (स्त्रिधः) शत्रुओं को (अप) दूर करे ॥

यह स्पष्ट है कि सर्व सुखों का मूल शुद्ध मति ही है। बुद्धि के अभाव में सब दुःख घेरते हैं तथा शत्रु दबाते हैं। इस लिये पूर्वोक्त मन्त्र में कहे प्रकार से अग्नि की ७ प्रकार की लपटों से शुद्ध हुवा पवन हमारी बुद्धियों को पवित्र करे जिस से वह बुद्धि सुख दे और शत्रुओं को दूर करे, रक्षा हो। इस से और गायत्री मन्त्र द्वारा जो सब आर्य लोग बुद्धि ही को वेदानुसार सर्व बलों और सर्व धनों से अधिक मान कर मांगते हैं। यह वैदिक धर्म के उच्चभाव का कारण समझना चाहिये ॥ ऋ० ८।१८।७ शन्तातिः ॥ ६ ॥ (१०२)

अथ सप्तम्याः—विश्वमना वैयश्व ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

ईडिष्वा हि प्रतीव्या ३० यजस्व जातवेदसम्।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २३ २ ३
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ ७ ॥ (१०३)

पदपाठः—ईडिष्व क्रि० । हि अ० । प्रतीव्यम् २ । यजस्व क्रि० । जातवेदसम्, चरिष्णुधूमम्, अगृभीतशोचिषम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्य ! त्वम् (चरिष्णुधूमम्) चरिष्णुः चरणशीलो धूमः यस्य तम् (अगृभीतशोचिषम्) अगृहीतं शोचिरस्य तम (प्रतीव्यम्) प्रतिगमनशीलम् (जातवेदसम्) अग्निम् (हि) निश्चयेन (ईडिष्व) वर्णय (यजस्व) हव्यार्पणेन शिल्पप्रयुक्त्या च संगमय ॥

हृग्रहोर्भश्छन्दसि इति हस्य भत्त्वे गृभीतशब्दः सिध्यति ॥ ऋग्वेदेऽपि (८ । २३ । १) ॥७॥ (१० ३)

भाषार्थः—हे मनुष्य ! तू (चरिष्णुधूमम्) धुवां उठने वाले (अगृभीतशोचिषम्) जिस की लपटें पकड़ी नहीं जा सकीं (प्रतीव्यम्) सामने ही आने वाले (जातवेदसम्) अग्नि को (हि) निश्चय (ईडिष्व) वर्णित कर और (यजस्व) यज्ञ वा शिल्प में प्रयुक्त कर ॥ ऋग्वेद ८ । २३ । १ में भी ॥७॥ (१०३)

अथाऽष्टम्याः—पूर्ववदृषि देवता छन्दांसि ॥

१र २र ३ १२ ३२ १ ३ १२
न तस्य माययां चन रिपुरीशीत मर्त्यः ।
३ १२ ३ २ ३२
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥८॥ (१०४)

पदपाठः—न अ० । तस्य ६ । मायया ३ । चन अ० । रिपुः १ । ईशीत क्रि० । मर्त्यः, यः १ । अग्नये ४ । ददाश क्रि० । हव्यदातये ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(यः, मर्त्यः) (हव्यदातये) देवेभ्यो हव्यदानाय (अग्नये, ददाश) । (तस्य, रिपुः) तच्छत्रुः (मायया, चन) छलबुद्धया, ऽपि (न, ईशीत) न, समर्थो भवेत् ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रायः निर्बुद्धीन् मनुष्यान्छत्रवश्छलेन जयन्ति, परन्तु हव्यदानशीलं पूर्वोक्तप्रकारेणाऽग्निहोमजनितशुद्धपवनजन्यया मेधयाऽऽप्यायितं धर्मात्मानं बुद्धिमन्तं मनुजं न शत्रवईशते । इत्युपदेशः॥ ऋ० तु ८ । २३ । १५ हव्यदातिभिरित्यन्तरम्।८।(१०४)

भाषार्थः—(यः, मर्त्यः) जो, मनुष्य (हव्यदातये) देवों को हव्य देने के लिये (अग्नये, ददाश) अग्नि को, देता है (तस्य, रिपुः) उस का, शत्रु (मायया, चन) छल बुद्धि से, भी (न, ईशीत) नहीं, कुछ कर सक्ता ॥

प्रायः निर्बुद्धि मनुष्यों को शत्रु लोग छल से जीत लेते हैं, परन्तु जो मनुष्य पूर्वोक्त प्रकार से अग्नि में होम करके उस से उत्पन्न हुवे शुद्ध पवन के सेवन से शुद्धबुद्धियुक्त हो जाता है, वह दुष्ट शत्रुओं के वश में नहीं आता। यह उपदेश है। ऋ० ८। २३। १५ में "हव्यदातिभिः" इतना पाठभेद है॥८॥ (१०४)

अथ नवम्याः—भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ क २र
अप त्यं वृजिनꣳ रिपुꣳ स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
१ २ ३ २ ३२
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥१॥ (१०५)

पदपाठः—अप अ०। त्यम्, वृजिनम्, रिपुम्, स्तेनम् २। अग्ने सं०। दुराध्यम्, दविष्ठम् २। अस्य क्रि०। सत्पते सं०। कृधि क्रि०। सुगम् २॥

अन्वितपदार्थः—(सत्पते) सतां पालयितः परमात्मन्! अथवा सतां याज्ञिकानां पालक! (अग्ने) ज्योतिष्मन्! (त्यम्) तम् (वृजिनम्) वर्जनीयम्पापिनम् (रिपुम्) अनिष्टवादिनं शत्रुम् (स्तेनम्) चौरम् (दुराध्यम्) दुःखदम् (दविष्ठम्) दूरतमम् (अप, अस्य) अपक्षिप। अथवा (सुगम्) सुपथगामिनम् (कृधि) कुरु ॥

ईश्वरकृपयाऽऽग्नेयप्रयोगैश्च सर्वे दुष्टाः सुदूराऽपगता अथवा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सुशिक्षयाभयेन च ऋजवो जायन्ते ॥ ऋग्वेदे ६।५१।१३ अपि ॥

॥ ९ ॥ (१०५)

भाषार्थः- (सत्पते) सज्जनों के पालयितः ! (अग्ने) परमात्मन् ! (त्यम्) उस (वृजिनम्) पापी (रिपुम्) शत्रु (स्तेनम्) चौर और (दुराध्यम्) दुःखदायी को (दविष्ठम्) अत्यन्त दूर (अप, अस्य) फेंकिये अथवा (सुगम्) सीधा (कृधि) कर दीजिये ॥

भौतिकपक्षे ।-(सत्पते) याज्ञिकों के रक्षक ! (अग्ने) अग्ने ! (त्यम्, वृजिनं, रिपुं, स्तेनं, दुराध्यम्) उस, पापी, शत्रु, चोर और दुःखदायी को (दविष्ठम्) अत्यन्त दूर (अप, अस्य) फेंक अथवा (सुगं, कृधि) सीधा, कर ॥

आग्नेय प्रयोग से मन्त्रोक्त दुष्ट दूर हो सक्ते हैं । अथवा भय से सुपथगामी हो जाते हैं ॥ऋ० (६ । ५१ । १३) ॥ ९ ॥ (१०५)

अथ दशम्याः-विश्वमना ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

३करर ३ १ २ ३ १ २

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।

३ १र ३ १ २ ३ १ २

नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥ १० ॥ (१०६)

* इत्येकादशी दशतिः ॥ ११ ॥ *

पदपाठः-श्रुष्टी अ० । अग्ने सं० । नवस्य, मे, स्तोमस्य, ६ । वीर, विश्पते सं० । नि अ० । मायिनः २ । तपसा ३ । रक्षसः २ । दह क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(वीर) वीर्यवन् ! (विश्पते) प्रजापते ! (अग्ने) परमात्मन् ! वा भौतिक ! (मे) मम (नवस्य, स्तोमस्य) इदानीमेवानुष्ठीयमानस्य, वेदसूक्तस्य (मायिनः) मायाविनः शत्रून् (रक्षसः) राक्षसान् (तपसा) तेजसा (श्रुष्टी) शीघ्रं (नि, दह) भस्मीकुरु ॥

परमेश्वरस्य कृपयाऽऽग्नेयप्रयोगैश्च वैदिकमार्गस्य शत्रवो राक्षसा भस्मीभवन्ति ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

श्रुष्टीति क्षिप्रनामाशु अष्टीति । निरु० ६ । १२। ऋ० ८। २३। १४ । तु "तपुषा" इति पाठेऽन्तरम् ॥ १० ॥ (१०६)

भाषार्थः—(वीर) हे अनन्त पराक्रम ! (विश्पते) हे प्रजानाथ ! (अग्ने) परमात्मन् (मे) मेरे (नवस्य) अभी अनुष्ठान किये हुवे (स्तोमस्य) सूक्तपाठ के (मायिनः) छलिया शत्रु (रक्षसः) राक्षसों को (तपसा) अपने तेज से (नि) नितराम् (दह) भस्म कीजिये ॥

भौतिकपक्ष में—(वीर) तीव्रता युक्त ! (विश्पते) प्रजा के रक्षक ! (अग्ने) अग्ने ! (मे, नवस्य, स्तोमस्य) मेरे, सम्प्रति के, स्तोत्र के (मायिनः) छलिया शत्रु (रक्षसः) राक्षसों को (तपसा, नि, दह) तेज से, निरा, भस्म कर ॥

अर्थात् वेदपाठ तथा वैदिकधर्मप्रचार के रोकने वाले विघ्न रूप शत्रु अग्नि का भलेप्रकार उपयोग लेने से निरे भस्म अर्थात् निवृत्त हो जाते हैं ॥

निरुक्त ६ । १२ । का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । २३ । १४ में "तपसा" के स्थान में "तपुषा" पाठ है ॥ १० ॥ (१०६)

* यह ग्यारहवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ११ ॥ *

—:o:—

अथ द्वादशी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—प्रयोगो भार्गव ऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्छन्दः ॥

१ र २र ३ १२ ३२ ३१२
प्र मꣳहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
३ १ २ ३ २
उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥ (१०७)

पदपाठः—प्र अ० । मꣳहिष्ठाय ४ । गायत क्रि० । ऋताव्ने, बृहते, शुक्रशोचिषे ४ । उपस्तुतासः सं० । अग्नये ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(उपस्तुतासः) हे उपस्तुताः ! स्तुतस्याग्नेः समीपवर्तिनः ! यूयम् (मꣳहिष्ठाय) अतिशयेन वर्धमानाय वर्धकाय च (ऋताव्ने) यज्ञवते (बृहते, शुक्रशोचिषे) महते, शुभ्रदी-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्तये (अग्नये) प्रसिद्धाय परमात्मने वा (प्र,गायत) तद्गुणान्वर्णयत ॥

महि वृद्धौ भ्वादिरात्मनेपदी, ततस्तृचि तुरुछन्दसि (पा०५।३।५९) इतीष्ठनि सति-तुरिष्ठेमेयस्सु (पा० ६।४।५१) इति तृलोपे संहिष्ठस्तस्मै ॥ ऋत इतिपदना मनिघं०।५।४ ततोव्याप्त्यर्थेन यज्ञोग्राह्यः, ततो मतुपि छान्दसम् ऋतान्ने ॥ ऋ० ८।९२।८ अपि ॥ १ ॥ (१०७)

भाषार्थः-(उपस्तुतासः) हे वर्णनीय अग्नि के समीप वर्त्तियो ! तुम (मंहिष्ठाय) अत्यन्त बढ़े और बढ़ाने वाले (ऋतान्ने) यज्ञ वाले (बृहते, शुक्रशोचिषे) बड़े, शुक्र तेज वाले (अग्नये) अग्नि वा परमेश्वर के लिये (प्र, गायत) [उस के गुण] वर्णित करो ॥

अष्टाध्यायी ५।३।५९ ॥ ६।४।५४ ॥ निघं० ५।४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।९२।८ में भी ॥ १ ॥ (१०७)

अथ द्वितीयायाः-सौभरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्छन्दः ॥

१र २र३ २३१ २ ३ १२ ३ १२
प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजक-
२ ३ २ ३ १र २र
र्मभिः । यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥ २ ॥ (१०८)

पदपाठः-प्र अ० । सः १ । अग्ने सं० । तव ६ । ऊतिभिः ३। सुवीराभिः ३ । तरति क्रि० । वाजकर्मभिः ३ । यस्य ६। त्वम् १ । सख्यम् २। आविथ क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(अग्ने)परमात्मन् वा भौतिक ! (त्वं, यस्य) (सख्यम्) आनुकूल्यम् (आविथ) प्राप्नोषि (सः) (तव) त्वदीयाभिः (वाजकर्मभिः) बलकारिणीभिः (सुवीराभिः) सुवीर्यवतीभिः (ऊतिभिः) रक्षाभिः (प्र, तरति) ॥

वाजइति बलनाम निघं० २।९ ॥ ऋ० ८।१९।३०

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तु " तिरते वाजधर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः" इत्यन्तरम् ॥ २ ॥ (१०८)

भावार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन् ! वा भौतिक ! (त्वं, यस्य, सख्यम्, आविथ) तू, जिस की, अनुकूलता को प्राप्त होता है (सः) वह (तव) तेरी (वाजकर्मभिः) बलकारिणी (सुवीराभिः) सुन्दर वीर्यवती (ऊतिभिः) रक्षाओं से (प्र, तरति) पार हो जाता है ॥

जो पुरुष परमात्मा के मित्र हैं वे उस की ओर से हुई बलवती पराक्रम और पुरुषार्थवती रक्षाओं से सर्व दुःखों से पार होजाते हैं, उन्हें आत्मिक बल की सहायता मिलती है। और जो लोग अग्नि के मित्र हैं अर्थात् अनुकूल सेवी हैं वे भी ॥

निघं० २ । ९ का प्रमाण और ऋग्वेद ८ । १९ । ३० का अन्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥ (१०८)

अथ तृतीयस्याः—पूर्ववद्दृष्यादयः ॥

१ २ ऋ २र ३१ ३ ३ १२३१ २
तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
३ २ ३ १ २
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ ३ ॥ (१०९)

पदपाठः—तम् २ । गूर्धय क्रि० । स्वः अ० । नरम् २ । देवासः १ । देवम्, अरतिम् २ । दधन्विरे क्रि० । देवत्रा ७ । हव्यम् २ । ऊहिषे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—यम् (देवत्रा) देवेषु (हव्यम्) (ऊहिषे) वोढुम् (देवासः) देवाः स्तोतारऋत्विजः (दधन्विरे) प्राप्नुवन्ति (तम्) (स्वः) सुखस्य (नरम्) नेतारम् (देवम्) दिव्यगुणयुक्तम् (अरतिम्) गतिशीलम् [अग्निं त्वमपि] (गूर्धय) स्तुहि—वर्णय ॥

ईश्वरपक्षे—यं (देवत्रा) दिव्यशरीरेषु (हव्यम्) प्राप्तव्यं कर्मफलम् (ऊहिषे) प्रापयितुं (देवासः) विद्वांसः (दध-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

न्विरे) ध्यायन्ति प्राप्नुवन्ति च (तम्, स्वः, नरम्, देवम्) (अरतिम्) व्यापकं [परमात्मानं त्वमपि] (गूर्धय) ॥

गूर्धयेत्यत्र—अन्येषामपि दृश्यते (पा० ६ । ३ । १३७) इति दीर्घः । तमजानता ज्वालाप्रसादेन पदपाठविरुद्धम् अ इति पृथग्व्याख्यातम् ॥ स्वर्गरमिति सायणेनाऽपि पदपाठविरुद्धमेकपदीकृत्य व्याख्यातम् । पदपाठकृन्नयानुसारिणि अस्मन्नये तु णत्वमसमानपदे छान्दसम् ॥ दधन्विरे इति निघं० २ । १४ पठितस्य गत्यर्थस्य धन्वतेरूपम् ॥ देवत्रा इत्यत्र—देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् (पा० ५ । ४ । ५६) इति त्राप्रत्ययमजानन् ज्वालाप्रसादः "देवान् हविर्दानेन त्रायते" इति व्याचख्यौ ॥ ऊहिषे इति च—तुमर्थेसेसेनित्यादिना० (पा० ३ । ४ । ९) सेप्रत्यये रूपम् ॥ ऋग्वेदे तु (८१ । ९ । १) ओहिरे इति पाठार्थयोरन्तरम् ॥३॥(१०९)

भाषार्थः—(देवत्रा) वाय्वादि देवों के समीप (हव्यम्) हव्य पदार्थ (ऊहिषे) पहुंचाने के लिये [जिस] (स्वः, नरम्) सुख के नेता (अरतिम्) गतिशील (देवम्) [अग्नि] देव को (देवासः) ऋत्विज् लोग (दधन्विरे) धारते प्राप्त होते हैं (तम्) उस को [तू भी] (गूर्धय) वर्णित कर ॥

ईश्वरपक्ष में —(देवत्रा) दिव्य शरीरों में (हव्यम्) भोक्तव्य कर्म फल (ऊहिषे) पहुंचाने के लिये, जिस (स्वः, नरम्) सुख के, नेता (अरतिम्) व्यापक (देवम्) परमात्मा देव को (देवासः) विद्वान् योगीजन (दधन्विरे) प्राप्त होते हैं (तम्) उस को तू भी (गूर्धय) वर्णित कर ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३७ ॥ ५ । ४ । ५६ ॥ ३ । ४ । ९ ॥ निघं० २ । १४ ॥ के प्रमाण तथा सायणाचार्य और ज्वालाप्रसाद जी की भूल संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १९ । १ में "ओहिरे" पाठ है ॥ ३ ॥ (१०९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थ्याः—प्रयोगो भार्गवऋषिः सौभरिः कण्वो वा । अग्निर्देवता ।
ककुप्छन्दः ।।

१ २ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
मानो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
३ १ २ ३ २
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥ (११०)

पदपाठः—मा अ० । नः ६ । हृणीथाः क्रि० । अतिथिम् २। वसुः, अग्निः, पुरुप्रशस्तः, एषः, यः, सुहोता, स्वध्वरः १ ।।

अन्वितपदार्थः—(यः, एषः अग्निः) (नः) अस्माकम् (स्वध्वरः) सुष्ठुयज्ञसम्पादकः (पुरुप्रशस्तः) बहुभिः प्रशस्तः (सुहोता) शोभनोहोता (वसुः) वासकः [अस्ति तम्] (अतिथिम्) [कश्चित्] (मा, हृणीथाः) न ह्रियात् ॥

अर्थात् अस्मदीये विधियज्ञे ज्ञानयज्ञे वा न कश्चिद्विघ्नकारको भूयादिति प्रार्थयामः ॥ ऋग्वेदे तु ८।९२।१२ हृणीतामतिथिः, इत्यन्तरम् ॥४॥ (११०)

भाषार्थः— (यः, एषः, अग्निः) जो, उक्त दोनों प्रकार का, अग्नि (नः) हमारा (स्वध्वरः) यज्ञ सुधारने वाला (पुरुप्रशस्तः) बहुतों से प्रशंसित (सुहोता) शोभन होता (वसुः) वसाने वाला है, उस(अतिथिम्) व्याप्तिशील को कोई (मा, हृणीथाः) न, हरे ॥

अर्थात् कर्मयज्ञ वा ज्ञानयज्ञ में कोई विघ्नकारक न हो । यह प्रार्थना है ॥ ऋ० ८।९२।१२ में हृणीतामतिथिः ऐसा पाठ है ॥ ४ ॥ (११०)

अथ पञ्चम्याः—सौभरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्छन्दः ।।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भद्रोनो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
३ २ ३ १र २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ५ ॥ (१११)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-भद्रः १। नः ६। अग्निः, आहुतः, भद्रा, रातिः १। सुभग सं० । भद्रः, अध्वरः, भद्राः १ । उत अ० । प्रशस्तयः १॥

अन्वितपदार्थः-किन्तु हे (सुभग) शोभनैश्वर्य ! कृपालो जगदीश ! भवत्कृपया (नः) अस्माकम् (आहुतः) सर्वथाहुतो ध्यातो वा (अग्निः) भौतिक ईश्वरो वा (भद्रः) कल्याणकृत् भूयादिति शेषः । अस्माकं (रातिः) दानं (भद्रा) भद्रकरम्, (अध्वरः) यज्ञ उभयविधः (भद्रः), (भूयात् (उत) चार्थे (प्रशस्तयः) स्तुतयः (भद्राः) कल्याण्यो भूयासुः ॥ ऋग्वेदेपि ८। १९।१९ ॥५॥ (१११)

भाषार्थः-किन्तु (सुभग) हे शोभनैश्वर्य ! परमेश्वर ! आप की कृपा से (नः) हमारा (आहुतः) सब प्रकार ध्यान किया वा हवन किया (अग्निः) परमात्मा वा भौतिक (भद्रः) कल्याणकृत् हो । हमारा (रातिः) दान (भद्रा) उत्तम हो । हमारा (अध्वरः, भद्रः) यज्ञ, सुफल हो । (उत) और हमारी (प्रशस्तयः) स्तुतियें (भद्राः) उत्तम हों ॥ ऋ० ८।१९।१९ ॥५॥ (१११)

अथ षष्ठ्याः-पूर्ववद्दृष्यादयः ॥

१ २ ३१र २ ३ १र २र ३१ २
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३१ २ ३१ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥ (११२)

पदपाठः-यजिष्ठम्, त्वा २। ववृमहे क्रि० । देवम् २ । देवत्रा १। होतारम्, अमर्त्यम् २ । अस्य, यज्ञस्य ६ । सुक्रतुम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-वयं (देवत्रा) देवेषु मध्ये (यजिष्ठम्) अतिशयेन यष्टारम् (होतारम्, अमर्त्यम्, अस्य, यज्ञस्य, सुक्रतुम्, देवम्) (त्वा) त्वाम् (ववृमहे) वृणीमहे ॥ ऋ० ८।१९।३ ॥६॥(११२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—हम लोग (देवत्रा) देवतों में (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता (होतारम्) होता (अमर्त्यम्) अमर (अस्य, यज्ञस्य, सुक्रतुम्) इस, कर्मयज्ञ और ज्ञानयज्ञ के, सुधारने वाले (त्वा) तुझ (देवम्) अग्नि वा परमात्मा को (ववृमहे) वरते हैं ॥

अग्नि में दी हुई आहुति वायु आदि सब देवों को प्राप्त हो जाती है इसलिये देवतों में से अग्नि का वरण करना मानों सब का वरण होगया। तथा परमात्मा के वरण में भी सब का वरण आजाने से उसी का वरण उत्तम है ॥ ऋ० ८। १९। ३ ॥ ६ ॥ (११२)

अथ सप्तम्याः—ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ १र २र २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
तदग्ने द्युम्नमाभर यत्सासाहासदने कञ्चिद-
१ २ ३ १र २र ३क २र
त्रिणम् । मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥७॥ (११३)

पदपाठः—तत् २ । अग्ने सं० । द्युम्नम् २ । आभर क्रि० । यत् १ । सासाह क्रि० । आसदने ७ । कञ्चित्, अत्रिणम्, मन्युम् २ । जनस्य ६ । दूढ्यम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन् ! वा आहवनीय ! (तत्) तथाविधम् (द्युम्नम्) अन्नमाहारम् (आभर) आहर (यत्) (आसदने) योगाभ्यासादौ (कञ्चित्) अनिर्वचनीयम् (दूढ्यम्) दुर्धियम् (जनस्य, अत्रिणम्) मुमुक्षोः, भक्षकम् शत्रुं (मन्युम्) क्रोधम् (सासाह) अभिभवेत् ॥

मनुष्यैः परमेश्वरस्य कृपयाऽग्निहोमेन च तथाविध आहारः प्राप्तुं शक्योस्ति येन सात्विकेन शुद्धेनाहारेण तामसो मनुष्यस्य नाशकः शत्रुः क्रोधोऽभिभूतः स्यात्। आहारशुद्धिर्हि सात्विकं बलं वर्धयति क्रोधादितामसान्गुणांश्चाऽभिभवति ॥

द्युम्नमिति पदनाम निघं० ४।२ द्युम्नं द्योततेर्यशोवान्नं वा नि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रु० ५।५॥ अद भक्षणे, अदेस्त्रिनिश्च (उणा० ४।६८) अत्री तम् ॥ ऋग्वेदे तु ८।१९।१५ "सासहत्" "दूढ्यः" इत्यन्तरम् ॥७॥ (११३)

भाषार्थः-(अग्ने) हे परमात्मन् ! वा भौतिक ! (तत्) ऐसा (द्युम्नम्) अन्न (आभर) प्राप्त करावे (यत्) जो (आसदने) योगाभ्यासादि में (कञ्चित्) अवर्णनीय (दूढ्यम्) बुद्धि को बिगाड़ने वाले (जनस्य, अत्रिणम्) अभ्यासी जन के, भक्षक शत्रु (मन्युम्) क्रोध को (सासाह) दबावे ॥

अग्नि में होम कर शुद्ध जल पवन के योग से उत्पन्न हुवे वा परमेश्वर की कृपा से पवित्र हुवे आहार करने से मनुष्यों का क्रोध रूप दुर्जय शत्रु दबता है। आहार की शुद्धि से सात्विक बल बढ़ता और तामस बल घटता है ॥

निघं० ४।२॥ निरुक्त ५।५॥ उणादि ४।६८ के प्रमाण तथा ऋ० ८।१९।१५ का अन्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥७॥ (११३)

अथाष्टम्याः-विश्वनना ऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
यद्वाउ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
२ उ ३ २ उ ३ १ २
विश्वेदग्निः प्रतिरक्षाꣳसि सेधति ॥८॥ (११४)

* इति द्वादशी दशतिः ॥१२॥ *

पदपाठः-यत्, वै, उ अ० । विश्पतिः, शितः, सुप्रीतः १ । मनुषः ६ । विशे ७। विश्वा २। इत् अ०। अग्निः १। प्रति अ०। रक्षाꣳसि २। सेधति क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(यद्, वै, उ) यदा हि (विश्पतिः) विशां प्रजानां पालकः (शितः) तीव्रः सूक्ष्मः । (अग्निः) परमात्मा भौतिको वा (मनुषः) मनुष्यस्य (विशे) गृहे (सुप्रीतः) भक्त्या हविर्भिर्वा सुष्ठु प्रीणितोभवति (इत्) तदैव (विश्वा) विश्वानि (रक्षाꣳसि) विघ्नकारकाणि दुष्टरोगदस्युप्रभृतीनि (प्रति, सेधति) निवारयति ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अहोभाष्यकर्तृत्वं ज्वालाप्रसादस्य । योहि कलिकातामुद्रिताऽशुद्धभाष्यस्थपाठभ्रमेण, मूले स्पष्टमपि शुद्धमपि मुद्रितं सेधतीतिपदं सिसेधतीति विन्यस्य व्याचख्यौ ॥ प्रादुर्भवतीति च निर्मूलमेव तेन व्याख्यातम् ॥ ऋग्वेदेतु ८।२३।१३ "विशि" इत्येवान्तरम् ॥८॥ (११४)

समाप्तमाग्नेयं काण्डं पर्व वा ॥१॥

इतिश्रीमत्कण्ववंशावतंस हज़ारीलाल स्वामिसूनुना, हस्तिनापुर पार्श्ववर्त्ति—परीक्षितगढ़—निवासिना, तुलसीरामस्वामिना कृते सामवेदभाष्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(पञ्चमदशतिसमाप्तौ प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमार्धः, दशमदशतिसमाप्तौ प्रथमप्रपाठकस्तदीयद्वितीयार्धश्च समाप्तो विज्ञेयः)

भाषार्थः—(यद्, वै, उ) जब कि (विश्पतिः) प्रजा का पालक (शितः) तीव्र सूक्ष्म (अग्निः) परमेश्वर वा भौतिक (मनुषः) मनुष्य के (विशे) घर में (सुप्रीतः) भक्ति वा हवन से अनुकूलता को प्राप्त होता है (इत्) तभी (विश्वा) सब (रक्षाꣳसि) विघ्नकारक दुष्ट रोग दस्युआदि राक्षसों को (प्रति, सेधति) निवृत्त करता है ॥

परमात्मा की प्रसन्नता और अग्नि में भले प्रकार होमकरणादि से ही मनुष्य के घर की पवित्रता होती है और समस्त दुष्ट रोग शोक दस्यु आदि राक्षसों का निवारण होता है । पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने मूल में शुद्ध "सेधति" पाठ होते हुये भी सायणभाष्य के अशुद्ध मुद्रित "सिसेधति" को देख कर वैसा ही व्याख्यान कर दिया। तथा "प्रकट होता है" यह निर्मूल अर्थ किया है। ऋ० ८ । २३ । १३ में "विशि" इतना अन्तर है ॥८॥ (११४)

यह बारहवीं दशति और आग्नेय पर्व वा काण्ड समाप्त हुआ ॥

कण्व वंशावतंस श्रीमान् स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र, परीक्षितगढ़ (ज़िला मेरठ) निवासी, तुलसीरामस्वामी के निर्मित सामवेदभाष्य में प्रथमाध्याय समाप्त हुआ ॥१॥

—:*:*:*:—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओ३म्

अथ द्वितीयाध्यायः ॥

—○*:*○—

अथैन्द्रं पर्व काण्डं वा । इदं च छन्द आर्चिकेऽध्यायत्रितयात्मकं द्वियीयं पर्व । अस्मिन्द्विपञ्चाशदुत्तरशतत्रयर्गात्मके काण्डे विशेषेणेन्द्रो वर्ण्यते। अतस्तावदिन्द्रपदार्थो विचार्य्यते, येन पर्वमात्रस्य प्रकरणगतोऽर्थः सम्यगऽवबुध्येत । वेदेषु मुख्यो यौगिकोऽर्थःततश्च, इदि परमेश्वर्य्ये इत्यस्माद्धातोः-ऋज्रेन्द्राग्रवज्रेविप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्रगौरवन्रे रामालाः (उणा० २।२८) सूत्रेणेन्द्रशब्दो निपातितः । धात्वर्थबलेन हि परमैश्वर्य्यवत्त्वात्परमेश्वर एव मुख्यइन्द्रपदार्थः । तदर्थस्यैव सर्वार्थेभ्यो बलीयस्त्वादप्यग्निवायिवन्द्रादयः संबुद्धियुक्ताः खल्वागच्छन्ति वे दे । तदनु च निरुक्तसम्मतो देवताविशेषोऽपि खल्विन्द्रपदार्थः । सचाऽस्मन्नये ऽन्तरिक्षस्थोविद्युद्विशेषः । प्रसिद्धमेतद्यदिन्द्रो मेघशत्रुर्वर्षाकारक इति । तद्यदि केवलः सूर्य्य एवेन्द्रपदवाच्यत्वेन स्वीक्रियेत, तर्हि रात्रावपि सूर्य्याऽसमक्षे वर्षाणां दृश्यमानत्वाद्व्यभिचारः । निरुक्तकृता च दशमाध्यायारम्भे "अथातोमध्यस्थाना देवताः" इत्यधिकृत्य "तासां वायुः प्रथमागामी भवति" इत्यारभ्य च, अष्टमखण्डे इन्द्रोव्याख्यातः । अतो विज्ञायते निरुक्तकारनये इन्द्रो मध्यस्थानः । सूर्य्यश्च द्युस्थानः । यथाहि निरुक्तद्वादशाध्यायारम्भे "अथातोद्यु स्थाना देवताः " इत्यधिकृत्य, चतुर्दशपञ्चदश-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

खण्डयोः सूर्यो व्याख्यातः । यद्यपि लोकेषु परमतेजोवत्त्वात्परमैश्वर्यवत्त्वेन सूर्यस्यापीन्द्रत्वमस्त्येव, परंचाऽस्ति खल्वपरोपीन्द्रपदवाच्योदेवविशेषः । नभोमण्डले हि पृथिव्याउपरिष्टात् दिवश्चाऽधस्तात् वायुर्वर्तते, सच सूर्यरश्म्यागतोष्मणासंयुक्तो विद्युद्विशेषमुत्पादयति सएवेन्द्रसंज्ञो भवति । तमभिप्रेत्यैव वायोश्चतुर्थमिन्द्रपदं विन्यस्तं निघं० ५।२। यद्यपि वायुसूर्य्ययोरेवविकारः प्रतिपाद्यमान इन्द्रोस्ति, परं तथापि न स वायुपदवाच्यो न च सूर्यपदवाच्य एव च । यथा दुग्धविकारजातमपि दधि, न दुग्धपदवाच्यं भवति, तद्वदत्रापि बोध्यम् । अथ निरुक्तकारकृताः निरुक्तस्था इन्द्रपदनिरुक्तयः श्रूयन्ताम् । " इन्द्र इरां दृणातीति वेरां ददातीति वेरां दारयत इति वेरां धारयत इति वेन्दवे द्रवतीति वेन्दौ रमतइति वेन्धे भूतानीति वा । तद्यदेनं प्राणैः समैन्धस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्वमिति विज्ञायते । इदं करणादित्याग्रयणः । इदंदर्शनादित्यौपमन्यवः । इन्दतेर्वैश्वर्य्यकर्मण इच्छत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वादरयिता च यज्वनाम्"। इत्यादि (निरु० १०।८) "तत्र इरामन्नं तेन सम्बन्धाद्दा तद्धेतुहेतुकं बलं लक्ष्यते । तेन बललक्षितलक्षणया तदाधारभूतो मेघः" इति निरुक्तटीकाकृद्देवराजयज्वा। ततश्चेरां मेघं दृणाति दधातिदारयतिधारयति वा स इन्द्रः विद्युद्विशेषः । अपरेपीन्द्रशब्दार्थाः सन्ति परमैश्वर्यवत्त्वाद्गौणत्वेन राजादयः । माण्डलिकराजापेक्षया चक्रवर्तिनां परमैश्वर्य्यवत्त्वात् । इन्द्रियाणामीश्वरत्वाज्जीवात्मापीन्द्रपदवाच्यः । यथोक्तं पाणिनिना—इन्द्रियमिन्द्र-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा (५।२।९३) इन्द्रस्य जीवात्मनो लिङ्गं चिह्नमिन्द्रियम् । अथवा इन्द्रेण परमात्मना दृष्टं सृष्टं दत्तं वेतीन्द्रियम् । इन्द्रेण जीवात्मना जुष्टमितीन्द्रियं वा । एवं जीवात्मपरमात्मनोर्वाचकादिन्द्रशब्दादिन्द्रियशब्दस्तत्र निपातितः ॥

एवञ्चाऽत्रैन्द्रकाण्डे यथासम्भवमिन्द्रपदार्था अनुसन्धेयाः । न हि तत्रतत्रेन्द्रपदव्याख्यानं करिष्यते ॥

भाषार्थः—अब इन्द्र का पर्व वा काण्ड है । यह ३ अध्यायों का दूसरा पर्व है । इस ३५२ ऋचाओं वाले पर्व में विशेष करके इन्द्र का वर्णन है । इस लिये इन्द्र शब्द के अर्थ का विचार किया जाता है । जिस से पर्वमात्र का प्रकरणानुकूल अर्थ ठीक समझा जावे । वेदों के शब्दों का मुख्य करके यौगिक अर्थ होता है । इदि परमैश्वर्ये धातु को उणादि २ । २८ सूत्र (संस्कृत में देखिये) लग कर इन्द्र पद बना है । सब से अधिक ऐश्वर्य परमेश्वर का है, इस लिये इन्द्र शब्द का मुख्यार्थ परमेश्वर है । और अग्नि वायु इन्द्रादि पद जो वेद में सम्बोधनयुक्त आते हैं उस का कारण यह भी है कि इन शब्दों का मुख्यार्थ परमात्मा है । तब गौणार्थ देवताविषयक में भी वे अग्न्यादि पद उसी स्वरूप से रहते हैं । तत्पश्चात् इन्द्र पद का अर्थ निरुक्त के मतानुसार देवता विशेष भी है । और वह हमारी समझ में अन्तरिक्षस्थ विद्युद्विशेष है । यह बात प्रसिद्ध है कि इन्द्र नामक मेघशत्रु और वर्षा का कर्त्ता कोई देवता है । सो यदि इन्द्र पद से केवल सूर्य ही अर्थ लिया जावे तो प्रायः सूर्य छिपने पर रात्रि में भी वर्षा हुवा करती हैं इसलिये दोष आता है । और निरुक्तकार ने १० अध्याय के आरम्भ में अधिकार किया है कि "अब मध्यस्थान देवतों का वर्णन है" । और "उन में वायु प्रथम आने वाला है" ऐसा आरम्भ करके उसी अध्याय के ८ वें खण्ड में इन्द्र पद का व्याख्यान किया है । इस से जाना जाता है कि इन्द्र मध्यस्थान अर्थात् अन्तरिक्षस्थान देवता है । और निरुक्तकार ने १२ वें अध्याय के आरम्भ में "अब द्युस्थान देवतों का वर्णन है" ऐसा अधिकार करके उसी अध्याय के १४। १५ खण्डों में

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

द्युस्थान सूर्य्य की व्याख्या की है। इस से सूर्य्य को द्युस्थान देवता माना है। यद्यपि सब लोकों में सूर्य्य लोक का ऐश्वर्य परम होने से परमैश्वर्य्यार्थ को लेकर सूर्य्य भी इन्द्र कहाता है, परन्तु इन्द्र पदवाच्य कोई अन्य भी देवता इस निरुक्त से पाया जाता है जो कि अन्तरिक्षस्थान देवता है। आकाशमण्डल में पृथिवी से ऊपर और द्युलोक (जिस का वर्णन अध्याय १ मन्त्र ५१ पर किया है) के नीचे वायु है। वही वायु सूर्य्य की किरणों की गरमी से संयुक्त होकर एक प्रकार के विद्युत् को उत्पन्न करता है, वही इन्द्र कहाता है। इसी अभिप्राय से निघण्टु ५। २ में वायु से चतुर्थ इन्द्र पद है। यद्यपि वायु और सूर्य्य का ही विकार इन्द्र भी है परन्तु उसे वायु ही वा सूर्य्य ही नहीं कह सक्ते। जिस प्रकार दुग्ध का विकार दधि है, परन्तु दधि को ही दुग्ध वा दुग्ध को ही दधि भी नहीं कह सक्ते। अब निरुक्तकार की लिखी हुई इन्द्र पद की निरुक्तियां सुनिये—"इरा को विदीर्ण करने, वा देने, वा दारण करने वा धारण करने से, अथवा इन्दु के लिये दौड़ने, वा इन्दु में रमने से अथवा भूतों को प्रकाशित करने से इन्द्र कहाता है। जो इसे प्राणों से प्रकाशित करते हैं इस से इन्द्र (जीवात्मा) है, ऐसा जाना जाता है। आग्रयण कहते हैं कि इदं करण से अर्थात् उस की चमक पर अङ्गुलि उठाने से इन्द्र कहाता है। औपमन्यव कहते हैं कि इदं दर्शन अर्थात् 'यह दीखता है' कहने से इन्द्र है। अथवा परमैश्वर्य्यार्थ इदि धातु से है। अथवा इत् शत्रुवों का फाड़ने वा भगाने वाला वा याज्ञिकों का आदर कराने वाला होने से इन्द्र है।" इत्यादि निरुक्त १०। ८। इस पर निरुक्त के टीकाकार देवराज यज्वा कहते हैं कि "इरा अन्न को कहते हैं उस के सम्बन्ध से वा हेतु हेतुकत्व से बल लक्षित होता है। और बल की लक्षणा से उस का आधार भूत मेघ समझना चाहिये" इस से यह तात्पर्य्य निकला कि मेघ का धारण वा दारण करने से ऊपर कहा विद्युद्विशेष इन्द्र कहाता है। तथा इन्द्र शब्द के राजा आदि भी अर्थ हैं। किसी अंश में माण्डलिक राजों की अपेक्षा चक्रवर्ती राजा परमैश्वर्यवान् होते हैं। इन्द्रियमिन्द्र० (अष्टाध्यायी ५। २। ९३) के अनुसार इन्द्रिय शब्द की निरुक्ति ५ हैं। इन्द्र जीवात्मा का चिह्न होने वा उस से सेवित होने से इन्द्रिय शब्द बना है। अथवा इन्द्र परमात्मा से दृष्ट वा सृष्ट वा दत्त होने से भी इन्द्रिय कहाता है। इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा भी इन्द्र पद के अर्थ हैं। निरुक्त के प्रमाणों का मूल पाठ संस्कृतभाष्य में देखिये॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इस प्रकार इन्द्र पद का जो २ अर्थ इस ऐन्द्र पर्व के जिस २ मन्त्र में सम्भव हो वह २ वहां २ ग्रहण करना चाहिये । किन्तु वहां २ फिर से यह व्याख्या न लिखी जायगी ॥

(द्वितीयाऽध्याये प्रथमा दशतिः)

दशत्यां तद्इत्यैन्द्र्यो गायत्र्यो दश कीर्तिताः ॥ १ ॥

तत्र

प्रथमायाः—शंयुर्बार्हस्पत्यऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३१२ २२ ३ २३ १२
तद्दो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
२उ ३ २ ३१ २
शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥ (११५)

पदपाठः—तत् २ । वः४ । गाय क्रि० । सुते ४ । सचा अ० । पुरुहूताय ४ । सत्वने ४ । शम् १ । यत् १ । गवे ४ । न अ० । शाकिने ४ ॥

अन्वितपदार्थः—हे स्तोतः ! त्वं (यत्) (गवे) भूम्यै (न) इव (वः) तुभ्यं (सुते)स्तोत्रे (शम्) आनन्दं स्यात् (तत्) सूक्तं (पुरुहूताय) वेदेषु बहुस्तुताय (सत्वने) शत्रूणां सादयित्रे (शाकिने) शक्तिमते [इन्द्राय परमेश्वराय देवविशेषाय वा राज्ञे वा सूर्याय वा] (सचा) सम्भूय (गाय) वर्णय ॥

वेदेषु इन्द्रो हि बहुशः स्तूयते परमैश्वर्यवत्त्वात् । केवलमृग्वेदएवाऽन्यसर्वदेवापेक्षयाऽग्नेर्वर्णनं बहुतरमस्ति ततोऽप्यधिकं चेन्द्रस्य । यथाहि ऋग्वेदमन्त्रेषु अष्टोत्तरशतद्वयवारं मन्त्रादावेवाऽग्निपदमायातं, ततोऽप्यधिकं च पञ्चपञ्चाशदुत्तरशतद्वयवारं मन्त्रादाविन्द्रपदमायातं दृश्यते । नातोऽधिकं कस्यचिदपि वर्णनं वेदेष्वस्ति । अत एवेन्द्रः "पुरुहूत" इत्युच्यते । मनुष्यै-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रात्मसुखाय परमेश्वरादीन्द्रपदवाच्यानां वर्णनं कर्त्तव्यं यतः सर्वशत्रुनाशः सर्वसुखवृद्धिश्च स्यात्। परमेश्वरे तु नास्ति कापि हिंसाचरणापि। अन्तरिक्षस्थो देवविशेष इन्द्रोऽपि मेघरूपशत्रुगणस्य सादयिताऽस्ति। राज्ञि च सुस्पष्टमेव शत्रुनाशनम् सुखप्रदानं च प्रजाभ्यः। सूर्य्योऽपि तमःशत्रुविनाशकः स्पष्ट एव॥

जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्यामिति (पा० १।२।५८) स्तोतृजात्यभिप्रायेण "वः" इति एकस्मिन् बहुवचनम्॥ सुत् इति स्तोतृनाम निघं० ३। १६॥ सचा सहेत्यर्थः निरु०५। ५। गौरिति पृथिवीनाम निघं० १। १। शकनं शाकः शक्तिस्तद्धते शाकिने॥ ऋग्वेदेऽपि ६। ४५। २२॥१॥ (११५)

भाषार्थः—हे स्तोता! तू (यत्) जो (गवे) पृथिवी के (न) समान (वः) तुझ (सुते) स्तोता के लिये (शम्) सुखदायक हो (तत्) उसको (सत्वने) शत्रुगण को मिटादेने वाले (शाकिने) शक्तिमान् (पुरुहूताय) इन्द्र के लिये (सचा) साथ मिल कर (गाय) गा॥

मनुष्यों को योग्य है कि शत्रुविनाशक इन्द्र अर्थात् परमेश्वर वा राजा, अथवा मेघविदारक इन्द्र अथवा अन्धकारनाशक सूर्य्य के लिये उस के गुणों का बखान मिलजुल कर करें। इन्द्र को "पुरुहूत" इस लिये कहते हैं कि वेदों के मध्य "बहुतायत से वर्णित" है, जैसा कि केवल ऋग्वेद मात्र में ही इन्द्र का सब से अधिक वर्णन है। ऋग्वेद के मन्त्रों के आदि में अन्य सब देवतों की अपेक्षा "अग्नि" पद अधिक अर्थात् २०८ वार आया है परन्तु इन्द्र पद उस से भीअधिक २५५ वार आया है। क्योंकि इन्द्र परमैश्वर्यवान् है उस की ईश्वरता का वर्णन अधिक आवश्यक भी है। और यह पद परमेश्वर की परमेश्वरता का वाचक भी है इस लिये वेदों में परमेश्वर का ज्ञान वर्णन आदि सब से अधिक है। यह भी कारण है कि वेदों के द्वारा ईश्वर का ज्ञान अधिक सम्भव है॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अष्टाध्यायी १ । २ । ५८ ॥ निघं० ३ । १६ ॥ १ । १ । निरुक्त ५ । ५ ॥ आदि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६ । ४५ । २२ ॥ १ ॥ (११५)

अथ द्वितीयायाः—सुभक्षक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्ते नूनꣳशतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
१ २ ३ १ २ २ २
तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥ (११६)

पदपाठः—यः १ । ते ६ । नूनम् अ० । शतक्रतो, इन्द्र सं० । द्युम्नितमः, मदः १ । तेन ३ । नूनम् अ० । मदे ७=३ । मदेः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(शतक्रतो) हेबहुकर्मन् ! (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! (यः) (ते) तव (नूनम्) अवश्यम् (द्युम्नितमः) यशस्वितमः (मदः) हर्षआनन्दः (तेन) (मदे) मदेन आनन्देन (नूनम्) अवश्यम् [अस्मानपि] (मदेः) हर्षयाऽऽनन्दय ॥

इन्द्रे परमात्मनि राजनि सूर्ये वा नूनमतिशयितः आनन्दः प्रकाशो वास्ति, स तेनास्मानपि आप्यायितान्विदध्यादितीच्छामः ॥

शतमिति बहुनाम निघं० ३ । १ क्रतुरितिकर्म नाम च तत्रैव २ । १ द्युम्नमिति यशोनाम निरुक्ते ५ । ५ । तद्वत्तमः ॥ मदी हर्षे अन्तर्भावितण्यर्थः, व्यत्ययोबहुलम् (पा० ३ । १ ८५) इति शप् ॥ यत्सायणाचार्य्येण "छन्दसिबहुलम् इतिशप्" इत्युक्तं तच्चिन्त्यम् ॥ ऋ० ८ । ९२ । १६ ॥ २ ॥ (११६)

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे बहुकर्मन् ! (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (नूनम्) निश्चय (द्युम्नितमः) अत्यन्त यशस्वी (मदः) आनन्द है (तेन) उस (मदे) आनन्द से (नूनम्) निश्चय [हम को भी] (मदेः) आनन्दित कर ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इन्द्र अर्थात् परमात्मा वा राजा वा सूर्य में जो अतिशयित आनन्द वा प्रकाश है उस से वह हम को भी आनन्दित वा प्रकाशित करे यह चाहते हैं॥ निघण्टु ३ । १ ॥ २ । १ ॥ निरुक्त ५ । ५ ॥ अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९२ । १६ ॥ २ ॥ (११६)

अथ तृतीयस्याः—हर्यतःप्रागाद्य ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

२ ३ १ २ ३२ ३२ ३१ २ ३ १ २
गाव उपवदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
३१र २र ३ १ २
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥ (११७)

पदपाठः—गावः सं० । उप—वद् क्रि० । अवटे ७ । मही १ । यज्ञस्य ६ । रप्सुदा १ । उभा, कर्णा, हिरण्यया १ ॥

अन्वितपदार्थः—(गावः) वाचः ! (अवटे) यज्ञकुण्डपार्श्वे (उप-वद) उपवदत वर्णयत [इन्द्रमिति प्रकृतम्] यथा (यज्ञस्य, मही) (रप्सुदा) वेदपाठप्रवाहवती स्यात् (उभा) उभौ (कर्णा) कर्णौ श्रोतृवर्गस्य (हिरण्यया) प्रकाशमयौ पुनीतौ स्याताम् ॥

रप व्यक्तायां वाचि, रपन्ति उपदिशन्तीति रपो मन्त्रास्ते सूदन्ते क्षरन्ति प्रवहन्ति यस्यां सा रप्सुदा, ह्रस्वत्वमार्षम् ॥ गौरिति वाङ्नाम निघं० १ । ११ ॥ ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि छन्दसि (पा० ६ । ४ । १७५) इति ज्योतिर्वाचकाद्धिरण्यशब्दान्मयटि निपाते हिरण्ययः ॥ ऋग्वेदे तु (८ । ७२ । १२) "उपावतावतम्,, इत्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (११७)

भाषार्थः—(गावः) हे वाचः ! (अवटे) यज्ञकुण्ड के समीप (उप-वद) [प्रकरणगत इन्द्र का] वर्णन करो जिस से (यज्ञस्य, मही, रप्सुदा,) यज्ञ की, भूमि, वेदपाठ के प्रवाह वाली हो, तथा (उभा, कर्णा, हिरण्यया) [श्रोतृवर्ग के] दोनों, कान, प्रकाशमय हो जावें ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघण्टु १ । ११ ।। अष्टाध्यायी ६ । ४ । १७१ इत्यादि के प्रमाण तथा ऋग्वेद ८ । ७२ । १२ । का अन्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥३॥ (११७)

अथ चतुर्थ्याः—श्रुतकक्षऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारङ्गव ।
३ १ २ ३ १ २
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ (११८)

पदपाठः—अरम् अ० । अश्वाय ४ । गायत क्रि० ।। श्रुतकक्ष सं० । अरम् अ० । गवे ४ । अरम् अ० । इन्द्रस्य ६ । धाम्ने ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(श्रुतकक्ष) श्रुतोवेदः कक्षे बाहुमूले यस्य तत्संबुद्धौ, हे वेदानुगामिन् ! (इन्द्रस्य) वृष्टिकर्तुः देवस्य विद्युतः (अश्वाय) आशुगामिने किरणाय (अरम्) पर्याप्तम् (गायत) वर्णयत । बहुवचनं शिष्याद्यभिप्रायेण । इन्द्रस्य (गवे) ज्यायै इषवे वा (अरम्) अलं गायत । इन्द्रस्य (धाम्ने) स्वरूपाय (अरम्) अलं गायत ॥

यथा लोके प्रसिद्धिः—पुस्तककक्षः पुस्तकानुगामी उच्यते तथैवात्र श्रुतकक्षपदेन श्रुतानुगामी बोध्यः । तं परमात्मोपदिशति—त्वं तव शिष्यादयश्च संभूय इन्द्रस्य विद्युद्विशेषस्य सूर्यस्य वा राज्ञो वा स्वरूपं, धनुरादिकम्, वेगादिकं च वर्णयत । तद्विज्ञानेन कार्य्याणि साध्नुत च ॥

अशू प्रुषि कटि कणि खटि विशिभ्यः क्कन् (उणा० १ । १५१) अनेनाऽशूङ् व्याप्तौ धातोरश्वपदं सिध्यति । तेन च विद्युतो व्यापनशीला अंशवो ग्राह्याः ॥ अरम् इति रलयोर्व्यत्ययेन पर्य्याप्त्यर्थोऽलं ग्राह्यः ॥ गवे इत्यनेन विद्युतो ज्यायाः धनुरङ्गस्य

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इषोर्वा ग्रहणे निरुक्तप्रमाणं यथा—"ज्यापि गौरुच्यते गत्या चेत्ताद्धितमथ चेन्न गत्या गमयतीषूनिति" २ । ५ ॥ "अथापीषुनामेह भवत्येतस्मादेव" २ । ६ ॥ ऋग्वेदे तु (८ । ९२ । २५) "गायति श्रुतकक्षो अरं गवे" । इतिपाठः ॥४॥ (१०८)

भाषार्थः—(श्रुतकक्ष) हे वेद को बग़ल में रखने वाले ! तुम (इन्द्रस्य) इन्द्र के (अश्वाय) किरण के लिये (अरम्) पर्य्याप्त (गायत) वर्णन करो और उस के (गवे) बाण वा ज्या के लिये (अरम्) पर्य्याप्त, वर्णन करो। तथा उस के (धाम्ने) स्वरूप के लिये (अरम्) पर्य्याप्त वर्णन करो ॥

परमात्मा का उपदेश है कि वेद को कक्ष=बग़ल में रखने वालो ! तुम शिष्य पुत्रादि मिल कर इन्द्र के किरण, बाण वा ज्या और स्वरूप का पूरा वर्णन करो। इन्द्र जो कि एक प्रकार का विद्युत् है, उस के स्वरूप और उस की ज्या जो धनुष का एक अङ्ग है जिस से बाण छुटने पर टङ्कार शब्द होता है अर्थात् बिजुली की कड़क, तथा उस के बाण वा किरण अर्थात् उस की प्रकाशधाराओं का वर्णन (बखान) करो । उस के विज्ञान से फल प्राप्त करो। वेद को बाहुमूल (बग़ल) में दबाने वाले से वेदानुगामी समझना चाहिये। लोक में भी प्रसिद्धि है कि जो पुस्तक का अनुगामी होता है उस को पुस्तक बग़ल में रखने वाला कहते हैं ॥

उणादि १ । १५१ ॥ निरुक्त २ । ५ ॥ २ । ६ इत्यादि के प्रमाण तथा ऋग्वेद ८ । ९२ । २५ में जो अन्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥४॥ (१०८)

अथ पञ्चम्याः—ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ॥

१र २र ३ १ २

स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ५ ॥ (१११)

पदपाठः—तम्, इन्द्रम् २ । वाजयामसि क्रि० । महे ४=२ । वृत्राय ४=२ । हन्तवे क्रि० । सः, वृषा, वृषभः १ । भुवत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(तम्, इन्द्रम्) (वाजयामसि) बलवन्तं

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कुर्वीमहि । कस्मै प्रयोजनाय (महे) महान्तं (वृत्राय) वृत्रं मेघं (हन्तवे) हन्तुम् । यथा हि (वृषा) वर्षाकर्त्ता (सः) इन्द्रः (वृषभः, भुवत्) सेचकः, स्यात् ॥

आहुतिबलेन वृष्टिहेतुरिन्द्रो बलवान् जायते, अतएवास्माभिस्तं तथा सम्पाद्यः, येन स मेघं निपात्य वर्षाः कुर्यात् । राजा वा दुष्टदलनं कुर्यात् ॥

वाज इति बलनाम निघं० २ । ९ वाजोस्यास्ति स वाजवान् वाजवन्तं करोति इति विग्रहे—तत्करोति तदाचष्टे (गणसू० ३ । १ । २५) इति णिच् । ततः—प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च (गणसू० ३ । १ । २५) इतिवचनात्—टेः (पा० ६ । ४ । १५५ इति टिलोपः । विन्मतोर्लुक् (पा० ५ । ३ । ६५) इति मतुपो-लुक् । इदन्तो मसि (पा० ७ । १ । ४६) इतिइगागमे निपाते लेटि रूपम् वाजयामसीति ॥ सुपां सुलुगिति (पा० ७ । १ । ३९) महे वृत्रायेति हितीयायाश्चतुर्थी ॥ तुमर्थेसेसेनित्यादिना (पा० ३ । ४ । ९ (तवेनि—हन्तवे ॥ भुवदिति लेटो रूपम् ॥ ऋग्वेदेपि ८ । ९३ । ७ ॥ ५ ॥ (११९)

भाषार्थः—(महे) बड़े (वृत्राय, हन्तवे) मेघ को, गिराने के लिये, इस (तम्, इन्द्रम्) उस, इन्द्र को (वाजयामसि) बलिष्ठ करें, जिस से (सः, वृषा) वह, बर्षाने वाला (वृषभः, भुवत्) वर्षाने लगे ॥

मनुष्यों को वर्षा के निमित्त इन्द्रयाग करना चाहिये । इन्द्र नामक विद्युद्विशेष को यज्ञभाग द्वारा बलिष्ठ करने से वह मेघ को वर्षाता है । वा राजा को बलिष्ठ करने से वह वृत्र दुष्ट असुरों को हनन करे ॥

अष्टाध्यायी (गणसूत्र ३ । १ । २५) । ६ । ४ । १५५ ॥ ५ । ३ । ६५ ॥ ७ । १ । ३९ ॥ ७ । १ । ४६ ॥ ३ । ४ । ९ ॥ निघण्टु २ । ९ ॥ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९३ । ७ ॥ ५ ॥ (११९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ षष्ठ्याः—देवजामय ऋषिकाः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २३ २३ १२ ३१र २र
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
१र २र ३ १र २र
त्वꣳसन् वृषन् वृषेदसि ॥ ६ ॥ (१२०)

पदपाठः—त्वम् १ । इन्द्र सं० । बलात् ५ । अधि अ० । सहसः ५ । जातः १ । ओजसः ५ । त्वम् १ । सन् १ । वृषन् सं० । वृषा १ । इत् अ० । असि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! राजन् ! वा देव ! (त्वम्) (बलात्) बाह्यविषयात् बलात् (ओजसः) आन्तरिकाद्बलात् तथा (सहसः) पराभिभावुकाद्बलात् (अधि, जातः) आधिक्यमुपगतः (सन्) (वृषन्) कामानां मेघानां वा वर्षयितः ! (त्वम्) (वृषा,इत्, असि) वर्षयिता, एव, भवसि, [नास्ति त्वत्समोऽन्यइति भावः] ॥

बलमोजः सह इति बलस्यैव भेदाः । सामान्यं बलम्, तत्र पराभिभावुकत्वं सहस्त्वम्, आन्तरिकं धैर्यञ्चौजः । तेष्वधिक इन्द्रः परमेश्वरो राजा वा जलस्य कामानां वा सेक्तैवास्ति ॥ ऋग्वेदे तु (१० । १५३ । २) "सन्" इति नास्ति । अवशिष्टं समानम् ॥ ६ ॥ (१२०)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम्) तू (बलात्) बल से (सहसः) दबाव से (ओजसः) धैर्य से (अधि) अधिक (जातः) प्रसिद्ध (सन्) होता हुवा (वृषन्) सेचन करने वाले ! (त्वम्) तू (वृषा, इत्, असि,) सेचन करने वाला, ही, है । अर्थात् तेरे समान अन्य सींचने वाला नहीं ॥

बल ओजः और सहः ये बल ही के तीन भेद हैं । राजा वा इन्द्र देव विशेष वा परमेश्वर का बल सहः और ओजः सब से अधिक है और वह

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जल वा कामनाओं का सींचने वाला सर्वोत्तम है ॥ ऋ० १० । १५३ । २ ॥ में "सनू" इतना नहीं है, शेष समान है ॥ ६ ॥ (१२०)

अथ सप्तम्याः—गोषूक्तयज्ञसक्तिनौ ऋषी । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३१२ २२ ३ २उ३ १ २
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्त्तयत् ॥
३ १ २३२ ३२
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥ (१२१)

पदपाठः—यज्ञः १ । इन्द्रम् २। अवर्धयत् क्रि० । यत् अ० । भूमिम् २ । व्यवर्त्तयत् क्रि० । चक्राणः १। ओपशम् २। दिवि ७ ॥

अन्वितपदार्थः—(यज्ञः) (इन्द्रम्) देवम् (यत्, अवर्धयत्) यदवर्धयति, तत् (भूमिम्) पृथिवीम् (व्यवर्त्तयत्) सुवृत्तां करोति। किं कुर्वन् ?(दिवि) आकाशे (ओपशम्) उपेत्य शयनं (चक्राणः) कुर्वाणः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८। १४ । ५ ॥७॥ (१२१)

भाषार्थः—(दिवि) आकाश में (ओपशम्) फैलाव (चक्राणः) करता हुवा (यज्ञः) यज्ञ (यत्) जो (इन्द्रम्) वृष्टिकर्त्ता को (अवर्धयत्) बढ़ाता है सो (भूमिम्) पृथिवी को (व्यवर्त्तयत्) सुवृत्त करता है ॥ ऋ० ८ । १४ । ५ ॥ ७ ॥ (१२१)

अथाष्टम्याः—ऋष्याद्या उक्ता एव ॥

१ २ ३ २उ ३ १र २र ३ २ ३ ३२
यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
३ २ ३ १२
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥ (१२२)

पदपाठः—यत् अ० । इन्द्र सं० । अहम् १ । यथा अ० । त्वम् १ । ईशीय क्रि० । वस्वः ६ । एकः १ । इत् अ० । स्तोता १ । मे ६ । गोसखा १ । स्यात् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) राजन्! वा देव ! (यथा, त्वम्, एकः) (इत्) एव [ईशिषे] तथा (यत्) यदा (अहम्) (वस्वः) वसुनो गवादिधनस्य (ईशीय) स्वामी स्याम् [त्वदा-

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

नुकूल्येन] तर्हि (मे) मम (स्तोता) यज्ञस्यऋत्विग्विशेषः [पूर्वमन्त्रोक्तयज्ञानुष्ठाता] (गोसखा) गवादिधनानां गोः पृथिव्या वा सखा मित्रभूतः (स्यात्) भवेत् ॥

पूर्वमन्त्रे यज्ञेनेन्द्रस्य वृद्धिस्ततः पृथिव्या आप्यायनं चोक्तं ततोऽस्मिन्मन्त्रे यज्ञेनेन्द्रवृद्ध्या यथा इन्द्रः शक्तिसम्पन्नः पृथिवीमाप्यायितां करोति तथैव तदनुष्ठानेन यज्ञानुष्ठातारोऽपि पृथिव्याः सुहृदोहितकारका भवेयुरित्युपदेशः । तथा राजसेवकैरपि भवितव्यमिति च ॥

वस्व इति व्यत्ययेन लिङ्गस्य, पुंस्त्वम् । जसादिषु छन्दसि वा वचनं प्राङ् णौचङ्युपधाया ह्रस्व इत्येतस्मात् । (७ । ३ । १०९) इति वार्त्तिकेन पाक्षिको गुणाऽभावः॥ ऋग्वेदेपि ८ । १४ । १ ॥ ८ ॥ (१२२)

भाषार्थः—(इन्द्र) राजन् ! वा वृष्टिकर्त्तः ! (यथा) [पूर्वमन्त्रोक्त यज्ञ से] जैसे (त्वम्) तू (एक, इत्) अकेला, ही [बढ़ता है] ऐसे (यत्) जब कि (अहम्) मैं (वस्वः) गवादि धन का (ईशीय) स्वामी होजाऊं [तेरी अनुकूलता से] तब (मे) मेरा (स्तोता) यज्ञानुष्ठान का ऋत्विग् विशेष (गोसखा) गवादि धनों वा पृथिवी का मित्र (स्यात्) हो ॥

इन दोनों मन्त्रों का तात्पर्य यह है कि यज्ञ से इन्द्र नामक विद्युद्विशेष का ऐश्वर्य आकाश में बढ़ता है और उस से पृथिवी का ऐश्वर्य बढ़ता है और यज्ञकर्त्ता लोग उस से गवादि धन और पृथिवी के मित्र बनते हैं तथा राजा की वृद्धि करने वाले भी गवादि तथा पृथिवी के मित्र होते हैं ॥ ७ । ३ । १०९ के वार्त्तिकादि का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १४ । १ ॥ ८ ॥ (१२२)

अथ नवम्याः—मेधातिथिराङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पन्यं पन्यमित्सोतार आधावत मद्याय ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१२ ३ २३ १ २
सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥ (१२३) ॥

पदपाठः—पन्यम्, पन्यम् २ । इत् अ० । सोतारः सं० । आधावत क्रि० । मद्याय ४ । सोमम् २ । शूराय, वीराय ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(सोतारः) सोमसंपादकाः ! ऋत्विजः ! यूयम् (मद्याय) हर्षयोग्याय (शूराय) विक्रमवते (वीराय) शौर्यवते [इन्द्राय क्षत्रियाय वा] (पन्यं, पन्यं, सोमम्) उत्तममुत्तमं सोमौषधिम् । (इत्) एव (आधावत) प्रापयत ॥

सोम ओषधिराजोऽस्ति येन सविशेषं सुतेन हुतेन इन्द्रानुकूल्यकृतं वृष्ट्यादिकं क्षत्रियराजानुकूल्यकृतं रक्षणं च सम्यक् संपादनीयम् । सोमविषये निरुक्तमतम्—"ओषधिः सोमः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति । बहुलमस्य नैघण्टुकं वृत्तमाश्चर्यमिव" ११ । २॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । २ । २५ ॥ ९ ॥ (२२३)

भाषार्थः—(सोतारः) सोम के संपादको ! तुम (मद्याय) हर्षयोग्य (शूराय) विक्रमशील (वीराय) शौर्यवान् [इन्द्र वा राजा] के लिये (पन्यं, पन्यं, सोमम्, इत्) उत्तम, उत्तम, सोम, ही (आधावत) प्राप्त कराओ ॥

सोम एक राजा ओषधि है जिस के भले प्रकार सम्पादन करके होम करने से वृष्टिहेतु और राजादि क्षत्रियवर्ग को प्राप्त कराने से रक्षा भी भलेप्रकार प्राप्त करनी चाहिये । निरुक्त ११।२ में लिखा है कि "सोम एक ओषधि का नाम है जो सुनोति धातु से बना है क्योंकि उसे निचोड़ते हैं । इस का निघण्टुसम्बन्धी व्याख्यान बहुत प्रकार का और आश्चर्य सा है" । इस से जाना जाता है कि सोम इस समय में ही आश्चर्य की बात नहीं प्रतीत होता किन्तु निरुक्तकार के समय में भी ॥ ऋ० ८।२।२५ ॥९॥ (१२३)

अथ दशम्याः—काण्वः प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

३१ २ ३२३ ३ २ ३ १ २ ३१ २
इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २
अनाभयिन् ररिमा ते ॥१०॥ (१२४)

* इति प्रथमा दशतिः ॥१॥ *

पदपाठः—इदम् २। वसो सं० १। सुतम्, अन्धः २। पिब क्रि०। सुपूर्णम्, उदरम् २। अनाभयिन् सं०। ररिम क्रि०। ते४ ॥

अन्वितपदार्थः—(वसो) वासयितः ! इन्द्र ! (अनाभयिन्) न आबिभेति तत्संबुद्धौ, निर्भय ! (इदम्) (अन्धः) अन्नम् (सुतम्) निष्पादितं सोमाख्यम् (ते) तुभ्यं (ररिम) दद्मः [तत्त्वं] (सुपूर्णम्, उदरम्) उदरं सुष्ठु पूर्णं यथा स्यात्तथा (पिब) ॥

पूर्वमन्त्रे इन्द्राय वृष्टिकर्त्रे राज्ञे वा शूराय वीराय सोमं प्रापयतेत्युक्तं तद्दानवचनं ह्यत्रोपदिश्यते—यदा सोमः सुनिष्पन्नस्स्यात् तदा इदं मन्त्रोक्तलक्षणं वचनं ब्रुवन्त इन्द्रायतं प्रयच्छतेति भावः। राजपक्षे तु स्पष्टमेव। देवविशेषपक्षे अन्तरिक्षमुदरमनुसन्धेयम्। अन्यत्समानम् ॥ ज्वालाप्रसादेनेह पदपाठविरुद्धम् " पिब, आ, ररिम, आ, इति विश्लिष्य सहितायां दीर्घत्वमजानता व्याख्यातम्। "अनुदरम्" इति मूलतोपि विरुद्धं च॥

अन्धइत्यन्ननाम निघं० २।७॥ ररिमेति " छन्दसि लुङ्लङ् लिटः (पा० ३।४।६) इति लिट्। अन्येषामपि दृश्यते (पा० ६।३।१३७) इति दीर्घः ॥ ऋ० ८।२।१॥१०॥ (१२४)

भाषार्थः—(वसो) बसाने वाले ! (अनाभयिन्) भयरहित ! इन्द्र ! (इदम्) यह (सुतम्) सम्पादित (अन्धः) सोमाख्य अन्न (ते) तेरे लिये (ररिम) देते हैं [उसे तुम](सुपूर्णम्, उदरम्) भर पेट (पिब) छको ॥

पूर्व मन्त्र में कह आये हैं कि शूर वीर इन्द्र के लिये सोम पहुंचाओ। इस मन्त्र में उस के देने का वचन बताया गया है कि ऐसा कहकर देना

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

चाहिये । इन्द्र के राजार्थ में तो स्पष्ट ही है, परन्तु देवविशेष अर्थ में उदरस्थानी अन्तरिक्ष समझना चाहिये । पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने दीर्घविधायक सूत्रों को न जानकर " पिब, आ, ररिम, आ " यह पदपाठ के विरुद्ध पदच्छेद कर के व्याख्या की है । तथा " अनुदरम् " यह मूल के भी विरुद्ध व्याख्यात किया है ॥

निघं० २।७ अष्टाध्यायी ३।४।६॥ ६।३।१३१ ॥ ऋ० ८।२।१ ॥१०॥ (१२४)

* यह द्वितीयाऽध्याय में प्रथम दशति पूर्ण हुई ॥१॥ *

—:*०*:—

दशत्यामुद्ध इत्यैन्द्र्यो गायत्र्यो दश पूर्ववत् ॥१॥

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र प्रथमायाः—सूतकक्षः श्रुतकक्षो वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२उ ३२ ३१ २ ३१र २र
उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्य्यापसम् ।
१ २
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥ (१२५)

पदपाठः—उत्, घ, इत्, अभि अ० । श्रुतामघम्, वृषभम्, नर्यापसम्, अस्तारम् २ । एषि क्रि० । सूर्य सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(सूर्य्य) सूर्य्यलोक ! वा कर्मणि प्रवर्त्तक ! परमात्मन्! त्वं (श्रुतामघम्) विख्यातधनं प्रथितैश्वर्यं (नर्यापसम्) नरेभ्यो हितानि नर्याणि अपांसि कर्माणि यस्य तथाभूतम् (वृषभं) वर्षकं सेचकं वा (अस्तारम्) सेवानां शत्रूणां वा क्षेतारम् [इन्द्रमिति प्रकृतमेव] (घ) प्रसिद्धौ (इत्) एव (अभि, उत्, एषि) अभ्युदितं करोषि ॥

सूर्य्यो यथा इन्द्राख्यं देवं प्राप्नोति तथा ईश्वरपक्षे परमात्मैव राजानमिन्द्रं तेजोयुक्तं करोति ॥ ऋग्वेदेऽपि ८।९३।१॥१ ॥(१२५)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(सूर्य) लोक विशेष ! वा परमेश्वर ! (इत्) ही (श्रुतामघम्) विख्यात ऐश्वर्यधन वाले (वृषभम्) वर्षा के कर्त्ता वा कामपूरक राजा (अस्तारम्) मेघ वा शत्रुओं के फेंकने वाले [इन्द्र वा राजा को] (अभि, उत्, एषि) अभ्युदययुक्त करता है ॥

इन्द्र अर्थात् देवविशेष को सूर्य्य, और राजा को परमात्मा ही प्रकाशित और अभ्युदित करता है ॥ ऋग्वेद में भी ८ । ९३ । १ ॥ १ ॥ (१२५)

अथ द्वितीयायाः—ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।

३ १ २ ३ १ २

सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ २ ॥ (१२६)

पदपाठः—यत्, अद्य, कच्च अ० । वृत्रहन् सं० । उदगाः क्रि० । अभि अ० । सूर्य सं० । सर्वम्, तत् १ । ते ६ । वशे ७ ॥

अन्वितपदार्थः—(वृत्रहन्) वृत्रस्याऽपामावरकस्य मेघस्य तामसस्य पापस्य वा हन्तः ! (सूर्य) लोकविशेष ! वा परमेश्वर ! (अद्य) सृष्टिस्थितिकाले ब्राह्मदिने (यत् कच्च) यत्किञ्चित् [पदार्थजातम् अस्ति] (तत्) । [त्वमेव] (अभि, उदगाः) उदेषि अभ्युदितं करोषि च अतः(सर्वं, ते, वशे) धारणाकर्षणाभ्यां वशवर्त्ति ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ९३ । ४ ॥ २ ॥ (१२६)

भाषार्थः—(वृत्रहन्) वृत्र अर्थात् जलों को रोकने वाले मेघ वा पाप के हन्ता ! (सूर्य) लोक विशेष ! वा परमेश्वर ! (अद्य) आज [ब्राह्मदिन में] (यत् कच्च) जो कुछ है (तत्) उस को (अभि, उदगाः) अभ्युदययुक्त करता है [इस से] (सर्वं, ते, वशे) सब, तेरे, वशवर्त्ती है ॥

परमात्मा और सूर्य के प्रकाश से समस्त ब्रह्माण्डवर्ती पदार्थ प्रकाशित हैं, इस लिये वे सब उसके धारण और आकर्षण से तदधीन हैं ॥ ऋग्वेद में भी ८ । ९३ । ४ ॥ २ ॥ (१२६)

अथ तृतीयायाः—भरद्वाजऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१र २र ३ २३ १ २ ३२३ १२
य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ॥
३ २३ २३ १ २
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥ (१२७)

पदपाठः—यः १। आनयत् क्रि० परावतः २। सुनीती ३। तुर्वशम्, यदुम् २। इन्द्रः, सः १। नः ६। युवा, सखा १ ॥

अन्वितपदार्थः—(यः, इन्द्रः) (परावतः) दूरवर्तिनोऽपि (यदुम्) यतमानान्नरान् (सुनीती) शोभननीत्या (तुर्वशम्) अन्तिकम् (आनयत्) आनयति (सः) (युवा) बली (नः) अस्माकम् (सखा) सहृद् ॥

मनुष्यैः स इन्द्रो देवविशेषो वा राजा वा सूर्यो वा परमेश्वरो वा सखाऽनुकूलः कार्य्यः । यो हि दूरवर्तिनोऽपि अज्ञानमग्नानपि वा मनुष्यान् सुनीत्या वशवर्तिनः करोति स स्वानुकूलो विधेयः ॥

सुनीती इत्यत्र—सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णेत्यादिना (पा० ७। १। ३९) पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ तुर्वश इत्यन्तिकनाम निघं० २। १६ ॥ यदुमिति वचनव्यत्ययेन बहुवचने एकवचनम्, मनुष्यनाम च निघं० २। ३ ॥ परावत इति दूरनाम निघं० ३। २६ ॥ अत्र सायणाचार्येण यदुतुर्वशपदयोर्निघण्टुप्रतिपादितमर्थमुपेक्ष्याऽपि यदुतुर्वशौ राजविशेषौ व्याख्यातौ तन्न केवलं वेदस्याऽपौरुषेयत्वव्याघातकं किञ्च इन्द्रेण सहाऽनयोरितिहासग्रन्थेष्वपि नास्तीदृक् वर्णनमिति मुधैवेतिहासविन्यासः ॥ ज्वालाप्रसादेन च यदुपदेन नररूपावतारग्रहणं कृतं तदपि प्रमाणशून्यमेव ॥ ऋ-

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

ग्वेदेऽपि ६ । ४५ । १ ॥ ३ ॥ (१२७)

भाषार्थः—(यः, इन्द्रः) जो, इन्द्र (परावतः) दूरवर्त्तियों को भी (यदुम्) मनुष्यों को (सुनीती) सुन्दर नीति से (तुर्वशम्) समीप (आनयत्) ले आता है (सः, युवा) वह, बली (नः, सखा) हमारा, मित्र हो ॥

मनुष्यों को योग्य है कि जो बली इन्द्र अर्थात् देवविशेष वा राजा वा सूर्य्य वा परमेश्वर, उन मनुष्यादि को भी जो दूरवर्त्ती हैं वा अज्ञान में डूबे होने से दूर से हैं, वश में ले आता है वा कृपा करके उपासक बना लेता है, उस को अपना मित्र अर्थात् अनुकूल बनावें ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ ॥ निघण्टु २ । १६ ॥ ३ । २६ ॥ २ । ३ ॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ सायणाचार्य ने निघण्टु की उपेक्षा करके न जाने क्यों तुर्वश और यदु नामक राजा लिख दिये, जिस से कि वेद की अपौरुषेयता के व्याघात के अतिरिक्त यह भी दोष आता है कि इतिहास ग्रन्थों में भी कहीं इन्द्र के साथ यदु और तुर्वश राजा की इस प्रकार की कथा नहीं सुनी जाती ॥ पं० ज्वालाप्रसाद जी ने प्रमाणरहित यदु का अर्थ नरूपाऽवतार किया है ॥ ऋग्वेद में भी (६ । ४५ । १) ॥ ३ ॥ (१२७)

अथ चतुर्थ्यार्चः—अतकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३१र २र

मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वायमत् ।

३ १ २ ३ २

त्वा युजा वनेम तत् ॥४॥ (१२८)

पदपाठः—मा अ० । नः २। इन्द्रसं० । अभि, आ, अ० । दिशः ५। सूरः१। अक्तुषु ७। आयमत् क्रि० । त्वा, युजा ३। वनेम क्रि० । तत् २॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमात्मन् ! वा राजन् ! वा सूर्य ! (अक्तुषु) अज्ञानकालेषु रात्रिषु वा (आ—दिशः) समन्तात्कस्याश्चिद्दिशः सकाशात् (सूरः) सर्वत्र सरणशीलः कामक्रोधादिशत्रुः चौरोदिर्वा तमो वा (नः) अस्मान् (मा,

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अभि, आयमत्) नाभ्यागच्छेत् [यद्यागच्छेत् तर्हि] (त्वा) त्वया (युजा) युक्तेन (तत्) दुष्टम् (वनेम) हन्याम ॥

परमात्मकृपया कामादयः शत्रुगणाः प्रथमं तु नैवास्माना-क्रान्तान्कुर्युरथचेत्कुर्य्युस्तदा तत्साहाय्येन ध्वस्तान्कुर्याम ॥ एवं राज्ञाऽपि दस्युप्रभृतयः सदा प्रजाभ्यो निवारणीयाः । यदि कर्हिचित् अभ्यागच्छेयुस्तर्हि स्वसाहाय्येन विनाशनीयाः ॥ सूर्य्यप्रकाशे च प्रथमं तु तमो नैव प्रभवति, यदि कर्हिचित् प्रभवेत् तदा सू-र्य्ययोगेनार्थात् तदीयप्राणवायुप्रज्वालितदीपादिना सहायेन नि-वारणीयम् इति भावः ॥

अक्तुरिति रात्रिनाम निघं० १ । ७ ॥ अथ क्रथ क्लथ क्लथ हिंसार्थाः वन च इति भ्वादिः परस्मैभाषो वनतिः ॥ ऋग्वेदे ८ । ९२ । ३१ ऽपि ॥ ४ ॥ (१२८)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमात्मन् ! वा राजन् ! वा सूर्य ! (अक्तुषु) अ-ज्ञानकालों में वा रात्रियों में (सूरः) काम क्रोधादि शत्रु वा चौरादि वा अ-न्धकार (नः) हम लोगों को (मा, अभि, आयमत्) न, सामने, आवे [यदि आवे तौ] (त्वा, युजा) तेरे, योग से (तत्) उस दुष्ट को (वनेम) हनन करें।

परमेश्वर की कृपा से काम क्रोधादि शत्रुगण प्रथम तौ हम पर आक्रमण ही नहीं कर सक्ते । यदि करें भी तौ परमात्मा की सहायता से ध्वस्त कर सकते हैं ॥ इसी प्रकार प्रथम तौ राजा के प्रताप से दस्युप्रभृति दुष्ट प्रब-लता ही नहीं कर सकते, यदि करें भी तौ राजा की सहायता से प्रजा उन को नष्ट करै ॥ तथा सूर्य्य के प्रकाश में प्रथम तौ अन्धकार का प्रभाव ही नहीं हो सक्ता, यदि कदाचित् रात्रि आदि अन्धकारकाल में कुछ प्रभाव हो भी तौ सूर्य्य की सहायता अर्थात् उस से उत्पन्न हुए प्राण वायुजन्य दीपकादि के प्रकाश से उस अन्धकार का नाश हो सक्ता है ॥

निघण्टु १ । ७ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । ऋ० ८।९२।३१ में भी ॥ ४ ॥ (१२८)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

अथ पञ्चम्याः—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एन्द्र सानसिꣳ रयिꣳ सजित्वानꣳसदासहम् ।
१ २ ३ १ २
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ ५ ॥ (१२९)

पदपाठः— आ अ० । इन्द्र सं० । सानसिम्, रयिम्, सजित्वानम्, सदासहम्, वर्षिष्ठम् २ । ऊतये ४ । भर क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! वा राजन् ! कृपया (वर्षिष्ठम्) अत्यन्तं वृद्धियुक्तम् (सानसिम्) संभजनीयं (रयिम्) धनम् तथा (सदासहम्) सदाप्रहारसहनशीलम् (सजित्वानम्) सहैव जयशीलम् योद्धृसमूहम् (ऊतये) रक्षायै (आ, भर) प्राप्तं कुरु ॥

परमेश्वरसाहाय्यमपेक्षमाणेन राज्ञा प्रजारक्षायै प्रभूतं धनं सेना च जित्वरी रक्षणीया ॥

सानसिवर्णसिपर्णसीत्यादिना० (उणा० ४।१०७) वन संभक्तौ इत्यस्मादसि प्रत्ययान्तो निपातः सानसिस्तम् ॥ सजित्वानमित्यत्र, अन्येभ्योऽपिदृश्यन्ते (पा० ३।२।७५) इति जि धातोः क्वनिप्प्रत्ययः ॥ ऋग्वेदे १।८।१ऽपि ॥ ५ ॥ (१२९)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! वा राजन् ! (वर्षिष्ठम्) बहुत और (सानसिम्) संभजनीय (रयिम्) धन को तथा (सदासहम्) सदा प्रहार सह सकने वाले (सजित्वानम्) साथ में विजयी [सेनासमूह] को (ऊतये) रक्षा के लिये (आ, भर) भरती करो ॥

परमेश्वर की कृपा और सहायता की अपेक्षा करते हुए राजा को प्रजा की रक्षा के लिये पुष्कल धन तथा सेना भरती करनी चाहिये ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उणादि ४।१०७ अष्टाध्यायी ३।२।७५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १।८।१ में भी ॥ ५ ॥ (१२९)

अथ षष्ठयाः—ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ २ ३१ २ ३२३ ३१२

इन्द्रं वयं महाधनइन्द्रमर्भे हवामहे।

१ २ ३१२३ १ २

युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥६॥ (१३०)

पदपाठः—इन्द्रम् २। वयम् १। महाधने ७। इन्द्रम् २। अर्भे ७। हवामहे क्रि०। युजम् २। वृत्रेषु ७। वज्रिणम् २॥

अन्वितपदार्थः—(वयम्) प्रजाः (महाधने) महान्ति धनानि यस्मिन्तस्मिन्संग्रामे (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं राजानं वा (हवामहे) आह्वयामहे तथा (अर्भे) अल्पेऽपि युद्धे (वृत्रेषु, वज्रिणम्) शत्रुषु, दण्डवन्तम् (युजम्) सावधानम् (इन्द्रं) परमेश्वरम् राजानं वा हवामहे ॥

यत्राल्पंमहान्वा सङ्ग्रामः स्यात्तत्र परमेश्वरस्य दुष्टशत्रुनिवारणक्षमस्य राज्ञो वा शरणं ग्राह्यं प्रजया ॥

"महाधनशब्दो यद्यपि सङ्ग्रामवाची तथापि महद्धनमत्र विवक्षितमिति" सायणोक्तौ "विनिगमकं चिन्त्यमिति" सत्यव्रतसामश्रमिटिप्पणम् । सङ्ग्रामनाम च स्पष्टं निघं० २।१७॥ अर्भक इति चाऽल्पनाम निघं० ३।२॥ हवामहे इत्यत्र—ह्वःसंप्रसारणम् (पा०६।१।३२) इत्यनुवर्त्य, बहुलं छन्दसि (पा० ६।१।३४) इति संप्रसारणे लेटोरूपम् ॥ ईश्वरपक्षे—वज्रोवै भान्तः । शतपथे ८।२।४।१० प्रकाशोग्राह्यः ॥ ऋग्वेदे १।७।५ऽपि ॥६॥ (१३०)

भाषार्थः—(वयम्) हम प्रजायें (महाधने) बड़ी लड़ाई में (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को (हवामहे) पुकारें तथा (अर्भे) छोटी [लड़ाई] में भी (वृत्रेषु, वज्रिणम्) रोकने वालों में, दण्डधारी (युजम्) सावधान

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

(इन्द्रम्) ईश्वर वा राजा को [पुकारें] ॥

जहां अल्प वा महान् सङ्ग्राम हो वहां प्रजा को योग्य है कि दुष्ट शत्रुओं के निवारक परमात्मा वा राजा की पुकार करें ॥

"महाधन शब्द यद्यपि सङ्ग्रामवाची है तथापि यहां भारी धन से अभिप्राय है" इस प्रकार के सायणाचार्य के लेख पर सामश्रमी सत्यव्रत जी टिप्पणी में बूझते हैं कि "इस में ज्ञापक क्या है?" निघं० २।१७॥३।२॥ अष्टाध्यायी ६।१।३२॥६।१।३४॥ शतपथ ८।२।४।१०॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १।७।५ में भी ॥ ६॥ (१३०)

अथ षष्ठ्याः—त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।

१२ ३१२ ३१२र ३१२

अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।

१ २ ३ १ २

तत्रादिदिष्ट पौंस्यम् ॥ ७॥ (१३१)

पदपाठः—अपिबत् क्रि० । कद्रुवः ५ । सुतम् २ । इन्द्रः १ । सहस्रबाह्वे ४ । तत्र अ० । आदिदिष्ट क्रि० । पौंस्यम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्रः) देवविशेषो राजा वा (सहस्रबाह्वे) सहस्रं बहु बाधतेऽसौ [उणा० १।२७] मेघः शत्रुर्वा तस्मै तन्निग्रहाय इत्यर्थः । (कद्रुवः) कद्रोः पीतवर्णात् पर्णात् (सुतम्) अभिषुतं सोमम् (अपिबत्) पिबति (तत्र) तस्मिन्नवसरे (पौंस्यम्) पौरुषम् (आदिदिष्ट) दर्शयति सातिशयम् आदीपयति वा । छन्दसि लुङ् लङ् लिटः (पा० ३।४।६) इति सामान्यकाले लङ् उभयत्र ॥

यदा पीतवर्णेभ्यः पक्वेभ्यः सोमौषधिविशेषेभ्यः सुतं=निष्पन्नं रसं पिबति तदा देवो राजा वा पुरुषार्थं दर्शयति अर्थात् मेघवर्षणेन शत्रुविदारणेन च सफलयति तेषां सोमार्पकाणां

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

होत्रादीनां वा श्रद्धयानुऽष्ठितं श्रमम् ॥

अत्र "कद्रुर्नाम कश्यपस्य भार्या तस्याः" इति विवरणकृत् "कद्रुनामकस्य ऋषेः" इति च सायणाचार्यः । एवं विवदमानौ भवतः । माभून्निघण्टौ कद्रुपदम् केवलममरकोशएव "कडारः कपिशः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ" धीवर्गे १६ श्लोके वेदद्रक्ष्यतां नैवं व्यवदिष्येतां तौ । प्रथमं तु इतिहासार्थप्रतिपादकाः सर्वेऽप्यर्था अनर्था वेदस्याऽपौरुषेयत्वबाधकाः, अथ च सायणविवरणकारयोर्मतभेदः । तदुपरि ज्वालाप्रसादभार्गवाणां वैचित्र्यं द्रष्टव्यम्, यथाहुस्ते–"(इन्द्रः) परशुरामरूपः परमेश्वरः (सहस्रबाह्वे) सहस्रबाह्वाख्यनृपतये (कद्रुवः) कामवृक्षस्य देहस्य (सुतम्) अभिषुतं क्रोधम् (अपिबत्) मनसि धारयामास" इत्यादि । सायणस्य विरोध एकोदोषस्तन्नये । "सहस्रमिति बहुनाम (निघं० ३।१) बाहुशब्देनाऽपि अवयवेन समुदायस्य सम्बन्धात्कर्त्ता उच्यते। सहस्रं बहवः कर्त्तारो यत्र तत्सहस्रबाहु सत्रं, तस्मिन्पीतवान् इत्यर्थः" इति विवरणकारेण कृतस्याऽप्यर्थस्य विरोधो द्वितीयोदोषः । वेदस्याऽपौरुषेयताव्याघातस्तृतीयः । इन्द्रपदेन परशुरामग्रहणे मानाभावश्चतुर्थः । कद्रुपदेन देहग्रहणे मानाभावः पञ्चमः । सुतम् इति प्रकरणगतसोमविशेषणविरोधपूर्वकं क्रोधाऽर्थग्रहणे प्रमाणराहित्यं षष्ठः । प्रकरणागतराजाद्यर्थविरोधः सप्तमोदोषः ॥ ऋग्वेदे तु ८।४५।२६ अत्रादेदिष्टेत्यन्तरम् ॥ ७ ॥ (१३१)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्रः) वृष्टिकर्त्ता देव वा राजा (सहस्त्रबाह्वे) बहुत बाधने वाले मेघ वा शत्रु के लिये (कद्रुवः) पीतवर्ण सोमौषधि से (सुतम्) निचोड़े हुवे सोमरस को (अपिबत्) पीता है (तत्र) उस में (पौंस्यम्) पौरुष को (आददिष्ट) प्रकाशित करता है ॥

जब कि सोम के पत्ते पीले होजावें अर्थात् पक जावें तब सोमरस निचोड़ना चाहिये। फिर उस के होम द्वारा अन्तरिक्षस्थान इन्द्र देवविशेष को पहुंचाने से मेघ जो असंख्य बाहु फैलाये गगनमण्डल को घेर रहा है, उसे इन्द्र गिराकर वर्षाता है, अथवा सोमादि वृक्ष वनस्पति जब तक कच्चे रहते हैं तब तक तो इन्द्र उन का रस बढ़ाता है और जब पक कर पीले (कद्रु) होजाते हैं तब उन का रस खींच लेता है वा पी लेता है। उसी से वर्षा होती है। राजा भी पक्व सोमरस पान करके उस के बल से पुरुषार्थ करे और 'सहस्त्र' असंख्यात शत्रु बाधाओं का दलन करे ॥

सायणाचार्य 'कद्रु' पद से ऋषिविशेष का और विवरणकार कश्यप की स्त्री का ग्रहण करते हैं। हम कहते हैं कि निघण्टु में कद्रु पद का कुछ भी अर्थ न लिखा हो, यदि ये दोनों भाष्यकार अमरकोष धीवर्ग श्लोक १६ को भी देख लिये होते तो "पीत वर्ण=कद्रु" कहाता है, यह जान लेते। और परस्पर विवाद न होता। प्रथम तो इतिहास के प्रतिपादक समस्त अर्थाभास वेदों का अपौरुषेयत्व नष्ट करते हैं, फिर ज्वालाप्रसाद भार्गव जी की विचित्रता देखने योग्य है। वह कहते हैं कि "(इन्द्रः) परशुराम रूप परमेश्वर ने (सहस्त्रबाह्वे) सहस्त्रबाहु नामक राजा के लिये (कद्रुवः) कामवृक्ष देह के (सुतम्) अभिषुत क्रोध को (अपिबत्) मन में धारण किया" इत्यादि। अब विचारना चाहिये कि इन के मत में सायणाचार्य का विरोध १। और विवरणकार जो कहते हैं कि "सहस्त्र बहुत का नाम है (निघं० ३। १) बाहुशब्द से भी अवयव से समुदाय का सम्बन्ध होने से कर्त्ता का ग्रहण है। अर्थात् बहुत हैं कर्त्ता जिस में उस सत्र=यज्ञविशेष का नाम सहस्त्रबाहु है" इत्यादि। इस से विरोध २। वेद की अपौरुषेयता का भङ्ग ३। इन्द्र पद से परशुराम अर्थ में प्रमाण न होना ४। कद्रु पद से देह अर्थ लेने में प्रमाण रहितता ५। सुतम् का प्रकरणानुकूल निचोड़े सोम अर्थ का त्याग और निष्प्रमाण क्रोध अर्थ लेना ६। तथा प्रकरणागत राजाद्यर्थ का त्याग ७ वां दोष है॥ ऋग्वेद ८। ४५। २६ में "अत्रादेदिष्ट" इतना पाठ में अन्तर है ॥ ७ ॥ (१३१)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथाष्टम्याः—वसिष्ठऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३१ ३ २३ १र २र
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्रनोनुमो वृषन् ।
३ २ ऽ १ २
विद्धी त्वा३स्य नो वसो ॥८॥ (१३२)॥

पदपाठः—वयम् १। इन्द्र सं० । त्वायवः १। अभि—प्र—नो नुमः क्रि० । वृषन् सं० । विद्धि क्रि० । त्वा २ । अस्य ६=२ । नः ६ । वसो सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! राजन् ! वा इन्द्र ! (वयं) (त्वायवः) त्वां यष्टुमिच्छन्तः (त्वा) त्वाम् (अभि—प्र—नोनुमः) समन्ततः—प्रकृष्टं—वर्णयामः (वृषन्) कामानां जलानां वा वर्षितः ! (वसो) वासहेतो ! (नः) अस्माकम् (अस्य) अमुम् [यज्ञं] (विद्धि) जानीहि प्राप्नुहि वा ॥

त्वां यष्टुमिच्छन्त इति विग्रहे, नच्छन्दस्यऽपुत्रस्य (७।४।३५) इतीत्वाभावात्, क्याच्छन्दसि (३।२।१७०) इत्युप्रत्यये त्वायवः ॥ अत्र सायणेन (नु) इत्यऽमूलं व्याख्यातम् ॥ ऋग्वेदे तु १०।१३३।६ "वयमिन्द्रत्वायव" एतावन्मात्रमेव समानम् ॥८॥ (१३२)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्यवाले इन्द्र ! वा राजन् ! (वयम्) हम (त्वायवः) तेरा यजन चाहते हुवे (त्वा) तेरा (अभि—प्र—नोनुमः) सब ओर से—प्रशस्त—वर्णन करते हैं । (वृषन्) जलों वा कामनाओं के वर्षक ! (वसो) बसाने वाले ! (अस्य) इस को (विद्धि) प्राप्त हो वा जान ॥

अष्टाध्यायी ७ । ४ । ३५ ॥ ३ । २ । १७० ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ सायणाचार्य ने "नु" पद व्याख्यात किया है परन्तु मूल में नहीं पाया जाता ॥ ऋग्वेद १० । १३३ । ६ में "वयमिन्द्र त्वायवः" केवल इतनी ही समानता है ॥ ८ ॥ (१३२)

अथ नवम्याः—त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

२ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आघा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।

३ २ ३ २३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥ (१३३) ॥

पदपाठः—आ, घ, अ० । ये १ । अग्निम् २ । इन्धते, स्तृणन्ति क्रि० । बर्हिः २ । आनुषक् अ० । येषाम् ६ । इन्द्रः, युवा, सखा १ ॥

अन्वितपदार्थः—(ये) याज्ञिकाः (आ, घ) आभिमुख्येन खलु (अग्निम्) (इन्धते) दीपयन्ति (येषां) यज्ञशीलानां (इन्द्रः) वृष्टिकर्ता (युवा) बलिष्ठः (सखा) अनुकूलः, ते (आनुषक्) आनुपूर्व्येण (बर्हिः) कुशासनादिकं (स्तृणन्ति) विस्तारयन्ति यजन्ति चेन्द्रमिति शेषः ॥

ज्वालाप्रसादेन (आ, घ) इति अव्ययद्वयमेकीकृत्य (आघाः) निष्पापाः, इतिहास्यास्पदं व्याख्यातम् "आनुषगिति नामानुपूर्वस्यानुषक्तं भवति । 'स्तृणन्ति बर्हिरानुषगित्यपि' निगमो भवति" निरु० ६ । १४ ॥ ऋग्वेदे ८ । ४५ । १ ऽपि ॥ ९ ॥ (१३३)

भाषार्थः—(ये) जो लोग (आ, घ) अभिमुखता से (अग्निम्, इन्धते) अग्नि को, प्रदीप्त करते हैं (येषाम्) जिन का (इन्द्रः) वृष्टिकर्त्ता (युवा) बलवान् (सखा) अनुकूल है वे (आनुषक्) क्रमपूर्वक (बर्हिः) कुशादि के आसन (स्तृणन्ति) बिछाते हैं ॥

जो लोग याज्ञिक हैं वे बीच में अग्नि सिलगा कर चारों ओर आसन बिछाय इन्द्रयाग करते हैं जिस से बलवान् वृष्टिकर्त्ता उन के अनुकूल होकर वर्षा करता है । पं० ज्वालाप्रसाद जी ने (आ, घ) इन दो अव्ययों को एक करके (आघाः) निष्पापाः, यह हंसी योग्य व्याख्या की है ॥

निरुक्त ६ । १४ में लिखा है कि "आनुषक्, यह क्रमपूर्वक का नाम है जैसा कि 'स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्' यह वेदवाक्य है" देखिये ठीक ऐसे ही मन्त्र के ऋग्वेदस्थ (८ । ४५ । १) पाठ का निरुक्तकार ने उदाहरण दिया है ॥९॥ (१३३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ दशम्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

३ २उ ३ २३ २ ३ २३ १ २ ११र २र
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
१२ ३ १र २र
वसु स्पार्हं तदाभर ॥ १० ॥ (१३४)

* इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ *

पदपाठः—भिन्धि क्रि० । विश्वाः २ । अप अ० । द्विषः २ । परि अ० । बाधः २ । जहि क्रि० । मृधः २ । वसु, स्पार्हम्, तत् २। आभर क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—प्रकृत ! इन्द्र ! परमात्मन् ! वा राजन् ! वा देवविशेष ! (विश्वाः) समस्ताः (द्विषः) द्विषन्तीः (बाधः) बाधमानाः (अप, भिन्धि) विदारय (मृधः) संग्रामान् (परि, जहि) हिंस्याः तथा (तत्) द्विषां तत् (स्पार्हम्) स्पृहणीयं (वसु) धनम् (आभर) आहर ॥

सर्वासां शत्रुसेनानां भेदनं, संग्रामेषु विजयस्तेषां शत्रूणां स्पृहणीयस्य धनस्य स्वीकरणं च राज्ञोधर्मः । विविधान्धकारकारिणोमेघान्विदार्य तदीयं जलरूपं वसु प्रजाये आहरणमिन्द्रस्य कार्य्यम् । सतामुपासकानां न्यायपरायणानां राज्ञां विजयपूर्वकं सर्वदस्युप्रभृतिदुष्टदलनं तदीयरत्नादिधनलाभश्च परमेश्वरात्प्रार्थनीयः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ४५ । ४० ॥ १० ॥ (१३४)

भाषार्थः—[प्रकरणागत इन्द्र ! परमात्मन् ! राजन् ! वा देवविशेष !] (विश्वाः) सब (द्विषः) द्वेषकर्त्री और (बाधः) बाधती हुइयों को (अप, भिन्धि) छिन्न भिन्न करो (मृधः) संग्रामों को (परि, जहि) सब ओर से, मारिये (तत्) उन का वह (स्पार्हम्) कामनायोग्य (वसु) धन (आभर) प्राप्त कराइये ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

राजा का धर्म है कि सज्जनों की रक्षा के लिये दुष्टों की सेनाओं का छेदन भेदन, शत्रुओं का नाश और धन को लेकर न्याय कार्य में व्यय करे॥ इन्द्र=वृष्टिकर्त्ता का काम है कि घुमड़ घुमड़ कर सामने आते मेघों की सेनाओं का छेदन भेदन करके प्रजा के चाहे हुए उन के जल रूप धन को प्रजा को पहुंचाना ॥ सर्व दुष्टों अधार्मिकों के दमन और श्रेष्ठों की रक्षार्थ परमेश्वर से भी प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ऋ० ८।४५।४० में भी ॥१०॥ (१३४)

यह द्वितीयाऽध्याय में द्वितीय दशति पूर्ण हुई ॥२॥

इहेव इत्यपेन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ दश ॥१॥

—:*:—

अथ तृतीया दशतिस्तत्र प्रथमायाः कण्वो घौर ऋषिः । इन्द्रस्य सखायो मरुतो देवताः । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।
१ २ २ ३ १ २
नियामं चित्रमृञ्जते ॥ १० ॥ (१३५)

पदपाठः—इहेव अ० । शृण्वः क्रि० । एषाम् ६। कशाः १। हस्तेषु ७। यत् अ०। वदान् क्रि० । नि० अ० । यामम्, चित्रम् २। ऋञ्जते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(यत्) यदा (वदान्) वार्त्ताः कुर्वः तदा (इहेव) यथाऽतिसमीपे तथा (शृण्वः)। [अतोविज्ञायते] (एषाम्) इन्द्रसहचारिवायूनाम् (हस्तेषु) (कशाः) वाचः सन्तीति । सोऽयं वायुसमूहः (चित्रम्) आश्चर्यकरम् (यामम्) यान्त्यनेनेतियामो मार्गस्तम्(नि—ऋञ्जते) नितरां प्रसाध्नोति ॥

यदा शिष्यशिक्षकादी कौचित् परस्परं वदतस्तदा भिन्न-देशवर्त्तिन एकस्योच्चारितमपर इहेव शृणोति, तदिदं वायोरेव सामर्थ्यम् । स वायुरेव मुखान्निःसृतं शब्दं कर्णगतं सम्पाद-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यति। अतोहि शब्दो वायुहस्तगत एव तदधीनएवेत्यर्थः। तस्मादेते वायवो विचित्रं मार्गमाप्नुवन्ति ॥ मोक्षमूलरेण यदत्र ऋचि बलिदानादि निरूपितं निर्मूलमेव तत्प्रतिभाति, मूलमन्त्रे तदर्थप्रतिपादकपदाऽभावात् ॥

ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा निरुक्ते ६।२१॥ ऋग्वेदे तु १।१७। ३ यामन्निति पाठः ॥ १ ॥ (१३५)

भाषार्थः—(यत्) जब कि हम दोनों (वदान्) बात करते हैं तब (इहेव) समीप ही के समान (शृणवः) सुनते हैं [इस से जाना जाता है कि] (एषाम्) इन के (हस्तेषु) हाथों में (कशाः) वाणी हैं (चित्रम्) आश्चर्यकारक (यामम्) मार्ग को (नि—ऋञ्जते) नितरां सुधारता है ॥

जब हम दो आपस में वार्त्तालाप करते हैं। तो अपने से भिन्नदेशवर्त्ती दूसरे का शब्द हम को ऐसे सुनाई देता है जैसे कोई कान से कान लगाकर कहे। इस से जाना जाता है कि इस बोलने और सुनने के आश्चर्यजनक मार्ग की डोर वायु के हाथों में है अर्थात् वायु के अधीन बोलना सुनना है। इन इन्द्र के सहचारी वायुओं में मैक्समूलर साहिब ने जो इस ऋचा में बलिदानादि की चर्चा की है, वह निर्मूल प्रतीत होती है क्योंकि मूलमन्त्र में इस अर्थ का वाचक कोई पद नहीं दीखता ॥

निरुक्त ६।२१ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १।३७।३ में 'यामन्' ऐसा पाठ है ॥१॥ (१३५)

अथ द्वितीयायाः—त्रिशोक ऋषिः। छन्दोदेवते उक्ते ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इम उ त्वा विचक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥२॥ (१३६)

पदपाठः—इमे १। उ अ०। त्वा २। विचक्षते क्रि०॥ सखायः १। इन्द्र सं०। सोमिनः, पुष्टावन्तः १। यथा अ०। पशुम् २॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) देवविशेष! (इमे) पूर्वमन्त्रोक्ताः

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

वायवः (सोमिनः) सोमोपायनसहिताः (सखायः) तव सुहृदः (उ) अपि (त्वा) त्वाम् (विचक्षते) पश्यन्ति उपस्थितःभवन्ति इति भावः। दृष्टान्तः—(यथा) (पुष्टावन्तः) पोषणवन्तः (पशुम्) गवादिकम् उपतिष्ठन्ते तद्वत् ॥

वायवो हीन्द्रस्य सखायः सन्ति, ते हि मनुष्यैर्हूयमानं सोमरसं तथा सोमलताभ्योऽपि शोषयित्वा तद्वन्त इन्द्रमुपतिष्ठन्ते । यथा तृणादिपोषणसामग्रीयुताः गवादिपशुपरिचारका गवादीनुपतिष्ठन्ते तद्वत्। पशवो हि नावमन्तव्याः, तेहि जगदुपकारकाः, जगदुपकारकत्वे चैवेन्द्रस्य तैः साम्यम् ॥ विचष्टे इति पश्यतिकर्मा निघं० ३।११ तद्वहुवचने विचक्षते ॥ पोषणं पुष्टं तद्वन्तः पुष्टावन्तः मतौ दीर्घः॥ ऋग्वेदेऽपि ८।४५।१६॥२॥ (१३६)

भाषार्थः—(इन्द्र) देवविशेष ! (इमे) ये पूर्व मन्त्र में कहे वायु (सोमिनः) सोम लिये हुवे (सखायः) तेरे मित्र (उ) भी (त्वा) तुझे (विचक्षते) देखते हैं अर्थात् तेरा उपस्थान करते हैं । दृष्टान्त—(यथा) जैसे (पुष्टावन्तः) पोषण वाले (पशुम्) पशु को ॥

तात्पर्य यह है कि वायु इन्द्र के मित्र हैं, वे सोम की लताओं में से शोष कर तथा हवन किए हुए सोमों को लेकर इन्द्र को ऐसे उपस्थित होते हैं, जैसे पशु के पोषण करने वाले घास आदि उत्तम चारा लेकर गवादि पशुओं को उपस्थित होते हैं । पशु की उपमा अपमान के योग्य नहीं है, पशु भी इन्द्र के समान जगत् के उपकारक हैं ॥

निघण्टु ३।११ आदि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।४५।१६ में भी ॥२॥ (१३६)

अथ तृतीयस्याः—वत्सः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समऽस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १२३ १ २

समुद्रायेव सिन्धवः ॥३॥ (१३७)

पदपाठः—सम् अ० । अस्य ६ । मन्यवे ४ । विशः, विश्वाः १ । नमन्त क्रि० । कृष्टयः १ । समुद्रायेव अ० । सिन्धवः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(विश्वाः) सर्वाः (कृष्टयः) मनुष्यरूपाः (विशः) प्रजाः (अस्य) इन्द्रस्य राज्ञो वा परमेश्वरस्य वा (मन्यवे) तेजसे (सम् नमन्त) प्रह्वीभवन्ति । दृष्टान्तः—(सिन्धवः) नद्यः (समुद्रायेव) ॥

ऐन्द्रं राजकीयं वा परमेश्वरं वा तेजः सर्वतेजोभिभावुकं सन्नामकं सर्वेषां भवतीति भावः ॥ मन्युशब्देनाऽत्र तेजोविवक्षितं बोध्यम् । तेजसएव परा काष्ठा क्रोध इत्यप्युच्यते यतः । ऋग्वेदेऽपि ८।६।४ ॥३॥ (१३७)

भाषार्थः—(विश्वाः) सब (कृष्टयः) मनुष्यरूप (विशः) प्रजायें (अस्य) इस [इन्द्र वा राजा वा परमेश्वर] के (मन्यवे) तेज के लिये (सम्, नमन्त) भले प्रकार झुकते हैं (समुद्रायेव, सिन्धवः) जैसे समुद्र के लिये, नदियें ॥

अर्थात् बिजुली वा राजा वा परमेश्वर का तेज सब तेजों का दबाने वाला सर्वोपरि है, इस लिये सब उस के सामने नम्र हो जाते हैं। मन्यु शब्द का अर्थ क्रोध है और क्रोध भी तेज की परा काष्ठा है इस लिये यहां प्रकरण में मन्यु पद से तेज का ग्रहण करना चाहिये ॥ ऋ० ८।६।४ में भी ॥३॥ (१३७)

अथ चतुर्ऋचस्य कुसीदी काण्व ऋषिः । इन्द्राद्या देवताः । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ २र ३१र २र ३ २

देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम् ।

१ २ ३ १ २ ३१२

वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ ४ ॥ (१३८)

पदपाठः—देवानाम् ६ । इत् अ० । अवः १ । महत् १ । तद् २ । आ वृणीमहे क्रि० । वयम् १ । वृष्णाम् ६ । अस्मभ्यम् ४ । ऊतये ४ ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(अस्मभ्यम्) मनुष्येभ्यः (वृष्णाम्) जलवर्षकाणाम् (देवानाम्) पूर्वमन्त्रेषूक्तानामिन्द्रादीनाम् । (इत्) यत् (महत्) मंहनीयम् (अवः) रक्षणमस्ति (तत्) कर्मभूतं (ऊतये) रक्षायै (वयम्, आ-वृणीमहे) ॥

इन्द्रवायुप्रभृतिदेवगणा वर्षादिकामपूरकाः सन्ति, निजरक्षायै ततेषां रक्षणमस्माभिः सदा स्वीकार्यम् ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ८३ । १ ॥ ४ ॥ (१३८)

भाषार्थः—(अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वृष्णाम्) जलादि वर्षाने वाले (देवानाम्) इन्द्र वायु आदि देवतों की (इत्) जो (महत्) बड़ी (अवः) रक्षा है (तत्) उस को (वयम्) हम लोग (ऊतये) बचने के लिये (आ—वृणीमहे) स्वीकार करते हैं ॥ स्पष्ट है ॥ ऋग्वेद ८ । ८३ । १ में भी ॥४॥ (१३८)

अथ पञ्चम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । (इन्द्राऽपरनामा) ब्रह्मणस्पतिर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमानाꣳस्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥ (१३९)

पदपाठः—सोमानाम् ६ । स्वरणम् २ । कृणुहि क्रि० । ब्रह्मणस्पते सं० । कक्षीवन्तम् २ । यः, औशिजः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(ब्रह्मणस्पते) वेदस्य पते ! परमेश्वर ! (यः) औशिजः) मेधाविनः पुत्रोस्ति तं (सोमानाम्) सोमभेदानाम् (स्वरणम्) स्वरति अर्चति सुसम्पादयति तम् [माम्] (कक्षीवन्तम) हस्तलाघवजन्यशिल्पवन्तमिव (कृणुहि) कुरु ॥

हेपरमेश्वर ! कृपया पूर्वमन्त्रोक्तेन्द्रानुकूल्याय वृष्ट्यादिहेतवे

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

च ये मेधाविनां पुत्राः सन्ति तान् शिल्पिनइव सोमानां सुसम्पादकान्विधेहि ॥

अत्र कक्षीवन्तमित्यस्याग्रे मामिति इवेतिचाऽध्याहार्यं निरुक्तमतानुसारतः । यथाह यास्कऋग्वेदीयग्व्याख्याने—"सोमानं सोतारं प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते कक्षीवन्तमिव य औशिजः। कक्षीवान्कक्ष्यावानौशिज उशिजः पुत्रः उशिग्वष्टेः कान्तिकर्मणोऽपि त्वयं मनुष्यकक्षएवाभिप्रेतः स्यात्। तं सोमानं सोतारं मा प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते।" निरु० ६ । १० ॥ ऋग्वेदे हि १ । १८ । १ सोमानम् इति पदान्तरेण पाठान्तरं तदनुसार्य्येव च यास्कव्याख्यानम् ॥ स्वरतिरर्चतिकर्मा निघं० ३ । १४ तत्कर्त्तारं स्वरणम् ॥ ब्रह्मणस्पते इत्यत्र, षष्ठ्याःपतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु (पा० ८ । ३ । ५३) इति सः ॥ कक्ष्यासु कराङ्गुलिषु भवाः शिल्पविद्यास्ताः प्रशस्ता विद्यन्ते यस्य तम्। कक्ष्या इत्यङ्गुलिनाम निघं० २ । ५ अत्र कक्षाशब्दात्—भवेच्छन्दसि (पा० ४ । ४ । ११०) इति यत् । ततः प्रशंसायां, तदस्याऽस्त्यऽस्मिन्निति मतुप् (पा० ५ । २ । ९४) इतिमतुप् । न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् (पा० ६ । १ । ३७) इति सूत्रोपरि "कक्ष्यायाः संज्ञायां मतौ सम्प्रसारणं कर्त्तव्यम्" इति सम्प्रसारणम् । आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्द्रुमण्वच्चर्मण्वती (पा० ८ । २ । १२) इति निपातनान्मस्य वः। कक्षीवत्पदसिद्धौ संज्ञा गम्यते सा च शिल्पिनां सामान्यसंज्ञा, न कस्यचित्पुरुषविशेषस्य । सायणा-

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

चार्य्येणाऽत्रैतिह्यं व्याख्यातं तैत्तिरीयपाठश्चोद्धृतः, परं तत्र कक्षीवदादिकानामृषिविशेषाणां नामानि नात्र मन्त्रे विशेषस्यर्षेर्नामज्ञापकानि कथमपि संभवन्ति। न च निरुक्तव्याख्यानेनेदमावश्यकत्वेन सूच्यते, सामान्यवाचकानामपि कक्षीवदौशिजादीनां पदानां तथा प्रयोक्तुमर्हत्वात् ॥ उशिज इति मेधाविनाम निघं० ३। १५ तदपत्यमौशिजः ॥ ज्वालाप्रसादेन तु "कक्षं पापम्" "सोमानम्, अम्" इत्यादि च निरुक्तपदपाठव्याकरणेभ्यो विरुद्धं व्याख्यातम् ॥ ५ ॥ (१३१)

भाषार्थः—(ब्रह्मणस्पते) परमेश्वर! (यः) जो मैं (औशिजः) मेधावी विद्वान् का पुत्र हूं [उस मुझको] (सोमानाम्) सब प्रकार की सोमौषधियों का (स्वरणम्) सुन्दर बनाने वाला (कक्षीवन्तम्) शिल्पी के समान (कृणुहि) कीजिये ॥

अर्थात् हे परमात्मन्! पूर्वमन्त्रोक्त इन्द्र के अनुकूल होने और वृष्टि आदि सुख के लिये कृपया जो हम लोगों में विद्वान् लोगों के शिष्य पुत्र हैं उन को शिल्पियों के समान सोमों का सुन्दर रीति से बनाने वाला कीजिये॥

कक्षीवन्तं के आगे 'इव' और 'माम्' ये पद निरुक्तकार के मत में अध्याहृत समझने चाहियें जैसा कि यास्क मुनि कहते हैं कि "सोम का सम्पादक प्रकाशन वाला करो हे परमेश्वर! जैसा कि शिल्पी को। जो मेधावी की सन्तान हूं। कक्षीवान् कक्ष्यावान् को और औशिज उशिज के पुत्र को समझो, उशिज् कान्तिकर्मा से बना है और कक्ष से मनुष्यकक्ष अभिप्राय है। उस मुझ को हे ब्रह्मणस्पते! सोम का सम्पादक प्रकाश वाला कीजिये॥" ऋग्वेद १। १८। १। में 'सोमानम्' पाठ है इसलिये निरुक्त में उसी की व्याख्या है, सोमानाम् की नहीं। कक्षीवन्तम् पद की सिद्धि में व्याकरणानुसार सामान्य संज्ञा समझनी चाहिये, न कि किसी विशेष की। सायणाचार्य्य ने इस में कक्षीवान् और औशिज का इतिहासपरक अर्थ किया है और तैत्तिरीय का पाठ उद्धृत किया है परन्तु उस पाठ में ऋषियों के कक्षीवान् आदि नामों के आने

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

से यह किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता कि इस वेदमन्त्र में भी कक्षीवान् वही ऋषि समझा जावे। और निरुक्तकार की व्याख्या से भी ऐसा ही अर्थ निकालना आवश्यक नहीं है। क्योंकि सामान्यवाचक कक्षीवान् से शिल्पि मात्र और उशिज से सब किसी मेधावी सामान्य का अर्थ लिया जा सक्ता है॥ ज्वालाप्रसादजी भार्गव ने तो व्याकरण और निरुक्त दोनों से विरुद्ध अर्थ किया है। यथा–"कक्षं पापम्" इत्यादि और "सोमानम् अभ्" इत्यादि॥

निघण्टु ३।१४॥ २।५॥ ३।१५ निरुक्त ६।१०॥ अष्टाध्यायी ४।४।११० ॥ ५।२।९४॥ ६।१।३७॥ ८।२।१२॥ ८।३।५३॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥५॥ (१३९)

अथ षष्ठ्याः–अतकक्षऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

१२ ३ १२ ३ १ २
बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्य्यासुतिः।
३ १२ ३२ ३ १२
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥६॥ (१४०)

पदपाठः–बोधन्मनाः १। इत् अ०। अस्तु क्रि०। नः ६। वृत्रहा, भूर्य्यासुतिः १। शृणोतु क्रि०। शक्रः १। आशिषम् २॥

अन्वितपदार्थः–(वृत्रहा) आवरकाणामविद्यादितमसां हन्ता (भूर्य्यासुतिः) भूरि बहु यथास्यात्तथा आसुतिरानन्दो यस्य सः। (शक्रः) शक्तिमान् परमेश्वरः (नः) (आशिषम्) पूर्वमन्त्रोक्तां प्रार्थनां (शृणोतु) (इत्) चार्थे (बोधन्मनाः) बोधयति अस्मदीयं मनस्तादृशः (अस्तु) भवतु॥

एतदुक्तं भवति–परमेश्वरः पूर्वमन्त्रप्रार्थितामाशिषं शृणोतु श्रुत्वा चास्मदीयं मनो बोधयतु येन वयं समीचीनाः सोमसम्पादका भवेमेति॥ ऋग्वेदे तु (८।९३।१८) बोधिन्मना इति पाठः॥६॥ (१४०)

भाषार्थः–(वृत्रहा) अविद्याविनाशक (भूर्य्यासुतिः) अखण्डाऽऽनन्द

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

स्वरूप (शक्रः) शक्तिमान् परमात्मा (नः) हमारी (आशिषम्) प्रार्थना को (शृणोतु) सुने (इत्) और (बोधन्मनाः) मन को बोध कराने वाला (अस्तु) हो ॥

अर्थात् परमात्मा हमारी पूर्व मन्त्रोक्त प्रार्थना को सुन कर हमारे मन में ज्ञान दे जिस से हम सोमों के अच्छे बनाने वाले हो जावें ॥ ऋ०८।९३।१८ में "बोधिन्मनाः" पाठ है ॥६॥ (१४०)

अथ सप्तम्याः—श्यावाश्व ऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ॥

३ १ २ ३ १२ ३ १२
अद्य नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
१२३ १ २
परा दुष्ष्वप्न्यꣳसुव ॥७॥ (१४१)

पदपाठः—अद्य अ० । नः ४ । देव, सवितः सं० । प्रजावत् २। सावीः क्रि० । सौभगम् २। परा अ० । दुष्ष्वप्न्यम् २। सुव क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(सवितः) सर्वोत्पादक ! (देव) परमेश्वर ! (अद्य) इदानीम् (नः) अस्मभ्यम् (प्रजावत्) सुसन्ततियुक्तं (सौभगम्) शोभनैश्वर्यस्य भावम् (सावीः) अभ्यनुजानीहि (दुष्ष्वप्न्यम्) दुष्टः स्वप्नोनिद्रा यत्र तद्दारिद्र्यं (परा, सुव) दूरीकुरु ॥ ऋग्वेदे तु (५।८२।४) "अद्या" इति दीर्घपाठः ॥७॥ (१४१)

भाषार्थः—(सवितः) सर्वोत्पादक ! (देव) परमेश्वर ! (अद्य) अब कृपया (नः) हमारे लिये (प्रजावत्) सुसन्तानयुक्त (सौभगम्) शोभन धन (सावीः) प्रेरिये दीजिये और (दुःष्वप्न्यम्) दारिद्र्य को (परा,सुव) दूर कीजिये ॥

ऋ० ५।८२।४ में "अद्या" ऐसा दीर्घपाठ है ॥७॥ (१४१)

अथाऽष्टम्याः—प्रगाथः काण्वऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२ १ २३१र २र ३ २३ १ २
क्वा३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।
३१र २र
ब्रह्मा कस्तꣳसपर्यति ॥८॥ [१४२]

पदपाठः—क्व अ० । स्यः, वृषभः, युवा, तुविग्रीवः, अनानतः, ब्रह्मा, कः १ । तम् २। सपर्यति क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः (स्यः) सः (वृषभः) वृष्टिदेवः (युवा) बलिष्ठः (तुविग्रीवः) बहुशीर्षा (अनानतः) अनम्रः (क) कुत्र देशेऽस्ति (कः) (ब्रह्मा) चतुर्वेदवेत्ता (तम्) (सपर्यति) आहुत्या तर्पयति ॥

इन्द्रः कुत्र तिष्ठति ? कीदृग्विद्वान् तं वर्धयति चेति द्वौ प्रश्नौ । उत्तरमन्त्रे द्वयोरप्युत्तरं वक्ष्यति ॥

अहो हास्यं ज्वालाप्रसादेन क्वा३इति प्लुतमविज्ञाय क, अस्य, इति विश्लिष्य पदपाठविरुद्धं, सायणविरुद्धं, सत्यव्रतसामश्रमिकृतटिप्पणीविरुद्धं, मूलविरुद्धं च व्याख्यातम् । यो हि पाठमपि न निश्चेतुं क्षमः स कथंकारं नाम भाष्यं विधित्सति ॥ स्यश्छन्दसि बहुलम् (पा० ६ । १ । १३३) इति सुलोपः ॥ अनुदात्तंप्रश्नान्ताभिपूजितयोः (पा० ८ । २ । १००) इति प्रश्ने क्वा३इतिप्लुतः । तुविइति बहुनाम निघं० ३ । १ ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ५३ । ७ क १ इति पाठः ॥८॥ (१४२)

भाषार्थः—(स्यः) वह (वृषभः) वर्षाने वाला (युवा) बलवान् (तुविग्रीवः) बहुत ग्रीवाओं वाला (अनानतः) नम्रता रहित [तेजस्वी इन्द्र] (क) कहां है ? और (कः) कौनसा (ब्रह्मा) वेदज्ञ (तम्) उस को (सपर्यति) आहुति देता है ?

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र में ये दो प्रश्न हैं कि इन्द्र का स्थान कहां है ? और किस प्रकार का विद्वान् यज्ञ करे । अगले मन्त्र में दोनों प्रश्नों का उत्तर कहेंगे ।।

ज्वालाप्रसाद भार्गव जी ने (क्राऽस्य) इस श्रुत को विना समझे (क्र,अस्य) ऐसा विश्लेष कर डाला और सायण, सत्यव्रत, पदपाठ और मूल के विरुद्ध व्याख्या कर डाली । भला जिन्हें शुद्ध पाठ का भी निश्चय नहीं वे भाष्य करने की इच्छा करते हैं? निघण्टु ३।१ अष्टाध्यायी ६ । १ । १३३ ॥ ८ । २ । १०० के प्रमाण तथा ऋ० ६ । ४ । २७ में जो पाठ में भेद है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ।।८।। (१४२)

अथ नवम्याः—वत्सऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ।।

३ १ २ ३१ २३१ २ ३१२
उपह्वरे गिरीणाꣳसङ्गमे च नदीनाम् ।
३ १ १ २र
धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥ (१४३)

पदपाठः—उपह्वरे ७ । गिरीणाम् ६ । सङ्गमे ७ । च अ० । नदीनाम् ६ । धिया ३ । विप्रः १ । अजायत क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(गिरीणाम्) मेघानाम् (उपह्वरे) प्रान्ते (नदीनां, च, सङ्गमे) समुद्रोपरि [इन्द्रस्य स्थानमस्ति इति प्रथमप्रश्नोत्तरम्] (धिया) प्रज्ञया यः (अजायत) प्रसिद्धो भवति सः (विप्रः) विद्वान् [तमिन्द्रं यजतीति द्वितीयप्रश्नोत्तरम्]

अत्र सायणाचार्येण प्रश्नोत्तरप्रसङ्गो नैव सम्यग्व्याख्यातः ऋग्वेदे तु ८ । ६ । २८ सङ्गथे इति पाठः ॥ ९ ॥ (१४३)

भाषार्थः—(गिरीणाम्) मेघों के (उपह्वरे) प्रान्त में (च) और (नदीनां, संगमे) समुद्र पर [इन्द्र का स्थान है, यह प्रथम प्रश्न का उत्तर है] (धिया) जो बुद्धि से (अजायत) प्रसिद्ध होता है वह (विप्रः) विद्वान् [उस इन्द्र का यजन करता है, यह द्वितीय प्रश्न का उत्तर है] ।।

इस में सायणाचार्य्य ने प्रश्नोत्तर की सङ्गति नहीं लगाई ।। ऋ० ८ । ६ । २८ में ' सङ्गथे' पाठ है ।। ९ ।। (१४३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ दशम्याः—इरिमिढ ऋषिः । छन्दो देवते उक्ते ॥

२ ३१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ २
प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रꣳस्तोता नव्यं गीर्भिः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
नरं नृषाहं मꣳहिष्ठम् ॥ १० ॥ (१२४)

* इति तृतीया दशतिः *

पदपाठः—प्र अ० । सम्राजम् २। चर्षणीनाम् ६ । इन्द्रम् २ । स्तोत क्रि० । नव्यम् , नरम्, नृषाहम् , मꣳहिष्ठम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(चर्षणीनाम् , सम्राजम्) मनुष्यादि प्राणिवर्गस्य राजानम् (नव्यम्) स्तुतियोग्यम् । णुस्तुतौ । (नरम्) नायकं (नृषाहम्) नृणां धर्षणक्षमम् (मꣳहिष्ठम्) दातृतमम् (इन्द्रम्) परमात्मानं राजानं वा (गीर्भिः)(प्रस्तोत) प्रकर्षेण वर्णयत ॥

चर्षणय इति मनुष्यनाम निघं० २। ३ तदुपलक्षितप्राणिवर्गस्य ग्रहणम् । छन्दसिसहः (पा० ३ । ३ । ६३) इति ण्विः पूर्वपदात् (पा० ८ । ३।१०६ । इति षत्वे नृषाहम् ॥ मंहतेइति दानकर्मा निघं० ३ । २० ततस्तृजन्तात्—तुइछन्दसि (पा० ५ । ३ । ५९) इतोष्ठनि रूपम् मंहिष्ठम् ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । १६ । १ ॥ १० ॥ (१२४)

इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमाऽर्धः ॥

भाषार्थः—(चर्षणीनाम् , सम्राजम्) मनुष्यादि के, राजा (नव्यम्) स्तुतियोग्य (नरम्) नायक (नृषाहम्) मनुष्यों को न्याय व्यवस्था के अधीन रखने वाले (मꣳहिष्ठम्) भारी दाता (इन्द्रम्) परमेश्वर को (गीर्भिः) वेदवाणियों से (प्र, स्तोत) वर्णित करो ॥

निघण्टु २ । ३ ॥ ३ । २० अष्टाध्यायी ३ । ३ । ६३ ॥ ८ । ३ । १०६ ॥ ५ । ३ । ५९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १६ । १ में भी ॥१०॥ (१४४)

* यह द्वितीयाऽध्याय में तीसरी दशति और द्वितीय प्रपाठक का प्रथमार्ध समाप्त हुवा *

अपादितिदशैन्द्रिप्रा—या गायत्र्यः प्रकीर्तिताः ॥

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—अत्रिकक्षऋषिः । इन्द्रो देवता गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अपादुशिप्रयन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।

२ ३ २ ३ १ २

इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥ (१४५)

पदपाठः—अपात् क्रि० । उ अ० । शिप्री १ । अन्धसः, सुदक्षस्य, प्रहोषिणः, इन्दोः ६ । इन्द्रः १ । यवाशिरः ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(शिप्री) आशुगामी (इन्द्रः) देवविशेषः (सुदक्षस्य) विदुषः (प्रहोषिणः) प्रकर्षेण जुह्वतः सम्बन्धिनः (यवाशिरः) यवैः सह पक्वस्य (अन्धसः) भक्ष्यस्य (इन्दोः) द्रवीभूतस्य सोमस्य (उ) सुष्ठु (अपात्) पानंकरोति ॥

यज्ञकर्तृभिः प्रदीयमानं यवाक्तं भोज्यं सोमं त्वरमाण इन्द्रः पिबति। ज्वालाप्रसादेन (शिप्री=श महानारायणः। इ शक्तिः। प ब्रह्मा। र रुद्रः। अ विष्णुः) इत्यादिमनोमुखऽमप्रमाणं व्याख्यातम् ॥

शिप्रे इति पदनाम निघं० ४ । १ गत्यर्थग्रहणादाशुगामी शिप्री । स्पृ लृगतौ । स्फायि-तञ्चि-वञ्चि-शकि-शिपि-क्षुदि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्पितृपीत्यादिना (उणा० २।१३) रक् । बाहुलकात्सृशब्दस्य शिभावः ॥ अन्ध इत्यन्ननाम निघं० २ । ७ ॥ इन्दुरित्युदकनाम निघं० १ । १२ ॥ यवपूर्व आङ्पूर्वश्च श्रीञ् पाके—अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताश्रितमाशीराशीर्त्ताः (पा० ६ । १ । ३६) इति धातोः शिरादेशो यवाशिरः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ९२ । ४ ॥ १ ॥ (१४५)

भाषार्थः—(शिप्री) शीघ्रगामी (इन्द्रः) इन्द्र (सुदक्षस्य) चतुर (प्रहोषिणः) होता के (यवाशिरः) यव के साथ पकाये (अन्धसः) भोज्य (इन्दोः) गीले सोम का (अपात्) पान करता है ॥

अर्थात् यज्ञकर्त्ता के दिये हुवे यवमिश्रित भोज्य सोम ओषधि को त्वरायुक्त इन्द्र पान करता है ॥

ज्वालाप्रसाद भार्गवजी ने अद्भुत मनमुखी अर्थ किया है कि (शिप्री—श महानारायण । इ शक्ति । प ब्रह्मा । र रुद्र । अ विष्णु) इत्यादि । निघं० ४।१॥२।७॥१।१२॥ उणादि २।१३॥ अष्टाध्यायी ६।१।३६ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये । ऋग्वेद ८।९२।४ में भी ॥१॥ (१४५)

अथ द्वितीयस्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

इमा उ त्वा पुरुवसोऽभि प्रनोनवुर्गिरः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥ (१४६)

पदपाठः—इमाः १। उ अ० । त्वा २। पुरुवसो सं०। अभि-प्र-नोनवुः क्रि०। गिरः, गावः १। वत्सं न अ० । धेनवः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(पुरुवसो) बहुयज्ञ ! वा बहुधन ! इन्द्र ! परमात्मन् ! वा राजन् ! (इमाः गिरः) अस्मदीया वाचः (अभि) अभितः (त्वा उ) त्वामेव (प्रनोनवुः) प्राप्नुवन्ति [गुणातिरेकात्]

दृष्टान्तः—(धेनवः) धापनैषिण्यः (गावः) (वत्सं न) वत्समिव ॥

ऋग्वेदे तु "इमा उ त्वा शतक्रतोऽभिप्रनोनवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः" ६।४५।२५ इत्यन्तरम् ॥२॥ (१४६)

भाषार्थः—(पुरुवसो) बहुयज्ञ ! वा बहुधन ! ईश्वर ! वा राजन् ! (इमाः) ये (गिरः) वाणियें (अभि) चारों ओर से (त्वा उ) तुझ को ही (प्रनोनवुः) प्राप्त होती हैं । दृष्टान्त—(धेनवः) दूधाली (गावः) गौवें (वत्सं न) जैसे बछड़े को ॥

जिस में गुण अधिक होते हैं सब ओर से उसी की प्रशंसा में वाणी ऐसे पहुंच जाती हैं जैसे दुधाल गायें चारों ओर जङ्गल में विचरती हुई सायङ्काल प्यारे बछड़े ही के पास को दौड़ती हैं ॥ ऋ० ६।४५।२५ में जो पाठ का भेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥ (१४६)

अथ तृतीयस्याः—गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ क २र

अत्रा ह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।

३ २ ३ १ २ ३ २

इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ (१४७)

पदपाठः—अत्र, ह अ० । गोः ६ । अमन्वत क्रि० । नाम अ० । त्वष्टुः ६ । अपीच्यम् १ । इत्था अ० । चन्द्रमसः ६ । गृहे ॥७॥

अन्वितपदार्थः—(अत्र) अस्मिन् (चन्द्रमसः) (गृहे) मण्डले (त्वष्टुः) इन्द्राऽपरनामकस्य सूर्यस्य (गोः) गन्तुः किरणस्य(नाम) स्वरूपम् (ह) निश्चितम् । हे मनुष्याः! (इत्था) इत्थम् (अमन्वत) मन्यध्वम् ॥

अत्रा इति निपातस्य च (पा० ६ । ३ । १३६) इति दीर्घः॥ त्वष्टृपदेनाऽऽदित्यग्रहणे मानं यास्कः—"त्वष्टा दुहितुर्वहनं करोतीदं विश्वं भुवनं समेतीतीमानि च सर्वाणि भूतान्यभि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

समागच्छन्ति यमस्य माता पर्युह्यमाना महतो जायाविवस्वतो ननाश रात्रिरादित्यस्यादित्योदयेन्तर्द्धीयते ॥" निरु० १२ । ११

तदेतद्यास्कव्याख्यानमूलभूता ऋग्वेदीया ऋगियम्—

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥

ऋ० १० । १७ । १

गोशब्देन सूर्यरश्मिग्रहणे मानं निरुक्ते २।६ यथा" अथाप्यस्यैकोरश्मिश्चन्द्रमसं प्रतिदीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्यमादित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति । सुषुम्नःसूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व इत्यपि निगमो भवति। सोऽपि गौरुच्यते। अत्रा ह गोरमन्वतेति तदुपरिष्टाद्व्याख्यास्यामः । सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते " ऋग्वेदेऽपि १। ८४ । १५ इत्थमेव पाठः, तत्रत्यं निरुक्तं यथा—" अत्र ह गोरममंसतादित्यरश्मयः स्वंनामापीच्यमपचितमपगतमपिहितमन्तर्हितं वाऽमुत्र चन्द्रमसोगृहे " ४।२५॥

प्राय ईदृशव्याख्यानेषु जना नैव विश्वसन्ति कथयन्ति च वैदिकविज्ञानपक्षपातेन वर्त्तमानकालिकविज्ञानानि वेदेष्वारोप्यन्त इति । परं तैरिदमवलोकनीयं यत्—यास्कमुनिसमये तु नासीदिदानींतनविज्ञानप्रादुर्भावः, परं यास्कोऽपि तथा व्याख्यातवान् । अथ सायणाचार्य्यश्च यथा—

" स्वच्छे चन्द्रबिम्बे सूर्यकिरणाः प्रतिफलन्ति" इत्यादि ॥ तथा प्रसिद्धोमनीषी (एसियातिक) इत्याख्यसमितिकार्यकुशलः श्रीसत्यव्रतोऽपि विवरणकारमतमेवं स्वीयटिप्पण्यां विन्य-

स्यति । यथा—

" गोशब्देनेह सुषुम्ना नाम आदित्यरश्मिः चन्द्रमसं प्रति गतः, अल्पत्वाच्चन्द्रमण्डलस्य, रश्मिं प्रतिगतः, ततः परावृत्य पृथिव्यां ज्योत्स्नारूपेण दीव्यते सोऽत्र गोशब्देनोच्यते " इति ॥ प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल्छन्दसि(पा०५।३।१११) इति विकृतादिदं शब्दात्थाल् विहितः परं व्यत्ययेन प्रकृतादिदंशब्दादपि बोध्यः ॥ ३ ॥ (१४७)

भाषार्थः—(अत्र) इस (चन्द्रमसः गृहे) चन्द्रमा के मण्डल में (त्वष्टुः) सूर्य की (गोः) किरण का (नाम ह) स्वरूप ही है (इत्था) इस प्रकार (अमन्वत) मानो ॥

अर्थात् परमेश्वर का उपदेश है कि हे मनुष्यो ! सूर्य्य की किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है । यह जानो तथा मानो ॥

इस मन्त्र में 'त्वष्टा' पद का अर्थ सूर्य्य है और परमैश्वर्य वाला होने से सूर्य भी इन्द्रपदवाच्य है । त्वष्टुः का अर्थ सूर्य्य करने में निरुक्तकार ने ऋग्वेद की ऋचा प्रमाण देकर कहा है कि " त्वष्टा पुत्री का लेजाना करता है और इस सब जगत् में व्यापता है और ये सब भूतमात्र का समागम करते हैं । (यम) दिन की माता (उषा) लेजायी जाती है बड़े विवस्वान् की जाया अदृष्ट होती है अर्थात् आदित्य की जाया रात्रि आदित्य के उदय पर छिप जाती है " यह निरुक्त के पाठ का भाषार्थ है जो निरुक्तकार ने " त्वष्टा दुहित्रे" इत्यादि ऋग्वेद १० । १७ । १ की ऋचा का व्याख्यान किया है ॥

गोशब्द से सूर्य्य की किरण अर्थ लेने में निरुक्तकार कहते हैं कि "और इस की एक किरणें चन्द्रमा की ओर प्रकाश करती हैं और इस से उपेक्षा करनी चाहिये आदित्य से इस (चन्द्रमा) का प्रकाश होता है जैसा कि—सुषुम्नःसूर्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वः, यह वेदवाक्य है। इसलिये किरण भी गौ कही जाती है । अत्रा ह गोरमन्वत इस मन्त्र पर आगे (४।२५ में) व्याख्या करेंगे । सब ही किरणें गौ कही जाती हैं " यह निरुक्तस्थ पाठ का भाषार्थ है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋग्वेद १।८४।१५ में भी ऐसाही पाठ है जिस पर निरुक्तकार ने सूर्य्य की छिपी हुई वा प्रतिगत किरण चन्द्रमण्डल पर पड़ती हैं, यह लिखा है॥

प्रायः इस प्रकार के व्याख्यानों पर लोगों को भ्रम हुआ करता है कि व्याख्याता ने वेद के विज्ञान की प्रशंसार्थ पक्षपात से खेंच तान करके वर्त्तमान काल में प्रसिद्ध हुवे विज्ञान की बातें वेद में घुसेड़ दी हैं । परन्तु उन संशयात्माओं को इन से शान्ति मिलेगी कि आजकल के वैज्ञानिकों के जन्म से बहुत वर्ष पूर्व यास्कमुनि ने ऊपर लिखा सिद्धान्त कहां से निकाला? वेद से । क्योंकि निरुक्तकार अपने मत में "सुषुम्नः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वः इस वेदवचन का प्रमाण देते हैं ॥

इस में तो सायणाचार्य्य ने भी स्पष्ट स्वीकार किया है कि " चन्द्रबिम्ब में सूर्य की किरणें प्रतिफलित होती हैं" इत्यादि ॥

तथा एसियाटिक सोसाइटी के सुयोग्य सभ्य पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी अपनी टिप्पणी में विवरणकार का मत लिखते हैं कि-" गोशब्द से यहां सुषुम्ना नाम सूर्य्य की किरण लेनी चाहिये जो चन्द्रमण्डल के छोटा होने से चन्द्रमण्डल पर जा कर लौटकर पृथिवी पर चान्दनी के रूप से प्रकाश करती हैं वही यहां गोशब्द से अभिप्राय है" ॥.

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३६ ॥ ५ । ३ । १११ निरुक्त १२ । ११ ॥ २ । ६ ॥ ४ । २५ ऋग्वेद १० । १७ । १ सायणभाष्य और श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी की टिप्पणी इन सब का यथातथ्य पाठ संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (१४७)

अथ चतुर्थ्यां-भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

तत्र पूषा भुवत्सचा ॥ ४ ॥ (१४८)

पदपाठः-यत् अ० । इन्द्रः १ । अनयत् क्रि० । रितः, महीः, अपः २ । वृषन्तमः १ । तत्र अ० । पूषा १ । भुवत् क्रि० । सचा अ० ॥

अन्वितपदार्थः-(यत्) यदा (इन्द्रः) वृष्टिदेवः (वृषन्तमः) अतिशयितवृष्टिकर्त्ता (रितः) धाराभिर्गच्छन्तीः (महीः) महतीः

(अपः) (अनयत्) नयति (तत्र) तदा (पूषा) सूर्य्यकिरणजनितः पोषको देवः (सचा) सहकारी (भुवत्) भवति ॥

यदेन्द्रो जलवर्षाः करोति तदा पोषणस्वभावाः सूर्यकिरणाः वृक्षवनस्पत्यादिकं पुष्णन्ति ॥ ऋग्वेदेऽपि ६। ५७।४॥४॥(१४८)

भाषार्थः—(यत्) जब कि (इन्द्रः) बिजुलीरूप अग्नि (वृषन्तमः) अत्यन्त वर्षाने वाला (रितः) धारों से बहते हुए (महीः) भारी (अपः) जलों को (अनयत्) पृथिवी पर पहुंचाता है (तत्र) तब (पूषा) सूर्य्य की पोषक किरण (सचा) सहकारी (भुवत्) होती हैं ॥

जब कि अत्यन्त वर्षा का कर्त्ता इन्द्र भारी मूसलाधार जल वर्षाता है तो सूर्य्य की पुष्टिकारक किरण वृक्ष वनस्पत्यादि का पोषण करने में सहकारी होती हैं, वही किरणें शुष्क होने पर नाश करती हैं और वर्षा में मिल कर पुष्टिकरने से पूषा देवता कहाती हैं ॥ ऋ० ६ । ५७ । ४ में भी॥ ४ ॥ (१४८)

अथ पञ्चम्याः—विन्दुः पूतदक्षो वा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

गौर्धयति मरुताञ्छ्रवस्युर्माता मघोनाम् ।

३ २ ३ ३ १ २

युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ ५ ॥ (१४९)

पदपाठः—गौः १। धयति क्रि० । मरुताम् ६। श्रवस्युः, माता १। मघोनाम् ६। युक्ता, वह्निः १। रथानाम् ६ ॥

अन्वितपदार्थः—पूर्वमन्त्रोक्तरीत्याइन्द्रापूषणौ यदा वृष्टिपुष्टी विधत्तस्तदा (मघोनाम्) धनधान्यादिमतां (माता) जननीव हितकर्त्री (श्रवस्युः) अन्नमुत्पादयितुमिच्छन्ती (रथानां मरुताम्) गन्तृणाम् वायूनां (वह्निः) वोढ्री (गौः) पृथिवी (युक्ता) वायुभिर्युक्ता सती (धयति) पिबति ॥

इयं भूमिः स्वोपरिवर्त्तमानान् वायून् वाहयन्ती स्वयमपि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

समन्ततोगच्छति, इन्द्रापूषभ्यां कृते वृष्टिपुष्टी पिबति धारयति ततोऽन्नमुत्पादयति चेति भावः ॥

गौरितिपृथिवीनाम निघं० १।१॥ श्रवइत्यन्ननाम च २।७ ततः सुश्रात्मनः क्यच् (पा ३।१।८) इति क्यचि, क्याच्छन्दसि (पा० ३।२।१७०) इत्युप्रत्यये श्रवस्युः॥ मघमिति धननाम निघं० २।१० ॥ रथोरंहतेर्गतिकर्मणः । निरु० ३।११॥ ऋग्वेदे ८।९४।१ऽपि ॥ ५ ॥ १४९)

भाषार्थः-(मघोनाम्) धन धान्यादि वालों की (माता) मातृतुल्य (श्रवस्युः) अन्न उत्पन्न करना चाहने वाली (रथानां मरुताम्) गमनशील वायुवों की (वहू) साथ घुमाने वाली (गौः) पृथिवी (युक्ता) वायु से जुड़ी हुई (धयति) पीती है ॥

पूर्वमन्त्रानुसार जब इन्द्र और पूषा वर्षा और पुष्टि करते हैं तब पृथिवी वायुवों को साथ घुमाती हुई उस वृष्टि पुष्टि को धारती है और उस से अन्न उत्पन्न करना चाहती है ॥

निघण्टु १।१।।२।७।।२।१० अष्टाध्यायी ३।१।८।।३।२।१७० ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।९४।१ में भी ॥५॥ (१४९)

अथ षष्ठ्याः-अतक्षः सुकक्षो वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥ (१५०)

पदपाठः-उप अ० । नः ६ । हरिभिः ३ । सुतम् २ । याहि क्रि० । मदानाम् ६ । पते सं० । उप । नः । हरिभिः । सुतम् ॥

अन्वितपदार्थः-(मदानां पते) आनन्दानां स्वामिन्![इन्द्र!

परमेश्वर !] (नः) अस्माकं मध्ये (सुतम्) स्तोतारम् (हरिभिः) व्यापकैर्गुणैः (उप, याहि) प्राप्नुहि । उप नः हरिभिः सुत-मिति द्विरुक्तिर्वीप्सार्था ॥

देवार्थपक्षे–(मदानां) सोमानां (पते) पालक ! (नः) अस्माकं (सुतम्) अभिषुतं सोमम् (हरिभिः) व्यापकैः किरणैरश्वैः (उप, याहि) प्राप्नुहि । द्विरुक्तिर्विशिष्टेच्छार्था । यथा विद्युद्रूप इन्द्रः किरणैर्यज्ञानुष्ठातॄणां सोमं गृह्णीयात् तथा मनुष्यैरनुष्ठेयम् ॥

हृञ्, हरणे, हरणं प्रापणम् । हरी इन्द्रस्येत्यादिष्टापयोजननाम निघं० १ । १५ ॥ सुत् इति स्तोतृनाम निघं० ३ । १६ ॥ सुतमिति अन्ननाम च निघं० २।७॥ मदी हर्षे, माद्यन्ति अनेनेति मदस्सोम आनन्दो वा ॥ ऋग्वेदे ८ । ९३ । ३१ ऽपि ॥ ६ ॥ (१५०)

भाषार्थः–(मदानां पते) आनन्दों के पति ! [इन्द्र ! परमात्मन्] (नः) हम में से (सुतम्) आप के स्तोता को (हरिभिः) व्यापक गुणों से (उप, याहि) प्राप्त हूजिये (नः, सुतं, हरिभिः, उप याहि) हम में से, स्तुति करने वाले को, प्राप्त हूजिये । यह पुनरुक्ति अधिक इच्छा को प्रकाशित करती है ॥

देवपक्ष में–(मदानां पते) सोमों के पति ! [इन्द्र !] (नः) हमारे (सुतम्) सम्पादित सोम को (हरिभिः) व्यापक किरण रूप अश्वों से (उप, याहि) प्राप्त हो ॥

अर्थात् मनुष्यों को ऐसा करना चाहिये जिस से यज्ञ में इन्द्र नामक विद्युत् को सोमरस पहुंचे ॥

निघण्टु १ । १५ ॥ २ । ७ ॥ ३ । १६ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९३ । ३१ में भी ॥ ६ ॥ (१५०)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ सप्तम्याः—श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
१ २ ३ १र २र
अच्छाऽवभृथमोजसा ॥ ७ ॥ (१५१)

पदपाठः—इष्टाः, होत्राः २ । असृक्षत क्रि० । इन्द्रम् २ । वृधन्तः १ । अध्वरे ७ । अच्छ अ० । अवभृथम् २ । ओजसा ३ ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः ! (अध्वरे) यज्ञे (इन्द्रम्) वृष्टिदेवम् (ओजसा) (वृधन्तः) वर्धयन्तः यूयम् (इष्टाः) यथेष्टाः पुष्कलाः (होत्राः) आहुतीः (असृक्षत) विसृजत (अवभृथम्) तदनुअवभृथस्नानम् (अच्छ) प्रति प्राप्नुत ॥

हूयन्त इति होत्राः ॥ वृधन्तो इति 'प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे (६ । १ । ११५) इत्यनेन ऋक्पादमध्ये प्रकृतिभावः ॥ अवे भृञः (उणा० २ । ३) इति अवपूर्वकाद्भृधातोरौणादिकः क्थन् प्रत्ययः । अवबिभर्त्तीत्यवभृथो यज्ञान्तस्नानम् ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ९३ । २३ "वृधासः" इति पाठः ॥७॥ (१५१)

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! (अध्वरे) यज्ञ में (ओजसा) बल से (इन्द्रम्) वृष्टिदेव को (वृधन्तः) बढ़ाते हुवे तुम (इष्टाः) मन चाही (होत्राः) आहुतियां (असृजत) छोड़ो और तब (अवभृथम्) यज्ञान्त स्नान को (अच्छ) ओर प्राप्त हो ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । ११५ उणादि २ । ३ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९३ । २३ में वृधासः ऐसा पाठान्तर है ॥७॥ (१५१)

अथाऽष्टम्याः—वत्सः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २३ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।

३२र २र
अहꣳसूर्य्य इवाजनि ॥ ८ ॥ (१५२)

पदपाठः—अहम् १। इत्, हि अ०। पितुः५। परि अ०। मेधाम् २। ऋतस्य ६। जग्रह क्रि०। अहम् १। सूर्य्यइव अ०। अजनि क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(अहम्) मनुष्यः (इत् हि) एव (पितुः) पालकात्इन्द्रात्परमेश्वरात् (ऋतस्य) सत्यस्य वेदस्य (मेधाम्) धारणावतीं बुद्धिं (परि, जग्रह) परिगृहीतवानस्मि (अहम्) (सूर्य्यइव) प्रकाशमानः (अजनि) प्रादुर्भूतोऽस्मि ॥

यैर्मनुष्यैरिन्द्रात्पितुःपरमेश्वराद्वेदविद्या गृहीता स्यात् तया ते सूर्य्यवत् प्रकाशमानाः स्युरितिभावः॥ ऋग्वेदे तु ८।६।१० जग्रभ इति भेदः ॥ ८ ॥ (१५२)

भाषार्थः—(अहम्) मैंने (इत् हि) ही (पितुः) पालन करने वाले [इन्द्र परमेश्वर] से (ऋतस्य) सत्य वेद की (मेधाम्) धारणावती बुद्धि (परि, जग्रह) ग्रहण की है। (अहम्) मैं (सूर्य्यइव) सूर्य्य सा प्रकाशमान (अजनि) प्रसिद्ध हुवा हूं ॥

अर्थात् जो मनुष्य पिता परमात्मा से सत्यवेदविद्या का ग्रहण करते हैं वे ही सूर्य्यवत् संसार भर को ज्ञान से प्रकाशित करते हैं। ऋ० ८। ६। १० में जग्रह के स्थान में जग्रभ पाठ है ॥ ८ ॥ (१५२)

अथ नवम्याः—शुनःशेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

३१२ ३२३१ ३१२
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।
३२३ २३१२
क्षुमन्तोयाभिर्मदेम ॥ ९ ॥ (१५३)

पदपाठः—रेवतीः १। नः ६। सधमादे, इन्द्रे ७। सन्तु क्रि०। तुविवाजाः, क्षुमन्तः १। याभिः ३। मदेम क्रि०॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(इन्द्रे) परमेश्वरे राज्ञि देवे वा (सधमादे) प्रसन्ने सति (नः) अस्माकं (रेवतीः) रयिर्धनं प्रशस्तं विद्यते यासु ताः (तुविवाजाः) तुवि बहु वाजो धनधान्यादि बलं यासां तथाभूताः प्रजाः (सन्तु) भवन्तु (याभिः) प्रजाभिः सह (क्षुमन्तः) बहुभोज्यवन्तः वयं (मदेम) हर्षं प्राप्नुयाम ॥

रेवतीरित्यत्र, प्रशंसार्थे रयेर्मतुप्, रयेर्मतौ बहुलम् (६। १। ३७) इति वार्त्तिकेन संप्रसारणम्, छन्दसीरः (पा० ८। २। १५) इति मस्य वः, सुपांसुलुगित्यादिना (पा० ७। १। ३९) पूर्वसवर्णादेशः॥ सधमादे इत्यत्र, सध मादस्थयोश्छन्दसि (पा० ६।३।९६) इति सहशब्दस्य सधादेशः। क्षुमन्त इत्यत्र, क्षुशब्दाद्भूम्न्यर्थे मतुप्, क्षु इत्यन्ननाम निघं० २। ७॥ तुवीति बहुनाम ३। १॥ वाज इति बलनाम २। ९ अन्ननाम च २। ७॥ ऋग्वेदे १। २९। १३ऽपि॥ ९॥ (१५३)

भाषार्थः—(इन्द्रे) परमेश्वर वा राजा वा देवविशेष के (सधमादे) प्रसन्नता सहित वा अनुकूल होने पर (नः) हमारी (रेवतीः) धन धन्यादि वाली (तुविवाजाः) बहुत बलयुक्त [प्रजा] (सन्तु) होवें (याभिः) जिन के साथ (क्षुमन्तः) बहुत भोजनादिसामग्री युक्त हम (मदेम) हर्ष को प्राप्त हों ॥

परमेश्वर और राजा के प्रसन्न रहने तथा वृष्टिदेव के अनुकूल रहने पर सब प्रजा को उत्तम धन धान्य शारीरक आत्मिक और सामाजिक बल की प्राप्ति हो जिस से हम सब उन प्रजाओं सहित आनन्द में रहें ॥

अष्टाध्यायी ६। १। ३७॥ ८। २। १५॥ ७। १। ३९॥ ६। ३। ९६॥ निघण्टु १। ७॥ २। ९॥ ३। १॥ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० १। २९। १३ में भी॥ ९॥ (१५३)

अथ दशम्याः—शुनःशेपो बामदेवो वर्षिः।
इन्द्रासोमौ देवते। गायत्री छन्दः॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमः पूषा च चेततूर्विश्वासाꣳसुक्षितीनाम् ।
३ २ क २र ३ २
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥१०॥ (१५४)

* इति चतुर्थी दशतिः ॥४॥ *

पदपाठः—सोमः, पूषा १ । च अ० । चेततुः क्रि० । विश्वासाम्, सुक्षितीनाम् ६ । देवत्रा अ० । रथ्योः ७ । हिता १ ॥

अन्वितपदार्थः—(पूषा,) पुष्टिकर्त्ता ऐश्वर्यवान् सूर्यः (सोमः) चन्द्रः (च) (चेततुः) चेतयतो जीवयत इतियावत् । (देवत्रा) सर्वदेवानां मध्ये (विश्वासाम्) सर्वासाम् (सुक्षितीनाम्) शोभनानां पृथिवीतदुपलक्षितान्यलोकभुवाम् (रथ्योः) समविषममार्गयोः (हिता) हितकरौ च भवतः ॥

चेततूरित्यत्र, अन्येषामपिदृश्यते (पा० ६ । ३ । १३७) इति संहितायां दीर्घः । हिता इत्यत्र हिवचनस्याकारः, सुपां सुलुगित्यादिना (पा० ७ । १ । ३९) । सायणाचार्येण—"रथ्यः, अर्हिता इति छेदस्तु पदग्रन्थविहद्धो विवरणविरुद्धश्च व्याख्यात" इति सामश्रमी सत्यव्रतः ॥ १० ॥ (१५४)

भाषार्थः—(देवत्रा) सब देवतों में (पूषा) पुष्टिकर्त्ता इन्द्र सूर्य्य (च) और (सोमः) चन्द्रमा (चेततुः) चेताते हैं (विश्वासाम्) और समस्त (सुक्षितीनाम्) पृथिव्यादि लोकों के (रथ्योः) सम विषम मार्गों में (हिता) हितकारक हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३७ ॥ ७ । १ । ३९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये। सायणाचार्य्य ने "रथ्यः, अर्हिता, ऐसा पदच्छेद पदपाठ और विवरण के विरुद्ध किया है" यह सामश्रमी सत्यव्रत जी भी स्वीकार करते हैं ॥ ॥ १० ॥ (१५४)

* यह द्वितीयाऽध्याय में चतुर्थ दशति समाप्त हुई ॥ ४ ॥ *

—:०:—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पान्तमेति दशत्यामा—द्याऽनुष्टुप् परिकीर्तिता ।
अवशिष्टा दशत्यासै—न्द्रयो गायत्र्यो नवस्मृताः ॥ १ ॥

अथ पञ्चमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—श्रुतकक्ष ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २३१ २३१र २र
पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्रगायत ।
३ १ २ ३१२३ १ २ ३ २
विश्वासाहꣳशतक्रतुं मꣳहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥ (१५५)

पदपाठः—पान्तम् २ । आ अ० । वः ६ । अन्धसः ६ । इन्द्रम् २ । अभि-प्रगायत क्रि० । विश्वासाहम्, शतक्रतुम्, मꣳहिष्ठम् २ । चर्षणीनाम् ६ ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः ! (वः) युष्माकम् (अन्धसः) भोज्यादेः (आ, पान्तम्) रक्षां कुर्वाणम् (विश्वासाहम्) सर्वेषां धर्षणक्षमम् (शतक्रतुम्) अनन्तकर्माणमनन्तप्रज्ञं वा (चर्षणीनाम्) ज्ञानिनां मनुष्याणां (मꣳहिष्ठम्) धनादिदातृ-तमम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (अभि,प्र, गायत) अभिष्टुत ॥ ऋग्वेदेऽपि ८।९२।१॥ १॥ (१५५)

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (अन्धसः) भोजनादि की (आ, पान्तम्) रक्षा करते हुवे (विश्वासाहम्) सर्वोपरि विराजमान (शतक्रतुम्) अनन्तकर्मा वा अनन्तज्ञानी (चर्षणीनाम्) ज्ञानी पुरुषों के (मꣳहिष्ठम्) पूजनीय वा दाता (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अभि, प्र, गायत) गावो ॥ ऋ० ८।९२।१ में भी ॥१॥ (१५५)

अथ द्वितीयायाः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

२ ३१ २३ १२३ १२
प्र व इन्द्राय मादनꣳहर्यश्वाय गायत ।
१ २ ३ १ २
सखायः सोमपाव्ने ॥ २ ॥ (१५६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—प्र० अ० । वः ६। इन्द्राय ४। मादनम् २। हर्य्यश्वाय ४। गायत क्रि० । सखायः १। सोमपाव्ने ४ ।।

अन्वितपदार्थः—(सखायः) सुहृदः ! (वः) युष्माकं (मादनम्) हर्षकरम् [यथा स्यात्तथा] (हर्य्यश्वाय) हरण शीलाव्यापकाश्च गुणा यस्य तस्मै (सोमपाव्ने) सोमानां सौम्य-स्वभावानां भक्तानां रक्षकाय (इन्द्राय) परमेश्वराय (प्र,गायत) स्तवनं कुरुत ।।

सोमपूर्वकात्पा रक्षणे धातोः—आतोमनिन्क्वनिव्वनिपश्च (पा० ३।२।७४) इति वन् ।। ऋग्वेदेऽपि ७।३१।१ ॥२॥ (१५६)

भाषार्थः—(सखायः) मित्रो ! तुम (वः) अपने को (मादनम्) आनन्द जैसे हो वैसे (हर्यश्वाय) हरण शील और व्यापक गुणों वाले (सोमपाव्ने) सौम्य भक्तों के रक्षक (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (प्र, गायत) श्रेष्ठ, गान करो ।।

अष्टाध्यायी ३।२।७४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ०७।३१।१ में भी ।।२।। (१५६)

अथ तृतीयस्याः—मेधातिथिप्रियमेधावृषी । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः।।

३ १ २ ३ १२ ३१ २ ३ २ ३ १ २
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
१ २ ३ १ २
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥३॥ (१५७)

पदपाठः—वयम् १। उ अ० । त्वा २। तदिदर्थाः १। इन्द्र सं० । त्वायन्तः, सखायः, कण्वाः १। उक्थेभिः ३। जरन्ते क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (सखायः) सुहृदः (कण्वाः) मेधाविनः (त्वा) त्वाम् (उक्थेभिः) वैदिकवचनैः (जरन्ते) अर्चन्ति । अतः (त्वायन्तः) त्वामात्मनइच्छन्तः (तदिदर्थाः) सः इत एव अर्थो येषां तेऽनन्यभक्ताः (वयम्) (उ) अपि [अर्चामः] ।।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जरतीति अर्चतिकर्मा निघं० ३।१४॥ कण्व इति मेधावि-नाम निघं० ३।१५ ऋग्वेदेऽपि ८।२।१६॥३॥ (१५७)

भाषार्थः—(इन्द्र) हेपरमेश्वर ! (सखायः) मित्र (कण्वाः) मेधावी लोग (त्वा) तेरा (उक्थेभिः) वेदमन्त्रों से (जरन्ते) पूजन करते हैं और (त्वायन्तः) तुझे चाहते हुए (तदिदर्थाः) अनन्य भक्त (वयम्) हम (उ) भी [तुझे ही पूजते हैं] ॥

निघण्टु ३ । १४ ॥ ३ । १५ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । २ । १६ में भी ॥ ३ ॥ (१५७)

अथ चतुर्थ्यार्चः—अतकक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २३ १२ ३१र २र ३ १ २
इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नोगिरः ।
३ १ २ ३ १ २
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥ (१५८)

पदपाठः—इन्द्राय ४। मद्वने ४। सुतम् २। परिष्टोभन्तु क्रि०। नः ६। गिरः १। अर्कम् २। अर्चन्तु क्रि० । कारवः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(कारवः) स्तोतारः (अर्कम्) अर्चनीयं परमेश्वरं (अर्चन्तु) पूजयन्तु तथा (मद्वने) हर्षशीलाय (इन्द्राय) देवाय (सुतम्) अभिषुतं सोमं (नः गिरः)(परिष्टो-भन्तु) वर्णयन्तु ॥

कारुरिति स्तोतृनाम निघं० ३।१६॥ मदी हर्षे इत्यस्मात्, अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२। ७५ इति कनिपि मद्वा तस्मै मद्वने॥ स्तोभतिरर्चतिकर्मा निघं० ३। १४॥ अर्च पूजायाम् इत्यस्माद्धा-तोः—कृदार्चिकलिभ्यः कः (उणा० ३।४०) इति केऽर्कः॥ ऋग्वेदेपि ८।९२।१९ ॥४॥ (१५८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(कारवः) स्तुतिकर्त्तालोग (अर्कम्) पूजनीय परमेश्वर की (अर्चन्तु) स्तुति करें और (नः गिरः) हमारी वाणियें (मद्वने इन्द्राय) हर्षशील इन्द्र के लिये (सुतम्) सम्पादित सोम को (परिष्टोभन्तु) सर्वतः वर्णित करें ॥

निघण्टु ३।१६॥३।१४॥ अष्टाध्यायी ३।२।७५ ॥ उणादि ३ । ४० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।९२।१९ में भी ॥४॥ (१५८)

अथ पञ्चम्याः—इरिमिठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३१२ ३ २ ३ १ २३ १.२३१ २
अयन्त इन्द्र सोमो निपतो अधिबर्हिषि ।
१२३२३ ३ १ २
एहीमस्य द्रवापिब ॥५॥ (१५९)

पदपाठः—अयम् १ । ते ४ । इन्द्र सं० । सोमः, निपूतः १ । अधि अ० । बर्हिषि ७ । एहि क्रि० । ईम् अ० । अस्य ६=२ । द्रव, पिब क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—पूर्वमन्त्रे इन्द्राय सोमं वर्णयन्तु इत्युक्तं तदर्णयति—(इन्द्र) वृष्टिदेव! (अयम्) समक्षे वर्त्तमानः (निपूतः) नितरां संस्कारैः पूतः (सोमः) ओषधिविशेषः (ते) तुभ्यम् (बर्हिषि अधि) यज्ञवेद्याम् हुत इति शेषः (अस्य) इमं सोमम् (एहि) प्राप्नुहि (द्रव) त्वरस्व (पिब) शोषय । (ईम्) पादपूरणे ॥

मनुष्यैर्यदा वृष्टिहेतवे इन्द्रयागाय सोमोनिष्पादितः स्यात् तदा प्रथमं परमेश्वरं स्तुत्वा तदनु सोमोऽग्नौ होतव्यो यथा त्वरमाण इन्द्रो वृष्टिदेवस्तं पिबेत् शोषयेत् मेघं वर्षयेच्च ॥ ऋ०८ । १७।११ऽपि ॥५॥ (१५९)

भाषार्थः—पूर्वमन्त्र में इन्द्र के लिये सोम का वर्णन करो, यह कहा था। सो वर्णन करते हैं कि—(इन्द्र) वृष्टिकर्त्ता ! (अयम्) यह (निपूतः) नितरां

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

संस्कार किया हुवा (सोमः) सोम (ते) तेरे लिये (बर्हिषि, अधि) यज्ञ में [हवन किया है] (अस्य) इस का (पिब) पान कर (एहि) आ (द्रव) दौड ।।

जब कि मनुष्य वृष्टि के हेतु इन्द्रयाग के लिये सोम को तैय्यार करें तब प्रथम परमेश्वर की स्तुति (देखो पूर्वमन्त्र) करके फिर अग्नि में सोम का हवन करें जिस से इन्द्र नामक अग्नि दौड जावे और उसे शोषण कर वर्षा का हेतु हो ।। ऋ० ८ । १७ । ११ में भी ॥ ५ ।। (१५९)

अथ षष्ठ्याः—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्रीछन्दः ॥

३ २३१२ ३१२ ३१२
सुरूपकृत्नुमूतये सूदुघामिव गोदुहे ।
३ २३ १२
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६ ॥ (१६०)

पदपाठः—सुरुपकृत्नुम् २ । ऊतये ४ । सुदुघामिव अ० । गोदुहे ४ । जुहूमसि क्रि० । द्यविद्यवि अ० ॥

अन्वितपदार्थः—वयम् (ऊतये) अनावृष्ट्यादितोरक्षायै (सुरूपकृत्नुम्) शोभनरूपकरं सोमम् [इन्द्रायेति प्रकरणात्] (द्यविद्यवि) प्रतिकर्मकालम् (जुहूमसि) जुहुयाम । दृष्टान्तः (गोदुहे) गोर्दोग्ध्रे (सुदुघामिव) शोभनां दोग्ध्रीं गामिव ॥

अयंभावः—यथा गोदुहे सुदुघां गां प्रत्यहमुपस्थापयन्ति येन ततो दुग्धं प्रदुह्यासौ गोधुगऽस्मभ्यं ददाति तथैव सोमाद्योषधयोहि इन्द्रायोपस्थापयितव्याः, येन स वृष्ट्यादिनास्मद्रक्षणं विदध्यात् ॥

इदन्तोमसि (७ । १ । ४६) इति जुहूमसि ॥ द्यविद्यवीति अहर्नाम निघं० (१ । ९) ऋग्वेदेऽपि १ । ४ । १ ॥६॥ (१६०)

भाषार्थः—हम लोग (ऊतये) अनावृष्ट्यादि से रक्षा के निमित्त (सुरूपकृत्नुम्) शोभन रूप करने वाले [सोम का इन्द्र के लिये] (द्यविद्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) हवन करें ।। दृष्टान्त-(गोदुहे सुदुघामिव) जैसे गाय दुहने वाले के लिये दुधार गाय को ।।

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

भाव यह है कि जैसे गाय दुहने वाले के लिये प्रतिदिन दुधार गौ को उपस्थित करते हैं जिस से वह दुग्ध दुह कर हमें देवे इसी प्रकार अकाल अवर्षणादि से रक्षित रहने के लिये इन्द्र के निमित्त सोम उपस्थित करना चाहिये जिस से वह जल वर्षा कर सुवर्ष करे ॥ ऋ० १ । ४ । १ में भी ॥६॥(१६०)

अथ सप्तम्याः—त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्रीछन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳसृजामि पीतये ।

३ १ २ ३ १ २

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥ (१६१) ॥

पदपाठः—अभि अ० । त्वा २। वृषभ सं० सुते ७ । सुतम् २ । सृजामि क्रि० । पीतये ४ । तृम्प, व्यश्नुहि । क्रि० मदम् २ ।।

अन्वितपदार्थः—(वृषभ) वृष्टिकर्त्तरिन्द्र! (सुते) निष्पन्नेसति (सुतम्) सोमम् (पीतये) पानाय (त्वा) त्वाम् (अभि, सृजामि) जुहोमि (तृम्प) तृप्त (मदम्) हर्षम् (व्यश्नुहि) प्राप्नुहि ॥

इन्द्रो हि वृष्टिकर्त्ताऽस्ति अतस्तदीयतृप्तये हर्षायाऽर्थान्मेघ वर्षणक्षमतायै सोमं निष्पाद्याऽऽहुतयो दातव्याः ॥

ज्वालाप्रसादेन (अ×इ) इति पदपाठविरुद्धं विश्लिष्याऽप्रमाणं व्याख्यातम् ॥ वृषभा इति व्यश्नुही इति च ऋचि-अन्येषामपि दृश्यते (६ । ३ । १३७) इत्यनेन, तृम्प इति व्यचोऽतस्तिङः (६। ३। १३५) इत्यनेन च दीर्घः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ४५ । २२ ॥ ७ ॥ (१६१)

भाषार्थः—(वृषभ) वृष्टिकर्त्तः इन्द्र ! (सुते) तैयार होने पर (सुतम्) सोम को (पीतये) पीने के लिये (त्वा) तुझ को (अभिसृजामि) हवन करता हूं । (तृम्प) तृप्त हो (मदं, व्यश्नुहि) हर्ष को, प्राप्त हो ॥

भाव यह है कि इन्द्र वर्षा करता है इस लिये उस की तृप्ति अर्थात् वृद्धि

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पुष्टि के लिये सम्पन्न (तैयार) होने पर सोम का हवन करना चाहिये। इन्द्र का मेघ वर्षाने के लिये उपयुक्त होना ही हर्ष है ॥

अष्टाध्यायी ६।३।१३५॥ ६।३।१३७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ज्वालाप्रसाद जी भार्गव ने (अ+इ) इत्यादि पदपाठ के विरुद्ध निर्मूल व्याख्या की है। ऋ०।८।४५।२२॥ ७॥ (१६१)

अथाऽष्टम्याः—कुसीद ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३१र २र३ १ २ ३ २
य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः।
१र २र३ १ २
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥ (१६२)

पदपाठः—यः १। इन्द्र सं०। चमसेषु ७। आ अ०। सोमः १। चमूषु ७। ते ४। सुतः १। पिब क्रि०। इत् अ०। अस्य ६। त्वम् १। ईशिषे क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—पुनः सोमं वर्णयति—(इन्द्र) देव! वा राजन्! (यः सोमः) (चमूषु) चमन्त्यत्रेति पात्रेषु (ते) त्वदर्थं (सुतः) अभिषुतोऽस्ति (अस्य) सोमस्य (त्वम्) (आ ईशिषे) सर्वतः स्वाम्यसि (इत्) अतः (चमसेषु) अधिषवणफलकेषु (पिब)॥

यज्ञकर्तृभिः चमूषु पात्रेषु सोमाऽभिषवः कार्यस्तदनु चमसेषु कृत्वा इन्द्रादिदेवेभ्यो राजादिभ्यो वा दातव्यः। इन्द्रादयस्त्वरमाणास्तमश्नन्ति। ते हि सोमाद्योषधीनामधिष्ठातारः तदनुग्रहेणैवोषधिजातेरुत्पादादिः॥ ऋग्वेदेऽपि ८।८२।७॥८॥ (१६२)

भाषार्थः—फिर सोम को वर्णित करते हैं। (इन्द्र) इन्द्र! वा राजन्! (यः सोमः) जो सोम (चमूषु) पात्रों में (ते) तेरे लिये (सुतः) सिद्ध किया है (अस्य) इस सोम का (त्वम्) तू (आ, ईशिषे) सब प्रकार, अधिष्ठाता है (इत्) इस कारण (चमसेषु) चमस नाम के फलकों में (पिब) पी॥

यज्ञकर्त्ताओं को योग्य है कि चमू नामक पात्रों में प्रथम सोम का अभिषव करें फिर चमस नामक पात्रों द्वारा इन्द्रादि देवों वा राजादि के लिये

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

दें और वे उसे शीघ्र पान करते हैं वा करें, क्योंकि वे ही ओषधि वर्ग के अधिष्ठाता हैं, उन के आनुकूल्य से उन की उत्पत्ति आदि का व्यवहार अच्छा बनता है। इस से यह भी सूचित होता है कि सोम राजकीय ओषधि है उस का स्वाम्य राजा के हाथ में होना चाहिये ॥ ऋ० ८।८२।७ में भी ॥८॥ (१६२)

अथ नवम्याः-शुनः शेपऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २३ १ २
योगे, योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
१ २३ १ २३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥९॥ (१६३)

पदपाठः-योगे, योगे ७। तवस्तरम् २। वाजे, वाजे ७। हवामहे क्रि० । सखायः १ । इन्द्रम् २। ऊतये ४ ॥

अन्वितपदार्थः-(वाजे वाजे) प्रतिसंग्रामम् (योगे योगे) प्रतिसमयम् (सखायः) वयं (तवस्तरम्) अतिबलम् (इन्द्रम्) परमश्वर्यवन्तं राजानं परमात्मानं वा (ऊतये) रक्षायै (हवामहे) आह्वयेमहि ॥

मनुष्यैर्मित्रतां सम्पाद्य प्राप्तानां पदार्थानां रक्षणं कार्यं तदर्थं राजा प्रार्थनीयः ॥ योगाऽनुष्ठाने कामादिशत्रुभ्यो रक्षायै परमात्मा च प्रार्थ्यः ॥ ऋग्वेदेऽपि १।३०।७ ॥९॥ (१६३)

भाषार्थः-(वाजे वाजे) प्रत्येक लड़ाई में (योगे योगे) प्रत्येक ऐसे अवसर में वा योग में (सखायः) हम मित्र (तवस्तरम्) अतिबल (इन्द्रम्) राजा वा परमात्मा की (ऊतये) रक्षा के लिये (हवामहे) पुकार करें ॥

मनुष्यों को परस्पर मित्र होना चाहिये तथा योगानुष्ठान के शत्रु काम क्रोधादि से बचने को परमात्मा और लौकिक कार्यों के शत्रु दस्यु आदि से लड़ाई के समय राजा की सहायता ग्रहण करनी चाहिये ॥ ऋ०१।३०।७ ॥ ॥ ९ ॥ (१६३)

अथ दशम्याः-मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२उ ३ १ २३१ २३१र २र
आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत ।
१ २३ १२
सखायः स्तोमवाहसः ॥१०॥ (१६४)

पदपाठः—आ, तु, आ, अ० । इत, आनिषीदत क्रि० । इन्द्रम् २ । अभिप्रगायत क्रि० । सखायः, स्तोमवाहसः १ ॥

अन्वितपदार्थः—हे (सखायः) सुहृदः । यूयम् (स्तोमवाहसः) स्तोमान्स्तुतीर्वहन्ति तथाभूताः सन्तः (आ तु आ इत) अभ्यागच्छताऽभ्यागच्छत (निषीदत) (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (अभिप्रगायत) अभिष्टुत ॥

भो भोः सुहृदः ! आगच्छताऽऽगच्छत परमात्मस्तुतेः प्रवाहं संचारयत ॥

यद्यपि स्तोमशब्दस्य स्तुतिसामान्यमर्थः । तथापि ताण्ड्यमहाब्राह्मणानुसारिणं स्तोमानां विशिष्टमर्थं पिपठिषूणामाह्लादकरं मन्यमाना वयं ततः उद्धृत्य विन्यस्यामः । यथा—ताण्ड्यमहाब्राह्मणे द्वितीयतृतीययोरध्याययोः स्तोमानामेव वर्णनं तत्र १त्रिवृत् २ पञ्चदशः ३ सप्तदशः ४ एकविंशः ५ त्रिणवः ६ त्रयस्त्रिंशः । इति पृष्ठ्यषडहस्य षट् स्तोमाः । अनन्तरं छन्दोमानां त्रयः स्तोमाः । तत्र बहिष्पवमानसाधनस्य त्रिवृत्स्तोमस्य तिस्रो विष्टुतयः उद्यती परिवर्त्तिनी कुलायिनीति, आदितस्त्रिभिरनुवाकैः प्रदर्शितास्तत्र तावदुद्यत्याः स्वरूपमाह—

तिसृभ्यो हिं करोति स प्रथमया, तिसृभ्यो हिं करोति स मध्यमया, तिसृभ्यो हिं करोति स उत्तमयोद्यती त्रिवृतो-विष्टुतिः ॥ ताण्ड्ये २।१।१॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

एकैकस्य साम्नः पञ्चविभक्तयोभवन्ति, हिंकारप्रस्तावोद्गीथ प्रतिहारोपद्रवनिधनाख्याः । तत्र हिङ्कारस्त्वभिरुद्गातृभिः कर्त्तव्यः। तिसृभ्य इति, क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (पा० २।३। १४) इति कर्मणि चतुर्थी । तिस्रऋचोगातुं हिंकुर्यात् इत्यर्थः। एकवचनस्याऽतन्त्रत्वात्त्रयोप्युद्गातारो हिंकुर्युरित्यवगम्यते । स प्रथम उद्गाता प्रथमया त्रिरुक्तया, द्वितीयो द्वितीयया त्रिरुक्तया, अथ तृतीयस्तृतीयया । अनेन पर्य्यायेण त्रिवृतः प्रथमोद्यती-नाम विष्टुतिर्बोध्या ॥ अथ त्रिवृतोद्वितीयां परिवर्त्तिनीं नाम विष्टुतिमाह—

तिसृभ्यो हिं करोति स पराचीभिस्तिसृभ्यो हिं करोति स पराचीभिस्तिसृभ्यो हिं करोति स पराचीभिः परिवर्त्तिनी त्रिविष्टुतिः । २ । २ । १ ॥

तिसृभ्यस्तिस्रऋचो गातुं हिं कुर्य्यात् । पूर्वस्यामुद्यत्यां तु एकामेव ऋचमावर्तयति प्रथमः, अपरः द्वितीयां त्रिरुक्तां, तृतीय-स्तृतीयां त्रिरुक्ताम् । परन्त्वस्यां परिवर्त्तिन्यां द्वितीयायां पराची-भिस्तिसृभिर्हिं कुर्य्यात् । अर्थात् प्रथम उद्गाता प्रथमां द्वितीयां तृतीयां चेति, एवमेव द्वितीयस्तृतीयश्च पर्य्यायः । एवं परिवर्त्तिनी नाम द्वितीया विष्टुतिर्बोध्या ॥ अथ तृतीयां कुलायिनीं नाम त्रिवृतो विष्टुतिमाह—

तिसृभ्यो हिं करोति स पराचीभिस्तिसृभ्यो हिं करोति या मध्यमा सा प्रथमा योत्तमा सा मध्यमा या प्रथमा सोत्तमा, तिसृभ्यो हिं करोति योत्तमा सा प्रथमा या प्रथमा सा मध्यमा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

या मध्यमा सोत्तमा कुलायिनी त्रिष्टुतो विष्टुतिः॥ २। ३। १॥

प्रथम उद्गाता पराचीभिर्हिं कुर्य्यात् क्रमेण प्रथमया द्वितीयया तृतीयया चेति, अथ द्वितीय उद्गाता द्वितीयया तृतीयया प्रथमया चेति, अथ तृतीयः उद्गाता तृतीयया प्रथमया द्वितीयया चेति क्रमेण त्रयः पर्य्याया मिलित्वा त्रिवृत्स्तोमस्य तृतीया कुलायिनी विष्टुतिरिति बोध्यम्। तिसृभिरेव विष्टुतिभिरस्य त्रिवृत् इति नामाऽपि सार्थकं बोध्यम्॥ एवं पञ्चदशादयः स्तोमास्तेषां पृथक् पृथक् विष्टुतयश्च तत्रैव ताण्ड्ये द्रष्टव्याः॥ ऋग्वेदे १। ५। १ऽपि॥ १०॥ (१६४)

भाषार्थः—(सखायः) हे मित्रो! (स्तोमवाहसः) स्तुति का प्रवाह चलाते हुवे (आ तु आ इत) आओ आओ (निषीदत) बैठो और (इन्द्रम्) परमेश्वर का (प्रगायत) कीर्त्तन करो॥

यद्यपि स्तोम का सामान्य अर्थ स्तुति मात्र है परन्तु ताण्ड्य महाब्राह्मण में स्तोमों के भेद वर्णन किये हैं। लोकों के प्रमोदार्थ हम थोड़े से यहां उद्धृत करते हैं। ताण्ड्य महाब्राह्मण के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में १ त्रिवृत् २ पञ्चदश ३ सप्तदश ४ एकविंश ५ त्रिणव ६ त्रयस्त्रिंश ये पृष्ठ्यषडह यज्ञ में छः स्तोम होते हैं। अनन्तर छन्दोमों के ३ स्तोम कहे हैं। उन में से बहिष्पवमान के साधन त्रिवृत् नामक स्तोम की ३ विष्टुति हैं, उद्यती परिवर्त्तिनी और कुलायिनी। प्रथम ३ अनुवाकों से कही गई हैं। प्रथम उद्यती का स्वरूप यह है:—

तिसृभ्यो० २। २। १।

एक एक साम की ५ विभक्ति होती हैं, हिङ्कार प्रस्ताव उद्गीथ प्रतिहार उपद्रवनिधन। उन में से हिङ्कार ३ उद्गाताओं को करना चाहिये। अष्टाध्यायी २। ३। १४ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। पहला उद्गाता पहिली ऋचा को तीन बार, दूसरा दूसरी और तीसरा तीसरी को। इस प्रकार त्रिवृत् नामक स्तोम की पहिली उद्यती नाम विष्टुति कहाती है॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

अब दूसरी परिवर्त्तिनी नाम विष्टुति का वर्णन करते हैं:—

तिसृभ्यो० २ । २ । १ । इत्यादि

प्रथमा उद्यती में तो ३ ऋचाओं में एक २ ऋचा को एक २ उद्गाता तीन २ बार पढे यह कहा । इस दूसरी परिवर्त्तिनी नामक विष्टुति में १ उद्गाता १, २, ३, ऋचाओं को पढ़े फिर दूसरा उद्गाता तीनों को पढ़े । फिर तीसरा भी । इस प्रकार दूसरी परिवर्त्तिनी नाम विष्टुति कहाती है ॥ अब तीसरी कुलायिनी को सुनियेः—

तिसृभ्यार्हि० २ । ३ । १ ॥

पहिला उद्गाता इस क्रम से पढ़े कि पहिली दूसरी तीसरी ॥ दूसरा उद्गाता दूसरी तीसरी पहिली । तीसरा उद्गाता तीसरी पहिली दूसरी । इस प्रकार तीन पर्य्याय मिल कर तीसरी कुलायिनी नाम त्रिवृत् स्तोम की विष्टुति कहाती है । ३ विष्टुति से ही इसे त्रिवृत् स्तोम कहते हैं ॥

इसी प्रकार पञ्चदशादि स्तोमों की पृथक् २ विष्टुतियां कही गई हैं जो वहीं ताण्ड्य महाब्राह्मण में देखनी चाहियें ॥ ऋ० १ । ५ । १ में भी ॥१०॥ (१६४)

*यह द्वितीयाध्याय में पांचवीं दशति समाप्त हुई ॥५॥ *

——:०*०:——

इदं हीतीन्द्रदैवत्या गायत्र्यो दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ षष्ठी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २
इदꣳह्यन्वोजसा सुतꣳराधानां पते ।
३ २ १ २
पिबा त्वा३ स्य गिर्वणः ॥१॥(१६५)

पदपाठः—इदम् २ । हि, अनु अ० । ओजसा ३ । सुतम् २ । राधानाम् ६ । पते सं० । पिब क्रि० । तु अ० । अस्य ६ । गिर्वणः सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(राधानाम्) धनानाम् (पते) स्वामिन्नन्न-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दातः ! राजन् इन्द्र ! (गिर्वणः) गीर्भिर्वर्णनीय संभजनीय ! (ओजसा) बलेन (सुतम्) ग्राव्णा संपादितम् (अस्य) सोमस्य (इदम्) इमं भागम् (पिब) (हि, अनु, तु,) पादपूरणे ॥

मनुष्याः पुरुषार्थेन सोमरसमुत्पाद्य इन्द्राय बलवते राज्ञेऽर्पयन्तु इति भावः । राजा हि धनपतिः प्रजायै जीविकाप्रदो रक्षकश्चाऽतो गीर्भिः स्तुत्यर्हश्चास्ति ॥ ज्वालाप्रसादेन तु अनुक्रमणिकाविरुद्धोमहानारायणो देवताऽथ (अ अस्य) इति पदपाठविरुद्धो विश्लेषः, राध इति धन नामसु २। १०। पठितत्वाद्राधार्दिदेवीनामित्यर्थो निघण्टुविरुद्धः सायणाचार्यविरुद्धश्च व्याख्यातः॥ ऋग्वेदेऽपि ३ । ५१ । १० ॥ १ ॥ (१६५)

भाषार्थः—(राधानाम्) धनों के (पते) स्वामिन्! राजन्! (गिर्वणः) वाणी से प्रशंसा योग्य ! (ओजसा) परिश्रम से (सुतम्) सिद्ध किये हुये (अस्य) इस सोम के (इदम्) इस भाग को (पिब) पीजिये । (अनु, हि, तु) पादपूरणार्थ हैं ॥

मनुष्यों को उचित है कि राजा के लिये सोमरस सिद्ध करके अर्पित करें और राजा उस का पान करे । और प्रजा को जीविका तथा रक्षा का दान करे, वह प्रशंसा के योग्य है ॥

ज्वालाप्रसाद भार्गव जी ने अनुक्रमणिका के विरुद्ध महानारायण देवता, (अ, अस्य) यह पदपाठ के विरुद्ध पदच्छेद, राधः पद निघण्टु २ । १० में धन का वाचक होने से निघण्टु और सायण के विरुद्ध राधानाम् का अर्थ राधांश देवी, किया है ॥ ऋ० ३ । ५१ । १० में भी ॥ १ ॥ (१६५)

अथद्वितीयायाः—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महाँ इन्द्रः पुरश्चनो महित्वमस्तु वज्रिणे ।
१र २र ३ १र २र
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२॥ (१६६)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

पदपाठः—महान्, इन्द्रः १। पुरः, च अ० । नः ६। महित्वम् १। अस्तु क्रि० । वज्रिणे ४। द्यौः १। न अ० । प्रथिना ३। शवः १॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्रः) परमैश्वर्यसंपन्नो राजा (महान्) प्रौढः (अस्तु) भवतु, तस्मै (च) (वज्रिणे) वज्रवते राज्ञे (नः) अस्माकम् (पुरः) अग्रे (महित्वम्) औत्कृष्ट्यं भवतु तथा (शवः) बलम् (प्रथिना) विस्तरेण (द्यौर्न) द्युलोकइवास्तु ॥ राज्ञा बलवता महता शस्त्रास्त्रवता न्यायप्रकाशवता च भाव्यमित्यर्थः॥

सायणाचार्येण " परः च नु " इतिच्छेदः कृतः । स च सर्वपुस्तकसम्मतात् " पुरुश्चनः " इत्यस्मात्पाठात् विरुध्यते पदग्रन्थतश्च । सत्यव्रतः सामश्रमी च " आश्चर्यमेतत् ! कास्ति मन्त्रे " नु " इति, इत्याह । परंच ऋग्वेदे (१।८।५) हि " परश्च नु" इत्येवपाठः । तद्भ्रान्त्यैवाऽत्र सामवेदेऽपि पाठभेदं विस्मृत्य सायणेन ऋग्वेदवद्व्याख्यातम् इत्यस्मन्मतिः ॥ शव इति बलनाम निघं० २।९॥२॥ (१६६)

भाषार्थः—(इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त राजा (महान्) प्रौढ़ (अस्तु) होवे (च) और (वज्रिणे) शस्त्रास्त्रधारी के लिये (नः) हमारे (पुरः) आगे (महित्वम्) बडप्पन हो और (शवः) सेनाबल (प्रथिना) विस्तार से (द्यौर्न) द्युलोक के समान हो ॥

राजा को उचित है कि महान् बलवान् शस्त्रास्त्र वाला और न्यायप्रकाश वाला हो ॥

सायणाचार्य ने " परश्च नु " ऐसा पदच्छेद करके व्याख्या की है जो पदग्रन्थ और समस्त मूल ग्रन्थों के विरुद्ध है । यथार्थ पाठ "पुरश्चनः" है । इस पर सत्यव्रत सामश्रमी जी कहते हैं कि " आश्चर्य्य है ! मूल में 'नु' पद कहां है ? " परन्तु हमारी सम्मति में आश्चर्य्य नहीं किन्तु ऋग्वेद (१।८।५) में "परश्च नु" यही पाठ है । इसलिये ऋग्वेदभाष्यकार सायणाचार्य्य ने वहीं

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

की भ्रान्ति से सामवेद के पाठभेद को भूल कर वही ऋग्वेदतुल्य व्याख्या कर दी है ॥ निघं० २।९ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥ (१६६)

अथ तृतीयस्याः—कुसीदी काण्व ऋषिः ।
इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१र २र ३१२ ३१ ३१र २र
आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभꣳ संगृभाय ।
३ १र २र
महाहस्ती दक्षिणेन ॥३॥ (१६७)

पदपाठः—आ, तु अ० । नः ६ । क्षुमन्तम्, चित्रम्, ग्राभम् २ । संगृभाय क्रि० । महाहस्ती १ । दक्षिणेन ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) राजन् ! (तु) क्षिप्रम् (नः) अस्माकम् (क्षुमन्तम्) भोज्यादिना युक्तम् (चित्रम्) विविधम् (ग्राभम्) ग्राह्यं धनं (महाहस्ती) आजानुबाहुः (दक्षिणेन) चतुरेण वा हस्तेन (आ,संगृभाय) संगृहाण ॥

राज्ञा हि प्रजार्थभोगाय त्वरमाणेन विविधंन्यायग्राह्यं धनादिकं संग्राह्यम्, महाहस्तयुक्तेन चतुरेण च भाव्यम् ॥

तू इति, ऋचितुनुघेत्यादिना ऋचि दीर्घः पा० ६॥३।१३३॥ क्षु इत्यन्ननाम निघं० २।७॥ ऋग्वेदे ८।८१।१ऽपि ॥३॥ (१६७)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! तू (महाहस्ती) आजानुबाहु अर्थात् बड़े हाथों वाला (दक्षिणेन) अपने दहिने वा चतुर हाथ से (नः) हमारे (क्षुमन्तम्) भोजनीय अन्न से युक्त (चित्रम्) विविध (ग्राभम्) न्यायोपार्जित धन का (आ, संगृभाय) सब ओर से सङ्ग्रह कर ॥

लोक में भी क्षत्रिय की भुजा लम्बी घुटनों को स्पर्श करने वाली प्रसिद्ध हैं । उस बड़े हाथ वाले राजा को प्रजा के भोग के लिये धान्यादि सामग्री सहित विविध न्याय से कमाये धन का सङ्ग्रह करना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ६।३।१३३ निघण्टु २।७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।८१।१ में भी ॥३॥ (१६७)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थ्यार्चः—प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।।

३१र २र ३१ २३१ २ ३२
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुꣳसत्यस्य सत्पतिम् ॥४॥ (१६८)

पदपाठः—अभि, प्र अ० । गोपतिम् २ । गिरा ३ । इन्द्रम् २ । अर्च क्रि० । यथा अ० । विदे क्रि० । सूनुम् २ । सत्यस्य ६ । सत्पतिम् २ ।।

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्य ! त्वं (यथा विदे) यथा जानासि तथा सत्यमित्यर्थः (सत्पतिम्) सतां न्यायपरायणानां पालकं (सत्यस्य सूनुम्) सत्यस्य न्यायस्य अपत्यमिव वर्त्तमानम् (गोपतिम्) भूपतिम् (इन्द्रम्) राजानम् (गिरा) वाचा (अभि, प्र, अर्च) सर्वतः सत्कुरु ॥

गौरिति पृथिवीनाम निघं० १ । १ ॥ गोपतिशब्देन कृष्णावतारार्थग्रहणे नास्ति किमपि प्रमाणं ज्वालाप्रसादभाष्येऽतोनिर्मूलमेव तज्ज्ञेयं, प्रकरणं चात्र पूर्वतो राजकीयमेव । न च किमपीदृशं पदं मूलपाठे विद्यते येनाऽवतारव्याख्यानमावश्यकं प्रतीयेत । परमात्मनोऽजत्वादिश्रुतिविरोधाच्च । सायणाचार्येण चाऽपि नाऽसावर्थोगृहीतः । यदि चाऽत्र "सत्यस्य सूनुम्" इत्यस्य स्थाने "वसुदेवस्य सूनुम्" इत्यभविष्यत् तदा तु भ्रान्तेरवकाशोऽभविष्यत् परं नाऽत्र लेशोऽपि भ्रान्तेरस्ति ॥ न चेन्द्रपदेन निरुक्तकृता क्वापि कृष्णो व्याख्यातः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ६९ । ४ ॥ ४॥ (१६८)

भाषार्थः—हे मनुष्य ! (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक और (गोपतिम्) पृथिवी के स्वामी (सत्यस्य, सूनुम्) सत्य के पुत्र (इन्द्रम्) राजा को (यथा विदे)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जैसा जानता हो वैसा (गिरा) वाणी से (अभि,प्र,अर्च) सर्व प्रकार सत्कृत कर ॥

अर्थात् हे मनुष्यो ! राजा सज्जनों का तथा पृथिवीस्थ अन्य प्राणियों का रक्षक है और सत्य न्याय का पुत्र अर्थात् सन्तान के तुल्य सेवक हैं । तुम वाणी से उस की प्रशंसा करो परन्तु जैसा जानते हो वैसी ही । किन्तु चाटु (खुशामद) नहीं ॥ पं० ज्वालाप्रसाद जीने गो शब्द निघण्टु १।१। में पृथिवी का नाम होते हुवे और 'सत्य का पुत्र' होते हुवे भी वसुदेव के पुत्र कृष्णगोपाल के अवतार का वर्णन करके अपने अर्थ की निर्मूलता दर्शायी है । परमात्मा को अजन्मा कहने वाली श्रुतियों से भी विरोध किया है । सायणाचार्य को भी यह अर्थ सम्मत नहीं है । न निरुक्त ने कहीं इन्द्र पद का अर्थ 'कृष्ण' किया और मन्त्र का देवता इन्द्र है ॥ ऋग्वेद ८।६९।४ में भी ॥४॥ (१६८)

अथ पञ्चम्याः—वामदेवऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३१र २र ३२ ३ १२३ १ २
कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा ।
३ १ २ ३२
कया शचिष्ठया वृता ॥५॥ (१६९)

पदपाठः—कया ३ । नः ६ । चित्रः १ । आभुवत् क्रि० । ऊती ३ । सदा-वृधः, सखा १ । कया, शचिष्ठया, वृता ३ ॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् इन्द्र ! राजन् ! त्वम् (कया) वृत्त्या (नः) अस्माकम् (सखा) सुहृद् (आभुवत्) भवेः ? (ऊती) ऊत्या रक्षया [इत्युत्तरम्] (कया, वृता) वृत्त्या कर्मणा वा (चित्रः) विचित्रगुणकर्मस्वभावः भवेः ? (शचिष्ठया) शची प्रज्ञा तद्वत्तमया [इत्युत्तरम्] एवं च (सदावृधः) सर्वदा राज्यादिवृद्धियुक्तोभवेः ॥

ऊती इत्यत्र सुपांसुलुगिति (३।१।३९) पूर्वसवर्णदीर्घः शचीति प्रज्ञानाम निघं० ३।९ ततइष्ठनि रूपम् ॥ ऋग्वेदेऽपि ४। ३१। १ ॥५॥ (१६९)

भाषार्थः—प्रकरण से इन्द्र ! राजन् ! (कया) किस रीति से तू (नः) हमारा (सखा) मित्र (आभुवत्) होवे ? उत्तर—(ऊती) रक्षा से ॥ (कया) किस (वृता) कर्म से वा वृत्ति से (चित्रः) विचित्र गुण कर्म स्वभाव होवे ? उत्तर—(शचिष्ठया) प्रज्ञायुक्त से ॥ इस प्रकार (सदावृधः) सर्वदा वृद्धि युक्त होवे ॥

अष्टाध्यायी (३ । १ । ३९) निघण्टु ३ । ९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ४ । ३१ । में भी ॥५॥ (१६९)

अथ षष्ठ्याः—श्रुतकक्षऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
१ २ ३ १२
आच्यावयस्यूतये ॥ ६ ॥ (१७०)

पदपाठः—त्यम् २ । उ अ० । वः ६ । सत्रासाहम् २ । विश्वासु, गीर्षु ७ । आयतम् २ । आच्यावयसि क्रि० । ऊतये ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(त्यम्) तमिन्द्रं राजानम् (वः) युष्माकम् (सत्रासाहम्) सत्येन [निघं० ३ । १०] सर्वस्य जेतारम् (विश्वासु) यत्रयत्रेन्द्रो वर्ण्यते तासु सर्वासु (गीर्षु) (आयतम्) विस्तरशो वर्णितम् (उ) एव (ऊतये) रक्षायै (आच्यावयसि) आच्यावय आगमय ॥

ऋग्वेदेऽपि ८ । ९२ । ७ ॥ ६ ॥ (१७०)

भाषार्थः—(वः) तुम्हारे (सत्रासाहम्) सत्य से सब के विजयी (विश्वासु) जहां २ इन्द्र का वर्णन है उन समस्त (गीर्षु) वाणियों में (आयतम्) विस्तारपूर्वक वर्णित (त्यम्, उ) उस, ही राजा को (ऊतये) रक्षा के लिये (आच्यावयसि) बुलाओ ॥

निघण्टु ३ । १० का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९२ । ७ में भी ॥ ६ ॥ (१७०)

अथ सप्तम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१२३ २३१ २ ३१२ २२३ १ २
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २ ३१ २
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥ (१७१)

पदपाठः—सदसस्पतिम्, अद्भुतम्, प्रियम्, २ । इन्द्रस्य ६ । काम्यम्, सनिम्, मेधाम्, २ । अयासिषम्, क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्रस्य) जीवात्मनः (काम्यम्)कमनीयम् (सदसस्पतिम्) सभापतिं राजानमिव (प्रियम्) हितकरम् (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूपम् (सनिम्) कर्मफलप्रदातारम् [परमात्मानमुपास्य] (मेधाम्) प्रज्ञाम् (अयासिषम्) प्राप्नुयाम् ॥

ये मनुष्याःपरमात्मानमुपासते, सभापतिं वा राजानं निर्वाचयन्ति ते बुद्ध्यादिसर्वसंपद्युक्ता भूत्वा मोदन्ते ॥ ऋग्वेदेऽपि (१ । १८ । ६) ॥ ७ ॥ (१७१)

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) जीवात्मा के (काम्यम्) उपास्य (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूप (सदसस्पतिम्) सभापति के समान (प्रियम्) हितकारी (सनिम्) कर्मफलप्रदाता [ईश्वर की उपासना से] (मेधाम्) प्रज्ञा को (अयासिषम्) प्राप्त होऊं ।।

जो मनुष्य परमात्मा की उपासना करते हैं वे तथा जो सभापति राजा का निर्वाचन करते हैं वे उत्तम बुद्धि बल आरोग्यादि द्वारा सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ऋ० १ । १८ । ६ ॥ ७ ॥ (१७१) ॥

अथाऽष्टम्याः—वामदेवऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ क २२३१२
ये ते पन्था अधोदिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
३१ २ ३ १ २
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥ (१७२)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

पदपाठः—ये १। ते ६। पन्थाः १। अधः अ०। दिवः ६। येभिः ३। वि अ०। अश्वम् २। ऐरयः क्रि०। उत अ०। श्रोषन्तु क्रि०। नः ६। भुवः १॥

अन्वितपदार्थः—हे इन्द्र! परमेश्वर! (ये) (ते) त्वदीयाः त्वया निर्दिष्टाः (पन्थाः) पन्थानः सन्ति (येभिः) यैः पथिभिः (उत) च (अश्वम्) आशुगामिनं वायुम् (वि, ऐरयः) प्रेरयसि तेन (नः) अस्माकम् (दिवः) द्युलोकस्य (अधः) अधस्ताद्वर्त्तमानाः (भुवः) भूमयः (श्रोषन्तु) शृण्वन्ति॥

इन्द्रेण परमात्मना सूर्य्येण वा वायवः दिवोऽधस्तात्प्रेर्य्यन्ते, तैर्वायुभिरस्माकं भूमयो भूमिस्थाः प्राणिनः परस्परस्य शब्दं शृण्वन्ति इति विज्ञेयम्॥ अत्रापि सायणेन विश्वमिति मूलविरुद्धं व्याख्यातम्॥ ८॥ (१७२)

भावार्थः—हे इन्द्र! परमात्मन्! (ये) जो (पन्थाः) मार्ग (ते) तुम्हारे निर्दिष्ट हैं (उत) और (येभिः) जिन से (अश्वम्) वायु को (वि, ऐरयः) प्रेरित करते हो उस से (दिवः) द्युलोक के (अधः) अधोभाग में (नः) हमारी (भुवः) भूमियें अर्थात् भूमिस्थ लोग (श्रोषन्तु) सुनते हैं॥

अर्थात् परमात्मा वा सूर्य्य कृत प्रेरणा से वायु बहता है, जिस से भूमण्डल के निवासी एक दूसरे का शब्द सुनते हैं॥ सायणाचार्य्य ने यहां भी मूल के विरुद्ध "विश्वम्" पद की व्याख्या की है॥ ८॥ (१७२)

अथ नवम्याः—श्रुतकक्ष ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

३१ २ ३ २३२३१२

भद्रं भद्रं न आभरेषमूर्जꣳशतक्रतो।

१२३१२

यदिन्द्र मृडयासि नः॥ ९॥ (१७३)

पदपाठः—भद्रम्, भद्रम् २। नः ४। आभर क्रि० इषम्, ऊर्जम् २। शतक्रतो सं०। यत् अ०। इन्द्र सं०। मृडयासि क्रि०। नः २॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमात्मन्! (नः) अस्मभ्यम् (भद्रम् भद्रम्) उत्तममुत्तमम् (इषम्) अन्नम् निघं० २।७ (ऊर्जम्) रसम् शतपथे ५।१।२।८ (आभर) प्रापय (शतक्रतो) बहुकर्मन्! (यत्) येन (नः) अस्मान् (मृडयासि) सुखयेः॥ ऋग्वेदेऽपि ८।९३।२८॥९॥ (१७३)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर! (नः) हमारे लिये (भद्रं भद्रम्) अच्छे २ (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) रस को (आभर) प्राप्त कराइये (शतक्रतो) बहुकर्मन्! (यत्) जिस से (नः) हम को (मृडयासि) सुखी कर॥ ऋ०८।९३।२८ में भी॥९॥ (१७३)

अथ दशकृयाः—विन्दुर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

२ ३ १ २ ३ २ ३१र २र ३१२

अस्ति सोमो अयꣳसुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।

३२ ३१२ ३१२

उत स्वराजो अश्विना॥१०॥ (१७४)

* इति षष्ठी दशतिः॥६॥ *

पदपाठः—अस्ति क्रि०। सोमः, अयम्, सुतः १। पिबन्ति क्रि०। अस्य ६। मरुतः १। उत अ०। स्वराजः, अश्विना १॥

अन्वितपदार्थः—हे परमात्मन्! इन्द्र! (अयम्) अस्मदग्रभागे स्थितः (सोमः) ओषधिविशेषः (सुतः) निष्पादितः (अस्ति) भवति (स्वराजः) स्वयंप्रकाशाः (मरुतः) वायवः प्राणा वा (अस्य) सोमस्य (पिबन्ति) पिबन्तु पानं कुर्वन्तु (उत) चार्थे (अश्विना) अश्विनौ "द्यावापृथिव्यावित्येकेऽहोरात्रावित्येके सूर्याचन्द्रमसावित्येके" निरुक्ते १२।१॥ ऋग्वेदेऽपि ८।१४।४॥१०॥ (१७४)

भाषार्थः—हे परमात्मन्! इन्द्र! (अयम्) यह (सोमः) सोम (सुतः) सिद्ध (अस्ति) है (स्वराजः) स्वयं प्रकाश (मरुतः) वायु वा प्राण (अस्य)

इस सोम का (पिबन्ति) पान करैं (उत) और (अश्विना) दिन रात्रि वा द्यौ और पृथिवी वा सूर्य्य और चन्द्रमा [पान करैं] ॥

निरुक्त १२ । १ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९४ । ४ में भी ॥ १० ॥ (१७४)

* यह द्वितीयाऽध्याय में छठी दशति पूर्ण हुई ॥ ६ ॥ *

—○*:*○—

ईङ्खयन्तीति चेन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ सप्तमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः— इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः। इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ र
ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
३ १ २ ३ १ २
वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥ (१७५)

पदपाठः—ईङ्खयन्तीः, अपस्युवः २। इन्द्रम्, जातम् २। उपासते क्रि० । वन्वानासः १ । सुवीर्यम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(ईङ्खयन्तीः) बुद्धयन्तीः (अपस्युवः) अपस्यूः अपः कर्माण्यात्मन इच्छन्तीः प्रज्ञाः (सुवीर्यम्)शोभनं वीर्यं च (वन्वानासः) संभजमानाः पुरुषाः (जातम्) हृदि साक्षाद्भूतम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (उपासते) ॥

ईङ्खते इति गतिकर्मा निघं २ । १४ ज्ञानार्थः ॥ अपः इति कर्मनाम निघं० २ । १ तदिच्छन्त्यः ॥ ऋग्वेदेतु १० । १५३ । १ भेजानासः सुवीर्यम् इति पाठः ॥१॥ (१७५)

भाषार्थः—(ईङ्खयन्तीः) समझने वाली (अपस्युवः) कर्म चाहने वाली बुद्धि और (सुवीर्यम्) सुन्दर पुरुषार्थ का (वन्वानासः) सेवन करते हुवे पुरुष (जातम्) हृदय में साक्षात् हुवे (इन्द्रम्) परमेश्वर को (उपासते) उपासित करते हैं ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघण्टु २।१॥ २।१४ के प्रमाण और ऋ० १०। १५३। १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (१७५)

अथ द्वितीयायाः—गोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः।

१ २ ३ १र २र
नकि देवा इनीमसि नक्यायोपयामसि।
३ १ २
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥ (१७६)

पदपाठः—नकि अ०। देवाः १। इनीमसि क्रि०। नकि, आ अ०। योपयामसि क्रि०। मन्त्रश्रुत्यम् २। चरामसि क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—पूर्वमन्त्रोक्तविधाः (देवाः) उपासका वयम् (नकि) नैव (इनीमसि) हिंस्याम (आ) सर्वतः (नकि) नैव (योपयामसि) मोहयेम (मन्त्रश्रुत्यम्) मन्त्रेण स्मार्यं श्रुतौ विहितं कर्म (चरामसि) चरेम॥

इनीमसि इत्यत्र मीङ् हिंसायाम् क्र्यादिः ततः—मीनातेर्निगमे (पा० ७। ३। ८१) इति ह्रस्वः। इदन्तोमसि (पा०७। १। ४६) मलोपश्छान्दसः॥ योपयामसि—युपु विमोहने दिवादिर्णिजन्तः॥

हे परमात्मन्! वयं कस्यापि प्राणिनो हिंसका विमोहकाश्च न भवेम, सदा मन्त्रोक्ताचारं कुर्याम॥ ऋग्वेदे तु १०। १३४। ७ नकिर्देवा मिनीमसि नकिरायोपया० इत्यादिः पाठः॥ २॥ (१७६)

भाषार्थः—(देवाः) हम उपासक लोग (नकि, इनीमसि) हिंसा न करें (आ) सब ओर से (नकि, योपयामसि) किसी को अज्ञानयुक्त, न करें और (मन्त्रश्रुत्यम्) वेदोक्त कर्मों का (चरामसि) अनुष्ठान करें॥

अष्टाध्यायी ७ । ३ । ८१ ॥ ७ । १ । ४६ इत्यादि के प्रमाण तथा ऋ० १० । १३४ । ७ का अन्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥ (१७६)

अथ तृतीयस्याः—दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३१र २र ३१२३ १
दोषो आगाद्बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।
३२३१ २३१२
स्तुहि देवꣳसवितारम् ॥ ३ ॥ (१७७)

पदपाठः—दोषा, उ अ० । आगात् क्रि० । बृहद्गाय, द्युमद्गामन्, आथर्वण सं० । स्तुहि क्रि० । देवम्, सवितारम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(बृहद्गाय) बृहतः साम्नोगातः ! (द्युमद्गामन्) द्युमद्गते ! चमत्कृतबुद्धे ! (आथर्वण) अथर्ववेदज्ञ ! ब्रह्मन् ! यदा (दोषा) रात्रिः (उ, आगात्) आगच्छेत् तदा (सवितारम्) सर्वस्य प्रसवितारं (देवम्) दिव्यगुणम् [इन्द्रं परमात्मानं] (स्तुहि) ॥

होताऽध्वर्युरुद्गाता ब्रह्मा चेति यज्ञे चत्वारऋत्विजः क्रमेण चत्वारि कर्माणि कुर्वन्ति यथा—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्
गायत्रं त्वो गायति शकरीषु ॥
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां
यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः ॥ ऋ० १० । ७१ । ११

तथा च आपस्तम्बसूत्राणि—ऋग्वेदेन होता करोति ॥ १९ ॥ सामवेदेनोद्गाता ॥ २० ॥ यजुर्वेदेनाध्वर्युः ॥ २१ ॥ सर्वैर्ब्रह्मा ॥ २२ ॥ तत्रैतन्मन्त्रोक्तब्रह्मकर्म ह्याथर्वणं, यतः सर्वैर्ब्रह्मेति चतुर्भिर्वेदैर्ब्रह्मा करोति, न चाऽथर्ववेदमन्तरा सर्ववेदज्ञो भवितुमर्हति, तस्मादत्र

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आथर्वणो ब्रह्मोक्तः। तेन च सायं परमात्मस्तुतिर्विधेया॥ पदकारस्त्वेवमेव चिच्छेद "दोषा, उ" इति सत्यव्रतः। तथा सति सायणभाष्यं "दोषः" इत्येकपदाधारं पदकारविरुद्धमेव ॥३॥ (१७७)

भाषार्थः—(बृद्गाय) बृहत् साम के गाने वाले ! (द्युमद्गामन्) प्रकाशयुक्त ज्ञानवाले ! (आथर्वण) अथर्व वेद के ज्ञातः ! ब्रह्मन् ! तू जब कि (दोषा) रात्रि (उ) (आगात्) आवे, तब (सवितारम्) सर्वोत्पादक (देवम्) परमात्मा की (स्तुहि) स्तुति कर ॥

ब्रह्मा का काम है कि यज्ञ में रात्रि का आरम्भ होते ही अर्थात् सायं सन्ध्या समय परमात्मा का धन्यवाद करके समाप्ति करे ॥ यहां आथर्वण पद से ब्रह्मा सूचित होता है। क्योंकि—ऋचां त्वः पोषमास्ते०" ऋ०१०।७१।१ के प्रमाण से यज्ञ के होता अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा ये चार ऋत्विज् होते हैं। जिन में से आपस्तम्ब के सूत्र " ऋग्वेदेन होता० " इत्यादि १९। २०। २१। के पश्चात् २२ के अनुसार ब्रह्मा का काम चारों वेदों से पड़ता है और अथर्ववेद से चार वेद पूरे होते हैं। इस लिये ब्रह्मा को अथर्ववेद जानना भी आवश्यक है। और इसी से ब्रह्मा को आथर्वण कहा गया है। १ ऋग्वेद जानने वाला होता। २ ऋग्यजुः जानने वाला अध्वर्यु। ३ ऋग्यजुःसाम का ज्ञाता उद्गाता और ४ ऋग्यजुः साम अथर्व का ज्ञाता ब्रह्मा होता है ॥ ऋ० १०। ७१। १। आप-स्तम्ब १९। २०। २१। २२ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥

सत्यव्रत सामश्रमी कहते हैं कि "पदकार ने 'दोषा, उ' ऐसा पदच्छेद किया है।" इस लिये सायणाचार्य्य के भाष्य में "दोषः" यह एक पद कर के जो अर्थ किया है वह पदकार के विरुद्ध है ॥ ३ ॥ (१७७)

अथ चतुर्थ्यः—प्रस्कण्व ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १र २र क २र ३ २ ३ २
एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।
३ १ २ ३ २
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ ४ ॥ (१७८)

पदपाठः—एषा १। उ अ०। उषाः, अपूर्व्या १। व्युच्छति क्रि०। प्रिया १। दिवः ५। स्तुषे क्रि०। वाम् २=१। अश्विना सं०। बृहत् २ ॥

अन्वितपदार्थः—पूर्वमन्त्रे रात्र्यागमने इन्द्रस्तुतिः कर्त्तव्येत्युक्तमिदानीं दिनोदयेऽप्याह—(एषा, उ) एषैव (उषाः) सूर्य्यप्रकाशजातोषोदेवता (अपूर्व्या) या पूर्वं रात्रौ नासीत्सा (प्रिया) या प्रीणाति सा (दिवः) द्युलोकात् (व्युच्छति) प्रसरति। अतः (अश्विना) अश्विनौ सूर्य्याचन्द्रमसाविव प्रकाशकप्रकाश्यावध्यापकाध्येतारौ ! (वाम्) युवाम् (बृहत्) यथास्यात्तथा (स्तुषे) [इन्द्रं परमात्मानं] स्तुतम् ॥

उषाःकस्मादुच्छतीति सत्याराात्रेरपरः कालः। निरु० २। १८ ऋग्वेदेऽपि १। ४६। १ ॥ ४ ॥ (१७८)

भाषार्थः—पूर्व मन्त्र में सायं सन्ध्या पर परमात्मा का धन्यवाद सिखाया गया। इस में प्रातःकाल का धन्यवाद कहते हैं (एषा उ) यही (अपूर्व्या) नवीना (प्रिया) प्यारी (उषाः) पीली [अरुणोदय की वेला] निरु० २। १८ (दिवः) द्युलोक से (व्युच्छति) फैलती है अर्थात् प्रातः होगया इस लिये (अश्विना) हे पढ़ने पढ़ाने वालो ! तुम (बृहत्) बहुतायत से इन्द्र परमात्मा की (स्तुषे) स्तुति करो ॥

जिस प्रकार सूर्य प्रकाश करता और चन्द्रमा प्रकाश लेता है इसी प्रकार पढ़ाने वाला विद्या का प्रकाश देता और पढ़ने वाला लेता है। इस लिये निरुक्त के मतानुसारी "अश्विनौ" के अर्थ सूर्य और चन्द्रमा से यहां पढ़ने पढ़ाने वाले का ग्रहण है ॥ ऋ० १। ४६। १ में भी ॥ ४ ॥ (१७८)

अथ पञ्चम्याः—गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
इन्द्रोदधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।
३ १ २ ३ १र २र
जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥ (१७९)

पदपाठः—इन्द्रः १॥ दधीचः ६। अस्थभिः ३। वृत्राणि २। अप्रतिष्कुतः १। जघान क्रि०। नवतीः, नव २॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(अप्रतिष्कुतः) परैरप्रतिशब्दितः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्यइव राजा (दधीचः) "प्रत्यक्तमस्मिन्ध्यानमिति" निरु० १२। ३३ दध्यङ् तस्य समीचः पदार्थजातस्य (अस्थभिः) अस्यन्ते प्रक्षिप्यन्ते तैः किरणैरिव वाणैः (नव,नवतीः) दशोत्तराण्यष्टशतानि ८१० (वृत्राणि) आवरणकराणि तमांसीव शत्रुसैन्यानि मेघान्वा (जघान) हन्ति ॥

अस्थभिः इत्यत्र—असु क्षेपणे इत्यस्मात्, असिसञ्जिभ्यां क्थिन् (उणा० ३।१५४) इति क्थिन् ॥

संख्याङ्केषु नवाङ्कोहि सर्वैर्गुणितोऽपि नवभावमापद्यते। यथा—द्वाभ्यां गुणिता नव १८। तत्र १+८=९॥ त्रिभिर्गुणिता नव २७। तत्र २+७=९॥ चतुर्भिर्गुणिता नव ३६। तत्रापि ३+६=९॥ पञ्चभिर्गुणिता नव ४५। तत्रापि ४+५=९ ॥ एवमग्रेऽपि सर्वत्र। अतएव इयं नवात्मकैव संख्या पुनः पुनस्तद्भावमापद्यमानासु शत्रुसेनासु मेघावयवेषु वात्युचिता विन्यस्तास्ति। आदौ गुणत्रयभेदभिन्ना त्रिधा सेना, ततः कालभेदभिन्ना नवधा ९, ततः शक्तिभेदभिन्ना सप्तविंशतिधा २७। प्रभावोत्साहमन्त्रजास्त्रिविधाः शक्तयः। तत उत्तमाऽधममध्यमभेदेन एकाशीतिधा ८१। तत्रापि दशादिगन्तर्गतत्वाद्दशधात्वे दशोत्तराणि शतान्यष्ट ८१०॥ एतत्संख्याका मेघप्रकारास्तत्स्थानप्रकारा वा॥

श्रीसायणाचार्यस्तु

"अत्र शाकटायनिन इतिहासमाचक्षते—आथर्वणस्य दधीचो जीवतो दर्शनेन असुराः पराबभूवुः। अथ तस्मिन्स्वर्गते,

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

असुरैः पूर्णा पृथिव्यभवत् । अथेन्द्रस्तैरसुरैः सह योद्धुमशक्नुवंस्तमृषिमन्विच्छन्, स्वर्गगत इति शुश्राव। अथ पप्रच्छ तत्रत्यान्—इह किमस्य किञ्चित् परिशिष्टमङ्गमस्ति? इति। तस्मा अवोचन्—अस्त्येतदाश्वं शीर्ष, येन शिरसा अश्विभ्यां मधुविद्यां प्राऽब्रवीत्, तत्तु न विद्मः तद्यत्राभवदिति। पुनरिन्द्रोऽब्रवीत्—तदन्विष्यतेति। तद्वा अन्वेषिषुः। तच्छर्यणावत्यनुविद्याजह्रुः। (शर्यणावद्ध वै नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे सरः स्यन्दते) तस्य शिरसोऽस्थिभिरिन्द्रोऽसुरान् जघानेति" इत्याह ॥

ऋग्वेदेऽपि १। ८४। १३ तत्र श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती तु-

" पदार्थः—(इन्द्रः) सूर्य्यलोकः (दधीचः) ये दधीन् वाय्वादीनञ्चन्ति तान् (अस्थभिः) अस्थिरैश्चञ्चलैः किरणचलनैः। अत्र, छन्दस्यपि दृश्यते। अ० ७। १। ७६ अनेनाऽनङादेशः। (वृत्राणि) वृत्रसम्बन्धिभूतानि जलानि (अप्रतिष्कुतः) असंचलितः (जघान) हन्ति (नवतीः) नवतिसंख्याकाः (नव) नव दिशामवयवाः ॥

अन्वयः—हे सेनेश यथाप्रतिष्कुतइन्द्रोऽस्थभिर्नवनवतीर्दधीचो वृत्राणि कणीभूतानि जलानि जघान हन्ति तथा शत्रून्हिन्धि॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तो०—मनुष्यैः स एव सेनापतिः कार्यो यः सूर्यवच्छत्रूणां हन्ता स्वसेनारक्षकोस्तीति वेद्यम्" ॥

सायणोक्तेतिहासादन्यथा विवरणकारमतं श्रीसत्यव्रतः सामश्रम्याह। यथा—"कालषञ्जा नाम असुराः। असुरैर्बाध्यमाना देवा ब्रह्माणमुपगम्योक्तवन्तः—भगवन्! कालषञ्जैरसुरैर्बाध्या-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

महे । तेषां मारणोपायं विधत्स्वेति । तच्छ्रुत्वा स तानुवाच । दधीचिर्नाम ऋषिस्तमुपगम्य ब्रूत, स मारणोपायं विधास्यति । ते तच्छ्रुत्वा तथेत्यङ्गीकृत्य तं दधीचिमुपगम्य उक्तवन्तः—भगवन् ! अस्मदीयान्यस्त्राणि शुक्रस्तेषां पुरोधा अपहरति, तानि रक्षस्व । ततः स ऋषिस्तानुवाच मम मुखे प्रक्षिपध्वम् । तत इन्द्रादिभिर्देवैः समरुद्गणैः तस्य मुखे प्रक्षिप्तानि, पुनः कालेन देवासुरसंग्रामे पर्य्युपस्थिते एत्य देवा ऊचुः—भगवन् ! तान्यस्त्राणि प्रयच्छस्वास्माकम् । ततस्तेनोक्तम्—तानि मे जीर्णानि न तानि पुनः प्राप्तुं शक्यानि । ततः प्रजापतिमुखा देवा ऊचुः—भगवन् ! प्राणत्यागं कुरुष्व । इति श्रुत्वा पुनः कृतश्च तेन प्राणत्यागः । तस्य दधीचः स्वभूतैरस्थभिरिन्द्रो वृत्राणि जघान इति" ॥

वेदेष्वितिहासस्याऽपौरुषेयत्वव्याघातकत्वात्, इतिहासस्य परस्परविरुद्धत्वात् मूलविरुद्धत्वाच्च नास्मन्मनो मन्यते ॥ ५ ॥ (१७९)

भाषार्थः—(अप्रतिष्कुतः) जिस के सामने कोई न ठहर सके ऐसा (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्य के तुल्य राजा (दधीचः) लक्ष्यपर ध्यान पहुंचने योग्य पदार्थ के रचित (अस्थभिः) किरण तुल्य बाणों से (नव, नवतीः) नौ नव्वे ९० (वृत्राणि) रोकने वाले अन्धकार वा मेघ तुल्य शत्रुसेना को (जघान) मारता है वा मारे ॥

संख्या के अङ्कों में ९ अङ्क ऐसा है जो किसी संख्या के साथ गुणो, योग से ९ ही रहता है । जैसे ९ को २ से गुणो तो १८ हुवे, १८ में १ और ८ मिलाने से फिर ९ ही हुवे । ९ को ३ से गुणा तो २७ हुवे २+७=९ हुवे । ९ को ४ से गुणा तो ३६ हुवे ३+६=९ ही आये । फिर ९ को ५ से गुणिये तो भी ४५ हुवे ४+५=९ ही आये। ऐसा ही आगे जानो । जिस कारण ९ की संख्या दूसरी

किसी संख्या से हनन करने पर भी पुनः पुनः उसी अपने स्वरूप में होजाती है इस कारण नव नव्वे के अङ्क से शत्रुसेना को गिना है ॥ अर्थात् वार बार जुड़ जुड़ कर उसी स्वरूप से सामने आवे॥

सत्त्व रजः तमः इन तीन गुणों के भेद से तीन प्रकार की सेना होती है। फिर भूत भविष्यत् वर्त्तमान इन ३ कालकृत भेद से ९ प्रकार की हुई फिर प्रभाव उत्साह और मन्त्र इन ३ शक्तियों के भेद से २७ गुणी हुई। फिर उत्तम मध्यम और अधम भेद से ८१ प्रकार की हुई। और दश दिशा-के भेद से ८१० प्रकार हुए ॥

सायणाचार्य्य इस में इतिहास लिखते हैं कि–"शाकटायनी लोग इस में इतिहास कहते हैं कि जीवते हुवे आथर्वण दधीचि के दर्शन मात्र से असुर हार जाते थे। फिर जब दधीचि स्वर्ग सिधारा तौ समस्त पृथिवी असुरों से भर गई। तब इन्द्र ने उन असुरों से युद्ध करने में असमर्थ हो, इस ऋषि (दधीचि) को ढूंढते हुवे सुना कि वह तौ स्वर्ग को सिधार गया। तब इ-न्द्र ने वहां वालों से पूंछा कि यहां उस का कुछ शेष अङ्ग कोई है? उस (इन्द्र) से कहा कि उस का शिर शेष है जिस शिर से उस ने अश्वियों को मधुविद्या कही थी। परन्तु हम नहीं जानते कि वह कहां है?। फिर इन्द्र ने कहा कि उसे ढूंढिये। उन्हों ने ढूंढा। उसे शर्यणावती में पाय कर ले आये। (शर्यणावत् कुरुक्षेत्र का नाम है) उस के शिर की हड्डियों से इन्द्र ने असुरों को मारा॥"

ऋग्वेद १।८४।१ में भी ऐसी ही ऋचा है और उस पर स्वामी दया नन्द सरस्वती जी इस प्रकार भाष्य करते हैं कि–

"पदार्थः–हे सेनापते जैसे (अप्रतिष्कुतः) सब ओर से स्थिर (इन्द्रः) सूर्य लोक (अस्यभिः) अस्थिर किरणों से (नव नवतीः) निन्नांनवे प्रकार के दिशाओं के अवयवों को प्राप्त हुवे (दधीचः) जो धारण करने हारे वायु आदि को प्राप्त होते हैं उन (वृत्राणि) मेघ के सूक्ष्म अयवयरूप जलों का (जघान) हनन करता है वैसे तू अनेक अधर्मी शत्रुओं का हनन कर ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–वही सेनापति होने के योग्य होता है जो सू-र्य्य के समान दुष्ट शत्रुवों का हन्ता, और अपनी सेना का रक्षक है ॥"

सायणाचार्य्योक्त इतिहास से विरुद्ध विवरणकार का मत सत्यव्रत सा मश्रमी जी बताते हैं कि–

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

"कालषञ्ज नाम असुर थे। उन असुरों से सताये हुवे देवताओं ने ब्रह्मा के समीप जाकर कहा। भगवन्! कालषञ्ज असुर सताते हैं। उन के मारने का उपाय कीजिये। यह सुन वह (ब्रह्मा उन से बोला कि दधीचि नाम ऋषि है उस से जाकर कहो, वह मारने का उपाय करेगा। वे (देवता) यह सुन, बहुत अच्छा। कह कर उस दधीचि के समीप गये और कहा कि भगवन्! उन (असुरों) का पुरोहित शुक्राचार्य्य हमारे अस्त्रों का अपहरण कर लेता है। उन (अस्त्रों) की रक्षा कीजिये। तब उस ऋषि ने उन (देवतों) से कहा कि मेरे मुख में फेंक दो। तब मरुद्गणों सहित इन्द्रादि देवतों ने (अस्त्र) उस के मुख में फेंक दिये। फिर समय पाय देवाऽसुरसङ्ग्राम हुवा तो देवतों ने आकर कहा कि भगवन्! वे हमारे अस्त्र दीजिये। तब उस ने कहा कि वे तो मुझे पच गये अब वे फिर नहीं मिल सक्ते। तब ब्रह्मादि देवतों ने कहा कि भगवन्! प्राण त्याग कीजिये। यह सुन उस ने प्राण त्याग दिये। उस दधीचि की अस्थि=हड्डियों से इन्द्र ने वृत्रों को मारा" ॥

वेदों का ऐतिहासिक अर्थ उन की अपौरुषेयता का बाधक, और परस्पर सायण और विवरण का विरोध होने तथा मूल में इस प्रकार की कथा न होने से यह अनर्थ हमारे मन को नहीं भावता ॥

निरुक्त १२। ३३ उणादि ३। १५४ वा० ७। १। ७६ तथा सायणाचार्य्यादि की सम्मतियां संस्कृतभाष्य में ज्यों की त्यों उद्धृत हैं ॥५॥ (१७९)

अथ षष्ठ्याः—मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

२उ ३ १र २र ३ १ २ २१ २
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
३१ २३ १र २र
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥ (१८०)

पदपाठः—इन्द्र सं०। एहि, मत्सि क्रि०। अन्धसः २। विश्वेभिः, सोमपर्वभिः ३। महान्, अभिष्टिः १। ओजसा ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) राजन्! त्वम् (ओजसा) बलेन (महान्) प्रबलः (अभिष्टिः) अभितःशत्रूनिष्यति गच्छति सः (विश्वेभिः) समस्तैः (सोमपर्वभिः) सोमानां पर्वभिः सह वर्त्तमा-

नानि (अन्धसः) अन्नानि (एहि) प्राप्नुहि (मत्सि) माद्य हृष्टो भव ॥

राज्ञा हि सोमाक्तानि अन्नानि भोक्तव्यानि । महता बलवता शत्रूणामभिभवित्रा हर्षवता च भवितव्यम् ॥

अभिपूर्वकादिष गतौ इति दैवादिकाद्धातोः—मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः (पा० ३ । ३ । ९६) इति व्यत्ययेन कर्त्तरि क्तिन् । एमन्नादिषु छन्दसि पररूपं वक्तव्यम् (वा० ६।१।९४) इति वार्त्तिकेन पूर्वरूपे अभिष्टिः ॥ ऋग्वेदे १ । ९ । १ । ऽपि ॥६॥ (१८०)

भाषार्थः—(इन्द्र) राजन् ! तुम (ओजसा) बल से (महान्) बड़े और (अभिष्टिः) शत्रुओं का दमन करने वाले (विश्वेभिः) समस्त (सोमपर्वभिः) सोम की गांठों सहित (अन्धसः) अन्नों को (एहि) प्राप्त हूजिये और (मत्सि) हृष्ट हूजिये ॥

राजा को सोम में पगे अन्न खाकर बलवान् हृष्ट पुष्ट शत्रुदमनकर्त्ता होना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ३ । ३ । ९६ ॥ ६ । १ । ९४ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ९ । १ में भी ॥ ६ ॥ (१८०)

अथ सप्तम्याः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमागहि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
महान्महीभिरूतिभिः ॥७॥ (१८१)

पदपाठः—आ, तु अ० । नः २ । इन्द्र, वृत्रहन् सं० । अस्माकम् ६ । अर्धम् २ । आगहि क्रि० । महान् १ । महीभिः, ऊतिभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(वृत्रहन्) अवरोधकानां दस्युप्रभृतीनां हन्तः ! (इन्द्र) राजन् वा परमात्मन् ! (महीभिः) महतीभिः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(ऊतिभिः) रक्षाभिः सह (महान्) प्रभूतः त्वम् (अस्माकम्) (अर्धम्) ऋद्धिम् (आगहि) प्रापय (तु) पुनः (नः) अस्मान् (आ) प्राप्नुहि ॥

ऋग्वेदेऽपि ४ । ३२ । १ ॥ ७ ॥ (१८१)

भाषार्थः—(वृत्रहन्) रोकने वालों के हन्तः ! (इन्द्र) राजन् ! वा परमेश्वर ! (महीभिः) बड़ी (ऊतिभिः) रक्षादिकों सहित (महान्) बड़े आप (अस्माकम्) हमारी (अर्धम्) ऋद्धि को (आगहि) प्राप्त कराइये (तु) और (नः) हम को (आ) प्राप्त हूजिये ॥

ऋ० ४ । ३२ । १ में भी ॥ ७ ॥ (१८१)

अथाऽष्टम्याः—वत्स ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २३ ३ १ २
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्त्तयत् ।
३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८ ॥ (१८२)

पदपाठः—ओजः १ । तत् अ० । अस्य ६ । तित्विषे क्रि० । उभे २ । यत् अ० । समवर्त्तयत् क्रि० । इन्द्रः १ । चर्मेव अ० । रोदसी २ ॥

अन्वितपदार्थः—(अस्य) राज्ञः परमात्मनो वा (यत्) यदा (ओजः) बलं (तित्विषे) प्रदीप्तं भवति (तत्) तदा (इन्द्रः) राजा परेशो वा (उभे) द्वे (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (चर्मेव) यथा चर्म इतस्ततो रक्षार्थं संवर्त्तयन्ति तद्वत् (समवर्त्तयत्) संवर्त्तयति ॥

यदा बलवता राज्ञा परमेश्वरेण च प्रजाया रक्षा क्रियते तदा द्यावाभूमी चर्मेव समन्ततो रक्षां कुरुत इति भावः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ६ । ५ ॥ ८ ॥ (१८२)

भाषार्थः—(यत्) जब कि (अस्य) इस राजा वा परमात्मा का (ओजः) बल (तित्विषे) प्रकाश करता है (तत्) तब (इन्द्रः) राजा वा पर-

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

मेश्वर (उभे) दोनों (रोदसी) पृथिवी और द्युलोकों को (चर्मेव) ढाल के समान (समवर्तयत्) चारों ओर से वर्त्तमान कराता है ॥

अर्थात् जब परमात्मा और पूर्ण बलिष्ठ राजा न्यायपरायणता से प्रजा की रक्षा के लिये अपने बल का प्रकाश करते हैं तब द्युलोक और पृथिवी लोक चर्म=ढाल के समान बचाने वाले बन जाते हैं । अर्थात् दैवी वा पार्थिवी कोई बाधा नहीं होती ॥ऋ० ८ । ६ । ५ में भी ॥ ८ ॥ (१८२)

अथ नवम्याः—शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।

३ १ २

वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥ (१८३)

पदपाठः—अयम् १ । उ अ० । ते ६ । समतसि क्रि० । कपोतइव अ० । गर्भधिम्, वचः २ । तत्, चित् अ० । नः ६ । ओहसे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—इन्द्र ! राजन् ! (ते) त्वदीयः ! (अयम् उ) अयं प्रजाजनोऽपि (गर्भधिम्) गर्भधारिणीं कपोतीं (कपोत-इव) (समतसि) समतति कामयमानः (तत्) तस्मात् (नः) अ-स्माकं (वचः) प्रार्थनम् (चित्) अपि (ओहसे) प्राप्नुहि शृणु इत्यर्थः ॥

कपोतो हि स्वाभाविकः कामी, स यथा कामयमानः कपोतीं सं-गच्छते तथा प्रजयाऽपि श्रद्धया कामयमानया राजा संगमयितव्यः ॥

यद्वा इन्द्र ! परमात्मन् ! (कपोतः) के जले पोतः प्लवइव (अयम्) जीवात्मा (उ) अपि (गर्भधिम्) समुद्रवन्निमज्जन-भयोपेतं गर्भवासम् (समतसि) सततं गच्छति इत्यादि योज्यम् ॥ ऋग्वेदेऽपि १ । ३० । ४ ॥ ९ ॥ (१८३)

भाषार्थः—हे इन्द्र ! राजन् ! (ते) आप का (अयम्) यह प्रजाजन (उ) भी (गर्भधिम्) गर्भधारिणी कबूतरी को (कपोतइव) कबूतर के समान कामना करता हुवा (समतसि) प्राप्त होता है । (तत्) इस कारण (नः) हम

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रजाजनों के (वचः) प्रार्थना को (चित्) भी (ओहसे) प्राप्त हूजिये सुनिये ॥

कबूतर स्वाभाविक अत्यन्त कामी होता है। जैसा कबूतर को कबूतरी में अत्यन्त अनुराग होता है, वैसे ही न्यायपरायण राजा में प्रजा को अत्यन्त अनुराग होना चाहिये। ऐसा होता है तब राजा अवश्य प्रजा की पुकार सुनता है ॥

अथवा—इन्द्र ! हे परमात्मन् ! (ते) आप का (अयम् उ) यह प्राणी भी (गर्भधिम्) गर्भवास रूप समुद्र को (कपोतइव) जल की नौका के समान (समतसि) निरन्तर प्राप्त होता है (तत्) इस से (चित्) भी (नः) हम प्राणियों की (वचः) पुकार को (ओहसे) प्राप्त हूजिये वा सुनिये ॥ ऋ० १ । ३० । ४ ॥ ९ ॥ (१८३)

अथ दशम्याः—वातायन ऊर्ध्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २३ १ २ ३२

वात आवातु भेषजꣳ शम्भु मयोभु नो हृदे ।

२ १ २

प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १० ॥ (१८४)

* ॥ इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ *

पदपाठः—वातः १ । आवातु क्रि० । भेषजम् २ । शम्भु, मयोभु १ । नः ६ । हृदे ४ । प्र अ० । नः ६ । आयूꣳषि २ । तारिषत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—हे इन्द्र ! राजन् ! वा परमेश्वर ! भवता तादृशी चेष्टा कृपा वा विधेया यथा (वातः) वायुः (नः) अस्माकं (हृदे) हृदयाय (शम्भु) रोगशमनस्य भावयितृ (मयोभु) मयसः सुखस्य भावयितृ (भेषजम्) औषधम् (आवातु) आगमयतु। अपि च (नः) अस्माकम् (आयूꣳषि) (प्र, तारिषत्) प्रवर्धयतु ॥

राज्ञः सुप्रबन्धेन परमात्मनः कृपया च वायुशुद्धया मनुष्या नीरोगा बलवन्तः सुखिनो दीर्घायुष्काश्च जायन्ते ॥ ऋग्वेदेऽपि १० । १८६ । १ ॥ १० ॥ (१८४)

* इति द्वितीयाऽध्याये सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ *

भाषार्थः—हे इन्द्र! राजन्! वा परमात्मन्! (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिये (शम्भु) रोगशमनकारक (मयोभु) सुखदायक (भेषजम्) औषध को (वातः) वायु (आवातु) बहावे और (नः) हमारी (आयूंषि) आयुवों को (प्र,तारिषत्) बढ़ावे ॥

राजा के सुप्रबन्ध और परमात्मा की कृपा से वायु की शुद्धि द्वारा मनुष्यों को औषध तुल्य वायु सेवन करने से बल नीरोगता दीर्घायुष्कता और सुख प्राप्त होता है ॥ऋ० १०। १८६। १॥ १०॥ (१८४)

* यह दूसरे अध्याय में सातवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ७ ॥ *

—*—

यं रक्षन्तीति चेन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ नव ॥ १ ॥

अथाऽष्टमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—कण्व ऋषिः। इन्द्रो देवता गायत्री छन्दः ॥

१र २र ३१२ ३ र २ ३ १ २ ३ २
यꣳरक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा।
३ १ २ ३ १ २
नकिः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥ (१८५)

पदपाठः—यम् २। रक्षन्ति क्रि०। प्रचेतसः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा १। नकिः अ०। सः १। दभ्यते क्रि०। जनः १॥

अन्वितपदार्थः—हे इन्द्र! राजन्! वा परमात्मन्! (यम्) भवदनुकूलं जनम् (वरुणः) वरणीयः पुरुषः (मित्रः) सुहृद् (अर्यमा) न्यायकृच्चेति त्रयः (प्रचेतसः) प्रकृष्टज्ञानाः (रक्षन्ति, सः, जनः) (नकिः) न (दभ्यते) हिंस्यते॥

ऋग्वेदे तु १।४१।१ नूचित्सदभ्यते, इति पाठः ॥१॥ (१८५)

श्लोकार्थः—यंरक्ष० इस दशति में गायत्री छन्द वाली इन्द्र देवता की नव ऋचा हैं ॥ १ ॥

भाषार्थः—हे इन्द्र! परमात्मन्! वा राजन्! (यम्) जिस जन की (प्रचेतसः) महाज्ञानी (वरुणः) वरणीय (मित्रः) सुहृद् (अर्यमा) न्यायकारी (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (सः) वह (जनः) जन (नकिः) नहीं (दभ्यते) मारा जाता ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋग्वेद १ । ४१ । १ में " नूनंचित्सदभ्यते " पाठ है ॥ १ ॥ (१८५)

अथ द्वितीयायाः—वत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १र २ २ ३ २
गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
३ २ ३ १ २
वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥ (१८६)

पदपाठः—गव्या ३ । उ, सु अ० । नः ६ । यथा, पुरा अ० । अश्वया ३ । उत अ० । रथया ३ । वरिवस्य क्रि० । महोनाम् ६ ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्य ! त्वं (यथा पुरा) तथेदानीमपि (नः) अस्माकं (गव्या) गवामिच्छया (उ) च (अश्वया) अश्वानामिच्छया (उत) च (रथया) रथानामिच्छया (महोनाम्) धनानामिच्छया इन्द्रं (सु, वरिवस्य) परिचर ॥

ये मनुष्याः गवाश्वरथधनधान्यादिकमिच्छन्ति ते इन्द्रं राजानं परिचरन्तु ॥

गोरिच्छा गव्या । छन्दसि परेच्छायामपि क्यच् (वा० ३ । १ । ८) इति क्यचि, न छन्दस्यपुत्रस्य (पा० ७ । ४ । ३५) इतिदीर्घेत्वयोरभावे गव्या तया गव्या गव्ययेत्यर्थः, सुपां सुलुगिति (पा० ७ । १ । ३४) पूर्वसवर्णः ॥ एवमेवाऽश्वया रथयेति साध्यम् ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ४६ । ९ "वरिवस्य महामह" इत्यन्तरम् ॥ २ ॥ (१८६)

भाषार्थः—हे मनुष्य ! तू (यथा पुरा) पूर्व के समान (नः) हमारी (गव्या) गौ की इच्छा (उ) और (अश्वया) घोड़े की इच्छा (उत) और (रथया) रथ की इच्छा और (महोनाम्) सत्कारार्ह धनों की इच्छा से इन्द्र परमेश्वर को (सु, वरिवस्य) सेवित कर ॥

मनुष्यों को परमात्मा की सेवा भक्ति से गौ घोड़े रथ धन धान्यादि सर्व सुख भोग की इच्छा पूर्ण करनी चाहिये ॥

अष्टाध्यायी (वा०) ३ । १ । ८ ॥ ७ । ४ । ३५ ॥ ७ । १ । ३४ इत्यादि के प्रमाण तथा ऋ० ८ । ४६ । ९ के पाठ का अन्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥ (१८६)

अथ तृतीयस्याः—वत्सऋषिः। इन्द्रो देवता गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इमास्तइन्द्र पृश्नयोघृतं दुहत आशिरम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

एनामृतस्य पिप्युषीः ॥३॥ (१८७)

पदपाठः—इमाः १ । ते ६ । इन्द्र सं० । पृश्नयः १ । घृतम् २ । दुहते क्रि० । आशिरम् २ । एनाम् २ । ऋतस्य ६ । पिप्युषीः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! वा सूर्य ! (ते) त्वया रचिताः त्वदीया वा (इमाः) (ऋतस्य) उदकस्य (पिप्युषीः) वर्धयित्र्यः (पृश्नयः) गावः किरणाः (एनाम्) एतत् (आशिरम्) द्रवस्वभावम् (घृतम्) उदकम् (दुहते) प्रपूरयन्ति ॥

ईश्वररचिताः सूर्यकिरणाः जलं वर्धयन्ति दुहन्ति वर्षयन्ति च । पृश्निरादित्यो भवति प्राश्नुतएनं वर्णइति नैरुक्ताः। निरु० २ । १४ घृतमित्युदकनाम निघं० १ । १२ ॥ ऋतमिति च तत्रैव ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ६ । १८ ॥ ३ ॥ (१८७)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! वा सूर्य (ते) तेरी रची हुई वा तेरी हैं (इमाः) ये (ऋतस्य) जल की (पिप्युषीः) बढ़ाने वाली (पृश्नयः) किरणें (एनाम्) इस (आशिरम्) टपकने वाले (घृतम्) जल को (दुहते) पूरती वा वर्षाती हैं ॥

निरुक्त २ । १४ निघण्टु १ । १२ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ऋ० ८ । ६ । १८ में भी ॥ २ ॥ (१८७)

अथ चतुर्थ्याः—श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ १ २ र

अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत ।

१र २र ३ १ २
यत्सोमे सोम आभुवः ॥ ४ ॥ (१८८)

पदपाठः—अया, धिया ३ । च अ० । गव्यया ३ । पुरुणामन्, पुरुष्टुत सं० । यत् अ० । सोमे, सोमे ७ । आभुवः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(पुरुणामन्) बहुनामन् ! (पुरुष्टुत) बहुस्तुत इन्द्र ! परमात्मन् ! (यत्) यदा त्वं (सोमे सोमे) सौम्यगुणयुक्ते उपासके उपासके (आभुवः) कृपया साक्षादनुभूतो भवसि तदा (गव्यया) आत्मनो गवामिच्छया (अया) अनया (धिया) बुद्ध्या (च) समुच्चये । सहिता भवेमेति शेषः ॥

हे परमेश्वर ! यदा भवान्कृपया समन्ततो रक्षां करोति प्रसादं च, तदा गवादिधनेच्छया बुद्ध्या च आप्यायिता भवामः ॥

इन्द्रस्यैव वेदेषु बहूनि नामानि बहूनि स्तोत्राणि चेति पूर्वं व्याख्यातमेव ॥ ८ । ९३ । १७ ॥ ४ ॥ (१८८)

भाषार्थः—(पुरुणामन्) बहुकीर्ते ! (पुरुष्टुत) वेदों में सब से अधिक स्तुत ! इन्द्र ! परमात्मन् ! (यत्) जब कि आप (सोमे सोमे) प्रत्येक सौम्यपुरुष पर (आभुवः) कृपा करते हुवे साक्षात् हों तब हम (अया) इस (धिया) बुद्धि (च) और (गव्यया) गवादि धन की इच्छा से भरपूर हों ॥

इन्द्र ही के वेदों के सब से अधिक नाम और स्तुति हैं । यह पूर्व सिद्ध कर आये हैं ॥ ऋ० ८ । ९३ । १७ ॥ ४ ॥ (१८८)

अथ पञ्चम्याः—मधुछन्दाऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।

३१ २ ३ १ २
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ५ ॥ (१८९)

पदपाठः—पावका १ । नः ६ । सरस्वती १ । वाजेभिः ३ । वाजिनीवती १ । यज्ञम् २ । वष्टु क्रि० । धियावसुः १ ॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् हे इन्द्र! परमात्मन्! (नः) अस्माकं (सरस्वती) ज्ञानवती वाक् (वाजेभिः) अन्नादिभिः (वाजिनीवती) अन्नयुक्ता (पावका), भवतु (धिया—वसुः) शुद्धकर्मणा शुद्धप्रज्ञया वा सहवासप्रापिका सा वाक् (यज्ञम्) अग्निहोत्रादिशिल्पान्तम् (वष्टु) कामयताम् ॥

सर्वैः सदा सत्यविद्याभाषणयुक्ता क्रियाकुशला सर्वोपकारिणी वाणी एष्टव्या ॥

पूञ् पवने इत्यस्माद्धातोर्भावे घञ् । तस्मिन्सति कै शब्दे इत्यस्माद्धातोः—आतोऽनुपसर्गे कः (पा० ३ । २ । ३) इति कः। उपपदमतिङ् २।२। १९ इति समासे पावका ॥ गत्यर्थान्तर्गतज्ञानार्थकात्सृ धातोः-सर्वधातुभ्योऽसुन् (उणा०४। १८९) इति असुन् प्रत्यये सरोज्ञानं तद्वती सरस्वती । वाङ्नाम निघं० १ । ११ ॥ यज्ञो वै महिमा। शतपथे ६। २। ३। १८ यज्ञोवै कर्म श० १। १। २। १ ॥ धियावसुरिति—तत्पुरुषे कृति बहुलम् (पा० ६। ३। १४) इति तृतीयाया अलुक् । इमामृचं यास्क एवं व्याचष्टे—"पावका नः सरस्वत्यन्नैरन्नवती यज्ञं वष्टु धियावसुः कर्मवसुः। निरु० ११ । २६ ॥ ऋग्वेदेऽपि १ । ३ । १० ॥ ५ ॥ (१८९)

भाषार्थः—प्रकरण से हे इन्द्र! परमात्मन्! (नः) हमारी (सरस्वती) ज्ञानयुक्त वाणी (पावका) पवित्र उपदेशिका और (वाजेभिः) अन्नादि से (वाजिनीवती) अन्नादि युक्त हो तथा (धियावसुः) शुद्ध कर्म वा प्रज्ञा के साथ बसाने वाली (यज्ञम्) अग्निहोत्रादि शिल्पान्त यज्ञ को (वष्टु) चाहने वाली हो ॥

अष्टाध्यायी ३ । २ । ३ ॥ ६ । ३ । १४ ॥ २ । २ । १९ ॥ उणादि । ४

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१८९ ॥ शतपथ ६ । २ । ३ । १८ ॥ १ । १ । २ । १ ॥ निघण्टु १ । ११ ॥ निरुक्त ११ । २६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ३ । १० में भी ॥५॥ (१८९)

अथ षष्ठ्याः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्रीछन्दः ॥

२ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २

क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रꣳसोमस्य तर्पयात् ।

२ ३ २३ १२

स नो वसून्याभरत् ॥ ६ ॥ (१९०)

पदपाठः—कः १ । इमम् २ । नाहुषीषु ७ । आ अ० । इन्द्रम् २ । सोमस्य ६=३ । तर्पयात् क्रि० । सः १ । नः । ४ वसूनि २ । आभरत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(कः) प्रजापतिः परमेश्वरः कृपया (नाहुषीषु) मानुषीषु प्रजासु निमित्तासु (इमम्) मेघवर्त्तिनम् (इन्द्रम्) वर्षकं देवम् (सोमस्य) सोमेन (आ तर्पयात्) तर्पयेत् (सः) इन्द्रः (नः) अस्मभ्यम् (वसूनि) धान्यादिकानि धनानि (आभरत्) आहरेत् ॥

परमात्मा कृपया तावन्तं सोममुत्पादयेत् यावता मेघवर्त्तिन इन्द्राख्यस्य विद्युतः सम्यगाप्यायनं स्यात् । तेन चास्मासु सुवृष्टयादिना धनधान्यादेर्वृद्धिकरः स स्यात् ॥

नहुष इति मनुष्यनाम निघं० २ । ३ ॥ ६ ॥ (१९०)

भाषार्थः—(कः) परमेश्वर (नाहुषीषु) मानुषी प्रजाओं के निमित्त (इमम्) इस (इन्द्रम्) वर्षाने वाले को (सोमस्य) सोम से (तर्पयात्) तृप्त करे (सः) वह इन्द्र (नः) हमारे लिये (वसूनि) धन धान्यादि (आभरत्) प्राप्त करावे ॥

परमात्मा ऐसी कृपा करे कि वृष्टिकारक विद्युत् सोम से तृप्त अर्थात् पूर्ण आप्यायित हो, जिस से वह वृष्टि द्वारा धान्यादि का वर्धक हो ॥

निघण्टु २ । ३ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥ (१९०)

अथ सप्तम्याः—इरिम्बिठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

१ २ २ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आया हि सुषुमा हि तइन्द्र सोमं पिबाइमम् ।
२उ ३ १ २ ३ १२
एदं बर्हिः सदोमम ॥ ७ ॥ (१९१)

पदपाठः—आयाहि, सुषुम क्रि० । हि० अ० । ते ४ । इन्द्र सं० । सोमम् २। पिब क्रि० । इमम् २ । आ अ० । इदम्, बर्हिः २ । सदः क्रि० । मम ६॥

अन्वितपदार्थः (इन्द्र) परमेश्वर! (आयाहि) अस्मान्प्राप्नुहि (ते) तुभ्यम् (हि) निश्चयेन (सोमम्) सौम्यं भावम् (सुषुम) आत्मन्युत्पादयामः । अतः प्रार्थ्यते (इमम्) भावम् (पिब) गृहाण स्वीकुरु (मम) उपासकस्य मम (इदम्) (बर्हिः) ज्ञानयज्ञस्य स्थलं हृदयम् (आ, सदः) आ, निषीद ॥

भौतिकपक्षे—(इन्द्र) विद्युत् (आयाहि) यज्ञं प्राप्नुयाः । वयं (ते) (सोमम्) ओषधिविशेषम् (सुषुम) अभिषुतवन्तः (हि) तस्मात् (इमम्) सोमम् (पिब) शोषय (मम) यजमानस्य (इदम्) (बर्हिः) यज्ञस्थलम् (आ, सदः) समन्तात्प्राप्नुहि ॥

यदा कश्चिद्यज्ञकर्त्ता सोममभिषुत्य इन्द्रायाहुतिं दातुं प्रयतते तदा विद्युद्रूप इन्द्रः समन्तत आगत्य हूयमानं सोमं गृह्णाति ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । १७ । १ ॥ ७ ॥ (१९१)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (आयाहि) हमें प्राप्त हूजिये हम (ते) आप के लिये (सोम्) सौम्यगुणविशिष्ट हृदय के शुद्ध भाव को (सुषुम) उत्पन्न करते हैं (इमम्) इस भाव का (पिब) ग्रहण कीजिये । (मम) मुझ उपासक के (इदम्) इस (बर्हिः) ज्ञानयज्ञ स्थल को (आ—सदः) अपनी प्राप्ति से पवित्र कीजिये ॥

भौतिकपक्ष में—(इन्द्र) इन्द्र नामक विद्युत् ! (आ याहि) प्राप्त हो

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हमने (ते) तेरे लिये (सोमम्) सोम रस (सुषुम) तैयार किया है (इमम्) इस को (पिब) पी (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) यज्ञस्थल को (आ–सदः) प्राप्त हो ॥

तात्पर्य यह है कि यज्ञकर्त्ता जब सोमरस को तैयार करके यज्ञ में होम करते हैं तो इन्द्र नामक विद्युत् उसे सब ओर से आकर शोषण करता है तब उत्तम वर्षा होती है ॥ ऋ० ८ । १७ । १ में भी ॥ ७ ॥ (१९१)

अथाऽष्टम्याः–वारुणिः सत्यधृतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३१२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ २
महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्याऽर्यम्णः ।
३ २३ १ २
दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥ (१९२)

पदपाठः–महि १ । त्रीणाम् ६ । अवः १ । अस्तु क्रि० । द्युक्षम् १ । मित्रस्य, अर्यम्णः ६ । दुराधर्षम् १ । वरुणस्य ६ ॥

अन्वितपदार्थः–हे इन्द्र! परमात्मन् ! (मित्रस्य) सुहृदः (वरुणस्य) वरणीयस्य (अर्यम्णः) न्यायकारिणः एवं (त्रीणाम्) विशेषणत्रयविशिष्टस्य तव (महि) महत् (द्युक्षम्) दीप्तम् अतएव (दुराधर्षम्) केनापि धाषतुमशक्यम् (अवः) रक्षणम् (अस्तु) अस्मभ्यमिति शेषः ॥

अत्र मित्रत्व वरणीयत्वन्यायकारित्वानां गुणानामकस्मिन्नेव परमात्मनि समावेशात् त्रीणामिति त्रित्वं गुणकृतमेव बोध्यं न स्वरूपकृतम् ॥ "न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थोनाप्युच्यते" इत्यादि श्रुतेः (अथर्व १३ । ४ । १६) ॥ ऋग्वेदे तु महित्रीणामवोस्तु इत्यन्तरम् १० । १८५ । १ ॥ ८ ॥ (१९२)

भाषार्थः–हे इन्द्र ! परमात्मन् ! (मित्रस्य) मित्र (वरुणस्य) वरणीय और (अर्यम्णः) न्यायकारी (त्रीणाम्) इन तीनों विशेषणों वाले तुझ

ईश्वर की किई हुई (महि) बड़ी (द्युक्षम्) प्रदीप्त (दुराधर्षम्) जिसे कोई दबा न सके ऐसी (अवः) रक्षा (अस्तु) हो ॥

यहां मित्र वरणीय और न्यायकारी ये तीनों विशेषण परमात्मा के हैं इस लिये 'त्रीणाम्' पद से तीनों विशेषणों वाले एक ही परमात्मा का ग्रहण है। किन्तु स्वरूपतः उस में त्रित्व नहीं। क्योंकि अथर्व १३ । ४ । १६ में "नद्वितीयः" इत्यादि मन्त्र द्वारा एकत्व से आगे द्वित्वादि धर्म परमात्मा में वर्जित है ॥ ऋ० १० । १८५ । १ में "त्रीणामवोस्तु" यह पाठ में भेद है ॥८॥ (१९२)

अथ नवम्याः—वत्सऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३१२
त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
१ २
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥९॥ (१९३)

* इत्यऽष्टमी दशतिः ॥८॥ *

(इति द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥)

पदपाठः—त्वावतः ६ । पुरूवसो सं० । वयम् १ । इन्द्र ! प्रणेतः सं० । स्मसि क्रि० । स्थातः सं० । हरीणाम् ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(हरीणाम्) मनुष्यादिप्राणिनाम् (स्थातः) अधिष्ठातः ! (पुरूवसो) बहु यथा स्यात्तथा वासयितः ! (प्रणेतः) प्रकृष्टनेतः (इन्द्र) परमात्मन् ! (वयम्) उपासकाः (त्वावतः) त्वत्सदृशस्यैव तव (स्मसि) स्मः ॥

न त्वावां अन्योदिव्यः (७।३२।२३) इत्यादि श्रुतेर्नकश्चित्परमात्मतुल्योऽतोऽत्र त्वत्सदृशस्त्वमेवेति विज्ञेयम् ॥

त्वावतइत्यत्र--युष्मदस्मदोः सादृश्ये मतुव्वाच्यः । इति मतुप् । प्रत्ययोत्तरपदयोश्च (पा० ७ । २ । ९८) इति त्वादेशे, आचसर्वनाम्नः (पा० ६ । ३ । ९१) इत्यात्वम् ॥ हरय इति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मनुष्यनाम निघं० २ । ३ ॥ ऋग्वेदेऽपि ८।८६।१॥१ ॥ (१९३)

*इति द्वितीयाऽध्यायेऽष्टमी दशतिः ॥८॥ *

भाषार्थः—(हरीणाम्) मनुष्यादि के (स्थातः) अधिष्ठातः ! (पुरुवसो) पुष्कल वास देने वाले ! (प्रणेतः) उत्तम नेता ! मार्गदर्शक ! (इन्द्र) परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (त्वावतः) आप सदृश ही के (स्मसि) हैं ॥

नत्वावां अन्य इत्यादि (ऋ० ७ । ३२। २३) श्रुति प्रमाण से परमात्मा के सदृश कोई नहीं इस से वह अपने सदृश आप ही है ॥ अष्टाध्यायी ॥ ७ । २ । ९८ ॥ ६ । ३ । ९१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।४६।१ ॥ ९ ॥ (१९३)

यह द्वितीयाध्याय में आठवीं दशति ॥ ८ ॥

और

* द्वितीय प्रपाठक समाप्त हुवा ॥ २ ॥ *

—**—

उत्वामदन्त्विन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ नवमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—प्रगाथ ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १
उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥
१ २ ३ १ २
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ (१९४)

पदपाठः—उ अ० । त्वा २ । मदन्तु क्रि० । सोमाः १ । कृणुष्व क्रि० । राधः २ । अद्रिवः सं० । अव अ० । ब्रह्मद्विषः २ । जहि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(अद्रिवः) चराऽचरस्य ग्रहीतारः सूर्य्यादस्तहन् ! परमात्मन् ! (सोमाः) सौम्यगुणविशिष्टाउपासकाः (त्वा उ) त्वामेव (मदन्तु) प्रसादयन्तु (राधः) विद्यादिधनम् (कृणुष्व) कुरु (ब्रह्मद्विषः) ब्रह्मणोवेदस्य द्वेष्टॄन् (अव

जहि) नाशय ॥

अदन्ति तेऽद्रयः, अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् (उणा० ४।६५) मतुवसोरुः सम्बुद्धौ (८।३।१) इति रुत्वे, छन्दसीरः (८।२।१५) इति वत्वे च अद्रिवः ॥

ऋग्वेदे तु ६।४।२६ स्तोमाः इति पाठः ॥ १ ॥ (१९४)

भाषार्थः—(अद्रिवः) चराचर के ग्रहीता सूर्य्यादि वाले ! (सोमाः) सौम्य उपासक लोग (त्वा उ) आप को ही (मदन्तु) प्रसन्न करें। (राधः) विद्यादि धन (कृणुष्व) कीजिये। (ब्रह्मद्विषः) वेद शास्त्रादि के शत्रुओं को (अव जहि) दूर कीजिये ॥

अष्टाध्यायी ८।३। १ ॥ ८ । २। १५ के प्रताण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ६ । ४ । २६ में स्तोमाः पाठ है ॥ १ ॥ (१९४)

अथ द्वितीयायाः—विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः

१२ ३ १ २ ३२ उ३ १ २
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
३ १ २३ १ र २र
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ २॥ (१९५)

पदपाठः—गिर्वणः सं० । पाहि क्रि० । नः ६ । सुतम् २ । मधोः ६ । धाराभिः ३ । अज्यसे क्रि० । इन्द्र सं० । त्वादातम् १ । इत् अ० । यशः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(गिर्वणः) गीर्भिः संवननीय ! (इन्द्र) परमात्मन् ! वा राजन् ! (नः) अस्माकं मध्ये (सुतम्) स्तोतारम् निघं० ३ । १६ । (पाहि) रक्ष । (मधोः) मधुरस्यानन्दस्य (धाराभिः) प्रवाहैः (अज्यसे) सिच्यसे। (यशः) उदकमन्नं वा धनं वा। निघं० १ । १२ ॥ २ । ७॥ २॥ १०॥ (त्वादातम्) त्वया शोधितम् (इत्) एव ॥

ऋग्वेदेऽपि ३ । ४० । ६ ॥ २ ॥ (१९५)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(गिर्वणः) वाणी से भजनीय ! (इन्द्र) परमात्मन् ! वा राजन् ! (नः) हमारे मध्य में (सुतम्) स्तोता को (पाहि) रक्षा कीजिये । (मधोः) मधुर आनन्द की (धाराभिः) धारों से आप (अज्यसे) सराबोर हैं (यशः) जल अन्न वा धन (त्वादातम्) आप का शोधित (इत्) ही है ॥

निघण्टु १ । १२॥ २ । ७ ॥ २ । १० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ३ । ४७ । ६ में भी ॥ २ ॥ (१९५)

अथ तृतीयायाः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २

सदा व इन्द्रश्चर्कृषदाउपोनु स सपर्यन् ।

३ २ ३ २ ३ ३ १ २

न देवोवृतः शूरइन्द्रः ॥३॥ (१९६)

पदपाठः—सदा अ० । वः २। इन्द्रः १ । चर्कृषत् क्रि० । आ, उप, उ,नु अ० । सः, सपर्यन् १ । न अ० । देवः, वृतः, शूरः, इन्द्रः १ ॥

अन्वितपदार्थः—भोः सुहृदः ! (सः) पूर्वोक्तः (इन्द्रः) परमेश्वरः (वः) युष्मान् (सदा) सर्वदा (उप, उ) समीप एव वर्त्तमानः (आ, चर्कृषत्) भृशमाकर्षितान् करोति । किं कुर्वन् (सपर्यन् न) परिचर्यां कुर्वन्निव (नु) परन्तु (इन्द्रः) परमात्मा (शूरः) विक्रान्तः (देवः) प्रकाशकः (वृतः) भक्त्या स्वीकृतो यदा भवति तदा ॥३॥ (१९६)

भाषार्थः—हे मित्रो ! (सः) वह (इन्द्रः) परमात्मा (वः) तुम्हें (सदा) सर्वदा (उप, उ,) समीप ही वर्त्तमान (आ, चर्कृषत्) आकर्षित करता है । (न) जैसे (सपर्यन्) सत्कार करता हुवा । (नु) परन्तु (इन्द्रः) परमेश्वर (शूरः) निर्भय (देवः) प्रकाशक है ऐसा (वृतः) भक्तिपूर्वक स्वीकार किया हो तब ॥

जो लोग परमेश्वर को निर्भय प्रकाशक जान कर भक्ति से उस का वरण करते हैं, उन के हृदय में सदा समीपता से वर्त्तमान परमेश्वर उन को अपने समीप आकर्षित करता है, मोक्ष देता है ॥ ३ ॥ (१९६)

अथ चतुर्थ्याः—अुतकक्षऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३१२३ १ २
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
२उ ३ १ २
न त्वामिन्द्राऽतिरिच्यते ॥४॥ (१९७)

पदपाठः—आ अ० । त्वा २ । विशन्तु क्रि० । इन्दवः १ । समुद्रमिव अ० । सिन्धवः १ । न अ० । त्वाम् २ । इन्द्र सं० । अतिरिच्यते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमात्मन् ! (इन्दवः) चन्द्रमसोमनोमयत्वान्मनोवृत्तयः । (त्वा) त्वाम् (आ, विशन्तु) संलग्नास्त्वयि भवन्तु (सिन्धवः) नद्यः (समुद्रमिव) । यथा समुद्रं समन्तत आगत्याऽऽविशन्ति तद्वत् । (त्वाम्) परमेश्वरं (न) नैव कश्चित् (अतिरिच्यते) ॥ ऋग्वेदे ८ । ९३ । २२ ऽपि ॥ ४ ॥ (१९७)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमात्मन् ! (इन्दवः) मन की वृत्तियां (त्वा) आप में (आ, विशन्तु) लगें । (सिन्धवः) जैसे नदियां (समुद्रमिव) समुद्र को । (त्वाम्) आप से [कोई] (न, अतिरिच्यते) बढ़कर नहीं है ॥ ऋ० ८ । ९३ । २२ में भी ॥ ४ ॥ (१९७)

अथ पञ्चम्याः—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३र१ २र ३ १ २ ३ र २
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
३ १ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥ (१९८)

पदपाठः—इन्द्रम् २ । इत् अ० । गाथिनः १ । बृहत् , इन्द्रम् २ । अर्केभिः ३ । अर्किणः १ । इन्द्रम् २ । वाणीः २=३ । अनूषत क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(गाथिनः) गीयमानसामयुक्ता उद्गातारः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar. Digitized by eGangotri

(इन्द्रम्, इत्) परमेश्वरमेव (बृहत्) यथा स्यात्तथा (अनूषत) स्तुवन्ति । (अर्किणः) अर्चनहेतुभिर्ऋङ्मन्त्रैरुपेता होतारः (इन्द्रम्) (अर्केभिः) अर्कैर्मन्त्रैरनूषत। ये त्ववशिष्टा अध्वर्यवः ते (वाणीः) वाणीभिर्यजूरूपाभिः (इन्द्रम्) तमेवाऽनूषत॥ अर्कोमन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति। निरु० ५। ४॥ ऋग्वेदे १। ७। १ ऽपि॥ ५॥ (१९८)

भाषार्थः—(गाथिनः) गीयमान साम के गाने वाले उद्गाता लोग (इन्द्रम्) परमेश्वर को (इत्) ही (बृहत्) बहुत (अनूषत) स्तुत करते हैं। (अर्किणः) मन्त्रवाले होता लोग (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अर्केभिः) ऋग्वेद के मन्त्रों से स्तुत करते हैं। शेष अध्वर्यु लोग (इन्द्रम्) परमेश्वर को (वाणीः) यजुर्वेद की वाणियों से स्तुत करते हैं॥

निरुक्त ५। ४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० १। ७। १ में भी॥ ५॥ (१९८)

अथ षष्ठ्याः—अतकक्ष ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३१ २ ३ २ २३ २ ३ २
इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम्।
३ १ २ ३ १ २
वाजी ददातु वाजिनम् ॥६॥ (१९९)

पदपाठः—इन्द्रः १। इषे ४=२। ददातु क्रि०। नः ४। ऋभुक्षणम्, ऋभुम्, रयिम् २। वाजी १। ददातु क्रि०। वाजिनम् २॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वरः (इषे) अन्नादिकं (नः) अस्मभ्यम् (ददातु)। (वाजी) बली परमात्मा (ऋभुक्षणम्) महान्तम् (रयिम्) धनस्वरूपम् (ऋभुम्) मेधाविनम् (वाजिनम्) बलिनमात्मानम् (ददातु)॥

कृपया परमेश्वरोऽस्मभ्यं शरीरपोषणाय भोज्यादिकम्

आत्मस्वरूपं चात्मतृप्तये ददात्विति भावः ॥

ऋभुक्षा इति महन्नाम निघं० ३ ।३॥ ऋभुरिति मेधाविनाम ३ । १५॥ वाजइति बलनाम २ । ९ । तद्वान् वाजी ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ९३ । ३४ ॥ ६ ॥ (१९९)

भाषार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर (इषे) अन्नादिक (नः) हमारे लिये (ददातु) देवे । और (वाजी) बलिष्ठ परमात्मा (ऋभुक्षणम्) महान् (रयिम्) धन रूप (ऋभुम्) मेधावी (वाजिनम्) बलिष्ठ [अपने स्वरूप को हमें] (ददातु) देवे ॥

दयालु परमात्मा शरीर के पोषणार्थ अन्नादि और आत्मा के पोषणार्थ अपना ज्ञान देवे । यह प्रार्थना है ॥

निघण्टु ३ । ३ ॥ ३ । १५ ॥ २ । ९ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ऋ० ८ । ९३ । ३४ में भी ॥६॥ (१९९)

अथ सप्तम्याः—गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३२ ३२ ३२ ३१र २र

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीषदपचुच्यवत् ।

२उ ३१र २र

स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥७॥ (२००)

पदपाठः—इन्द्रः १ । अङ्ग सं० । महत्, भयम्, अभीषत् २ । अपचुच्यवत् क्रि० । सः १ । हि अ० । स्थिरः, विचर्षणिः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(अङ्ग) प्रिय ! जिज्ञासो ! (इन्द्रः) परमेश्वरः सूर्यश्च (अभीषत्) अभितः प्राप्तम् (महद्भयम्) (अपचुच्यवत्) अपच्यावयति (स हि) यस्मात्सः (स्थिरः) कूटस्थः स्वपरिधिस्थो वा (विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा दर्शकोवाऽस्ति ॥ विचर्षणिः पश्यति कर्मा निघं० । ३ । ११ ॥

यदि परमात्मा सूर्यश्च न स्यात्तदा अविद्यान्धकारभयनिवृत्त्या कस्यापि मुक्तिर्न स्यात्, सूर्याभावे चाऽन्धकारमये जगति

Digitized by eGangotri

कस्यापि किमपि ज्ञानं दर्शनं च न स्यादिति वेद्यम् ॥ ऋग्वेदेऽपि २ । ४१ । १० ॥ ७ ॥ (२००)

भाषार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर और सूर्यलोक (अभीषत्) सर्व ओर से प्राप्त हुवे (महद्भयम्) बड़े भय को (अपचुच्यवत्) भगाता है (हि) क्यों कि (सः) वह (स्थिरः) कूटस्थ वा अपनी परिधि में स्थित (विचर्षणिः) ज्ञानदृष्टि वा भौतिक दृष्टि का दाता है । निघण्टु ३ । ११ ॥

परमात्मा कृपा करके मुमुक्षु के संसरण भय को दूर करता और ज्ञान से मुक्ति देता है। सूर्य भी अन्धकार भय को हटाकर सब को दिखाता है और अपनी परिधि में स्थिर है ॥ ऋ० २ । ४१ । १० ॥ ७ ॥ (२००)

अथाऽष्टम्याः—भरद्वाजऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।

३ १ २ ३१ २३ १२ ३१ २

इमा उ त्वा सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणोगिरः ।

१ २ ३२उ ३१२

गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥ (२०१)

पदपाठः—इमाः १ । उ अ० । त्वा २ । सुते, सुते ७ । नक्षन्ते क्रि० । गिर्वणः सं० । गिरः, गावः १ । वत्सम् २ । न अ० । धेनवः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(गिर्वणः) वाग्भिर्भजनीय ! परमेश्वर ! (इमाः) (गिरः) अस्मदीया वाचः (सुते सुते) यदा यदा सौम्यं भावमुत्पादयामस्तदा तदा (त्वा उ) त्वामेव (नक्षन्ते) व्याप्नुवन्ति त्वामेव स्तोतुमिच्छन्तीति भावः । स्नेहांशे दृष्टान्तः—(न) यथा [प्रीत्या] (धेनवः) दोग्ध्र्यः (गावः) (वत्सम्), प्राप्नुवन्ति तद्वत् ॥

नक्षति इति ननक्षे इति च व्याप्तिकर्मा निघं० २ । १८ ऋग्वेदेऽपि ६ । ४५ । २८ ॥ ८ ॥ (२०१)

भाषार्थः- (गिर्वणः) वाणी से भजनीय ! परमेश्वर ! (इमाः) ये (गिरः) हमारी वाणियें (सुते सुते) जब २ सौम्यभाव उत्पन्न होता है तब २ (त्वा उ) आप को ही (नदन्ते) प्राप्त होती हैं । स्नेह में दृष्टान्त-(न) जैसे (धेनवः) दुधार (गावः) गौवें (वत्सम्) प्यारे बछड़े को ही प्राप्त होजाती हैं ॥

जैसे गौवें प्यार के वशीभूत हुई जङ्गल में जहां तहां घूम कर जब दूध देने का समय आता है तब २ प्यारे बछड़े के ही समीप पहुंचती हैं । इसी प्रकार अनन्त आनन्द का सागर होने से प्रीतिपात्र परमात्मा को प्रत्येक मनुष्य की वाणी पुकारने लगती है, जब २ कि वह एकान्त बैठ, राग द्वेषादि छोड़, हृदय में सौम्य शान्त भाव उत्पन्न करता है ॥

निघण्टु २ । १८ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६ । ४५ । २८ ॥ ८ ॥ (२०१)

अथ नवम्याः-ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

२ ३ २३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रा नु पूषणा वयꣳसख्याय स्वस्तये ।

३ २ ३ १ २

हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥ (२०२) ॥

पदपाठः-इन्द्रा २ । नु अ० । पूषणा २ । वयम् १ । सख्याय, स्वस्तये ४ । हुवेम क्रि० । वाजसातये ४ ॥

अन्वितपदार्थः-(वयम्) उपासकाः (वाजसातये) बललाभाय (स्वस्तये) कल्याणाय (सख्याय) आनुकूल्याय (इन्द्रा) इन्द्रम् परमैश्वर्यवन्तम् (पूषणा) पूषणं पोषकम् (नु) च (हुवेम) सत्कुर्याम ॥

इन्द्रा, पूषणा इत्येतयोः-सुपां सुलुगित्याकारः (७ । १ । ३९) हुवेम इत्यत्र-ह्वः संप्रसारणम् । बहुलं छन्दसि (६ । १ । ३२-३४) इति संप्रसारणम् । ह्वयति, ह्वयते इति चार्चतिकर्मा निघं० ३ । १४ ॥ वाज इति बलनाम निघं० २ । ९ वाजस्य

Digitized by eGangotri

सातिर्दानं तस्यै वाजसातये । षणु दाने । ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च (३ । ३ । ९७) इति क्तिनि रूपम् ॥ ऋग्वेदेऽपि ६ । ५७ । १ ॥९॥ (२०२)

भाषार्थः—(वयम्) हम (वाजसातये) धन अन्न और बल के दान के लिये (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सख्याय) और मित्रता के लिये (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान् (नु) और (पूषणा) पुष्टिकर्त्ता को (हुवेम) सत्कृत करें ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ ॥ ६ । १ । ३२–३४ ॥ ३ । ३ । ९७ ॥ निघण्टु ३ । १४ ॥ २ । ९ । के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६ । ५७ । १ में भी ॥ ९ ॥ (२०२)

अथ दशम्याः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र३ १ २र
नकि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
२ ३ २उ ३ २
नक्येव यथा त्वम् ॥ १० ॥ (२०३)

* इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ *

पदपाठः—नकि अ० । इन्द्र सं० । त्वत् ५ । उत्तरम् १ । न अ० । ज्यायः १ । अस्ति क्रि० । वृत्रहन् सं० । नकि, एव, यथा अ० । त्वम् १ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! (त्वत्) त्वत्तः (उत्तरम्) श्रेष्ठम् (नकि) नैव किमपि, (न) नैव (ज्यायः) महत् (अस्ति) । (वृत्रहन्) मेघनाशकवदविद्याविनाशक ! (यथा) येन प्रकारेण (त्वम्) असि तथा (नकि, एव) नैव कश्चिदुपकरोति ॥

यथेति कर्मोपमा । निरु० ३ । १५ ॥ ऋग्वेदे तु ४ । ३० । १ नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायां अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् । इति पाठः ॥ १० ॥ (२०३)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्यवाले ! (त्वत्) तुझ से (उत्तरम्) श्रेष्ठ (नकि) कुछ नहीं । (न) न तुझ से (ज्यायः) बड़ा (अस्ति) है । (वृत्रहन्) मेघविनाशक के समान अविद्यादिनाशक ! (यथा) जैसे कि (त्वम्) तू [उपकार करता है वैसे] (नकि, एव) अन्य कोई नहीं ॥

निरुक्त ३ । १५ का प्रमाण और ऋ० ४ । ३० । १ का पाठ भेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥ (२०३)

* यह द्वितीयाध्याय में नवमी ९ दशति समाप्त हुई ॥*

—○:*:○—

तरणिं व इतीन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ दशमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ र २ ३ १ र २ र २ १ २

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः ।

३ २ ३ १ २

समानमु प्रशस्तिषम् ॥ १ ॥ (२०४)

पदपाठः—तरणिम् २ । वः, जनानाम् ६ । त्रदम् २ । वाजस्य, गोमतः ६ । समानम् २ । उ अ० । प्रशस्तिषम् क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—हे जनाः (वः) युष्माकं (जनानाम्) मनुष्याणाम् (तरणिम्) तारकम् (गोमतः) गवादिपशुयुक्तस्य (वाजस्य) अन्नस्य धनस्य बलस्य वा (त्रदम्) चेष्टकम् (समानम्) एकरसम् (उ) एव (प्रशस्तिषम्) स्तौमि स्तुत वा ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ४४ । २८ ॥ १ ॥ (२०४)

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (जनानाम्) मनुष्यों के (तरणिम्) तारने वाले (गोमतः) गवादि पशुयुक्त (वाजस्य) अन्न धन वा बल के (त्रदम्) प्रेरक (समानम्) एकरस को (उ) ही (प्रशस्तिषम्) स्तुत करूं वाकरो ॥ ऋ० ८ । ४४ । २८ में भी ॥ १ ॥ (२०४)

अथ द्वितीयायाः—मधुछन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

Digitized by eGangotri

१ २ ३ २३ २३ १र २र
अस्तॄग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।
३ १ २ ३१र २र
सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥ (२०५)

पदपाठः—अस्तॄग्रम् क्रि० । इन्द्र सं० । ते ६ । गिरः २ । प्रति अ० । त्वाम् २ । उदऽहासत क्रि० । सजोषाः १ । वृषभम् , पतिम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) त्वदीयाः (गिरः) वेदवाचः अहं (सजोषाः) सह सेवनं कुर्वन् (अस्तॄग्रम्) सृजामि वर्णयामि । [ता वेदवाचः] (त्वा प्रति) त्वां प्रति (उदऽहासत) उत्कृष्टतया प्रापयन्ति ज्ञापयन्ति। कथंभूतं त्वाम् (वृषभम्) धर्मार्थकाममोक्षवर्षकम् (पतिम्) पालकम् ॥

सृज धातोः, बहुलंछन्दसि (७ । १ । ८) इति रुडागमे वर्णव्यत्ययेन जकारस्य गकारे लडर्थे लङि अस्तॄग्रम् ॥ प्रतीत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह । निरु० १ । ३ ॥ ओहाङ् गतौ । लडर्थेलुङि अहासत ॥ ऋग्वेदे १ । ९ । ४ तु "अजोषा" इत्यन्तरम् ॥ २ ॥ (२०५)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) आप की (गिरः) वेद वाणी को (अहम्) मैं (सजोषाः) साथ सेवित करता हुवा (अस्तॄग्रम्) वर्णन करता हूं वे वेदवाणियें (त्वा प्रति) आप को (उदऽहासत) उच्च भाव से प्राप्त कराती हैं । जो कि आप (वृषभम्) धर्मार्थ काम मोक्ष के वर्षाने वाले और (पतिम्) पालन कर्त्ता हैं उन को ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ८ निरुक्त १ । ३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ऋ० १ । ९ । ४ में "अजोषाः" पाठ है ॥ २ ॥ (२०५)

अथ तृतीयस्याः—वत्सऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ २उ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।
३ २उ ३ १ २
मित्रस्पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥ (२० ६)

पदपाठः—सुनीथः १ । घ अ० । सः, मर्त्यः १ । यम् २ । मरुतः १ । यम् २ । अर्यमा, मित्रः १ । पान्ति क्रि० । अद्रुहः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(घ) निश्चयेन (यम्) मर्त्यम् (अद्रुहः) (मरुतः) वायवो यज्ञर्त्विजश्च (पान्ति) रक्षन्ति (यम्) मनुष्यम् (अर्यमा) न्यायकारी परमात्मा वा (मित्रः) सुहृद् पाति (सः) (मर्त्यः) पुरुषः (सुनीथः) प्रशस्तः । निघं० ३ । ८ ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ४६ । ४ ॥ ३ ॥ (२०६)

भाषार्थः—(घ) निश्चय (यम्) जिस की (अद्रुहः) द्रोहरहित (मरुतः) वायु वा ऋत्विज्लोग (पान्ति) रक्षा करते हैं (यम्) जिस मनुष्य की (अर्यमा) परमात्मा वा न्यायकारी (मित्रः) सुहृद् रक्षा करता है (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (सुनीथः) प्रशंसित है ॥

निघण्टु ३ । ८ ऋ० ८ । ४६ । ४ में भी ॥३॥ (२०६)

अथ चतुर्थ्यां—त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

१ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
१ २ ३ १र २र
वसु स्पार्हं तदाभर ॥ ४ ॥ (२०७)

पदपाठः—यत् १ । वीव्ठौ ७ । इन्द्र सं० । यत् १ । स्थिरे ७ । यत् १ । पर्शाने ७ । पराभृतम् , वसु, स्पार्हम् १ । तत् २ । आभर क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (यत्) (वसु) धनम् (वीळौ) बले वर्त्तते । (यत्) (स्थिरे) अचले भूभागादौ

वसु वर्त्तते (यत्) (पर्शाने) मेघे (पराभृतम्) निहितं वर्त्तते (तत्) (स्पार्हम्) स्पृहणीयम् धनम् (आभर) आहर प्रापय ॥

वीळु इति बलनाम निघं० २ । ९ पर्शान इति मेघनाम निघण्टुटिप्पणीगतं पाठान्तरम् १ । १० ॥ "परिज्ञाने" इतीकारमध्यपाठस्तु प्रातिशाख्यानुशासनात्कौथुमेरेव । इति सत्यव्रतः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ४५ । ४१ ॥ ४ ॥ (२०७)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (यत्) जो (वसु) धन (वीळौ) बल पुरुषार्थ में है और (यत्) जो धन (स्थिरे) स्थिर वस्तुओं में है और (यत्) जो (पर्शाने) मेघादि में (स्पार्हम्) स्पृहणीय धन है वह (आभर) प्राप्त कराइये ॥

निघण्टु २ । ९ ॥ १ । १० ॥ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ऋ० ८ । ४५ । ४१ में भी ॥ ४ ॥ (२०७)

अथ पञ्चम्याः—सुकक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

३१ २ ३१२३ १र २र ३२

श्रुतं वोवृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।

३२३ १२ ३२

आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥ (२०८)

पदपाठः—श्रुतम् २ । वः ६ । वृत्रहन्तमम् २ । प्र अ० । शर्धम् २ । चर्षणीनाम् ६ । आशिषे क्रि० । राधसे, महे ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(वः) युष्माकं (चर्षणीनाम्) मनुष्याणां (महे) महते (राधसे) धनाय निघं० २ । १० (वृत्रहन्तमम्) दुष्टहन्तृतमम् (शर्धम्) बलम् (श्रुतम्) विख्यातम् (प्र, आशिषे) प्रकर्षेण आशासे । वर्णव्यत्ययः । यद्वा अशोतेर्लेटि उत्तमे, सिब्बहुलंलेटि (३ । १ । ३४) इति सिप् ।

छन्दस्यपि दृश्यते (६। ४। ७३) इत्याडागमः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८। ९३। १६ ॥ ५ ॥ (२०८)

भाषार्थः—(वः) तुम (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (महे) बड़े (राधसे) धन के लिये (वृत्रहन्तमम्) दुष्टदमन (श्रुतम्) विख्यात (शर्धम्) बल को (प्र, आशिषे) उच्च भाव से आशिष देता हूं ॥

निघण्टु २। १० का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८। ९३। १६ में भी ॥ ५ ॥ (२०८)

अथ षष्ठ्याः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।

१ २ ३ १ २

अरꣳ शक्र परेमणि ॥ ६ ॥ (२०९)

पदपाठः—अरम् अ० । ते ६ । इन्द्र सं० । श्रवसे ४ । गमेम क्रि० । शूर सं० । त्वावतः ६ । अरम् अ० । शक्र सं० । परेमणि ७ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावतः) त्वत्सदृशस्य (ते) तव (श्रवसे) यशसे (अरम्) पर्याप्तं यथा स्यात्तथा (गमेम) गच्छेम प्राप्नुयाम (शूर) हे विक्रान्त ! (शक्र) शक्तिमन् ! (परेमणि) परमुत्कृष्टं मोक्षपदं गम्यते येन तस्मिन्समाधौ (अरम्) अलं गच्छेम ॥

हे शक्र सर्वशक्तिमन् ! हे शूर वीर्यवन् ! हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् ! त्वत्सदृशस्त्वमेवासि । तव कीर्त्तिं सर्वदा सर्वथा प्राप्नुयाम । तव ध्यानसमाधौ सम्यक् वर्त्तेमहि । इति अनुगृहाण ॥६॥ (२०९)

भाषार्थः—(शक्र) हे सर्वशक्तिमन् ! (शूर) हे परमसामर्थ्ययुक्त ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावतः) अपने ही तुल्य (ते) आप के (श्रवसे) यश के लिये

(अरं, गमम) सदा सर्वथा प्राप्त होवें और (परेमणि) मोक्षदायक समाधि में (अरम्) हम सर्वथा प्राप्त होवें ॥

हे परमेश्वर ! आप सर्वशक्तिमान् और अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं । आप ही अपने तुल्य हैं । हम को ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिस से आप के यश और ध्यान में तत्पर होकर मोक्ष को प्राप्त हों ॥ ६ ॥ (२०९)

अथ सप्तम्याः—विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १२ ३१२३ १ २
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
१२ ३१२
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ ७ ॥ (२१०)

पदपाठः—धानावन्तम्, करम्भिणम्, अपूपवन्तम्, उक्थिनम् २ । इन्द्र सं० । प्रातः अ० । जुषस्व क्रि० । नः ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (नः) अस्माकं (प्रातः) प्रातःकालीने यज्ञे (धानावन्तम्) धाना भृष्टयवास्तद्वन्तम् (करम्भिणम्) करम्भोदधिमिश्राः सक्तवस्तद्वन्तम् (अपूपवन्तम्) सवनीयपुरोडाशोपेतम् (उक्थिनम्) स्तोत्रिणम् यज्ञकर्त्तारम् (जुषस्व) प्रीणय ॥

ये जनाः प्रातरुत्थाय धानासक्तुसवनीयपुरोडाशादिभिर्देवयजनमारभन्ते तान्परमेश्वरोऽनुगृह्णाति प्रीणाति च ॥ ऋग्वेदेऽपि ३ । ५२ । १॥ ७ ॥ (२१०)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (नः) हमारे (धानावन्तम्) खीलों वाले (करम्भिणम्) दही सत्तू वाले और (प्रातः) प्रातः सवन में (अपूपवन्तम्) सवनीय पुरोडाश [वा पूड़े] वाले और (उक्थिनम्) स्तोत्र वाले को (जुषस्व) प्रीतिपात्र कीजिये ॥

जो मनुष्य प्रातः काल उठ कर खील दधि सक्तु पुरोडाश (यज्ञार्थ पाकविशेष) पूड़े आदि उत्तम सात्त्विक पदार्थों से यज्ञ करते हैं उन से परमेश्वर प्रसन्न होता है ॥ ऋ० ३ । ५२ । १ में भी ॥ ७ ॥ (२१०)

अथाऽष्टम्याः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३१र २र३ १ २३ १ २ ३ १ २
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः ।
३१र २र१ १ २
विश्वा यदजयः स्पृधः ॥८॥ (२११)

पदपाठः—अपाम् ६ । फेनेन ३ । नमुचेः ६ । शिरः २ । इन्द्र सं० । उद्-वर्त्तयः क्रि० । विश्वाः २ । यत् अ० । अजयः क्रि० । स्पृधः २ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! वा वृष्टिकर्त्तः ! (अपाम्) जलानाम् (फेनेन) वृद्ध्या सह वर्त्तमानम् (नमुचेः) जलं न मुञ्चति यदा तदा तस्य मेघस्य (शिरः) उन्नताङ्गम् (उद्ऽवर्त्तयः) छिनत्सि (यत्) यदा । तदा (विश्वाः) समस्ताः (स्पृधः) स्पर्धमानाः मेघराजीः (अजयः) जयसि ॥ पक्षान्तरे पाप्मा वै नमुचिः । शतपथे १२ । ७ । १ । ४ ॥

पूर्वमन्त्रोक्तयज्ञफलमाह-यज्ञेन परमात्मा पापस्य, वृष्टिकृद्विद्युद्विशेषो वा जलममुञ्चतो मेघस्य शिरश्छिनत्ति वर्षाःकरोति च ॥

स्फायी वृद्धौ इत्यस्मात्, फेनमीनौ (उणा० ३ । ३) इति फेनशब्दो निपात्यते ॥ प्रातरिति—स्वरादि निपातमव्ययम् (१ । १ । ३७) इत्यन्तोदात्तत्वेन पठितत्वादन्तोदात्तत्वम् तत्र तथाविधगणपाठपाठ एव नियामकः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । १४ । १३ ॥ ॥८॥ (२११)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! वा वृष्टिकारक इन्द्र ! (अपाम्) जलों की (फेनेन) वृद्धि के सहित वर्त्तमान (नमुचेः) जल को न छोड़ने वाले मेघ के (शिरः) उन्नताङ्ग को (उद्ऽवर्त्तयः) छिन्न करता है (यत्) जब कि (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) स्पर्धा करने वाली सेना के समान मेघ की पङ्क्तियों को (अजयः) जीतता है ॥

Digitized by eGangotri

पक्षान्तर में—शतपथ १२ । ७ । ३ । ४ के अनुसार नमुचि पाप का नाम है । पूर्व मन्त्र में लिखे यज्ञ का फल इस मन्त्र में वर्षा होना कहा गया है ।। अष्टाध्यायी १ । १ । ३७ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० ८ । १४ । १३ में भी ।।८।। (२११)

अथ नवम्याः—वामदेवऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ।।

३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः ।
१ २
तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥१॥ (२१२)

पदपाठः—इमे १ । ते ४ । इन्द्र सं० । सोमाः, सुतासः, ये १ । च अ० । सोत्वाः १ । तेषाम् ६=३ । मत्स्व क्रि० । प्रभूवसो सं० ।।

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (ये) (ते) तुभ्यम् (सोमाः) मनोरूपाश्चन्द्राः (सुतासः) सुताः भवद्ध्यानयोग्याः संपादिताः । ये (च) (सोत्वाः) सोतव्याः संपादयितव्याः सन्ति (प्रभूवसो) प्रभूतधनवन् ! (तेषां) तैः सोमैः (मत्स्व) माद्य प्रसन्नो भव ।।

हे परमेश्वर ! हे पुष्कलविद्यादिधनप्रद ! मुमुक्षुभिर्जिज्ञासुभिश्चास्माभिः स्वस्वमनांसि यथाशक्ति शोधितानि शोधयिष्यन्ते च, ततोस्मदुपरि कृपादृष्टिं विधेहि इतिभावः ।।

भौतिकपक्षे—(इन्द्र) अन्तरिक्षस्थानदेव ! (प्रभूवसो) प्रभूतवासहेतो ! (ते) तुभ्यम् (इमे) (सोमाः) ओषधिविशेषाः (सुतासः) अभिषुताः (ये च) (सोत्वाः) अभिषोतव्याः सन्ति (तेषां, मत्स्व) पूर्ववत् ।।

सोमः संपद्यमानः संपत्स्यमानश्च इन्द्रोदेशेन अग्नौ हुत-

स्तद्वर्षकरत्वेन वृष्ट्यादिहेतुर्भवतीति वेद्यम् ॥ ऋग्वेदे ८ । २ । १० तु " इमेत इन्द्र सोमाः " इत्येव तुल्यपाठो नाग्रे ॥९॥ (२१२)

भाषार्थः (इन्द्र) परमेश्वर ! (ये) जो (ते) आप के लिये (सोमाः) मन (सुतासः) शुद्ध किये हैं (च) और जो (सोत्वाः) शुद्ध किये जायंगे, वे हैं । (प्रभूवसो) हे बहुधन ! (तेषाम्) उन से (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये ॥

हे परमात्मन् ! हम मुमुक्षु और आप के जिज्ञासुवों ने यथाशक्ति अपने २ मन अन्तःकरण शुद्ध किये हैं और करेंगे । इस लिये हम पर प्रसन्न हूजिये ।।

भौतिकपक्ष में-(इन्द्र) मेघवर्षक ! (प्रभूवसो) पुष्कल वास के हे तुभूत ! (ते) तेरे लिये (सोमाः) ओषधियां (सुतासः) संपादन की हैं (च) और (ये) जो (सोत्वाः) संपादित की जावेंगी (तेषाम्) उन से (मत्स्व) वृद्धि को प्राप्त हो ।।

अर्थात् कुछ ओषधियां ठीक संपन्न कर के शेष संपन्न होती रहें और इन्द्र के उद्देश से होम की जावें तो वह हृष्ट अर्थात् वृष्ट्यादि का हेतु होता है ।।

ऋ० ८ । २ । १० में केवल "इमे त इन्द्र सोमाः" इतना आरम्भ का पाठ मिलता है, आगे नहीं ।। ९ ।। (२१२)

अथ दशम्याः-श्रुतकक्षऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २
तुभ्यं सुतासः सोमास्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
३ १ २
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥१०॥ (२१३)

* इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ *

पदपाठः-तुभ्यम् ४। सुतासः, सोमाः, स्तीर्णम्, बर्हिः १। विभावसो सं०। स्तोतृभ्यः ४ । इन्द्र सं० । मृडय क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः-(विभावसो) प्रकाशधन ! परमेश्वर ! वा इन्द्र ! (तुभ्यम्) त्वदर्थं (सोमाः) मनांसि ओषधयो वा (सुतासः) शोधितानि संपादिता वा (बर्हिः) हृदयभूमिर्यज्ञस्थलकु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

शादिकं वा (स्तीर्णम्) प्रसारितम् । अतः (इन्द्र) परमेश्वर! वा इन्द्र! (स्तोतृभ्यः) भक्तेभ्य ऋत्विग्भ्यो वा (मृडय) सुखं देहि ॥

ऋग्वेदे तु ८।९३।२५ "तुभ्यं सोमाः सुता इमे ..... इन्द्र-मावह" इत्यन्तरम् ॥ १० ॥ (२१३)

भाषार्थः—(विभावसो) प्रकाशधन परमेश्वर! (तुभ्यम्) आप के लिये (सोमाः) मन (सुतासः) शुद्ध किये हैं और (बर्हिः) हृदयभूमि रूप आसन (स्तीर्णम्) बिछाया है। (इन्द्र) परमैश्वर्यवन्! (स्तोतृभ्यः) उपासकों के लिये (मृडय) सुख दीजिये ॥

भौतिकपक्ष में—(विभावसो) चमकीले (इन्द्र) विद्युत् विशेष! (तुभ्यम्) तेरे लिये (सोमाः) ओषधियां (सुतासः) संपन्न की हैं और (बर्हिः) यज्ञ के आसनादि (स्तीर्णम्) बिछाये हैं। अतः (स्तोतृभ्यः) यज्ञकर्त्ताओं के लिये (मृडय) सुख दे ॥

जब मनुष्य सोमादि ओषधियों को तैयार कर के यज्ञ स्थल में आसनादि बिछाय यज्ञ करते हैं, तब उन्हें सुख प्राप्त होता है। ऋ० ८।९३।२५ में जो अन्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥ (२१३)

* यह द्वितीयाध्याय में दशवीं १० दशति समाप्त हुई ॥ *

—○:*:○—

अथैकादशी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—शुनःशेप ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्रीछन्दः ॥

आ व इन्द्रमितीन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ नव ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ व इन्द्रं क्रविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।

१ २ ३ १ २

मꣳहिष्ठꣳसिञ्चइन्दुभिः ॥ १ ॥ (२१४)

पदपाठः—आ अ० । वः, इन्द्रम्, क्रविम् २ । यथा अ० । वाजयन्तः १ । शतक्रतुम्, मꣳहिष्ठम् २। सिञ्चे क्रि० । इन्दुभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः ! अहम् परमेश्वरः (वः) युष्मान् (शतक्रतुम्) अनन्तकर्माणम् (मंहिष्ठम्) पूजनीयतमम् (इन्द्रम्) आत्मानम् (आ, सिञ्चे) प्रपूरयामि । दृष्टान्तः (यथा) (वाजयन्तः) कृष्यादिनाऽन्नमिच्छन्तः पुरुषाः (इन्दुभिः) जलैः (कृविम्) कृषिम् आसिञ्चन्ति तद्वत् ॥

अर्थात् यथा अन्नोत्पादमिच्छन्तः कृषकाः कृषिं प्रपूरयन्ति, तथैव परमात्मानुभवानन्दरसेप्सुभिरुपासकैः परमात्मा हृदि सर्वतश्च पूर्णो ध्येयः ॥

इन्दुरिति उदकनाम निघं० १ । १२ यज्ञनाम च ३ । १७ ॥ "कृती छेदने, कृत्यते छिद्यते खन्यते इति कृविःकृषिः" इति सायणोऽपि ॥ ऋग्वेदे तु १ । ३० । १ क्रिविमिति पाठः ॥ १ ॥ (२१४)

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर (वः) तुम में (शतक्रतुम्) बहुत अनन्त कर्म वाले (मंहिष्ठम्) अत्यन्त पूजनीय (इन्द्रम्) अपने आत्मा को (आसिञ्चे) सींचता हूं । दृष्टान्तः—(यथा) जैसे (वाजयन्तः) अन्नकी उत्पत्ति चाहने वाले लोग (इन्दुभिः) जलों से (कृविम्) खेती को सींचते हैं तद्वत् ॥

जैसे अन्न रस आदि देहपुष्टि के लिये कृषक लोग खेत को जल से सींचते हैं इसी प्रकार आत्मा की पुष्टि के लिये पूजनीय अनन्त ज्ञान वा कर्म वाले परमात्मा से हम को हृदय सींचने चाहियें । इस लिये परमात्मा ने मनुष्यों के हृदय को आत्मज्ञान का खेत बनाया है ॥

निघण्टु १ । १२ ॥ ३ । १७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ३० । १ में "क्रिविम्" पाठ है ॥ १ ॥ (२१४)

अथ द्वितीयायाः—अतकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३१२ २२ ३१ २

अतश्चिदिन्द्र न उपायाहि शतवाजया ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ २ ३ १ २
इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥ (२१५)

पदपाठः—अतः, चित् अ० । इन्द्र सं० । नः २ । उपायाहि क्रि० । शतवाजया, इषा, सहस्रवाजया ३ ।।

अन्वितपदार्थः—(अतः चित्) अतएव (इन्द्र) परमेश्वर ! त्वम् (शतवाजया) अनन्तबलवता (सहस्रवाजया) अनन्तात्मिकान्नवता (इषा) रसेन (नः) अस्मान् (उपायाहि) प्राप्नुहि ॥

वाज इत्यन्ननाम निघं० २ । ७ बलनाम च २ । ९ ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ९२ । १० ॥ २ ॥ (२१५)

भाषार्थः—(अतः चित्) इस लिये ही (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (शतवाजया) अनन्त बलयुक्त और (सहस्रवाजया) अनन्त आत्मिक अन्न युक्त (इषा) आनन्दरूपी रस के साथ (नः) हम को (उपायाहि) प्राप्त हूजिये ।। निघण्टु २ । ७ ॥ २ । ९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९२ । १० में भी ॥ २ ॥ (२१५)

अथ तृतीयायाः—त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् ।
३ २र २र
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥३॥ (२१६)

पदपाठः—आ अ० । बुन्दम् २ । वृत्रहा १ । ददे क्रि० । जातः १ । पृच्छात् क्रि० । वि अ० । मातरम् २ । के, उग्राः, के १ । ह० अ० । शृण्विरे क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(वृत्रहा) शत्रुहा (जातः) धनुर्विद्याव्रतस्नातः सन् (बुन्दम्) इषुम् (आ—ददे) गृह्णीयात्, आदाय च (मातरम्) जननीं भूमिं वा (वि, पृच्छात्) विविधं पृच्छेत्

किं पृच्छेत् इत्यत्राह (के) शत्रवः (उग्राः) दस्युस्वभावाः (के) (ह) प्रसिद्धम् (शृण्विरे) श्रूयन्ते ॥

क्षत्रियोहि धनुर्वेदे जायमान इषुमादाय सकलां माननीयां मातृतुल्यां भूमिं तत्रस्थाः प्रजाः पृच्छेत् के उग्राः के विख्याता दस्यव इति ॥

बुन्द इषुर्भवतीति बुन्दो वा भिन्दो वा भयदो वा भासमानो द्रवतीति वा। निरु० ६। ३२॥ ऋग्वेदे तु ८। ४५। ४ पृच्छहि-मातरमित्यन्तरम् ॥३॥ (२१६)

भाषार्थः—(वृत्रहा) शत्रुहा क्षत्रिय (जातः) धनुर्वेद के ज्ञान से प्रसिद्ध हुवा (बुन्दम्) बाण को (आ—दर्दे) ले और (मातरम्) जननी वा मान्य-कर्त्री प्रजा से (वि, पृच्छात्) विविध प्रकार से पूंछे कि (के) कौन (उग्राः) उपद्रवी हैं और (ह) प्रसिद्ध (के) कौन (शृण्विरे) विख्यात हैं ॥

क्षत्रिय को योग्य है कि धनुर्वेद में निष्णात होकर, धनुष बाण ले, प्रजा से विविध प्रकार पूंछे कि तुम्हें कौन उपद्रवी और विख्यात दस्यु जान पड़ते हैं ॥ निरुक्त ६ । ३२ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४५ । ४ में " पृच्छत् " पाठान्तर है ॥ ३ ॥ (२१६)

अथ चतुर्थ्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३१२ ३१२ ३१२
बृबदुक्थꣳ हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
१२ ३२ ३१२
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥ (२१७)

पदपाठः—बृबदुक्थम् २ । हवामहे क्रि० । सृप्रकरस्नम् २ । ऊतये ४ । साधः, कृण्वन्तम् २ । अवसे ४ ॥

अन्वितपदार्थः—तदानीं प्रजा ब्रूयुः—हे राजन् ! वयम् (बृब-दुक्थम्) वर्णव्यत्ययः बृहदुक्थम् बृहत्कीर्त्तनीयम् (सृप्रकरस्नम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रलम्बबाहुम् (अवसे) प्रजारक्षणाय (साधः) साधकं धनम् (कृण्वन्तम्) कररूपेणोपार्जयन्तम् (ऊतये) आत्मरक्षणाय (हवामहे) ॥

सप्र इति पदनाम । निघं० ४।३ सप्रः सर्पणात् । निरु० ६।१७ करस्नौ इति बाहुनाम। निघं० २।४॥ सप्रौ प्रसृतौ करस्नौ बाहू यस्य तम्॥ ऋग्वेदे तु ८।३२।१० साधुकृण्वन्तमिति पाठः॥४॥ (२१७)

भाषार्थः—तब प्रजा कहें कि हे राजन् ! हम तो (बृबदुक्थम्) बड़ी प्रशंसायोग्य (सुप्रकरस्नम्) प्रलम्बबाहु (अवसे) रक्षा के लिये (साधः) साधन रूप धन को (कृण्वन्तम्) कर रूप से कमाने वाले आप की ही (हवामहे) पुकार करती हैं ॥

निघण्टु ४ । ३ ॥ २ । ४ ॥ निरुक्त ६। १७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८ । ३२ । १० में "साधु कृण्वन्तम्" पाठ है ॥ ४ ॥ (२१७)

अथ पञ्चम्याः—गोतम ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ऋजुनीती नो वरुणोमित्रो नयति विद्वान् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥ (२१८)

पदपाठः—ऋजुनीती ३ । नः २। वरुणः, मित्रः १ । नयति क्रि० । विद्वान्, अर्यमा १ । देवैः ३ । सजोषाः १ ॥

अन्वितपदार्थः—पुनः प्रजा इत्थं प्रार्थयेयुः—(वरुणः) हर्षपूर्वकं वरणीयः (मित्रः) सुहृद्भूतः (विद्वान्) अस्मदवस्थावित् (अर्यमा) न्यायकारी (देवैः) विद्वद्भिर्मन्त्रिभिः (सजोषाः) सहप्रीतिमान् भवान् (नः) अस्मान् (ऋजुनीती) सरलनीत्या (नयति) नयतु ॥

ऋग्वेदेतु १।९०।१ नयतु इत्येव पाठः ॥ ५ ॥ (२१८)

भाषार्थः—फिर प्रजा इस प्रकार प्रार्थना करें कि—(वरुणः) सहर्ष वरने योग्य (मित्रः) मित्रता से वर्त्तने वाले (विद्वान्) हमारी अवस्था के जानने वाले (अर्यमा) न्याय करने वाले और (देवैः, सजोषाः) विद्वान् सन्मित्रों से, प्रीति रखने वाले आप (नः) हम को (ऋजुनीती) सरल नीति से (नयति) शासित कीजिये ॥

ऋ० १।९०।१ में तो "नयतु" ही पाठ है ॥ ५ ॥ (२१८)

अथ षष्ठ्याः—ब्रह्मातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

३२३२३ २३ २३२ ३१२
दूरादिहेव यत्सतोरुणप्सुरशिश्वितत्।
३२ ३ १२
विभानुं विश्वथातनत् ॥ ६ ॥ (२१९)

पदपाठः—दूरात् ५। इह, इव, यत् अ०। सतः २। अरुणप्सुः १। अशिश्वितत् क्रि०। विभानुम् २। विश्वथा अ०। अतनत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(अरुणप्सुः) अरुणं प्सु रूपं यस्यसः सूर्य्यः (यत्) यथा (सतः) सतात्मकान् पदार्थान्(दूरात्) दूरतोवर्त्तमान एव (इह, इव) सामीप्यवत् (अशिश्वितत्) वर्णयुक्तान्करोति। तथैव हे राजन्! भवान् (भानुम्) न्यायप्रकाशं (विश्वथा) सर्वथा (व्यतनत्) विस्तृतं क्रियात् ॥

प्सु इति रूपनाम निघं० ३।७॥ श्विता वर्णे इत्यस्मात् ण्यन्तात् लुङि चङि अशिश्वितत्। यङ्लुक्तान्नित्यम् (८।१।६६) इति अनुदात्तप्रतिषेधः ॥ प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि (५।३।१११।) इति थालि विश्वथा ॥ अतनत् इत्यत्र, व्यत्ययो बहुलम् (३।१।८५) इति तनोतेः शप् ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋग्वेदे तु ८।५।१ "सत्यरुणप्सुः" इत्यन्तरम् ॥६॥ (२१९)

भाषार्थः—(अरुणप्सुः) सूर्य (यत्) जैसे (सतः) पदार्थों को (दूरात्) दूर से ही (इह, इव) समीप के तुल्य (अशिश्वितत्) श्वेत करता है प्रकाशित करता है। ऐसे ही हे राजन् ! आप (भानुम्) न्याय के प्रकाश को (वि, अतनत्) विस्तृत करैं ॥

निघण्टु ३ । ७ अष्टाध्यायी ८ । १ । ६६ ॥ ५ । १ । १११ ॥ ३ । १ । ८५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ५ । १ में " सत्यरुणप्सुः " पाठ है ॥६॥ (२१९)

अथ सप्तम्याः—विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र
आनो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
३ १२
मध्वा रजाꣳसि सुक्रतू ॥ ७ ॥ (२२०)

पदपाठः—आ अ० । नः ४ । मित्रावरुणा १ । घृतैः ३ । गव्यूतिम् २ । उक्षतम् क्रि० । मध्वा ३ । रजाꣳसि २ । सुक्रतू १ ॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् हे इन्द्र ! (नः) अस्मभ्यम् (सुक्रतू) शोभनकर्माणौ (मित्रावरुणा) सूर्य्यान्तर्गतौ वर्षकौ देवौ (घृतैः) उदकैः (गव्यूतिम्) गव्यूत्युपलक्षितभूभागम् तथा (मध्वा) मधुना मधुररसेन (रजाꣳसि) धरापृष्ठानि (आ, उक्षतम्) सिञ्चताम् पुरुषव्यत्ययः ॥

मित्रः प्रमीतेस्त्रायते, संमिन्वानो द्रवतीति वा, मेदयते वा। निरु० १० । २१ तथा वरुणो वृणोतीति सतः । इत्यादि निरुक्तं १० । ३ द्रष्टव्यम् तत्र मध्यस्थानौ देवौ मित्रावरुणौ ॥ घृतमित्युदकनाम निघं० १ । १२ ॥ ऋग्वेदेऽपि ३ । ६२ । १६ ॥ ७ ॥ (२२०)

भाषार्थः—प्रकरण से हे इन्द्र ! राजन् ! (नः) हमारे लिये (सुक्रतू) शोभन कर्म वाले (मित्रावरुणा) सूर्यान्तर्गत वृष्टिहेतु देव (घृतैः) जलों से (गव्यूतिम्) गव्यूति उपलक्षित भूभाग पर्यन्त (मध्वा) मधुर रस से (रजाꣳसि) धरातलों को (आ, उक्षतम्) सींचें ॥

अर्थात् हे राजन्! मानुष प्रबन्ध से सुख देने के अतिरिक्त वरुण और मित्र का यज्ञप्रबन्ध कीजिये जिस से पृथिवीतल पर भले प्रकार वर्षा हों ॥

निरुक्त १० । ३ ॥ १० । २१ निघण्टु १ । १२ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ३ । ६२ । १६ में भी ॥ ७ ॥ (२२०)

अथाऽष्टम्याः—प्रकण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२३ २ २२३ २३ १ २ ३१२
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।
३ १ २ ३१र २र
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥८॥ (२२१)

पदपाठः—उत्, उ अ० । त्ये १ । सूनवः १ । गिरः ६ । काष्ठाः २ । यज्ञेषु ७ । अत्नत क्रि० । वाश्राः १ । अभिज्ञु २ । यातवे अ० ॥

अन्वितपदार्थः—पुनर्यज्ञार्थं प्रार्थयन्ति प्रजाः । प्रकरणात् हे इन्द्र ! राजन् ! (उ) चार्थे (त्ये) ते (वाश्राः) शब्दायमानाः (गिरः) वाचो मन्त्रमय्याः (सूनवः) उत्पादकाः बालका इव वायवः (काष्ठाः) दिशः प्रति (यातवे) यातुम् (यज्ञेषु) प्रजाभिरनुष्ठीयमानेषु अध्वरेषु (अभिज्ञु) जान्वभिमुखं यथा स्यात्तथा (उत्, अत्नत) उच्चैर्विस्तृता भवन्तु ॥

ये वायवोमुखान्निस्सृता वेदगिर उत्पादयन्ति ते कूजन्तो दिक्षु विस्तृताः सन्तु इति भावः ॥

सुन्वन्ति इति सूनवः, सुवः कित् (उणा० ३ । ३५) ॥ काष्ठा इति दिशोनाम निघं० १ । ६ ॥ वाशृ शब्दे इत्यस्मात्

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्फायितञ्चीत्यादिना (उणा० २ । १३) रकि वाश्राः ॥ अभितो जानुनी कृत्वा इत्यभिज्ञु । अव्ययं विभक्तिस० (२ । १ । ६) यौगपद्यार्थे समासः । वाच्छन्दसि सर्वे विधयोभवन्तीति समासान्तो ज्ञुरादेशः (५ । ४ । १२९) ॥ या प्रापणे, तुमर्थे सेसेनित्यादिना (३ । ४ । ९) तवेङि यातवे ॥ वायवो वाचमुत्पादयन्तीति शिक्षायां यथा—"आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥ मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्" । इति ॥ ऋग्वेदे तु १ । ३७ । १० अज्मेष्वत्नत इत्यन्तरम् ॥८॥ (२२१)

भाषार्थः—फिर प्रजा यज्ञ के लिये प्रार्थना करे कि हे राजन् ! (उ) और (त्ये) वे (वाश्राः) ध्वनि करने वाले (गिरः सूनवः) वेदवाणी के उत्पादक बालक से वायु (काष्ठाः) दिशाओं को (यातवे) जाने के लिये (यज्ञेषु) यज्ञों में (अभिज्ञु) घुटनों के बल (उत्, अत्नत) फैलें ॥

अर्थात् यज्ञों का ऐसा प्रचार हो कि स्वाहान्त मन्त्रों की ध्वनि दिशाओं में व्याप जावे । जैसे बालक घुटनों के बल रबकते हैं ॥

उणादि २ । १३ ॥ ३ । ३५ ॥ अष्टाध्यायी २ । १ । ६ ॥ ५ । ४ । १२९ ॥ ३ । ४ । ९ निघण्टु १ । ६ और शिक्षा के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ३७ । १० में " अज्मेष्वत्नत " यह पाठ में भेद है ॥८॥ (२२१)

अथ नवम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२२७ ३ १ २ ३१२ २२ ३२
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
१२ ३२
समूढमस्य पाꣳसुले ॥९॥ (२२२)

* इत्येकादशी दशतिः ॥११॥ *

पदपाठः—इदम् २ । विष्णुः १ । विचक्रमे क्रि० । त्रेधा अ० । निदधे क्रि० । पदम्, समूढम् २ । अस्य ६ । पाꣳसुले ७ ॥

अन्वितपदार्थः—(विष्णुः) यज्ञः परमेश्वरो वा (इदम्) जगत् (त्रेधा) पृथिवी अन्तरिक्षं द्यौश्चेति त्रिभिः प्रकारैः (विचक्रमे) विक्रमेत विक्रान्तवान्वा। तथा (अस्य) जगतः (पाꣳसुले) रजसि प्रतिपरमाणु (समूढम्) अन्तर्हितम् (पदम्) स्वरूपम् (निदधे) नितरां दध्यात् दधाति वा ॥

अनुष्ठीयमानो यज्ञः परमेश्वरश्च पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि चेति त्रिषु लोकेषु व्याप्नोति। अन्तर्हितमदृश्यं स्वरूपं च अस्य जगतः प्रतिपरमाणु निदधाति इति भावः ॥

यज्ञो वै विष्णुः ॥ अत्र सायणाचार्येण विष्णुशब्देन त्रिविक्रमाऽवतारग्रहणं निर्मूलमेव कृतम्। परमेश्वरस्याऽकायत्वान्निराकारत्वात्क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टत्वात्। न च निरुक्तकारेणाऽपि तादृशव्याख्यानस्य कृतत्वात्। यथा—

"यदिदं किं च तद्विक्रमते विष्णुस्त्रेधा निधत्ते पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः। समूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यते। अपिवोपमार्थे स्यात्समूढमस्य पांसुल इव पदं न दृश्यते इति। पांसवः पादैः सूयन्त इति वा, पन्नाः शेरत इति वा, पंसनीयाभवन्तीति वा।" निरु० १२। १९ ॥

गयशिरसीत्यत्र गय इत्यपत्यनाम। निघं०२।१० ॥ प्राणा वै गयाः। शतपथे १४।७।१।७ ऋग्वेदे तु १।२२।१७ पांसुरे इति पाठः। यजुर्वेदेऽपि ५। १५ ॥ ९ ॥ (२२२)

भाषार्थः—(विष्णुः) यज्ञ वा परमेश्वर (इदम्) इस जगत् को (त्रेधा)

CCO. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यौः इन ३ प्रकार (विचक्रमे) पुरुषार्थयुक्त करे वा करता है । और (अस्य) इस जगत् के (पाꣳसुले) प्रत्येक रज वा परमाणु में (ससूढम्) अदृश्य (पदम्) स्वरूप को (निदधे) निरन्तर धारण करे वा करता है ।।

भले प्रकार अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ, पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक में फैले और अपने अदृश्य स्वरूप को जगत् के रज २ में पहुंचावे । अथवा व्यापक परमात्मा ने पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक को तीन प्रकार से विक्रम पुरुषार्थयुक्त किया है । और जगत् के प्रत्येक परमाणु तक में अपने अदृश्य स्वरूप को अन्तर्यामी रूप से वर्त्तमान कर रक्खा है ।।

इस मन्त्र को सायणाचार्य ने त्रिविक्रमाऽवतार पर लगाया है। सो निर्मूल है । क्योंकि परमेश्वर अकाय होने से निराकार और क्लेश कर्म विपाकाशयों से छुवा हुआ नहीं है ।। और निरुक्तकार ने भी इस में वामनाऽवतार का ग्रहण नहीं किया । जैसा कि निरुक्त १२ । १९ " व्यापक विष्णु ने इस सब जगत् को तीन प्रकार के होने को विक्रान्त किया है १ पृथिवी, २ अन्तरिक्ष, ३ द्युलोक, यह शाकपूणि आचार्य का मत है । १ समारोहण, २ विष्णुपद, ३ गयशिर, ये और्णवाभ का मत है । उस का पद अदृश्य हो वा उपमा है कि जैसे रेत में पांव नहीं दीखता । पांसु रेणु का नाम है क्योंकि वे पावों से उत्पन्न होतीं वा पड़ी सोती हैं " इत्यादि ॥ गयशिरसि में गय सन्तान का नाम निघण्टु २।१० के अनुसार और शतपथ १४ । ७ । १ । ७ के अनुसार प्राण का नाम भी गय है॥ ऋ० १ । २२ । १७ और यजुः ५।१५ में "पांसुरे" पाठ है ।।९।। (२२२)

* यह द्वितीयाध्याय में ११ वीं दशति समाप्त हुई ॥ *

—:*:—

अतीहीतीन्द्रदैवत्या गायत्र्यो दशतौ दश ॥१॥

अथ द्वादशी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—मेधातिथिर्ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवाꣳ समुपेरय ।

३ २ ३ २ ३१ २
अस्य रातौ सुतं पिब ॥१॥ (२२३)

पदपाठः—अतीहि क्रि० । मन्युषाविणम् २ । सुषुवाꣳसम् २ । उपेरय क्रि० । अस्य ६ । रातौ ७ । सुतम् २ । पिब क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् इन्द्र! जीवात्मन्! वा राजन्! सोमं पास्यन् त्वम् (मन्युषाविणम्) मन्युना क्रोधेन सोमं सुन्वन्तम् भृत्यम् (अतीहि) अतिगच्छ त्यज। किन्तु (सुषुवाꣳसम्) शोभनं सोमं सुन्वन्तम् (उपेरय) आवाहय (अस्य) शोभनं सोमं सुन्वतः (रातौ) दाने (सुतम्) अभिषुतम् (पिब)॥

ऋग्वेदे तु ८ । ३२ । २१ "सुषुवांसमुपारणे" इत्यन्तरम् ॥ १ ॥ (२२३)

भाषार्थः—प्रकरण से हे इन्द्र! जीवात्मन्! वा राजन्! तू (मन्युषाविणम्) वैमनस्य से सोम खींचने वाले को (अतीहि) त्याग दे। किन्तु (सुषुवाꣳसम्) अच्छा सोम खींचने वाले को (उपेरय) पास रख और (अस्य) इस अच्छे के (सुतम्) संपादित सोम को (रातौ) देने पर (पिब) पी ॥

ऋ० ८ । ३२ । २१ में "उपारणे" पाठान्तर है ॥१॥ (२२३)

अथ द्वितीयायाः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२३ १ २ ३१र २र३ १ २
कदु प्रचेतसे महे वचोदेवाय शस्यते ।
१र २र ३ १२
तदिद्धयस्य वर्धनम् ॥२॥ (२२४)

पदपाठः—कत्, उ अ० । प्रचेतसे, महे ४ । वचः १ । देवाय ४ । शस्यते क्रि० । तत् १ । इत्, हि अ० । अस्य ६ । वर्धनम् १ ॥

अन्वितपदार्थः—(महे) महते (प्रचेतसे) ज्ञानिने (देवाय) राज्ञे इन्द्राय (कत् उ) कस्मात् (वचः) पूर्वमन्त्रोक्तं सावधानीकरणार्थं वचनम् (शस्यते) कथ्यते ? उत्तरम्—(तत्) वचनम्

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(हि) यस्मात् (अस्य) राज्ञः (वर्धनम् इत) वृद्धिकरमेवास्ति ॥२॥ (२२४)

भाषार्थः—(महे) बड़े (प्रचेतसे) ज्ञानी (देवाय) इन्द्र अर्थात् राजा के लिये (वचः) पूर्वमन्त्रोक्त चितौनी का वचन (कत् उ) क्यों (शस्यते) कहा जाता है ? उत्तर—(हि) क्योंकि (तत्) वह वचन [सावधानी] (अस्य) इस राजा की (वर्धनम् इत्) वृद्धिकारक ही है ।। २ ।। (२२४)

अथ तृतीयस्याः—मेधातिथिप्रियमेधावृषी । इन्द्रो देवता ।

गायत्री छन्दः ।।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ र २ र

उक्थं च न शस्यमानं नागोरयिराचिकेत ।

१ २ ३ २ ३ १ २

न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥ (२२५)

पदपाठः—उक्थम् २। च, न अ० । शस्यमानम् २ । नागोः ६ । अयिः १। आ चिकेत क्रि० । न अ० । गायत्रम्, गीयमानम् २ ।।

अन्वितपदार्थः—(अयिः) ज्ञानी इन्द्रः (नागोः) स्पष्टवक्तुः (शस्यमानम्) कथ्यमानम् (उक्थम्) स्तोत्रम् (गीयमानम् गायत्रम्) एतन्नामकं साम (च) (न आचिकेत) नाभिजानीयात् इति (न) अपितु अभिजानीयादेव ॥

अय गतौ इत्यस्मात् ज्ञानार्थात् बाहुलकादुणादाविप्रत्ययेऽयिः ॥ गैशब्दे। गायति इति गौर्न गौरगौर्नाऽगौस्तस्य नागोः। हौ नञौ प्रकृतमर्थं ब्रूतः ॥ कित ज्ञाने इत्यस्माल्लिटि चिकेत ॥ ऋग्वेदे तु ८ । २ । १४ " शस्यमानमगोररिराचिकेत " इत्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (२२५)

भाषार्थः—(अयिः) ज्ञानी इन्द्र अर्थात् राजा (नागोः) स्पष्टवक्ता के (शस्यमानम्) कहे हुवे (उक्थम्) स्तोत्र को (च) और (गीयमानम् गाय-

त्रम्) गाये हुवे गायत्र नाम साम को (न आचिकेत) न समझे सो (न) नहीं। किन्तु समझे ही ॥

व्याकरण के धातु आदि संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८। २। १४ में "शस्यमानमगोररिराचिकेत" पाठ है ॥३॥ (२२५)

अथ चतुर्थ्याः—विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः।

१ २ ३ २ ३ १ २

हरिवान्सुतानाꣳ सखा ॥ ४ ॥ (२२६)

पदपाठः—इन्द्रः १। उक्थेभिः ३। मन्दिष्ठः १। वाजानाम् ६। च अ०। वाजपतिः, हरिवान् १। सुतानाम् ६। सखा १ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्रः) राजा) (मन्दिष्ठः) अतिशयेन हृष्टः (वाजानाम्) बलानाम् सैन्यानाम् (वाजपतिः) सेनापतिः (हरिवान्) अश्ववान् (सुतानाम्) पुत्रवद्वर्त्तमानानां प्रजाजनानाम् (सखा) मित्रभूतः (च) (उक्थेभिः) प्रशस्तिभिः स्यात् ॥४॥ (२२६)

भाषार्थः—(इन्द्रः) राजा (मन्दिष्ठः) अत्यन्त हृष्ट (च) और (वाजानाम्) बल अर्थात् सेनाओं का (वाजपतिः) सेनापति (हरिवान्) घोड़े आदि का रखने वाला और (सुतानाम्) पुत्रतुल्य प्रजाजनों का (सखा) मित्रतुल्य सहायक (उक्थेभिः) प्रशंसावचनों के साथ होवे ॥ ४ ॥ (२२६)

अथ पञ्चम्याः—मेधातिथिप्रियमेधावृषी। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३१र २र ३ १ २

आयाह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः।

३ १ २३ १ २

महाँइव युवजानिः ॥ ५ ॥ (२२७)

पदपाठः—आयाहि क्रि०। उप अ०। नः, सुतम् २। वाजेभिः ३। मा अ०। हृणीयथाः क्रि०। महाँइव अ०। युवजानिः १ ॥

CCO. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—हेराजन् ! (युवजानिः) युवतिर्जाया यस्य तादृशस्त्वं (वाजेभिः) बलैः सह वर्त्तमानः (नः) अस्मान् प्रजाजनान् (उप, आयाहि) प्रत्यागच्छेः प्रीत्या। (मा हृणीयथाः) रोषं माकार्षीः। कं कइव ? (सुतम्) पुत्रम् (महाँइव) पित्रादिरिव॥

हृणीयते इति क्रुध्यतिकर्मा । निघं० २।१२ जायाया निङ् (५ । ४ । १३४) इति युवजानिः ॥ ५ ॥ (२२७)

भाषार्थः—हेराजन् (युवजानिः) युवति स्त्री वाले आप (वाजेभिः) सेना बल के सहित वर्तमान (नः) हम को (उप, आयाहि) प्राप्त हूजिये हमारी पुकार सुनिये। किस को कौन जैसे ? (सुतम्) पुत्र को (महाँइव) पिता आदि बड़े के समान। (मा हृणीयथाः) क्रोध न करिये ॥

निघण्टु २।१२ अष्टाध्यायी ५।४।१३४ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (२२७)

अथ षष्ठ्याः—कौत्सोदुर्मित्रऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३१२ २२३१२ २२ ३ १ २३ २
कदा वसो स्तोत्रꣳ हर्यतआ अव इमशारुधद्वाः ।
३२ ३ २ ३ १ २
दीर्घꣳसुतं वाताप्याय ॥६॥ (२२८)

पदपाठः—कदा अ० । वसो सं० । स्तोत्रम् २ । हर्यते ४=२ । आ अ० । अव क्रि० । इमशा ३ । अरुधत् क्रि० । वाः १ । दीर्घम् , सुतम् २ । वाताप्याय ४॥

अन्वितपदार्थः—(वसो) वासयितः राजन् ! (कदा) यदि कदाचित् (वाः) वृष्टिजलम् (अरुधत्) अवरोधं प्राप्नुयात् अनावृष्टिः स्यात् तदा (स्तोत्रम्) वेदं (हर्यते) हर्यन्तं कामयमानं (दीर्घम्) महान्तम् (सुतम्) पुत्रवद्वर्त्तमानं प्रजाजनम् (वाताप्याय) उदकाय निःसारितया (इमशा) इमशया कुल्यया

(आ, अव) समन्ततो, रक्ष ॥

हर्यतीति कान्तिकर्मा । निघं० २ । ६ श्मशा शु अश्नुत इति वा श्माश्नुत इति वा । निरु० ५ । १२ श्मशा कुल्या इति सायणोऽपि ॥ वाताप्यमुदकं भवति वात एतदाप्याययति । निरु० ६ । २८ ॥ ऋग्वेदे तु १० । १०५ । १ आव श्मशेति पाठः ॥६॥ (२२८)

भाषार्थः—(वसो) निवास कराने वाले ! राजन् ! (कदा) यदि कभी (वाः) वर्षा का जल (अरुधत्) रुक जावे अर्थात् अनावृष्टि हो जावे तो (वाताप्याय) जल के लिये (श्मशा) नहर से (स्तोत्रम्) वेद के (हर्यते) चाहने वाले (दीर्घम्) बड़े (सुतम्) पुत्रतुल्य प्रजाजन को (आ, अव) सर्वतः, रक्षित करो ॥

निघण्टु १ । ६ ॥ निरुक्त ५ । १२ और ६ । २८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । १०५ । १ में "आव श्मशा" पाठ है ॥ ६ ॥ (२२८)

अथ सप्तम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु ।
३ २ ३ १ २ २
तवेदꣳ सख्यमस्तृतम् ॥ ७ ॥ (३२९)

पदपाठः—ब्राह्मणात् ५ । इन्द्र सं० । राधसः ५ । पिब क्रि० । सोमम्, ऋतून् २ । अनु अ० । तव ६ । इदम्, सख्यम्, अस्तृतम् १ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) राजन् ! त्वम् (राधसः) संसिद्धात् (ब्राह्मणात्) ब्रह्मविदः सकाशात् (ऋतून्) वसन्तादीन् (अनु) अनुसृत्य (सोमम्) ओषधिविशेषम् (पिब) । (तव, इदं, सख्यम्) (अस्तृतम्) अविच्छिन्नं भवत्विति शेषः ॥

ये च राधसः इति पदेन राधां गृह्णन्ति ते भ्रान्ता एव, निर्मूलत्वात् ॥ ऋग्वेदे तु १ । १५ । ५ तवेद्धि इत्यन्तरम् ॥७॥(२२९)

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) राजन् ! आप (राधसः) संसिद्ध ज्ञानी (ब्राह्मणात्) ब्रह्मवेत्ता के द्वारा (ऋतून्, अनु) ऋतुओं के अनुसार (सोमम्) ओषधि विशेष को (पिब) पीजिये। (तव) आप की (इदम्) यह (सख्यम्) मित्रता (अस्तृतम्) अविच्छिन्न हो ।। जो लोग "राधसः" पद से राधा का ग्रहण करते हैं वे निर्मूल भ्रान्ति में हैं ।।

ऋ० १ । १५ । ५ में "तवेद्धि" पाठ है ।।७।। (२२९)

अथाऽष्टम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ।।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।

१ २

त्वंनो जिन्व सोमपाः ॥८॥ (२३०)

पदपाठः—वयम् १ । घ अ० । ते ६ । अपि अ० । स्मसि क्रि० । स्तोतारः १ । इन्द्र, गिर्वणः सं० । त्वम् १ । नः २ । जिन्व क्रि० । सोमपाः १ ।।

अन्वितपदार्थः—(गिर्वणः) वाचा प्रशंसनीयगुण ! (इन्द्र) राजन् ! (सोमपाः) सोमस्य पाता असि (वयम्) प्रजाजनाः (ते) तव (स्तोतारः) सत्कारकर्त्तारः (स्मसि) स्याम । तदर्थं (त्वमपि) (नः) अस्मान् (जिन्व) प्रीणय। घेति पादपूरणे ।। स्तौति इति अर्चतिकर्मा । निघं० ३ । १४ ।। ऋग्वेदेऽपि ८ । ३२ । ७ ॥ ८ ॥ (२३०)

भाषार्थः—(गिर्वणः) वाणी से प्रशंसनीय ! (इन्द्र) राजन् ! आप (सोमपाः) सोम के पीने वा रक्षा करने वाले हैं । और (वयम्) हम प्रजाजन (ते) आप के (स्तोतारः) सत्कार करने वाले हैं । इस लिये (त्वम्, अपि) आप भी (नः) हम को (जिन्व) प्रसन्न रखिये ।।

निघण्टु ३।१४ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ३२ । ७ में भी ॥ ८ ॥ (२३०)

अथ नवम्याः—विश्वामित्रो गाथिनोभीपाद उदलो वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।।

१२ ३१र २र ३ २ ३१२
एन्द्र पृक्षु कासुचिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः ।
१२ ३१ २
सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥ ९ ॥ (२३१)

पदपाठः—आ अ० । इन्द्र सं० । पृक्षु ७ । कासुचित् ७ । नृम्णम् २ । तनूषु ७ । धेहि क्रि० । नः ६ । सत्राजित् १ । उग्र सं० । पौंस्यम् २ ।।

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) राजन्! वा परमेश्वर! (कासुचित्) (पृक्षु) संपृक्तासु सेनासु योगक्रियासु वा (नः) अस्माकं (तनूषु) देहेषु (पौंस्यम्) पौरुषयुक्तं (नृम्णम्) बलं योगबलं वा (आ धेहि) स्थापय । यतः (उग्र) हे उद्गीर्णबल! त्वं (सत्राजित्) सर्वदा बलेन विजयी असि ॥

पृक्षे, पृक्षः, पृत्सु इति संग्रामनामानि । निघं० २ । १७ तद्वत् पृक्षु इत्यपि ज्ञेयम् । योगेऽपि विषयैः सह संग्रामो विजयश्च विवक्षितोबोध्यः ॥ नृम्णम् इति बलनाम । निघं० २ । ९ ॥ ९ ॥ (२३१)

भाषार्थः—(इन्द्र) राजन्! वा परमेश्वर! (कासुचित्) किन्हीं (पृक्षु) सेनासंग्रामों वा योगक्रियाओं में (नः) हमारे (तनूषु) देहों में (पौंस्यम्) पुरुषार्थयुक्त (नृम्णम्) बल वा योगबल को (आ, धेहि) आधान कीजिये क्योंकि (उग्र) हे उद्गीर्णबलवन्! आप (सत्राजित्) सर्वदा बल से विजयी हैं ॥

निघण्टु २ । १७ ॥ २ । ९ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (२३१)

अथ दशम्याः—अतकक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३१र १र ३२३१र २र३ २ ३२
एवाह्यसि वीरयुरेवाशूरउत स्थिरः ।
३२३ र ३१२
एवाते राध्यं मनः ॥ १० ॥ (२३२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—एव, हि० अ० । असि क्रि० । वीरयुः १ । एव अ० । शूरः १ । उत अ० । स्थिरः १ । एव अ० । ते ६ । राध्यम्, मनः १ ॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् हे इन्द्र ! राजन् ! त्वम् (वीरयुः) वीरान्कामयमानः (एव) (असि) त्वं (शूरः) विक्रान्तः (एव) नूनमसि (उत) चार्थे (स्थिरः) दृढः (एव) अपि असि (ते) त्वदीयम् (मनः) हृदयम् (राध्यम्) स्तुत्यमस्तीति शेषः ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ९२।२८॥१०॥ (२३२)

भाषार्थः—प्रकरण से हे इन्द्र ! राजन् ! आप (वीरयुः) वीरों को चाहने वाले (एव) निश्चय (असि) हैं । आप (शूरः) शूरवीर (एव) निश्चय हैं (उत) और आप (स्थिरः) दृढ़ (एव) भी हैं । अतः (ते) आप का (मनः) हृदय (राध्यम्) प्रशंसायोग्य है ॥

ऋ० ८ । ९२ । २८ में भी ॥१०॥ (२३२)

* यह द्वितीयाऽध्याय में १२ वीं दशति समाप्त हुई *

इति श्रीमत्कण्ववंशाऽवतंस श्री हज़ारीलाल स्वामिसूनुना
हस्तिनापुर पार्श्ववर्त्ति परीक्षितगढ़ निवासिना
तुलसीराम स्वामिना कृते सामवेदभाष्ये
द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

(अस्य द्वितीयाऽध्यायस्य तृतीयदशत्या सह द्वितीयप्रपाठक प्रथमार्धः, अष्टमदशत्या च द्वितीयप्रपाठकस्तदीयद्वितीयार्धश्च, समाप्तो विज्ञेयः । इदानीं नवमदशतिमारभ्य तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमार्ध आरब्धो वर्त्तते इति च विज्ञेयं सुधीभिः ॥

कण्ववंशावतंस श्रीमान् स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र, परीक्षितगढ़ (ज़िला मेरठ) निवासी, तुलसीराम स्वामी के निर्मित सामवेदभाष्य में यह द्वितीयाऽध्याय समाप्त हुआ ॥२॥

ओ३म्

अथ सामवेदीयभाष्यस्य शुद्धाऽशुद्धसूचीपत्रम्

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्त्यङ्काः	अशुद्धानि	शुद्धानि
३	२८	नारदीशिक्षा	नारदीयशिक्षा
८	१८	,,	,,
१२	५	शताक्षराधृतिः	शताक्षराऽभिकृतिः
,,	२०	अतिकृति ।	अभिकृति ।
,,	८	विचृदादयः ।	विवृदादयः
२०	२	स्त्रीकर्मा	स्त्रीकुर्मा
,,	,,	निघं० २ । १०	निघं० २। १० (अग्निम्)
२०	२१	दूत	दूत (अग्निम्) अग्नि
२१	१५	वाले	वाले (अग्निम्)
२१	१६	[परमात्मा को हम	परमात्मा को [हम
२३	१	पतिष्यमाणाया	पतिष्यमाणायां
२९	१	पोठेऽर्थे	पाठेऽर्थे
२९	१	वत्सनैव	वत्सेनैव
२९	४	द्रष्टृनामा	द्रष्टृनामा
३१	२३	उतये	ऊतये
३६	२४	पुरुषष्प	पुरुषस्य
३८	२५	सामान्यम्	समानम्
३९	१	शान्तनसूत्र	शान्तनवसूत्र
४०	२०	धमार्थ	धर्मार्थ
४१	१९	दृश प्रेक्षणे	दृशिर् प्रेक्षणे
४५	२२	कपिलादित्वात्	कपिलकादित्वात्
४६	२६	च्छचि	च्छुचि
,,	४	निरु० १। २०	निरु० १।२० वर्णव्यत्ययेन सम्राजमित्यत्र मः ॥
५६	७	महिन्नः	महिम्नः
,,	,,	पारावारः	पारावारम् ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्त्यङ्काः	अशुद्धानि	शुद्धानि
५७	२	ऋत्विग्निर्वा	ऋत्विग्भिर्वा
५७	१०	पर्सवान्	पसर्गवान्
५७	११	लुङ् लुङ्	लुङ् लङ्
,,	,,	सामान्यकाले	कालसामान्ये
५७	१२	महांअसि	महाँअसि
६४	६	पक्ष–	पक्षे–
७३	५	हिसकाना	हिंसकानां
७६	२२	हारशद्धि	हारशुद्धि
७८	६	पदशति	पदिशति
८४	१	शतरि	तृचि
१०७	२२	अग्नि	नरो अग्नि
१०९	२१	वन्हती	वहन्ती
११२	९	देवांअच्छा	देवाँअच्छा
११७	१७	ज्योतिष्मात्	ज्योतिष्मान्
,,	२१	कारयेति	कारायेति
११८	१७	इति पञ्चमीदशतिः ।	इतिपञ्चमी दशतिः प्रथम प्रपाठके प्रथमार्धश्च ।
११९	२४	ओहति	ओहते
१२३	१९	पूर्वतेऽग्ने	पूर्वतोऽग्ने
१२४	३	त्यन्नन्नाम	त्यन्ननाम
१२५	११	धते	धत्ते
१३६	२४	धातूनामनेकार्थत्वाद्व-क्षतेरौणादिकोऽथस्	वहतेरौणादिकस्सथः
१३७	११	सख्या	सङ्ख्या
१६६	१३	मोक्षणे	मोचने
१६६	१४	लोटि	लेटि
१६७	२२	प्रापय	प्रविलिख प्रज्ञापय
१७७	१३	ऋत्विभिः	ऋत्विग्भिः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१७९	३	सोमंश्छ	सोमश्छ
१८६	२	वसूंश्छरिह	वसूँरिह
,,	,,	रुद्रांश्छआ	रुद्राँआ
,,	,,	दित्यांश्छउ	दित्याँउ
१८८	६	यन्तिं	यन्ति
१९०	३	इति दशमी दशतिः ।	इति दशमी दशतिः, प्रथमः प्रपाठकश्च ॥
१९९	२४	छम्दः	छन्दः
२०६	१०	त्रायते	त्रायन्ते
२१३	५	परमेश्वर्य्यं	परमैश्वर्य्यं
२१३	५	वज्रे	वज्र
२२४	६	परमैश्वयर्वन्	परमैश्वर्य्यवन्
२२४	१२	सामान्यम्बलम्	समानम्बलम्
२३१	८	सहृत्	सुहृत्
२३२	२४	चौरौदिर्वा	चौरादिर्वा
२३६	२०	सामान्यकाले	कालसामान्ये
२४४	२	उपस्थितः	उपस्थिताः
२४५	८	परमेश्वरं	पारमेश्वरं
२४८	३	संम्भवन्ति	सम्भवन्ति
२५३	४	इति तृतीया दशतिः	इति तृतीया दशतिः । द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमार्धश्च ॥
२५६	१४	चन्द्रमेसो	चन्द्रमसो
२७१	१०	सुदुघामिव	सूदुघामिव
२७२	१४	क्षमताये	क्षमतायै
२७३	१८	वोषधि	वौषधि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओ३म्

अथ तृतीयाऽध्यायः

अभित्वेति बृहत्यो वै दशतौ दश कीर्तिताः ।
आद्या अष्टान्तिमा चैन्द्र्यो नवमी मारुती मता ॥१॥

तत्र

प्रथमायाः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा शूर नोनुमोदुग्धा इव धेनवः ।
१ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥ (२३३)

पदपाठः—अभि अ० । त्वा २ । शूर सं० । नोनुमः क्रि० । अदुग्धाइव अ० । धेनवः १ । ईशानम् २ । अस्य, जगतः ६ । स्वर्दृशम्, ईशानम् २ । इन्द्र सं० । तस्थुषः ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(शूर) विक्रान्त ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (अस्य) निर्दिश्यमानस्य (जगतः) जङ्गमस्य (ईशानम्) ईश्वरम् (तस्थुषः) स्थावरस्य च (ईशानम्) ईशानपदस्याऽऽवृत्तिरादरार्था (स्वर्दृशम्) स्वः आदित्यस्तस्याऽपि दर्शकम् (त्वा) त्वाम् (अदुग्धाइव धेनवः) यथा अदुग्धा गावो दुग्धपूर्णोधस्त्वेन नम्रा वर्त्तन्ते तद्वत् भक्तिनम्रा वयम् (अभि, नोनुमः) सर्वतो,ऽत्यन्तं, नमस्यामः ॥

स्वरादित्यो भवति, सु अरणः, सु ईरणः, स्वृतोरसांत्स्वृतो भासं ज्योतिषां स्वृतो भासेति वा । निरु० २ । १४ ॥ ऋग्वेदेऽपि ७ । ३२ । २२ ॥ १ ॥ (२३३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(शूर) विक्रमी ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (अस्य) इस (जगतः) जङ्गम के (ईशानम्) प्रभु और (तस्थुषः) स्थावर के भी (ईशानम्) प्रभु (स्वर्दृशम्) सूर्य को भी प्रकाशित करने वाले (त्वा) आप को (अदुग्धा इव धेनवः) विना दुही गौवों के समान अर्थात् जैसे विना दुही गौवें बाख में दुग्ध भरा होने से नौहड़ी रहती हैं ऐसे ही भक्ति से नम्र हुवे हम (अभि, नोनुमः) सर्वतः अत्यन्त नमस्कार करते हैं ॥

निरुक्त २ । १४ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । ३२ । २२ में भी ॥१॥ (२३३)

अथ द्वितीयायाः—भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१र २र ३१र २र ३१२

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

३१ २३ १२३ २३ २उ ३१२

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ २ ॥ (२३४)

पदपाठः—त्वाम् २ । इत्, हि अ० । हवामहे क्रि० । सातौ ७ । वाजस्य ६ । कारवः १ । त्वाम् २ । वृत्रेषु ७ । इन्द्र सं० । सत्पतिम् २ । नरः १ । त्वाम् २ । काष्ठासु ७ । अर्वतः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (अर्वतः) अश्वारोहिणो वीराः (नरः) सेनादिनेतारो जनाः (वृत्रेषु) आवरकेषु शत्रुषु सत्सु (त्वाम्), भजन्ते इति शेषः । (काष्ठासु) दशसु दिक्षु (त्वाम्) (सत्पतिम्) सतां पालकम् [भजन्ते अतः] (कारवः) स्तोतारोवयमपि (वाजस्य) बलस्य (सातौ) दाने निमित्ते (त्वाम् , इत् , हि) त्वामेव (हवामहे) भजामो, नान्यम् ॥

यथा सर्वत्र विजयप्रदं परमात्मानमेव वीराः पुरुषाः भजन्ते तथा कामादिषु शत्रुषु दशस्वपि दिक्षु आवरकेषु सत्सु तज्जयात्मिकबलप्राप्तये परमात्मानमेव हवामहे ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कारुरिति स्तोतृनाम। निघं० ३।१६॥ अर्वाइत्यश्वनाम। निघं० १। १४ तात्स्थ्योपाधिना तत्स्थाः पुरुषास्तदुपलक्षित-हस्तिरथाद्यारूढाश्च ग्राह्याः॥ ऋग्वेदे तु ६।४६। १ "साता" इत्यन्तरम्॥ २॥ (२३४)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (अर्वतः) अश्वादि के चढ़ने वाले वीर (नरः) पुरुष (वृत्रेषु) शत्रुओं से घेरे जाने पर (त्वाम्) आप का [सहारा लेते हैं] (काष्ठासु) सब दिशाओं में (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक (त्वाम्) आप को [भजते हैं, अतः] (कारवः) हम स्तोता भक्त जन भी (वाजस्य) बल के (सातौ) दान निमित्त (त्वाम्, इत्, हि) आप को ही (हवामहे) पुकारते हैं॥

जिस प्रकार सब दिशाओं में सज्जनों के रक्षक आप परमात्मा को, शत्रुओं की भीड़ पड़ने पर, बल प्राप्त करने के लिये, वीर पुरुष पुकारते हैं; इसी प्रकार हे भगवन्! हम भक्तजन भी कामादि शत्रुगण की भीड़ में उन के परास्त करने को बल का दान आप से मांगते हैं॥

निघण्टु ३। १६॥ १। १४॥ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ६। ४६। १ में "साता" यह पाठभेद है॥ २॥ (२३४)

अथ तृतीयस्याः—बालखिल्या ऋषयः। इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः॥

३१र २र ३१२३१ २३१ २३ २
अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
१२३१ २ ३१ २ ३१२ २१२ ३ १ २
योजरितृभ्योमघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति॥३॥ (२३५)

पदपाठः—अभि, प्र अ०। वः ४। सुराधसम्, इन्द्रम् २। अर्च क्रि०। यथा अ०। विदे क्रि०। यः १। जरितृभ्यः ४। मघवा, पुरूवसुः १। सहस्रेणेव अ०। शिक्षति क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(यः) (पुरूवसुः) बहुधनः (मघवा) इन्द्रः परमेश्वरः (वः) युष्मभ्यम् (जरितृभ्यः) स्तोतृभ्यः (सहस्रेणेव)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अनेकधा (शिक्षति) ददाति । तं (सुराधसम्) शोभनविद्यादि-धनवन्तम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (यथा) येन प्रकारेण (विदे) वेद्मि जानामि तथा (अभि, प्र, अर्च) सर्वतः, अत्यन्तं, पूजयामि। पुरुषव्यत्ययः ॥

राध इति धननाम। निघं० २। १० ॥ जरिता इति स्तोतृनाम ३। १६ ॥ इवेति पादपूरणः ॥ शिक्षतिर्दानकर्मा ३। २० ॥ ऋग्वेदेऽपि ८। ४९। १॥ ३॥ (२३५)

भाषार्थः—(यः) जो (पुरूवसुः) विद्यादि बहुत धन वाला (मघवा) इन्द्र परमेश्वर (वः) तुम (जरितृभ्यः) स्तोताओं के लिये (सहस्रेणेव) अनेक प्रकार से (शिक्षति) देता है। उस (सुराधसम्) सुन्दर विद्यादि धन वाले (इन्द्रम्) परमात्मा को (यथा) जिस प्रकार (विदे) जानता हूं उस प्रकार (अभि, प्र, अर्च) सर्वतः, अत्यन्त, पूजता हूं ॥

निघण्टु २। १० ॥ ३। १६ ॥ ३। २० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये। ऋ० ८। ४९। १ में भी ॥ ३ ॥ (२३५)

अथ चतुर्थ्यार्चः—नोधा ऋषिः। इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।

३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥ (२३६)

पदपाठः—तम् २। वः ६। दस्मम्, ऋतीषहम् २। वसोः ५। मन्दानम् २। अन्धसः ५। अभि अ०। वत्सम् २। न अ०। धेनवः १। इन्द्रम् २। गीर्भिः ३। नवामहे क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः! (वः) युष्माकम् (ऋतीषहम्) ऋतयःकामादिशत्रुसेनाः तासामभिभवितारम् (दस्मम्) तासामुपक्षयकरम् (तम्) (इन्द्रम्) परमात्मानम् (गीर्भिः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वेदवाग्भिः (अभि, नवामहे) अभितो, नुमः । दृष्टान्तः—(न) यथा (धेनवः) गावः (स्वसरेषु) गोष्ठेषु (वसोः) वासहेतोः (अन्धसः) आहारात् (मन्दानम्) मोदमानम् (वत्सम्) (अभि) अभिलक्ष्य शब्दयन्ति हुङ्कारादिना हृदयप्रीतिमुद्विरन्ते, तद्वत् ॥

ये च "अन्धसः मन्दानम्" इति इन्द्रं परमात्मानं विशिंषन्ति ते भ्रान्ताः । "अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति" (ऋ० १ । १६४ । २०) इत्यादिषु परमात्मनो भोगराहित्यस्य प्रतिपादितत्वात् ॥ दसु उपक्षये दस्यत्युपक्षयति शत्रून् सः दस्मः । इषियुधीन्धिदसिश्यधूसूभ्यो मक् (उणा० १ । १४५) ॥ ऋतयः सेना इति विवरणकारमतम् ॥ स्वसराणीति गृहनाम । निघं० ३ । ४ ॥ ऋग्वेदेपि ८ । ८८ । १ ॥ ४ ॥ (२३६)

भाषार्थः—हे उपासको ! (वः) तुम्हारे (ऋतीषहम्) कामादि शत्रुवों के तिरस्कार करने वाले (दस्मम्) उन का क्षय करने वाले (तम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर को (गीर्भिः) वेदमन्त्रों से (अभि, नवामहे) हम सर्वथा स्तुत करते हैं—पुकारते हैं । दृष्टान्त—(न) जैसे (धेनवः) गौवें (स्वसरेषु) गोगृहों में (वसोः) वासहेतु (अन्धसः) अन्न से (मन्दानम्) मोदमान हृष्ट पुष्ट (वत्सम्) बछड़े को (अभि) देख कर [हृदय की प्रीति से पुकारती हैं । तद्वत्] ॥

जो लोग "अन्न से मोदमान हृष्ट पुष्ट" पदों को परमात्मा का विशेषण करते हैं, वे भ्रान्त हैं। क्योंकि "अनश्नन्न०" ऋ० १ । १६४ । २० में परमात्मा का भोगरहित कहा है तथा अन्य अनेक वाक्यों में भी ॥ उणादि १ । १४५ निघण्टु ३ । ४ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ८८ । १ । में भी ॥ ४ ॥ (२३६)

अथ पञ्चम्याः—कलिःप्रगाथ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रꣳ सबाध ऊतये ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३१२ २२ ३१२ ३२ ३२३ ३२३ १२

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥५॥ (२३७)

पदपाठः—तरोभिः ३ । वः २ । विदद्वसुम्, इन्द्रम् २ । सबाधः १ । ऊतये ४ । बृहत् २ । गायन्तः १ । सुतसोमे, अध्वरे ७ । हुवे क्रि० । भरम् २ । न अ० । कारिणम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः (वः) युष्मान् अहम् (हुवे) उपदिशामि । यत्—(सबाधः) ऋत्विजः (तरोभिः) बलैः सह (बृहत्) बृहन्नामकं साम (गायन्तः) सन्तः (विदद्वसुम्) वेदयद्वसुं वसुप्रापकम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (सुतसोमे) सुतः सोमोयस्मिंस्तस्मिन् (अध्वरे) सोमयागे (ऊतये) रक्षायै [स्तुवन्तुइति शेषः ।] दृष्टान्तः—(न) यथा (कारिणम्) हितकारिणम् (भरम्) कुटुम्बभरं पित्रादिकं पुत्रादयः स्तुवन्ति तद्वत् ॥

तर इति बलनाम । निघं० २ । ९ सबाधः इत्यृत्विङ्नाम निघं० ३ । १८ ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ५५ । १ ॥ ५ ॥ (२३७)

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! मैं (वः) तुम को (हुवे) पुकार कर कहता हूं कि (सबाधः) ऋत्विज् लोग (सुतसोमे) जिस में सोम खींचा जावे उस (अध्वरे) सोमयज्ञ में (ऊतये) यज्ञरक्षार्थ (बृहत्) बृहत् नामक साम को (तरोभिः) बलों से अर्थात् उच्चैः स्वर से (गायन्तः) गाते हुवे (विदद्वसुम्) धन को लाभ कराने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की [स्तुति करें] दृष्टान्त—(न) जैसे (कारिणम्) हितकारी (भरम्) कुटुम्ब के पोषक पित्रादि को [पुत्रादि पुकारते हैं । तद्वत्]॥

निघण्टु २ । ९ ॥ ३ । १८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ५५ । १ में भी॥ ५ ॥ (२३७)

अथ षष्ठ्याः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३२३१ २ ३ २३१२ ३ २

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३१२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥६॥ (२३८)

पदपाठः—तरणिः १ । इत् अ० । सिषासति क्रि० । वाजम् २ । पुरन्ध्या, युजा ३ । आ अ० । वः, इन्द्रम्, पुरुहूतम् २ । नमे क्रि० । गिरा ३ । नेमिम् २ । तष्टेव अ० । सुद्रुवम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(पुरन्ध्या) महत्या प्रज्ञया (युजा) सहवर्त्तमानया (तरणिः) सूर्यः (वाजम्) पूर्वमन्त्रोक्तं सोमाऽन्नम् (इत्) शीघ्रम् (सिषासति) संभजते । अहमुपदेष्टा (वः) युष्मान् याज्ञिकान् (पुरुहूतम्) बहुस्तुतम् (इन्द्रम्) परमात्मानम् (गिरा) वाचा (आ, नमे) आनमये । दृष्टान्तः—(सुद्रुवम्) सुष्ठु यथास्यात्तथा द्रवते इति सुद्रुस्ताम् (नेमिम्) रथाङ्गबलयाख्याम् (तष्टेव) यथा तष्टा वर्द्धकिरानमयते, तद्वत् ॥

पुरन्ध्या महत्या धियेति सायणोऽपि॥ नमे, इत्यन्तर्हितणिजर्थकम्॥ ऋग्वेदे तु ७।३२।२० सुद्रुवम् इति पाठः ॥६॥ (२३८)

भाषार्थः—(युजा) सहवर्त्तिनी (पुरन्ध्या) बड़ी चितौनी के साथ (तरणिः) सूर्य्य (वाजम्) पूर्वमन्त्रोक्त सोम अन्न को (इत्) शीघ्र (सिषासति) सेवन करता है॥ मैं उपदेष्टा (वः) तुम याज्ञिकों को (पुरुहूतम्) बहुस्तुत (इन्द्रम्) परमेश्वर के प्रति (गिरा) वाणी से (आ, नमे) नम्र कराता हूं—नमस्कार कराता हूं। दृष्टान्त—(सुद्रुवम्) अच्छे ढुलने वाली (नेमिम्) पहिये की पुठ्ठी को (तष्टेव) जैसे बढ़ई नम्र करता है, तद्वत् ॥

सायणादि के लेख संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ७। ३२। २० में तौ "सुद्रुवम्" पाठ है ॥ ६ ॥ (२३८)

अथ सप्तम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ऽ १ २ ३ १ २
आपिर्नो बोधिसधमाद्ये वृधे ३स्माँअवन्तु ते धियः ॥७॥ (२३९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—पिब, क्रि० । सुतस्य, रसिनः ६ । मत्स्व क्रि० । नः ६ । इन्द्र सं० । गोमतः ६ । आपिः १ । नः २ । बोधि क्रि० । सधमाद्ये ७ । वृधे ४ । अस्मान् २ । अवन्तु क्रि० । ते ६ । धियः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (गोमतः) गवादिपशुमतोयज्ञकर्त्तुः सम्बन्धिनः (रसिनः) रसवतः (सुतस्य) शुद्धस्याऽन्तःकरणस्य (पिब) ग्रहणं कुरु (नः) अस्मभ्यम् (मत्स्व) हृष्टोऽस्मदनुकूलो भव (आपिः) व्यापकस्त्वम् (नः) अस्मान् (बोधि) बोधय (सधमाद्ये) योगयज्ञे (वृधे) वृद्ध्यै अस्मदुन्नत्यै (ते) तव (धियः) प्रज्ञाः (अस्मान्, अवन्तु) ॥

हे परमात्मन् ! ये यज्ञानुष्ठातारो गवादिपशुयुक्ताः योगयज्ञमारभन्ते तेषां ततःपूर्वं विषयरसलुब्धस्य इदानीं भवदुपासनायां शोधितस्य च मनसोग्रहणं कुरु अर्थात् विषयेभ्यो निवृत्तं कृत्वा आत्मस्वरूपैकलिप्सु कुरु । तदुपरि प्रसन्नश्च भव । भवान् सर्वव्यापकः सन् अन्तर्यामितयाऽस्मान् बोधय । स्वकीयप्रज्ञाप्रसादेनाऽस्मानऽवतु ॥

ऋग्वेदे तु ८ । ३ । १ सधमाद्यः इति पाठः ॥७॥(२३९)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! आप (गोमतः) गवादि पशु वाले यज्ञकर्त्ता के (रसिनः) रसीले (सुतस्य) आप की भक्तियोग्य संपादित मन का (पिब) ग्रहण कीजिये और (नः) हमारे लिये (मत्स्व) प्रसन्न अनुकूल हूजिये । (आपिः) आप व्यापक हैं (नः) हम को अन्तर्यामितया (बोधि) ज्ञान दीजिये (सधमाद्ये) योगयज्ञ में (वृधे) उन्नति के लिये (ते) आप की (धियः) प्रज्ञा के प्रसाद (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥

हे परमेश्वर ! जो लोग गवादि पशु वाले हैं और घृतादि से कर्मयज्ञ करते हैं, जिन का मन रसिक है, ऐसी कृपा कीजिये कि उन का मन शुद्ध हो के श्रद्धा भक्ति पूर्वक आप का शरण ग्रहण करे । आप हम पर प्रसन्न हों । आप अन्तर्यामिरूप से हमारी बुद्धि को सुधारिये, ज्ञान दीजिये । आप का दिया बुद्धि का प्रसाद हमारी रक्षा करे ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋ० ८ । ३ । १ में भी ।।७।। (२३९) .

अथाऽष्टम्याः—भर्गऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ।।

१उ ३ १२ ३२उ ३ १ २
त्वꣳ ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
१ २ २१३ १ २र३ २३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥८॥ (२४०)

पदपाठः—त्वम् १ । हि अ० । एहि क्रि० । चेरवे ४ । विदाः क्रि० । वसुत्तये ४ । उद्वावृषस्व क्रि० । मघवन् सं० । गविष्टये ४ । उत् अ० । इन्द्र सं० । अश्वम् २ । इष्टये ४ ।।

अन्वितपदार्थः—(चेरवे) ज्ञानिने भक्ताय (वसुत्तये) विद्यादिधनदानाय (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वम्) (हि) निश्चयेन (एहि) प्राप्नुहि प्राप्य च (मघवन्) विद्यादिधनवन् ! (गविष्टये) इन्द्रिययागाय (उद्वावृषस्व) उदासिञ्चाऽभीष्टं वर्षय । (अश्वम्) प्राणम् (इष्टये) योगयज्ञाय (उत्) उद्वावृषस्व (भगम्) योगैश्वर्यम् (विदाः) लम्भय ।।

उत् इति उपसर्गाभ्यासो हि क्रियाभ्यासे ज्ञापकः ।। ऋग्वेदे ८ । ५० । ७ ऽपि ।। ८ ।। (२४०)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (चेरवे) ज्ञानी भक्तजन के लिये (वसुत्तये) विद्यादि धनदानार्थ (त्वम्) आप (हि) ही (एहि) प्राप्त हूजिये और (मघवन्) हे अनन्त विद्यादि धन युक्त ! (गविष्टये) इन्द्रियवृत्तिनिरोध रूप यज्ञ के लिये (उद्वावृषस्व) सींचिये तर कीजिये (अश्वम्) प्राण को (इष्टये) योगयज्ञ के लिये (उत्) सींचिये (भगम्) योगैश्वर्य का (विदाः) लाभ कराइये ।।

उत् उपसर्ग का दो वार पाठ ही वावृषस्व क्रिया के दो वार होने का ज्ञापक है ।। ऋ० ८।५०।७ में भी ।।८।। (२४०)

अथ नवम्याः—वसिष्ठ ऋषिः । मरुतो देवताः । बृहती छन्दः ।।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१र २र ३ २ ३१र २र ३ १ २
नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमꣳसते ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १उ ३ १ २ ३ १ २
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥९॥(२४१)

नहि अ० । वः ६ । चरमम् २ । चन अ० । वसिष्ठः १ । परि अ० । मꣳसते क्रि० । अस्माकम् ६ । अद्य अ० । मरुतः सं० । सुते ७ । सचा अ० । विश्वे १ । पिबन्तु क्रि० । कामिनः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(मरुतः) हे ऋत्विजः! प्राणा वा (वसिष्ठः) वसन्त्यनेनेति वसुरतिशयितोवसुर्वसिष्ठः यजमान आत्मा वा (वः) युष्माकं मध्ये (चरमं, चन) अन्त्यमपि (नहि) नैव (परि) वर्जयित्वा (मꣳसते) सत्करोति अर्थात् सवानेव सत्करोति । अतः (अस्माकं) यजमानानामात्मनां वा (सुते) अभिषुते सोमे मनसि वा (अद्य) (विश्वे) (कामिनः) इच्छुकाः (सचा) समेत्य (पिबन्तु) ॥

वस निवासे, शृस्वृस्निहीत्यादिना (उणा० २ । १०) उः तत इष्ठनि पृषोदरादित्वाद्वसिष्ठः ॥ सचा सहेत्यर्थः । निरु० ५।५॥ ऋग्वेदे तु ७। ५९ । ३ पिबत इत्यन्तरम् ॥९॥(२४१)

भाषार्थः—(मरुतः) ऋत्विजो ! (वसिष्ठः) यजमान (वः) तुम में से (चरमं चन) अन्त के को भी (परि) छोड़ कर (नहि) नहीं (मꣳसते) सत्कार करता अर्थात् सभी को सत्कृत करता है । अतः (अस्माकम्) हमारे (सुते) सोम संपन्न होने पर (अद्य) आज (विश्वे) सब (कामिनः) चाहने वाले(सचा) एक साथ ही (पिबन्तु) पी लेवें ॥

अध्यात्मपक्षे—(मरुतः) प्राणो ! (वसिष्ठः) आत्मा (वः, चरमं, चन, नहि, परि, मꣳसते) तुम में से, अन्तिम को, भी, नहीं,छोड़कर, सत्कार करता है (विश्वे, कामिनः) सब, चाहने वाले (अस्माकम्) हमारे (सुते) संपन्न मन में (अद्य) आज (सचा) एक साथ (पिबन्तु) तृप्त होवें ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

योगैश्वर्य को प्राप्त हुवा आत्मा कहता है कि हे प्राणो ! आज हमारे कुछ कमी नहीं, जब कि हमने मन को जीत कर खेंच लिया, आज सब काम पूर्ण हैं. अब तुम जितनी इच्छा हो, उतना आनन्दाऽमृत पान करो ।।

उणादि २ । १० ।। निरुक्त ५ । ५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० ७ । ५९ । ३ में "पिबत" पाठ है ।। ९ ।। (२४१)

अथ दशम्याः=प्रगाथः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ।।

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
मा चिदन्यद्विशंसत सखायो मा रिषण्यत । इन्द्रमित्स्तो-
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
ता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१०॥ (२४२)

इति तृतीयाऽध्याये प्रथमा दशतिः ॥१॥

* तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमार्धश्च समाप्तः ॥ *

पदपाठः—मा, चित् अ० । अन्यत् २ । विशंसत क्रि० । सखायः सं० । मा अ० । रिषण्यत क्रि० । इन्द्रम् २ । इत् अ० । स्तोत क्रि० । वृषणम् २ । सचा अ० । सुते ७ । मुहुः अ० । उक्था २ । च अ० । शंसत क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(सखायः) हे सुहृदः ! (अन्यत्) इन्द्रात्परमेश्वरादन्यत् (मा चिद्विशंसत) किमपि दैवतं तद्बुद्ध्या नैव स्तुत (मा रिषण्यत) हिंसां न कुरुत (सुते) संपन्ने मनसि (वृषणम्) धर्मार्थकाममोक्षाणां वर्षकम् (इन्द्रम्, इत्) परमात्मानमेव (सचा) संघीभूय (स्तोत) स्तुत (उक्था) उक्थानि ऐन्द्रसूक्तानि च (मुहुः) पुनः पुनः (शंसत) उच्चारयत ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । १ । १ ॥ १० ॥ (२४२)

भाषार्थः—(सखायः) हे मित्रो ! (अन्यत्) और किसी को (मा चित्) मत (विशंसत) स्तुत करो किन्तु (सुते) मन शुद्ध करने पर (वृषणम्) धर्मार्थ काम के पूरा करने वाले (इन्द्रम्, इत्) परमात्मा को, ही (सचा)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सब मिल कर (स्तोत) स्तुत करो (च) और (उक्था) स्तोत्रों को (मुहुः) वारंवार (शंसत) पढ़ो। तथा (मा रिषण्यत) हिंसा मत करो ॥

अर्थात् मनुष्य मात्र को परमात्मा के स्थान में अन्य की स्तुति न करनी चाहिये किन्तु परमात्मा की ही करनी चाहिये और उसी के स्तोत्रों का पाठ करना चाहिये। तथा प्राणिमात्र की हिंसा न करनी चाहिये ॥ ऋ० ८। १। १ में भी ॥ १० ॥ (२४२)

यह तृतीयाऽध्याय में १ दशति समाप्त हुई

——:०:——

अथ तृतीय प्रपाठके प्रथमोर्धः ॥

तत्र प्रथमा दशतिः ॥

नकिष्टंकर्मणेत्यैन्द्रयो बृहत्यो दशतौ दश ॥

तत्र प्रथमायाः—आङ्गिरसःपुरुहन्मा ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

१ ३ १र २र २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्। इन्द्रं

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

न यज्ञैर्विश्वगूर्त्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ ११ ॥ (२४३)

पदपाठः नकिः अ० । तम् २ । कर्मणा ३ । नशत् क्रि० । यः १ । चकार क्रि० । सदावृधम्, इन्द्रम् २ । न अ० । यज्ञैः ३ । विश्वगूर्त्तम्, ऋभ्वसम्, अधृष्टम्, धृष्णुम् २ । ओजसा ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(यः) पुरुषः (सदावृधम्) सर्वदा वर्धकम् (विश्वगूर्त्तम्) सर्वैः स्तुत्यम् (ऋभ्वसम्) महान्तम् (अधृष्टम्) केनाऽपि धर्षितुमशक्यम्। (ओजसा) (धृष्णुम्) सर्वेषां धर्षकम् (न) च (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (यज्ञैः) यज्ञादिभिः (चकार) सेवितं करोति (तम्) पुरुषं [कश्चित्]

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(कर्मणा) प्रहारादिना (नकिः) नैव(नशत्)व्याप्नोति । अथवा कर्मणा कर्म न बध्नाति निष्कामभावेन कृतत्वात् ॥

नशदिति व्याप्तिकर्मा । निघं० २ । १८ ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ७० । ३ धृष्णवोजसमिति पाठः ॥ १ ॥ (२४३)

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (सदावृधम्) सर्वदा भक्तों की वृद्धि करने वाले (विश्वगूर्त्तम्) समस्त संसार के स्तुति योग्य (ऋभ्वसम्) महान् (अधृष्टम्) अधृष्य अर्थात् जिस के ऊपर किसी का अधिकार नहीं (न) और (ओजसा) अपने अनन्त बल से (धृष्णुम्) सब पर अधिकार रखने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (यज्ञैः) योगादि यज्ञों से (नकार) उपासित करता है (तम्) उस पुरुष को कोई कामादि शत्रु (कर्मणा) प्रहारादि से (नकिः) नहीं (नशत्) व्यापता अथवा उसे कर्मबन्धन नहीं होता, निष्काम होने से ॥

निघण्टु २ । १८ ऋ० ८ । ७० । ३ में " धृष्णवोजसम् " पाठ है ॥१॥ (२४३)

अथ द्वितीयायाः—मेधातिथिर्मेध्यातिथी ऋषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
यऋते चिदभिश्रिषःपुरा जत्रुभ्य आतृदः । सन्धाता
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्त्ता विद्रुतं पुनः ॥२॥ (२४४)

पदपाठः—यः १ । ऋते, चित् अ० । अभिश्रिषः ५ । पुरा अ० । जत्रुभ्यः, आतृदः ५ । सन्धाता १ । सन्धिम् २ । मघवा, पुरूवसुः, निष्कर्त्ता १ । विद्रुतम् २ । पुनः अ० ॥

अन्वितपदार्थः—पूर्वोक्तमिन्द्रं विशिनष्टि (यः) (मघवा) इन्द्रः (पुरूवसुः) बहुवासयिता (जत्रुभ्यः) ग्रीवादिभ्यः सकाशात् (आतृदः) आतर्दनात् आरुधिरोत्पत्तेः (पुरा) पूर्वमेव (अभिश्रिषः) अभिश्लेषणद्रव्यात् सन्धानरज्जोः (ऋते चित्) विनाऽपि (सन्धिम्) सन्धानीयं (सन्धाता) संदधाति (पुनः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पुनश्च (विद्रुतम्) तूर्णमेव च (निष्कर्त्ता) विच्छिनत्ति च ॥

आश्चर्यकर्मायं परमात्मा यत् गर्भगतानां प्राणिनां ग्रीवाद्यवयवान् सन्धानरज्जुमन्तरेणाऽपि संदधाति, विच्छिनत्ति च कठिनतरानपि सुसंनद्धान् ॥

ऋग्वेदे तु ८।१।१२ इष्कर्त्ता विद्रुतम् इति पाठः ॥२॥ (२४४)

भाषार्थः—पूर्वोक्त इन्द्र का ही वर्णन करते हैं--(यः) जो (मघवा) इन्द्र अर्थात् परमेश्वर (पुरूवसुः) बहु वास हेतु (जत्रुभ्यः) ग्रीवादि जोड़ों से (आतृदः) रुधिरोत्पत्ति से (पुरा) पहले ही (अभिश्रिषः) चिपकाने के वा जोड़ने के साधन रस्सी आदि के (ऋते चित्) विना ही (सन्धिम्) जोड़ को (संधाता) जोड़ देता है (पुनः) और (विद्रुतम्) शीघ्र ही जब चाहे तब (निष्कर्त्ता) विछोड़ा करदेता है ।।

परमात्मा के कैसे आश्चर्य काम हैं कि गर्भगत प्राणियों के ग्रीवादि अवयवों को चिपकाने के लिये जब तक रुधिर भी नहीं उत्पन्न होता है, तभी समस्त सन्धियों को विना रस्सी आदि साधनों के जोड़ देता और जब चाहे, तत्काल पुष्ट से पुष्ट बन्धनों को तोड़ विछोड़ देता है ॥ ऋ० ८ । १ । १२ में "इष्कर्त्ता विद्रुतम्" पाठ है ॥२॥ (२४४)

अथ तृतीयस्याः—पूर्वोक्ता ऋष्यादयः ॥

१ २ ३२३ २ ३ २ ३१र १र ३ १२ ३ २ ३
आ त्वा सहस्रमाशतं युक्ता रथे हिरण्यये । ब्रह्मयुजो
१२ ३ २ ३ १२३ १२
हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३॥ (२४५)

पदपाठः—आ अ० । त्वा २ । सहस्रम् १ । आ अ० । शतम् २ । युक्ताः१। रथे, हिरण्यये ७ । ब्रह्मयुजः, हरयः १। इन्द्र सं० । केशिनः १ । वहन्तु क्रि०। सोमपीतये ४॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) सूर्य ! (हिरण्यये) तेजोमये (रथे) रम्यस्वरूपे (युक्ताः) (केशिनः) केशवत्प्रकाशधारावन्तः (ब्रह्मयुजः) ब्रह्मणा परमात्मना योजिताः (आ सहस्रम्) अ-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

संख्याता बहवः (हरयः) अश्वाइव किरणाः (त्वा) त्वाम् (आ शतम्) बहुविधं (सोमपीतये) सोमपानाय (वहन्तु) वहन्ति॥

यदा मनुष्याः सोमाद्यैषधिभिर्यज्ञमारभन्ते तदा सूर्यस्य तेजोमये पिण्डे ब्रह्मणा योजितास्तत्किरणाः सोमपानायौषधिरसाकर्षणाय सूर्यं वहन्ति ॥ सूर्यो रथिना, तत्पिण्डदेहो रथेन, किरणाश्चाश्वैरुपमिता बोध्याः ॥ तृतीयाध्यायारम्भे सायणाचार्योऽपि "ब्रह्मवट् सूर्यसंस्तवः" इत्यादिना इमामृचं सूर्यदेवताकां प्राह । शतं सहस्रमिति च बहुनाम । निघं० ३ । १ ॥ तेजोवै हिरण्यम् । शतपथे ॥ ऋत्व्य वास्त्व्य वास्त्व माध्वी हिरण्यानि छन्दसि (पा० ६ । ४ । १७५) ॥ यद्यपि हरी इन्द्रस्य (निघं० २ । १५) इति द्विवचनान्तः प्रयोगो दृश्यते परन्तु बाहुल्यविवक्षयाऽत्र बहुत्वं बोध्यम् ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । १ । २४ ॥ ३ ॥ (२४५)

भाषार्थः—(इन्द्र) सूर्य ! (हिरण्यये) तेजोमय (रथे) रथवत् रमणीय पिण्ड में (युक्ताः) जुड़े हुवे और (ब्रह्मयुजः) ब्रह्म के जोड़े हुवे (केशिनः) केश के तुल्य प्रकाश की धारों वाले (आ सहस्रम्) असंख्य (हरयः) घोड़े के समान किरणें (त्वा) तुझ को (आ शतम्) बहुविध (सोमपीतये) सोमपान के लिये (वहन्तु) प्राप्त करते हैं ॥

अर्थात् जब मनुष्य सोमादि ओषधियों से यज्ञ करते हैं तो सूर्य के तेजोमय गोले में ब्रह्म की जोड़ी हुई उस की किरणें ओषधियों के हवन किये रस को खींचने के लिये सूर्य का प्राप्त करती हैं । सूर्य को रथी, गोले को रथ, और किरणों को घोड़ों की उपमा जानिये । तृतीयाध्याय के आरम्भ में (ब्रह्मवट्०) सायणाचार्य ने भी इस ऋचा का सूर्य देवता कहा है । निघण्टु ३ । १ ॥ २ । १५ ॥ शतपथ और अष्टाध्यायी ६ । ४ । १७५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १ । २४ में भी ॥ ३ (२४५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थ्यः—विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता बृहती छन्दः ॥

२ ३१ २३१२ ३२ ३१२ ३
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा त्वा
२ ३ १२३२उ ३२उ ३ १२३१ २
के चिन्नियेमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँइहि ॥४॥(२४६)

पदपाठः—आ अ० । मन्द्रैः ३ । इन्द्र सं० । हरिभिः ३ । याहि क्रि० । मयूररोमभिः ३ । मा अ० । त्वा २ । के १ । चित् अ० । नियेमुः क्रि० । इत्, न अ० । पाशिनः १ । अति अ० । धन्वेव अ० । तान् २ । इहि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) सूर्य ! (मयूररोमभिः) यथा मयूरपक्षे विचित्रवर्णसौष्ठवं तद्वदतिसौष्ठवयुक्तैः (मन्द्रैः) आनन्ददैः (हरिभिः) किरणैः (आ, याहि) प्राप्नोषि (के) (चित्) अपि (त्वा) त्वाम् (मा) (नियेमुः) नियच्छन्ति (इत्) अपितु (तान्) निगृहीतुमुद्यतानन्धकारादीन् (अति इहि) उल्लङ्घ्य वर्तसे । दृष्टान्तः—(पाशिनः न) यथा पाशहस्ता व्याधाः पक्षिणो निगृह्णन्ति तद्वत् । पुनर्दृष्टान्तः—(धन्वेव) धनुषा यथा शत्रुगणं निगृह्णन्ति तद्वत् त्वमपि प्रतिबन्धकान्निगृह्णासि ॥

अत्र सूर्यदृष्टान्तेन राज्ञो धर्मोऽप्युपदिष्टो बोध्यः ॥ ऋग्वेदे तु ३ । ४५ । १ के चिन्नियमन्वं न पाशिन इति पाठः ॥४॥(२४६)

भाषार्थः—(इन्द्र) सूर्य ! (मयूररोमभिः) जैसे मयूर के पंखों में अनेक रंग हैं ऐसे (मन्द्रैः) आनन्ददायक (हरिभिः) किरणों से (आ, याहि) आता है (त्वा) तुझे (के चित्) कोई भी (मा) नहीं (नियेमुः) बान्ध सकते (इत्) प्रत्युत तू ही (तान्) उन रोकने वाले अन्धकारादिकों को (अति इहि) उल्लङ्घन करके आता है । दृष्टान्त—(पाशिनः न) जैसे पाशहस्त व्याधलोग पक्षि को निग्रह करते हैं और (धन्वेव) धनुषधारी धनु-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ष से शत्रु का निग्रह करता है तद्वत् तू अन्धकारादि का निग्रह करता है ॥

इस में सूर्य के दृष्टान्त से राजधर्म भी उपदिष्ट समझना चाहिये ॥ ऋ० ३ । ४५ । १ में जो पाठान्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥४॥ (२४६)

अथ पञ्चम्याः—गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३१र २र ३१ २ ३ १ २

त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

२उ ३ १ २ ३२ ३१२ ३ १२

न त्वदन्यो मघवन्नास्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥५॥ (२४७)

पदपाठः—त्वम् १ । अङ्ग सं० । प्रशंसिषः क्रि० । देवः १ । शविष्ठ सं० । मर्त्यम् २=६ । न अ० । त्वत् ५ । अन्यः १ मघवन् सं० । अस्ति क्रि० । मर्डिता १ । इन्द्र सं० । ब्रवीमि क्रि० । ते ४ । वचः २ ॥

अन्वितपदार्थः—(अङ्ग) हे प्रिय मनुष्य ! (त्वम्) (प्रशंसिषः) एवं प्रशंस स्तुहि । यत् (मघवन्) हे विद्यादिधनवन् ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वत्) त्वत्तः (अन्यः) भिन्नः (देवः) कश्चिद्देवः (मर्त्यम्) मर्त्यस्य मनुष्यस्य (मर्डिता) सुखयिता (न) (अस्ति) भवति । (शविष्ठ) हे अनन्तबल ! (ते) तुभ्यम् (वचः) स्तुतिरूपं वचनं (ब्रवीमि) उच्चारयामि ॥ ऋग्वेदेऽपि १ । ८४ । १९ ॥५॥ (२४७)

भाषार्थः—(अङ्ग) प्यारे पुरुष ! (त्वम्) तू (प्रशंसिषः) इस प्रकार प्रशंसा स्तुति कर कि (मघवन्) हे अनन्तधन ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न कोई (मर्त्यम्) मनुष्य का (मर्डिता) सुखदायी (न) नहीं (अस्ति) है । (शविष्ठ) हे अनन्त बलवान् ! (ते) आप के लिये (वचः) स्तुति वचन (ब्रवीमि) उच्चारण करता हूं ॥ ऋ० १ । ८४ । १९ में भी ॥ ५ ॥ (२४७)

अथ षष्ठ्याः—नृमेधपुरुमेधावृषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१२ ३ १ २ ३१र २र ३ २ १

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ २उ ३ २३ १ २ ३ १ २

त्वं वृत्राणि हꣳस्यप्रतीन्येक इत्पुरुनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥६॥(२४८)

पदपाठः—त्वम् १ । इन्द्र सं० । यशाः । असि क्रि० । ऋजीषी, शवसस्पतिः, त्वम् १ । वृत्राणि २ । हꣳसि क्रि० । अप्रतीनि २ । एकः १ । इत् अ० । पुरु २ । अनुत्तः, चर्षणीधृतिः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (त्वम्) (यशाः) यशस्वी (असि) भवसि (ऋजीषी) अर्जितधनवान् (शवसस्पतिः) बलस्य पतिः बलप्रदश्चाऽसि । (अनुत्तः) अप्रेरितः स्वयमेव (चर्षणीधृतिः) मनुष्याणां धारकः (एक इत्) असहाय एव (पुरु) पुरूणि बहूनि (अप्रतीनि) बलिभिरप्यप्रतिगतानि (वृत्राणि) कामादीनि शत्रुजातानि (त्वम्) (हꣳसि) नाशयसि ॥

अर्जेर्ऋज च (उणा० ४ । २८) इतीषन्प्रत्यये ऋजीषम् तद्वानृजीषी ॥ शव इति बलनाम । निघं० १ । २ ॥ चर्षणय इति मनुष्यनाम । निघं० २ । ३ ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ९० । ५ इदनुत्ता चर्षणीधृता इत्यन्तरम् ॥ ६ ॥ (२४८)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (यशाः) यशस्वी (ऋजीषी) समृद्ध (शवसस्पतिः) बल के पति (चर्षणीधृतिः) मनुष्यों के धारक (असि) हैं और (पुरु) बहुत से (अप्रतीनि) जिन का सामना करना कठिन है उन (वृत्राणि) रोकने वाले कामादि शत्रुओं को (अनुत्तः) अप्रेरित स्वयमेव (एक इत्) विना किसी की सहायता के (त्वम्) आप (हꣳसि) नष्ट करते हैं ॥

उणादि ४ । २८ । निघण्टु १ । २ ॥ २ । ३ के प्रमाण और ऋ० ८ । ९० । ५ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥ (२४८)

अथ सप्तम्याः—मेध्यातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ऊ २र ३ २ । १ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रꣳसमीके वनिनो

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ २३ १२ ३ १२
हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ७ ॥ (२४९)

पदपाठः—इन्द्रम् २ । इत् अ० । देवतातये ४ । इन्द्रम् २ । प्रयति, अध्वरे ७ । इन्द्रम् २ । समीके ७ । वनिनः १ । हवामहे क्रि० । इन्द्रम् २ । धनस्य ६ । सातये ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(देवतातये) देवैः स्तोतृभिस्तायते इति देवतातिर्यज्ञस्तदर्थम् (इन्द्रम् इत्) परमेश्वरमेव (हवामहे) आह्वयामहे । (अध्वरे) यज्ञे (प्रयति) आरब्धे सति (इन्द्रम्) परमेश्वरं हवामहे । (समीके) यज्ञे समाप्ते सति च (इन्द्रम्) परमेश्वरं हवामहे । (वनिनः) संभजमाना वयम् (धनस्य) (सातये) दानाय (इन्द्रम्) परमात्मानं हवामहे ॥

देवताता इति यज्ञनाम । निघं० ३ । १७ तद्वत् देवतातिः समीक इति सङ्ग्रामनामाऽपि । निघं० २ । १७ तस्मात्सोप्यर्थो नूनं संगच्छते । ऋग्वेदेऽपि ८ । ३ । ५ ॥ ७॥ (२४९)

भाषार्थः— हम (देवतातये) यज्ञ के लिये (इन्द्रम् इत्) परमेश्वर की ही (हवामहे) पुकार करें । (अध्वरे) यज्ञ (प्रयति) आरम्भ होने पर (इन्द्रम्) परमेश्वर की पुकार करें । (समीके) यज्ञ समाप्ति वा युद्ध में भी (इन्द्रम्) परमात्मा की सहायता मांगें । (वनिनः) संविभाग करते हुए हम (धनस्य) धन के (सातये) दान मिलने के लिये (इन्द्रम्) परमेश्वर की सहायता मांगें ।।

प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ और समाप्ति में, युद्धादि विपत्ति के समयों में, व्यापारादि धनलाभ के अवसरों में सदा परमेश्वर की ही सहायता मांगनी चाहिये ।। निघण्टु २।१७।।३।१७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ०।८। ३।५ में भी ।।७।। (२४९)

अथाऽष्टम्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ।।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १२ ३
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम । पावकवर्णाः
१३ ३ २ ३ १र २र
शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८ ॥ (२५०)

पदपाठः—इमाः १ । उ अ० । त्वा २ । पुरूवसो सं० । गिरः १ । वर्धन्तु क्रि० । याः १ । मम ६ । पावकवर्णाः, शुचयः, विपश्चितः १ । अभि अ० । स्तोमैः ३ । अनूषत क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(पुरूवसो) हे बहुधन ! परमात्मन् ! (याः मम गिरः) (त्वा) त्वाम् (उ) प्रति । वर्त्तन्ते (इमाः) ताः (वर्धन्तु) वर्धन्ताम् । ये च (पावकवर्णाः) अग्निवर्णाः (शुचयः) पवित्राः (विपश्चितः) विद्वांस उपासकाः (स्तोमैः) गीयमानैः स्तोत्रैः (अभि अनूषत) स्तुवन्ति । णु स्तुतौ तेऽपि वर्धन्ताम् ॥

"उपास्मै गायता नर" इत्येवमादिषु ऋक्षु ताण्ड्योक्तप्रकारैर्गीयमानैः (स्तोमैरिति श्रीसत्यव्रतः) बहिष्पवमाना आर्यस्तोत्र माध्यन्दिनपवमानादयश्चाऽपि स्तोमपदवाच्या बोध्याः ॥ ऋग्वेदे ८।३।३ऽपि॥८॥ (२५०)

भाषार्थः—(पुरूवसो) हे बहुधन ! परमेश्वर ! (याः) जो (मम) मेरी (गिरः) वाणियें (त्वा उ) आप के प्रति हों (इमाः) वे (वर्धन्तु) वृद्धि को प्राप्त हों और जो (पावकवर्णाः) अग्नि सम तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) विद्वान् स्तोता (स्तोमैः) गीयमान स्तोत्रों से (अभि अनूषत) सब प्रकार स्तुति करते हैं वे भी वृद्धि को प्राप्त हों ॥

उपास्मै गायता नरः । इत्यादि ऋचाओं में ताण्ड्य महाब्राह्मणानुसार गाये जाने वाले [स्तोमों से यह श्रीसत्यव्रत लिखते हैं] तथा बहिष्पवमान आर्यस्तोत्र और माध्यन्दिनपवमान इत्यादि भी स्तोम शब्द से ग्रहण किये जाते हैं ॥ ऋ० ८।३।३ में भी ॥८॥ (२५०)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ नवम्याः-ऋष्याद्या उक्ताः ॥

२३१र २र ३ २३ १ २ ३ १ २
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते । सत्राजितो
३१र २र ३२ ३ १ २
धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥९॥ (२५१)

पदपाठः-उत्, उ अ० । त्ये १ । मधुमत्तमाः, गिरः, स्तोमासः १ । ईरते क्रि० । सत्राजितः, धनसाः, अक्षितोतयः, वाजयन्तः १ । रथाइव अ० ॥

अन्वितपदार्थः-(त्ये) ते पूर्वोक्ताः (स्तोमासः) स्तोमा बहिष्पवमानादयः (मधुमत्तमाः) अतिमाधुर्ययुक्ताः (गिरः) मन्त्ररूपाः (उदीरते) उद्गच्छन्ति । (उ) पादपूरणे । दृष्टान्तः-(सत्राजितः) सदैव विजयकराः (धनसाः) धनं संभजमानाः (अक्षितोतयः) अक्षीणरक्षाः (रथा इव) यथा रथा उद्गच्छन्ति तद्वत् । किं भूताः (वाजयन्तः) आत्मनो बलमिच्छन्तः ॥

षन संभक्तौ । जनसनखनक्रमगमोविट् ३।२।६७ विड्वनोरनुनासिकस्यात् ६।४।४१ इत्यात्वे धनसाः ॥ क्षियः ६।४।५९ निष्ठायामण्यदर्थे ६।४।६० इतिपर्युदासाद्दीर्घाभावः । अतएव-क्षियोदीर्घात् ८।२।४६ इति निष्ठानत्वाऽभावश्च । अक्षिताः क्षयरहिता ऊतयो रक्षाः येषां तेऽक्षितोतयः ॥ वाजं बलमिच्छन्तीति वाजयन्तः । क्याच्छन्दसि ३।२।१७० नच्छन्दस्यपुत्रस्य ७।४।३५ इति ईत्वदीर्घप्रतिषेधः ॥ ऋग्वेदे ८।३।१५ऽपि ॥९॥ (२५१)

भाषार्थः-(त्ये) वे (स्तोमासः) स्तोत्र (मधुमत्तमाः) अति मधुर (गिरः) वाणी (उत ईरते) उच्चभाव से चलती हैं। दृष्टान्त-जैसे (सत्राजितः) सदाविजयी (धनसाः) धन के संविभाग कराने वाले (अक्षितोतयः) अक्षय

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रक्षा वाले (रथा इव) रथ (वाजयन्तः) बल वा वेग चाहते हैं तद्वत् (उ) पादपूरणार्थ है ॥

जिस प्रकार सङ्ग्राम में विजय और धन के प्राप्त कराने वाले वेगवान् रथ उमङ्ग से चलते हैं इसी प्रकार काम क्रोधादि शत्रुगण का विजय कराने और अमूल्य ईश्वर धन का लाभ कराने वाले मधुर भजन और स्तोत्र उच्च भाव से उच्चारित होते हैं ॥ अष्टाध्यायी ३।२।६७।।६।४।४१।।६।४।५९॥६।४।६०।। ८।२।४६॥३।२।१७०॥ ७।४।३५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८।३।१५ में भी॥ ९ ॥ (२५१)

अथ दशम्याः—मेधातिथिः काण्व ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

१ २ ३ २ १ २ ३ २उ १र २र ३ १ २

यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्। आपित्वे नः प्र-

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

पित्वे तूयमागहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ १० ॥ (२५२)

* इति द्वितीया दशतिः॥२॥ *

पदपाठः— यथा अ० । गौरः १ । अपा ३ । कृतम् २ । तृष्यन् १ । एति क्रि० । अव अ० । ईरिणम् २ । आपित्वे ७ । नः ६ । प्रपित्वे ७ । तूयम् २ । आगहि क्रि० । कण्वेषु ७ । सु, सचा अ० । पिब क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-तदानीं परमात्मस्तोत्रं पठता स्तोत्रा इदमपि वक्तव्यम् यत्—हे इन्द्र ! इन्द्रियाऽधिष्ठातर्जीवात्मन् ! (यथा) येन प्रकारेण (गौरः) मृगादिः (तृष्यन्) पिपासितः सन् (अपा कृतम्) जलेन पूर्णम् (ईरिणम्) निस्तृणं तटाकदेशम् (एति) गच्छति तथैव त्वमपि (कण्वेषु) (मेधाविषु) (नः) (आपित्वे) मित्रत्वे (प्रपित्वे) प्राप्ते सति (तूयम्) शीघ्रम् (अव आगहि) प्रबोधं प्राप्नुहि (सचा) तैर्मेधाविभिः सह (पिब)। परमानन्दाऽमृतमिति शेषः ॥

"अपा अद्भिरुदकैः व्यत्ययेनैकवचनम्। ऊडिदमित्यादिना

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

६ । १ । १७१ विभक्तेरुदात्तत्वम् । ईरिणं निस्तृणं तटाकदेशम् । आपित्वे बन्धुत्वे । प्रपित्वे प्राप्ते सति । " इति सायणोऽपि कण्व इति मेधाविनाम । निघं० ३ । १५ ॥ ऋग्वेदेऽपि ८ । ४ ३॥१०॥ (२५२)

भाषार्थः—तब परमात्मा का स्तोत्र पढ़ता हुआ स्तोता यह भी कहे कि हे इन्द्र ! इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मन् ! (यथा) जिस प्रकार (तृष्यन्) प्यासा (गौरः) मृगादि जन्तु (अपा कृतम्) जल भरे (ईरिणम्) जलाशय को (एति) प्राप्त होता है । इसी प्रकार तू भी (कण्वेषु) ईश्वरभक्तों में (नः) हमारी (आपित्वे) मित्रता (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (तूयम्) शीघ्र (अव, आगहि) जाग और उन के (सचा) साथ (पिब) आनन्दामृत का पान कर ।।

सायणाचार्य और निघण्टु ३ । १५ अष्टाध्यायी ६ । १ । १७१ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० ८ । ४ । ३ में भी ॥ १० ॥ (२५२)

* यह तृतीयाऽध्याय में दूसरी दशति समाप्त हुई ॥२॥ *

—*:÷:*—

शग्धीति दशतौ चापि बृहत्यो दश कीर्त्तिताः ।
आदितेयी तृतीयावशिष्टा ऐन्द्र्यो नव स्मृताः ॥१॥

अथ तृतीया दशतिस्तत्र प्रथमायाः—भर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ऽ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू ३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः । भगं नहि
२र ३ १ २ ३ २३१ २ ३ १ २
त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥ (२५३)

पदपाठः—शग्धि क्रि० । उ, सु अ० । शचीपते, इन्द्र सं० । विश्वाभिः, ऊतिभिः ३ । भगम् २ । न, हि अ० । त्वा, यशसम्, वसुविदम् २ । अनु अ० । शूर सं० । चरामसि क्रि० ।

अन्वितपदार्थः—(शूर) विक्रान्त ! (शचीपते) कर्मपते ! कर्मफलप्रद ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (विश्वाभिः) समस्ताभिः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(ऊतिभिः) रक्षाभिः सह (भगं न) ऐश्वर्यमिव (यशसम्) यशः (सु) शोभनं यथा स्यात्तथा (शग्धि) देहि इति याचे (हि) निश्चयेन (उ) च (वसुविदम्) विद्यादिधनस्य लम्भकम् (त्वा) त्वाम् (अनु, चरामसि) परिचरेम ॥

शग्धीति याञ्ञाकर्मा। निघं० ३ । १९ ॥ शचीति कर्मनाम निघं० २।१॥ प्रज्ञानाम च ३।९॥ ऋग्वेदे ८।५०। ५ऽपि॥१॥(२५३)

भाषार्थः—(शूर) हे अनन्त पराक्रमी ! (शचीपते) कर्मों और बुद्धियों के अध्यक्ष ! कर्मफलदाता ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (भगं, न) ऐश्वर्य के समान (यशसम्) कीर्त्ति (सु) भले प्रकार (शग्धि) दीजिये, यह याचना है । (उ) और (हि) निश्चय (वसुविदम्) विद्यादि धन के [कर्मानुसार] दाता (त्वा) आप के (अनु, चरामसि) अनुकूल चलें । यह भी कृपा कीजिये ॥

निघण्टु ३ । १९ ॥ २ । १ ॥ ३ । ९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ५० । ५ में भी ॥ १ ॥ (२५३)

अथ द्वितीयायाः—रेभः काश्यप ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ क २र ३ १ २ ३ ५ ३ १
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः । स्तोतारमि-
२ ३ २ ३ २ २ १ २
न्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२॥ (२५४)

पदपाठः—या २ । इन्द्र सं० । भुजः २ । आभरः क्रि० । स्वर्वान् १ । असुरेभ्यः ५ । स्तोतारम् २ । इत् अ० । मघवन् सं० । अस्य ६ । वर्धय क्रि० । ये १ । च अ० । त्वे ४ । वृक्तबर्हिषः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(मघवन्) धनवन् ! (इन्द्र) परमेश्वर! वा राजन् वा वर्षक ! देव ! (स्वर्वान्) आनन्दवान् प्रकाशवान् वा त्वम् (या) यानि (भुजः) भोक्तव्यान्यन्नानि (असुरेभ्यः) बलवद्भ्यो मेघेभ्यो दुष्टेभ्यो वा मनुष्येभ्यः (आभरः) आहरसि (इ-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

त्) नूनम् (अस्य) तव (स्तोतारम्) आज्ञापालकं याज्ञिकं वा [तेनान्नेन] (वर्धय) । (ये, च) (त्वे) तुभ्यम् (वृक्तबर्हिषः) स्तीर्णयज्ञाः सन्ति तानपि वर्धयेति पूर्वेण सम्बन्धः॥

असुर इति मेघनाम । निघं० १ । १० ॥ ऋग्वेदे ८। ९७ १ । ऽपि ॥२॥ (२५४)

भाषार्थः—(मघवन्) हे धनवन् ! (इन्द्र) परमेश्वर ! वा राजन् ! वा वृष्टिकारक ! (स्ववान्) आनन्द वा प्रकाशयुक्त तू (या) जिन (भुजः) अन्नादि भोगों को (असुरेभ्यः) मेघों से वा दुष्ट पुरुषों से (आभरः) लाता है उन से (इत्) ही (अस्य) इस तेरे (स्तोतारम्) आज्ञा पालने वाले वा यज्ञकर्त्ता को (वर्धय) बढ़ा (च) और (ये) जो लोग (त्वे) तेरे लिये (वृक्तबर्हिषः) यज्ञ का विस्तार करते हैं । उन्हें भी बढ़ा ।। निघण्टु १ । १० ।। ऋ० ८ । ९७ । १ में भी ।। २ ।। (२५४)

अथ तृतीयायाः—जमदग्निर्ऋषिः । आदित्या देवताः । बृहती छन्दः ॥

२३ २ ३ २३ १ २क २र २ २ १ २ ३
प्रमित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो । वरूथ्ये ३ वरुणे
२ ३ १ २ ३ १र २र
छन्द्यं वचः स्तोत्रꣳ राजसु गायत ॥ ३ ॥ (२५५)

पदपाठः—प्र अ० । मित्राय ४ । प्र अ० । अर्यम्णे ४। सचथ्यम् २। ऋतावसो सं० । वरूथ्ये ७=४ । वरुणे ७=४ । छन्द्यम्, वचः, स्तोत्रम् २ । राजसु ७=४ । गायत क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—पूर्वमन्त्रेऽन्नाय प्रार्थना उक्ता । इदानीं तदुत्तरभूतं वच आह—(ऋतावसो) हे यज्ञधन ! यजमान ! (मित्राय) यो मेयति तस्मै वायुभेदाय (सचथ्यम्) सेवनार्हम् (छन्द्यम्) छन्दसि वेदे भवम् (वचः) वाग्व्यापारभूतं (स्तोत्रम्) (प्र, गायत) प्रकर्षेण गाय । व्यत्ययेन बहुवचनम् (अर्यम्णे) यमाय वायुभेदाय (प्र) प्रगाय (वरूथ्ये) वरूथं गृहं तस्मै

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हिताय (वरुणे) वायुभेदाय (प्र) प्रगाय (राजसु) एवं मित्रार्यमवरुणेभ्योराजभ्यः प्रकाशमानेभ्यः प्रगाय ॥

अथात् हे यज्ञानुष्ठातः ! यद्यन्नोत्पादमिच्छसि तर्हि मित्रार्यमवरुणानां वेदोक्तम् गुणकर्मस्वभावजातं वर्णय, तदानुकूल्याय च यज्ञेन तत्सेवनं विधेहि । एतेनान्नादिसमृद्धिर्भविष्यतीति पूर्वमन्त्रगतयाचनाया उत्तरम् ॥ वरुणशब्दो मित्रशब्दश्च निघं० ५ । ४ उक्तौ, तौ च निरुक्ते ११ अध्याये मध्यस्थानदेवतात्वेन व्याख्यातौ, तत्साहचर्यादर्यमपदमपि यमाऽपरपर्यायं वायुभेदमेव वक्तीति बोध्यम् ॥ प्रेत्युपसर्गाऽभ्यासः क्रियाऽभ्यासं चावगमयति॥ वरूथमिति गृह नाम। निघं० ३। ४॥ छन्द्यमिति बाहुलकं पदं बोध्यम्॥ऋग्वेदे ८।१०१।५ऽपि॥३॥(२५५)

भाषार्थः—(ऋतावसो) हे यज्ञधन ! यजमान ! (मित्राय) मित्रनाम वायुभेद के लिये (सचध्यम्) सेवन योग्य (स्तोत्रम्) गुण कीर्त्तन रूप (छन्द्यम्) वैदिक (वचः) वचन को (प्र, गाय) गावो और (अर्यम्णे) यम नामक वायु के लिये (प्र) गावो तथा (वरूथ्ये) गृहहितकारी (वरुणे) वरुण के लिये गावो । (राजसु) इस प्रकार मित्र अर्यमा और वरुण इन ३ राजों अर्थात् प्रकाशमानों के लिये कीर्त्तन करो ।।

अर्थात् हे यज्ञकर्त्ता ! यदि तू पूर्व मन्त्रानुसार अन्नादि की समृद्धि को मांगता है तो मित्र अर्यमा वरुणादि वर्षा के सहायक वायुभेद रूप देवतों के गुण कर्म स्वभाव को वेदमन्त्रों द्वारा जानकर तदनुकूल सेवन योग्य अनुष्ठान कर । इस से अन्नादि की समृद्धि होगी । यह पूर्वमन्त्र की याचना का उत्तर जानों ।। मित्र अर्यमा वरुण पदों से निघण्टु ५ । ४ और निरुक्त अध्याय ११ के अनुसार अन्तरिक्षस्थानी वायुभेदों का ग्रहण जानिये ।। "प्र" इस उपसर्ग का दो बार पाठ ही "गायत" क्रिया के पुनर्वार अन्वय का सूचक है ।। निघण्टु ३ । ४ में वरूथ गृह का नाम है ।। ऋ० ८ । १०१ । ५ में भी ।। ३ ।। (२५५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थ्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३१ २ ३ २३ १ २ ३ १२ ३ १ २

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः । समीचीनास

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ४ ॥ (२५६)

पदपाठः—अभि अ० । त्वा २ । पूर्वपीतये ४ । इन्द्र सं० । स्तोमेभिः ३ । आयवः, समीचीनासः, ऋभवः १ । समस्वरन् क्रि० । रुद्राः १ । गृणन्त क्रि० । पूर्व्यम् २ ।।

अन्वितपदार्थः— (इन्द्र) परमेश्वर ! (ऋभवः) मेधाविनः (रुद्राः) स्तोतारः (समीचीनासः) समीचीनाः (आयवः) मनुष्याः (पूर्वपीतये) सर्वसाधारणाऽपेक्षयाऽऽत्मनः पूर्वं तृप्त्यै (स्तोमेभिः) स्तोत्रैः (पूर्व्यम्) सनातनम् (त्वा) त्वाम् (अभि, गृणन्त) अभितो गृणन्ति (समस्वरन्) सम्यक्तया गायन्ति च ॥

आयव इति मनुष्यनाम। निघं० २ । ३ ॥ ऋभुरिति मेधावि नाम । निघं० ३ । १५ ॥ रुद्र इति स्तोतृनाम । निघं० ३ । १६ ॥ ऋग्वेदे ८ । ३ । ७ ऽपि ॥ ४ ॥ (२५६)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ऋभवः) मेधावी (रुद्राः) स्तोता (समीचीनासः) भले (आयवः) मनुष्य (पूर्वपीतये) अपनी पूर्व तृप्ति के लिये (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (पूर्व्यम्) सनातन (त्वा) आप को (अभि गृणन्त) सर्वथा वर्णन करते और (समस्वरन्) गान करते हैं [इसी प्रकार हम भी अन्य मित्र वरुणादि से पूर्व आप का स्मरण कीर्त्तन और गान करते हैं] यह भाव है ॥ निघण्टु २ । ३ ॥ ३ । १५ ॥ ३ । १६ ॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ३ । ७ में भी ॥४॥ (२५६)

अथ पञ्चम्याः—नृमेधपुरुमेधावृषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३१र २र३ १ २ ३१
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्माऽर्चत । वृत्रꣳ
२ ३ २ ३१२३१ २ ३१२
हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥५॥ (२५७)

पदपाठः—प्र अ० । वः ६ । इन्द्राय, बृहते ४ । मरुतः सं० । ब्रह्म २ । अर्चत क्रि० । वृत्रम् २ । हनति क्रि० । वृत्रहा, शतक्रतुः १ । वज्रेण, शतपर्वणा ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(मरुतः) हे ऋत्विजः ! स्तोतारः ! (वः) स्तुत्य स्तोतृत्वलक्षणेन सम्बन्धेन युष्मदीयाय (बृहते) महते (इन्द्राय) परमेश्वराय (ब्रह्म) सामलक्षणं वेदवचनम् (प्र, अर्चत) अर्पयत (वृत्रहा) पापहा (शतक्रतुः) अनन्तपुरुषार्थः सः (शतपर्वणा) बहुपर्ववता (वज्रेण) दण्डेन (वृत्रम्) पापम् (हनति) हन्ति । स्तुतः सन्निति शेषः ॥

ये मनुष्याः परमेश्वरं स्तुवन्ति ते तद्भक्ताःपापेभ्यः सर्वदा पृथक् तिष्ठन्ति । अतः सर्वैःस स्तोतव्यः ॥ मरुत इति ऋत्विङ्नाम । निघं० ३ । १८ ॥ मरुतो मितरावणो वा मितरोचिनो वा । निरु० ११ । १३ ॥ ऋग्वेदे ८ । ८९ । ३ ऽपि ॥ ५ (२५७)

भाषार्थः—(मरुतः) हे स्तोताओ ! (वः) तुम अपने (बृहते) महान् (इन्द्राय) ईश्वर के लिये (ब्रह्म) सामवेद के वचन (प्र, अर्चत) अर्पित करो । (वृत्रहा) पापनाशक (शतक्रतुः) बहुविध कर्म वाला वह (शतपर्वणा) बहुत धारों वाले (वज्रेण) वज्र से (वृत्रम्) पाप को (हनति) मारता है ।।

जो लोग परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना में लगे रहते हैं, उन को सर्वव्यापक परमात्मा सर्वत्र पापियों के नाश के लिये अनन्तधार वाले वज्र लिये प्रतीत होता है । अर्थात् वे छुप कर भी पाप नहीं करते । क्योंकि अन्य राजा आदि के एकदेशीय वज्र से तो कोई किसी प्रकार बच भी सकता

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

है परन्तु परमात्मा की सृष्टि का प्रत्येक परमाणु भी उस के वज्र का काम दे सक्ता है और मनुष्य को नष्ट कर सकता है। इस लिये उस का वज्र अनन्त-धार है। निघण्टु ३। १८ निरुक्त ११। १३ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० ८। ८९। ३ में भी ।। ५ ॥ (२५७)

अथ षष्ठ्याः—ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

३१२ २२ ३ १२ ३१२ ३ २ ३ १२

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्। येन ज्योतिरजनय-

३ १ २ ३२ ३२३ १२

न्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ६ ॥ (२५८)

पदपाठः—बृहत् २। इन्द्राय ४। गायत क्रि०। मरुतः सं०। वृत्रहन्तमम् २। येन ३। ज्योतिः २। अजनयन् क्रि०। ऋतावृधः १। देवम् २। देवाय ४। जागृवि २ ।।

अन्वितपदार्थः—(मरुतः) हे मितभाषिण ऋत्विजः ! (इन्द्राय) परमेश्वराय (देवाय) (बृहत्) साम (गायत)। (येन) सामगानेन (ऋतावृधः) यज्ञस्य वर्धका उपासकाः (देवम्) दिव्यम् (वृत्रहन्तमम्) पापनाशनतमम् (जागृवि) जाग्रत् (ज्योतिः) (अजनयन्) जनयन्ति। हृदयेष्विति शेषः ॥ ऋग्वेदे ८। ८९। १ ऽपि ॥ ६ ॥ (२५८)

भाषार्थः—(मरुतः) हे मितभाषी ऋत्विज् लोगो ! तुम (इन्द्राय) परमेश्वर (देवाय) देव के लिये (बृहत्) बृहत्साम (गायत) गावो। (येन) जिस सामगान से (ऋतावृधः) यज्ञ के विस्तार करने वाले उपासक लोग (देवम्) दिव्य (वृत्रहन्तमम्) अत्यन्त पापनाशक (जागृवि) जागती (ज्योतिः) ज्योति को (अजनयन्) [निज हृदयों में] उत्पन्न करते हैं ।। ऋ० ८। ८९। १ में भी ॥ ६ ॥ (२५८)

अथ सप्तम्याः—वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ।।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३२ ३ १ २ १ २

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षाणो

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवाज्योतिरशीमहि ॥७। (२५९)

पदपाठः—इन्द्र सं० । क्रतुम् २ । नः ४ । आभर क्रि० । पिता १ । पुत्रेभ्यः ४ । यथा अ० । शिक्ष क्रि० । नः २ । अस्मिन् ७ । पुरुहूत सं० । यामनि ७ । जीवाः १ । ज्योतिः २ । अशीमहि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—इन्द्रात्परमेश्वरात्पूर्वमन्त्रोक्तं जाग्रज्ज्योतिः प्रार्थयन्ते—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! त्वं (नः) अस्मभ्यम् (क्रतुम्) कर्म, स्वविषयज्ञानं वा (आभर) प्रयच्छ । तत्र दृष्टान्तः—(यथा, पिता, पुत्रेभ्यः) ज्ञानं धनं च प्रयच्छति तद्वत् (नः) अस्मान् (शिक्ष) विद्यां प्रयच्छ (पुरुहूत) हे बहुस्तुत ! (यामनि) सर्वैः प्राप्तव्ये (अस्मिन्) प्रकृते ब्रह्मणि त्वयि (जीवाः) वयं जीवात्मानः (ज्योतिः) ज्योतिस्त्वदीयम् (अशीमहि) सेवेमहि ॥

ये चैतद्देशीयाः परदेशीयाश्च विद्वांसो वदन्ति " नहि इन्द्रवरुणादिपदैः परमेश्वरस्य ग्रहणं पूर्वाचार्यसम्मतमासीदिति" । तैरेतन्मन्त्रसायणीयं भाष्यं द्रष्टव्यम् ॥

क्रतुरिति कर्मनाम । निघं० २ । १ प्रज्ञानाम च ३ । ९ ऋग्वेदे ७ । ३२ । २६ ऽपि ॥७॥ (२५९)

भाषार्थः—इन्द्र अर्थात् परमेश्वर से पूर्व मन्त्रोक्त ज्योति का दान मांगते हैं—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (नः) हमारे लिये (क्रतुम्) सुकर्म वा अपना [ब्रह्म] ज्ञान (आभर) दीजिये । इस में दृष्टान्त—(यथा) जैसे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये धन और ज्ञान देता है तद्वत् । (नः) हम को (शिक्ष) शिक्षा दीजिये (पुरुहूत) हे बहुस्तुत ! (यामनि) सब को प्राप्त करने योग्य (अस्मिन्) इस प्रकरणगत तुझ ब्रह्म में (जीवाः) हम जीववर्ग (ज्योतिः) आप की ज्योति को (अशीमहि) सेवित करें ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

क्रतु कर्म वा प्रज्ञा का नाम है। निघण्टु २। १। और ३। ९ में देखिये ॥ जो एतद्देशीय वा परदेशीय विद्वान् कहते हैं कि "इन्द्रादि पदों से परमेश्वर का ग्रहण प्राचीन लोग नहीं करते थे और यह नई खेंचातानी है" उन्हें इस मन्त्र का सायणभाष्य देखना चाहिये क्योंकि इस में सायणाचार्य ने भी परमात्मा अर्थ किया है ॥ ऋ० ७। ३२। २६ में भी ॥ ७ ॥ (२५९)

अथाऽष्टम्याः—रेभ ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
मा न इन्द्र परावृणग्भवा नः सधमाद्ये । त्वं न
३ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक् ॥८॥ (२६०)

पदपाठः—मा अ० । नः २। इन्द्र सं०। परावृणक् क्रि० । भव क्रि० । नः ६। सधमाद्ये ७ । त्वम् १ । नः ६ । ऊती १ । त्वम् १ । इत् अ० । नः ६ । आप्यम् १ । मा अ० । नः २ । इन्द्र सं० । परावृणक् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (नः) अस्मान् भवदीयान्भक्तान् (मा परावृणक्) मा परित्याक्षीः । वृजीवर्जने रौधादिकः । लङि रूपम् । (नः) अस्माकं (सधमाद्ये) सहमादनहेतौ यज्ञे (त्वं)(नः) अस्माकम् (ऊती) रक्षिता (भव) एधि । (त्वमित्) त्वमेव (नः) अस्माकम् (आप्यम्) ज्ञातेयो बन्धुरसि । अतः (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) अस्मान् (मा परावृणक्) ॥

परमात्मनोऽकृपैव परित्यागो बोध्यः, वस्तुतस्तु सर्वगतस्य परित्यागाऽसम्भवात् ॥ ऊती इत्यत्र "व्यत्ययेन कर्त्तरिक्तिच्चा निपातितः" इति सायणोऽपि ॥ मानइन्द्रपरावृणगितिद्विरुक्तिर्वीप्सार्था ॥ ऋग्वेदे तु ८।९७।७सधमाद्यः इतिपाठः।८।(२६०)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) हम को (मा परावृणक्) मत छोड़िये (नः) हमारे (सधमादो) साथ हर्षदायक यज्ञ में (त्वम्) आप (नः) हमारे (ऊती) रक्षक (भव) हूजिये (त्वम् इत्) आप ही (नः) हमारे (आप्यम्) बन्धु हैं। अतः (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) हम को (मा परावृणक्) मत त्यागिये ॥

प्रश्न—परमात्मा सर्वगत है फिर किसी को कैसे त्याग सकता है ?। उत्तर—जैसे जाति से त्याग देते हैं। अर्थात् उसे अपनी जाति का नहीं मानते ऐसे ही परमात्मा की अकृपा वा अपनी भक्ति से पृथक् जानना ही परित्याग जानिये ॥ "ऊती" यह "व्यत्यय से कर्त्ता में क्तिच् से निपात है" यह सायणाचार्य्य भी लिखते हैं ॥ "हम को मत छोड़िये" इस वाक्य का दो वार पाठ इस लिये है कि जिस से अत्यन्त ईप्सा (इच्छा) समझी जावे। ऋ० ८।९७। ७ में भी ॥ ८ ॥ (२६०)

अथ नवम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३
वयं घ त्वा सतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः। पवित्रस्य प्र-
१ २ ३ १ २ ३ १ २
स्रवणेषु वृत्रहन्परिस्तोतार आसते ॥ ९ ॥ (२६१)

पदपाठः—वयम् १। घ अ०। त्वा २। सुतावन्तः, आपः १। न अ०। वृक्तबर्हिषः १। पवित्रस्य ६। प्रस्रवणेषु ७। वृत्रहन् सं०। परिस्तोतारः १। आसते क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(वृत्रहन्) हे पापनाशन ! (वयम्) उपासकाः (सुतावन्तः) अभिषुतः सोमोऽस्ति येषां तथाभूताः शोधितमनस्का वा (घ) नूनम् (वृक्तबर्हिषः) स्तीर्णयज्ञाः (स्तोतारः) स्तुतिकर्त्तारः (पवित्रस्य) शुद्धदेशस्य (प्रस्रवणेषु) निर्झरादिजलाशयसमीपेषु (न) यथा (आपः) शान्ता आपः (परि, आसते) समन्ततो विराजन्ते तथा, (त्वा) त्वाम् पर्य्यास्महे ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यथा पवित्रस्य देशस्य प्रस्रवणेषु निर्झरेषु शान्तानि शुद्धानि जलानि समन्ततः प्रवणानि भवन्ति तद्वत् वयमपि यज्ञार्थेऽभिषुनसोमाः शुद्धमनस्का वा, स्तीर्णयज्ञबर्हिषः, स्तोतारः, त्वां शान्तचित्ताः पर्य्युपास्महे ॥

ऋचावन्त इतिदीर्घत्वं छान्दसम् ॥ ऋग्वेदे ८।३३।१ ऽपि।९।(२६१)

भाषार्थः— (वृत्रहन्) दुर्गुणनाशक परमात्मन् ! (सुतावन्तः) जिन्हों ने सोम तैयार कर लिया वा मन शुद्ध कर लिया है (वृक्तबर्हिषः) जिन्होंने यज्ञ विस्तीर्ण किया हुवा है ऐसे (स्तोतारः) स्तुतिकर्त्ता (वयम्) हम लोग (घ) निश्चय (न) जैसे (पवित्रस्य) शुद्ध देश के (प्रस्रवणेषु) झरनों में (आपः) जल (परि आसते) सब ओर से शान्त स्थित होते हैं तद्वत् शान्तचित्त हो उपासना कर रहे हैं ॥

जिस प्रकार शुद्ध देश के झरनों में शुद्ध शान्त जल नम्रता पूर्वक नीचे को फैलते हैं तद्वत् हम भी सोम को सम्पन्न किये हुवे वा मन को शुद्ध किये हुवे, यज्ञ का विस्तार करते हुवे, स्तुतिपाठ करते हुवे, शान्तचित्त आप की उपासना करते हैं ॥ ऋ० ८ । ३३ । १ में भी ॥ ९ ॥ (२६१)

अथ दशम्याः—भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३१
यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु । यद्वा पञ्च
२ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
क्षितीनां द्युम्नमाभर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥१०॥ (२६२)

पदपाठः—यत् १ । इन्द्र सं० । नाहुषीषु ७ । आ अ० । ओजः, नृम्णम् १ । च अ० । कृष्टिषु ७ । यत् १ । वा अ० । पञ्च, क्षितीनाम् ६ । द्युम्नम् २ । आभर क्रि० । सत्रा अ० । विश्वानि, पौंस्या २ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नाहुषीषु) मानवीषु (कृष्टिषु) प्रजासु (यत्) (ओजः) आत्मिकं बलम् (नृम्णम्) शारीरिकं बलं (च) (आ) [विद्यते] (वा) अथवा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(यत्) (पञ्च) पञ्चानाम् विस्तृतानां (क्षितीनाम्) योगभूमीनाम् [बलमस्ति तत्] (नृम्णम्) सर्वं बलं (विश्वानि) सर्वाणि (पौंस्या) पौंस्यानि पुरुषार्थजातानि च (सत्रा) सर्वदा (आभर) देहि ॥

नहुष इति कृष्टय इति च मनुष्यनाम । निघं० २ । ३ ॥ द्युम्नम् इति बलनाम च २ । ९ ॥ ऋग्वेदे तु ६ । ४६ । ७ नाहुषीष्वाँ इत्यन्तरम् ॥ १० ॥ (२६२)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नाहुषीषु) मानुषी (कृष्टिषु) प्रजाओं में (यत्) जो (ओजः) आत्मिक बल (च) और (नृम्णम्) शारीरक बल (आ) है (वा) अथवा (यत्) जो उभयविध बल (पञ्च) विस्तृत (क्षितीनाम्) योगभूमियों में है, वह (नृम्णम्) बल और (विश्वानि) सब (पौंस्या) पुरुषार्थ (आभर) दीजिये ॥

निघण्टु २ । ३ में नहुषः और कृष्टयः ये मनुष्य के नाम हैं । तथा २ । ९ में नृम्णम् यह बल का नाम है ॥ ऋ० ६ । ४६ । ७ में " नाहुषीष्वाँ " यह पाठ है ॥ १० ॥ (२६२)

* यह तृतीयाऽध्याय में तीसरी दशति समाप्त हुई ॥ ३ ॥ *

—*:+:*—

सत्यमित्थेति चेन्द्रस्य बृहत्यो दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—मेधातिथिर्ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ १र २र३ १ २ ३ २ क २१ ३१
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोविता । वृषा ह्युग्र शृण्विषे
२३२३ १ २ ३१२ ३ २
परावति वृषो अर्वावति श्रुत. ॥१॥ (२६३)

पदपाठः—सत्यम्, इत्था अ० । वृषा १ । इत् अ० । असि क्रि० । वृषजूतिः १ । नः ६ । अविता, वृषा १ । हि अ० । उग्र सं० । शृण्विषे क्रि० ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

परावति ७ । वृषा १ । उ अ० । अर्वावति ७ । श्रुतः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(उग्र) हे सर्वाभिभावुक ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (इत्था) इत्थम् (सत्यम्) यथार्थमस्ति यत् त्वं (वृषा इत्) कामपूरक एव (असि) भवसि । (वृषजूतिः) वृषव्याप्तिः । कामपूरिका व्याप्तिरस्य तथाभूतः (नः) अस्माकम् (अविता) रक्षकोऽसि अतः (वृषा हि) वृषा इति नाम्नाऽपि (श्रुण्विषे) श्रूयसे [वेदेषु] (परावति) दूरदेशे (उ) च (अर्वावति) समीपे (वृषा) कामनावर्षकः (श्रुतः) विख्यातोऽसि ॥

भौतिकपक्षे—इन्द्रस्य वृष्टिकारकत्वात् सर्वं संगच्छते ॥ ऋग्वेदे ८।३३।१० तु "नोवृतः" इत्यन्तरम् ॥ १ ॥ (२६३)

भाषार्थः—(उग्र) हे तेजस्विन्निन्द्र ! परमेश्वर ! (इत्था) यह (सत्यम्) सत्य है कि आप (वृषा इत्) [धर्मार्थ काम मोक्षों के] वर्षाने वाले ही (असि) हैं । (वृषजूतिः) आपकी व्याप्ति उक्त पदार्थों को वर्षाती है । (नः अविता) आप हमारे रक्षक हैं । (हि) इसी हेतु (वृषा) वृषा नाम से (श्रुण्विषे) आप वेदों में सुने जाते हैं (परावति) दूर देश (उ) और (अर्वावति) समीप देश में (वृषा) सर्वत्र वर्षाने वाले (श्रुतः) आप विख्यात हैं ॥

भौतिक पक्ष में— इन्द्र वर्षा करने वाला होने से ठीक सब संगति जानिये ॥ ऋ० ८।३३।१० में " नोवृतः " पाठ है ॥१॥ (२६३)

अथ द्वितीयायाः— रेभ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३ २ ३ १ २
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् । अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदि-
३१ २ ३ २ ३ १ २
न्द्र केशिभिः सुतावाँआविवासति ॥ २ ॥ (२६४)

पदपाठः—यत् अ० ॥ शक्र सं० । असि क्रि० । परावति ७ । यत् अ० । अर्वावति ७ । वृत्रहन् सं० । अतः ५ । त्वा २ । गीर्भिः ३ । द्युगत् अ० । इन्द्र सं० । केशिभिः ३ । सुतावान् १ । आविवासति क्रि० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(शक्र) हे शक्तिमन् ! परमेश्वर ! (यत्) यस्मात् त्वं (परावति) दूरदेशे (यत्) यस्माच्च (अर्वावति) समीपदेशे (असि) वर्त्तसे (अतः) कारणात् (वृत्रहन्) हे पापनाशक ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वा) त्वां सर्वव्यापकं (द्युगत्) क्षिप्रम् (केशिभिः) जटाजूटवद्भिः ऋत्विग्भिः सह (गीर्भिः) वाग्भिः (सुतावान्) अभिषुतसोमो यजमानः (आविवासति) परिचरति ॥

भौतिकपक्षे—(शक्र) शक्तिमन् ! (वृत्रहन्) मेघविदारक ! (इन्द्र) वृष्टिकर्त्तः ! (यत्) यस्मात् (परावति) दूरे द्युलोके (यत्) यस्माच्च (अर्वावति) समीपे मेघमण्डलेऽपि (असि) भवसि (अतः) कारणात् (सुतावान्) यजमानः (द्युगत्) शीघ्रम् (केशिभिः) जटाजूटवद्भिः सह (त्वा) त्वाम् (गीर्भिः) वेदवाग्भिः (आविवासति) परिचरति अनुकूलयति ॥

द्युगत् इति क्षिप्रनाम निघं० २ । १५ । विवासतीति परिचरणकर्मा । निघं० ३ । ५ ॥ ऋग्वेदे ८ । ९७ । ४ ऽपि ॥२॥ (२६४)

भाषार्थः—(शक्र) हे शक्तिमन् ! (वृत्रहन्) पापप्रणाशक ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (यत्) जो कि आप (परावति) दूर देश और (यत्) जो कि (अर्वावति) समीप देश में भी (असि) हैं (अतः) इस से (सुतावान्) सोम का अभिषव करने वाला यजमान (केशिभिः) जटाजूट वाले ऋत्विजों सहित (द्युगत्) शीघ्र (त्वा) आप की (गीर्भिः) वेदमन्त्रों से (आविवासति) स्तुति उपासना करता है ॥

भौतिक पक्ष में—(शक्र) शक्तिमन् ! (वृत्रहन्) मेघविदारक ! (इन्द्र) वृष्टिकर्त्ता ! (यत्) जो कि (परावति) दूर द्युलोक में और (यत्) जो कि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(अर्वावति) समीप मेघमण्डल में (असि) है (अतः) इस लिये (सुतावान्) सोम का अभिषव करने वाला यजमान (केशिभिः) ऋत्विजों सहित (द्युगत्) शीघ्र (त्वा) तेरा (गीर्भिः) वेदमन्त्रों के साथ (आविवासति) हवन रूप परिचर्य्या करता है ।।

निघण्टु २ । १५ ॥ ३ । ५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ।। ऋ० ८ । ९७ । ४ में भी ॥ २ ।। (२६४)

अथ तृतीयायाः—वत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । पिपीलिकमध्या बृहती छन्दः ।।

३ १ २ ३१र२र ३ १ २ ३ २ ३१र २र

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।

३ २ ३ १ २ ३ २३ २ ३ १ २

इन्द्रं नाम श्रुत्यꣳ शाकिनं वचो यथा ॥ ३ ॥ (२६५)

पदपाठः—अभि अ० । वः ६ । वीरम् २ । अन्धसः ६ । मदेषु ७ । गाय क्रि० । गिरा ३ । महा, विचेतसम् , इन्द्रम् ,नाम २ । श्रुत्यम् १ । शाकिनम् २ वचः १ । यथा अ० ।।

अन्वितपदार्थः—(अन्धसः) शारीरकस्य आत्मिकस्य च भोजनस्य (मदेषु) आनन्देषु निमित्तेषु (वः) युष्माकम् (वीरम्) वीरयितारम् (नाम) शत्रूणां नामकम् (महा) महान्तम् (विचेतसम्) विशिष्टप्रज्ञम् (शाकिनम्) शक्तिमन्तम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम्, राजानं वा (यथा श्रुत्यं वचः) श्रुतिवचोऽनुकूलम् (गिरा) वाचा अभि गाय) सर्वतो गायत ।।

पिपीलिकमध्येति औपमिकम् पिपीलिका पेलतेर्गतिकर्मणः इति निरु० ७ । १३ ॥ आद्यान्त्यौ पादौ त्रयोदशाक्षरौ, मध्यमोऽष्टाक्षर इति त्रिपदा ॥ अन्धइत्यन्ननामाध्यानीयं भवति । निरु० ५ । १ ॥ गाय इति वचनव्यत्ययः ॥ मह इति महन्नाम

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघं० ३ । ३ । ततो विभक्तेराकारादेशे (पा० ७ । १ । ३९) महा इति ॥ श्रुतौ वेदे भवं श्रुत्यम् ॥ शकनं शाकः शक्तिस्तद्वन्तं शाकिनम् ॥ ऋग्वेदे ८ । ४६ । १४ ऽपि ॥३॥ (२६५)

भाषार्थः—(अन्धसः) शारीरिक और आत्मिक भोजन के (मदेषु) आनन्दों के निमित्त (वः) तुम अपने (वीरम्) पुरुषार्थ युक्त करने वाले (नाम) शत्रुओं को नम्र करने वाले (महा) महान् (विचेतसम्) विशेष ज्ञानयुक्त (शाकिनम्) शक्तिमान् (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को (यथा श्रुत्यं वचः) जैसे वेद का वचन है वैसे (गिरा) वाणी से (अभि गाय) सर्वतः गाओ ॥

निरुक्त ७ । १३ ॥ ५ । १। निघण्टु ३ । ३ अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ के प्रमाण और संकेत संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४६ । १४ में भी ॥ ३ ॥ (२६५)

अथ चतुर्ऋचस्याः—भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथꣳ स्वस्तये । छर्दिर्यच्छ

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥१॥ (२६६)

पदपाठः—इन्द्र सं० । त्रिधातु, शरणम्, त्रिवरूथम् २ । स्वस्तये ४। छर्दिः २ । यच्छ क्रि० । मघवद्भ्यः ४ । च अ० । मह्यम् ४। च अ० । यावय क्रि०। दिद्युम् २ । एभ्यः ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्रिधातु) त्रयो वातपित्तकफाख्या धातवो धारका यस्य तत् (छर्दिः) देहाऽऽख्यं गृहम् (यावय) पृथक् कुरु (च) अनन्तरम् (मह्यम्) भवद्भक्ताय (एभ्यः) (मघवद्भ्यः) मखवद्भ्यो याज्ञिकेभ्यः (च) (त्रिवरूथम्) त्रयाणामाध्यात्मिकादीनां दुःखानां वारकम् (दिद्युम्) प्रकाशमयम् (शरणम्) आश्रयम् (स्वस्तये) कल्याणाय (यच्छ) देहि कृपया ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

छर्दिरिति गृहनाम । निघं० ३ । ४ ऋग्वेदे ६ । ४६ । ९ तु स्वस्तिमत् इति पाठः ॥४॥ (२६६)

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्रिधातु) वात पित्त कफ नामक ३ धातु वाले (छर्दिः) देह नामी घर को [बन्धन को] (यावय) पृथक् कीजिये (च) और (मह्यम्) मुझ भगवद्भक्त (च) तथा (एभ्यः) इन (मघवद्भ्यः) तुम्हारा पूजन करने वालों के लिये (त्रिवरूथम्) आध्यात्मिकादि तीनों दुःखों के रोकने वाला (दिद्युम्) प्रकाशमय (शरणम्) आश्रय (स्वस्तये) कल्याणार्थ (यच्छ) दीजिये ॥

निघण्टु ३ । ४ का प्रमाण और ऋ० ६ । ४६ । ९ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥ (२६६)

अथ पञ्चम्याः—नृमेधऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २३ १र २र १ २

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र

जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥५॥ (२६७)

पदपाठः—श्रायन्त इव अ० । सूर्यम् २=६ विश्वा २ । इत् अ० । इन्द्रस्य ६ । भक्षत क्रि० । वसूनि, जाता २ । उ अ० । जनिमानि २ । ओजसा ३ । प्रति अ० । भागम् २ । न अ० । दीधिमः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः ! (इन्द्रस्य) परमेश्वरस्य (इत्) एव (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (ओजसा) बलेन सह वर्त्तमानानि (जाता) जातानि (जनिमानि) जनिष्यमाणानि (उ) च (वसूनि) धनानि सन्ति (भागं प्रति) कर्मानुसारं यथाभागम् (न) यथा पितुर्धनानि पुत्रास्तथा (भक्षत) भजत [तान्येव च वयमपि] (दीधिमः) दध्मः । दृष्टान्तः—(श्रायन्त इव सूर्यम्) यथा समाश्रिताः किरणाः सूर्यजनिताः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सूर्यस्यैव प्रकाशं भजन्ते ॥

सायणाचायण " जाते " इति विश्लिष्य व्याख्यातं, टिप्पण्यां विवरणकारमतेन सामश्रमिणा चाऽपि। परन्तु मूलपाठस्तु " जातो " इत्येव दृश्यते, सामगानपाठश्चाऽपि। " जातो " इत्येव दृश्यते, ततश्च " जाता–उ " इति विश्लेषः शक्यः। मन्ये, ऋग्वेद–(८। ९९। ३) स्थम् " जाते जनमानओजसा प्रति भागं न दीधिम " इति पाठं दृष्ट्वैव भ्रान्तिरियं संजातेति। तद्गतमेव च निरुक्तमपि सायणभाष्ये उपन्यस्तम्। तथा सति च मूलविरुद्धं महदर्थान्तरम् ॥ ५ ॥ (२६७)

भाषार्थः–मित्रो ! (विश्वा) समस्त (जाता) जो उत्पन्न होचुके (उ) और (जनिमानि) जो उत्पन्न होवेंगे (ओजसा) बल सहित वे सब (वसूनि) धन (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (इत्) ही हैं। (प्रति, भागम्) अपने भाग के अनुसार (न) जैसे [पिता के धन को पुत्र] (भक्षत) भोगो (दीधिमः) उन्हीं को हम धारण करते हैं। दृष्टान्त–(आयन्तइव सूर्यम्) जैसे सूर्य से उत्पन्न हुई किरणें सूर्य से ही प्रकाश लेती हैं ॥

सायणाचार्य्य ने और टिप्पणी में विवरणकार के मत से सामश्रमी जी ने "जाते" इस पद की व्याख्या की है। परन्तु मूल और सामगान दोनों में "जातो" पाठ देखा जाता है, जिस के "जाता, उ" ये दो पद होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद ८। ९९। ३ के "जाते जनमान ओजसा प्रति भागंन दीधिम" इस पाठ में " जाते " पाठ देख कर यह भ्रान्ति हुई है। और सायणभाष्य में उसी का निरुक्त भी उद्धृत किया है। परन्तु ऐसा करने पर यह भाष्य मूल से अनुकूल नहीं रहता ॥ ५ ॥ (२६७)

अथ षष्ठ्याः–पुरुहन्मा ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

न सीमदेव आपतदिषं दीर्घायो मर्त्यः। एतग्वा चिद्य

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२२ ३ १२३ २ ३ १२ ३१ २

एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥ ६ ॥ (२६८)

पदपाठः—न, सीम् अ० । अदेवः १ । आपतत् क्रि० । इषम् २। दीर्घायो सं० । मर्त्यः, एतग्वा १ । चित् अ० । यः १ । एतशः १=२ । युयोजते क्रि० । इन्द्रः १ । हरी २ । युयोजते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः— (दीर्घायो) हे नित्य ! जीवात्मन् ! (अदेवः) परमेश्वररहितः (मर्त्यः) मनुष्यः (इषम्) शारीरकमात्मिकं च भोजनम् (न सीम्) नैव (आपतत्) प्राप्नुयात् (चित्) यस्मात् (यः) (एतग्वा) अश्ववान् (स एव) (एतशः) एतशमश्वम् (युयोजते) योजयति (इन्द्रः) सूर्य एव (हरी) द्विविधान् किरणान् (युयोजते) योजयति ॥

यदि परमात्मा न स्यात्तदा कोऽपि संचितं कर्मफलोपभोगं न प्राप्नुयात् यतः सर्वपदार्थजातं तस्यैवाऽस्ति । अतस्तत्कृपयैवेतरे जनाः भागं प्राप्नुवन्ति, किन्तु स्वातन्त्र्येण कस्मिंश्चिदपि वस्तुनि कस्याऽपि जीवात्मनः स्वाम्यं नास्ति। तस्मात् कथंकारं नाम कमपि फलोपभोगं कुर्य्यात् । यथा अश्ववानेवाऽश्वान् योजयति न त्वकिञ्चनोऽश्वरहितः । यथा च सूर्य्यएव प्रकाशधारामयान्किरणान् योजयति, न त्वन्धकारमया इतरे पदार्थाः ॥

एतग्वा इत्यश्वनाम, एतश इति चाश्वनाम । निघं० १ । १४ अत एकेन पदेन तदान्याह्यः ॥ सूर्य्यकिरणा हि सम्यञ्चस्तिर्यञ्चश्च युगपत् गच्छन्ति अतो गतिद्वयभेदेन द्वित्वविवक्षया "हरी इन्द्रस्य" इति निघण्टौ १ । १५ वेदेषु च बहुशो द्विवचनप्रयोगोऽनुसंधेयः ॥ ऋग्वेदे ८ । ७० । ७ तु "हरी इन्द्र"

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इति व्यतिक्रमपाठः ॥ ६ ॥ (२६८)

भाषार्थः—(दीर्घायो) हे नित्य ! जीवात्मन् ! (अदेवः) विना ईश्वर के मनुष्य (इषम्) शारीरक और आत्मिक भोजन (न सीम्) नहीं ही (आपतत्) पा सक्ता (चित्) क्योंकि (यः) जो (एतग्वा) घोड़े वाला है [वही] (एतशः) घोड़े को (युयोजते) जोतता है । और (इन्द्रः) सूर्य ही (हरी) किरणों को (युयोजते) संयुक्त करता है ॥

परमात्मा ही के समस्त पदार्थ हैं इसलिये वही सब को यथाभाग देता है । वह न हो तो कोई मनुष्य सञ्चित कर्मों का फल न पासके । क्यों कि स्वतन्त्रता से कोई पुरुष किसी पदार्थ का स्वामी नहीं है । फिर स्वतन्त्रता से किसी पदार्थ का भोग किसी को कैसे मिल सकता है ? । रथ के स्वामी ही के घोड़े जुतते हैं, स्वामी के विना स्वतन्त्र घोड़े नहीं जुत सकते, और न सूर्य के विना स्वतन्त्र किसी पदार्थ में किरणें जुड़ सकती हैं । जैसे दरिद्र पुरुष अपने घोड़े ही नहीं रखता फिर जोते किसे । और जैसे विना प्रकाश के घटादि पदार्थ प्रकाश की पूंजी ही नहीं रखते फिर चमकें कैसे ? ऐसे ही यह जगत् किसी पदार्थ पर स्वत्व ही नहीं रखता तब भोग कहां से कर सके ? अ अतः परमात्मा ही भोग का प्रदाता है ॥

निघण्टु १ । १४ ॥ १ । १५ के प्रमाण और ऋ० ८ । ७० । ७ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥ (२६८)

अथ सप्तम्याः—नृमेधपुरुमेधावृषी । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रꣳसमत्सु भूषत । उप ब्रह्माणि

१ २ ३ १ २

सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥ ७ ॥ (२६९)

पदपाठः—आ अ० । नः ६ । विश्वासु ७ । हव्यम्, इन्द्रम् २ । समत्सु ७ । भूषत क्रि० । उप अ० । ब्रह्माणि, सवनानि १ । वृत्रहन् सं० । परमज्याः १ । ऋचीषम सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(ऋचीषम) हे स्तुत्य ! (परमज्याः) उद्भटशत्रुनाशन ! (वृत्रहन्) पापप्रणाशक ! परमेश्वर ! (नः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अस्माकं (ब्रह्माणि) वेदोक्तस्तोत्राणि (सवनानि) प्रातः सवनादीनि त्रीणि (हव्यम्) आह्वातव्यम् (इन्द्रम्) त्वां परमेश्वरम् (विश्वासु) सर्वासु (समत्सु) बाधासु [रक्षार्थम्] (आ उप भूषत) शरण्यत्वेनालङ्कुर्वन्तु ॥

यदा यदाऽस्माकं ज्ञानयज्ञेषु क्रियायज्ञेषु वा काश्चिद्बाधाः स्युस्तासु सर्वासु, प्रातः सविनादिकृतानि स्तोत्राणि हे परमात्मन्! भवत्कृपया भवन्तं सहायकत्वेन प्रापयन्तु ॥

समत्सु इति सङ्ग्रामनाम । निघं० २ । १७ ॥ परमानुद्भटान्कामक्रोधादिशत्रूञ्जिनाति हिनस्ति स परमज्याः ॥"स्तवें वज्रयृचीषमः । स्तूयते वज्री ऋचा सम" इति निरु० ६ । २३ ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ९० । १ "आनो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु । उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः" । इति पाठेऽर्थे चाऽन्तरम् ॥ ७ ॥ (२६९)

भाषार्थः—(ऋचीषम) हे स्तुत्य ! (परमज्याः) उद्भट शत्रुओं का दमन करने वाले ! (वृत्रहन्) रुकावटों को मार भगाने वाले ! परमेश्वर ! (विश्वासु) समस्त (समत्सु) युद्धादि बाधाओं में (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेदोक्त स्तोत्र और (सवनानि) प्रातः सवनादि तीनों सवन (हव्यम्) पुकारने योग्य (इन्द्रम्) आप परमेश्वर को (आ उप भूषत) रक्षार्थ सुशोभित करो ॥

अर्थात् हे जगदीश ! हमारी समस्त बाधाओं में सहायतार्थ हमारे स्तोत्र और यज्ञ हमें आप को प्राप्त करावें ॥

निघण्टु २ । १७ निरुक्त ६ । २३ के प्रमाण और ऋग्वेद ८ । ९० । १ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ७ ॥ (२६९)

अथाऽष्टम्याः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१र २र ३ २ उ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् । सत्रा विश्वस्य

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

परमस्य राजसि नकिष्टवा गोषु वृण्वते ॥८॥ [२७०]

पदपाठः—तव ६ । इत् अ० । इन्द्र सं० । अवमम्, वसु, त्वम् १ पुष्यसि क्रि० । मध्यमम् २ । सत्रा अ० । विश्वस्य, परमस्य ६ । राजसि क्रि० । नकिः अ० । त्वा २ । गोषु ७ । वृण्वते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अवमम्) नीचस्थो भूर्लोकः (तव इत्) तवैव (वसु) धनमस्ति (त्वम्) त्वमेव (मध्यमम्) अन्तरिक्षलोकम् (पुष्यसि) । त्वमेव (परमस्य) द्युलोकस्य (राजसि) राजा असि । एवं (सत्रा) सहैव (विश्वस्य) समस्तस्य त्वमेव राजाऽसि । (त्वा) त्वाम् (गोषु) पृथिव्यादिलोकेषु (नकिः) केऽपि नैव (वृण्वते) वारयन्ति व्यापकत्वात् ॥ ऋग्वेदे ७ । ३२ । १६ ऽपि ॥ ८ ॥ (२७०)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अवमम्) नीचे का पृथिवी लोक (तव इत्) आप का ही (वसु) धन है । और (मध्यमम्) मध्यस्थ अन्तरिक्ष लोक को (त्वम्) आप ही (पुष्यसि) पालते हैं तथा (परमस्य) परले द्युलोक के भी आप ही (राजसि) राजा हैं । इस प्रकार (विश्वस्य) सारे जगत् के (सत्रा) एक साथ आप ही राजा हैं । (त्वा) आप को (गोषु) पृथिवी आदि लोकों में (नकिः) कोई नहीं (वृण्वते) रोक सकते [क्योंकि आप व्यापक हैं] ॥ ऋ० ७ । ३२ । १६ में भी ॥ ८ ॥ (२७०)

अथ नवम्याः—मेधातिथिर्मेध्यातिथी ऋषी । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१२र३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २

केयथ केदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः । अलर्षि युध्म

३ १ २ ३ १ २

खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥९॥ [२७१]

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—क्व अ०। इयथ क्रि०। क्व, इत् अ०। असिक्रि०। पुरुत्रा, चित्, हि अ०। ते ६। मनः १। अलर्षि क्रि०। युध्म, खजकृत्, पुरन्दर सं०। प्र अ० गायत्राः १। अगासिषुः क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(युध्म) हे सर्वग ! (खजकृत्) हे प्रजोत्पादक (पुरन्दर) अथ च हे पुरां देहबन्धनानां दारयितरिन्द्र ! परमेश्वर ! त्वं (क्व) कुत्र (इयथ) व्याप्नोषि ? (क्व) कुत्र (इत्) च (असि) भवसि ? उत्तरमाह—(ते) त्वदीयं (मनः) चित्स्वरूपं (पुरुत्रा, चित्, हि) सर्वत्रैव वर्त्तते (अलर्षि) सर्वत्रैव व्यापकोसि (गायत्राः) गानकुशलाः (प्र अगासिषुः) प्रगायन्ति [त्वामिति शेषः] ॥

युध्यति इति गतिकर्मा। निघं० २। १४ ततोहि—इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्योमक् (उणा० १। १४५) इति मकि युध्मः॥ पृभिदिव्याधिगृधिधृषिह्रषिभ्यः (उणा० १। २३) इति पृधातोरुप्रत्यये—पुरुः सर्वः। पुरु इति बहुनाम। निघं० ३। १ ततश्च, देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ५। ४। ५६ इति त्रा, पुरुत्रा ॥ मन ज्ञाने इत्यस्माद्धातोः, सर्वधातुभ्योऽसुन् (उणा० ४। १८९) मनः ज्ञानम्॥ दाधर्त्ति दर्धर्त्ति दर्धर्षि बोभूतु तेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणदित्यादिना (७। ४। ६४) अलर्षीति निपातः॥ खे आकाशे जातो ब्रह्माण्डः खजस्तं करोति स खजकृत् ॥ ऋग्वेदे ८। १। ७ऽपि॥ १॥ (२७१)

भाषार्थः—प्रश्न—(युध्म) हे सर्वग ! (खजकृत्) हे आकाशज ब्रह्माण्डों के कर्त्ता ! (पुरन्दर) हे देहबन्धनों के छुड़ाने हारे ! इन्द्र ! परमेश्वर ! आप (क्व) कहां (इयथ) व्याप्त हैं (इत्) और (क्व) कहां (असि) हैं। उत्तर—(ते) आप का (मनः) ज्ञानस्वरूप (पुरुत्रा, चित्, हि) सर्वत्र ही है। (अलर्षि)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आप व्याप रहे हैं। (गायत्राः) गाने वाले (प्र गासिषुः) [आप का] गान करते हैं ॥

निघण्टु २ । १४ ॥ ३ । १ ।। उणादि १ । १४५ ॥ १ । २३ ।। ४ । १८९ अष्टाध्यायी ७ । ४। ६४। इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० ८ । १ । ७ में भी ॥ ९ ।। (२७१)

अथ दशम्याः—कलिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ १ २

वयमेनमिदा ह्योपीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ

३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१०॥ (२७२)

* इति चतुर्थी दशतिः *

पदपाठः—वयम् १ । एनम् २ । इत्, आ, ह्यः अ० । अपीपेम क्रि० । इह अ० । वज्रिणम् २ । तस्मै ४ । उ, अद्य अ० । सवने ७ । सुतम् २ । भर क्रि० । नूनम् अ० । भूषत क्रि० । श्रुते ७ ।।

अन्वितपदार्थः—हे सुहृदः ! (वयम्) ज्ञाततत्त्वाः ब्रह्मविदः (ह्यः) अतीतकाले (एनम् वज्रिणम् इत्) पूर्वोक्तं दुष्टेषु दण्डधारमेव परमेश्वरम् (आ अपीपेम) अप्रीणयाम (नूनम्)निश्चयेन [यूयमपि] (अद्य) वर्तमाने (श्रुते) विख्याते (सवने) यज्ञे (सुतम्) स्तोतारम् (भर) पुष्णीत (उ) च (तस्मै) परमेश्वराय (भूषत) हृदयं सुसज्जितं कुरुत॥

अर्थात् ज्ञानिनामियं परम्परास्ति यत्ते हि स्वामिने परमात्मने हृदयवेश्म विभूषयन्ति ॥

सवनमिति यज्ञनाम । निघं० ३ । १७सुत् इति स्तोतृनाम । निघं० ३ । १६ ॥ ऋग्वेदे ८ । ५५। ७ तु "समना सुत" मित्यन्तरम् ॥१० ॥ (२७२)

भाषार्थः—हे मित्रो ! (वयम्) हम ब्रह्मज्ञानी लोग (एनम्) इस (वज्रिणम्) दुष्टों पर दण्डधारी परमेश्वर को (इत्) ही (ह्यः) भूतकाल में (आ-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अप्रीपेन) सर्वतोभाव से प्रसन्न करते रहे हैं । और (नूनम्) निश्चय [आप लोग भी] (अद्य) अब (श्रुते) विख्यात (सवने) यज्ञ में (सुतम्) स्तुति करने वाले का (भर) भरण कीजिये (उ) और (तस्मै) उस परमेश्वर के लिये (भूषत) [हृदय को रागद्वेषादि मलदूर करके] सुन्दर भूषित करो ।।

अर्थात् ज्ञानियों की यही परंपरा हैं कि सर्व काल में यज्ञादि उत्तम अवसरों पर विशेष कर अपने स्वामी परमात्मा की प्रीति के लिये अपने हृदय से पापादि कुसंस्कारों को दूर करके भूषित करते हैं ।।

निघण्टु ३ । १७ ।। ३ । १६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० ८ । ५५ । ७ । में "समना सुतम्" पाठ है ।। १० ।। (२७२)

* यह तृतीयाऽध्याय में ४ चौथी दशति समाप्त हुई ॥४॥ *

—○:※:○—

योराजा चर्षणीत्यस्यां बृहत्यो दशतौ दश ।
बण्महाँ असि सूर्येति तुर्या सूर्यस्य कीर्त्तिता ॥ १ ॥
इन्द्राग्नीति नवम्याश्च इन्द्राग्नी देवते स्मृते ।
शेषा अष्टेन्द्रदैवत्या एवं दश ऋचः स्मृताः ॥ २ ॥

अथ पञ्चमी दशतिः

तत्र प्रथमायाः—पुरुहन्मा ऋषिः । इन्द्रोदेवता बृहती छन्दः ।।

१र २र ३२उ ३१२ ३१२
योराजा चर्षणीनां याता रथेभिराध्रिगुः ।
१ २ ३१र २र ३ २३ १२३ २३र
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥ [२७३]

पदपाठः—यः, राजा १ । चर्षणीनाम् ६ । याता १ । रथेभिः ३ । अध्रिगुः १ । विश्वासाम् ६ । तरुता १ । पृतनानाम् ६ । ज्येष्ठम् २ । यः, वृत्रहा १ । गृणे क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(यः) (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (राजा) (रथेभिः) रथैरमणीयैर्योगमार्गैर्वा (याता) गन्ता प्राप्तु-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

महोवा (अधिगुः) अधृतगमनः स्वस्थ एव (वृत्रहा) दुष्ट-दस्युसंहारकः (विश्वासाम्) सर्वासाम् (पृतनानाम्) सेनानाम् (तरुता) तारकः । तं (ज्येष्ठम्) महान्तम् राजानं परमेश्वरं वा (गृणे) प्रशंसामि ॥

अत्र श्लेषालङ्कारेण राजा परमेश्वरश्च स्तूयते ॥ ग्रसितस्कभित स्तभितोत्तभित चित्त विकस्ता विशस्तृ शंस्तृ शास्तृ तरुतृ० इत्यादिना (पा० ७। २। ३४) तरुता इति निपातितः ॥ ऋग्वेदे ८। ७०। १। तु "ज्येष्ठ" इति पाठः ॥१॥ (२७३)

भाषार्थः—इस में श्लोषालङ्कार से राजा और परमेश्वर की प्रशंसा है। (यः) जो (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (राजा) राजा है। (रथेभिः) जो रथों वा रमणीय योगमार्गों से (याता) प्राप्त होता है। (अधिगुः) जो अपने स्थान में वा अपने स्वरूप में ही स्थिर अचल (वृत्रहा) दुष्ट दस्युओं का नाशक है (विश्वासां पृतनानाम् तरुता) जो सम्पूर्ण सेनाओं के पार करने वाला है (ज्येष्ठम्) उस बड़े [राजा वा परमेश्वर] की (गृणे) प्रशंसा करता हूं ॥

अष्टाध्यायी ७। २। ३४ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ऋ० ८। ७०। १ में "ज्येष्ठम्" पाठ है ॥ १ ॥ (२७३)

अथ द्वितीयायाः—भर्गऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ उ ३

यत इन्द्र भयामहे ततोनो अभयं कृधि। मघवञ्छग्धि तव

१ २ ३ २ ३ २ उ ३ १ र २ र

तं न ऊतये विद्विषो विमृधो जहि ॥ २ ॥ (२७४]

पदपाठः—यतः ५। इन्द्र सं०। भयामहे क्रि०। ततः ५। नः ६। अभयम् २। कृधि क्रि०। मघवन् सं०। शग्धि क्रि०। तव ६। तम् २। नः ६। ऊतये ४। वि अ०। द्विषः २। वि अ०। मृधः २। जहि क्रि०॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! वा परमेश्वर ! वयं (यतः) यस्मात् (भयामहे) भीताः स्याम (ततः) तस्मात् (नः) अस्माकम् (अभयम्) असाध्वसम् (कृधि) कुरु। (मघवन्) हे धनवन् ! मघवन् ! वा (तव) त्वदीयानाम् (नः) अस्माकम् (ऊतये) रक्षायै (तम्) अभयम् (शग्धि) शक्नोषि [याञ्चां प्रपूरय] (द्विषः) द्वेष्टॄन् (वि,जहि) नाशय (मृधः) संग्रामान् (वि) विजहि ॥ ऋग्वेदे ८।५०।१३ तु—ऊतिभिरित्यन्तरम् ॥२॥ (२७४)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! वा परमेश्वर ! हम (यतः) जिस से (भयामहे) भय को प्राप्त हों (ततः) उस से (नः) हम को (अभयम्) निर्भय (कृधि) कीजिये (मघवन्) हे धनवन् ! वा यज्ञवन् ! (तव) आपके भक्त (नः) हम लोगों की (ऊतये) रक्षा के लिये (तम्) उस अभय को (शग्धि) आप समर्थ हैं, याचना को पूर्ण कीजिये। (द्विषः) शत्रुओं को (वि, जहि) नष्ट कीजिये और (मृधः) संग्रामों को (वि) जीतिये ॥

ऋ० ८। ५०। १३ में "ऊतिभिः" पाठ है ॥ २ ॥ (२७४)

अथ तृतीयायाः—इरिमिठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणाꣳ सत्रꣳ सोम्यानाम्। द्रप्सः पुरां
३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनाꣳसखा ॥ ३ ॥ (२७५)

पदपाठः—वास्तोष्पते सं०।ध्रुवा, स्थूणा १। अꣳसत्रम् १। सोम्यानाम् ६। द्रप्सः १। पुराम् ६। भेत्ता १। शश्वतीनाम् ६। इन्द्रः १। मुनीनाम् ६। सखा १ ॥

अन्वितपदार्थः—(वास्तोष्पते) हे गृहाणां पालक ! राजन् ! वा परमेश्वर ! त्वं (सोम्यानाम्) अनुकूलानां प्रजाजनानां (ध्रुवा) अचला (स्थूणा) स्थूणेव आधारभूतोऽसि। (अꣳसत्रम्) कवच-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मिव रक्षकः (द्रप्सः) द्रवणशीलोज्ञानी वा (शश्वतीनाम्) बह्वीनाम् निघं० ३ । १ (पुराम्) शत्रुदुर्गाख्यानां देहबन्धनाख्यानां वा (भेत्ता) निर्णाशकः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (मुनीनाम्) ज्ञानिनाम (सखा) सुहृद् असि॥ऋग्वदे ८।१७। १४ तु–"भेत्ता पुराम्" इति व्यतिक्रमः ॥ ३ ॥ (२७५)

भाषार्थः–(वास्तोष्पते) हे गृहों के पालक ! राजन्! वा परमेश्वर! आप (सोम्यानाम्) सौम्य स्वभाव प्रजाजनों के (ध्रुवा) अचल (स्थूणा) गृहस्तम्भ के तुल्य आधार हैं (अंशुसत्रम्) कवच के तुल्य रक्षक हैं (द्रप्सः) शीघ्र गति वाले वा ज्ञानी हैं (शश्वतीनाम्) बहुत (पुराम्) शत्रुदुर्गों वा देहबन्धनों के (भेत्ता) नाशक हैं (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् और (मुनीनाम्) मुनियों के (सखा) मित्र हैं ॥ निघण्टु ३ । १ और ऋ० ८ । १७ । १४ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (२७५)

अथ चतुर्थ्याः–जमदग्निर्ऋषिः । सूर्यो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

बण्महां असि सूर्य बडादित्य महां असि । महस्ते सतो म-

३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

हिमा पनिष्टम मह्ना देव महां असि ॥ ४ ॥ (२७६)

पदपाठः–बट् अ० । महान् १ । असि क्रि० । सूर्य सं० । बट् अ० । आदित्य सं० । महान् १ । असि क्रि० । महः १ । ते, मतः ६ । महिमा १ । पनिष्टम सं० । मह्ना ३ । देव सं० । महान् १ । असि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—सूर्यदृष्टान्तेन राजानं प्रशंसति (सूर्य) कर्मसु प्रेरक ! (बट्) सत्यम् (महान् असि)। (आदित्य) रसानामादातः ! (बट्) सत्यम् (महान् असि)। (सतः) उत्तमस्य (ते) तव (महिमा) महत्त्वं (महः) महत् अस्ति (पनिष्टम) प्रशंसार्ह ! (देव) दिव्यगुण ! (मह्ना) महत्त्वेन (महान्) (असि) भवसि ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यथा परमेश्वरः सूर्यश्च प्रजाः कर्म्मणि जागरयति, रसानाकर्षति, प्रशंसार्होस्ति, दिव्यगुणोऽस्ति,सर्वापेक्षयाऽन्यलोकापेक्षया च महानस्ति, तथैव राजाऽपि प्रजानां व्यापारादिषु प्रेरकः करस्यादाता, प्रशंसनीयः, दिव्यगुणः, अन्यसाधारणमनुष्यापेक्षया शरीरात्मबलेन महाँश्च स्यात् ॥ सूर्यः सर्त्तेर्वा सुवतेर्वा स्वीर्यतेर्वा। निरु० १२।१४॥ ऋग्वेदे ८।१०१।११ तु "महस्ते महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि" इति पाठः ॥ ४ ॥ (२७६)

भाषार्थः—सूर्य के दृष्टान्त से राजा की प्रशंसा है कि—(सूर्य) कामों में प्रेरणा करने वाले ! (बट्) ठीक (महान्) तू बड़ा (असि) है । (आदित्य) रसों के खींचने वाले ! (बट्) सत्य तू (महाँ असि) महान् है (ते) तुझ (सतः) उत्तम की (महिमा) बड़ाई (महः) बड़ी है । (पनिष्टम) प्रशंसा के योग्य ! (देव) दिव्यगुण ! (महा) बड़प्पन से (महाँ असि) तू महान् है ।।

अर्थात् जैसे सूर्य और परमेश्वर प्रजा को चेताते हैं, रसों का आकर्षणादि करते हैं, प्रशंसनीय, दिव्यगुणों से युक्त हैं, और परमेश्वर सर्व की अपेक्षा से तथा सूर्य अन्य लोकों की अपेक्षा से बड़ा है । वैसे ही राजा भी व्यापारादि में प्रजा का प्रवर्त्तक, कर ग्रहण करने वाला, प्रशंसनीय, दिव्यगुणयुक्त, और साधारण मनुष्यों की अपेक्षा महान् होवे ।। ऋ० ८।१०१।११ में "महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि" यह पाठ है ॥ ४ ॥ (२७६)

अथ पञ्चम्याः— मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ।।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ [२ ३
अश्वी रथी सुरूपइद्गोमाँ यदिन्द्र ते सखा । श्वात्रभाजा
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥ ५ ॥ (२७७)

पदपाठः— अश्वी, रथी, सुरूपः १। इत् अ०। गोमान् १। यत् अ०। इन्द्र सं०। ते ६। सखा १। श्वात्रभाजा, वयसा ३। सचते क्रि०। सदा अ०। चन्द्रैः ३। याति क्रि०। सभाम् २। उप क्रि०।।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! वा राजन् ! (यत्) यदा मनुष्यः (ते) तव (सखा) अनुकूलो भवति (इत्) तदा (अश्वी) अश्ववान् (रथी) रथैर्युक्तः (गोमान्) गोभिर्युक्तः (सुरूपः) (श्वात्रभाजा) धनभाजा (वयसा) अन्नेन सह (सचते) समवैति संगच्छते (सदा) (चन्द्रैः) आह्लादकैः सहचरैः (सभाम्) सप्रकाशां जनसंसदम् (उप-याति) उपगच्छति ॥

सूर्यपक्षे—(इन्द्र) हे राजन् ! (ते) तव (सखा) समान-ख्यातिः सूर्यः (यत्) यतः (अश्वी) आशुगमनहेतुरुष्णता तद्वान् (रथी) रमणीयं स्वरूपं तद्वान् (सुरूपः) सुष्ठु रूपयति जगत्सः (इत्) तस्मात् (श्वात्रभाजा) धनभाजा (वयसा) अन्नेन (सचते) समवैति [वृष्ट्यादिना सस्योत्पादेन] (सदा) सर्वदा (चन्द्रैः) अनेकैश्चन्द्रमोभिः सह (सभाम्) गगनमण्डलम् (उप-याति) प्राप्नोति ॥

श्वात्रमिति धननाम। निघं० २।१० वय इत्यन्ननाम। निघं० २।७॥ चन्द्रैरिति बहुवचनेन चन्द्रमसां बहुत्वमपि वेदितव्यम् "चन्द्रश्चन्दतेः कान्तिकर्मणश्चन्दन मित्यप्यस्य भवति चारु द्रमति चिरं द्रमति चमेर्वा पूर्वम्"। निरु० १।१।५॥ ऋग्वेदे ८।४।९ तु "अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ इदिन्द्र ते सखा। श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुपं" इत्यन्तरम् ॥ ५ ॥ (२७७)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! वा राजन् ! (यत) जब [मनुष्य] (ते) आप के (सखा) अनकूल होता है (इत्) तभी (अश्वी) अश्वों वाला (रथी) रथों वाला (गोमान्) गौवों वाला और (सुरूपः) सुन्दर स्वरूप वाला

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

होता है। तथा (श्वात्रभाजा) धन सहित (वयसा) अन्न से (सचते) संगति करता है। और (सदा) सर्वदा (चन्द्रैः) आह्लादकारक सहचरों के साथ (सभाम्) सभा को (उप-याति) प्राप्त होता है ॥

न्यायकारी राजा और परमेश्वर के कृपाभाजन पुरुष ही रथ, गौ, धन, धान्य से सुखी और सभा के रत्न बनते हैं ॥

सूर्य्यपक्ष में- (इन्द्र) हे राजन् ! (ते) आप का (सखा) समानख्याति सूर्य (यत्) जिस कारण (अश्वी) शीघ्र गमन की हेतु उष्णता वाला (रथी) रमणीय स्वरूप वाला (सुरूपः) भले प्रकार रूप का सञ्चारक है (इत्) इस कारण (श्वात्रभाजा) धनभागी (वयसा) धान्य से (सचते) सङ्गति करता और (सदा) सर्वदा (चन्द्रैः) अनेक चन्द्रमाओं के सहित (सभाम्) गगन-मण्डल रूप सभा में (उप-याति) प्राप्त रहता है ॥

इस से चन्द्रमाओं का दो से अधिक होना भी पाया जता है। नि-घण्टु २।७।।२।१० निरुक्त ११।५ के प्रमाण और ऋ० ८।४।९ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (२७७)

अथ षष्ठ्याः-पुरुहन्माऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ।।

१र २र ३ २ ३ १र २र ३ २ १ २
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः । न त्वा
३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वज्रिंत्सहस्रꣳ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६॥ (२७८)

पदपाठः- यत् अ० । द्यावः १ । इन्द्र सं० । ते २ । शतम्, शतम्, भूमीः १ । उत अ० । स्युः क्रि० । न अ० । त्वा २ । वज्रिन् सं० । सहस्रम्, सूर्याः १ । अनु, न अ० । जातम् १ । अष्ट क्रि० । रोदसी १ ।।

अन्वितपदार्थः- (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) यदि (द्यावः) द्युलोकाः (शतम्) बहवः (स्युः) भवेयुस्तदापि (ते) त्वाम् (न अनु, अष्ट) नानुव्याप्नुवन्ति (उत) च (भूमीः) भूमयः (शतम्) बह्वयः स्युस्तदापि न व्याप्नुवन्ति । (वज्रिन्) हे दुष्टेषु दण्डप्रणेतः ! (सहस्रम्) असंख्याताः (सूर्य्याः) आदित्यलोकाः (त्वा)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

त्वां नाऽनुव्याप्नुवन्ति । (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ नाऽनुव्याप्नुतः । (जातम्) उत्पन्नं जगन्मात्रमपि (न) नैव त्वां व्याप्नोति भवतः सर्वेभ्यो महत्त्वादनन्तत्वात् सर्वेभ्योऽपि भवानतिरिच्यते "ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः" इति श्रूयते च ॥

शतमिति, सहस्रमिति च बहुनाम । निघं० ३।१ अष्ट इति व्याप्तिकर्मा । निघं० २।१८॥ रोदसी इति द्यावापृथिव्योर्नाम । निघं० ३।३० ॥ ऋग्वेदे ८।७०।५ ऽपि ॥६॥ (२७८)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) यदि (द्यावः) द्युलोक (शतम्) सैंकड़ों (स्युः) हों । [तौ भी] (ते) आप को (न) नहीं (अनु) साथ (अष्ट) व्याप सक्ते (उत) और (भूमीः) पृथिवी लोक (शतम्) सैंकड़ों हों, तब भी नहीं व्याप सकते (वज्रिन्) हे दुष्टों को दण्ड दाता ! (सहस्रम्) असंख्यात (सूर्याः) सूर्य लोक भी (त्वा) आप को [नहीं व्याप सकते] (रोदसी) द्यावा पृथिवी [आप को नहीं व्याप सकते] (जातम्) उत्पन्न जगत् मात्र (न) आप को नहीं व्याप सकता ॥ क्योंकि आप अनन्त और सब से बड़े हैं । "पृथिवी से बड़ा, अन्तरिक्ष से बड़ा, द्युलोक से बड़ा और इन सब लोकों से भी बड़ा है" ऐसा कहा सुनते हैं ॥

निघण्टु ३।१॥२।१८॥३।३० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।७०।५ में भी ॥ ६ ॥ (२७८)

अथ सप्तम्याः—देवातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१२३ २७ ३२क २र ३२३ १२ १२ ३१र

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः । सिमा पुरू नृ-

२र ३ २३१ २ ३१२

षूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥ (२७९)

पदपाठः—यत् अ० । इन्द्र सं० । प्राक्, अपाक्, उदक्, न्यक्, वा अ० । हूयसे क्रि० । नृभिः ३ । सिमा ७ । पुरू २ । नृषूतः १ । असि क्रि० । आनवे ७ ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

असि, क्रि० । प्रशर्ध सं० । तुर्वशे ७ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) यदा (नृभिः) मनुष्यैः (प्राक्) प्राच्यां दिशि (अपाक्) प्रतीच्यां दिशि (उदक्) उदीच्यां दिशि (वा) अथवा (न्यक्) अधस्तात् त्वं (हूयसे) स्तूयसे आहूतः क्रियसे तदा (सिमा) सर्वत्रैव युगपत् (तुर्वशे) समीपे वर्त्तमानः (असि) भवसि एवं (पुरु) बहुशः (नृषूतः) नृभिराहूतस्त्वं (प्रशर्ध) हे सर्वाभिभावुक ! (आनवे) मनुष्यजातमात्रे (असि) वर्त्तसे ॥

प्रागादिषु—दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्योदिग्देशकालेष्वस्तातिः ५ । ३ । २७ अञ्चेर्लुक् ५। ३ । ३० इति लुक् । न्यक् इत्यत्र—न्यधी च ६। २ । ५३ इति नेः प्रकृतिस्वरत्वम् । उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ८। २ । ४ इति परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्त्वम् । सिमा इति सर्वपर्यायस्य सिमशब्दस्य सप्तम्याआकारादेशे रूपम् ॥ अनव इति मनुष्यनाम। निघं० २।३ तुर्वश इति अन्तिकनाम। निघं० २। १६॥ऋग्वेदे ८ । ४। १ ऽपि ॥ ७ ॥ (२७९)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) जब (नृभिः) मनुष्यों से (प्राक्) पूर्व (अपाक्) पश्चिम (उदक्) उत्तर (वा) और (न्यक्) नीचे की दिशाओं में (हूयसे) तुम पुकारे जाते हो तब (सिमा) सर्वत्र एक साथ ही (तुर्वशे) सब के समीप (असि) होते हो । (प्रशर्ध) हे सब से अधिक तेजस्विन् ! (पुरु) बहुशः (नृषूतः) मनुष्यों के पुकारे हुवे आप (आनवे) मनुष्यमात्र में (असि) हैं ॥

अष्टाध्यायी ५ । ३ । २७ ॥ ५ । ३ । ३० ॥ ६ । २ । ५३ ॥ ८ । २ । ४ निघ-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

गटु २ । ३ ॥ २ । १६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४ । १ में भी ॥ ७ ॥ (२७९)

अथाऽष्टम्याः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१र २ग ३१र २र ३१र २र ३

कस्तामिन्द्र त्वा वसवामर्त्यो दधर्षति । श्रद्धा हि ते मघव-

१२ ३२ ३१र २र

न्पार्ये दिवि वाजी वाजꣳ सिषासति ॥८॥ (२८०)

पदपाठः—कः १ । तम् २ । इन्द्र सं० । त्वा २ । वसो सं० । आ अ० । मर्त्यः १ । दधर्षति क्रि० । श्रद्धा ३ । हि अ० । ते ६ । मघवन् सं० । पार्ये, दिवि ७ । वाजी १ । वाजम् २ । सिषासति क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(वसो) वासहेतो ! (मघवन्) यज्ञवन् ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (तम्) पूर्वोक्तं सर्वव्यापकं (त्वा) त्वाम् (कः) (मर्त्यः) मनुष्यः (आ—दधर्षति) धर्षितुं शक्नोति । नकोपि, किन्तु (वाजी) योगबलयुक्तः सोमलक्षणाऽन्नयुतो वा (ते) तव यजमानः (पार्ये) पारेभवे सौत्ये (दिवि) अहनि (श्रद्धा) श्रद्धया (हि) नूनं (वाजम्) सोमं (सिषासति) संविभागेन दातुमिच्छति ॥

ऋग्वेदे तु ७ । ३२ । १४ "वसुमामर्त्योदधर्षति । श्रद्धा इत्ते" इत्यन्तरम् ॥ ८ ॥ (२८०)

भाषार्थः—(वसो) वासहेतो ! (मघवन्) यज्ञ वाले ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (तम्) उस सर्वव्यापक (त्वाम्) आप को (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (आ—दधर्षति) धर्षणा कर सकता है ? कोई नहीं । किन्तु—(वाजी) योगबल वा सोमरूप अन्न वाला (ते) आप का यजमान (पार्ये) सोम की पारी के (दिवि) दिन (श्रद्धा) श्रद्धापूर्वक (हि) निश्चय (वाजम्) सोम को (सिषासति) विभागपूर्वक [यज्ञ में] देना चाहता है ॥

ऋ० ७ । ३२ । १४ में जो पाठभेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥८॥ (२८०)

अथ नवम्याः—भारद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । बृहती छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १र २र
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हित्वा शिरो
३ २ ३ १२३१२ ३ २ ३१ २
जिह्वया रारपच्चरात्रिंँशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ९॥(२८१)

पदपाठः—इन्द्राग्नी, अपात्, इयम्, पूर्वा १ । आ अ० । अगात् क्रि० । पद्वतीभ्यः ५ । हित्वा अ० । शिरः २ । जिह्वया ३ । रारपत्, चरत् क्रि० । त्रिंशत्, पदा २ । नि—अक्रमीत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—ननु पूर्वोक्तः सोमः कथं विभागं प्राप्नोतीत्यत्राह— (इयम्) विद्युत् (अपात्) पादरहिताऽपि (पद्वतीभ्यः) चरणसहिताभ्यः प्रजाभ्यः (पूर्वा) अग्रगामिनी सती (आ—अगात्) आगच्छति । (चरत्) चरति च (शिरः) मुखस्थानं (हित्वा) वर्जयित्वाऽपि (जिह्वया) वाचा (रारपत्) अतिशयितं शब्दं करोति (त्रिंँशत्) अहोरात्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं यावत् (पदा) पदानि (न्यक्रमीत्) नितरां क्रामति (इन्द्राग्नी) सूर्य्याग्नी अपि तथा विधत्तः ॥

आश्चर्यस्वभावा हि सूर्याग्निविद्युतः सन्ति । तदनुग्रहेणैव सोमादिविभागः सञ्जायते ॥ ऋग्वेदे ६ । ५९ । ६ तु " हित्वी शिरोजिह्वया वावदत् " इत्यन्तरम् ॥ ९ ॥ (२८१)

भाषार्थः—पूर्वोक्त सोम का विभाग कौन करता है । इस का उत्तर कहते हैं—(इयम्) यह बिजुली (अपात्) पांव के बिना भी (पद्वतीभ्यः) पांव वाली प्रजाओं से (पूर्वा) प्रथम (आ—अगात्) आज ती है (चरत्) और चलती है । तथा (शिरः) मुखस्थान को (हित्वा) त्यागकर भी (जिह्वया) वाणी से (रारपत्) अत्यन्त बोलती है (त्रिंँशत्) दिन रात ३० मुहूर्त्तों में (पदा) पद (न्यक्रमीत्) रखती है । (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि भी ऐसा करते हैं ॥

सूर्य अग्नि और बिजुली के आश्चर्य प्रभाव से सोम का विभाग होजाता है ॥ ९ ॥ (२८१)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ दशम्याः—बालखिल्या ऋषयः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः । आ शन्तम

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥ १० ॥ (२८२)

*इति पञ्चमी दशतिः ॥५॥ *

पदपाठः—इन्द्र, नेदीयः सं० । आ, इत् अ० । इहि क्रि० । मितमेधाभिः, ऊतिभिः ३ । आ अ० । शन्तम सं० । शन्तमाभिः, अभिष्टिभिः ३ । आ अ० । स्वापे सं० । स्वापिभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नेदीयः) हे अतिसामीप्ये वर्त्तमान ! व्यापक ! त्वं (मितमेधाभिः) परिमितप्रज्ञाभिः (ऊतिभिः) रक्षाभिः सह (आ—इहि, इत्) प्राप्नुहि एवास्मान् (शन्तम) हे अतिसुखदायक ! (शन्तमाभिः) सुखतमाभिः (अभिष्टिभिः) प्राप्तिभिः (आ) प्राप्नुहि । (स्वापे) स्वस्य स्वरूपस्य प्रापयितः ! (स्वापिभिः) स्वेषां पदार्थानां प्राप्तिभिः सह (आ) प्राप्नुहि ॥

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ (५।३।६३) इति अन्तिकशब्दादीयसुनि नेदीयः ॥ ऋग्वेदे ८।५३।५ ऽपि ॥१०॥ (२८२)

भाषार्थः— (इन्द्र) हे परमेश्वर! (नेदीयः) हे अति समीप ! व्यापक! आप (मितमेधाभिः) परिमित बुद्धियों सहित और (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (आ—इहि, इत्) हमें प्राप्त हो हूजिये (शन्तम) हे सुखद! (शन्तमाभिः) अतिसुखदायिका (अभिष्टिभिः) प्राप्तियों से (आ) प्राप्त हूजिये (स्वापे) हे अपने स्वरूप के प्राप्त कराने वाले! (स्वापिभिः) अपने पदार्थों की प्राप्तियों से (आ) प्राप्त हूजिये ॥

अष्टाध्यायी ५।३।६३ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।५३।५ में भी ॥१०॥(२८२)

* यह तृतीयाऽध्याय में पांचवीं दशति समाप्त हुई ॥५॥ *

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इत ऊतीव इत्याद्या बृहत्यो दशतौ दश ।
शचीभिरिति पञ्चम्या अश्विनौ देवते मते ॥ १ ॥
यदेति वारुणी षष्ठी शिष्टा ऐन्द्र्यः प्रकीर्त्तिताः ।

अथ

षष्ठी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—नृमेध ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३२ ३ १ २ ३१२ ३ २३१२ ३१२ २२३
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् । आशुं जेतारꣳ
१ २ ३१२३१२ ३१२
हेतारꣳ रथीतममतूर्त्तं तुग्रियावृधम् ॥ १ ॥ (२८३)

पदपाठः—इत क्रि० । ऊती ४ । वः ६ । अजरम्, प्रहेतारम्, अप्रहितम्, आशुम्, जेतारम्, हेतारम्, रथीतमम्, अतूर्त्तम्, तुग्रियावृधम् २॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः ! यूयम् (वः) युष्माकम् (ऊती) ऊत्यै रक्षायै (अजरम्) अकायत्वाज्जरारहितम् (प्रहेतारम्) अन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरकम् (अप्रहितम्) कूटस्थत्वात्केनाऽपि चालयितुमशक्यम् (आशुम्) योऽश्नोति व्याप्नोति तम् (जेतारम्) यो जयति सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्त्तते तम् (हेतारम्) सर्वगम् (रथीतमम्) रमणीयवत्तमम् (अतूर्त्तम्) निराकारत्वात्केनाऽपि हिंसितुमशक्यम् (तुग्रियावृधम्) उदकस्य वर्षकत्वेन वर्धकम् प्रकरणादिन्द्रं परमेश्वरम् (इत) प्राप्नुत ॥

नञ्पूर्वाद्धिंसार्थात्तुर्वी धातोरत्तूर्त्तमिति रूपम् ॥ तुग्र्याइति उदकनाम । निघं० १ । १२ ॥ रथो रंहतेर्गतिकर्मणः स्थिरतेर्वा स्याद्विपरीतस्य रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति वा रपतेर्वा रसते-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

र्वा। निरु० ९। ११ ॥ ऋग्वेदे तु ८। ९९।७ तुग्र्यावृधमित्येव पाठः ॥ १ ॥ (२८३)

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (वः) अपनी (ऊती) रक्षा के लिये (अजरम्) अकाय होने से बुढ़ापे से रहित (प्रहेतारम्) अन्तर्यामितया सब के प्रेरक (अप्रहितम्) कूटस्थ होने से अचल (आशुम्) व्यापक (जेतारम्) सर्वोत्कृष्ट (हेतारम्) सर्वग (रथीतमम्) अति रमणीय पदार्थों वाले (अतूर्त्तम्) निराकार होने से अहिंसनीय अमर (तुग्र्यावृधम्) जल के वर्षाने वाले [उपलक्षण से आंधी आदि के भी प्रवर्त्तक, प्रकरणागत इन्द्र परमेश्वर को] (इत) प्राप्त होओ ।।

निघण्टु १। १२ निरुक्त ९। ११ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० ८। ९९। ७ में "तुग्र्यावृधम्" ही पाठ है॥ १ ।। (२८३)

अथ द्वितीयायाः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ।।

१र २र ३ १ २ ३ २च ३ १र २र ३ १ २

मोषु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्निरीरमन् । आरात्ताद्वा

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

सधमादं न आगहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ २ ॥ (२८४)

पदपाठः—मा, उ, सु अ० । त्वा २ । वाघतः १ । च अ० । आरे १ । अस्मत् ५ । नि—रीरमन् क्रि० । आरात्तात्, वा अ० । सधमादम् २ । नः ६ । आगहि क्रि० । इह, वा अ० । सन् १ । उप—श्रुधि क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् हे परमेश्वर ! (वाघतः) ऋत्विजः (चन) अपि (अस्मत्) अस्मत्तः (आरे) दूरे (त्वा) त्वाम् (मा, उ, सु, निरीरमन्) मा रमयन्तु । किन्त्वस्मत्समीपएव स्थिताः सन्तस्त्वां प्रसादयन्तु । त्वं च (वा) नूनम् (आरात्तात्) समीपतएव सर्वगत्वात् (नः) अस्माकं (सधमादम्) सह माद्यन्ति यत्र तं यज्ञम् (आगहि) प्राप्नुहि (वा) अथवा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(इह) अस्मदन्तःकरणे एव (सन्) विद्यमानः (उप–श्रुधि) प्रार्थनां शृणु ॥

वाघत इति मेधाविनाम । निघं० ३ । १५ ऋत्विङ्नाम च । निघं० ३ । १८॥ ऋग्वेदे तु ७ । ३२ । १ आरात्ताच्चिदिति पाठः ॥ २ ॥ (२८४)

भाषार्थः–प्रकरण से हे परमेश्वर ! (वाघतः) विद्वान् ऋत्विज् लोग (चन) भी (अस्मत्) हम से (आरे) दूर देश में (त्वा) आप को (मा, उ, सु, नि–रीरमन्) न स्तुत करें किन्तु समीप ही बैठे हुए स्तुत करें और आप (वा) निश्चय (आरात्तात्) सर्वग होने से समीप ही (नः) हमारे (सधमादम्) यज्ञ को (आगहि) प्राप्त हों (वा) अथवा (इह) इस हमारे अन्तःकरण में (सन्) वर्त्तमान आप (उप–श्रुधि) प्रार्थना का श्रवण करें ॥

निघण्टु ३ । १५ ॥ ३ । १८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । ३२ । १ में "आरात्चित्" पाठ है ॥ २ ॥ (२८४)

अथ तृतीयायाः–वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १२ ३१२
सुनोत सोमपात्रे सोममिन्द्राय वज्रिणे । पचता पक्तीर-
२२ ३ २उ ३ १२ २२ ३१२ २२
वसे कृणुध्वमित् पृणन्नित्पृणते मयः ॥ ३ ॥ (२८५)

पदपाठः–सुनोत क्रि० । सोमपात्रे ४ । सोमम् २ । इन्द्राय, वज्रिणे ४ । पचत क्रि० । पक्तीः २ । अवसे ४ । कृणुध्वम् क्रि० । इत् अ० । पृणन् १ । इत् अ० । पृणते क्रि० । मयः २ ॥

अन्वितपदार्थः–रक्षायै सुखाय च प्रार्थितः सन्परमेश्वरः सर्वं सुखं रक्षां च शुद्धवायुजलवृष्ट्योषधिषु संभवतीति जानन् उपदिशति–हे मनुष्याः ! (सोमपात्रे) सोमस्य पात्रे (वज्रिणे) वज्रवते (इन्द्राय) मध्यस्थानाय देवविशेषाय (सोमम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सोमं तदुपलक्षितान्यौषधीश्च (सुनोत) अभिषुणुत । (अवसे) रक्षायै (पक्तीः) पक्तव्यान् पुरोडाशादीन् (पचत)। (इत्) एवं सर्वाणि कर्माणि (कृणध्वम् इत्) कुरुतैव (पृणन्) सुखदानपर इन्द्रः (मयः) सुखम् (पृणते) प्रयच्छति ।।

पृणाति इति दानकर्मा । निघं० ३ । २० ।। मय इति सुखनाम । निघं० ३ । ६ ।। ऋग्वेदे तु ७ । ३२ । ८ सुनोता इति दीर्घपाठः ।। ३ ।। (२८५)

भाषार्थः— रक्षा और सुख के लिये प्रार्थना किया हुवा परमेश्वर, यह जान कर कि मनुष्यों का समस्त सुख और रक्षा, शुद्ध वायु जल वृष्टि और ओषधि आदि पर निर्भर है । उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम (सोमपाव्ने) सोम पीने वाले (वज्रिणे) कड़क रूप वज्र के धर्त्ता (इन्द्राय) अन्तरिक्षस्थान देवविशेष के लिये (सोमम्) सोमादि ओषधियों का (सुनोत) अभिषव करो- संपादन करो । (अवसे) रक्षा के निमित्त (पक्तीः) पकाने योग्य पुरोडाशादि (पचत) पकाओ । (इत्) ऐसे सब काम (कृणुध्वम्) करो (इत्) ही (पृणत्) देने वाला (मयः) सुख (पृणते) देता है ।।

निघण्टु ३।२०।। ३।६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० १। ३२। ८ में "सुनोता" ऐसा दीर्घान्त पाठ है ।। ३ ।। (२८५)

अथ चतुर्थ्यार्चः— भरद्वाजऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ।।

१ २३ १र २र ३ २ ३१ २ ३२ १२

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् । सहस्र-

३१२३१२ ३२

मन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ।।४।।(२८६)

पदपाठः— यः, सत्राहा, विचर्षणिः १। इन्द्रम्, तम् २ । हूमहे क्रि० । वयम् १ । सहस्रमन्यो, तुविनृम्ण, सत्पते सं० । भव क्रि० । समत्सु १। नः ६ । वृधे ४।।

अन्वितपदार्थः— मनुष्या वदन्ति (सहस्रमन्यो) हे असंख्यवाण ! (तुविनृम्ण) हे बहुबल ! (सत्पते) सतां पालयितः !

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यस्त्वं (सत्राहा) सहैव सर्वशत्रुनाशकोसि (विचर्षणिः) विशिष्टप्रज्ञश्चासि। स त्वं (समत्सु) कामादिशत्रुसंग्रामेषु (नः) अस्माकं (वृधे) वृद्ध्यै जयाय (भव) एधि। भवदाज्ञानुसारं (तम्) मध्यस्थानम् (इन्द्रम्,वयं, हूमहे) ॥

विचर्षणिः पश्यतिकर्मा। निघं० ३।११॥ सहस्रमिति बहुनाम। निघं० ३।१ मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः क्रोधकर्मणोवधकर्मणोवा मन्युस्तस्मादिषवः। निरु० ९। २९ ॥ तुवीति बहुनाम। निघं० ३। १ नृम्णमिति बलनाम। निघं० २।९॥ समत्सु इति संग्रामनाम निघं०२।१७॥ऋग्वेदे तु६।४६।३सहस्रमुष्केत्यन्तरम्॥४॥(२८६)

भाषार्थः— मनुष्य पूर्व मन्त्रोपदेश के उत्तर में निवेदन करते हैं कि— (सहस्रमन्यो) हे अनन्तवाण! (तुविनृम्ण) हे बहुबल! (सत्पते) हे सत्पुरुषों के रक्षक! जो आप (सत्राहा) एक साथ समस्त का नाश करने में समर्थ हैं और (विचर्षणिः) अच्छे बुरे को देखने वाले हैं, सो आप (समत्सु) कामादि शत्रुओं के सङ्ग्रामों में (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि और विजय के लिये (भव) हूजिये। आप की आज्ञानुसार (तम्) उस अन्तरिक्षस्थान (इन्द्रम्) इन्द्र का (वयम्) हम (हूमहे) हवनादि करते हैं ॥

निघण्टु ३।११॥३।१॥३।१॥२।९॥२।१७ निरुक्त ९।२९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६।४६।३ में "सहस्रमुष्क" यह पाठभेद है ॥ ४॥ (२८६)

अथ पञ्चम्याः— परुच्छेप ऋषिः। अश्विनौ देवते। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम्। मा वां

३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २

रातिरुपदसत् कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥५॥ (२८७)

पदपाठः— शचीभिः ३। नः ४। शचीवसू २। दिवा, नक्तम् अ०। दिशस्यतम् क्रि०। मा अ०। वाम् ६। रातिः १। उप—दसत् क्रि०। कदा, चन अ०। अस्मत् ६। रातिः १। कदा,चन अ० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—मनुष्याः सूर्याचन्द्रमसावुद्दिश्याहुः—हे अश्विनौ ! (शचीवसू) शचीं प्रज्ञां वसु धनञ्च (नः) अस्मभ्यं (दिवा नक्तम्) दिवसे रात्रौ च (शचीभिः) कर्मभिः सह (दिशस्यतम्) दत्तम् । (वाम्) युवयोः (रातिः) दानम् (कदा, चन) कदापि (मा, उप–इसत्) मोपक्षीणं भूत् (अस्मत्) अस्माकं च (रातिः) हविः (कदा, चन) कदापि मोपक्षीणं भूत् ॥

अत्राश्विनोर्दृष्टान्तेनोपदेश्योपदेशकयोः कर्माऽप्युपदिष्टं बोध्यम् ॥ शचीति कर्मनाम । निघं० २ । १ प्रज्ञानाम च ३ । ९ दिशस् शब्दः कण्ड्वादिषु द्रष्टव्यः ॥ उपपूर्वात् दसु उपक्षये धातोः—गुषादिद्युतादीत्यादिना ३ । १ । ५५ लुङि च्लेरङ् ॥ ऋग्वेदे १ । १३९ । ५ तु "दशस्यतम्" इति पाठः ॥५॥(२८७)

भाषार्थः—फिर मनुष्य लोग सूर्य्य और चन्द्रमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि—अश्विनौ ! तुम (शचीवसू) बुद्धि और धन (नः) हमारे लिये (दिवा नक्तम्) रात्रि दिन (दिशस्यतम्) दो । (शचीभिः) कर्मों सहित (वाम्) तुम्हारा (रातिः) दान (कदा चन) कभी (मा, उप–दसत्) उपक्षीण न हो और (अस्मत् रातिः) हमारा हव्य दान भी (कदा चन) कभी उपक्षीण न हो ॥

यहां सूर्य्य चन्द्रमा के दृष्टान्त से उपदेशक और उपदेश्य का धर्म भी उपदेश किया जाता है ॥ सूर्य चन्द्र भी अपने प्रकाश से बुद्ध्यादि बढाते हैं ॥

निघण्टु २ । १ ॥ ३ । ९ अष्टाध्यायी ३ । १ । ५५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । १३९ । ५ में " दशस्यतम् " पाठ है ॥५॥ (२८७)

अथ षष्ठ्याः—वामदेव ऋषिः । वरुणो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३१ २ ३१२ ३ १ २ ३ १ २ १२ २२ ३
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः । आदिद्वन्देत
१२ ३२ ३२ ३२ ३ १२
वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥ ६ ॥ (२८८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः— यदा कदा च अ० । मीढुषे ४ । स्तोता १ । जरेत क्रि० । मर्त्यः १ । आत्, इत् अ० । वन्देत क्रि० । वरुणम् २ । विपा, गिरा ३ । धर्त्तारम् २ । विव्रतानाम् ६ ।।

अन्वितपदार्थः—परमात्मस्तुत्या सह वन्दनाया विधिमाह-(स्तोता) स्तुतिकर्त्ता (मर्त्यः) मनुष्यः (मीढुषे) धर्मार्थकाममोक्षसेक्रे परमेश्वराय (यदा कदा च) यस्मिन्काले (जरेत) स्तुतिं विदध्यात् (आत् इत्) तदैव (विव्रतानाम्) विविधकर्मणाम् (धर्त्तारम्) धारकं (वरुणं) वरणीयं परमात्मानं (गिरा) या गृणाति तया (विपा) वाचा (वन्देत) । नमस्कारशून्यां स्तुतिं न विदध्यादपि तु तत्सहितामेवेति भावः ।।

जरते इत्यर्चतिकर्मा । निघं० ३ । १४ ।। विपा इति वाङ्नाम । निघं० १ । ११ ।। व्रतमिति कर्मनाम । निघं० २ । १।। विविधानि च तानि व्रतानि विव्रतानि तेषाम् ।। ६ ।। (२८८)

भाषार्थः— परमात्मा की स्तुति के साथ वन्दना भी आवश्यक है । इस का विधिवाक्य कहते हैं कि—(स्तोता) स्तुति करने वाला (मर्त्यः) मनुष्य (मीढुषे) धर्मार्थ काम मोक्ष के वर्षक परमेश्वर के लिये (यदा कदा च) जब कभी (जरेत) स्तुति करे (आत् इत्) तब ही (विव्रतानाम्) विविध कर्मों के (धर्त्तारम्) धर्त्ता (वरुणम्) वरण करने योग्य परमात्मा को (गिरा) जो बोलती है उस (विपा) वाणी से (वन्देत) वन्दना भी करे । अर्थात् वन्दनारहित स्तुति न करे किन्तु वन्दना और स्तुति दोनों करे ।।

निघण्टु ३ । १४ ।। १ । ११ ।। २ । १ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ६ ।। (२८८)

अथ सप्तम्याः— मेध्यातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ।।

३ १र २ १ ३ २ ३१ २ १र २र ३

पाहि गा अन्धसोमदइन्द्राय मेध्यातिथे । यः संमिश्लो

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२३१ २३२३ १ २३१ २३१२

हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रोवज्री हिरण्ययः ॥७॥ (२८९)

पदपाठः—पाहि क्रि० । गाः २ । अन्धसः ६ । मदे ७ । इन्द्राय ४ । मेध्यातिथे सं० । यः, संमिश्लः १ । हर्योः ७ । यः, हिरण्ययः, इन्द्रः, वज्री, हिरण्ययः १ ।।

अन्वितपदार्थः—(मेध्यातिथे) हे संगमनीय ! देहाद्देहान्तरं सततं गन्तः ! जीवात्मन् ! त्वम् (इन्द्राय) परमेश्वरप्राप्तये (अन्धसः) भक्ष्यभोज्यादिकस्याऽन्नस्य (मदे) जाते सति (गाः) इन्द्रियाणि (पाहि) रक्ष [विषयेभ्य इति शेषः ।] कुतः (यः) (इन्द्रः) परमेश्वरः (हिरण्ययः) ज्योतिर्मयः (हर्योः) हरणशीलयोरात्ममनसोः (संमिश्लः) अन्तर्यामितया तन्मिश्रः (वज्री) विषयलोलुपेषु इन्द्रियारामेषु दण्डधरः (हिरण्ययः) ज्योतिर्मयः । स विषयिभिर्दुष्प्राप इति भावः ॥

हिरण्ययपदाऽभ्यासेन परमेश्वरस्यातिज्योतिर्मयत्वम् मदान्धैरप्राप्यत्वं च सूचितम् ॥

गौरिति रश्मिनाम । निघं० १ । ४ ततश्चेन्द्रियेषु तात्पर्यम् ॥ अन्धइत्यन्ननाम । निघं० २।७ ॥ मेधृ संगमे, मेध्यः संगमनीयश्चासौ अतिथिः सततगामी चेति मेध्यातिथिस्तत्संबुद्धौ मेध्यातिथे! ऋग्वेदे तु ८।३३।४ "पाहि गायान्धसोमदइन्द्राय मेध्यातिथे । यः संमिश्लोहर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः" ॥ इत्यन्तरम् ॥७॥ (२८९)

भाषार्थः—(मेध्यातिथे) हे परमेश्वर से संगति योग्य ! निरन्तर देहान्तर को जाने वाले ! जीवात्मन् ! तू (इन्द्राय) परमेश्वरप्राप्ति के लिये (अन्धसः) उत्तम २ भोजनादि के (मदे) मद में (गाः) इन्द्रियों की [विषयों से] (पाहि) रक्षा कर [क्योंकि] (यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर (हिरण्ययः) ज्योतिर्मय

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

है और जो (हर्यो:) हरणशील आत्मा और मन में (संमिश्लः) मिल रहा है व्यापक है और जो (वज्री) दुष्ट विषयलोलुपों को दण्ड धारण किये है (हिरण्ययः) ज्योतिःस्वरूप है। वह अजितेन्द्रियों को नहीं मिल सक्ता। यह भाव है॥

हिरण्यय पद के दो वार पाठ से परमात्मा की ज्योति की अतिशयता और मदान्धों को नहीं पासक्ता, यह सूचित किया है॥ निघण्टु १। ४॥ २। ७॥ इत्यादि प्रमाण और ऋ० ८। ३३। ४ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ७॥ (२८९)

अथाऽष्टम्याः—भर्ग ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

३१२ ३१२ ३१२ ३२३१र ३र ३१२

उभयꣳशृणवच्चन इन्द्रो अर्वागिदं वचः। सत्राच्या

३२३ १२ ३१र २र३१२

मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आगमत्॥८॥ (२९०)

पदपाठः—उभयम् २। शृणवत् क्रि०। चन अ०। इन्द्रः १। अर्वाक् अ०। इदम्, वचः २। सत्राच्या ३। मघवान् १। सोमपीतये ४। धिया ३। शविष्ठः १। आ—गमत् क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वरः (नः) अस्माकम् (उभयम्) स्तुत्यात्मकं वन्दनात्मकम् चोभयविधम् (अर्वाक्) समक्षे निवेद्यमानम् (इदम्) अस्माभिरुच्चार्यमाणं (वचः) वचनम् (शृणवत्) शृणुयात् (च) अनन्तरम् (शविष्ठः) अतिबलः (मघवान्) मखवान् (सोमपीतये) हृद्गतस्य सौम्यभावस्य ग्रहणाय (सत्राच्या) सत्यानुगामिन्या (धिया) प्रज्ञया (आ—गमत्) प्राप्नोतु॥

सत्रेति सत्यनाम। निघं० ३। १० तमञ्चतीति तया सत्राच्या॥ शव इति बलनाम। निघं० २। ९॥ ऋग्वेदे तु ८। ५०। १ "मघवा" इति पाठः। सायणाचार्येण (च, नः) इति पदद्वयं व्याख्यातं न दृश्यते॥८॥ (२९०)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमारे (उभयम्) स्तुति और वन्दना दोनों प्रकार के वचनों को (अर्वाक्) समक्ष उच्चार्यमाण (शृणवत्) सुने (च) और (शविष्ठः) अतिबल (मघवान्) यज्ञ वाला (सोमपीतये) हृदय के सौम्य भाव को ग्रहण करने के लिये (सत्राच्या) सत्यानुगामिनी (धिया) बुद्धि सहित (आ-गमत्) प्राप्त होवे ॥

निघण्टु ३ । १० ॥ २ । ९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये । सायणाचार्य ने (च नः) ये दो पद नहीं व्याख्यात किये दीखते ॥ ऋ० ८ । ५० । १ में तो "मघवा" पाठ है ॥ ८ ॥ (२९०)

अथ नवम्याः—मेधातिथिर्मेध्यातिथी ऋषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३
महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे । न सहस्राय
१र २र ३ २ ३ १ २
नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ९ ॥ (२९१)

पदपाठः—महे ४ । च, न अ० । त्वा १ । अद्रिवः सं० । परा अ० । शुल्काय ४ । दीयसे क्रि० । न अ० । सहस्राय ४ । न अ० । अयुताय ४ । वज्रिवः सं० । न अ० । शताय ४ । शतामघ सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(अद्रिवः) हे मेघवन् ! (वज्रिवः) हे दुष्टसुताडन ! (शतामघ) हे बहुधन ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (त्वा) त्वम् अस्माभिः (महे) महते (शुल्काय) मूल्याय (च) अपि (न) नैव (परा-दीयसे) त्यज्यसे (न सहस्राय) (न अयुताय) नापि दशसहस्राय (न शताय) नाप्येतस्मादपि बहुसंख्याकाय त्यज्यसे ॥

मनुष्यैः सहस्रादिकाय धनायाऽपि परमात्मा नैव त्याज्य इति भावः ॥

अद्रिरिति मेघनाम । निघं० १।१०॥ शतमिति बहुनाम

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघं० ३ । १ ॥ मघमिति धननाम निघं० २ । १० ॥ त्वेति प्रथमैकवचनस्याकारादेशो रूपम् ॥ ऋग्वेदे तु ८ । १ । ५ । "त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम्" इत्यन्तरम् ॥९॥ (२९१)

भाषार्थः— (अद्रिवः) हे मेघों के धारक! (वज्रिवः) दुष्टों के ताडन कर्त्ता! (शतामघ) बहुत धन वाले! इन्द्र! परमेश्वर! (त्वा) आप [हम से] (नहीं) बड़े (शुल्काय) मूल्य के लिये (च) भी (न) नहीं (परा दीयसे) त्यागे जाते हैं। (न सहस्राय) न सहस्र के लिये (न अयुताय) न १० सहस्र के लिये (न शताय) और न इस से भी बहुत के लिये ॥

अर्थात् मनुष्यों को चाहिये कि सहस्रों के धन के लिये भी कभी परमेश्वर को न हारें। किन्तु सहस्रादि अनन्त धन जावो सो जावो परन्तु परमेश्वर की आज्ञा के विपरीत कुछ न करें ॥

निघण्टु १।१०॥३।१॥२।१० ॥ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ८।१।५ का अन्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥९॥ (२९१)

अथ दशम्याः— ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ १ ३ २ उ ३ १ २ ३ १
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः । माता
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥१०॥ (२९२)

*इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ *

इति तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥

—*—

पदपाठः—वस्यान् १। इन्द्र सं० । असि क्रि० । मे ६ । पितुः ५ । उत अ० । भ्रातुः ५। अभुञ्जतः ६। माता १ । च अ० । मे ६ । छदयथः क्रि० । समा १ । वसो सं० । वसुत्वनाय, राधसे ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर! त्वम् (अभुञ्जतः) पालनाऽनर्हस्य (मे) मम (पितुः) जनकात् (भ्रातुः) सोदरात्

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(उत) च (वस्यान्) वसीयान् वसुमत्तमः (असि) भवसि। किञ्च (मे) मम (समा) समानप्रीतिः (माता) जननी (च) त्वं च (वसो) हे वासयितः! (छदयथः) मां पुष्यथः। किमर्थम्? (वसुत्वनाय) निवासाय (राधसे) धनाय चेति॥

यथा मनुष्यं माता परमेश्वरश्च पालयतः, न तथा पितृभ्रात्रादयोऽन्ये संबन्धिनः। तत्र माता शरीरं, परमात्मा चात्मानं विशेषतः। यदा मनुष्यो मातरं नापि शुश्रूषादिनाऽर्चति तदाऽपि माता शश्रूषणसमैव तं पुष्यति॥

छदयते इत्यर्चतिकर्मा। निघं० ३। १४॥ ऋग्वेदेऽपि ८। १। ६॥ १०॥ (२९२)

भाषार्थः—(वसो) हे वासहेतु! (इन्द्र) परमेश्वर! (अभुञ्जतः) न पालने वाले (मे) मेरे (पितुः) पिता (उत) और (भ्रातुः) भ्राता से अधिक आप (वस्यान्) बसाने वाले (असि) हैं (च) और (मे) मेरी (माता) जननी (समा) सब काल में समानप्रीति रखती है। (वसुत्वनाय) निवास और (राधसे) धन के लिये (छदयथः) [माता और आप मेरा] पोषण करते हैं॥

अर्थात् जब मनुष्य माता की सेवा पालन शुश्रूषा नहीं करता तब भी माता उस पर समान ही स्नेह रखती है। तथा परमेश्वर भी सब काल में इस का पोषण करता है। अन्य पिता भ्राता आदि इतने नहीं। इस में माता शारीरक और परमात्मा आत्मिक पुष्टि विशेषतः करते हैं॥

निघण्टु ३। १४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८। १। ६ में भी॥ १०॥ (२९२)

* यह तृतीयाऽध्याय में छठी ६ दशति और तीसरा ३ प्रपाठक समाप्त हुवा॥ *

—:*:—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ

चतुर्थप्रपाठके प्रथमाऽर्धः ॥

इम इन्द्राय इत्याद्या बृहत्यो दशतौ दश ॥
त्वष्टेति बहुदैवत्या शिष्टा ऐन्द्र्यो नव स्मृताः ॥१॥

अथ सप्तमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ १र १र
इम इद्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः । ता आमदाय
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
वज्रहस्त पीतयेहरिभ्यां याह्योक आ ॥१॥ (२९३)

पदपाठः— इमे १ । इन्द्राय ४ । सुन्विरे क्रि० । सोमासः, दध्याशिरः १ । तान् २ । आ अ० । मदाय ४ । वज्रहस्त सं७ । पीतये ४ । हरिभ्याम् ३ । याहि क्रि० । ओकः २ । आ अ० ।।

अन्वितपदार्थः (वज्रहस्त) हे विद्युज्ज्वालाधर ! इन्द्र ! अन्तरिक्षस्थान ! देव ! (इमे) यज्ञवेदिपार्श्वस्थाः (दध्याशिरः) दधिमिश्राः (सोमासः) सोमास्तदुपलक्षिता अन्या ओषधयश्च (इन्द्राय) तुभ्यम् (सुन्विरे) सुताः सन्ति (मदाय) हर्षाय (तान्) सोमान् (आ—पीतये) आ- पातुं (हरिभ्याम्) आशुगमनहेतुभ्यां समीचीनतिरश्चीनगतिभ्याम् (ओकः) यज्ञमण्डपम् (आ—याहि) प्राप्नुहि ॥

यदा मनुष्या इन्द्रयागमारभमाणाः सन्तो दधिमिश्रितसोमाद्योषधिजातं सुसंपाद्य यजनमारभन्ते तदा हर्षाय विवृद्धयेऽन्तरिक्षस्थाः इन्द्रवायुप्रभृतयो देवा भागशो गृह्णन्ति इति भावः ॥ ऋग्वेदे ७।३२।४ऽपि ॥१॥ (२९३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(वज्रहस्त) हे वैद्युततेजोधर ! (इमे) ये (दध्याशिरः) दधिमिश्रित (सोमासः) सोमादि ओषधियां (इन्द्राय) तुझ इन्द्र के लिये (सुन्विरे) सुसंपन्न की हैं। (मदाय) हर्ष के लिये (तान्) उन सोमों के (आ, पीतये) ग्रहण करने को (हरिभ्याम्) तिरछी सीधी दोनों गतियों से (ओकः) यज्ञस्थल को (आ-याहि) आ ।।

अर्थात् जब मनुष्य यज्ञ के लिये दधिमिश्रित सोम आदि ओषधि संपन्न करके यज्ञ आरम्भ करते हैं तो इन्द्र जो अन्तरिक्ष में जल वर्षाने वाला एक अचेतन देवता है, और अन्य उस के उपलक्षण से ग्रहण किये हुवे वायु आदि देवगण अपना २ भाग ग्रहण कर लेते हैं। उन का वृद्धि और अच्छेपन को प्राप्त होना ही हर्ष है। अपने २ ग्राह्य रस को चूंसना वा खेंचना ही पीना है ।। ऋ० ७। ३२। ४ में भी ।।१।। (२९३)

अथ द्वितीयायाः- वामदेवऋषिः। इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः ।।

३१र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १र
इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः। मधोः पपान
२र ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २
उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥२॥ (२९४)

पदपाठः— इमे १। इन्द्र सं० । मदाय ४। ते ६। सोमाः १। चिकित्रे क्रि० उक्थिनः, मधोः ६। पपानः १। उप अ०। नः ६। गिरः २। शृणु, रास्व क्रि०। स्तोत्राय ४। गिर्वणः सं० ।।

अन्वितपदार्थः—(गिर्वणः) हे गिरा वननीय ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (मधोः) मधुरभाषिणः (उक्थिनः) स्तोतुः (इमे) वेदिपार्श्वे स्थिताः (सोमाः) सोमादयः (मदाय) हर्षाय (चिकित्रे) चिकित्सां कुर्वन्ति (ते) तव (स्तोत्राय) स्तवनाय (नः) अस्माकं (गिरः) वाचः (उप—शृणु) स्वीकुरु (पपानः) रक्षां कुर्वाणस्त्वं (रास्व) देहि [अभीष्टमिति शेषः ।।]

कित रोगाऽपनयने इत्यस्य बाहुलकेन चिकित्रे इति रूपम् ।।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पा रक्षणे इत्यस्य पपान इति कानचि रूपम् ॥ राति इति दानकर्मा । निघं० ३ । २० ॥ भावः स्पष्टः ॥ २ ॥ (२९४)

भाषार्थः—(गिर्वणः) हे वाणी से संभजनीय ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (मधोः) मधुरभाषी (उक्थिनः) स्तुतिकर्त्ता के (इमे) ये (सोमाः) सोमादिक (मदाय) [पूर्व मन्त्रोक्त इन्द्र और उस के उपलक्षण से ग्रहण किये अन्य देवतों के] हर्षार्थ (चिकित्रे) रोग दूर करते हैं । (ते) आप के (स्तोत्राय) स्तोत्र के लिये (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (उप—शृणु) स्वीकृत कीजिये (पपानः) रक्षा करते हुवे आप (रास्व) [अभीष्ट पदार्थ] दीजिये ॥

निघण्टु ३ । २० इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥(२९४)

अथ तृतीयायाः—मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी । एके विश्वामित्र इत्याहुः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ऽ३ १ २३१२ ३१२३११ १२३२
आ त्वा३द्य सवर्दुघाꣳ हुवे गायत्रवेपसम् । इन्द्रं धेनुꣳ
३२३२ ३ १२३१२ ३१२
सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् ॥ ३ ॥ (२९५)

पदपाठः— आ अ० । त्वा २ । अद्य अ० । सवर्दुघाम् २ । हुवे क्रि० । गायत्रवेपसम् , इन्द्रम् , धेनुम् , सुदुघाम् , अन्याम् , इषम् , उरुधाराम् , अरंकृतम् २ ।।

अन्वितपदार्थः— अत्र श्लेषालङ्कारेण अन्तरिक्षस्थानमिन्द्रं देवं परमात्मानं च धेनुवत् वर्णयन् आह—अहं (त्वा) त्वाम् (अरंकृतम्) पर्य्याप्तकारिणम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तम्, (सवर्दुघाम्) पयसो दोग्ध्रीम् (गायत्रवेपसम्) प्रशस्तगतिम् प्रशस्तचेष्टां वा (सुदुघाम्) सुखेन दोग्धुं शक्याम् (अन्याम्) विलक्षणाम् (उरुधाराम्) बहुधाराम् (इषम्) एषणीयाम् (धेनुम्) गामिव (अद्य) इदानीम् (आ—हुवे) वर्णयामि ॥

यथा लोके गावः सर्वोपकारिकाः सन्ति तथैवेन्द्रः । परमेश्वर-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इच सर्वातिरेकेण सर्वोपकारकः ॥

शवः इति उदकनाम । निघं० २ । ९ तस्यैव दन्त्यविपर्ययेण सवः इति रूपम् ॥ ऋग्वेदे ८ । १ । १० तु " आ त्व १ द्य " इत्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (२९५)

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार से इन्द्र अन्तरिक्षस्थान देव और परमेश्वर का वर्णन धेनु के तुल्य करते हैं—मैं (अद्य) अब (त्वा) तुझ (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले (अरंकृतम्) कामना पूर्ण कर्त्ता को (सवदुघाम्) पय आदि की दुहने वाली (गायत्रवेपसम्) प्रशंसित गति वाली वा उत्तम चेष्टा वाली (सुदुघाम्) सुलभ रूप से दुहने योग्य (अन्याम्) और ही [विलक्षणा] (इषम्) चाहने योग्य (उरुधाराम्) बहुत धार वाली (धेनुम्) गौ के समान (आ—हुवे) वर्णित करता हूं ॥

जिस प्रकार गौ सर्वोपकारिका हैं, इसी प्रकार इन्द्र भी वर्षा आदि द्वारा सर्वोपकारक है । और परमेश्वर तो अत्यन्त उपकारक है ॥

निघण्टु २ । ९ इत्यादि का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १ । १० में " आ त्व १ द्य " इतना अन्तर है ॥

यह ग्रन्थपरम्परा की बात भी द्रष्टव्य है कि कलकत्ते के सायणभाष्ययुक्त पुस्तक में "अद्य" के स्थान में "अध" और "सुदुघाम्" के स्थान में " सुदुच्चाम् " छप गया है । तो ठीक ज्यों का त्यों ही अशुद्ध पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव जी ने भी छाप धरा है । भाष्य में अद्य और सुदुघाम् की ही व्याख्या है । क्योंकि सायणभाष्य में भी वैसा ही है ॥ ३ ॥ (२९५)

अथ चतुर्थ्याः—नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १र २र

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः । यच्छिक्षासि

३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १र २र

स्तुवते मावते वसु नकिष्टदामिनाति ते ॥४॥ (२९६)

पदपाठः—न अ० । त्वा २ । बृहन्तः, अद्रयः १ । वरन्ते क्रि० । इन्द्र सं० । वीडवः १ । यत् २ । शिक्षसि क्रि० । स्तुवते, मावते ४ । वसु २ । नकिः अ० । तत् २ । आमिनाति क्रि० । ते ६ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्यवन्! (बृहन्तः) महान्तः (वीडवः) दृढाः (अद्रयः) पर्वता अपि (त्वा) त्वाम् (न) (वरन्ते) निवारयन्ति। अनिवारणमेवोत्तरार्धेन विवृणोति—(स्तुवते) स्तुतिं कुर्वते (मावते) मादृशाय (यत्) (वसु) धनं धान्यं वा (शिक्षसि) ददासि (ते) त्वदीयं (तत्) वसु (नकिः) न कश्चिदपि (आ—मिनाति) निवारयति रुणद्धि वा ॥

वीडु इति बलनाम। निघं० २।९ ॥ शिक्षतीति दानकर्मा निघं० ३।२० ॥ युष्मदस्मदोः सादृश्ये मतुव्वाच्यः (वा०५।१।६१) इति मावते ॥ मीनातेर्निगमे ७।३।८१ इति ह्रस्वे आमिनाति ऋग्वेदे ८।८८।३ तु "यद्दित्ससि" इत्यन्तरम् ॥४॥ (२९६)

भाषार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त! (बृहन्तः) बड़े (वीडवः) बलिष्ठ दृढ (अद्रयः) पर्वत भी (त्वा) आप को (न) नहीं (वरन्ते) रोक सकते। (स्तुवते) स्तुति करने वाले (मावते) मुझ सदृश के लिये (यत्) जो (वसु) धन वा धान्य (शिक्षसि) देते हो (ते) आप के (तत्) उस को (नकिः) कोई भी नहीं (आ—मिनाति) रोक सक्ता ॥

निघण्टु २।९॥ अष्टाध्यायी ७।३।८१ वार्त्तिक ५।१।६१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ८।८८।३ में "यद्दित्ससि" पाठ है ॥ ४॥ (२९६)

अथ पञ्चम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३२उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे। अयं यः पुरो
३ १र २र ३ २ ३ १ २
विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ॥५॥ (२९७)

पदपाठः—कः १। ईम् अ०। वेद क्रि०। सुते ७। सचा अ०। पिबन्तम् २। कत् अ०। वयः २। दधे क्रि०। अयम्, यः १। पुरः अ०। वि—भिनत्ति क्रि०। ओजसा ३। मन्दानः, शिप्री, १। अन्धसः ६=३॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः– (सुते) सोमेऽभिषुते सति (सचा) वाय्वादिभिः सह (पिबन्तम्) (ईम्) इममन्तरिक्षस्थानं देवमिन्द्रम् (कः) (वेद) चक्षुर्विषयं करोति, न कोऽपि । (कत्) कियत् (वयः) आयुः (दधे) धारयति इत्यपि को वेद, न कोपि । कोऽसाविन्द्र इत्यत्राह–(यः अयम्) योऽसौ (अन्धसः) अन्धसा सोमलक्षणेन (मन्दानः) हृष्टः सन् (शिप्री) वेगवान् (ओजसा) बलेन (पुरः) मेघदुर्गाणि (विभिनत्ति) ॥

इन्द्रोहि वेगवान् सोमाद्योषधिहोमेन आप्यायितः पुरो मेघदुर्गाणि विभिनत्ति, परं चक्षुषा न केनाऽपि दृश्यते यत्किंयदायुष्क इन्द्रः कदा कुत्र वा सोमाद्योषधिरसं पिबतीति, यथा सूर्यकिरणाः प्रत्यक्षा अपि अमूर्त्तरूपेण रसानाकर्षन्ति तद्देवेन्द्रोऽपि॥

मदी हर्षे इत्यस्य रूपं मन्दान इति ॥ "सृप्रः सर्पणात्" इत्यादि निरुक्तं (६।१७) तथा–" सुशिप्रमेतेन व्याख्यातम् " (६।१७) अनेन सृप्रशिप्रयोरेकार्थत्वाच्छिप्री वेगवान् । ऋग्वेदे ८।३३।७ ऽपि ॥५॥ (२९७)

भावार्थः–(सुते) सोमरस सम्पन्न होने पर (सचा) वायु आदि देवों के साथ (पिबन्तम्) रस लेते हुवे (ईम्) इस इन्द्र को (कः) कौन (वेद) देखसक्ता है, कोई नहीं । (कत्) कितनी (वयः) आयु (दधे) धारण करता है । यह भी कौन जानता है, कोई नहीं । (यः) जो कि (अयम्) यह (अन्धसः) सोमादि के रस से (मन्दानः) तृप्त हुवा (शिप्री) वेग वाला (ओजसा) बल से (पुरः) मेघों के दुर्गों [किलों] को (विभिनत्ति) तोड़ता है ।

इन्द्र जो एक प्रकार का विद्युत्तत्व है वह वायु आदि सहित अदृश्य रूप से सोमादि ओषधियों के रस को पीता और उस से पुष्ट हुवा बल पूर्वक मेघ वर्षाता है और बड़ा वेगवान् है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निरुक्त ६ । १७ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ३३ । ७ में भी ॥ ५ ॥ (२९७)

अथ षष्ठ्याः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि । अस्माक-
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
माँ अंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधिबर्हय ॥ ६ ॥ (२९८)

पदपाठः—यत् अ० । इन्द्र सं० । शासः क्रि० । अव्रतम् २ । च्यावय क्रि० । सदसः ६ । परि अ० । अस्माकम् ६ । आ अ० । अंशुम् २ । मघवन् सं० । पुरुस्पृहम् २ । वसव्ये ७ । अधि-बर्हय क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—पूर्वमन्त्रप्रतिपादितेन्द्रयागनिर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं परमात्मानं प्रार्थयते—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) यस्मात् त्वम् (अव्रतम्) यज्ञविरोधिनम् (शासः) शासितं करोषि अतस्तान् (अस्माकम्) याज्ञिकानाम् (सदसः) यज्ञगृहस्य (परि) परितोवर्त्तमानानऽव्रतान् (च्यावय) च्युतान्कुरु । तथा (मघवन्) यज्ञवन् ! (वसव्ये) वासयोग्ये स्थाने (पुरुस्पृहम्) बहुधास्पृहणीयम् (अंशुम्) सोमम् (आ-अधि-बर्हय) समन्ततोधिकं वर्धय ॥

अर्थात्—अकर्माणं यज्ञविनाशकमसुरं दूरे गमय । अथ च सोमादीनामस्मत्समीपे वृद्धिं कुरु ॥ ६ ॥ (२९८)

भाषार्थः—पूर्वमन्त्र में कहे यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना है कि (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (अव्रतम्) कर्म अर्थात् यज्ञ के विरोधी को (शासः) शासित करते हैं । अतः (अस्माकम्) हम याज्ञिकों के (सदसः) यज्ञगृह के (परि) चारों ओर से (च्यावय) विरोधियों को दूर कीजिये । तथा (मघवन्) हे यज्ञ वाले ! (पुरुस्पृहम्) बहुधा चाहे हुवे (अंशुम्) सोमरस को (वसव्ये) बसने योग्य यज्ञस्थान में (आ-अधि बर्हय) सब ओर से अधिक बढ़ाइये ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अर्थात् यज्ञ में विघ्नकारकों को दूर कीजिये और सोमादि यज्ञसामग्री की वृद्धि कीजिये ।। ६ ।। (२९८)

अथ सप्तम्याः—वामदेव ऋषिः । बहवो लिङ्गोक्ताः देवाः । बृहती छन्दः ।।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१२ २१३
त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः । पुत्रैर्भ्रातृभि-
१२३ १ २ ३२३ १२ ३ १२
रदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥ ७ ॥ (२९९)

पदपाठः—त्वष्टा १ । नः ६ । दैव्यम्, वचः, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः १ । पुत्रैः, भ्रातृभिः ३ । अदितिः १ । नु अ० । पातु क्रि० । नः २ । दुष्टरम्, त्रामणम्, वचः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(त्वष्टा) अग्निः (दैव्यम्, वचः) वेदमन्त्राः (पर्जन्यः) मेघः (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्माण्डस्य पाता सूर्यः (अदितिः) द्यौश्च [एते सर्वे दिव्याः पदार्थाः प्रकरणात् हे इन्द्र! परमेश्वर ! भवत्कृपया] (नः) अस्माकम् (पुत्रैः, भ्रातृभिः) सह (नु) क्षिप्रम् (नः) अस्मान् (पातु) एकशः पान्तु (नः) अस्माकम् (त्रामणम्) रक्षकं (वचः) वचनं प्रार्थनं (दुष्टरम्) अमोघरूपं सफलम् अस्त्विति शेषः ॥

त्वष्टा तूर्णमश्नुत इति नैरुक्तास्त्विषेर्वा स्याद्विपरीतकर्मणस्त्वक्षतेर्वा स्यात्करोतिकर्मणः ००००० अग्निरिति शाकपूणिः। निरु० ८ । १३—१४ ॥ ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा तस्यैषा भवति—

अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥
ऋ० २।२४।४ अशनवन्तमास्यन्दनवन्तम् । इत्यादि च

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निरु० १०।१२–१३ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम्० इत्यादि (ऋ० १।८९।१०) ॥ ७ ॥ (२९९)

भाषार्थः–(त्वष्टा) अग्नि, (दैव्यं वचः) वेदमन्त्र, (पर्जन्यः) मेघ, (ब्रह्मणस्पतिः) सूर्य, (अदितिः) द्युलोक [ये सब दिव्य पदार्थ हे इन्द्र ! परमात्मन् आप की कृपा से] (नः) हमारे (पुत्रैः) पुत्रों और (भ्रातृभिः) भ्राताओं सहित (नु) शीघ्र (नः) हमारी (पातु) प्रत्येक रक्षा करे (नः) हमारा (त्रायताम्) रक्षक (वचः) वचन (दुष्टरम्) दुस्तर सफल होवे ।

अर्थात् परमेश्वर ऐसी कृपा करे कि अग्नि, वेद, सूर्य आदि पदार्थों द्वारा हमारी रक्षा हो, हमारे पुत्रादि की रक्षा हो, हमारे वचन सफल हों ॥

निरुक्त ८।१३–१४॥१०।१२–१३ ऋग्वेद २।२४।४ और १।८९।१० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ७ ॥ (२९९)

अथाऽष्टम्याः–बालखिल्या ऋषयः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघ
२ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २
वन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ८ ॥ (३००)

पदपाठः–कदा, चन अ० । स्तरीः १ । असि क्रि० । न अ० । इन्द्र सं० । सश्चसि क्रि० । दाशुषे ४ । उप, उप, इत्, नु अ० । मघवन् सं० । भूयः, इत्, नु अ० । ते ६ । दानम् १ । देवस्य ६ । पृच्यते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः–(इन्द्र) परमेश्वर ! (मघवन्) परमधनवन् ! त्वं (कदा चन) कदाऽपि (स्तरीः) हिंसकः (न असि) न भवसि किन्तु (दाशुषे) विद्यादिदानशीलाय पुरुषाय (उप उप इत् नु) समीपे समीपे एव त्वरया (सश्चसि) प्रापयसि [कर्मफलम्] (देवस्य) प्रकाशकस्य (ते) तव (दानम्) कर्माऽनुसारि (भूयः इत्) पुनर्जन्मनि अपि (नु) निश्चयेन (पृच्यते) संबध्यते ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

परमेश्वरः कदाचन कस्यापि किमपि कर्म निष्फलं न यापयति, न चाऽपराधं विना कञ्चिद्दण्डयति । किन्तु इहाऽमुत्र च सर्वोऽपि तद्व्यवस्थया कर्मानुसारिणा फलेन संबध्यते ॥

स्तृ हिंसायाम् क्र्यादिः परस्मैभाषस्ततः—अवितृस्तृतन्त्रिभ्यईः (उणा० ३ । ५८) स्तरीः ॥ सश्चति इति गतिकर्मा निघं० २ । १४ तेन चान्तर्ण्यर्थकः प्राप्त्यर्थोऽत्र ग्राह्यः ॥ ऋग्वेदीयबालखिल्यपरिशिष्टेऽपि ३ । ७ यजुर्वेदे च ३—३४ तथा ८—२ च ॥ ८ ॥ (३००)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (मघवन्) हे परमधनवन् ! आप (कदाचन) कभी (स्तरीः) हिंसक (न असि) नहीं हैं । किन्तु (दाशुषे) विद्यादि दान करने वाले के लिये (उप उप इत् नु) समीप समीप ही शीघ्र (सश्चसि) [कर्म फल] पहुंचाते हैं । (देवस्य) प्रकाशयुक्त (ते) आप का (दानम्) कर्मानुसारी दान (भूयः इत्) पुनर्जन्म में भी (नु) निश्चय (पृच्यते) संबद्ध होता है ॥

अर्थात् परमेश्वर कभी किसी के किसी कर्म को निष्फल नहीं करता, न किसी निरपराध को दण्ड देता है । किन्तु इस जन्म और पुनर्जन्म में प्रत्येक प्राणिवर्ग उस की व्यवस्था से कर्मानुसारी फल का सम्बन्धी (भागी) बनता है॥

उणादि ३ । ५८ निघण्टु २ । १४ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद के बालखिल्य परिशिष्ट ३ । ७ यजुर्वेद ३—३४ तथा ८—२ में भी ॥८॥ (३००)

अथ नवम्याः— मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २ ३१ २ ३
युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः । अर्वा-
१ २ ३ १) ३ ३ २ ३ २ ३ १ २
चीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरागहि ॥ ९ ॥ (३०१)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः— युङ्क्ष्व क्रि० । हि अ० वृत्रहन्तम सं० । हरी २ । इन्द्र सं० । परावतः ५ । अर्वाचीनः १ । मघवन् सं० । सोमपीतये ४ । उग्र सं० । ऋष्वेभिः ३ । आ—गहि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः— (वृत्रहन्तम) पापनाशकतम ! (उग्र) उद्दीर्णबल ! (मघवन्) परमधनवन् ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (हि) अवश्यं कृपया (हरी) हरणशीलौ आत्मा मनश्चेति द्वौ (परावतः) अज्ञानात्त्वत्तो दूरदेशादिव वर्त्तमानौ (युङ्क्ष्व) आत्मनि योजय (अर्वाचीनः) अज्ञातपूर्वः त्वम् (सोमपीतये) सौम्यभावस्य ग्रहणाय (ऋष्वेभिः) महद्भिर्गुणैः (आ—गहि) आगच्छ प्राप्नुहि ॥

ये परमात्मानं न जानन्ति ते आत्मानोमनांसि च दूरवद्वर्त्तन्ते । त एव च ज्ञात्वा तत्समीपगाइव भवन्ति । यैश्चपूर्वं परमात्माऽज्ञानात् न प्राप्तस्तदपेक्षया प्राप्तिकाले परमात्मनोऽर्वाचीनत्वं सुवचम् ॥ ऋग्वेदे ८।३।१७ ऽपि ॥९॥ (३०१)

भाषार्थः— (मघवन्) परमधनवन् ! (उग्र) बलिष्ठ ! (वृत्रहन्तम) अत्यन्तपापनाशक ! (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (हि) कृपया अवश्य (हरी) हरणशील जीवात्मा और मन को (परावतः) अज्ञानवश जो आप से दूर हैं उन्हें (युङ्क्ष्व) अपने में युक्त कीजिये (अर्वाचीनः) पहिले न जाने हुवे आप (सोमपीतये) सौम्यभाव के ग्रहण के लिये (ऋष्वेभिः) महान् गुणों से (आ—गहि) प्राप्त हूजिये ॥

जो लोग परमात्मा को नहीं जानते वे उस से दूर के समान हैं । और उन्हें जब परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है तो उन के लिये वह (अर्वाचीन) नवीन सा होता है ॥ ऋ० ८ । ३ । १७ में भी ॥९॥ (३०१)

अथ दशम्याः—नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १२ २१ ३ १ २ १ २ ३

त्वामिदा ह्योनरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः । स इन्द्र

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३२ ३ २ ३ १ २३२ २

स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमागहि ॥१०॥ (३०२)

* इति सप्तमी दशतिः ७ *

पदपाठः—त्वाम् २। इदा, ह्यः अ०। नरः १। अपीप्यन् क्रि०। वज्रिन् सं०। भूर्णयः, सः १। इन्द्र सं०। स्तोमवाहसः १। इह अ०। श्रुधि क्रि०। उप अ०। स्वसरम् २=०। आ—गहि क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(वज्रिन्) हे दुष्टदमन! (इन्द्र) परमेश्वर! (स्तोमवाहसः) स्तोत्रवाहकाः (भूर्णयः) भक्तिहविर्भरणशीलाः (नरः) नेतारोजनाः (ह्यः) अतीते (इदा) वर्तमाने काले च (त्वाम्) (अपीप्यन्) अप्रीणयन् प्रीणयन्ति च (सः) सः त्वम् (इह) अस्मिन् (स्वसरम्) दिने (उप—श्रुधि) स्तोत्रमुपशृणु (आ—गहि) प्राप्नुहि चास्मानिति शेषः॥

स्वसराणि इति अहर्नाम। निघं० १। ९॥ ऋग्वेदे तु ८। ९९। १ "स्तोमवाहसाम्" इत्यन्तरम्॥ १०॥ (३०२)

भाषार्थः—(वज्रिन्) हे दुष्टदमन! (इन्द्र) परमेश्वर! (स्तोमवाहसः) स्तोत्र वहने वाले (भूर्णयः) भक्तिरूप हवि का धारण किये हुवे (नरः) मनुष्य (ह्यः) भूतकाल में और (इदा) वर्त्तमान काल में (त्वा) आप को (अपीप्यन्) प्रसन्न करते थे और करते हैं (सः) वह आप (इह स्वसरम्) इस दिन (उप—श्रुधि) सुनिये और (आ—गहि) हमें प्राप्त हूजिये॥

निघण्टु १। ९ का प्रमाण तथा ऋ० ८। ९९। १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ १०॥ (३०२)

* यह तृतीयाध्याय में सातवीं ७ दशति समाप्त हुई *

—*—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रतीति दशतावाद्योषस्या चाऽथ ततः परम् ।
द्वितीयातश्चतुर्थ्यन्तमश्विनौ देवते मते ॥१॥
अवशिष्टाः षडैन्द्र्योबृ-हतीछन्दस्सुकीर्त्तिताः ॥

अथाऽष्टमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ऽ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १
प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः । अपो महो
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥ (३०३)

पदपाठः—प्रति, उ अ० । अदर्शि क्रि० । आयती, ऊ३च्छन्ती, दुहिता १ । दिवः ६ । अप, उ अ० । महो १। वृणुते क्रि० । चक्षुषा ३ । तमः, ज्योतिः २ । कृणोति क्रि० । सूनरी १ ॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (आयती) आगच्छन्ती (ऊ३च्छन्ती) विवासयन्ती तमांसि (दिवः) द्युलोकस्य सूर्यस्य वा (दुहिता) पुत्रीव वर्त्तमाना बुद्धिरुषा वा (चक्षुषा) ज्ञानेन दर्शनेन वा (तमः) अविद्यामन्धकारं वा (अप—उ—वृणुते) निवारयति । तथा (सूनरी) सुष्ठु जनानां नेत्री (महो) महती सा (ज्योतिः) प्रकाशं (कृणोति) करोति । एवंभूता सा (उ) निश्चयेन (प्रति-अदर्शि) प्रत्यहं प्राप्यते भवत्कृपयेति शेषः ॥

सायणज्वालाप्रसादाभ्यां मूलपुस्तकेषु ऊ३च्छन्तीति स्पष्टं दृष्ट्वाऽपि ऋग्वेदीयपाठभ्रान्त्या " व्युच्छन्ती " इत्येव व्याख्यातम् ॥ उच्छी विवासे इत्यस्य धातोरूपम् ॥ प्रातः प्रातः प्रत्यहं सुतोत्थितानां प्राणिनां बुद्धिर्जागर्त्ति, सा सर्वमज्ञानं निवारयति प्रकाशं च करोति । तथा सूर्यस्य पुत्रीव वर्त्तमाना उषःकालापरा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ख्या वेलाऽपि तथा करोति । यद्यपि द्यौर्नहि सूर्यपर्य्यायस्तथापि द्युवाचकानां स्वः इत्यादिपदानां तत्पर्य्यायत्त्वादस्यापि तत्त्वम् तथा च–स्व पृश्निः नाकः गौः विष्टप् नभः इति षट् साधारणानि निघं० १।४ साधारणान्युत्तराणि षड् दिवश्चादित्यस्य च । निरु० २।१३ वस्तुत आदित्यस्य द्युस्थानदेवतात्वाद्द्युवाचकशब्दैर्द्युशब्देन चोपचारात्सुग्रहः । तथाच–सूर्यो द्युस्थानः । निरु० ७।५ अतएव "प्रजापत्यपरपर्य्यायस्यादित्यस्य प्रतिदिनमुषसः पश्चाद्भावमानत्वात्कन्याबलात्काराऽपवादः" इति सामश्रमी च ।। सूनरीत्युषोनाम । निघं० १।८ ऋग्वेदे तु ७।८१।१ " उच्छन्ती दुहिता दिवः । अपोव्ययति चक्षसे" इत्यन्तरम् ॥१॥ (३०३)

भाषार्थः–प्रकरण से हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (आयती) आती हुई (ऊ३च्छन्ती) अन्धकारों को हटाने वाली (दिवः) द्युलोक वा सूर्य की (दुहिता) पुत्री के तुल्य बुद्धि वा उषा (चक्षुषा) ज्ञान वा दर्शन से (तमः) अज्ञान वा अन्धकार को (अप–उ–वृणुते) निवृत्त करती है । (सूनरी) मनुष्यों को सुमार्ग में लेजाने वाली (मही) बड़ी [बुद्धि वा उषा] (ज्योतिः) प्रकाश को (कृणोति) करती है (उ) निश्चय (प्रति-अदर्शि) [वह प्रतिदिन आप की कृपा से] प्राप्त होती है ।।

सायणाचार्य और उन की देखा देखी ज्वालाप्रसाद जी ने मूलपाठ "ऊ३च्छन्ती" होने पर भी ऋग्वेदस्थ पाठ की भ्रान्ति से "द्युच्छन्ती" की व्याख्या की है। उच्छी विवासे धातु से यह बना है ।। प्रतिदिन जब प्रातः काल लोग सो कर उठते हैं तो बुद्धि तथा सूर्य्य से उत्पन्न हुई उषा (अरुणोदय की वेला= प्रातःकाल) दिखाई देती है, वह अज्ञान=अन्धकार को मिटाती और प्रकाश को फैलाती है ।। यद्यपि दिव् शब्द सूर्य का पर्य्याय नहीं है, तथापि दिव् के वाचक स्वः इत्यादि छः पद (निघं० १।४) निरुक्त २ । १३ के अनुसार द्युलोक और सूर्य दोनों के साधारण नाम हैं । इसलिये वास्तव में सूर्य को द्युस्थान-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

देवता होने से दिव् के पर्य्यायवाचक शब्दों से और दिव् शब्द से भी सूर्य का ग्रहण अनुचित नहीं है। तथा च निरुक्त ७। ५ में सूर्य्य को द्युस्थानदेवता कहा है। इस पर सत्यव्रत सामश्रमी जी भी टिप्पणी में स्वीकार करते हैं कि "सूर्य का दूसरा नाम प्रजापति भी है। बस सूर्य जो प्रतिदिन उषःकाल के पीछे २ दौड़ता रहता है इसी से प्रजापति को कन्या के साथ बलात्कार का दोष लगाया गया" ॥ निघण्टु १।८ में सूनरी उषा का नाम है ॥ ऋ० ७।८१।१ का पाठभेदादि संस्कृतभाष्य में देखिये ।।१।। (३०३)

अथ द्वितीयायाः—वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । बृहती छन्दः ।।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना । अयं

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशꣳ हि गच्छथः ॥२॥ (३०४)

पदपाठः—इमाः १ । उ अ० । वाम् २ । दिविष्टयः १ । उस्रा सं० । हवन्ते क्रि० । अश्विना सं० । अयम् १ । वाम् २ । अह्वे क्रि० । अवसे ४ । शचीवसू सं० । विशम्, विशम् २ । हि अ० । गच्छथः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—पूर्वमन्त्रे प्रकाशप्रदामुषसं स्तुत्वेदानीं प्रकाशप्रदौ सूर्य्याचन्द्रमसौ वर्णयति—(अश्विनौ) अश्विनौ ! सूर्य्याचन्द्रमसौ ! (उस्रा) उस्रौ ! वासहेतू ! (दिविष्टयः) दिवं प्रकाशमिच्छन्त्यः (इमाः) प्रजाः (वाम्) युवां कर्मभूतौ (उ) एव (हवन्ते) लब्धुमिच्छन्ति प्रयतन्ते वा । अतः (अयम्) अहमपि (अवसे) रक्षणाय (वाम्) युवाम् (अह्वे) आह्वयामि प्राप्तुं प्रयते (शचीवसू) प्रज्ञांधनं चेति द्वयं ददमानौ ! (हि) यस्मात् (विशं विशम्) प्रजां प्रजां (गच्छथः) प्राप्नुथः ॥

पृथिव्यादिषु अष्टसु वसुषु परिगणितत्वात्सूर्य्याचन्द्रमसोरपि वासहेतुत्वादुस्रौ । प्रजां व्याप्नुवातेअतोऽश्विनौ। प्रकाशदानेन प्रज्ञां धनं च दत्तःअतोहि शचीवसू। ईदृशौ सूर्यचन्द्रौ प्र-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

काशार्थिन्यः प्रजा नित्यं कामयन्ते । अतः सर्वैर्मनुष्यैर्विशं विशं गच्छन्तावेतौ प्रत्यहम् कामयितव्यौ बोध्यौ ॥

स्फायितञ्चिवञ्चिशकीत्यादिना० (उणा० २।१३) वसेरकि उस्रौ ॥ अश्विनौ यद्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषान्यः । निरु० १२ । १ तथाच तत्रैव—सूर्याचन्द्रमसावित्येके १२ । १ ॥ शचीति प्रज्ञानाम । निघं० ३ । ९ ऋग्वेदे ७ । ७४ । १ ऽपि ॥२॥ (३०४)

भाषार्थः—पूर्वमन्त्र में उषा का वर्णन करके अब सूर्य्य चन्द्रमा का वर्णन किया जाता है । (उस्रौ) जगत् को बसाने वालो ! (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमाओ ! (दिविष्टयः) प्रकाश चाहती हुई (इमाः) ये प्रजायें (वाम् उ) तुम को ही (हवन्ते) प्राप्त करना चाहती हैं इस कारण (अयम्) यह मैं भी (वाम्) तुम को (अवसे) रक्षार्थ (अह्वे) प्राप्त करना चाहता हूं । (शचीवसू) बुद्धि और धन देने वालो ! (हि) क्योंकि तुम (विशंविशम्) प्रत्येक प्रजा को (गच्छथः) प्राप्त होते हो ॥

पृथिवी आदि ८ वसुओं के अन्तर्गत होने से सूर्य्य और चन्द्रमा भी वसु—बसाने वाले हैं, प्रजा को ज्योति और रस से व्यापते हैं इस लिये निरुक्तानुसार अश्विनौ कहाते हैं । प्रकाश द्वारा प्रजा की बुद्धि और धन की वृद्धि करने से निघण्टु के अनुसार शचीवसू कहाते हैं । ऐसे सूर्य्य और चन्द्र को प्रकाशार्थिनी प्रजायें नित्य चाहती हैं । इस कारण प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त होते हुवे सूर्य्य चन्द्रमाओं से उपकार लेना चाहिये ॥ उणादि २ । १३ निरुक्त १२ । १ निघण्टु ३ । ९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । ७४ । १ में भी ॥ २ ॥ (३०४)

अथ तृतीयायाः—अश्विनौ वैवस्वतावृषी । अश्विनौ देवते । बृहती छन्दः ॥

२३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १र

कुष्ठः कोवामश्विना तपानो देवा मर्त्यः । घनता वामश्नया

२र ३ २३ २३ २ ३ १ २

क्षयमाणोँ शुनेत्थमु आहन्यथा ॥ ३ ॥ (३०५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—कुष्ठः, कः १। वाम् २। अश्विना सं०। तपानः १। देवा सं०। मर्त्यः १। घ्नता ३। वाम् ४। अश्नया ७। क्षयमाणः १। अंशुना ३। इत्थम्, उ अ०। आहन् १। यथा अ०॥

अन्वितपदार्थः—(अश्विना) अश्विनौ सूर्यचन्द्रौ! (देवा) देवौ! प्रकाशकौ! (कुष्ठः) पृथिवीस्थः (कः मर्त्यः) (वाम्) युवाम् (तपानः) प्रकाशितौ कुर्वाणोऽस्ति, न कोऽपि। युवामेव सर्वस्य प्रकाशकाविति भावः। (वाम्) युवाभ्याम् (अश्नया) मेघेषु (घ्नता) गच्छता (अंशुना) सोमेन (क्षयमाणः) क्षीयमाणो यजमानः (यथा) (आहन्) आहान् अभिमतान्नादिमान् समृद्धः पुरुषो भवति (इत्थमु) इत्थमेव सोऽपि भवति। अर्थात् युष्मदर्थे या क्षीणता सा न वस्तुतः क्षयकरी॥

पृथिव्यां सूर्याचन्द्रमसावेव सर्वस्य प्रकाशकौ, नहि कश्चित्तौ प्रकाशयति परन्तु तथापि तदर्थे मनुष्येण सोमाद्योषधिभिर्यज्ञः कर्तव्यः, येन मेघद्वारा पृथिवीतः सूर्यचन्द्रावधिकानां लोकानामाप्यायनं ततो मनुष्याणां धनधान्यादिवृद्धिश्च संपद्येत॥

कुः पृथिवी तस्यां तिष्ठतीति कुष्ठः॥ घ्नतेति हन्तेर्गत्यर्थस्य रूपम्॥ अश्न इति मेघनाम। निघं० १। १० ततोविभक्तेर्यादेशे (पा० ७। १। ३९) अश्नया॥ आ=सर्वतोऽहान् भोज्यवान् आहान्, छान्दसे ह्रस्वत्वे आहन्॥ ३॥ (३०५)

भाषार्थः—(अश्विना) अश्विनौ! सूर्य और चन्द्रमाओ! (देवा) देवो! प्रकाशको! (कुष्ठः) पृथिवी पर स्थित (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (वाम्) तुम को (तपानः) प्रकाशित करने वाला है? कोई नहीं। किन्तु तुम ही सब के प्रकाशक हो। (वाम्) तुम दोनों के लिये (अश्नया) मेघों में

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(घृता) जाते हुवे (अंशुना) सोमादि ओषधिरस से (क्षयमाणः) क्षीण हुवा यजमान (यथा) जैसे कि (आद्धन्) कोई भोगी समृद्ध पुरुष होता है (इत्थम् उ) ऐसे ही होता है ।।

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा को यद्यपि कौन है पृथिवी पर जो प्रकाश पहुंचा सके, किन्तु सूर्य्य चन्द्र ही सब को प्रकाशित करते हैं, तथापि मनुष्य को सूर्य्य चन्द्र के लिये सेवमण्डल में होकर जाते हुवे सोमादि ओषधिरसों के रस द्वारा आप्यायित करना चाहिये। जिस से सब के धन धान्यादि की वृद्धि हो ।।

निघण्टु १ । १० अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ।। ३ ।। (३०५)

अथ चतुर्थ्यार्चः—प्रस्कण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ।।

३ २ ३ ३ २ ३ २उ ३ १ २ १ २

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमोदिविष्टिषु । तमश्विना

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तꣳरत्नानि दाशुषे ॥४॥ (३०६)

पदपाठः—अयम् १। वाम् ४। मधुमत्तमः, सुतः, सोमः १। दिविष्टिषु ७। तम् २। अश्विना सं० । पिबतम् क्रि० । तिरोअह्न्यम् २ । धत्तम् क्रि० । रत्नानि २। दाशुषे ४ ।।

अन्वितपदार्थः—(अश्विना) सूर्याचन्द्रमसौ ! (वाम्) युवाभ्याम् (दिविष्टिषु) दिवएषणेषु यज्ञेषु (अयम्) समक्षे वर्त्तमानः (मधुमत्तमः) अतिमधुरः (सोमः) ओषधिरसः (सुतः) निष्पादितः (तम्) रसम् (तिरोअह्न्यम्) विगतदिने भवम् (पिबतम्) गृह्णीतम् (दाशुषे) हविर्दत्तवते यजमानाय (रत्नानि) रमणीयानि वस्तूनि (धत्तम्) धारयतम् ।।

ये मनुष्याः सूर्याचन्द्रमसोर्यजनं कुर्वन्ति तदर्थं मधुरादिगुणयुक्तान् ओषधिरसान्संपादयन्ति ते धनधान्यादिरत्नैः सं-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

युक्ता जायन्ते। अत्र सूर्यचन्द्रदृष्टान्तेन सभासेनेशौ चाऽपि उपदिष्टौ बोध्यौ। अध्यायारम्भे सायणाचार्येणाऽस्येन्द्रो देवतेति प्रतिज्ञातं परं तद्विरुद्धे अत्राऽश्विनौ देवते व्याख्याते ये च वस्तुतोऽपि तथ्ये ॥ ऋग्वेदे १ । ४७ । १ तु " सुतःसोमऋतावृधा ,, इत्यन्तरम् ॥४॥ (३०६)

भाषार्थः—(अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा ! (वाम्) तुम्हारे लिये (दिविष्टिषु) यज्ञों में (अयम्) यह (मधुमत्तमः) अतिमधुर (सोमः) ओषधि विशेष का रस (सुतः) खींचा है (तम्) उस (तिरोअह्नयम्) एक दिन बीते [रस] को (पिबतम्) ग्रहण करो और (दाशुषे) हवि देने वाले यजमान के लिये (रत्नानि) रमणीय पदार्थ (धत्तम्) धारित करो ॥

अर्थात् जो मनुष्य ओषधियों का उत्तम मधुर एक दिन पुराना रस खींच कर सूर्य चन्द्रमा वा उन के दृष्टान्त से बताये हुवे सभापति और सेनापति का यजन करते हैं उन को धनधान्यादि उत्तम रत्न प्राप्त होते हैं ॥ अध्याय ३ के आरम्भ में सायणाचार्य ने इस मन्त्र का इन्द्र देवता अशुद्ध लिखा था, परन्तु यहां व्याख्या करते हुवे भाष्य में अश्विनौ देवते व्याख्यात किये हैं जो कि ठीक भी हैं ॥ ऋ० १। ४७। १ में "सुतः सोमऋतावृधा" इतना अन्तर है ॥ ४ ॥ (३०६)

अथ पञ्चम्याः—मेधातिथिमेध्यातिथीऋषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १र

आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या । भूर्णिं मृगं

२र ३ १र २र ३ १ २

न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥५॥ (३०७)

पदपाठः— आ अ० । त्वा २ । सोमस्य ६ । गल्दया ३ । सदा अ० । याचन् , अहम् १। ज्या ३। भूर्णिम्, मृगम् २। न अ०।सवनेषु ७। चुक्रुधम् क्रि० । कः १। ईशानम् २। न अ० । याचिषत् क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् हे इन्द्र ! परमेश्वर!(सवनेषु)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यज्ञसवनेषु (सोमस्य) सोमोपलक्षितानामोषधीनां (गल्दया) गालनेन सह (ज्या) जयया स्तुत्या च सह (सदा) सर्वदा (त्वा) त्वाम् (आ, याचन्) समन्ततो याचमानः (अहम्) यज्ञकृत् दीक्षितः (मृगम्) मृगादिकान्प्राणिनः प्रति (न चुक्रुधम्) क्रोधं न कुर्याम्। (भूर्णिम्) भर्त्तारम् (ईशानम्) स्वामिनम् (कः, न) (याचिषत्) याचेत अपितु सर्व एव याचते ॥

अर्थात् यज्ञेषु दीक्षितेन पुंसा सर्वदा सर्वे प्राणिनः क्रोधादिनाऽहिंस्याः। परमेश्वरः प्रार्थनीयश्चेति भावः ॥

ऋग्वेदे तु ८।१।२०"मात्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा"इति पूर्वार्धे पाठभेदः। तत्रत्यं निरुक्तं च यथा-"माचुक्रुधं त्वां सोमस्य गालनेन"। इत्यादि निरु० ६। २४अनुसन्धेयम् ॥५॥ (३०७)

भाषार्थः—प्रकरण से हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (सवनेषु) यज्ञ के सवनों में (सोमस्य) सोमादि ओषधियों के (गल्दया) गालन के साथ तथा (ज्या) जयशील स्तुति के साथ (सदा) सर्वदा (त्वा) आप से (आ—याचन्) सब प्रकार प्रार्थना करता हुआ (अहम्) मैं यज्ञकर्त्ता दीक्षित (मृगम्) मृगादि किसी प्राणी पर (न चुक्रुधम्) क्रोध न करूं। (भूर्णिम्) पोषण करने वाले (ईशानम्) स्वामी से (कः) कौन (न) नहीं (याचिषत्) मांगे। अर्थात् सब ही स्वामी से याचना करते हैं ।।

अर्थात् यज्ञ में दीक्षित यजमान को किसी प्राणी पर क्रोध न करना चाहिये। तथा परमात्मा की सर्वदा प्रार्थना करनी चाहिये ।।

ऋ० ८। १। २० के पूर्वार्ध का पाठभेद और निरुक्त ६। २४ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (३०७)

अथ षष्ठ्याः-देवातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३

अध्वर्यो द्रावया त्वꣳ सोममिन्द्रः पिपासति। उपोनूनं

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥६॥ (३०८)

पदपाठः—अध्वर्यो सं० । द्रावय क्रि० । त्वम् १ । सोमम् २ । इन्द्रः १ । पिपासति क्रि० । उप, उ, नूनम् अ० । युयुजे क्रि० । वृषणा, हरी २ । आ, च अ० । जगाम क्रि० । वृत्रहा १ ॥

अन्वितपदार्थः—इदानीं यजमानोध्वर्युं ब्रूते—(अध्वर्यो) हे एतन्नामक ! ऋत्विक् ! (त्वं) (सोमम्) सोमाद्योषधिरसं (द्रावय) द्रवीभूतं कुरु अभिषुणु । (इन्द्रः) सूर्यः (पिपासति) पातुमिच्छति (उ) तथा (वृषणा) वृषणौ वर्षकौ (हरी) हरणशीलौ समीचीनतिरश्चीनगतिभेदभिन्नौ किरणौ (नूनम्) निश्चयेन (उप—युयुजे) उपयोजयति (वृत्रहा) मेघस्य हन्ता सूर्यः (आ—जगाम च) आगच्छति च मयूखैः ॥

वृत्रहा मेघस्य हन्तेति विवरणकारमतेन सामश्रमी च ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ४ । ११ "उपनूनम्" इत्यन्तरम् ॥६॥ (३०८)

भाषार्थः—अब यजमान अध्वर्यु से कहता है कि—(अध्वर्यो) यज्ञ में आहुत्यादि का ठीक करने वाला ऋत्विज् अध्वर्यु कहाता है । हे अध्वर्यो ! (त्वम्) तू (सोमम्) सोमरस को (द्रावय) गीला कर (इन्द्रः) सूर्य (पिपासति) पीना चाहता है । (उ) तथा (वृषणा) वर्षाने वाली (हरी) तिरछी सीधी दो प्रकार की किरणों को (उप—युयुजे) उपयोग में लाता है (च) और (आ—जगाम) प्राप्त होता है [किरण द्वारा] ॥

वृत्रहा का अर्थ मेघहन्ता ही विवरणकार के मत से सत्यव्रतसामश्रमी जी ने भी टिप्पणी में किया है ॥ ऋ० ८ । ४ । ११ में "उपनूनम्" ऐसा पाठ है ॥६॥ (३०८)

अथ सप्तम्याः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ २ उ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभीषतस्तदाभरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २

पुरूवसुर्हि मघवन्बभूविथ भरे भरे च हव्यः ॥७॥ (३०९)

पदपाठः—अभीषतः ६ । तत् २ । आभर क्रि० । इन्द्र, ज्यायः सं० । कनीयसः ६ । पुरूवसुः १ । हि अ० । मघवन् सं० । बभूविथ क्रि० । भरे, भरे७। च अ० । हव्यः १ ।।

अन्वितपदार्थः—(मघवन्) हे परमधनवन् ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (ज्यायः) परमशक्तिमन् ! (कनीयसः) कनिष्ठस्याऽल्पशक्तिमतः (अभीषतः) अभित इच्छां कुर्वाणस्य जीवात्मनः (तत्) इष्टम् (आभर) आहर । (पुरूवसुः) बहुधनः (हि) (बभूविथ) भवसि (भरे, भरे) प्रतिविपत्समयम् (च) । (हव्यः) आह्वातव्यः ॥

ज्याय इत्यत्र—आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् (८।१।७२) इति सर्वानुदात्तत्त्वाऽभावः नकारस्य रुत्वं व्यत्ययेन (३।१।८५) नुमऽभावो वा ॥ भरे इति संग्रामनाम । निघं० २।७ ऋग्वेदे तु ७।३२।२४ "मघवन्सनादसि" इत्यन्तरम् ॥ ७ ॥ (३०९)

भाषार्थः—(मघवन्) हे परमधन ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (ज्यायः) हे अत्यन्त बड़े ! (कनीयसः) अत्यन्त छोटे (अभीषतः) सब ओर से चाहने वाले जीव के (तत्) उस इष्ट को (आभर) सिद्ध करो (हि) क्योंकि आप (पुरूवसुः) बहुत धन वाले (बभूविथ) हैं (च) और (भरे, भरे) प्रतिविपत्काल में (हव्यः) पुकारने योग्य हैं ॥

निघण्टु २ । १७ अष्टाध्यायी ८ । १ । ७२ ॥ ३।१। ८५ के प्रमाण और ऋ० ७ । ३२ । २४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥७॥ (३०९)

अथाऽष्टम्याः—ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ १ २ ३ २३ १ २३१२ २२ ३ २ ३

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय । स्तोतार-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २३ १ २

मिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रꣳसिषम् ॥८॥ (३१०)

पदपाठः—यत् अ० । इन्द्र सं० । यावतः ६ । त्वम् १ । एतावत् १=६। अहम् १ । ईशीय क्रि० । स्तोतारम् २ । इत् अ० । दधिषे क्रि० । रदावसो सं० । न अ० । पापत्वाय ४ । रꣳसिषम् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) यस्मात् (त्वम्) (यावतः) यावद्धनमस्ति तावतः सर्वस्येश्वरोऽसि । अतो भवत्कृपया (अहम्) भवद्भक्तः (एतावत्) एतावतो धनस्य (ईशीय) ईश्वरोभवेयम् यावता (स्तोतारम्) धर्मात्मानम् (दधिषे इत्) धारयेयमेव (रदावसो) रदति ददाति वसु धनमिति रदावसुस्तत्संबुद्धौ हे रदावसो ! (पापत्वाय) पापभावाय (न,रꣳसिषम्) नैव दद्याम् ॥

ऋग्वेदे तु ७ । ३२ । १८ " दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय " इति पाठः ॥८॥ (३१०)

भाषार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) जिस कारण (त्वम्) आप (यावतः) जितना वस्तुमात्र है उस के [स्वामी हैं इस कारण आपकी कृपा से] (अहम्) मैं (एतावत्) इतने धन का (ईशीय) स्वामी होऊं जितने से (स्तोतारम्) धर्मात्मा का (दधिषे इत्) धारण पोषण करूं ही और (रदावसो) हे धनप्रद! (पापत्वाय) पाप होने के लिये (न) नहीं (रꣳसिषम्) दूं ॥

ऋ० ७ । ३२ । १८ में तो " दधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय" ऐसा पाठ है ॥ ८ ॥ (३१०)

अथ नवम्याः—नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ र २ र ३ १ २ ३ १

त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः । अशस्तिहा

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ९ ॥ (३११)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—त्वम् २ । इन्द्र सं० । प्रतूर्त्तिषु ७ । अभि अ० । विश्वाः २ । असि क्रि० । स्पृधः २। अशस्तिहा, जनिता, वृत्रतूः १। असि क्रि० । त्वम् १ । तूर्य क्रि० । तरुष्यतः २ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (प्रतर्तिषु) कामादिशत्रुसंग्रामेषु (विश्वाः) समस्ताः (स्पृधः) याः स्पर्धन्ते ताः शत्रुसेनाः (त्वम्) (अभि असि) अभिभवसि । (त्वम्) (जनिता) उत्पादकः (अशिस्तहा) अकीर्त्तेर्नाशकः (वृत्रतूः) पापहा (असि) भवसि (तरुष्यतः) हिंसकान् (तर्य) नाशय ॥

प्रकर्षेण हिंस्यन्तेऽत्रेति प्रतूर्त्तिःसंग्रामः । स्पृधइति संग्रामनाम । निघं० २ । १७ तं करोति स्पृधयति ततः क्विपि स्पृधः संग्रामकारिणीः सेनाः॥वनुष्यतिर्हन्तिकर्मा० ० ० तरुष्यतिरप्येवंकर्मा निरु० ५। २ ॥ तूर्यतेर्हिंसार्थस्य वृत्रपूर्वस्य वृत्रतूरिति रूपम् ॥ ऋग्वेदे तु ८। ९९। ५ "विश्वतूरसि,, इत्यन्तरम् ॥९॥ (३११)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (प्रतूर्त्तिषु) कामादिशत्रुसंग्रामों में (विश्वाः) सब (स्पृधः) शत्रुसेनाओं को (त्वम्) आप (अभि—असि) तिरस्कृत करने वाले हैं । (त्वम्) आप ही (जनिता) उत्पादक और (वृत्रतूः) पापनाशक तथा (अशस्तिहा) अकीर्ति के नाशयिता (असि) हैं । अतः (तरुष्यतः) हिंसकों का (तूर्य) नाश कीजिये ॥

निघण्टु २ । १७ निरुक्त ५। २ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ८ । ९९ । ५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥९॥ (३११)

अथ दशम्याः—नोधाऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१र २र ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ १ २ ३
प्रयो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि । न त्वा विव्याच

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥ १० ॥ (३१२)

* इत्यष्टमी दशतिः ॥८॥ *

इति बार्हतमैन्द्रम् ॥

—○:÷:○—

पदपाठः—प्र अ० । यः १ । रिरिक्षे क्रि० । ओजसा ३ । दिवः ६ । सदोभ्यः ५ । परि, न अ० । त्वा २ । विव्याच क्रि० । रजः १ । इन्द्र सं० । पार्थिवम् १ । अति अ० । विश्वम् २ । ववक्षिथ क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यः) यस्त्वम् (ओजसा) बलेन (दिवः) द्युलोकस्य (सदोभ्यः) स्थानेभ्यः (परि) पर्यन्तेभ्यः (प्र—रिरिक्षे) प्रकर्षेणातिरिच्यसे (त्वा) तं त्वाम् (पार्थिवम्) पृथिव्याइदम् (रजः) (न-विव्याच) न व्याप्नोति । अर्थात् द्यावापृथिव्यौ त्वां नव्याप्नुतः । (विश्वम्) जगत् (अति) उल्लङ्घ्य (ववक्षिथ) वोढुमस्मानिच्छ । मुक्तान्कुर्वति भावः ॥

रिचेर्लटि—बहुलं छन्दसि २ । ४ । ७६ इति श्लौ रिरिक्षे ॥ ववक्षिथ इति वहेः सन्नन्तस्य छान्दसं रूपम् ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ८८ । ५ "प्र हि रिरिक्ष ओजसादिवो अन्तेभ्यस्परि । न त्वा विव्याच रजं इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ" इतिपाठः ॥१०॥ (३१२)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यः) जो आप (ओजसा) बल से (दिवः) द्युलोक के (सदोभ्यः) स्थान (परि) पर्यन्तों से (प्र—रिरिक्षे) अत्यन्त अधिक हैं (त्वा) उन आप को (पार्थिवम्) पृथिवी का (रजः) रज (न) नहीं (विव्याच) व्यापता । अर्थात् द्युलोक और पृथिवी लोक को उल्लङ्घन करके आप वर्त्तमान हैं। इस लिये हम को (विश्वम्) संसार के

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(अति) पार करके । (ववक्षिथ) लेजाने की इच्छा कीजिये । मुक्ति दीजिये ।।

अष्टाध्यायी २।४। ७६ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ८ । ८८। ५ का पाठ संस्कृत भाष्य में देखिये ।। १० ॥ (३१२)

* यह तृतीयाध्याय में आठवीं ८ दशति समाप्त हुई *

और

इन्द्र देवता के बृहती छन्दों का प्रकरण भी समाप्त हुवा ।।

—:०:—

असावीतीन्द्रदैवत्यास्त्रिष्टुभो दशतौ दश ॥१॥

अथ नवमी दशतिस्तत्र

प्रथमायाः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।।

१ २ ३ १र २र ३ २ क २र ३ १ २ ३ १ २

असावि देवं गोऋजीकमन्धोन्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसोमदेषु।१।(३१३)

पदपाठः—असावि क्रि० । देवम् २ । गोऋजीकम्, अन्धः १ । नि अ० । अस्मिन् ७ । इन्द्रः १ । जनुषा ३ । ईम् अ० । उवोच, बोधामसि क्रि० । त्वा २ । हर्यश्व सं० । यज्ञैः ३ । बोध क्रि० । नः ६ । स्तोमम् २ । अन्धसः ६ । मदेषु ७ ॥

अन्वितपदार्थः—(गोऋजीकम्) गव्येन दुग्धादिना संमिश्रम् (अन्धः) उत्तमान्नम् (असावि) अस्माभिरुद्दऽपादि (अस्मिन्) उत्तमान्ने (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली राजा (जनुषा) जन्मना (ईम्) इदमिति (नि—उवोच) नितरामुक्तवान् । (हर्यश्व) हे विद्युदादिदिव्याऽश्ववन् ! (यज्ञैः) अनेकविधैः सुकर्मभिः (त्वा) त्वाम् (देवम्) राजानम् (बोधामसि) वयं बोधयामः (अन्धसः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उत्तमान्नस्य (मदेषु) हर्षेषु निमित्तेषु (नः) अस्माकम् (स्तोमम्) यथार्थस्तोत्रम् (बोध) श्रुत्वा स्वीकुरु ॥

ऋग्वेदे ७ । २१ । १ ऽपि ॥ १ ॥ (३१३)

भाषार्थः—(गोऋजीकम्) गोदुग्धादि मिला हुवा (अन्धः) उत्तमान्न (असावि) हम ने उत्पन्न किया है (अस्मिन्) इस अन्न में (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (जनुषा) जन्म से (ईम्) "यह" ऐसा (नि—उवोच) नितरां रुचिपूर्वक कहता है । (हर्यश्व) हे दिव्य विद्युत् आदि अश्वों वाले ! (यज्ञैः) सुकर्मों से (त्वा) तुझ (देवम्) राजा को (बोधामसि) हम बोध कराते हैं और आप भी (अन्धसः) उत्तमान्न के (मदेषु) आनन्दों के निमित्त (नः) हमारे (स्तोमम्) यथार्थ प्रशंसावचन को (बोध) सुनकर स्वीकार कीजिये ॥

प्रजा को चाहिये कि उत्तम २ धान्यादि पदार्थ उत्पन्न करके राजा के अर्पण करे, राजा जन्म से ही ऐसे पदार्थों की अभिरुचि रखता है । और दिव्ययानों वाला राजा सुकर्मियों की रक्षा करता है । जिस से उत्तम धान्यादि द्वारा जगत् को हर्ष लाभ हो ॥ ऋ० ७ । २१ । १ में भी ॥ १ ॥ (३१३)

अथ द्वितीयायाः— वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३

योनिष्टइन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्रयाहि । असो

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यथा नोविता वृधश्चिद्ददोवसूनि ममदश्च सोमैः ॥२॥ (३१४)

पदपाठः— योनिः १ । ते ६ । इन्द्र सं० । सदने ७ । अकारि क्रि० । तम् २ । आ अ० । नृभिः ३ । पुरुहूत सं० । प्र-याहि, असः क्रि० । यथा अ० । नः ६ । अविता, वृधः १ । चित् अ० । ददः क्रि० । वसूनि २ । ममदः क्रि० । च अ० । सोमैः ३ ॥

अन्वितपदार्थः— (इन्द्र) हे राजन् ! (सदने) आसनार्थम् (ते) तव (योनिः) स्थानम् राजसिंहासनम् (अकारि) अस्माभिरिति शेषः (पुरुहूत) हे बहुभिराहूत ! (नृभिः) नेतृभिर्मन्त्रिभिः सह (तम्) तत्सिंहासनम् (आ-प्र-याहि) अध्यास्स्व (यथा) येन

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रकारेण (नः) अस्माकम् (अविता) रक्षकः (चित्) च (वृधः) वर्धकः (असः) भव (वसूनि) विद्यारत्नादिधनानि (ददः) देहि (सोमैः) सोमाद्योषधीनां रसैः (ममदः) मादय (च) ॥

ऋग्वेदे तु ७।२४।१ "वृधे च" इति पाठः ॥२॥ (३१४)

भाषार्थः— (इन्द्र) हे राजन् ! (सदने) आपके विराजने के निमित्त (ते) आप का (योनिः) राजसिंहासन (अकारि) हम ने बनाया है । (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे हुवे ! (तम्) उस सिंहासन पर (नृभिः) मन्त्रियों सहित (आ-प्र-याहि) विराजिये (यथा) जिस से कि (नः) हमारे (अविता) रक्षक (चित्) और (वृधः) वर्धक (असः) हूजिये । (वसूनि) विद्या और रत्नादि धन (ददः) दीजिये (च) और (सोमैः) सोमादि ओषधियों के रसों से (ममदः) हृष्ट हूजिये ॥

ऋ० ७।२४।१ में "वृधे च" पाठ है ॥२॥ (३१४)

अथ तृतीयायाः— गातुर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २३२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँअरम्णः ।

३ १ २ ३ १ २३ २उ ३२उ ३ २ ३ १ २ ३ २

महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ।३।(३१५)

पदपाठः— अदर्दः क्रि० । उत्सम् २ । असृजः क्रि० । वि अ० । खानि २ । त्वम् १ । अर्णवान्, बद्बधानान् २ । अरम्णः क्रि० । महान्तम् २ । इन्द्र सं० । पर्वतम् २ । वि, यत् अ० । वः २ । सृजत् क्रि० । धाराः २ । अव, यत् अ० । दानवान् २ । हन् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः— (इन्द्र) सूर्य ! (त्वम्) (यत्) यदा (उत्सम्) उत्स्यन्दमानं मेघम् (अदर्दः) विदारयसि (खानि) मेघमण्डलेषु शून्यानि (वि-असृजः) रचयसि (अर्णवान्) उदकवतः समुद्रान् (बद्बधानान्) स्थिरबहुजलान् (अरम्णः) रचयसि (यत्) यदा (दानवान्) जलदातॄन् (वः) तान् मेघान् । पुरुषव्य-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

त्ययः (हन्) हंसि । ततः (धाराः) जलधाराः (अव-सृजत्) क्षारयसि तदा (महान्तम्) (पर्वतम्) भूधरमिव (वि) विनाशयसि ॥

अत्राऽपि सूर्यदृष्टान्तेन राजकर्माण्युपदिश्यन्ते । यथा सूर्यो मेघं विदारयति तथा राज्ञा शत्रुदलस्थजलाशया विदार्याः । यथा सूर्यो मेघं विनाश्याऽऽकाशं रिक्तं करोति, तथैव राज्ञा शत्रुं विनाश्य शत्रुमण्डलदिशो रिक्ताः करणीयाः । यथा सूर्येण मेघजलेन नदीः प्रवाह्य स्थिरजलः समुद्रो वर्ध्यते, तथैव राज्ञाऽपि शत्रुधनेन स्थिरनिधिः संपाद्यः । यथा सूर्येण मेघेभ्यो जलधाराः पात्यन्ते तथैव राज्ञा दुष्टशत्रुरक्तधाराः पातयितव्याः । यथा चैतेन सर्वेण सूर्यो मेघदुर्गं पर्वताकारं विनाशयति, तथैव राज्ञा शत्रुदुर्गविनाशो विधेयः ॥

उत्स इति कूपनाम । निघं० ३ । २३ तद्वज्जलपूर्णो मेघोऽत्र गृहीतः ॥ इमामृचमृग्वेदस्थां यास्क एवं व्याख्यातवान्-आहृणा उत्सम्, उत्सउत्सरणाद्वोत्सदनाद्वोत्स्यन्दनाद्वोनत्तेर्वा । व्यसृजोऽस्य खानि । त्वमर्णवानर्णस्वत एतान्माध्यमिकान्संस्त्यायान्बाबध्यमानानरम्णाः । रम्णातिः संयमनकर्मा विसर्जनकर्मा वा । महान्तमिन्द्र पर्वतं मेघं यद्व्यवृणोर्व्यसृजोऽस्य धारा अव-हन्नेनं दानवं दानकर्माणम् ॥१०।९॥ ऋग्वेदे तु ५।३२।१ "अरम्णाः । सृजो विधारा अव दानवं हन्" इत्यन्तरम् ॥३॥ (३१५)

भाषार्थः—(इन्द्र) सूर्य! (त्वम्) तू (यत्) जब (उत्सम्) गीले मेघ को (अदर्दः) विदीर्ण करता है (खानि) मेघों में शून्याकाशों को (वि—असृजः) रच देता है (अर्णवान्) जल वाले समुद्रों को (बद्बधानान्) स्थिर जल वाले (अरम्णः) बनाता है (यत्) और जब (दानवान्) जलदायक (वः) उन मेघों को (हन्) नष्ट करता है और उन से (धाराः) जलप्रवाहों

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

को (अव-सृजत्) वर्षाता है । तब (महान्तम्) बड़े (पर्वतम्) पर्वत से को (वि) विनष्ट करता है ॥

इस में भी सूर्य के दृष्टान्त से राजकार्यों का उपदेश है कि– जिस प्रकार सूर्य मेघ को विदीर्ण करता है, ऐसे ही राजा शत्रुदलस्थ जलाशयों को । जैसे सूर्य मेघ का नाश करके आकाश को खाली कर देता है, ऐसे ही राजा शत्रु दल को नष्ट करके आकाश (मैदान) करदे । जैसे सूर्य मेघ के जलों से नदियां बहा कर स्थिर जल वाले समुद्र को भरता है, ऐसे राजा शत्रुओं के धनों से स्थिर निधि (कोष) भरे । जैसे सूर्य मेघों से जलधारा बहाता है, ऐसे राजा शत्रुशिरों से रक्तधारा। और जैसे सूर्य इस सब से पर्वताकार मेघमण्डल का नाश करता है, इसी प्रकार राजा भी शत्रु के पर्वताकार दुर्गों (किलों) को तोड़े ।।

निघण्टु ३।२३ और निरुक्त १०।९ तथा ऋ० ५।३२।१ का पाठभेदादि संस्कृत भाष्य में देखिये ॥३॥ (३१५)

अथ चतुर्ऋचस्य– पृथीवैन्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १
सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् । आ
२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्यामा त्वोताः ॥४॥(३१६)

पदपाठः– सुष्वाणासः १ । इन्द्र सं० । स्तुमसि क्रि० । त्वा २ । सनिष्यन्तः १ । चित् अ० । तुविनृम्ण सं० । वाजम् २ । आ अ० । नः ४ । भर क्रि० । सुवितम् २। यस्य ६ । कोना क्रि० । तना २ । त्मना ३ । सह्याम क्रि० । त्वोताः १॥

अन्वितपदार्थः– (इन्द्र) हे राजन् ! (सुष्वाणासः) सोमादीनभिषुतवन्त उत्पादितवन्तः (चित्) तथा (वाजम्) उत्पादितमन्नम् (सनिष्यन्तः) संभक्तवन्तो वयम् (त्वा) त्वाम् (स्तुमसि) कीर्त्तयामः (तुविनृम्ण) हे बहुबल ! वा बहुधन ! (त्वोताः) त्वद्रक्षिताः वयं (यस्य) धनादेः (कोना) कामनां करवाम तत् (सुवितम्) सुष्ठु प्राप्तव्यं धनम् (नः) अस्मभ्यम्

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आ—भर) आ हर (तना) विस्तृतानि धनानि (त्मना) आत्मना अन्यैरपेक्ष्येणैव (सह्याम) धातूनामनेकार्थत्वात् त्वत्प्रसादाल्लभेमहि ॥

राजप्रसादादेव प्रजाः धनधान्याद्यनेकविधसुखसम्भोगोपायान्कर्त्तुं शक्नुवन्ति। तद्रक्षिताः सन्त एव प्रजाजनाः यथान्यायं स्वस्वभागं प्राप्नुवन्ति । इतरथा उपद्रुतास्तु अन्योन्यं भक्ष्यमाणा नश्येयुः । अतः सदैव न्यायकारी राजाऽभ्यर्थनीयः ॥

तनेति धननाम निघं० २। १० कोना इति कनेः कान्तिकर्मण इदं रूपम् ० ० ० व्यत्ययेनेति सायणोऽपि ॥ मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः ६।४।१४१ इत्याकारलोपे त्मना ॥ ऋग्वेदे तु १०। १४८।१ "सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् । आ नो भर सुवितं यस्य चाकन्त्मना तना सनुयाम त्वोताः" इत्यन्तरम् ॥४॥ (३१६)

भाषार्थः— (इन्द्र) हे राजन्! (सुष्वाणासः) सोमादि को उत्पन्न करते हुवे (चित्) और (वाजम्) धान्यादि का (सनिष्यन्तः) न्यायपूर्वक विभाग करते हुवे हम (त्वा) आप की (स्तुमसि) स्तुति करते हैं। (तुविनृम्ण) हे बहुबल ! वा बहुधन ! (त्वोताः) आप से रक्षा किये हुवे हम (यस्य) जिसध नादि की (कोना) कामना करें उस (सुवितम्) प्राप्त करने योग्य धनादि को (नः) हमारे लिये (आ भर) प्राप्त कराइये । (तना) विस्तृत धनों को (त्मना) अपने ही द्वारा हम (सह्याम) आप की कृपा से पावें ॥

खेती, बाड़ी, धन, धान्यादि सब पदार्थों की रक्षापूर्वक उत्पत्ति और न्यायपूर्वक विभाग, राजा ही के होते हुवे होता है । अन्यथा परस्पर भक्ष्य भक्षक बन कर नष्ट हो जावें । इस लिये मनुष्यों को न्यायकारी राजा की इच्छा करनी चाहिये ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अष्टाध्यायी ६। ४। १४१ सायणाचार्य। निघण्टु २। १० और ऋ० १०। १४८। १ का पाठस्य भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ।। ४ ।। (३१६)

अथ पञ्चम्याः—सप्तगुर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसूपते वसूनाम् ।

३ २ उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

विद्मा हि त्वां गोपतिꣳ शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणꣳ

३ १ २

रयिं दाः ॥ ५ ॥ (३१७)

पदपाठः—जगृह्म क्रि० । ते ६। दक्षिणम् २ । इन्द्र सं० । हस्तम् २ । वसूयवः १ । वसुपते सं० । वसूनाम् ६। विद्मः क्रि० । हि अ० । त्वाम्, गोपतिम् २ । शूर सं० । गोनाम् ६ । अस्मभ्यम् ४ । चित्रम्, वृषणम्, रयिम् २ । दाः क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (वसूनाम्) धनानाम् (वसुपते) धनपते ! (वसूयवः) धनकामाःवयम् (ते) तव (दक्षिणम्) दक्षिणं चतुरं वा (हस्तम्) बाहुम् (जगृह्म) शरण्यत्वेन गृह्णीमः । अथ च (त्वाम्) (गोनाम्) गवां पृथिव्यादीनाम्(हि) निश्चयेन (गोपतिम्) पृथिव्यादिस्वामिनम् (विद्मः) जानीमः (शूर) हे विक्रान्त ! (अस्मभ्यम्) (चित्रम्) अनेकविधम् (वृषणम्) कामपूरकम् (रयिं) धनम् (दाः) देहि ॥

हस्तग्रहणेनाऽत्राऽऽलम्बो बोध्यः । ऋग्वेदे १० । ४७ । १ तु "जगृभ्मा" इत्यन्तरम् ॥ ५ ॥ (३१७)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (वसूनाम्) धनों के (वसुपते) धनपते ! (वसूयवः) धन चाहने वाले हम (ते) आप के (दक्षिणम्) दाहिने वा चतुर (हस्तम्) हाथ को (जगृह्म) पकड़ते हैं और (त्वाम्) आप को (गोनाम्) पृथिव्यादिकों का (गोपतिम्) स्वामी (विद्मः) जानते हैं । (शूर)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हे वीर ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (चित्रम्) अनेक प्रकार का (वृषणम्) कामनापूरक (रयिम्) धन (दाः) दीजिये ।।

यहां हाथ पकड़ने का तात्पर्य सहारा लेना है ॥ ऋ० १० । ४७ । १ में "जगृभ्मा,, पाठ है ।।५।। (३१७)

अथ षष्ठ्याः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।।

३ १२ ३१२ ३ १२२ २२ ३१२३ २३ २ ३

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्य्या युनजते धियस्ताः । शूरो

१२३ १२ ३ २३ १२ ३२ ३१२ ३१ २

नृषाता श्रवसश्चकाम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६॥ (३१८)

पदपाठः—इन्द्रम् २ । नरः १। नेमधिता ७ । हवन्ते क्रि० । यत् अ० । पार्याः २ । युनजते क्रि० । धियः ,ताः २ । शूरः, नृषाता १ । श्रवसः ६ । चकामे ७ । आ अ० । गोमति, व्रजे ७ । भज क्रि० । त्वम् १ । नः २ ।।

अन्वितपदार्थः— (यत्) यदा (नरः) नेतारो मनुष्याः (नेमधिता) नेमधितौ संग्रामे (इन्द्रम्) राजानम् (हवन्ते) सहायकत्वेन वृण्वते तदा (ताः) प्रसिद्धाः प्रसिद्धानि (पार्य्याः) पारयितुमर्हाणि (धियः) कर्माणि (युनजते) युञ्जते । सहीन्द्रः (शूरः) वीरः (नृषाता) नृणां विभागपूर्वकं स्थापयितास्ति । तादृश इन्द्र ! (त्वम्) (नः) अस्मान् (श्रवसः) यशसः (चकामे) चकाने कामनां कुर्वाणे (गोमति) गवादिपशुयुक्ते (व्रजे) गोष्ठे निमित्ते (आ-भज) ॥

साधारणा योद्धारो नराः संग्रामेषु राजानं श्रयन्ते, तदाज्ञया युद्धकौशलकर्मसु प्रयुक्ता भवन्ति,स हि तेषां नायकः संविभागकृच्च भवति। तेन च यशः कामयमानेन, गवादिपशुसमृद्धिनिमित्तं ते नराः सेवनीयाः पालनीया इति भावः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नेमधितेति संग्रामनाम। निघं० २। १७ नेमधिति शब्दाद्विभक्तेराकारे (७।१।३९) रूपम् ॥ धीरिति कर्मनाम। निघं० २।१॥ ऋग्वेदे ७।२७।१ तु "चकान" इत्यन्तरम्॥ ६॥ (३१८)

भाषार्थः—(यत्) जब (नरः) मनुष्य (नेमधिता) संग्राम में (इन्द्रम्) राजा का (हवन्ते) आश्रय करते हैं तब (ताः) उन प्रसिद्ध (पार्य्याः) पार लगाने वाले (धियः) कामों को (युनजते) ठीक २ करते हैं। वह इन्द्र (शूरः) वीर (नृषाता) मनुष्यों को यथास्थान विभागपूर्वक खड़ा करने वाला है। वैसे हे राजन्! (त्वम्) तू (नः) हम को (अवसः) यश के (चकामे) चाहने वाले (गोमति) गवादिपशुयुक्त (व्रजे) खरक निमित्त (आ भज) सत्कार पूर्वक रख॥

साधारण योद्धा लोग संग्रामों में राजा के आश्रय रहते हैं। उसी की आज्ञानुसार युद्धकौशल दिखाते हैं। वह उन का नायक और यथास्थान-विभागपूर्वक खड़ा करने वाला है। उस को यश की इच्छा करते हुए उचित है कि गवादिपशुयुक्त प्रजावर्ग के सुखार्थ अपने वीर योद्धों को सत्कार पूर्वक रक्खे।

निघं० २। १७॥ २। १॥ अष्टाध्यायी ७। १। ३९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ७। २७। १ में "चकाने" ऐसा पाठ है॥ ६॥ (३१८)

अथ सप्तम्याः—गौरिवीत ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ऽ २ ३ १ २ ३ २

अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान्

॥ ७॥ (३१९)

पदपाठः—वयः, सुपर्णाः १। उप-सेदुः क्रि०। इन्द्रम् २। प्रियमेधाः, ऋषयः, नाधमानाः १। अप अ०। ध्वान्तम् २। ऊर्णुहि, पूर्धि क्रि०। चक्षुः २। मुमुग्धि क्रि०। अस्मान् २। निधयेव अ०। बद्धान् २॥

अन्वितपदार्थः— (वयः) पक्षिणइव (सुपर्णाः) शोभनपतनाः सूर्यकिरणाः (इन्द्रम्) सूर्यम् (उपसेदुः) उपसन्नास्तदाश्रि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ता भवन्ति [तथैव] (प्रियमेधाः) यज्ञादिसुकर्मप्रियाः (ऋषयः) ज्ञानिनः इन्द्रं राजानम् (नाधमानाः) नाथमाना याचमाना भवन्ति। तथाहि (ध्वान्तम्) अन्यायान्धकारम् (अप-ऊर्णुहि) विद्रावय (चक्षुःपूर्धि) न्यायप्रकाशं कुरु (निधयेव) पाशसमूहेनेव (बद्धान् अस्मान्) (मुमुग्धि) मोचय ॥

ईश्वरपक्षे—(वयः) गतिमन्तः (सुपर्णाः) जीवात्मानः (प्रियमेधाः) योगयज्ञप्रियाः (ऋषयः) ज्ञानिनः (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (नाधमानाः) याचमाना भवन्ति। यथा-(ध्वान्तम्) अविद्यान्धकारम् (अप-ऊर्णुहि) नाशय (चक्षुः पूर्धि) ज्ञानप्रकाशं कुरु (निधयेव) पाशसमूहेनेव मोहेन (बद्धानऽस्मान् मुमुग्धि) ॥

निधा पाश्या भवति यन्निधीयते । पाश्या पाशसमूहः पाशः पाशयतेर्विपाशनात्। निरु० ४।२ वयो वेर्बहुवचनं सुपर्णाः सुपतना आदित्यरश्मय उपसेदुरिन्द्रम् याचमानाः । अपोर्णुह्यापवस्तं चक्षुः। चक्षुः ख्यातेर्वा चष्टेर्वा। पूर्धि पूरय देहीति वा मुञ्चाऽस्मान्पाशैरिव बद्धान्। निरु० ४। ३ मेध इति यज्ञनाम निघं० ३ । १७ ऋग्वेदे १० । ७३ । ११ ऽपि ॥ ७ ॥ (३१९)

भाषार्थः—(वयः) पक्षितुल्य (सुपर्णाः) सूर्यकिरण (इन्द्रम्) सूर्य्य को (उप—सेदुः) जैसे आश्रय करती हैं। वैसे ही (प्रियमेधाः) यज्ञादि कर्म जिन्हें प्यारा है वे (ऋषयः) ऋषि लोग इन्द्र अर्थात् राजा को (नाधमानाः) याचना करते हैं कि (ध्वान्तम्) अन्धकार अन्याय को (अप ऊर्णुहि) दूर कीजिये (चक्षुः पूर्धि) न्याय प्रकाश कीजिये (निधयेव) जैसे पाश समूह से (बद्धान्) बन्धे हुवे (अस्मान्) हम को (मुमुग्धि) छुड़ाइये ॥

ईश्वर पक्ष में—(वयः) गति वाले (सुपर्णाः) जीवात्मा पक्षी (प्रियमेधाः) जिन्हें यज्ञ प्यारा है वे (ऋषयः) ऋषि (इन्द्रम्) परमेश्वर को (नाधमानाः) प्रार्थना करते हुवे (उप—सेदुः) आश्रित होते हैं कि—(ध्वान्तम्) अज्ञानान्ध-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कार को (अप-ऋणुहि) दूर कीजिये और (चक्षुः पूर्धि) ज्ञान का प्रकाश कीजिये (निधयेव) जैसे फांसियों के समूह से (बद्धान्) बन्धों को तद्वत् मोह-बद्ध (अस्मान्) हम को (मुमुग्धि) मुक्त कीजिये ॥

निरुक्त ४ । २ ॥ ४ । ३ निघण्टु ३ । १७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । ७३ । ११ में भी ॥ ७ ॥ (३१९)

अथाऽष्टम्याः=वेनो भार्गव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३२उ ३१र २र ३१र २र ३ १ २

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तꣳ हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत

१२ ३१२ ३२ ३२ ३ १२ ३१

त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं

२३ २

भुरण्युम् ॥ ८ ॥ (३२०)

पदपाठः—नाके ७ । सुपर्णम् २ । उप, यत् अ० । पतन्तम् २ । हृदा३ । वेनन्तः १ । अभ्यचक्षत क्रि० । त्वा २ । हिरण्यपक्षम् २ । वरुणस्य ६ । दूतम् २ । यमस्य ६ । योनौ ७ । शकुनम्, भुरण्युम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—हे इन्द्र ! राजन् ! (यत्) यथा (नाके) द्युलोके (पतन्तम्) ज्योतिषा पतन्तम् (सुपर्णम्) सुपतनम् (हिरण्यपक्षम्) ज्योतिःपक्षम् (वरुणस्य) वृष्टिकारकस्य वायोः (दूतम्) प्रापकम् (यमस्य) नियामकस्य वैद्युताग्नेः (योनौ) स्थाने वर्त्तमानम् (शकुनम्) पक्षिणमिव शक्तिमन्तम् (भुरण्युम्) शीघ्रगम् सूर्यम् (हृदा) हृदयेन (वेनन्तः) इच्छन्तः सत्पुरुषाः (अभ्यचक्षत) अभितः पश्यन्ति तथैव (त्वा) त्वाम् पश्यन्ति ॥

नाक इति साधारणनाम । निघं० १ । ४ साधारणान्युत्तराणि षड्दिवश्चादित्यस्य च । निरु० २ । १३ ॥ वेनति इतिकान्तिकर्मा । निघं० २ । ६ ॥ वरुणो वृणोतीति सत इत्यादिनिरुक्तमुक्त-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पूर्वम् १० । ३ ॥ यमस्य वैद्युताग्नेरिति सायणोऽपि ॥ अग्निरपि यम उच्यते । निरु० १० । २० ॥ शकुनिः शवनोत्युन्नेतुमात्मानमित्यादि । निरु० ९ । २ ॥ भुरण्युरिति क्षिप्रनाम निघं० २ । १५ ॥ ऋग्वेदे १० । १२३ । ६ ऽपि ॥८॥ (३२०)

भाषार्थः—इन्द्र ! हे राजन् ! (यत्) जिस प्रकार से (नाके) द्युलोक में (पतन्तम्) प्रकाश गिराते हुवे (सुपर्णम्) शोभन पतन वाले (हिरण्यपक्षम्) ज्योतिर्मय जिस के पंख हैं उस (वरुणस्य) वृष्टिकारक वायु के (दूतम्) लाने वाले (यमस्य) विद्युत्संबधी अग्नि के (योनौ) स्थान में वर्त्तमान (शकुनम्) पक्षी के तुल्य आकाश में ठहर सकने वाले (भुरण्युम्) शीघ्रगामी सूर्य को (हृदा) हृदय से (वेनन्तः) चाहते हुवे लोग (अभ्यचक्षत) सब ओर से देखते हैं (त्वा) आप को भी ऐसे ही देखते हैं ।।

निघण्टु १ । ४ ॥ २ । ६ ॥ २ । १५ ॥ निरुक्त २ । १३ ॥ १० । ३ ॥ १० । २० ॥ ९ । २ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । १२३ । ६ में भी ॥ ८ ॥ (३२०)

अथ नवम्याः बृहस्पतिर्नकुलो वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः । स-

क २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥

॥ ९ ॥ (३२१)

पदपाठः—ब्रह्म, जज्ञानं, प्रथमम् २ । पुरस्तात्, वि अ० । सीमतः ५ । सुरुचः २ । वेनः १ । आवः क्रि० । सः १ । बुध्न्याः, उपमाः २ । अस्य ६ । विष्ठाः २ । सतः ६ । च अ० । यानिम् २ । असतः ६ । च अ० । विवः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—हे इन्द्र ! राजन् ! (वेनः) मेधावी परमात्मा (प्रथमम्) आदिमम् (जज्ञानम्) उत्पन्नम् (ब्रह्म) बृहत् सूर्यमण्डलम् (पुरस्तात्) सृष्ट्यारम्भे (वि-आवः) व्या-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वृणोत् (सः) वेनः परमेश्वरः (बुध्न्याः) बुध्नं मूलमन्तरिक्षं वा तत्र भवाः (अस्य) सूर्यमण्डलस्य (उपमाः) समीपे मातुं योग्याः (विष्ठाः) विशेषेण तिष्ठन्ति ताः (सीमतः) प्रान्ततः (सुरुचः) शोभनप्रकाशाः व्यावृणोत् एवम् (सतः) वर्त्तमानस्य (च) तथा (असतः) भविष्यतः (च) भूतस्य (योनिम्) गर्भम् सूर्यम् (विवः) व्यावृणोत् ॥

अर्थात् यथा सृष्टौ सूर्यो जगदाधारत्वेन परमात्मना निर्मितोऽस्ति तथैव राजाऽपि ॥

वेनइति मेधाविनाम। निघं० ३ । १५ वेनो वेनतेः कान्तिकर्मणः इत्यादि निरु० १ । ३८ अथर्ववेदे ५ । ४ । १ ऽपि ॥ ९ ॥ (३२१)

भाषार्थः—हे इन्द्र ! राजन् ! (वेनः) परमेश्वर ने (पुरस्तात्) सृष्टि के आरम्भ में (प्रथमम्) प्रथम (जज्ञानम्) उत्पन्न हुवे (ब्रह्म) बड़े सूर्यमण्डल को (वि—आवः) विस्तृत किया है (सः) उसी मेधावी ने (बुध्न्याः) बुध्न अन्तरिक्ष वा मूल में उत्पन्न हुई (अस्य) इस सूर्यमण्डल की (उपमाः) समीप मापने योग्य (विष्ठाः) अपनी २ विशेषता से स्थित (सीमतः) सीमा=छोर से (सुरुचः) अच्छी चमकीली अन्य भूमियों को विवृत किया । इस प्रकार (सतः) वर्त्तमान (च) और (असतः) भविष्यत् (च) और भूतों के (योनिम्) गर्भ सूर्यमण्डल को (विवः) विवृत किया है ॥

अर्थात् जैसे सृष्टि में सूर्य मण्डल अपने समीपस्थ गोलों का धारण तीन काल में करता है इसी प्रकार राजा ॥

निघण्टु ३ । १५ निरुक्त ९ । ३८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ अथर्ववेद ५ । ४ । १ में भी ॥ ९ ॥ (३२१)

अथ दशम्याः—सुहोत्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचाꣳस्यस्मै स्थ-
२
विराय तक्षुः॥१०॥(३२२) *इतनवमी दशतिः॥९॥ *

पदपाठः—अपूर्व्या, पुरुतमानि २। अस्मै, महे, वीराय, तवसे, तुराय, विरप्शिने, वज्रिणे ४। शन्तमानि, वचांसि २। अस्मै, स्थविराय ४। तक्षुः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(अस्मै) प्रत्यक्षाय (महे) महते (वीराय) शूराय (तवसे) बलवते निघं० २। ९ (तुराय) त्वरमाणाय वेगवते (विरप्शिने) महत्तमाय निघं० ३। ३ (वज्रिणे) शस्त्राऽस्त्रवते (स्थविराय) प्रवृद्धाय (अस्मै) राज्ञे (अपूर्व्या) अपूर्व्याणि (पुरुतमानि) बहुतमानि (शन्तमानि) सुखकराणि (वचांसि) वचनानि (तक्षुः) कुर्वन्तु ॥

पूर्वं भवानि पूर्व्याणि,न सन्तिपूर्वाणियेभ्यस्तान्यपूर्व्याणि। ऋग्वेदे ६ । ३२। १ तु "वचांस्यासास्थविराय तक्षम्,, इत्यन्तरम् ॥ १० ॥ (३२२)

भाषार्थः—(अस्मै) इस प्रत्यक्ष (महे, वीराय) बड़े वीर (तवसे) बलवान् (तुराय) फुरतीले (विरप्शिने) अत्यन्त बड़े (वज्रिणे) शस्त्राऽस्त्र धारी (स्थविराय) वृद्ध अनुभवी (अस्मै) इस राजा के लिये (अपूर्व्या) जिन से पूर्व कोई न हों उन (पुरुतमानि) बहुत (शन्तमानि) सुखकारी (वचांसि) वचनों को (तक्षुः) करें ।।

निघण्टु ३। ९॥ ३। ३ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ६। ३२। १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ।। (३२२)

* यह तृतीयाऽध्याय में नवमी ९ दशति समाप्त हुई *

———*:०:*———

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अव द्रप्सेति चेन्द्रस्य त्रिष्टुभोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।।
षष्ठी विराट् त्रिपादुक्ता इत्थं नव ऋचःस्मृताः ।। १ ।।

अथ दशमी दशति—

स्तत्र प्रथमायाः—द्युतान ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।।

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २

अव द्रप्सो अꣳशुमतीमतिष्ठदीयानःकृष्णो दशभिः

३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

सहस्रैः । आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृम-

२ ३ २

णा अध द्राः ।। १ ।। (३२३)

पदपाठः—अव अ० । द्रप्सः १ । अꣳशुमतीम् २ । अतिष्ठत् क्रि० । ईयानः, कृष्णः १ । दशभिः, सहस्रैः ३ । आवत् क्रि० । तम् २ । इन्द्रः १ । शच्या ३ । धमन्तम् २ । अप अ० । स्नीहितिम् २ । नृमणाः १ । अधः अ० । द्राः क्रि० ।

अन्वितपदार्थः— यदि (कृष्णः) तमःप्रधानः (द्रप्सः) द्रुतं सरति गच्छति स शत्रुः (अंशुमतीम्) अंशवः सूर्यादिकिरणा उपलभ्यन्ते यस्यां सा नदी ताम् (अव—अतिष्ठत्) अव तिष्ठेत तर्हि (दशभिः सहस्रैः) बहुभिर्बलैः सह (शच्या) मेधया कर्मणा पुरुषार्थेन वा (ईयानः) प्राप्तः सन् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (तम्) मुख्यशत्रुम् (धमन्तम्) जीवन्तम् (आवत्) रक्षेत् (अध) अथ च (नृमणाः) नृषु मनो यस्य तादृशो राजा (स्नीहितिम्) हिंसित्रीम् सेनाम् (अप द्राः) द्रावयेत् नाशयेद्वा ।।

न्यायकारिभीराजभिरधर्मिणो निगृह्य जीवन्तो रक्षणीयाःमनुष्यजातिं प्रतिप्रेमवता न्यायाधीशेन दुष्टशत्रुसेनाश्च विद्राव्याः ।।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

द्रप्सः—पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ६ । ३ । १०९ इति सिध्यति ॥ शचीति कर्मनाम निघं० २ । १ प्रज्ञानाम च ३ । ९॥ स्नेहति स्नेहयति इति च वधकर्मा निघं० २ । १९ तस्यैव वर्णव्यत्ययकृतः स्नीहितिमिति प्रयोगः ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ९६ । १३ स्नोहितीर्नृमणा अधत्त इत्यन्तरम् ॥१॥ (३२३)

भाषार्थः—यदि (कृष्णः) तामसी (द्रप्सः) सामने से भागा शत्रु (अंशुमतीम्) नदी आदि के शरण में (अव अतिष्ठत्) ठहरे तो (दशभिःसहस्रैः) बहुत बलों सहित और (शच्या) बुद्धि वा पुरुषार्थ से(ईयानः) प्राप्त (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् न्यायी राजा (तम्) उस मुख्य शत्रु को (धमन्तम्) श्वास लेते—जीवते को (आवत्) बचावे (अध) और (नृमणाः) मनुष्यमात्र में मन से प्रेम रखने वाला (स्नीहितिम्) दुष्ट हिंसक सेना को (अप, द्राः) भगावे वा नष्ट करे ॥

न्यायकारी राजा को चाहिये कि मनुष्य मात्र में मन रक्खे और जो तमोगुणी शत्रु हों उन्हें नदी समुद्रादि के पार भाग जाने पर भी बहुत से सेना बल और बुद्धि बल से जीवतों को निग्रह कर के रक्खे और उन के साथी सामान्य दुष्ट मनुष्यों को दूर वा नष्ट करे ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १०९ निघण्टु २ । १ ॥ २ । १९ ॥ ३ । ९ के प्रमाण और ऋ० ८ । ९६ । १३ के पाठभेद को संस्कृतभाष्य में देखिये ॥१॥ (३२३)

अथ द्वितीयायाः ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २र

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥

॥२॥ (३२४)

पदपाठः—वृत्रस्य ६ । त्वा २ । श्वसथात् ५ । ईषमाणाः, विश्वे, देवाः१। अजहुः क्रि० । ये, सखायः १ । मरुद्भिः ३ । इन्द्र सं० । सख्यम् १ । ते ६ । अस्तु क्रि० । अथ अ० । इमाः, विश्वाः, पृतनाः २ । जयासि क्रि० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (ये) (विश्वे) सर्वे (देवाः) सज्जनाः (सखायः) सुहृदः शूराः (वृत्रस्य) शत्रोः (श्वसथात्) प्राणाद्बलाद्वा (ईषमाणाः) ईष्यमाणाः म्रियमाणाः (त्वा) त्वाम् (अजहुः) जह्युः [प्राणपरित्यागात्] तैः (मरुद्भिः) त्वदर्थं मरणमाप्नुवद्भिः सह (ते) तव (सख्यम्) सौहार्दम् (अस्तु) भवतु (अथ) ततः (विश्वाः) सर्वाः (पृतनाः) शत्रुसेनाः (जयासि) जयेः ॥

ये शूरा राज्ञोऽर्थे प्राणान्परित्यजन्ति तेषां तत्कुटुम्बानां वा पोषणेन राज्ञा पूर्णं सौहार्दं रक्षणीयम् तथानुष्ठिते राज्ञोजयो भवति।

श्वस प्राणने इत्यस्मादौणादिकेऽसथप्रत्यये श्वसथात् ५ ॥ ईष हिंसार्थस्ततः कर्मणः कर्तृवद्रूपव्यत्ययेन ईषमाणाः ॥ म्रियन्ते इन्द्रार्थे ते मरुतः शूरा मनुष्याः ॥ पृतना इति मनुष्यनाम निघं० २। ३ संग्रामनाम च २। १७ ततो योद्धारो ग्राह्याः॥ ऋग्वेदेपि ८। ९६। ७ ॥ २ ॥ (३२४)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (ये) जो (विश्वे) सब (देवाः) सज्जन (सखायः) मित्र वीरपुरुष (वृत्रस्य) अवरोधक शत्रु के (श्वसथात्) प्राण वा बल से (ईषमाणाः) मरते हुवे (त्वा) आप को (अजहुः) प्राण छूटने से त्याग दें उन (मरुद्भिः) आप के लिये मरने वालों के साथ (ते) आप की (सख्यम्) मित्रता [सलूक] (अस्तु) होनी चाहिये (अथ) इस से (विश्वाः) सब (पृतनाः) संग्रामों को (जयासि) जीतिये ॥

जो शूर वीर राजा के मित्र संग्राम में मारे जावें उन के और उन के कुटुम्बियों के साथ राजा को मित्रता निबाहनी चाहिये। ऐसा करने वाले राजा का विजय होता है ॥

निघण्टु २। ३॥ २। १७ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८। ९६। ७ में भी ॥ २ ॥ (३२४)

अथ तृतीयायाः—बृहदुक्थ ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३१ २३१र २र ३१र २र३ १२ ३ १ २
विधुं दद्राणꣳ समने बहूनां युवानꣳ सन्तं पलितो जगार ।
३१२ ३ १ २ ३ २उ ३२३ १र २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार सह्यः समान ॥३॥ (३२५)

पदपाठः—विधुम्, दद्राणम् २ । समने ७ । बहूनाम् ६ । युवानम्, सन्तम् २ पालितः १ । जगार क्रि० । देवस्य ६ । पश्य क्रि० । काव्यम् २ । महित्वा ३ । अद्य अ० । सः १ । ह्यः अ० । समान क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—ननु किं सुहृदो विनाश्य जयेनेत्यत आह । हे इन्द्र ! राजन् ! (विधुम्) चन्द्रमसम् (दद्राणम्) शीघ्रगम् (बहूनाम्) तारागणानां मध्ये (युवानम्) नवीनं तेजोधारणे विशिष्टं वा (सन्तम्) वर्त्तमानम् (पलितः) वृद्धः सूर्यः (जगार) गिरति तत्प्रकाशमात्मनि संहरति । एवं (समने) संग्रामे यः (ह्यः) (ममार) अम्रियत (सः) (अद्य) (समान) सम्यक् प्राणिति जीवति जन्मान्तरमेति । (देवस्य) परमात्मनः (काव्यम्) चातुर्यम् (महित्वा) महत्त्वेन (पश्य) ॥

न धर्मयुद्धे मृतानां शोकः कार्य्यः । परमात्मनः सृष्टिवैचित्र्यं पश्य । अयं चन्द्रमाःअद्य क्षीणकलः श्वः पूर्णकलो भविता । न चैतदप्याश्चर्यं मन्तव्यम् यद्युवानं वृद्धाः कथं मारयितुं शक्नुवन्ति इति । पश्य आकारेण वृद्धः सूर्य्यो हि आकारकृतालपवयस्कं चन्द्रं गिरति एवमेव ये शूराः संग्रामेऽद्य म्रियन्ते ते श्वो जन्मान्तरमेतारोऽनुष्ठितधर्मजनितसुखभोगान्प्राप्स्यन्ति । नहि शोच्याः ।

निरुक्तपरिशिष्टे २ । २८ इयमृगेवं व्याख्याता " विधुं विधमनशीलं दद्राणं दमनलीलं युवानं चन्द्रमसं पलित आदित्यो जगार गिरति सह्योम्रियते स दिवा समुदितेत्याधिदैवतम् । अथा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ध्यात्मम्–विधुं विधमनशीलं दद्राणं दमनशीलं युवानम् महान्तम् पलितः आत्मा गिरति रात्रौ म्रियते रात्रिः समुदितेत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ परिशिष्टस्य शैलीयं स्पष्टं नूतनाप्रतिभाति॥ समनम् इति संग्रामनाम निघं० २ । १७ कविरिति मेधाविनाम । निघं० ३ । १५ तस्येदं कर्म काव्यम् ॥ अन प्राणने इत्यस्य लिटि कालसामान्ये संपूर्वस्यसमान इति रूपम्॥ऋग्वेदे १ ०।५५।५ ऽपि ॥३ ॥(३२५)

भाषार्थः–तो फिर मित्रों को मरवा कर विजय से क्या लाभ है ? इस के उत्तर में कहते हैं कि–हे राजन् ! (दद्राणम्) शीघ्रगामी (बहूनाम्) बहुत तारों के बीच में (युवानम्) जवान नवीन वा अधिक तेजो धारी (सन्तम्) वर्त्तमान चन्द्रमा को (पलितः) बूढा सूर्य (जगार) निगल जाता है उस के ऊपर के प्रकाश को अपने में संहार कर लेता है इसी प्रकार (समने) संग्राम में (यः) जो (ह्यः) कल (ममार) मरा है (सः) वह (अद्य) आज (समान) भले प्रकार जीता है । (देवस्य) परमेश्वर के (काव्यम्) चातुर्य को (महत्वा) गहरे भाव से (पश्य) देख ॥

अर्थात् धर्मानुसार युद्ध में मरे हुवों का शोक नहीं करना । परमेश्वर की लीला को देखो कि बडा बूढ़ा सूर्य, जवान (छोटे) शीघ्रगामी चन्द्रमा के प्रकाश को निगल जाता है, अगले दिन फिर उस की कला पूरी हो जाती हैं । इसी प्रकार जो शूरवीर आज मृत्यु को प्राप्त हुवे हैं वे कल जन्मान्तर धारण करके अपने किये धर्म का उत्तम फल भोगेंगे । इन का शोक न करना चाहिये ।।

निरुक्त परिशिष्ट २ । २८ में इस का यह अर्थ लिखा है कि—"विधमन शील और दमनशील चन्द्रमा को बूढा सूर्य्य निगलता है । वह कल मरा आज फिर उग आता है । यह अधिदैवत हुवा, अब अध्यात्म सुनिये–विधमनशील और दमनशील युवा महत्तत्त्व को बूढा आत्मा निगल जाता है। यह रात्रि में मर जाता और अगले दिन फिर जाग उठता है । यह आध्यात्मिक अर्थ है"

इस निरुक्त के परिशिष्ट की शैली स्पष्ट नवीन प्रतीत होती है ॥ निघं० २ । १७ ॥ ३ । १५ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । ५५ । ५ में भी ॥ ३ ॥ (३२५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थ्याः—द्युतान ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।।

२ ३ २ ३२ ३ १२ ३१ २ ३ १२
त्वꣳ ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानो शत्रुभ्योऽअभवः शत्रुरिन्द्र ।
३१र २र ३१र २र ३२ ३१२ ३१२
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ।।
।।४।। (३२६)

पदपाठः—त्वम् १ । ह अ० । त्यत् अ० । सप्तभ्यः ४ । जायमानः १ । अशत्रुभ्यः ४ । अभवः क्रि० । शत्रुः १ । इन्द्र सं० । गूढे, द्यावापृथिवी २ । अनु—अविन्दः क्रि० । विभुमद्भ्यः, भुवनेभ्यः ४ । रणम् २ । धाः क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (त्वम्) (ह) निश्चयेन (त्यत्) तत् तस्मात् (जायमानः) प्रसिद्धः (सप्तभ्यः) एकस्यां दिशि स्वस्य वर्तमानत्वादवशिष्टसप्तदिग्वर्त्तिभ्यः (अशत्रुभ्यः) त्वां शातयितुमक्षमेभ्यः द्विषद्भ्यः (शत्रुः) शातयिता (अभवः) भव । (गूढे) गुप्ते (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिव्यौ (अनुअविन्दः) प्राप्नुहि । (विभुमद्भ्यः) ऐश्वर्यशालिभ्यः (भुवनेभ्यः) देशेभ्यः तद्रक्षापालनार्थम् (रणम्) संग्रामं (धाः) धारय ।। ऋ० ८ । ९६ । १६ ऽपि ।। ४ ।। (३२६)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (त्वम्) तू (ह) निश्चय (त्यत्) इस कारण (जायमानः) प्रसिद्ध हुआ (सप्तभ्यः) एक दिशा में अपने रहने से शेष ७ दिशाओं के ७ (अशत्रुभ्यः) तेरा नाश न कर सकने वाले विद्वेषियों के लिये (शत्रुः) उन का नाशक (अभवः) होवे (गूढे) छिपे (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के स्थानों को (अन्वविन्दः) प्राप्त होवे और (विभुमद्भ्यः) ऐश्वर्यशाली (भुवनेभ्यः) देशों के लिये [उन की रक्षा और पालनार्थ] (रणम्) संग्राम को (धाः) धारण करे ।। ऋ०८।९६ १६ में भी ।।४।। (३२६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ पञ्चम्याः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३१र २र ३१ २ ३१ २ ३ १२ ३२ ३१ २
मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पूरुधस्मानं वृषभꣳस्थिरप्सुम् ।
३ २र ३ १ २ ३१र २र ३१ २३१२
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥५॥ (३२७)

पदपाठः—मेडिम् २। न अ० । त्वा, वज्रिणम्, भृष्टिमन्तम्, पूरुधस्मानम्, वृषभम्, स्थिरप्सुम् २। करोषि क्रि० । अर्यः १ । तरुषीः २ । दुवस्युः १ । इन्द्र सं० । द्युक्षम्, वृत्रहणम् २ । गृणीषे क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! त्वम् (अर्यः) स्वामी (तरुषीः) हिंसित्रीः शत्रुसेनाः (करोषि) नष्टा इति शेषः । अतएव (त्वा) त्वाम् (वज्रिणम्) वज्रधरम् (भृष्टिमन्तम्) भर्जयन्ति शत्रूननया सा भृष्टिः शतघ्नी तद्वन्तम् (पूरुधस्मानम्) बहुदस्मानं बहुक्षयकरम् (वृषभम्) कामपूरकम् (स्थिरप्सुम्) स्थिररूपम् (द्युक्षम्) दिवि न्यायप्रकाशे निवसन्तम् (वृत्रहणम्) शत्रुहन्तारम् (दुवस्युः) परिचरणमिच्छुरहं (मेडिम्, न) वेदवाचमिव (गृणीषे) गृणामि स्तौमि ॥

मेडिरिति वाङ्नाम निघं० १ । ११ ॥ पुरुधस्मानमित्यत्र दसु उपक्षये इत्यस्य दस्य वर्णव्यत्ययेन धत्वं बोध्यम् ॥ प्सु इति रूपनाम निघं० ३ । १ ॥ अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः ३ । १ । १०३ वनुष्यति इति हन्तिकर्मा ० ० ० तरुष्यतिरप्येवंकर्मा निरु० ५ । २ ततस्तरुषीः ॥ दुवस्यतिः परिचरणकर्मा निघं० ३ । ५ तदिच्छुः ॥ गृणीषे इति पुरुषव्यत्ययः ॥ ५ ॥ (३२७)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! आप (अर्यः) स्वामी (तरुषीः) हिंसक शत्रुसेनाओं को (करोषि) [नष्ट] करते हैं अतः (वज्रिणम्) वज्रधारी (भृष्टि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मन्तम्) शत्रुओं के भूनने की तोपों वाले (पूरुधस्मानम्) बहुत ध्रुवां धार नाश करने वाले (वृषभम्) कामना के पूरक (स्थिरप्सुम्) स्थिर रूप (द्युक्षम्) न्यायप्रकाश में स्थित (वृत्रहणम्) शत्रुहन्ता (त्वा) आप को (दुवस्युः) शुश्रूषा करना चाहने वाला मैं (मेडिं न) वेदवाणी के समान (गृणीषे) प्रशंसित करता हूं ॥

निघण्टु १।११॥ ३।१॥ ५।२॥ ३।५॥ अष्टाध्यायी ३।१।१०३इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (३२७)

अथ षष्ठयाः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिपदा विराट् छन्दः ॥

१ २ ३१२३ १२ ३ १२३१ २३१ २
प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
१२ ३१र २र ३ २
विशः पूर्वीः प्रचर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥ (३२८)

पदपाठः—प्र अ० । वः ६ । महे, महे, वृधे ४। भरध्वम् क्रि०। प्रचेतसे ४। प्र अ०। सुमतिम् २। कृणुध्वम् क्रि० । विशः, पूर्वीः २ । प्रचर क्रि० । चर्षणिप्राः १॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः ! (वः) युष्माकं (महे) महते (वृधे) वर्धकाय (महे) सत्कारार्हाय (प्रचेतसे) बुद्धिमते यूयं (प्र- भरध्वम्) करादिकं प्रदत्त (सुमतिम्) मनसा आनुकूल्यं च (प्र—कृणुध्वम्) कुरुत । हे राजन् ! (चर्षणिप्राः) मनुष्याणां पालकस्त्वम् (पूर्वीः) सनातनीः (विशः) प्रजाः (प्रचर) अनुकूलय ॥ ऋग्वेदे तु ७ । ३१ । १० "महि वृधे" इति "प्रचरा" इति चान्तरम् ॥६॥ (३२८)

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (महे वृधे) बड़े वर्धक (महे) सत्कारयोग्य (प्रचेतसे) बुद्धिमान् राजा के लिये तुम (प्र भरध्वम्) कर भरो और (सुमतिम्) अनुकूलता (प्र कृणुध्वम्) करो। हे राजन्! (चर्षणिप्राः) मनुष्यों के पालक तुम (पूर्वीः) सनातनी (विशः) प्रजाओं को (प्रचर)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अनुकूल रक्खो ।। ऋ० ७ । ३१ । १० में "महि वृधे" और "प्रचरा" ऐसा पाठ है ।। ६ ।। (३२८)

अथ सप्तम्याः विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३१ २ ३१२३१२१२उ ३१२३
शुन ꣳ हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं
१२ ३१२३२३१२३२ ३१२३
वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृ-
१२३२३ १२
त्राणि संजितं धनानि ॥७॥ (३२९)

पदपाठः—शुनम् २ । हुवेम क्रि० । मघवानम्, इन्द्रम् २ । अस्मिन्, भरे ७ । नृतमम् २ । वाजसातौ ७ । शृण्वन्तम्, उग्रम् २ । ऊतये ४ । समत्सु ७ । घ्नन्तम्, वृत्राणि, संजितम्, धनानि २ ।।

अन्वितपदार्थः—वयम् प्रजाजनाः (शुनम्) सुखकरम् (मघवानम्) धनवन्तम् (नृतमम्) नृषूत्तमम् (अस्मिन्, भरे, वाजसातौ, शृण्वन्तम्) बिभ्रति जयलक्ष्मीमनेन योद्धार इति भरः संग्रामस्तस्मिन्, वाजस्य बलस्य सातिर्लाभो यत्र सोऽयं वाजसातिस्तस्मिन्, श्रवणकरम् (उग्रम्) शत्रूणां नाशकं (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तम्) संग्रामेषु दुष्टशत्रुसैन्यानि नाशयन्तम् (धनानि संजितम्) शत्रुधनानि संजयन्तम् (इन्द्रम्) राजानम् (ऊतये) रक्षायै (हुवेम) आह्वयामहे ।।

शुनमिति सुखनाम निघं० ३ । ६ ।। भरे इति वाजसाताविति समत्सु इति च संग्रामनाम निघं० २ । १७ ऋग्वेदे तु ३ । ३० । २२ ।। धनानामित्यन्तरम् ।।७।। (३२९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः– हम प्रजायें (शुनम्) सुखदायी (मघवानम्) धनवान् (नृतमम्) मनुष्यों में उत्तम (अस्मिन्, भरे, वाजसातौ, शृण्वन्तम्) इस जयलक्ष्मी भरने के, संग्राम में, सुनने वाले (उग्रम्) शत्रुनाशक (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तम्) संग्रामों में शत्रुसेनाओं को मारने वाले (धनानि संजितम्) धनों के जीतने वाले (इन्द्रम्) राजा को (ऊतये) रक्षा के लिये (हुवेम) आव्हान करती हैं ।।

निघण्टु ३ । ६ ।। २ । १७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० ३ । ३० । २२ में "धनानाम्" पाठ है ।।७।। (३२९)

अथाऽष्टम्याः–वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।।

२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रꣳसमर्ये महया वसिष्ठ।
१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो
१ २
वचाꣳसि ॥ ८ ॥ (३३०)

पदपाठः–उत्, उ अ० । ब्रह्माणि २ । ऐरत क्रि० । अवस्या, इन्द्रम् २ । समर्ये ७ । महय क्रि० । वसिष्ठ सं० । आ अ० । यः १ । विश्वानि २ । अवसा ३ । ततान क्रि० । उपश्रोता क्रि० । मे, ईवतः ६ । वचांसि २ ।।

अन्वितपदार्थः–(वसिष्ठ) अतिशयेन श्रेष्ठ ! त्वम् (मे) मम परमेश्वरस्य (ईवतः) व्यापकस्य (श्रवस्या) श्रवस्यानि श्रवसे अन्नाय [निघं० २।७] धनाय [२।१] वा हितानि (ब्रह्माणि) वेदोक्तानि (वचांसि) वचनानि (आ–उप—श्रोत) श्रद्धया शृणु (उ) तथा (यः) इन्द्रो राजा (श्रवसा) धनधान्यादिना(विश्वानि) सर्वाणि जगन्ति (ततान) विस्तृणीते तम् (इन्द्रम) राजानम् (समर्ये) संग्रामे निमित्ते (उत् ऐरत) उच्चैःप्रभावं कुरु (महय) सत्कुरु ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

समर्ये इति संग्रामनाम निघं० २ । १७॥ ईवत इति ईन्वतेर्व्याप्तिकर्मणो रूपम् । निघं० २ । १८ ॥ ऋग्वेदे तु ७ । २३ । १ शवसेति पाठः ॥ ८ ॥ (३३०)

भाषार्थः—(वसिष्ठ) हे अति श्रेष्ठ मनुष्य ! तू (मे) मुझ (ईवतः) व्यापक परमेश्वर के (ब्रह्माणि) वेदोक्त (अवस्या) धन धान्यादि के लिये हितकारी (वचांसि) वचनों को (आ–उप–शृत) श्रद्धा से सुन (उ) तथा (यः) जो (अवसा) धन धान्यादि से (विश्वानि) सब जगतों को (ततान) विस्तृत करता है उस (इन्द्रम्) राजा को (समर्ये) संग्राम निमित्त (उत् ऐरत) उच्चप्रभावशाली कर (महय) और सत्कृत कर ॥

निघण्टु २ । ७ ॥ २ । ९ ॥ २ । १७ ॥ २ । १८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । २३ । १ में "शवसा" यह पाठ है ॥८॥ (३३०)

अथ नवम्याः—गौरिवीतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३१र २र ३ १र २र ३१र २र ३ १र २र
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्छ्च्छद्यात् ।
३ १र २र ३ २र ३ २ ३१र २र ३ १ २
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयोगोष्वदधाओषधीषु ॥९॥ (३३१)

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥

पदपाठः—चक्रम्, यत् १ । अस्य ६ । अप्सु ७ । आ अ० । निषत्तम् १ । उतो अ० । तत् १ । अस्मै ४ । मधु २ । इत् अ० । चच्छद्यात् क्रि० । पृथिव्याम् ७ । अतिषितम्, तत्, ऊधः १ । पयः २ । गोषु ७ । अदधाः क्रि० । ओषधीषु ७ ॥

अन्वितपदार्थः—(यत्) (अस्य) राज्ञः (चक्रम्) आज्ञाचक्रम् (अप्सु) नद्यादिजलेषु (निषत्तम्) निषण्णं वर्त्तमानं भवेत् (उतो) तदा (तत्) चक्रम् (अस्मै) राज्ञे (मधु,इत्) जलमपि (चच्छद्यात्) सर्वतश्छन्नं कुर्यात् किञ्च (पृथिव्याम्) भूमौ (अतिषितम्) अतिबद्धं मुक्तं सत् तदेव (यत्) (ऊधः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जलम् [कुल्यादिरूपेण] (गोषु) गवादिपशुषु (ओषधीषु) गोधूमादिषु (पयः) रसम् (आ–अदधाः) आदधाति ॥

मधु इति पय इति च उदकनाम निघं० १ । १२ ऊधइति वहतेर्धातोः–सर्वधातुभ्योऽसुन् (उणा० ४ । १८९) इत्यसुनि बाहुलकात्संप्रसारणदीर्घत्वधत्वविधानम् । ऊधः उदकमिति सायणोऽपि ॥ ऋग्वेदे १० । ७३ । ९ ऽपि ॥९॥ (३३१)

भाषार्थः– (यत्) जो (अस्य) इस राजा का (चक्रम्) आज्ञा रूपी चक्र (अप्सु) नदी आदि जलाशयों पर (निषत्तम्) स्थित हो (उतो) तो (तत्) वह चक्र (अस्मै) इस राजा के लिये (मधु इत्) जल को भी (चच्छदात्) सब ओर छाय दे किञ्च–(पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अतिषितम्) छोड़ा हुवा (यत्) जो (ऊधः) बहने वाला जल [नहर आदि द्वारा] (गोषु) गवादि पशुवों और (ओषधीषु) गेहूं आदि ओषधियों में (पयः) रस का (आ–अदधाः) आधान करे ॥

यदि राजा का राज्य जलाशयों पर हो तो नहर आदि निकाल कर, पशु और कृषि की बड़ी उन्नति हो ॥

निघण्टु १ । १२ उणादि ४ । १८९ सायणाचार्य्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । ७३ । ९ में भी ॥ ९ ॥ (३३१)

*यह तृतीयाध्याय में दशवीं दशति समाप्त हुई ॥ १० ॥ *

—:o:—

त्यमूषु तार्क्ष्यदैवत्या अष्टम्या इन्द्रपर्वतौ ।
सप्तम्याश्च तथेन्द्रस्य त्रिष्टुभोऽष्टौ दशस्मृताः ॥१॥

अथैकादशी दशतिस्तत्र

प्रथमायाः–अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यपुत्र ऋषिः । तार्क्ष्यो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३१२ ३ १ ३२ ३२३ १ २
त्यमूषु वाजिनं देवजूतꣳ सहोवानं तरुतारꣳ रथानाम् ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुꣳ स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १॥(३३२)

पदपाठः—त्यम् २ । उ, सु अ० । वाजिनम्, देवजूतम्, सहोवानम्, तरुतारम् २ । रथानाम् ६ । अरिष्टनेमिम्, पृतनाजम्, आशुम् २ । स्वस्तये ४ । तार्क्ष्यम् २ । इह अ० । आ हुवेम क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(त्यम् उ) तमेव (वाजिनम्) अन्नवन्तम् (देवजूतम्) देवैः प्रीतम् (सहोवानम्) सहस्वन्तम् (रथानाम्) रमणीयानां तारागणानां (तरुतारम्) तारकम् (अरिष्टनेमिम्) अकुण्ठितवज्रम् (पृतनाजम्) सेनानां जेतारम् (आशुम्) योऽश्नोति व्याप्नोति तम् (तार्क्ष्यम्) अन्तरिक्षे आकाशे क्षियति निवसति व्याप्नोति तं परमेश्वरम् (स्वस्तये) कल्याणाय (इह) जगति वर्त्तमाना वयम् (सु आ हुवेम) सम्यगाह्वयामहे ॥

श्लेषालङ्कारेण राजविषयोऽपि व्याख्यातो बोध्यः ॥

हुवेम इत्यत्र-बहुलं छन्दसि ६ । १ । ३४ इति ह्वयतेः संप्रसारणम् । लिङ्याशिष्यङ् ३ । १ । ८६ यद्वा लिङिव्यत्ययेन शः (३।१।८५) देवजूतम्—जू इति सौत्रो धातुस्ततः क्तः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ॥ सहोवानमित्यत्र मत्वर्थीयोवनिप् ॥ रथानाम्—रथो रंहतेर्गतिकर्मणः निरु० ८ । ११ रंहणशीला इमे लोकाः इति सायणः ॥ तरुतारम्—तरतेस्तृचि, ग्रसितस्कभितेत्यादिना ७ । २ । ३४ सिद्धम् ॥ अरिष्टनेमिम्—रिष हिंसार्थः अरिष्टमहिंसितं नेमिर्नमनशीलमायुधं यस्य तम् । नेमिरिति वज्रनाम निघं० २ । २० ॥ पृतनाजम्—पृतनानां क्षेपकम् अज गतिक्षेपणयोः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अस्मात् किपि वलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते (२ । ४ । ५६ वा०) इति वीभावाऽभावः ॥ इमामृचमेवं यास्को व्याचष्टे—

" तार्क्ष्यस्त्वष्ट्राख्यातः। तीर्णेऽन्तरिक्षे क्षियति तूर्णमर्थं रक्षत्यश्नोतेर्वा (त्यमूषुवाजिनम्—इत्यादि । ऋ० १०।१७८। १ सहावानमित्येवान्तरम्) तं भृशमन्नवन्तं जूतिर्गतिः प्रीतिर्वा देवजूतं देवगतं देवप्रीतं वा सहस्वन्तं तारयितारं रथानामरिष्टनेमिं पृतानाजितमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिह ह्वयेमेति" निरु० १० । २७–२८ ॥१॥ (३३२)

भाषार्थः—(त्यम् उ) उस ही (वाजिनम्) धान्यादि के दाता (देवजूतम्) देवतों से प्रसन्न (सहोवानम्) महाबली (रथानां तरुतारम्) रमणीय लोक लोकान्तरों के अधर तिराने वाले (अरिष्टनेमिम्) अकुण्ठित वज्रधारी (पृतनाजम्)शत्रु सेनाओं के जेता (आशुम्) व्यापक (तार्क्ष्यम्) परमेश्वर सर्वव्यापक को (स्वस्तये) कल्याणार्थ (इह) इस जगत् में वर्त्तमान हम (सु आ हुवेम) भले प्रकार पुकारते हैं ॥

श्लेषालङ्कार से इस में राजविषय भी उपदिष्ट जानो ॥

अष्टाध्यायी ६। १। ३४॥ ३ । १। ८६ ॥ ३ । १। ८५॥ ७ । २ । ३४ ॥ २। ४ । ५६ वा० ॥ निरुक्त ८ । ११ ॥ १० । २७–२८ ॥ निघण्टु २ । २० ॥ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ऋ० १०। १७८। १ में "सहावानम्" इतना पाठ में भेद है ॥१॥ (३३२)

अथ द्वितीयायाः—भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ।

३ २ ३ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदꣳ हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥२॥ (३३३)

पदपाठः—त्रातारम्, इन्द्रम्, अवितारम्, इन्द्रम् २ । हवे, हवे ७ । सुह-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वम्, शूरम्, इन्द्रम् २ । हुवे क्रि० । नु अ० । शक्रम्, पुरुहूतम्, इन्द्रम्, इदम्, हविः २ । मघवा १ । वेतु क्रि० । इन्द्रः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(त्रातारम्, इन्द्रम्) पालकं परमेश्वरम् (अवितारम् इन्द्रम्) रक्षकं परमेश्वरम् (हवे, हवे) प्रत्याह्वानं (सुहवम्) सुगमाह्वानम् (शूरम्) वीरम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (शक्रम्) शक्तिमन्तम् (पुरुहूतम्) वेदेषु बहुशआहूतम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तम् (हुवे) आह्वये (मघवा) अनन्तधनवान् (इन्द्रः) परमेश्वरः (इदम्) अस्माभिरनुष्ठितम् (हविः) आह्वानं (नु) क्षिप्रम् (वेतु) जानातु ॥

अत्राऽपि श्लेषालङ्कारेण राजस्तुतिरुपदिष्टा बोध्या ॥ ऋग्वेदे तु ६ । ४७ । ११ "पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्तिनो मघवा धात्विन्द्रः" इत्यन्तरम् ॥२॥ (३३३)

भाषार्थः—(त्रातारम्, इन्द्रम्) पालक परमेश्वर (अवितारम्, इन्द्रम्) रक्षक परमेश्वर (हवे, हवे, सुहवम्) जब २ पुकारें तब २ सुगमता से पुकारने योग्य (शूरम् इन्द्रम्) वीर परमेश्वर (शक्रम्) शक्तिमान् (पुरुहूतम्) वेदों में सब से अधिक पुकारे जाने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् को (हुवे) पुकारता हूं (मघवा) अनन्तधन (इन्द्रः) परमेश्वर (इदम्) इस (हविः) पुकार को (नु) शीघ्र (वेतु) ज्ञात करे ॥

इस में भी श्लेषालङ्कार से राजा की प्रशंसा का उपदेश जानो ॥ ऋ० ६ । ४७ । ११ में जो पाठ में अन्तर है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥ (३३३)

अथ तृतीयस्याः—वसुक्रो विमदो वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिण ꣳ हरीणा ꣳ रथ्यां३ विव्र-

१ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १

तानाम् । प्र इमश्रुभिर्दोधुवद्वर्ध्वधा भुवद्धि सेनाभिर्भ-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२ ३ १र २र

यमानो वि राधसा ॥३॥ (३३४)

पदपाठः— यजामहे क्रि० । इन्द्रम्, वज्रदक्षिणम् २ । हरीणाम् ६ । रथ्याम् २ । विव्रतानाम् ६ । प्र अ० । श्मश्रुभिः ६ । दोधुवत् क्रि० । ऊर्ध्वधाः अ० । भुवत् क्रि० । वि अ० । सेनाभिः ३ । भयमानः १ । वि अ० । राधसा ३॥

अन्वितपदार्थः— वयम् (वज्रदक्षिणम्) वज्रो दक्षिणश्चतुरो तस्य तम् (हरीणाम्) ये हरन्ति तेषाम् (विव्रतानाम्) विविधकर्मणाम् (रथ्याम्) मार्गोपदेशकम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम् राजानं वा (यजामहे) पूजयामः सत्कुर्मो वा । तत्फलमाह—यतः (राधसा) धनेन (वि) वियुक्तः (सेनाभिः) (वि) वियुक्तः (भयमानः) भीतः (ऊर्ध्वधाः) इतस्ततः पलायितः (भुवत्) भवेत् शत्रुरिति शेषः । (श्मश्रुभिः) श्मश्रूपलक्षितैरोमभिः (प्र-दोधुवत्) अत्यन्तकम्पितः स्यात् ॥

व्रतमिति कर्मनाम । निघं० २।१ राध इति धननाम च २।१० ॥ ऋग्वेदे तु १०।२३।१ "यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं ¦ विव्रतानाम्। प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्विसेनाभिर्दयमानो विराधसा" इत्यन्तरम् ॥३॥ (३३४)

भाषार्थः—हम (वज्रदक्षिणम्) चतुर वज्र वाले (हरीणाम् विव्रतानाम् रथ्याम्) हरने वाले विविध कर्मों के मार्गोपदेशक (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा का (यजामहे) पूजन वा सत्कार करते हैं । आगे इस का फल कहते हैं—जिस से (राधसा) धन से (वि) वियुक्त और (सेनाभिः) सेनाओं से (वि) वियुक्त (भयमानः) भयभीत हुवा [शत्रु] (ऊर्ध्वधाः) इधर उधर भागा (भुवत्) होवे और (श्मश्रुभिः) मूंछ और रोमाञ्चों से (प्र दोधुवत्) अत्यन्त कम्पमान होवे ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघण्टु २।१।।२।१० के प्रमाण और ऋग्वेद १०।२३।१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ।।३।। (३३४)

अथ चतुर्ष्वाः— वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।।

३ २ १ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभꣳ सुवज्रम्। हन्ता

२ ३ १ २ २ २ ३ २ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यो वृत्रꣳ सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः।४।(३३३)

पदपाठः—सत्राहणम्, दाधृषिम्, तुम्रम्, इन्द्रम्, महाम्, अपारम्, वृषभम्, सुवज्रम् २। हन्ता क्रि०। यः १। वृत्रम् २। सनिता क्रि०। उत अ०। वाजम् २। दाता क्रि०। मघानि २। मघवा, सुराधाः १ ।।

अन्वितपदार्थः—(यः) परमेश्वरो राजा वा (वृत्रम्) अस्मदपवारकं शत्रुं (हन्ता) मारयिष्यति (उत) च (वाजम्) अन्नं बलं वा (सनिता) विभक्तं करिष्यति । यश्च (मघवा) यज्ञवान् (सुराधाः) शोभनधनः (मघानि) धनानि (दाता) दास्यति तं (सत्राहणम्) सत्येनाऽसत्यस्य हन्तारम् (दाधृषिम्) भृशं प्रगल्भम् (तुम्रम्) प्रेरकम् (महाम्) महान्तम् (अपारम्) अपारविद्यं गभीराशयम् (वृषभम्) कामानां पूरकम् (सुवज्रम्) शोभनो न्यायानुगतो दण्डस्तद्वन्तम् (इन्द्रम्) परमेश्वरं राजानं वा यजामहे इति पूर्वेण सम्बन्धः ।।

सत्रेति सत्यनाम । निघं० ३ । १० ।। तुमिः प्रेरणकर्मेति सायणः ।। ऋग्वेदे ४ । १७ । ८ ऽपि ।। ४ ।। (३३५)

भाषार्थः—(यः) जो (मघवा) यज्ञवाला (सुराधाः) सुन्दर धनवाला (वृत्रम्) हमारे विघ्नकारक शत्रु को (हन्ता) मारेगा (उत) और (वाजम्) धन वा बल का (सनिता) विभाग करेगा (मघानि) धनों को (दा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ता) देगा उस (सत्राहणम्) सत्य से असत्य के नाशक (दाधृषिम्) अति प्रगल्भ (तुम्रम्) प्रेरक (महान्) बड़े (अपारम्) अपार विद्या और गंभीराशय वाले (वृषभम्) कामनाओं के पूरक (सुवज्रम्) न्यायानुसारी दण्ड के धर्त्ता (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को [पूजित वा सत्कृत करते हैं] यह पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति जानिये ।।

निघण्टु ३ । १० और सायणाचार्य के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ।। ऋ० ४ । १७ । ८ में भी ॥ ४ ।। (३३५)

अथ पञ्चम्याः—ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ १.२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो नो वनुष्यन्नाभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्यमानस्तुरोवा ।
३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः
॥५॥ (३३६)

पदपाठः—यः १ । नः २ । वनुष्यन् १ । अभि-दाति क्रि० । मर्त्तः १ । उगणाः २ । वा अ० । मन्यमानः, तुरः १ । वा अ० । क्षिधि क्रि० । युधा, शवसा ३ । वा अ० । तम् २ । इन्द्र सं० । अभि अ० । स्याम क्रि० । वृषमणः, त्वोताः १ ॥

अन्वितपदार्थः— (इन्द्र) हे परमेश्वर ! वा राजन् ! (यः) कश्चित् (मन्यमानः) मानी (वा) (तुरः) हिंसकः (मर्त्तः) मनुष्यः (नः) अस्मान् (वा) अथवा (उगणाः) उत्कृष्टगणाः प्रजाः (वनुष्यन्) घ्नन् (अभि दाति) आभिमुख्येनागच्छति (तम्) (क्षिधि) नाशय (त्वोताः) त्वया रक्षिताः (वृषमणः) वृषा इवाचरन्तो बलवन्तो वयम् (शवसा) बलेन (युधा) युद्धेन (वा) (अभिष्याम) अभिभवेम ॥

वनुष्यतिर्हन्तिकर्मा निरु० ५।२ ॥ तुर इति तुर्वी हिंसायामित्यस्य रूपम् ॥ क्षिधी इत्यत्र—अङितश्चेति ६।४।१०३ हेर्धिः।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दृव्यचोऽतस्तिङः ६।३।१३५ इति दीर्घः ॥ अभीत्यत्र—निपातस्य चेति ६।३।१३६ दीर्घः ॥५॥ (३३६)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वा) राजन् ! (यः) जो कोई (मन्यमानः) मानी घमण्डी (वा) अथवा (तुरः) हिंसक (मर्त्तः) मनुष्य (नः) हम को (वा) अथवा (उगणाः) श्रेष्ठ प्रजाओं को (वनुष्यन्) हनन करता हुवा (अभिदाति) सामने आता है (तम्) उस को (क्षिधि) नष्ट कीजिये और (स्वोताः) आप से रक्षा किये हुवे (वृषमणः) बलवान् हम लोग उस को (शवसा) बल से (वा) वा (युधा) युद्ध से (अभि स्याम) दबावें ।।

निरुक्त ५ । २ अष्टाध्यायी ६ । ४ । १०३ ॥ ६ । ३ । १३५—१३६ ॥ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (३३६)

अथ षष्ठ्याः—अपि ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

२३१२ ३२३ १२ ३ २ ३१२ ३१२३ १२ १२
यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते । यꣳ
२२ ३ २३ १२२३१२२ ३ १ २ ३
शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥६॥ (३३७)

पदपाठः—यम् २ । वृत्रेषु ७ । क्षितयः, स्पर्धमानाः १ । यम् २ । युक्तेषु ७ । तुरयन्तः १ । हवन्ते क्रि० । यम् २ । शूरसातौ ७ । यम् २ । अपाम् ६ । उपज्मन् ७ । यम् २ । विप्रासः १ । वाजयन्ते क्रि० । सः, इन्द्रः १ ।।

अन्वितपदार्थः—(यम्) (वृत्रेषु) दस्युषु आपतत्सु (स्पर्धमानाः) क्रोधं कुर्वाणाः (क्षितयः) मनुष्याः (हवन्ते) आह्वयन्ते (सः) वीरः पुरुषः (इन्द्रः) इन्द्रपदवाच्यो बोध्यः । (यम्) यं च (युक्तेषु) सन्नद्धेषु शत्रुषु (तुरयन्तः) हिंसन्तो योद्धारः हवन्ते स सेनापतिरपीन्द्रपदवाच्यः । (यम्) यं च (शूरसातौ) शूराणां सातिः संविभागो यत्र तस्मिन्प्रवर्तमाने संग्रामे हवन्ते स इन्द्रः । (यम्) यं च (अपाम्) वृष्टिजलानाम् (उपज्मन्) उपज्मनि वर्षासु निमित्तभूतासु हवन्ते जुह्वति स सूर्यो मध्यस्थानदेवो

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वापीन्द्रपदवाच्यः । (यम्) यं च (विप्रासः) मेधाविनो ज्ञानिनः (वाजयन्ते) स्तुवन्ति स परमेश्वरश्चापि मुख्य इन्द्रपदवाच्यः ॥

क्षितय इति मनुष्यनाम निघं० २।३ ॥ शूरसाताविति संग्रामनाम २ ।१७ ॥ उपज्मन् इति उपपूर्वस्य अज गतिक्षेपणयोरित्यस्य रूपम् । आपः समीपे यस्मिन्काल आगच्छन्ति सोऽपामुपज्मा वर्षाकालः तस्मिन् । सुपां सुलुगित्यादिना ७।१ ।३९ सप्तम्यालुक् ॥ विप्रासइत्यत्र-आज्जसेरसुक् ७।१।५० इत्यसुक् ॥ वाजयतीत्यर्चतिकर्मा निघं० ३ ।१४ ॥६॥ (३३७)

भाषार्थः— (यम्) जिस को (वृत्रेषु) रोकने वाले दस्युओं के आपड़ने पर (स्पर्धमानाः क्षितयः) क्रुद्ध हुवे वीर मनुष्य (हवन्ते) पुकारते हैं (सः) वह शूर पुरुष (इन्द्रः) इन्द्र कहाता है (यम्) और जिस को (युक्तेषु) शत्रुवों के सन्नद्ध होने पर (तुरयन्तः) मारते हुवे योद्धा लोग चाहते हैं वह सेनापति भी इन्द्र कहाता है । (यम्) और जिस को (शूरसातौ) शूरवीरों के विभाग वाले संग्राम में पुकारते हैं वह भी इन्द्र पद का वाच्य है । (यम्) और जिस को (अपाम्) वृष्टिजलों के (उपज्मन्) सामीप्य समय में हवन्ते= हवन करते हैं वह सूर्य वा मध्यस्थान देव भी इन्द्र पद का वाच्य है। (यम्) और जिस को (विप्रासः) ज्ञानी लोग (वाजयन्ते) स्तुत करते हैं वह परमेश्वर भी मुख्य करके इन्द्र कहाता है ॥

निघण्टु २।३॥२।१७॥३।१४ अष्टाध्यायी ७।१।३९॥७।१।५०॥ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥ (३३७)

अथ सप्तम्याः—विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रा पर्वतौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३१र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आवहतꣳ सुवीराः ।
३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
वीतꣳ हव्यान्यध्वरेषुदेवावर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥७॥(३३८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—इन्द्रापर्वता सं० । बृहता, रथेन ३ । वामीः, इषः २ । आवहतम् क्रि० । सुवीराः २ । वीतम् क्रि० । हव्यानि २ । अध्वरेषु ७ । देवा सं० । वर्द्धेथाम् क्रि० । गीर्भिः, इडया ३। मदन्ता १ ॥

अन्वितपदार्थः—(देवा) दिव्यस्वभावौ ! (इन्द्रापर्वता) इन्द्रापर्वतौ ! इन्द्रो विद्युत् पर्वतो मेघश्च तौ युवाम् (बृहता) महता (रथेन) रमणीयेन मार्गेण (सुवीराः) शोभनवीरवतीः (वामीः) उत्तमाः (इषः) अन्नसामग्रीः [अप इत्यर्थः अद्भिरेव वृष्टाभिरन्नानि जायन्ते] (आवहतम्) प्रापयतम् (अध्वरेषु) यज्ञेषु (हव्यानि) हुतानि द्रव्याणि (वीतम्) प्राप्नुतम् खादतं वा (गीर्भिः) वेदवाग्भिः सह हुतया (इडया) अन्नरूपया हुतसामग्र्या (मदन्ता) मदन्तौ हृष्टौ सन्तौ (वर्धेथाम्) वृद्धिं प्राप्नुताम् ॥

विद्युन्मेघश्च जलं वर्षयतस्ततोऽन्नादेरुत्पादो भवति तदर्थं मनुष्यैर्यज्ञा अनुष्ठातव्या येषु वेदवाग्भिः सह सुगन्धमिष्टपुष्टरोगनाशकादिद्रव्याणि हूयन्ते तैश्च विद्युन्मेघयोराप्यायनं वृद्धिश्च जायते ॥ जडसंबोधनं च प्रत्यक्षकृतानामृचां शैलीतिपूर्वमेव निरुक्तमतेन प्रत्यपादि ॥

इन्द्रपर्वताभ्यां सेनासभाधीशावप्युपदिष्टौ बोध्यौ ॥ ऋग्वेदे ३ । ५३ । १ ऽपि ॥ अहो ! ज्वालाप्रसादस्य भाष्यकर्तृत्वम्—येन कलिकातामुद्रितं भ्रान्तिमूलकं "मदन्ताम्" इति मूलपाठमशुद्धमज्ञात्वा तथैव स्वपुस्तकेऽपि मुद्रणमारब्धम्। भाष्ये च "मदन्ता" इति शुद्धपाठस्यैव व्याख्या विद्यते । तत्राऽपि सा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यणीयभाष्यस्य शुद्धपाठोपलब्धिरेव कारणं, न तु ज्ञानम् । सामगानपाठे चाऽपि मकारराहित्यं नालोचितं तेन । सायणभाष्यस्थपाठानुसारं व्याख्यातवताऽपि मूलपाठशुद्धिर्नालोचिता । आवहतम् इति लोण्मध्यमद्विवचनमपि कलिकातामुद्रितपुस्तकस्थाऽशुद्धपाठदर्शनभ्रान्त्या "आवहन्तम्" इति व्याख्यातम्, तत्सामानाधिकरण्यगतानि सर्वाण्यन्यानि पदानि चाऽपि तथैवाऽशुद्धानि व्याख्यातानि । ईदृक्पाण्डित्यबलेनैव च नरनारायणाद्यवतारसाधकभाष्यकर्त्तृत्वसाहसोऽस्य श्लाघ्य एव ॥७॥(३३८)

भाषार्थः— (देवा) दिव्यस्वभावौ (इन्द्रापर्वता) बिजुली और मेघो ! तुम २ (बृहता) बड़े (रथेन) रमणीय मार्ग से (सुवीराः) सुन्दर वीरों वाली (वामीः) उत्तम (इषः) अन्नसामग्रियों को (आवहतम्) प्राप्त कराओ (अध्वरेषु) यज्ञों में (हव्यानि) हवन के द्रव्यों को (वीतम्) प्राप्त होओ वा खाओ (गीर्भिः) वेदमन्त्रों के साथ (इडया) हवन किये अन्न से (मदन्ता) हृष्ट हुवे तुम २ (वर्धेथाम्) बढ़ो ॥

बिजली और मेघ जल को वर्षाते हैं । उस से अन्नादि उत्पन्न होते हैं। इसलिये मनुष्यों को यज्ञ करने चाहियें । जिन में वेदमन्त्रों के साथ सुगन्धमिष्ट पुष्ट रोगनाशकादि द्रव्य हवन कियेजाते हैं और उन से बिजुली और मेघ का आप्यायन और वृद्धि होती है । जड़ पदार्थों के सम्बोधन विषय में हम पूर्व निरुक्त के प्रमाण से बता चुके हैं कि यह प्रत्यक्षकृत ऋचाओं की शैली है ॥ इन्द्र पर्वत पदों से यहां उपमा से राजा और सेनाध्यक्ष का वर्णन भी उपदिष्ट जानिये ॥ ऋग्वेद ३ । ५३ । १ में भी यही पाठ है ॥

पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव का भाष्यकर्त्तृत्व देखिये कि कलकत्ते की छपी सायणभाष्य तथा गानयुक्त पुस्तक में जो भूल से "मदन्ता" के स्थान में "मदन्ताम्" पाठ छप गया, उस पर इन्हों ने भी गतानुगतिकता से वही ज्यों का त्यों अशुद्ध छाप दिया और तिस पर दृश्य यह है कि भाष्य आप "मदन्ता" का ही करते हैं क्योंकि सायणभाष्य में ठीक छपा है । आपने मूल

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

शुद्ध करने में न गान को देखा, न टिप्पणी को, न सायणभाष्य को । और इसी प्रकार उस पुस्तक के भाष्य में "आवहतम्" के स्थान में "आवहन्तम्" छप गया सो आप ने भी ज्यों का त्यों मूलविरुद्ध टीका लिख दिया और इस के समानाधिकरण समस्तपदों को इसी के समान अशुद्ध सायण भाष्य से उद्धृत किया है। इसी प्रकार के पाण्डित्य के बल से आप नरनारायणादि अवतारसाधक भाष्य करने का साहस कर बैठे यह प्रशंसनीय परिश्रम है ॥ ॥७॥ ३३८

अथाष्टम्याः—रेणुर्ऋषिः । इन्द्रापर्वतौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २३ २३ १२ ३१२ २२३१२ ३ १ २
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयत्सगरस्य बुध्नात् ।
१२ २२ ३२३ १ २३१ २३१ २ ३२३२
यो अक्षेणेव चक्रियो शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ८ ॥ (३३९)

पदपाठः—इन्द्राय ४। गिरः, अनिशितसर्गाः १ । अपः २ । प्रैरयत् क्रि० । सगरस्य६ । बुध्नात् ५ । यः १ । अक्षेणेव अ० । चक्रियौ २ । शचीभिः ३ । विष्वक् अ० । तस्तम्भ क्रि० । पृथिवीम् २। उत अ० । द्याम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्राय) परमेश्वराय (अनिशितसर्गाः) अकृत्रिमाः (गिरः) अनादिवेदवाचः [सन्तु इति शेषः]। (यः) परमेश्वरः (सगरस्य) अन्तरिक्षस्य (बुध्नात्) प्रदेशात् (अपः) वृष्टिलक्षणानि जलानि (प्रैरयत्) प्रेरयति । यश्च (चक्रियौ) रथस्य द्वे चक्रे (अक्षेणेव) यथा मध्यकीलकेनाक्षेण भ्रामयन्ति तद्वत् पूर्वमन्त्रोक्तौ विद्युन्मेघौ प्रेरयति भ्रामयति। यश्च (पृथिवीम्) भूमिम् (द्याम्) दिवम् (उत) च (शचीभिः) अनन्तप्रज्ञाभिः (विष्वक्) सर्वतः (तस्तम्भ) स्तभ्नाति ॥

सगर इति अन्तरिक्षनाम निघं० १ । ३ ॥ बन्धेर्ब्रधिबुधी च (उणा० ३ । ५) बध्नाति यः स बुध्नोमूलम् ॥ चक्रियाविति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

छान्दसम् ॥ शचीति प्रज्ञानाम निघं० ३ । ९ ॥ ऋग्वेदे तु १० । ८९ । ४ प्रेरयम् इति चक्रिया इति चान्तरम् ॥८॥ (३३९)

भाषार्थः- (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (अनिशितसर्गाः) अकृत्रिम अनादि (गिरः) वेदमन्त्रोक्त स्तुति वाणियें [हों] (यः) जो (सगरस्य) अन्तरिक्ष के (बुध्नात्) मूल प्रदेश से (अपः) वर्षा के जलों को (प्रेरयत्) प्रेरित करता है और जो (चक्रियौ) रथ के दो पहियों को (अक्षेणेव) धुरे से जैसे घुमाते हैं वैसे पूर्व मन्त्रोक्त बिजली और मेघों को प्रेरित करता है । और जो (पृथिवीम्) भूमी (उत) और (द्याम्) द्युलोक को (विष्वक्) सब ओर से (तस्तम्भ) थांभे है ॥

निघण्टु १ । ३ ॥ ३ । ९ ॥ उणादि ३ । ५ ॥ के प्रमाण और ऋ०१०।८९। ४ में जो पाठभेद है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥ ३३९ ॥

अथ नवम्या :— वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १२ ३ २ ३१२ ३१ २

आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवं जगम्याः॥

३१र २र३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३१र २र

पितुर्नपातमादधीत वेधा अस्मिन्क्षयेप्रतरा दीध्यानः९ (३४०)

पदपाठः- आ अ० । त्वा ३ । सखायः १ । सख्या ३। ववृत्युः क्रि०। तिरः अ०। पुरु २ । चित् अ० । अर्णवम् २। जगम्याः क्रि०। पितुः ६ । नपातम् २। आदधीत क्रि० । वेधाः १। अस्मिन्,क्षये ७ । प्रतराम् अ० । दीध्यानः १ ॥

अन्वितपदार्थः-प्रकरणात् हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (सखायः) अनुकूलवर्त्तिनः (त्वा)त्वया (सख्या) अनुकूलेन मित्रेण (चित्) इव(आ-ववृत्युः) सर्वतो वर्त्तन्ताम् । त्वम् (अर्णवम्) जलाधारमन्तरिक्षसमुद्रम् (पुरु) अत्यन्तम् यथा स्यात्तथा (तिरः) अदृश्यभावेन (जगम्याः) व्याप्तोऽसि । हे भगवन्! (वेधाः) विधाता भवान् (पितुः) स्वपुत्रापेक्षया कस्याचिन्म-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नुष्यस्य (नपातम्) अपत्यम् (आदधीत) आहितं कुर्य्यात् (अस्मिन् क्षये) अत्र निवासस्थाने जगति (प्रतराम्) अतिशयेन (दीध्यानः) प्रकाशमानो भवानस्ति ॥

त्वेति विभक्तेराकारादेशे ७।१।३९ रूपम् ॥ नपादित्यपत्यनाम निघं० २ । २ ॥ ऋग्वेदे तु १०।१०।१:—

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् । पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधिक्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ इति पाठेऽर्थे चाऽन्तरम् ॥ १ ॥ (३४०)

भाषार्थः—प्रकरणसे हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (सखायः) अनुकूल रहने वाले भक्त लोग (त्वा) आप के साथ (सख्या) मित्र के (चित्) तुल्य-(आ—ववृत्युः) वर्तें । आप (अर्णवम्) अन्तरिक्ष समुद्र को (पुरु) अत्यन्त करके (तिरः) अदृश्य भाव से (जगम्याः) व्याप रहे हैं । हे भगवन् ! (वेधाः) विधाता आप (पितुः) पिता के (नपातम्) सन्तान को (आदधीत) आधान करें । (अस्मिन् क्षये) इस निवासस्थान जगत् में (प्रतराम्) अत्यन्त भाव से (दीध्यानः) प्रकाशमान हैं ॥

अर्थात् हे परमात्मन् ! आप समस्त आकाश में और उस को उल्लङ्घन करके भी अदृश्य होकर व्याप रहे हैं। ऐसी कृपा होकि आप के उपासक सब मनुष्य हों, आप के अनुकूल मित्र के समान वर्तें । आप हर एक पिता को सन्तानवृद्धि दीजिये । आप ही इस जगत् में अत्यन्त प्रकाशमान हैं ॥

अष्टाध्यायी ७।१। ३९ निघण्टु २ । २ के प्रमाण और ऋग्वेद १०।१०।१ का पाठ संस्कृतभाष्य में देखिये ॥९॥ (३४०)

अथ दशम्याः— गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनोदुर्हृणा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२ ३१२ ३१२ ३१२ २२ ३२३१
यून् । आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्यएषां भृत्यामृणधत्स
२
जीवात् ॥१०॥ (३४१) इत्येकादशी दशतिः ॥११॥

इति चतुर्थप्रपाठके प्रथमार्धः ॥

—:*:—

पदपाठः— कः १ । अद्य अ० । युङ्क्ते क्रि० । धुरि ७ । गाः २ । ऋतस्य ६। शिमीवतः, भामिनः, दुर्हणायून् २ । आसन् ७ । एषाम् ६ । अप्सुवाहः, मयोभून् २ । यः १ । एषाम् ६। भृत्याम् २ । ऋणधत् क्रि० । सः १ । जीवात् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः— (ऋतस्य) उदकस्य वृष्टिजलस्य (धुरि) वहनप्रदेशे (शिमीवतः) कर्मोपेतान् (भामिनः) प्रकाशवतः (अप्सुवाहः) अपः सुष्ठु वहन्ति तान् (मयोभून्) सुखकरान् (दुर्हणायून्) दुर्हरान् (गाः) वृषभान् अश्वान्वा (अद्य) वर्त्तमानकाले (कः) (युङ्क्ते) न को ऽपि, किन्तु पूर्वोक्त इन्द्र एव युङ्क्ते । अतः (यः) यजमानः (एषाम्) जलवाहानाम् (आसन्) आस्ये मुखे (एषाम्) (भृत्याम्) भरणसामग्रीम् (ऋणधत्) समृद्धां कुर्यात् (सः) (जीवात्) आयुर्वृद्धिं प्राप्नुयात् ॥

हे मनुष्याः ! साश्चर्यमिदं पश्यत । अहो ! जलवाहानां रश्मीन् को युङ्क्ते विना जगदीश्वरमिन्द्रम् । अतएव स ईश्वरभक्तो धन्यश्चिरजीवी भवतु योहि यज्ञानुष्ठानेन जलवाहानां मुखे आहुत्या एतान् भरेत् ॥

ऋतमित्युदकनाम निघं० १। १२ शिमीति कर्मनाम २।१ आसन्निति आस्यशब्दस्य आसन्नादेशे विभक्तेर्लोपः (६।१।६३

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तथा ७ । १ । ३१ पा०) मय इति सुखनाम निघं० ३।६ ऋणद्धि इति परिचरणकर्मा ३ । ५॥ ऋग्वेदे तु १ । ५४ । १६ " आसन्निषून्हृत्स्वसोमयोभून् " इत्यन्तरम् ॥१०॥ (३४१)

* इति तृतीयाध्याये एकादशी दशातिः ॥ ११ ॥ *

इति ऐष्टुभमैन्द्रम् ॥

—:०:—

भाषार्थः—(ऋतस्य) मेघस्थ जल के (धुरि) रथ के जुवे में (शिमीवतः) पुरुषार्थी (अप्सुवाहः) जल को भले प्रकार बहने वाले (सबोभून्) सुखकारी (दुर्हणायून्) कठिन है ले चलना जिन का ऐसे (गाः) बैल वा घोड़ों को (अद्य) अब (कः) कौन (युङ्क्ते) जोड़ता है? कोई नहीं, किन्तु पूर्वोक्त इन्द्र ही जोड़ता है। इस लिये (यः) जो यजमान (एषाम् आसन्) इन के मुख में (एषाम् भृत्याम्) इन की पोषणसामग्री को (ऋणधत्) भरे वा समृद्ध करे (सः) वह (जीवात्) चिरंजीव हो ॥

अर्थात् देखिये परमात्मा का आश्चर्य कर्म कि कौन है? जिस ने निराधार आकाश में बादलों के रथ में चमकीले, तीव्र, जल के भले प्रकार ले चलने वाले बैल वा घोड़े जोड़े हैं? किसी ने नहीं, किन्तु यह उसी परमात्मा का काम है। इस लिये जो इन दैवी घोड़ों के मुख में भोजन पहुंचाता है अर्थात् यज्ञ करता है वह चिरंजीव रहो ॥

निघण्टु १ । १२ ॥ २ । १ ॥ ३ । ५ ॥ ३ । ६ ॥ अष्टाध्यायी ६ । १ । ६३ ॥ ७ । १ । ३९ के प्रमाण और ऋ० १ । ५४ । १६ का पाठ संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥ (३४१)

* यह तृतीयाध्याय में ११ वीं दशति समाप्त हुई ॥ *

—:०:—

यह ऐन्द्र पर्व के त्रिष्टुप्छन्दों का प्रकरण पूर्ण हुवा ॥

—:०:—

गायन्ति त्वेति चेन्द्रस्याऽनुष्टुभोदशतौ दश ॥ १ ॥

अथ द्वादशी दशातिस्तत्र—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रथमायाः—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।।

१ २ ३१र २र ३ २३१ २
गायन्ति त्वा गायत्रिणोर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
३ १ २ ३ २३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥ (३४२)

पदपाठः—गायन्ति क्रि० । त्वा २। गायत्रिणः १ । अर्चन्ति क्रि० । अर्कम् २। अर्किणः, ब्रह्माणः१ । त्वा २ । शतक्रतो सं० । उत्,वंशमिव अ० । येमिरे क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(गायत्रिणः) गानकुशलाः (त्वा) त्वाम् (गायन्ति) (अर्किणः) अर्चनपेशलाः (अर्चन्ति) परिचरन्ति (शतक्रतो) हे बहुकर्मन् ! वा अनन्तप्रज्ञ ! (ब्रह्माणः) ब्रह्मसंज्ञका यज्ञे कृताकृताऽवेक्षकाः (त्वा) त्वाम् (वंशमिव उद् येमिरे) यथा वंशमूर्ध्वमुच्छ्रयन्ति, यद्वा—यथा गोत्रमुन्नतं प्रशस्त्या कुर्वन्ति, तथा त्वां प्रशंसन्ति ॥

अर्कोदेवो भवति यदेनमर्चन्ति । निरु० ५।४ निरुक्तकृतेयमेवं व्याख्यायते " गायन्ति त्वा गायत्रिणः प्रार्चन्ति तेऽर्कमर्किणोब्राह्मणास्त्वा शतक्रतउद्येमिरे वंशमिव । वंशोवनशयो भवति" । इत्यादि ५ । ५ ॥ ऋग्वेदे १। १०। १ ऽपि ॥१॥ (३४२)

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे बहुकर्मन्! वा बहुबुद्धे! परमेश्वर! इन्द्र! (गायत्रिणः) गान में कुशल (त्वा) आप का (गायन्ति) गान करते हैं । (अर्किणः) पूजा में चतुर (अर्चन्ति) आप को पूजते हैं (ब्रह्माणः) यज्ञ के ब्रह्मा लोग (त्वा) आप को (वंशमिव) बांस वा कुल के समान (उद् येमिरे) ऊंचा करते वा प्रशंसित करते हैं ।।

निरुक्त ५ । ४–५ । ५ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० १।१०।१ में भी ॥१॥ (३४२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ द्वितीयायाः—जेता माधुच्छन्दस ऋषिः। इन्द्रोदेवता। अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।

३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥२॥ (३४३)

पदपाठः—इन्द्रम् २ विश्वाः १ । अवीवृधन् क्रि० । समुद्रव्यचसम् २ । गिरः १ । रथीतमम् २ । रथीनाम्, वाजानाम् ६ । सत्पतिम्, पतिम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(विश्वाः) समस्ताः (गिरः) अस्मदीया वैदिक्यो वा वाचः (समुद्रव्यचसम्) समुद्रेऽनन्ताकाशे व्यचा व्याप्तिर्यस्य तं परमेश्वरम्, समुद्रे नौकादिना गतिर्यस्य तं वा राजानम् (रथीनाम्) रथिनां मध्ये (रथीतमम्) बहवो रथा रमणाधिकरणाः पृथिवीसूर्यादयो विद्यन्ते यस्मिन्स परमेश्वरः। यद्वा रमणविजयादिकरा रथाः सन्ति बहवो यस्य तम् राजानम् (वाजानाम्) बलानाम् (पतिम्) पालकं रक्षकम् (सत्पतिम्) सतां नित्यानां प्रधानजीवात्मनां पतिः स्वामी, यद्वा सतां सज्जनानां पतीरक्षकस्तम् (इन्द्रम्) परमेश्वरं राजानं वा (अवीवृधन्) वृद्धत्वेन गुणैर्वर्णयन्तु ॥

रथिनईदृक्तव्यः (८ । २ । १७ वा०) इतीकारे रथीतमम्॥ अन्येषामपि दृश्यते ६ । ३ । १३७ इति दीर्घे रथीनाम् ॥ऋग्वेदे १ । ११ । १ ऽपि ॥ २ ॥(३४३)

भाषार्थः—(विश्वाः) सब (गिरः) वैदिकी वा हमारी वाणियें (समुद्रव्यचसम्) आकाशव्यापी ईश्वर वा समुद्र में नौकादि से व्यापने वाले राजा (रथीनाम् रथीतमम्) रथ वालों में अत्यन्त उत्तम रमणीय सूर्यादि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लोकरूपी रथों वाले ईश्वर वा महारथी राजा (वाजानां पतिम्) बलों के रक्षक (सत्पतिम्) प्रकृति आदि नित्य पदार्थों के स्वामी ईश्वर वा सज्जनों के रक्षक राजा (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को (अवीवृधन्) गुणों से बड़ा होने से वर्णित करें ॥

अष्टाध्यायी ८ । २ । १७ वा० ।। ६। ३। १३७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ।। ऋ० १ । ११ । १ में भी ।। २ ॥ (३४३)

अथ तृतीयायाः—गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १ २ ३क १र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥३॥ (३४४)

पदपाठः—इमम् २। इन्द्र सं० । सुतम् २। पिब क्रि० । ज्येष्ठम्, अमर्त्यम् , मदम् २। शुक्रस्य ६। त्वा २। अभ्यक्षरन् क्रि०। धाराः १। ऋतस्य ६। सादने ७॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् ! राजन् ! वा ईश्वर ! (इमम्) निर्दिश्यमानम् (सुतम्) निष्पन्नं (ज्येष्ठम्) उत्तमम् (अमर्त्यम्) दिव्यम् (मदम्) हर्षम् (पिब) गृहाण स्वीकुर्विति यावत् । (शुक्रस्य) शुद्धस्य मम (सादने) गृहे (ऋतस्य) सत्यस्य (धाराः) प्रवाहाः वृत्तयोवा (त्वा) त्वाम् (अभ्यक्षरन्) अभितः प्राप्नुवन्तु ॥

ऋग्वेदे १ । ८४ । ४ ऽपि ॥ ३ ॥ (३४४)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! वा परमेश्वर ! (इमम्) इस (सुतम्) सिद्ध हुवे (ज्येष्ठम्) बड़े उत्तम (अमर्त्यम्) दिव्य (मदम्) आनन्द को (पिब) ग्रहण वा स्वीकार कीजिये । (शुक्रस्य) मुझ शुद्ध पवित्र के (सादने) घर वा हृदयवेश्म में (ऋतस्य) सत्य की (धाराः) धारें (त्वा) आपको (अभ्यक्षरन्) प्राप्त होवें ॥ ऋ० १ । ८४ । ४ में भी ॥ ३ ॥ (३४४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थ्याः—अत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।।

१ २ ३२उ ३ १ २
यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्याभर ॥४॥ (३४५)

पदपाठः—यत् १ । इन्द्र, चित्र सं० । मे ६ । इह, न अ० । अस्ति क्रि० । त्वादातम् २ । अद्रिवः सं० । राधः १ । तत् २ । नः ४ । विदद्वसो सं० । उभया, हस्त्या ३ । आभर क्रि० ।।

अन्वितपदार्थः—(अद्रिवः) हे दुष्टेषु दण्डधर ! (विदद्वसो) हे लब्धधन ! (चित्र) हे आश्चर्यगुणकर्मस्वभाव ! (इन्द्र) राजन् ! वा परमेश्वर ! (यत्) (राधः) धनम् (इह) लोके (मे) मम पार्श्वे (न अस्ति) नास्ति (त्वादातम्) त्वया दत्तम् (तत्) धनम् (नः) अस्मभ्यम् (उभया हस्त्या) उभाभ्याम् हस्ताभ्याम् सर्वत इत्यर्थः (आभर) देहि ॥

अत्रेदं निरुक्तमपि द्रष्टव्यम्—"यदिन्द्र चित्रं चायनीयं संहनीयं धनमस्ति । यन्म इह नास्तीति वा त्रीणि मध्यमानि पदानि । त्वया नस्तदातव्यमद्रिवन् ! अद्रिराहननात्येनेनापि वात्तेः स्यात् सोमाद इति ह विज्ञायते । राध इतिधननाम राध्नुवन्त्येनेन । तन्नस्त्वं वित्तधनोभाभ्यां हस्ताभ्यामाहर । उभौ समृद्धौ भवतः" । ४।४ ॥ अद्रिव इत्यत्र—मतुमसोरुः संबुद्धौ ८। ३। १ इति रुः ॥ ऋग्वेदे तु ५। ३१। १ "मेहनास्ति" इत्यन्तरम् ॥ ४ ॥ (३४५)

भाषार्थः—(अद्रिवः) हे दुष्टों पर दण्डधारक ! (विदद्वसो) हे धन वाले ! (चित्र) हे आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाले ! (इन्द्र) राजन् ! वा परमेश्वर ! (यत्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जो (राधः) धन (मे) मेरे समीप (न अस्ति) नहीं है । (त्वादातम्) आप के दिये (तत्) उस धन को (नः) हमारे लिये (उभया हस्त्या) दोनों हाथों से (आभर) दीजिये ॥

निरुक्त ४ । ४ अष्टाध्यायी ८ । ३ । १ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ५ । ३९ । १ में "मेहनास्ति" पाठ है ॥ ४ ॥ (३४५)

अथ पञ्चम्याः—तिरश्ची आङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३१२ २२ ३ २३ ३ १ २ ३१२

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।

३१२ ३ १२ ३१२ ३१ २

सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥५॥ (३४६)

पदपाठः—श्रुधि क्रि० । हवम् २ । तिरश्च्या ३ । इन्द्र सं० । यः १ । त्वा २ । सपर्यति क्रि० । सुवीर्यस्य, गोमतः ६ । रायः २ । पूर्धि क्रि० । महान् १ । असि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! वा राजन् ! (महान् असि) त्वं महान् भवसि अत एव (यः) पुरुषः (त्वा) त्वाम् (सपर्यति) पूजयति तवाज्ञानुसारं चलति, तस्य (सुवीर्यस्य) ब्रह्मचर्यादिनियमवतः (गोमतः) गवादिपशुपृथिव्यादिस्वाम्ययुक्तस्य (हवम्) आह्वानं (तिरश्च्या) तिरोभावेन अन्तर्हितो भूत्वा (श्रुधि) शृणु (रायः) धनानि (पूर्धि) पूरय देहि ॥

यथा परमेश्वरः सर्वस्य प्रार्थनं तिरोभूतः शृणोति, विद्यादिधनानि च कर्मानुकूलं ददाति, तथैव राज्ञाऽपि क्षेत्रपतीनां प्रार्थना, श्रोतव्या, धनानि च वर्धनीयानि ॥

पूर्धि पूरय देहीति वा । निरु० ४ । ३ ॥ ऋग्वेदे ८ । ९५ । ४ ऽपि ॥५॥ (३४६)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! वा राजन् ! (महान् असि) आप बड़े हैं अतः (यः) जो पुरुष (त्वा) आप को (सपर्यति) पूजता अर्थात् आप की आज्ञानुसार चलता है उस (सुवीर्यस्य) शुद्धवीर्य ब्रह्मचर्यादि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वाले (गोमतः) गौ आदि पशु और पृथिवी आदि के स्वामी की (हवम्) पुकार (तिरश्च्या) अन्तर्धान हुवे से (श्रुधि) सुनिये और (रायः) विद्यादि धन (पूर्धि) दीजिये ।।

जैसे परमेश्वर अदृश्य रूप से सब की सुनता और कर्मानुकूल धनादि पदार्थ देता है, इसी प्रकार राजा को चाहिये कि छिप कर सब की पुकार सुने, और क्षेत्रपतियों के धन धान्यादि की वृद्धि होने देवे ।।

निरुक्त ४।३ का प्रमाण संस्कृत भाष्य देखिये ।। ऋ० ८।९५।४ में भी ।।५।। (३४६)

अथ षष्ठ्याः—गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवागहि ।

१ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २

आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियꣳ रजः सूर्य्यो न रश्मिभिः ॥६॥ (३४७)

पदपाठः—असावि क्रि० । सोमः १ । इन्द्र सं० । ते ४ । शविष्ठ, धृष्णो सं० । आ—गहि क्रि० । आ अ० । त्वा २ । पृणक्तु क्रि० । इन्द्रियम् १ । रजः २ । सूर्यः १ । न अ० । रश्मिभिः ३ ।।

अन्वितपदार्थः—(शविष्ठ) हे अतिबलवन् ! (धृष्णो) पापानां धर्षयितः (इन्द्र) परमेश्वर ! वा राजन् ! (ते) त्वदर्थं (सोमः) शान्तभावः (असावि) उदपादि [अस्माभिरिति शेषः] अत एव (आ गहि) अस्मद्रक्षार्थमस्मान्प्राप्नुहि (इन्द्रियम्) मनआदिकम् (त्वा) त्वाम् (आ—पृणक्तु) संपृक्तं भवतु (न) यथा (सूर्यः) (रश्मिभिः) किरणैः (रजः) भूम्यादिलोकस्थं रजोऽव्याप्नुते तद्वत् ॥ ऋग्वेदे १ । ८४ । १ ऽपि ॥ ६ ॥ (३४७)

भाषार्थः—(शविष्ठ) हे अतिबलवन् ! (धृष्णो) पापों वा पापियों के दबाने वाले ! (इन्द्र) परमेश्वर ! वा राजन् ! (आ—गहि) रक्षार्थ हमें प्राप्त हूजिये (ते) आप की प्रसन्नता के लिये (सोमः) शान्तभाव (असावि) हम ने उत्पन्न किया है। (इन्द्रियम्) हमारा मन आदि (त्वा) आप में

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(आ पृणक्तु) लगे (न) जैसे (सूर्य्यः) सूर्य (रश्मिभिः) किरणों से (रजः) पृथिवी आदि के रज को लगता है तद्वत् ॥ ऋ० १ । ८४ । १ मे भी ॥ ६ ॥ (३४७)

अथ सप्तम्याः—काण्वोनीपातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

३ १ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥(३४८)

पदपाठः—आ अ० । इन्द्र सं० । याहि क्रि० । हरिभिः ३ । उप अ० कण्वस्य ६ । सुष्टुतिम् २ । दिवः, अमुष्य, शासतः ६ । दिवम् २ । यय क्रि० । दिवावसो सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! (दिवावसो) दिवि स्वर्गे सुखे वासयितः ! राजन् ! (हरिभिः) आज्ञाहारकैः राजपुरुषैः । (दिवम्) स्वर्गं सुखम् (यय) प्रापयाऽस्मान् (अमुष्य) अस्य मुख्यस्येन्द्रस्य (दिवः) स्वर्गस्य (शासतः) राज्यं कुर्वतः (कण्वस्य) मेधाविन ईश्वरस्य (सुष्टुतिम्) शोभनां स्तुतिम् (उप-आ-याहि) प्राप्नुहि ॥

ऋग्वेदे ८ । ३४ । १ ऽपि ॥ ७ ॥ (३४८)

भाषार्थः—(दिवावसो) हे सुख में वास कराने वाले ! (इन्द्र) राजन् ! हम को (हरिभिः) आज्ञा पहुंचाने वाले राजपुरुषों द्वारा (दिवम्) सुख (यय) पहुंचाइये और (अमुष्य) इस मुख्य इन्द्र (कण्वस्य) मेधावी (दिवः शासतः) सुख के राजा परमेश्वर की (सुष्टुतिम्) अच्छी प्रशंसा को (उप—आ—याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ऋ० ८ । ३४ । १ में भी ॥ ७ ॥ (३४८)

अथाऽष्टम्याः—तिरश्ची ऋषिः। इन्द्रो देवता। अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २

अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥८॥(३४९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—आ अ० । त्वा २ । गिरः १ । रथीरिव अ० । अस्थुः क्रि० । सुतेषु ७ । गिर्वणः सं० । अभि अ० । त्वा २ । समनूषत क्रि० । गावः १ । वत्सम् २ । न अ० । धेनवः १ ॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् हे राजन् ! तथा सुखप्रदानेऽनुष्ठिते सति (सुतेषु) पुत्रतुल्येषु प्रजाजनेषु (गिरः) तदीयाः स्तुतिवाचः (त्वा) त्वाम् (रथीरिव) यथा रथी रथेन द्रुतं गच्छति तद्वत् (आ-अस्थुः) उपस्थिता भवन्ति । (गिर्वणः) हे गीर्भिः संवननीय ! (त्वा) त्वाम् (अभि) अभिलक्ष्य (समनूषत) सम्यक् स्तुतिं कुर्वन्ति । तत्र दृष्टान्तः—(न) यथा (धेनवः) दोग्ध्र्यः (गावः) (वत्सम्) वत्समभिलक्ष्य प्रीत्या हम्भारवादिशब्दं कुर्वन्ति तद्वत् ॥

ऋग्वेदे तु ६ । ९५ । १ "समनूषतेन्द्र वत्सं न मातर" इति पाठमात्रान्तरम् ॥ ८ ॥ (३४९)

भाषार्थः—पूर्व मन्त्र की अनुवृत्ति से हे राजन्! उक्त प्रकार प्रजा को सुख देने का फल यह है कि—(सुतेषु) पुत्रतुल्य प्रजाजनों में (गिरः) उन की प्रशंसायुक्त वाणी (त्वा) आप को (रथीरिव) जैसे रथी शीघ्र चलता है वैसे (आ—अस्थुः) सब ओर से आकर उपस्थित होती हैं (गिर्वणः) हे वाणी से सेवनीय! (त्वा) आप की (अभि) ओर देख कर (समनूषत) सब भले प्रकार प्रशंसा करते हैं। दृष्टान्त—(न) जैसे (धेनवः) दुधार (गावः) गौवें (वत्सम्) बछड़े को देखकर प्रीति से रंभाती हैं तद्वत् ॥

ऋ० ८ । ९५ । १ में "समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः" इतना अन्तर है ॥ ८ ॥ (३४९)

अथ नवम्याः—ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम शुद्धꣳ शुद्धेन साम्ना ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳ सꣳ शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥९॥ (३५०)

पदपाठः—आ—इत क्रि० । उ, नु अ० । इन्द्रम् २ । स्तवाम क्रि० । शुद्धम् २ । शुद्धेन, साम्ना, शुद्धैः, उक्थैः ३ । वावृध्वांसम् २ । शुद्धैः ३ । आशीर्वान्१ । ममत्तु क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—प्रजाजनाः कथं स्तुवन्ति किं वा कथयन्ति तदाह—(एत उ) आगच्छतैव सुहृदः ! (शुद्धेन) पवित्रेण (साम्ना) सामगानेन सह (शुद्धैः) पवित्रैः (उक्थैः) स्तोत्रैः (वावृध्वांसम्) अतिशयेन महान्तम् (शुद्धम्) पवित्रम् (इन्द्रम्) परमात्मानं वा राजानं (स्तवाम)। (शुद्धैः) पवित्रैर्वचनैः (आशीर्वान्) आशीर्वादवान् इन्द्रः (नु) क्षिप्रम् (ममत्तु) अस्मदुपरि हृष्टो भवतु ॥ ऋग्वेदे तु ८।९५।७ "शुद्ध आशीर्वा" नित्यन्तरम्॥९॥ (३५०)

भाषार्थः—प्रजाजन तब आपस में कहते हैं कि—(एत उ) मित्रो! आओ! आओ! और (शुद्धेन साम्ना) पवित्र सामगान के साथ और (शुद्धैः उक्थैः) पवित्र स्तोत्रों से (वावृध्वांसम्) अति महान् (शुद्धम्) पवित्र (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को (स्तवाम) स्तुत करें। (शुद्धैः) पवित्र स्तोत्रों से (आशीर्वान्) आशीर्वादयुक्त वह (नु) शीघ्र (ममत्तु) [हम पर] प्रसन्न होवे ॥

ऋ० ८। ९५ ।७ में "शुद्ध आशीर्वान्" पाठ है ॥ ९ ॥ (३५०)

अथ दशम्याः—शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३१ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यो रयिं वो रयिन्तमो योद्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
१ २ ३१ २ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१०॥ (३५१)

पदपाठः—यः १ । रयिम्=२३ । वः ६ । रयिन्तमः, यः १ । द्युम्नैः ३ । द्युम्नवत्तमः, सोमः, सुतः, सः १ । इन्द्र सं० । ते ४ । अस्ति क्रि० । स्वधापते सं० । मदः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(स्वधापते) हे अन्नपते ! अन्नदातः ! (इन्द्र) परमेश्वर ! वा राजन् ! (यः) (वः) तव [वच-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नव्यत्ययः] (सोमः) शान्तस्वभावः (सुतः) पुत्रवद्वर्त्तमानः प्रजाजनः (रयिम्) रयिणा धनेन (रयिन्तमः) रयिवत्तमो धनवत्तमः (यः) (द्युम्नैः) यशोभिः (द्युमत्तमः) यशस्वितमः (अस्ति) भवति (सः) (ते) तुभ्यम् (मदः) प्रसादकरः ॥

ऋग्वेदे तु ६ । ४४ । १ रयिव इति निरनुस्वारपाठः ॥ १० ॥ (३५१)

* इति तृतीयाध्यापे द्वादशी दशतिः ॥ १२ ॥ *

इति श्रीमत्कण्ववंशावतंस पण्डित हज़ारीलाल स्वामिसूनुना,
हस्तिनापुर पार्श्ववर्त्ति परीक्षितगढ़ निवासिना,
तुलसीरामस्वामिना, कृते सामवेदभाष्ये
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(स्वधापते) हे अन्नपते ! अन्नदातः ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (यः) जो (वः) आप का (सोमः) शान्तस्वभाव (सुतः) पुत्रतुल्य प्रजाजन (रयिम्) धन से (रयिन्तमः) अति धनवान् और (यः) जो (द्युम्नैः) यशों से (द्युम्नवत्तमः) अति यशस्वी (अस्ति) है (सः) वह (ते) आप के लिये (मदः) प्रसन्नताकारक हो ॥

ऋ० ६ । ४४ । १ में "रयिवः" ऐसा अनुस्वाररहित पाठ है ॥ १० ॥ (३५१)

* यह तृतीयाध्याय में बारहवीं दशति समाप्त हुई ॥ १२ ॥ *

तथा

कण्ववंशावतंस श्रीमान् पं० स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र,
परीक्षितगढ़ (ज़िला मेरठ) निवासी
तुलसीरामस्वामिकृत सामवेदभाष्य में तीसरा अध्याय
समाप्त हुवा ॥ ३ ॥

—÷:०:÷—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(देखो पृष्ठ ३५० से आगे) सामवेदभाष्य की शुद्धाशुद्धसूची

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२५६	१९	किरणस्य	किरणस्य (अपीच्यम्) तिरोहितं
२५८	१०	किरण का	किरण का (अपीच्यम्) छिपा हुवा
३००	१७	सङ्गच्छते	सङ्गच्छति
३०४	१६	प्रश्नयः	पृश्नयः
३०५	९	ह्व परमेश्वर	हे परमेश्वर !
३०९	१४	(द्यूक्षम्) दीम्	(द्युक्षम्) दीप्तम्
३०९	१५	दुराधर्षम्	दुराधर्षम्
३०९	१५	धाषतु	धर्षितु
३३०	१	हे मनुष्याः	हे मनुष्याः
३४४	२	कमा	कर्मा
३५९	१४	उपसगा	उपसर्गा
३६०	९	सवानेव	सवानेव
३८३	३	भिषुनसोमा	भिषुतसोमा
३८३	५	ऋतावन्त	सुतावन्त
३९३	६	सविनादि	सवनादि
४००	१४	महां असि	महाँ असि
४०३	१६	शतंशतं	शतंशतं
४१६	९	हयाः	हर्योः
४१७	११	च न अ०	च अ० । नः ६
४२१	७	इद्राय	इन्द्राय
४३७	४	सूर्यचन्द्रा	सूर्याचन्द्रौ
४३७	१४	सूर्यचन्द्रा	सूर्याचन्द्रा
४४४	४	प्रततिंषु	प्रतूर्त्तिषु
४४४	७	अशिस्तहा	अशस्तिहा
४४४	१३	हीसार्थस्य	हिंसार्थस्य
४५५	३	ऊर्णहि	ऊर्णुहि
४५९	११	पूर्वाणि	पूर्व्याणि
४६३	४	पालितः	पलितः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
४६६	१३	मिश्छु	मिच्छु
४६७	१९	प्रवर	प्रचर
४६८	१२	वाजसातो	वाजसातौ
४६८	१३	सातिलोभो	सातिर्लाभो
४७२	१६	जूइति	जुइति
४७२	२०	हिसार्थः	हिंसार्थः
४७७	९	न्नाभिदाति	नभिदाति
४८३	१४	प्रतरादीध्यानः	प्रतरान्दीध्यानः
४९५	१	शद्धैः	शुद्धैः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओ३म्

अथ चतुर्थाऽध्यायः

अनुष्टुभः प्रतीत्यस्यां दशतावष्ट कीर्तिताः ।
यदीति पञ्चमी तासु मारुती सप्तमी तु या ॥१॥
दधिक्रावणः स्मृताः शिष्टाः षडैन्द्र्योऽथ ऋचः स्मृताः ।

अथ प्रथमा दशतिः-

तत्र प्रथमायाः-भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दध्वने नरः ॥१॥ (३५२)

पदपाठः-प्रति अ० । अस्मै, पिपीषते ४ । विश्वानि २ । विदुषे ४ । भर क्रि० । अरङ्गमाय, जग्मये, अपश्चाद्दध्वने ४ । नरः सं० ॥

अन्वितपदार्थः-(नरः) हे मनुष्याः ! (अस्मै) इन्द्राय योगादिविद्यैश्वर्यवते (विदुषे) ज्ञानवते (पिपीषते) पिपासावते उपलक्षणाद् बुभुक्षावते च (अरङ्गमाय) यो विद्याया अरं पारं गच्छति तस्मै (जग्मये) विज्ञानाधिकाय (अपश्चाद्दध्वने) उत्तमेषु कर्मस्वग्रगामिने (विश्वानि) सर्वाणि आवश्यकवस्तूनि (भर) समर्पयत (प्रति) सोऽपि युष्मभ्यं सर्ववस्तुजातं दुर्लभतरं प्रतिभरति ॥

दध्यति इति निघं० २ । १४ पाठभेदः ॥ ऋग्वेदे तु ६ । ४२ । १ "नरे" इति पाठः ॥ १ ॥ (३५२)

भावार्थः-(नरः) हे मनुष्यो ! (अस्मै) इस इन्द्र अर्थात् योगादि विद्या रूप ऐश्वर्यवान् (विदुषे) ज्ञानवान् (पिपीषते) पान भोजनादि की इच्छा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वाले (अरङ्गमाय) विद्यापारगामी (जग्मये) विज्ञान में अधिक (अपश्चाद्दध्वने) पीछे न हटने वाले अग्रगामी के लिये (विश्वानि) सब आवश्यक वस्तुएँ (भर) समर्पित करो क्योंकि (प्रति) वह भी तुम्हारा प्रत्युपकार करता है ॥ अर्थात् गृहस्थों को इस मन्त्र में कहे लक्षणयुक्त पुरुषों का सर्वथा आदर सत्कार करना चाहिये ॥ निघं० २ । १५ में दध्यति गतिकर्मा है ॥ ऋ० ६ । ४२ । १ में " नरे " पाठ है ॥ १ ॥ (३५२)

अथ द्वितीयायाः वामदेवः शाकपूतो वा ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ॥ १ २ ३ २

आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।

३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

महान्तं पूर्विनेष्ठामुग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥ (३५३)

पदपाठः—आ अ० । नः ६ । वयः शयम्, महान्तम्, गह्वरेष्ठाम्, महान्तम्, पूर्विनेष्ठाम्, उग्रम्, वचः २ । अपावधीः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः--हे पूर्वमन्त्रोक्त ! योगैश्वर्यवन् ! इन्द्र! (नः) अस्माकम् (वयः) आयुः तथा (गहरेष्ठाम्) अन्तःकरणस्थम् (महान्तम्) पूज्यम् (वयःशयम्) वयसि शेतेऽसौ जीवात्मा तम् (महान्तम्) प्रभूतं (पूर्विनेष्ठाम्) क्रमागतं बुद्धितत्त्वम् च (आ) आदिश [उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाऽध्याहारः] तथा अस्माकम् (उग्रं) भीषणं (वचः) वचनम् (अपावधीः) अपजहि दूरीकुरु ॥

विद्वदुपदेशेनाऽऽत्ममनसोः शिक्षा ग्राह्या, दुष्टं वचश्च त्याज्यमिति भावः ॥ २ ॥ (३५३)

भाषार्थः—हे पूर्वमन्त्रोक्त ! योगविद्यादि ऐश्वर्ययुक्त ! इन्द्र ! (नः) हमारी (वयः) आयु तथा (महान्तम्) बड़े (गह्वरेष्ठाम्) अन्तःकरण में स्थित (वयःशयम्) आयु में निवास करने वाले आत्मा और (महान्तम्) बड़े

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(पूर्विनेष्टाम्) क्रमागत बुद्धितत्त्व को (आ) आदेश कीजिये। हमारे (उग्रं वचः) भयानक वचन को (अपावधीः) दूर कीजिये ॥

अर्थात् विद्वानों के सदुपदेश से मनुष्यों के आत्मा और मन को उत्तम आदेश मिलता है और दुर्वचनादि दुर्गुण दूर होते हैं ॥ २ ॥ (३५३)

अथ तृतीयायाःप्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रꣳशविष्ठ सत्पतिम् ॥ ३ ॥ (३५४)

पदपाठः—आ अ० । त्वा, रथम् २ । यथा अ० । ऊतये, सुम्नाय ४ । वर्त्तयामसि क्रि० । तुविकूर्मिम्, ऋतीषहम्, इन्द्रम् २ । शविष्ठ सं० । सत्पतिम् २॥

अन्वितपदार्थः—(शविष्ठ) हे आत्मिकबलवन् ! (तुविकूर्मिम्) बहुकर्माणम् (ऋतीषहम्) दुष्टानामभिभवितारम् (सत्पतिम्) सतां पालकम् (इन्द्रम्) योगविद्यादैश्वर्यशालिनम् (त्वा) त्वाम् (ऊतये) रक्षणाय (सुम्नाय) सुखाय च (आ) सर्वतः (वर्तयामसि) वर्त्तयामः। दृष्टान्तः—(यथा रथम्), आवर्तयन्ति रक्षायै सुखाय च तद्वत्॥

सुम्नमिति सुखनाम नि० ३। ६ तुवि इति बहुनाम निघं० ३। १ ऋग्वेदे तु ८। ६८। १ "इन्द्र शविष्ठ सत्पते" इति पाठः ॥ ३ ॥ (३५४)

भाषार्थः—(शविष्ठ) हे आत्मिकबलयुक्त! (तुविकूर्मिम्) बहुत कर्म वाले (ऋतीषहम्) दुष्टों को दबाने वाले (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के पालक (इन्द्रम्) योगविद्यादि ऐश्वर्ययुक्त (त्वा) आप को (ऊतये) अपनी रक्षा और (सुम्नाय) सुख के लिये (आ) सर्वतः (वर्त्तयामसि) हम भ्रमण कराते हैं। दृष्टान्त—(यथा) जैसे (रथम्) रथ को रक्षा और सुख के लिये भ्रमण कराते हैं तद्वत् ॥

निघं० ३। ६ ॥ ३। १ ॥ ऋ० ८ । ६८ । १ में तो "इन्द्र शविष्ठ सत्पते" पाठ है ॥ ३ ॥ (३५४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थ्याः-प्रगाथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र

स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।

३ २ ३र २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥ ४ ॥ (३५५)

पदपाठः-सः, पूर्व्यः १ । महोनाम् ६ । वेनः १ । क्रतुभिः ३ । आनजे क्रि० । यस्य ६ । द्वारा ३ । मनुः, पिता १ । देवेषु ७ । धियः २ । आनजे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-हे विद्वन्निन्द्र ! (सः) भवान् (वेनः) मेधावी (क्रतुभिः) कर्मभिः (महोनाम्) पूज्यानाम् (पूर्व्यः) मुख्यः (आनजे) व्यक्तोऽस्ति (यस्य द्वारा) यत्साहाय्येन (मनुः) मनुष्यो ज्ञानवान् (धियः) बुद्धीः (आनजे) व्यञ्जयति (देवेषु) विद्वत्सु (पिता) पितृवत्पूज्यश्च जायते ॥

मह इति महन्नाम निघं० ३ । ३ वेन इति मेधाविनाम ३ । १५ क्रतुरिति कर्मनाम २ । १ प्रज्ञानाम च ३ । ९ मनुर्मननात् । निरु० ६ । ३३ पिता पाता वा पालयिता वा जनयिता । निरु० ४ । २१ आनजे इति व्यक्त्यर्थस्याऽञ्जतेरन्तर्भूतण्यर्थस्य रूपम् ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ५२ । १ महानाम् इति मनुष्पितेति चान्तरम् ॥ ४ ॥ (३५५)

भाषार्थः-हे विद्वन्निन्द्र ! (सः) वह आप (वेनः) मेधावी (क्रतुभिः) कर्मों से (महोनाम् पूर्व्यः) पूज्यों में अग्रणी (आनजे) पहिंचाने जाते हैं । (यस्य) जिन आप के (द्वारा) द्वारा (मनुः) मननशील मनुष्य (धियः) बुद्धियों को (आनजे) उत्पन्न करता और (देवेषु) विद्वानों में (पिता) पितृतुल्य पूज्य हो जाता है ॥

निघण्टु ३ । ३ ॥ ३ । १५ ॥ २ । १ ॥ ३ । ९ ॥ निरुक्त ६ । ३३ ॥ ४ । २१ ॥ इत्यादि प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ५२ । १ में "महानाम्" और "मनुष्पिता" यह पाठ में अन्तर है ॥ ४ ॥ (३५५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ पञ्चऋचस्याः-श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ ३२३ १२ ३२३२

यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।

१२ ३२३ ३२३ १२

पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवाꣳसि कृण्वते ॥५॥ (३५६)

पदपाठः-यदि अ० । वहन्ति क्रि० । आशवः, भ्राजमानाः १ । रथेषु ७ । आ अ० । पिबन्तः १ । मदिरम्, मधु २ । तत्र अ० । श्रवांसि २ । कृण्वते क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(यदि) यत्र (रथेषु) रथोपलक्षित विविधयानेषु (आभ्राजमानाः) विराजमानाः (मदिरम्) हर्षकरम् (मधु) मधुरादिगुणयुक्तं सोमं (पिबन्तः) पास्यन्तः (आशवः) आशुगामिनः मरुत इन्द्रेण मुख्येन विदुषा सह तत्सहचारिणः (वहन्ति) प्रापयन्त्यात्मानम्, (तत्र) तस्मिन्नेव (श्रवांसि) अन्नानि धनानि वा यशांसि वा (कृण्वते) कुर्वन्ति ॥

यदी इति निपातस्य च ६ । ३ । १३६ इति दीर्घः ॥ श्रव इत्यन्ननाम निघं २ । ७ धननाम च २ । १० ॥५॥(३५६)

भाषार्थः-(यदि) जहां (रथेषु) रथादि विविध यानों में (आ भ्राजमानाः) विराजमान और (मदिरम्) हर्षकारक (मधु) मधुरादि रसयुक्त सोम को (पिबन्तः) पीने वाले (आशवः) शीघ्रगामी मरुत् अर्थात् मुख्य विद्वान् इन्द्र के सहचरवर्ग (वहन्ति) पहुंचते हैं (तत्र) वहीं (श्रवांसि) अन्न धन वा यशों को (कृण्वते) करते हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३६ निघण्टु २ । ७ ॥ २ । १० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (३५६)

अथ षष्ठ्याः-शंयुर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१२ ३ १२ ३१र २र३ १२

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।

१२ ३ २३ २३ १२ ३१२

इन्द्रं विश्वासाहं नरꣳशचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥ (३५७)

पदपाठः-त्यम् २ । उ अ० । वः २ । अप्रहणम् २ । गृणीषे क्रि० । शवसः ६ ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पतिम्, इन्द्रम् विश्वासाहम्, नरम्, शचिष्ठम्, विश्ववेदसम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(त्यम्) तं पूर्वोक्तम् (अप्रहणम्) अहिंसकम् (शवसः पतिम्) बलिनम् अपि, (विश्वासाहम्) सर्वस्याभिभावुकम् (नरम्) नेतारम् (शचिष्ठम्) अतिप्रज्ञम् (विश्ववेदसम्) सर्वधनम् (इन्द्रम्) योगविद्यादैश्वर्यसम्पन्नम् (वः) युष्मान् तत्सहचारिणः (उ) च (गृणीषे) गृणे स्तौमि ॥

ऋग्वेदे तु ६ । ४४ । ४ "संहिष्ठं विश्वचर्षणिम्" इत्यन्ता ऋक् ॥ ६ ॥ (३५७)

भाषार्थः-(त्यम्) उस (अप्रहणम्) अहिंसक (शवसः पतिम्) बली (विश्वासाहम्) सब पर प्रभाव रखने वाले (नरम्) नेता (शचिष्ठम्) अत्यन्त बुद्धिमान् (विश्ववेदसम्) सब धन वाले (इन्द्रम्) योगविद्यादि ऐश्वर्ययुक्त पुरुष को (उ) और (वः) तुम उस के सहचरों को (गृणीषे) स्तुत करता हूं ॥ ऋ० ६ । ४४ । ४ में "संहिष्ठं विश्वचर्षणिम्" इतना चतुर्थपाद में भेद है ॥६॥ (३५७)

अथ सप्तम्याः-वामदेवऋषिः । दधिक्रावा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुरभि नो मुखा करत् प्र न आयूंषि तारिषत् ॥७॥ (३५८)

पदपाठः-दधिक्राव्णः ६ । अकारिषम् क्रि० । जिष्णोः, अश्वस्य, वाजिनः ६ । सुरभि २ । नः ६ । मुखा २ । करत् क्रि० । प्र अ० । नः ६ । आयूंषि २ । तारिषत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-हे योगविद्यादैश्वर्यवन् ! अहं भवदुपदेशेन (जिष्णोः) जयशीलस्य (अश्वस्य) आशुगामिनः (वाजिनः) बलवतः (दधिक्राव्णः) अग्निविशेषस्य [परिचर्याम्] (अकारिषम्) कुर्याम् । येन सः (नः) अस्माकम् (मुखा) मुखादीन्यङ्गानि (सुरभि) सुरभीणि सुगन्धयुक्तानि (करत्) कुर्यात् (नः) अस्माकम् (आयूंषि) (प्र-तारिषत्) वर्धयेत् च ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दधिक्रावेति अश्वनाम निघं० १ । १४ तत्र निरुक्तम्-दधिक्रा इत्येतद् दधत्क्रामतीति वा दधत्क्रन्दतीति वा दधदाकारी भवतीति वा (इत्यादि) २ । २७ "अग्निर्देवेभ्यो निलीयत अश्वो रूपं कृत्वा यदश्वेत्यतिष्ठत्" इत्याद्यध्वर्युब्राह्मणमनुसंधेयम् इति सायणः ॥ ऋग्वेदेऽपि ४ । ३९ । ६ ॥ ७ ॥ (३५८)

भाषार्थः-हे योगविद्यादि ऐश्वर्यशाली ! महात्मन् ! आप के उपदेश से मैं (जिष्णोः) जयशील (अश्वस्य) शीघ्रगामी (वाजिनः) बलवान् (दधिक्राव्णः) दधिक्रावा नाम अग्नि की [परिचर्या] (अकारिषम्) करूं, जिस से वह (नः) हमारे (मुखा) मुखादि अङ्गों को (सुरभि) सुगन्धयुक्त (करत्) करे और (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (प्र तारिषत्) बढ़ावे ॥

निघण्टु १ । १४ में दधिक्रावा नाम अश्व का है और यथार्थ में दधिक्रावा नामक अग्नि देवतों का अश्व है और स्वयं भी देवता है । निरुक्त २ । २७ के अनुसार दधिक्रावा का अर्थ यह है कि जो धारण करे हुवे ले चले । सो अग्नि देवतों के हव्य पदार्थों को भी लेकर चलता है और वायु आदि कितने ही देवतों को भी लेकर आकाश में चलता है । इस पर सायणाचार्य भी कहते हैं कि ("अग्नि देवतों के लिये छिप जाता है और उन के अश्व का काम देता है" इत्यादि शतपथ (अध्वर्यु) ब्राह्मण की सङ्गति लगानी चाहिये) ॥ ऋ० ४ । ३९ । ६ में भी ॥ ७ ॥ (३५८)

अथाऽष्टम्याः—जेता माधुच्छन्दस ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १र २र ३ १र २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥८॥ (३५९)

* इति चतुर्थाध्याये प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ *

पदपाठः-पुराम् ६ । भिन्दुः, युवा, कविः, अमितौजाः १ । अजायत क्रि० । इन्द्रः १ । विश्वस्य, कर्मणः ६ । धर्त्ता, वज्री, पुरुष्टुतः १ ॥

अन्वितपदार्थः—पूर्वोक्तदधिक्रावयज्ञेन (पुरां भिन्दुः) मेघनगराणां भेत्ता (युवा) संहननाङ्गः (कविः) गर्जनः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(अमितौजाः) अप्रमितबलः (विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता) समस्तकर्मणां वृष्ट्यायत्तत्वाद्धारकः (वज्री) अस्त्रवान् (पुरुष्टुतः) बहुवर्णितः (इन्द्रः) विद्युत् (अजायत) प्रादुर्भवति ॥ ऋग्वेदे १ । ११ । ४ ऽपि ॥ ८ ॥ (३५९)

भाषार्थः—पूर्वोक्त दधिक्रावा के यज्ञ से (पुरां भिन्दुः) मेघनगरों का भेदन करने वाला (युवा) पुष्टाङ्ग (कविः) गर्जने वाला (अमितौजाः) अपरिमित बलयुक्त (विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता) वर्षाधीन होने से सब कार्यों का धारक (वज्री) अस्त्रशाला (पुरुष्टुतः) वेदों में अधिकता से वर्णित (इन्द्रः) विद्युत (अजायत) प्रकट होता है ॥ ऋ० १ । ११ । ४ में भी ॥८॥ (३५९)

* यह चतुर्थाऽध्याय में प्रथम दशति समाप्त हुई *

प्रेति चानुष्टुभः प्रोक्ता दशतौ दश तत्र च ।
वयश्चिदित्युपस्थेयं सप्तमी, नवमी अमी ॥ १ ॥
इति सा वैश्वदेव्यस्ति ऋचं सामेति चान्तिमा ।
ऋक्सामयोः स्तुतिस्तत्र शेषा ऐन्द्र्योऽथ सप्त याः॥२॥

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २३ १ २ ३ १२३१ २
प्र प्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
३ १ २ ३१ २ ३ २३ १ २
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्याविवासति ॥ १ ॥ (३६०)

पदपाठः—प्र, प्र अ० । वः ६=१ । त्रिष्टुभम्, इषम् २ । वन्दद्वीराय, इन्दवे ४ । धिया ३ । वः २ । मेधसातये ४ । पुरन्धी २ । आविवासति क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—हे यजमानाः ! ऋत्विजश्च ! (वः) यूयम् (वन्दद्वीराय) वन्दन्तो वन्दमाना वीरा यस्मै तस्मै (इन्दवे) उनत्ति वृष्ट्या भूमिमिति तस्मै इन्द्राय (त्रिष्टुभम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

त्रयःस्तोभा यत्र तत्साम (प्र) प्रभरत। तथा (इषम्) सोमादन्नाहुतिम् (प्र) प्रभरत। उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः। स इन्द्रः (धिया) कर्मणा (वः) युष्मान् तथा (पुरुन्धी) द्यावापृथिव्यौ (मेधसातये) यज्ञसंभजनाय (आ, विवासति) सर्वतः परिचरति ॥

सामसु हि स्तोभादयः श्रूयन्ते । तत्संपादनायैव विकार-विश्लेष- विकर्षण-विरामा-ऽभ्यास-लोपा-ऽऽगम-स्तोभादयः क्रियन्ते। तथा च सामविधानब्राह्मणे-"तस्य ह वा एतस्य साम्न ऋगेवास्थीनि, स्वरो माꣳसानि, स्तोभा लोमानि" १। १। ४ स च स्तोभस्त्रिविधः-पदस्तोभ-वाक्यस्तोभाक्षरस्तोभभेदात् । तत्र पदस्तोभाः " हाउ " कारादयः पञ्चदश १५ मन्त्रब्राह्मणे (३। १३) पठिताः। वाक्यस्तोभाश्च-"आशस्तिः स्तुतिः संख्यानं प्रलयः परिदेवनम्। प्रैषमन्वेषणञ्चैव सृष्टिराख्यानमेव च " इति नव ९ । वर्णस्तोभास्तु सर्वत्रैव गानग्रन्थेऽस्यां चैवर्चि-

३ १ २ ३ र २ २ २

"मेधसातये" इत्यत्र वामदेव्यसाम्नि "मेधसा १ ता ३ याइ" इत्यादि ॥ इषमित्यन्ननाम निघं० २। ७ ॥ इन्दुरिन्धेरुनत्तेर्वा निरु० ८। ४१ ॥ मेधइति यज्ञनाम निघं० ३ । १७ तस्य सातये संभजनाय ॥ पुरन्धी इति द्यावापृथिवोर्नाम निघं० ३। ३० ॥ धीरिति कर्मनाम २। १ ॥ विवासति इति परिचरणकर्मा ३। ५॥ ऋग्वेदे तु ८। ६९। १ मन्ददीरायेति भेदः ॥१॥ (३६०)

भाषार्थः—हे यजमानो ! और ऋत्विजो ! तुम (वन्ददीराय) वीरवन्दित (इन्द्रवे) वर्षा से पृथिवी के भिगोने वाले इन्द्र के लिये (त्रिष्टुभम्) ३ स्तोभों वाले साम का (प्र) गान करो और (इषम्) सोमादि अन्न की आहुति (प्र)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दो। वह (धिया) कर्म से (वः) तुम को तथा (पुरन्धी) आकाश और पृथिवी को (मेधसातये) यज्ञ बांटने के लिये (आ-विवासति) सब ओर से सेवित करता है ॥

सामों में-स्तोभादि सुने जाते हैं। उन के बनाने को ही विकार, विश्लेष, विकर्षण, विराम, अभ्यास, लोप, आगम और स्तोभादि किये जाते हैं। साम-विधान ब्राह्मण (१ । १ । ४) में कहा है कि "इस साम की ऋचा ही हड्डियां हैं, स्वर मांस हैं और स्तोभ रोम हैं" और वह स्तोभ ३ प्रकार का है-पद-स्तोभ, वाक्यस्तोभ और अक्षरस्तोभ। जिस में पदस्तोभ १५ प्रकार के "हाउ" कार आदि मन्त्रब्राह्मण (३ । १३) में कहे हैं। वाक्यस्तोभ आशस्ति, स्तुति, संख्यान, प्रलय, परिदेवन, प्रैष, अन्वेषण, सृष्टि और आख्यान; ये ९ हैं। और वर्णस्तोभ तो गानग्रन्थ में सर्वत्र ही हैं। तथा च इसी ऋचा में-

३ १ २ ३ र २ २ २

(मेधसातये) इस के वामदेव्यगान में (मेधसा १ ता ३ याइ) इत्यादि देखिये॥ निघण्टु ३ । ७ ॥ २ । १७ ॥ ३ । ३० ॥ २ । १ ॥ ३ । ५ ॥ निरुक्त ८ । ४१ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ६९ । १ में " मन्दद्वीराय " पाठ है ॥ १ ॥ (३६०)

अथ द्वितीयायाः-वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ ३२३ २३२ ३२३ १२

कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।

२ ३२३ १२ ३२ ३१र २र ३ १ २

ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥ २ ॥ (३६१)

पदपाठः-कश्यपस्य ६ । स्वर्विदः १ । यौ १ । आहुः क्रि० । सयुजौ १ । इति अ० । ययोः ७ । विश्वम् १ । अपि अ० । व्रतम् १ । यज्ञम् २ । धीराः १ । निचाय्य अ० ॥

अन्वितपदार्थः-(स्वर्विदः) स्वर्गस्य ज्ञातारः (धीराः) ध्यानवन्तो योगिनः (यज्ञम्) योगयज्ञम् (निचाय्य) ज्ञात्वा निश्चित्य, (कश्यपस्य) कशउदकमेव कश्यं तत्पाति पिबति वेति कश्यप इन्द्रस्तस्य (यौ) द्वौ (सयुजौ) सह युक्तौ धारणाकर्षणाख्यौ गुणौ स्तः (ययोः) द्वयोरेव

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(विश्वम्) सर्वम् (अपि) खलु (व्रतम्) कर्म [अस्ति । यदायत्तं सर्वं कर्मेत्यर्थः] (इति आहुः) ॥

व्रतमिति कर्मनाम निघं० २ । १ ॥ २ ॥ (३६१)

भाषार्थः—(स्वर्विदः) स्वर्लोक के जानने वाले (धीराः) ज्ञानवान् योगी (यज्ञम्) योगयज्ञ को (निचाय्य) निश्चित करके (इति आहुः) यह कहते हैं कि (कश्यपस्य) इन्द्र के (यौ) जो दो (सयुजौ) साथ जुड़े हुवे धारणाऽकर्षण गुण हैं (ययोः) जिन दोनों में (विश्वम्) सब (अपि) ही (व्रतम्) [निघं० २ । १] कर्म है [उन्हें तुम जानो] ॥

योगियों से इस बात का निश्चय किया जाता है कि बिजुली में दो गुण हैं जिन से सब जगत् के काज सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥ (३६१)

अथ तृतीयायाः-प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत ।

१ २ ३ २ ३ २३ ३ २ ३क २र

अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद्धृष्ण्वर्चत ॥ ३ ॥ (३६२)

पदपाठः-अर्चत, प्र-अर्चत क्रि० । नरः, प्रियमेधासः सं० । अर्चत, अर्चन्तु क्रि० । पुत्रकाः सं० । उत अ० । पुरम् २ । इत् अ० । धृष्णु २ । अर्चत क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-परमात्मोपदिशति-(हे नरः) कर्मणां नेतारः ! (प्रियमेधासः) प्रियो मेधो यज्ञो येषां ते यूयम् (अर्चत अर्चत प्रार्चत) इन्द्रं यजत यजत बहु यजत (पुत्रकाः) हे पुत्राः ! (अर्चन्तु) यजत (उत) च (पुरम्) यष्टृणां कामपूरकम् (धृष्णु) सर्वस्य धर्षकम् इन्द्रम् (इत्) अवश्यम् (अर्चत)

बहूक्तिरतिशयावश्यकत्वद्योतनार्था ॥ इन्द्रपदेन परमात्मा विद्युच्च गृह्येते ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ६९ । ८-

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत,, इति भेदेन पाठः ॥ ३ ॥ (३६२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि (नरः) हे नेता मनुष्यो ! (प्रियमेधासः) हे यज्ञ से प्यार करने वालो ! (पुरम्) यजन करने वालों का इष्ट पूर्ण करने वाले (उत) और (धृष्णु) सब को दबा सकने और स्वयं न दबने वाले इन्द्र का (अर्चत प्रार्चत) यजन करो, यजन करो, बहुत यजन करो (पुत्रकाः) हे पुत्रो ! (अर्चन्तु) यजन करो (इत्) अवश्य (अर्चत) यजन करो॥

बहुत वार यजन करो, कहना उस की अत्यन्त आवश्यक विधि का द्योतक है। इन्द्र शब्द से परमात्मा और सूर्य वा विद्युत् का ग्रहण है॥ ऋ० ८। ६९। ८ में जो पाठभेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ३॥ (३६२)

अथ चतुर्थ्याः—मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

३ १र २र ३ २ ३ १र ३ १ २

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिःषिधे।

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत्सख्येषु च॥ ४॥ (३६३)

पदपाठः—उक्थम् २। इन्द्राय ३। शंस्यम् २। पुरुनिःषिधे ४। शक्रः १। यथा अ०। सुतेषु ७। नः २। रारणत् क्रि०। सख्येषु ७। च अ०॥

अन्वितपदार्थः—हे सुहृदः! (यथा) येन प्रकारेण पिता (सुतेषु) पुत्रेषु यथा (च) सखा (सख्येषु) सखिषु उपदिशति तथैव (शक्रः) सर्वशक्तिमान् ईश्वरः (पुरुनिःषिधे) पुरु बहु यथा स्यात्तथा नितरां व्याप्तिमते (इन्द्राय) स्वस्वरूपाय विद्युते वा (शंस्यम्) वर्णनीयम् (उक्थम्) पूर्वमन्त्राद्युक्तं वचनम् (वर्धनम्) वृद्धिकरम् (नः) अस्मान् (रारणत्) अतिशयेनोपदिशति॥ ऋग्वेदे १। १०। ६ऽपि॥ ४॥ (५६३)

भाषार्थः हे मित्रो ! (यथा) जिस प्रकार पिता (सुतेषु) पुत्रों में (च) और मित्र (सख्येषु) मित्रों में [उपदेश करता है इसी प्रकार] (शक्रः) सर्वशक्तिमान् ईश्वर (पुरुनिःषिधे) अत्यन्त निरन्तर व्याप्ति वाले (इन्द्राय) अपने लिये व विद्युत् के लिये (शंस्यम्) कहने योग्य (वर्धनम्) वृद्धिकारक (उक्थम्) पूर्व मन्त्रादि में कहे वचन का (नः) हमें

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(रारणत्) उपदेश करता है ॥ ऋ० १ । १० । ६ में भी ॥ ४ ॥ (३६३)

अथ पञ्चम्याः—प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १२

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥ (३६४)

पदपाठः—विश्वानरस्य, वः ६ । पतिम् २ । अनानतस्य, शवसः ६ । एवैः ३ । च अ० । चर्षणीनाम् ६ । ऊती ४ । हुवे क्रि० । रथानाम् ६ ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः ! अहमीश्वरः (विश्वानरस्य) सर्वेषां नेतुः (अनानतस्य) अनम्रस्य (शवसः) बलस्य (पतिम्)पालकं सर्वाभिभावुकमऽनम्रबलवन्तम् [इन्द्रं] (वः) युष्माकं(चर्षणीनाम्)मनुष्याणां सम्बन्धिनां(रथानाम्) यानानाम् (ऊती) ऊतये रक्षायै (च) तथा (एवैः) गतिभिः सह (हुवे) उपदिशामि ॥ एवैरिति एतेर्गतिकर्मणो (निघं० २ । १४) रूपम् ॥ ऋग्वेदे ८ । ६८ । ४ ऽपि ॥ ५ ॥ (३६४)

भाषार्थः-हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर (विश्वानरस्य अनानतस्य शवसः पतिम्) सब के नेता, अनम्र, बल के, पति [इन्द्र] का (वः चर्षणीनाम्) तुम मनुष्यों के (रथानाम्) रथादि यानों की (ऊती) रक्षा के लिये (च) और (एवैः) गतियों सहित (हुवे) उपदेश करता हूं ॥ निघण्टु २ । १४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ६८ । ४ । में भी ॥ ५ ॥ (३६४)

अथ षष्ठ्याः—भारद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १र २र ३ १ २

सघा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।

३ १र २र३ ३ २ ३ २उ ३ १ २

ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अꣳहो न तरति ॥ ६ ॥ (३६५)

पदपाठः—सघा, यः १ । ते, दिवः ६ । नरः १ । धिया ३ । मर्तस्य, शमतः ६ । ऊती ३ । सः १ । बृहतः, दिवः ६ । द्विषः २ । अंहः २ । न अ० । तरति क्रि० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-हे मनुष्य ! (ते) तव (शमतः) शान्तियुक्तस्य (यः) (सघा) सखानुकूलः (दिवः नरः) आकाशगतपदार्थानां नेता इन्द्रः (सः) (धिया) कर्मणा (बृहतो दिव ऊती) महतो ह्याकाशगतवस्तुजातस्य रक्षया (द्विषः) द्वेष्टॄन् (तरति) अतिक्रान्तान्करोति । दृष्टान्तः- (न) यथा (अंहः) पापम् तरन्ति तद्वत् ॥

सखेत्यस्य स्थाने सघेति वर्णव्यत्ययः ॥ ऋग्वेदे तु ६।२। ४ "ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते । ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति" ॥ इति पाठः ॥ ६ ॥ (३६५)

भाषार्थः-हे मनुष्य ! (शमतः ते) शान्तियुक्त तेरा (यः) जो (सघा) सखा मित्र अनुकूलवर्त्ती (दिवः) आकाश के पदार्थों का (नरः) नेता इन्द्र है (सः) वह (धिया) कर्म से (बृहतो दिवः ऊती) बड़े आकाश के वस्तुमात्र की रक्षा से (द्विषः) द्वेष करने वाले को (तरति) उल्लङ्घित करता है । दृष्टान्त-(न) जैसे (अंहः) पाप को लांघते हैं तद्वत् ॥

ऋ० ६ । २ । ४ का पाठभेदादि संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ६ ॥ (३६५)

अथ सप्तम्याः-अत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।

१ २ ३ १ २

अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नꣳ सुदत्र मꣳहय ॥७। (३६६)

पदपाठः-विभोः, ते ६ । इन्द्र सं० । राधसः ६। विभ्वी, रातिः १ । शतक्रतो सं० । अथ अ० । नः ४ । विश्वचर्षणे सं० । द्युम्नम् २ । सुदत्र सं० । मंहय क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(सुदत्र) हे सुदान ! (शतक्रतो) बहुकर्मन् ! (विश्वचर्षणे) सर्वस्य प्रकाशक ! वा द्रष्टः ! (इन्द्र) परमेश्वर ! वा विद्युत् ! (ते) तव (विभोः राधसः) महतोधनस्य (विभ्वी रातिः) महती दानक्रियाऽस्ति । (अथ) अतः (नः) अस्मभ्यम् (द्युम्नम्) धनं यशो वा (मंहय) प्रयच्छ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

राध इति धननाम निघं० २। १०॥ विश्वर्चषणिरिति पश्यतिकर्मा ३। ११॥ द्युम्नमिति धननाम २। १०॥ संहते इति दानकर्मा ३। २०॥ ऋग्वेदे ५। ३८। १ तु "उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो। अधानो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र संहय" इति पाठः॥ ७॥ (३६६)

भाषार्थः—(सुक्षत्र) हे शुभदान! (शतक्रतो) बहुत कर्म वाले! (विश्वचर्षणे) सब के देखने वा प्रकाश करने वाले! (इन्द्र) परमेश्वर! वा विद्युत्! (ते) तेरा (विभ्वी राधसः) बहुत धन का (विभ्वी रातिः) बड़ा दान है (अथ) इस लिये (नः) हम को (द्युम्नम्) धन (संहय) दे॥

निघण्टु २। १०॥ ३। २०॥ ३। ११ के प्रमाण और ऋ० ५। ३८। १ का पाठ संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ७॥ (३६६)॥

अथाऽष्टम्याः—प्रस्कण्वऋषिः। उषा देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २

वयश्चित्ते पतत्त्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि!

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि॥ ८॥ (३६७)

पदपाठः—वयः १। चित् अ०। ते ६। पतत्त्रिणः, द्विपात्, चतुष्पात् १। अर्जुनि, उषः सं०। प्रारन् क्रि०। ऋतून् २। अनु अ०। दिवः ६। अन्तेभ्यः ५। परि अ०॥

अन्वितपदार्थः (अर्जुनि) शुभ्रवर्णे! (उषः) प्रातर्वेले! (ते) तव (ऋतून्) आगमनानि (अनु) अनुलक्ष्य (द्विपात्) मनुष्यादिकम् (चतुष्पात्) गवादिकम् तथा (पतत्त्रिणः) पक्षवन्तः पतनशीलाः (वयश्चित्) पक्षिणोऽपि (दिवः अन्तेभ्यः) दिगन्तेभ्यः (परि) सर्वतः (प्रारन्) प्रकर्षेण गच्छन्ति॥ रात्रावन्धकाराऽभिभूताः प्राणिनस्त्वदा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

गमनानन्तरं चेष्टावन्तो भवन्तीत्यर्थः ॥ ऋग्वेदे तु १।४९।३ द्विपच्चतुष्पदित्यन्तरम् ॥ विद्युद्वाचकेन्द्रवर्णने तत्सदृचारिण्या उषसो वर्णनं न प्रकरणविरोधाय मन्यताम् ॥ उषसो वर्णनेन स्त्रियोऽप्युपदिष्टा बोध्याः ॥ ८ ॥ (३६७)

भाषार्थः-(अर्जुनि) शुभ्र वर्ण वाली ! (उषः) प्रातःकाल की बेला ! (ते) तेरे (ऋतून् अनु) आगमनों को देख कर (द्विपात्) मनुष्यादि और (चतुष्पात्) गौ आदि तथा (पतत्त्रिणः वयश्चित्) पंखों वाले पक्षी भी (दिवः अन्तेभ्यः) अनेक दिशाओं से (परि) सब ओर (प्रारन्) अत्यन्त गमन करते हैं ॥

अर्थात् रात्रि में अन्धकार के सताये प्राणी उषःकाल के आगमन से फिर चेष्टा करने लगते हैं। बिजुली के वाचक इन्द्र के वर्णन में उषा का वर्णन अनुचित नहीं हैं। तथा उषा के वर्णन से स्त्री भी उपदिष्ट जानिये ॥ ८ ॥ (३६७)

अथ नवम्याः-आप्त्यश्चित ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

अमी ये देवाः स्थन मध्य आरोचने दिवः ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३

कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥ (३६८)

पदपाठः-अमी, ये, देवाः, १। स्थन क्रि०। मध्ये, आरोचने ७। दिवः ६। कद् अ०। वः ६। ऋतम् १। कद् अ०। अमृतम् १। का, प्रत्ना १। वः ६। आहुतिः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(अमी) एते (ये) प्रत्यक्षाः पृथिव्यादयः (देवाः) लोकाः (दिवः) आकाशस्य (मध्ये) (आरोचने) प्रकाश्यस्थाने (स्थन) सन्ति, (वः) एतेषाम् मध्ये (कद्) किम् (ऋतम्) सत्यं वेदवचनं अस्ति ? (कद्) किंवा (अमृतम्) सोमादियज्ञद्रव्यम् अस्ति ? (वः) एतेषाम् (का) प्रश्ने (प्रत्ना) सनातनी (आहुतिः) यज्ञक्रिया अस्ति ?

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अत्रेदं पृच्छ्यत यदेतेषु द्युलोकवर्त्तिषु लोकलोकान्तरेषु वेदा यज्ञाश्च सन्ति न वा ? तदुत्तरमग्रिममन्त्रे विद्यते ॥

स्थनेत्यत्र—तप्तनप्तनथनाश्चेति (७ । १ । ४५) थनादेशः ॥ ऋग्वेदे १ । १०५ । ५ तु " अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वारोचने दिवः । कद्ध नूनं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी" इति पाठः ॥

पदार्थः—(अमी) ये (ये) जो (दिवः मध्ये आरोचने) आकाशगत प्रकाश में (देवाः) लोक (स्थन) हैं (वः) इन के मध्य में (कद् ऋतम्) क्या वेदवचन है ? (कद् अमृतम्) क्या यज्ञ की सामग्री है ? (वः) इन के मध्य में (का प्रत्ना आहुतिः) क्या सनातनी यज्ञक्रिया है ?

इस मन्त्र में यह प्रश्न है कि आकाशस्थ लोकलोकान्तरों में भी क्या वेद और यज्ञ का प्रचार है ? इस का उत्तर अगले मन्त्र में दिया है॥ अष्टाध्यायी ७ । १ । ४५ का प्रमाण और ऋग्वेद १ । १०५ । ५ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥

केचिदृग्वेदस्था ऋचः सामवेदे दृष्ट्वा शङ्कन्ते यद्—ऋग्वेद एव प्राचीनः सामवेदस्त्वर्वाचीन एव । परं न तत्सत्यम् । कुतः—"ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ" इत्यादिना ऋग्वेदे १० । ८५ । ११ ऽपि सामवेदस्य श्रवणात् ॥ ९ ॥ (३६८)

कोई लोग यह शङ्का करते हैं कि ऋग्वेद के मन्त्र सामवेद में देखे जाते हैं, इस से ऋग्वेद ही प्राचीन प्रतीत होता है और सामवेद नवीन । परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि ऋग्वेद के १० । ८५ । ११ (ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ०) इत्यादि स्थलों में सामवेद का नाम उपस्थित है॥ ९ ॥ (३६८)

अथ दशम्याः वामदेव ऋषिः । ऋक्साम देवते । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२३ १२ ३ २ ३ १२ ३ १२

ऋचꣳसाम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।

१ २२ ३२ ३१२

वि ते सदासि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः॥१०॥(३६९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥

पदपाठः-ऋचम्, साम २ । यजामहे क्रि० । याभ्याम् ३ । कर्माणि २ । कृण्वते क्रि० । वि अ० । ते १ । सदसि १ । राजतः क्रि० । यज्ञम् २ । देवेषु १ । वक्षतः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(याभ्याम्) ऋक्सामाभ्याम् (कर्माणि) अग्निहोत्रादीनि (कृण्वते) कुर्वन्ति ते (ऋचम् साम) चेति द्वे [तत्र ऋचो वेदमन्त्राः सामानि गानानि] (यजामहे) यजन्ति संगमयन्ति (ते) ऋक्सामे (सदसि) यज्ञमण्डपे (वि राजतः) (देवेषु) वाय्वादिषु (यज्ञम्) (वक्षतः) वहतः ॥

अर्थात्-एषु सर्वेषु लोकेषु वेदाः गानानि च सन्ति, आभ्यां मन्त्रगानाभ्यां सह तत्र तत्र यज्ञाश्चानुष्ठीयन्ते इति निश्चीयताम् ॥ १० ॥ (३६९)

इत्यानुष्टुभमैन्द्रम् ॥

—*—

भाषार्थः-(याभ्याम्) जिन २ से (कर्माणि) अग्निहोत्रादि (कृण्वते) करते हैं उन (ऋचम्) वेदमन्त्र और (साम) गान को (यजामहे) सङ्गत करते हैं । (ते) वे मन्त्र और गान (सदसि) यज्ञमण्डप में (वि राजतः) विराजते हैं और (देवेषु यज्ञं वक्षतः) वायु आदि देवतों में यज्ञ पहुंचाते हैं ॥ अर्थात् इन सब लोकों में वेदमन्त्र गान और यज्ञ होते हैं ॥ १० ॥ (३६९)

यह अनुष्टुप्छन्दों का (इन्द्रविषयक) प्रकरण समाप्त हुआ ॥

और यह चतुर्थाऽध्याय में दूसरी दशति भी पूर्ण हुई ॥२॥

—*—

अथ जागतमैन्द्रम्

विश्वा इत्यादिदशतौ जगत्यो दश कीर्तिताः ।
दशमी च महापङ्क्तिर्नवमीं घृतवत्यृचम् ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रोदस्योः स्तुतये प्राहुः शिष्टा ऐन्द्र्यो मता दश ।

श्लोकार्थः-

" विश्वाः पृतना " इत्यादि (तीसरी) दशति में प्रथम ९ ऋचा और ११ वीं का जगती छन्द है । बीच की १० वीं का महापङ्क्ति । तथा ९ वीं (घृतवती०) के द्यावापृथिवी देवते और शेष सब का इन्द्र ॥

अथ तृतीया दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः-रेभ ऋषिः । इन्द्रो देवता । जगती छन्दः ॥

२ ३ १२ ३ १२३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३१२ ३ १ २

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

२ ३१२ १ २ ३ १ २३१ २२ २१२ ३ १ २

क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥ (३७०)

पदपाठः-विश्वाः, पृतनाः, अभिभूतरम् २ । नरः १ । सजूः १ । ततक्षुः क्रि० । इन्द्रम् २ । जजनुः क्रि० । च अ० । राजसे अ० । क्रत्वे ४ । वरे, स्थेमनि ७ । आमुरीम् २ । उत अ० । उग्रम्, ओजिष्ठम्, तरसम्, तरस्विनम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(नरः) मनुष्याः (सजूः) परस्परं संगताः सन्तः (विश्वाः पृतनाः अभिभूतरम्) सर्वासां शत्रुसेनानामभिभवितारम् (वरे) श्रेष्ठे (स्थेमनि) स्थिरे सिंहासने आसीनम् (आमुरीम्) शत्रूणां मारयितारम् (उग्रम्) तीव्रस्वभावम् (ओजिष्ठम्) अत्योजोयुक्तम् (तरसम्) बलिनम् (तरस्विनम्) वेगवन्तम् (इन्द्रम्) राजानम् (जजनुः) सम्पादयेयुः (उत) च (ततक्षुः) शस्त्रैस्तीक्ष्णीकुर्युः=शस्त्रास्त्रैः सुसज्जितं कुर्युः । किमर्थम् ? (राजसे) राज्यं कर्त्तुम् (च) तथा (क्रत्वे) क्रतवे यज्ञादिकर्मणे च ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पृतना इति संग्रामनाम निघं० २ । १७ ॥ राजृ दीप्तौ इत्यस्माद्धातोः-तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेन्० ३ । ४ । ९ इति असे प्रत्यये राजसे ॥ छन्दस्युभयथा ३ । ३ । ११७ इति णिलोपे जजनुरिति रूपम् ॥ प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलेत्यादिना (६ । ४ । १५७) स्थिरशब्दस्य स्थादेशे इमनिचि स्थेमा तस्मिन्स्थेमनि ॥ तरइति बलनाम २ । ९ ॥ ऋग्वेदे ८ । ९७ । १० तु " विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे । क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम्" ॥ इत्यन्तरम् ॥१॥ (३७०)

पदार्थः-(नरः) मनुष्य लोग (सजूः) साथ मिल कर (विश्वाः पृतनाः अभिभूतरम्) सब शत्रुओं के तिरस्कृत करने वाले (वरे स्थेमनि) श्रेष्ठ अत्यन्त स्थिर सिंह समारूढ (आमुरीम्) शत्रुगणनाशक (उग्रम्) तेजस्वी (ओजिष्ठम्) अत्यन्त प्रतापी (तरसम्) बली (तरस्विनम्) वेगवान् (इन्द्रम्) राजा को (जजनुः) बनावें (उत) और उस को (राजसे) राज्य करने के लिये (च) और (क्रत्वे) यज्ञ करने के लिये (ततक्षुः) शस्त्रास्त्रसज्जित करें ॥

निघण्टु २ । ९ ॥ २ । १७ अष्टाध्यायी ३ । ४ । ९ ॥ ६ । ४ । १५७ ॥ ३ । ४ । ११७ के प्रमाण और ऋ० ८ । ९७ । १० का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (३७०)

अथ द्वितीयायाः-सुवेदः शैलूषिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । जगती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २

अत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं विवेरपः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात्पृ-

३ १ २

थिवी चिदद्रिवः ॥ २ ॥ (३७१)

पदपाठः-अत् अ० । ते ६ । दधामि क्रि० । प्रथमाय, मन्यवे ४ । अहन्

क्रि० । यत् ३ । दस्युम्, नर्यम्, २ । विवेः क्रि० । अपः २ । वृत्रे १ । यत् ३ । त्वा २ । रोदसी १ । धावताम् क्रि० । अनु अ० । भ्यसात् क्रि० । ते ६ । शुष्मात् ५ । पृथिवी १ । चित् अ० । अद्रिवः सं० ॥

अन्वितपदार्थः-(अद्रिवः) अद्रिर्मेघस्तोऽस्यास्ति सः अद्रिवान् इन्द्रस्तद्वत्पराक्रम ! राजन् ! (ते) तव (प्रथमाय) मुख्याय विस्तृताय च (मन्यवे) क्रोधाय तेजसे (अत् दधामि) आदरं करोमि (यत्) येन मन्युना (नर्यम्) नराणामिमं शत्रुं (दस्युम्) शुभकर्मणामुपक्षयकरम् (अहन्) हंसि (अपः) कर्माणि (विवेः) विस्तीर्णानि करोषि । (ते) तव (शुष्मात्) बलात् (पृथिवी) भूमिः (भ्यसात्) बिभीयात् (चित्) अपि च (यत्) येन तेजसा (उभे) द्वे (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (त्वा) त्वाम् (अनु धावताम्) त्वदनुकूले गच्छताम् ॥ वृष्ट्यादिना द्यौः सस्यादिना पृथिवी च तव तेजोऽनुकूले भवताम् ॥ श्लेषालङ्कारेणेश्वरविषयेऽपि व्याख्येयम् ॥

अद्रिरिति मेघनाम निघं० १ । १० ॥ अप इति कर्मनाम २ । १ भ्यस भये भ्वादिरात्मनेभाषः । ततो लेटि-लेटोऽडाटौ ३ । ४ । ९४ इतश्चलोपः परस्मैपदेषु ३।४।९७ इति भ्यसात् ॥ शुष्ममिति बलनाम २।९॥ ऋग्वेदे तु १०।१४७।१ वृत्रं नर्यं विवेरपः। उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मा३० इति पाठभेदः ॥ २ ॥ (३७१)

भाषार्थः-(अद्रिवः) हे विद्युत्तुल्य तेजस्विन् ! राजन् ! (ते) आप के (प्रथमाय) मुख्य और विस्तृत (मन्यवे) तेज के लिये (अत् दधामि) अद्वा=आदर करता हूं । (यत्) जिस प्रताप से (नर्यम्) नरसम्बन्धी (दस्युम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कर्मों के विघ्नकारक दुष्ट जन को (अहन्) मारते हो और (अमः) कर्मों को (विवेः) विस्तृत करते हो। (ते) आप के (शुष्मात्) बल से (पृथिवी) पृथ्वी (भ्यसात्) डरे (चित्) और (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक पृथिवी लोक (त्वा) आप के (अनु वावताम्) अनुकूल चलें, अर्थात् वृष्टयादि से द्युलोक और धान्यादि से पृथिवी आप के विमुख न हों। श्लेष अलङ्कार में ईश्वर विषय में भी समझिये ॥

निघण्टु १।१७॥२।१॥२।९॥ अष्टाध्यायी ३।४।९४॥ ३।४।९७ के प्रमाण और ऋ० १०।१४७।१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥२॥ (३७१)

अथ तृतीयायाः—वामदेव ऋषिः। इन्द्रोदेवता। जगती छन्दः॥

१२३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २२ ३

समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भूरतिथि-

१ २ २ ३ १ २२३ १ २ ३ १ २३१ २२ ३

र्जनानाम्। स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन्तं वर्त्तनीरनुवावृत

२ ३ २

एक इत् ॥ ३ ॥ (३७२)

पदपाठः—समेत क्रि०। विश्वाः सं०। ओजसा ३। पतिम् २। दिवः ६। यः, एकः १। इत् अ०। भूः क्रि०। अतिथिः १। जनानाम् ६। सः, पूर्व्यः १। नूतनम्, आजिगीषन्तम् २। वर्त्तनीः २। अनुवावृते क्रि०। एकः १। इत् अ०॥

अन्वितपदार्थः—(विश्वाः) हे सर्वाः प्रजाः! यूयम् (ओजसा) आत्मिकबलेन (दिवः पतिम्) परमात्मानम् (समेत) सम्यक् प्राप्नुत शरणम्। (यः) परमेश्वरः (एक इत्) एक एव (जनानाम्) प्राणिनां मनुष्याणां वा (अतिथिः) सेव्यः (भूः) भवति। (सः) परमेशः (पूर्व्यः) सनातनः (आजिगीषन्तं नूतनम्) विजयमिच्छन्तं नवीनं धार्मिकं राजानम् (एक इत्) एक एव (वर्त्तनीः) मार्गान् (अनु वावृते) अनु वर्त्तयति॥

वर्त्तते इति गतिकर्मा निघं० २।१४ ततो-वृतेश्च (उणा०

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२ । १०६) इति वर्त्तनिर्मार्गः ॥ तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ६ । १ । ७ इति दीर्घे वावृते ॥ ३ ॥ (३७२)

भाषार्थः—(विश्वाः) हे सब प्रजावर्ग ! तुम (ओजसा) आत्मिक बल से (दिवः पतिम्) परमात्मा की (समेत) भले प्रकार शरण गहो (यः) जो (एकइत्) एक ही (जनानाम्) प्राणियों वा मनुष्यों का (अतिथिः) सेवनीय (भूः) है और (सः) वही (पूर्व्यः) सनातन (आजिगीषन्तम् नूतनम्) विजय चाहने वाले नवीन धार्मिक राजा को (एकइत्) एक ही (वर्त्तनीः) मार्गों पर (अनुवावृते) चलाता अर्थात् विजय कराता है ॥

निघण्टु २ । १४ उणादि २ । १०६ अष्टाध्यायी ६ । १ । ७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (३७२)

अथ चतुर्थ्याः—सव्य आङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । जगतीछन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।

२३ ३ १ २ ३ २३ १२ ३ १ २३२ ३१२ ३ १ २

नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ॥

॥ ४ ॥ (३७३)

पदपाठः—इमे, ते १ । इन्द्र सं० । ते ६ । वयम् १ । पुरुष्टुत सं० । ये १ । त्वा २ । आरभ्य अ० । चरामसि क्रि० । प्रभूवसो सं० । न, हि अ० । त्वदन्यः १ । गिर्वणः सं० । गिरः २ । सघत् क्रि० । क्षोणीरिव, प्रति, तत् अ० । हर्य क्रि० । नः ६ । वचः २ ॥

अन्वितपदार्थः—(प्रभूवसो) प्रभवति वसु यस्य तत्सम्बुद्धौ । अतएव (पुरुष्टुत) बहुस्तुत!(इन्द्र) परमेश्वर! (ये इमे) ये मध्यमपुरुषवाच्याः प्रत्यक्षा मनुष्याः (ते) ये च प्रथमपुरुषवाच्याः परोक्षाः (वयम्) उत्तमपुरुषवाच्या वयञ्च (ते) तवैव स्मः । (त्वा) त्वाम् (आरभ्य) आश्रयतयाऽवलम्ब्य (चरामसि) वर्त्तामहे । (गिर्वणः) हे स्तुत्य ! (त्वदन्यः) त्वद्व्यतिरिक्तस्त्वत्समः (गिरः) वेदवाचः (नहि) नैव (सघत्) व्याप्नोति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(तत्) तस्मात् (नः) अस्माकं स्तुतिलक्षणम् (वचः) वेदवाक्यम् (प्रति हर्य) प्रतिगृहाण स्वीकुरु। दृष्टान्तः-(क्षोणीरिव) यथा पृथिवी स्वकीयानि भूतजातानि प्रतिगृह्णाति तद्वत्॥

गिरुपपदाद्वनतेरौणादिकेऽसुनि गिर्वणः॥ क्षोणीरिति पृथिवीनाम निघं० १।१॥ हर्यतीति गतिकर्मा २।१४॥ ऋग्वेदे तु १।५७।४ प्रति नो हर्य तद्वचः इत्यन्तरम्॥४॥ (३७३)

भाषार्थः-(प्रभूवसो) हे सर्वाधिकधनयुक्त! (पुरुष्टुत) इसी से बहु स्तुत! (इन्द्र) परमेश्वर! (ये इमे) ये जो प्रत्यक्ष मनुष्य हैं और (ते) वे जो परोक्ष हैं और (वयम्) हम सब (ते) आप ही के हैं और (त्वा) आप का (आरभ्य) अवलम्बन करके (चरामसि) वर्त्तते हैं (गिर्वणः) हे स्तुतियोग्य! (त्वदन्यः) आप के अतिरिक्त कोई (गिरः) वेदवाणियों को (नहि) नहीं (सघत्) व्याप सक्ता (तत्) इसलिये (नः) हमारा (वचः) स्तोत्र (प्रति हर्य) स्वीकार कीजिये। दृष्टान्त-(क्षोणीरिव) जैसे पृथिवी अपने में उत्पन्न हुवे प्राणिमात्र को स्वीकार करती है॥

निघण्टु १।१॥ २।१४ इत्यादि के प्रमाण और ऋग्वेद १।५७।४ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ४॥ (३७३)

अथ पञ्चम्याः-विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। जगतीछन्दः॥

३ १२ ३१२ ३ २ २ ३ १२ ३ २३क २र
चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या ३ मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्य-
३ १२ ३१ २३२ ३१२३ १२ ३१
नूषत। वावृधानं पुरुहूतꣳसुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवे
२
दिवे॥ ५॥ (३७४)

पदपाठः-चर्षणीधृतम्, मघवानम्, उक्थ्यम्, इन्द्रम् २। गिरः, बृहतीः १। अभ्यनूषत क्रि०। वावृधानम्, पुरुहूतम् २। सुवृक्तिभिः ३। अमर्त्यम्, जरमाणम् २। दिवे, दिवे अ०॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(बृहतीः) प्रभूताः (गिरः) अस्मदीया वाचः (अर्षणीधृतम्) मनुष्याणां धारकम् (मघवानम्) सर्वधनवन्तम् यज्ञवन्तं वा (उक्थ्यम्) स्तुत्यम् (वावृधानम्) बलधनादिसर्वसंपत्त्या वृद्धम् (पुरुहूतम्) बहुस्तुतम् (अमर्त्यम्) मरणधर्मरहितम् (सुवृक्तिभिः, दिवे दिवे, जरमाणम्) शोभनवेदवाक्यैः, प्रत्यहं, स्तूयमानम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (अभ्यनूषत) सर्वथा स्तुवन्तु ॥

उक्थ्य इति प्रशस्यनाम निघं० ३ । ८ ॥ दिवे दिवे इत्यहर्नाम १ । ९ ॥ जरते इत्यर्चतिकर्मा ३ । १४ ॥ ऋग्वेदेऽपि ३ । ५१ । १ ॥ ५ ॥ (३७४)

भाषार्थः-(बृहतीः) बड़ी (गिरः) हमारी वाणी (अर्षणीधृतम्) मनुष्यों के धारक (मघवानम्) धन वा यज्ञ वाले (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वावृधानम्) बल धन आदि में बड़े (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुवे (अमर्त्यम्) अमर (सुवृक्तिभिः दिवे दिवे जरमाणम्) सुन्दर वेदवाणियों से प्रतिदिन स्तुत किये जाने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अभ्यनूषत) सर्वथा स्तुत करें ॥

निघण्टु ३ । ८ ॥ १ । ९ ॥ ३ । १४ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ३ । ५१ । १ में भी ॥ ५ ॥ (३७४)

अथ षष्ठ्याः-कृष्णआङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । जगतीछन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

परिष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्यं मघवानमूतये॥

॥ ६ ॥ (३७५)

पदपाठः-अच्छ अ० । वः ६ । इन्द्रम् २ । मतयः, स्वर्युवः, सध्रीचीः, विश्वाः, उशतीः १ । अनूषत, परिष्वजन्त क्रि० । जनयः १ । यथा अ० । पतिम्,

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मर्यम् २ । न अ० । शुन्ध्यम्, मघवानम् २ । ऊतये ४ ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः ! (वः) युष्माकम् (स्वर्युवः सध्रीचीः उशतीः विश्वाः मतयः) परमानन्दमिच्छन्त्यः समीचीनगतिमत्यः कामयमानाः सर्वाः बुद्धयः (अच्छ) सुष्ठु (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (अनूषत) स्तुवन्तु। दृष्टान्तः—(न) यथा (शुन्ध्यम्) शुद्धम् (मघवानं मर्यम्) धनवन्तं मनुष्यम् (ऊतये) धनधान्यादिनात्मरक्षायै स्तुवन्ति तद्वत्। पुनर्दृष्टान्तमाह—(यथा) येन प्रकारेण (जनयः) स्त्रियः परमप्रीत्या (पतिम्) भर्त्तारम् (परिष्वजन्त) आलिङ्गन्ति॥

मनुष्यैर्यादृशो हि स्नेहः प्रीत्युद्रेकश्च धनादिदातृषु क्रियते, यादृशी वा आत्यन्तिकी कामना स्त्रिया पुंसि क्रियते, तादृशी तावती वा चेत्परमात्मनि उत्कण्ठा स्यात्तदाऽवश्यं संसाराद्रक्षा परमानन्दलाभश्च जायेत ॥

स्वः स्वर्गं परमानन्दं यातुमिच्छन्तीति स्वर्युवः । क्याच्छन्दसि ३ । २ । १७० ॥ ऋग्वेदे तु १० । ४३ । १ "अच्छामइन्द्रं मतयः स्वर्विदः" इति "परिष्वजन्ते" इति च पाठेऽन्तरम् ॥ ६ ॥ (३७५)

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारी (स्वर्युवः) परमानन्द चाहने वाली (सध्रीचीः) सीधी सच्ची (उशतीः) कामना करती हुई (विश्वाः मतयः) सारी बुद्धियें (अच्छ) अच्छे प्रकार (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अनूषत) स्तुत करें। दृष्टान्त—(न) जैसे (शुन्ध्यम्) शुद्ध (मघवानम्) धनवान् (मर्यम्) मनुष्य को (ऊतये) धनधान्य द्वारा अपनी रक्षा के लिये स्तुत करते हैं तद्वत्। दूसरा दृष्टान्त—(यथा) जैसे (जनयः) स्त्रियें (पतिम्) पति को (परिष्वजन्त) आलिङ्गन करती हैं तद्वत् ॥

मनुष्यों का जितना प्रेम स्त्री पुरुष के परस्परभाव में है, अथवा जितनी कामना और दीनता प्रार्थना धनादि पदार्थों के लिये करते हैं, यदि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इतना प्रेम और इतनी नम्रता परमेश्वर के प्रति धारण करें तो अवश्य परमानन्द की प्राप्ति और संसार से रक्षा हो ॥

अष्टाध्यायी ३ । २ । १७० का प्रमाण और ऋ० १० । ४३ । १ में जो पाठभेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ६ ॥ (३७५)

अथ सप्तम्याः—सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । जगतीच्छन्दः ॥

१ २उ ३ १ २ ३ २३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो
३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अर्णवम् । यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे
२ २ ३ १ २ २
मꣳहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ ७ ॥ (३७६)

पदपाठः—अभि अ० । त्यम् , मेषम् , पुरुहूतम् , ऋग्मियम् , इन्द्रम् २ । गीर्भिः ३ । मदत क्रि० । वस्वः ६ । अर्णवम् २ । यस्य ६ । द्यावः १ । न अ० । विचरन्ति क्रि० । मानुषम् २ । भुजे ४ । मंहिष्ठम् २ । अभि अ० । विप्रम् २ । अर्चत क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः ! (त्यम्) तं (मेषम्) कामानां सेक्तारम् (पुरुहूतम्) बहुाहूतम् (ऋग्मियम्) वेदमन्त्रैर्मेयं ज्ञेयम् (वस्वः अर्णवम्) धनधान्यादेः समुद्रम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (गीर्भिः) वाग्भिः (मदत) प्रसन्नं कुरुत (यस्य) परमेश्वरस्य (द्यावो न) किरणा इव (मानुषम्) मनुषजातम् (अभि) व्याप्य (विचरन्ति) सर्वतो वर्त्तन्ते (भुजे) परमानन्दभोगाय तं (मंहिष्ठम्) पूजनीयतमम् (विप्रम्) मेधाविनम् (अभि अर्चत) सर्वतः पूजयत ॥ ऋग्वेदे तु १ । ५१ । १ मानुषा इत्यन्तरम् ॥ ७ ॥ (३७६)

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! (त्यम्) उस (मेषम्) कामपूरक (पुरुहूतम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बहुतों से पुकारे हुवे (ऋग्मियम्) ऋचाओं से जानने योग्य (बस्वः अर्णवम्) धन के समुद्र (इन्द्रम्) परमात्मा को (गीर्भिः) वाणियों से (मदत) प्रसन्न करो (यस्य) जिस की (द्यावः न) किरणें सी (मानुषम्) मनुष्य मात्र में (अभि) व्याप कर (विषरन्ति) सर्वत्र वर्त्तमान हैं । (सुजे) परमानन्द भोगने के लिये उस (संहिष्ठम्) अत्यन्त पूजनीय (विप्रम्) मेधावी को (अभि अर्चत) सर्वतः पूजित करो ॥ ऋ० १ । ५१ । १ में " मानुषा " पाठ है ॥ ७ ॥ (३७६)

अथाष्टम्याः—ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

२उ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १
त्यꣳ सु मेषं महया स्वर्विदꣳ शतं यस्य सुभुवः साक-
२र २ ३ १ २र ३ २३ २३ १ २ ३
मीरते । अत्यं न वाजꣳ हवनस्यदꣳ रथमेन्द्रं ववृत्या-
१२ ३ १ २
मवसे सुवृक्तिभिः ॥ ८ ॥ (३७७)

पदपाठः—त्यम् २ । सु अ० । मेषम् २ । महय क्रि० । स्वर्विदम् २ । शतम् १ । यस्य ६ । सुभुवः १ । साकम् अ० । ईरते क्रि० । अत्यम् २ । न अ० । वाजम्, हवनस्यदम्, रथम् २ । आ अ० । इन्द्रम् २ । ववृत्याम् क्रि० । अवसे ४ । सुवृक्तिभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(यस्य) परमात्मनः (शतम्) असंख्याताः (सुभुवः) शोभना भूमयः (सुवृक्तिभिः) शोभनैः परस्परा-ऽवरोधवर्जनैः (साकम्) सहैव (ईरते) गच्छन्ति स्वस्व-कक्षायाम् । (त्यम्) तम् (मेषम्) मेहं कामपूरकम् (स्वर्विदम्) सुखस्य दातारम् (अवसे) रक्षणाय (सु महय) सुष्टु उपा-सीथाः पूजय (इन्द्रम्) परमात्मानम् (आ ववृत्याम्) आसर्वतो वर्त्तयेयमिति । दृष्टान्तः—(न) यथा (अत्यम्) आग्नेयाश्वयुक्तम् (वाजम्) बलवन्तम् (हवनस्यदम्) येन हवनं पन्थानं स्यन्दते तम् (रथम्) विमानादिकम्

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आवर्त्तयन्ति तद्वत् ॥ " आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्वाः " इति निरु० ७ । ४ । प्रामाण्यादपि परमात्मा हि सर्वेषां लोकानां रथो यत्र स्थिता इमे लोकाः सहैव गच्छन्तोऽपि विरोधं वर्जयन्तः, स्वस्वकक्षायां नियता गच्छन्ति, सएव सर्वेषामुपास्यो देवः ॥ ऋग्वेदे १ । ५२ । १ऽपि ॥ ८ ॥ (३७७)

भाषार्थः—(यस्य) जिस की (शतम्) असंख्य (सुभुवः) सुन्दर भूमियें (सुवृक्तिभिः) सुन्दर बधावों के साथ (साकम्) एक साथ ही (ईरते) घूमती हैं (त्यम्) उस (मेषम्) कामना के पूर्ण (स्वर्विदम्) आनन्द के दाता (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अवसे) रक्षार्थ (सु महय) भले प्रकार पूज, कि मैं उसे (आववृत्याम्) सब ओर वर्त्तमान करूं । दृष्टान्त—(न) जैसे (अत्यम्) अग्निमय आदि घोड़ों वाले (वाजम्) बलयुक्त (हवनस्यदम्) मार्ग पर चलने वाले (रथम्) विमानादि को सब ओर वर्त्तते हैं तद्वत् ॥

परमेश्वर की असंख्य भूमि (लोक) आपस में नहीं टकराती हुई एक साथ घूम रही हैं और ये भूमियें (लोक लोकान्तर) परमात्मा में इस प्रकार वर्त्तमान हैं जिस प्रकार रथ में बैठे लोग अपने २ अभीष्ट स्थान को पहुंचते हैं कोई किसी से टक्कर नहीं मारता । निरुक्त ७ । ४ में भी लिखा है कि " परमात्मा ही इन पृथिवी सूर्यादि का रथ और अश्व है " वही सब का उपास्य देव है ॥ ऋ० १ । ५२ । १ में भी ॥ ८ ॥ (३७७)

अथ नवम्याः—भरद्वाज ऋषिः । रोदस्यौ देवते । जगतीछन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।

१ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥

॥ ९ ॥ (३७८)

पदपाठः—घृतवती १ । भुवनानाम् ६ । अभिश्रिया, उर्वी, पृथ्वी, मधुदुघे, सुपेशसा, द्यावापृथिवी १ । वरुणस्य ६ । धर्मणा ३ । विष्कभिते, अजरे, भूरिरेतसा १ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—हे परमेश्वर ! (वरुणस्य) वरणीयस्य तव (धर्मणा) धारणेन (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिव्यौ (विष्कभिते) धारिते स्तः किंभूते (घृतवती) घृतवत्यौ उदकवत्यौ (भुवनानाम्) लोकानाम् (अभिश्रिया) अभिश्रियौ आश्रयणीये (उर्वी) उर्व्यौ बह्व्यौ (पृथ्वी) पृथ्व्यौ विस्तीर्णे (मधुदुघे) मधुन उदकस्य दोग्ध्र्यौ (सुपेशसा) सुपेशसौ सुरूपे (अजरे) अजीर्णे (भूरिरेतसा) बहुरेतस्के ॥

सुपां सुलुगिति सर्वत्र विभक्तिस्वरूपविपरिणामेन सिद्धिः ७ । १ । ३९ ॥ घृतमित्युदकनाम निघं० १ । १२ ॥ उर्विति बहु—नाम ३ । १ अवयवविवक्षया च बहुत्वव्यपदेशः बह्ववयवे इत्यर्थः ॥ मध्वित्युदकनाम १ । १२ ॥ पेश इति रूपनाम ३ । ७ ॥ ऋग्वेदे ६ । ७० । १ ऽपि ॥ ९ ॥ (३७८)

भाषार्थः—हे परमेश्वर ! (वरुणस्य) वरणीय आप के (धर्मणा) धारण से (घृतवती) उदक वाली (भुवनानाम्) लोक लोकान्तरों की (अभिश्रिया) आश्रय करने योग्य (उर्वी) बड़ी (पृथ्वी) विस्तार वाली (मधुदुघे) जल को पूरित करने वाली (सुपेशसा) सुन्दर रूप वाली (अजरे) न जीर्ण हुई (भूरिरेतसा) बहुत बीज वाली (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी (विष्कभिते) ठहरी हैं ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ निघण्टु १ । १२ ॥ ३ । १ ॥ ३ । ७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६ । ७० । १ में भी ॥ ९ ॥ (३७८)

अथ दशम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । महापङ्क्तिश्छन्दः ॥

(षडऽत्राऽष्टाक्षराःपादा द्वौ चार्द्धर्चावऽधीमहे)

३१ २१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनाꣳ

३ १ २ १ २ ३ १ २२ १ १ २२
सम्राजं चर्षणीनाम्। देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्

॥ १० ॥ (३७९)

पदपाठः—उभे २। यत् अ०। इन्द्र सं०। रोदसी २। आ पप्राथ क्रि०। उषाइव अ०। महान्तम्, त्वा २। महीनाम् ६। सम्राजम् २। चर्षणीनाम् ६। देवी, जनित्री १। अजीजनत् क्रि०। भद्रा, जनित्री १। अजीजनत् क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) यस्मात् त्वम् (उषाइव) उषा यथा स्वभासा जगदापूरयति तद्वत् (उभे रोदसी) द्वे अपि द्यावापृथिव्यौ (आ पप्राथ) आपूरयसि स्वतेजसा। अतः कारणात् (देवी) दिव्या (जनित्री) जगतो जनयित्री तव दीप्तिः (महीनां महान्तम्) महतामपि महत्तमम् (चर्षणीनाम्) मनुष्यादीनाम् (सम्राजम्) राजानम् (त्वा) त्वाम् (अजीजनत्) प्रकटयति। (भद्रा) शोभना (जनित्री) जगज्जननी तव दीप्तिः (अजीजनत्) त्वां प्रकटयति ॥ वीप्साऽतिशयार्थद्योतनार्था ॥

प्रा पूरणे आदादिकः परस्मैभाषः ततः—छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ३। ४। ६ इति लिटि मध्यमैकवचने पप्राथ ॥ जानता मन्त्रे ६। ४। ५३ इति णिलोपनिपाते जनित्री—साधुकारिणि तृन् (३। २। १३५ पा०) ऋन्नेभ्यो ङीप् ४। १। ५ पा० ॥ ऋग्वेदे १०। १३४। १ ऽपि ॥ १० ॥ (३७९)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) जो कि आप (उषाइव) उषा के समान (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथिवी लोकों को (आ पप्राथ) सर्वतः अपनी ज्योति से पूरित कर रहे हैं, इस लिये (देवी) दिव्य (जनित्री) जगज्जननी आप की ज्योति (महीनाम्) बड़ों के (महान्तम्) बड़े और (चर्षणीनाम् सम्राजम्) मनुष्यादि के राजा (त्वा) आप को (अजीजनत्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रकट करती है। (भद्रा) शोभना (जनित्री) जगत् की जननी आप की ज्योति आप को (अजीजनत्) प्रकट करती है ॥ दो बार कहना अतिशय अर्थ में है ॥

अष्टाध्यायी ३।४।६ ॥ ६।४।५३ ॥ ३।२।१३५ ॥ ४।१।५ इत्यादि प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये। ऋ० १०।१३४।१ में भी ॥ १० ॥ (३७९)

अथैकादश्याः—कुत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। जगती छन्दः ॥

२ ३१२ ३१२ ३ २३ २ ३ १२ ३१२३१२

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।

३ २३ १२३ १२ ३१२ ३१२

अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥

॥११॥ (३८०) * इति तृतीया दशतिः ॥३॥ *

पदपाठः—प्र अ० । मन्दिने ४ । पितुमत् २ । अर्चत क्रि० । वचः २ । यः १ । कृष्णगर्भाः २ । निरहन् क्रि० । ऋजिश्वना ३ । अवस्यवः १ । वृषणम्, वज्रदक्षिणम्, मरुत्वन्तम् २ । सख्याय ४ । हुवेमहि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—परमेश्वर उपदिशति—हे मनुष्याः ! यूयम् (मन्दिने) प्रशस्तायेन्द्राय विदुषे (पितुमत्) हव्ययुक्तं (वचः) सूक्तम् (प्र अर्चत) प्रकर्षेण संस्कुरुत (यः) इन्द्रः (कृष्णगर्भाः) कृष्णो मेघस्तस्य गर्भभूताः अपः (ऋजिश्वना) स्वस्य सरलया वृद्ध्या (निरहन्) निर्हन्ति निर्गमयति अन्तर्भूतण्यर्थो गतिकर्मा हन्तिर्बोध्यः। कथं प्राऽर्चाम इत्यत्राऽऽह—(अवस्यवः) जलसस्यादिनाऽऽत्मनो रक्षणमिच्छवः वयम् (वृषणम्) वर्षकम् (वज्रदक्षिणम्) वज्रकुशलम् (मरुत्वन्तम्) वायुवन्तम् इन्द्रम् (सख्याय) आनुकूल्याय (हुवेमहि) जुहुमः इति ॥

मन्दी मन्दतेः स्तुतिकर्मणः—प्रमन्दिने पितुमदर्चता वचः।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इत्यादि ४। २४ निरुक्तमनुसन्धेयम् ॥ "अत्र विवरणकार व्याख्यानमुत्कृष्टतरम्, तथाहि-कृष्णगर्भाः-कृष्णो मेघस्तस्य गर्भभूता अपः निरहन्निति निर्गमितवान् पातितवानित्यर्थः इति" इति सामश्रमी ॥ ऋजुशब्दस्योकारस्य वर्णव्यत्ययेन ऋजिः । टुओ "श्वि" गतिवृद्ध्योरिति वृद्ध्यर्थाच्छ्विधातोरौणादिके कनिन्प्रत्यये श्वन् शब्दः सिद्धः ॥ पितुरित्यन्ननाम निघं० २ । ७ ॥ ऋग्वेदे तु १ । १०१ । १ "सख्याय हवामहे" इति पाठः ॥ ११ ॥ (३८०)

इति जागतमैन्द्रम् ॥

भाषार्थः-परमेश्वर का उपदेश है कि हे मनुष्यो ! (मन्दिने) प्रशंसनीय इन्द्र विद्युत् के लिये (पितुमत्) हव्ययुक्त (वचः) वचन को (प्र अर्चत) सुसंस्कृत करो (यः) जो कि (कृष्णगर्भाः) काले मेघ के गर्भरूप जल को (ऋजिश्वना) अपनी सरल वृद्धि से (निरहन्) गिराता है । किस प्रकार वचन कहें ? कि (वृषणम्) वृष्टिकारक (वज्रदक्षिणम्) उत्तम वज्रयुक्त (मरुत्वन्तम्) वायुगणसहित इन्द्र को (सख्याय) अनुकूलता के लिये (अवस्यवः) अपनी धनधान्यादि से रक्षा चाहने वाले हम (हुवेमहि) हवन करते हैं, इस प्रकार ॥

निरुक्त ४।२४॥ विवरणकार और सत्यव्रत सामश्रमी ॥ निघण्टु २।७ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० १।१०१।१ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ११ ॥ (३८०)

यह इन्द्रविषयक जगती छन्दों का प्रकरण और
* चतुर्थाऽध्याय में तीसरी दशति पूर्ण हुई ॥ ३ ॥ *

—:*:—

इन्द्रेतीन्द्रस्य दशतावुष्णिहो दश कीर्त्तिताः ॥

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः-नारद ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३२३ १ २ ३ १ २ ३उ ३क्ष
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँहि षः ॥ १ ॥ (३८१)

पदपाठः–इन्द्र सं० । सुतेषु, सोमेषु ७ । क्रतुम् २ । पुनीषे क्रि० । उक्थ्यम् २ । विदे ४ । वृधस्य, दक्षस्य ६ । महान् १ । हि अ० । सः १ ॥

अन्वितपदार्थः–(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (सोमेषु) सोमाद्योषधिवर्गेषु (सुतेषु) निष्पन्नेषु सत्सु त्वमेव (क्रतुम्) यज्ञम् (उक्थ्यम्) स्तोत्रैः सहितं (पुनीषे) पावनं करोषि (सः हि) यज्ञः (वृधस्य) महतः (दक्षस्य) बलस्य (विदे) लाभाय (महान्), अस्तीति शेषः ॥

दक्ष इति बलनाम निघं० २ । ९ ॥ ऋग्वेदे तु ८ । १३ । १ "इन्द्रः" "पुनीते" "दक्षसः" इति पदत्रयपाठे भेदः ॥ १ ॥ (३८१)

भाषार्थः–(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (सोमेषु) सोमादि ओषधियां (सुतेषु) तैयार होने पर (उक्थ्यम्) स्तोत्रयुक्त (क्रतुम्) यज्ञ को (पुनीषे) आप पवित्र करते हैं । (सः हि) वही यज्ञ (वृधस्य) बड़े (दक्षस्य) बल के (विदे) लाभ के लिये (महान्) बड़ा है ॥

निघण्टु २ । ९ का प्रमाण और ऋ० ८ । १३ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (३८१)

अथ द्वितीयायाः–गोपूक्तयज्ञसूक्तिनावृषी । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमाविवासत ॥ २ ॥ (३८२)

पदपाठः–तम् २ । उ अ० । अभि प्र गायत क्रि० । पुरुहूतम्, पुरुष्टुतम्, इन्द्रम् २ । गीर्भिः ३ । तविषम् २ । आविवासत क्रि० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(पुरुहूतम्) बहुआहूतम् (पुरुष्टुतम्) बहुस्तुतम् (तविषम्) महान्तम् (तम् उ) तमेव (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (अभि प्र गायत) हे उद्गातारः ! आभिमुख्येन प्रस्तुत (गीर्भिः) वाग्भिः (आविवासत) परिचरत ॥

तविष इति महन्नाम निघं० ३ । ३॥ विवासतिः परिचरणकर्मा ३ । ५ ॥ ऋग्वेदे ८ । १५ । १ ऽपि ॥ २ ॥ (३८२)

भाषार्थः-हे उद्गाताओ ! (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुवे (पुरुष्टुतम्) बहुत स्तुत किये हुवे (तविषम्) महान् (तम् उ) उस ही (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अभि प्र गायत) मुख्य करके प्रस्तुत करो और (गीर्भिः) वाणियों से (आविवासत) सेवित करो ॥

निघण्टु ३ । ३ ॥ ३ । ५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १५ । १ में भी ॥ २ ॥ (३८२)

अथ तृतीयायाः-ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
३ १ २ ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम ॥ ३ ॥ (३८३)

पदपाठः-तम् २ । ते ६ । मदम् २ । गृणीमसि क्रि० । वृषणम् २ । पृक्षु ७ । सासहिम् २ । उ अ० । लोककृत्नुम् २ । अद्रिवः सं० । हरिश्रियम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(अद्रिवः) हे मेघानां पर्वतानां च पते ! (तम्), (ते) तव (वृषणं) कामनापूरकम् (पृक्षु सासहिम्) कामादिशत्रुषु तेषामभिभावुकम् (उ) च (लोककृत्नुम्) पृथिव्यादिलोककर्त्तारम् (हरिश्रियम्) व्यापनशीलाः श्रियो यस्य तम् (मदम्) आनन्दं स्वरूपम् (गृणीमसि) स्तुमः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पृत्सु इति संग्रामनाम निघं० २। १७ तस्यैव वर्णव्यत्यय कृतः पृक्षु इतिपाठः ॥ प्वादीनां ह्रस्वः ७। २। ८० इदन्तोमसि ७। १। ४६ इति गृणीमसि ॥ अद्रिरिति मेघनाम १।१०॥ ऋग्वेदे तु ८।१५।४ पृत्सु इत्येव साक्षात्पाठः ॥३॥(३८३)

भाषार्थः–(अद्रिवः) हे मेघों और पर्वतों के स्वामी ! (तम्) उस (ते) आप के (वृषणम्) कामनापूरक (पृत्सुसाहम्) कामादि शत्रुओं के दबाने वाले (उ) और (लोककृत्नुम्) लोकों के कर्त्ता (हरिश्रियम्) व्यापक हैं शोभायें जिस की ऐसे (मदम्) आनन्दस्वरूप को (गृणीमसि) हम प्रशंसित करते हैं ॥

निघण्टु २। १७ ॥ १। १० ॥ अष्टाध्यायी ७। २। ८० ॥ ७। १। ४६ के प्रमाण और ऋ० ८। १५। ४ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (३८३)

अथ चतुर्ऋचस्यः–पर्वत ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ ४ ॥ (३८४)

पदपाठः–यत्, सोमम् १ । इन्द्र सं० । विष्णवि ७। यद्, वा, घ अ० । त्रिते, आप्त्ये ७ । यद्, वा अ० । मरुत्सु ७ । मन्दसे क्रि० । सम् अ० । इन्दुभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः–(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (विष्णवि) विष्णौ सर्वव्यापके त्वयि (यत्सोमम्) अमृतमस्ति लिङ्गव्यत्ययः । (घ) नूनम् (आप्त्ये) आप्तेषु भवद्भक्तेषु भवे (त्रिते) इडापिङ्गला सुषुम्णानां समूहे यदऽमृतम् (यद्वा) अथवा (मरुत्सु) प्राणेषु यदऽमृतम् (यद्वा) अथवाऽन्यत्र यत्र यत्राऽमृतं विद्यते तत्र तत्र (इन्दुभिः) सोमैरमृतैस्त्वमेव (सम्) सम्यक् (मन्दसे) आनन्दयसि ॥

परमेश्वरस्यैवाऽऽनन्दस्वरूपेण सर्वत्रानन्दप्राप्तिः ॥ ऋग्वेदे

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

८ । १२ । १६ ऽपि ॥ ४ ॥ (३८४)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (विष्णवि) सर्वव्यापक आप में (यत्सो-मम्) जो अमृत है (घ) निश्चय (आप्त्ये) आप्त योगियों में हुवे (त्रिते) इडा पिङ्गला सुषुम्णा के समुदाय में जो अमृत है (यद्वा) अथवा (मरुत्सु) प्राणों में जो अमृत है (यद्वा) अथवा अन्यत्र जहां जहां अमृत है वहां वहां (इन्दुभिः) अमृतों से, आप ही (सम् मन्दसे) भले प्रकार आनन्दित करते हैं ॥

अर्थात् जहां २ मनुष्य प्राणादि में अमृत पाता है वहां २ सब आप ही का आनन्द है ॥ ऋ० ८ । १२ । १६ में भी ॥ ४ ॥ (३८४)

अथ पञ्चम्याः—विश्वमनावैयश्च ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

२३ १२३१२ ३१२ ३१२

एदु मधोर्मदिन्तरꣳसिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।

३२उ ३१ २२ ३१२

एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥ ५ ॥ (३८५)

पदपाठः—आ, इत्, उ अ० । मधोः ६ । मदिन्तरम् २ । सिञ्च क्रि० । अध्वर्यो सं० । अन्धसः ६ । एवा, हि अ० । वीरः १ । स्तवते क्रि० सदावृधः १॥

अन्वितपदार्थः—(अध्वर्यो) हे यज्ञस्य नेतः ! (मधोः) मधुररसस्य (अन्धसः) हव्यान्नस्य (मदिन्तरम्) हर्षकर-तमम् पुष्टतमं वा सोमरसम् (आ सिञ्च) जुहुधि (एवा हि) एवं कृते सति हि (सदावृधः) सर्वदा वृद्धिशीलः (वीरः) गतिशीलश्चेन्द्रो विद्युत् (स्तवते) स्तूयतेऽर्च्यत इज्यत इति यावत् ॥ (इत् उ) इति पादपूरकौ निपातौ । " पदपूर-णास्ते मिताक्षरेष्वनर्थकाः कमोमिद्वित " निरु० १ । ९ ॥

मधोरिति लिङ्गव्यत्ययः॥ मदो हर्षोऽस्यास्ति स मदी अतिशयितो मदी मदिन्तरः नलोपाऽभावआर्षः । दृश्यते हि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सर्वपुस्तकेषु सनकारः पाठः ॥ वीरः इति सविसर्गः पाठो यद्यपि क्वापि चतुर्षु सामवेदसंहितापुस्तकेषु न दृश्यते । परन्तु ऋग्वेदे ८ । २४ । १६ "मधवः" इति "सिञ्च वाध्वर्यो" इति "वीरः" इति च पाठो दृश्यते । तथा सामवेदीयसायणीयभाष्येऽपि सविसर्गो वीरः इति व्याख्यायते । अतोऽस्माभिरपि सविसर्ग एव पाठो निश्चीयते ॥ स्तवते इति विकरणव्यत्ययः ॥ ५ ॥ (३८५)

भाषार्थः—(अध्वर्यो) हे यज्ञ के नेता ! (मधोः अन्धसः) मधुररसयुक्त हव्यान्न के (मदिन्तरम्) अति हर्ष वा पुष्टिकारक रस को (आ सिञ्च) होम कर (एवा हि) ऐसा करने से (सदावृधः) सदा बढ़ने वाला (वीरः) गतिशील विद्युत् (स्तवते) अर्चित होता अर्थात् उस का यजन होता है ॥ (उ, इत्) ये दो पद निरुक्त १ । ९ के अनुसार मितात्तर ऋचाओं में पादपूरणार्थ हैं ॥

"मधोः" में नपुंसकलिङ्ग का व्यत्यय से पुंल्लिङ्गवद्रूप होगया ॥ मदिन्तर में नकार का लोप आर्ष मानकर न हुवा और चारों पुस्तकों में नकारसहित ही पाठ देखा जाता है । वीरः यह विसर्गसहित पाठ यद्यपि सामवेद के मूल पुस्तकों में नहीं देखा जाता परन्तु ऋग्वेद ८ । २४ । १६ में "मधवः" तथा "सिञ्च वाध्वर्यो" और "वीरः" ये पाठ देखे जाते हैं और सामवेदस्य सायणभाष्य में भी "वीरः" पाठ की व्याख्या है, अतः हम भी "वीरः" पाठ ही निश्चित समझते हैं ॥ स्तवते में विकरण का व्यत्यय है ॥५॥ (३८५)

अथ षष्ठ्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
१ २र ३ २
प्र राधाꣳसि चोदयते महित्वना ॥ ६ ॥ [३८६]

पदपाठः—आ अ० । इन्दुम् २ । इन्द्राय ४ । सिञ्चत, पिबाति क्रि० । सोम्यम् , मधु २ । प्र अ० । राधांसि २ । चोदयते क्रि० । महित्वना ३ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—हे ऋत्विजः ! (इन्द्राय) विद्युते (इन्दुम्) सोमरसम् (आ सिञ्चत) आजुहुत (सोम्यम्) सोमे भवम् (मधु) रसम् (पिबाति) शोषयति विद्युत् ततः (महित्वना) स्वस्य महत्त्वेन (राधांसि) धनधान्यानि (प्र चोदयते) वृद्धयै प्रेरयति ॥

राध इति धननाम निघं० २ । १० ॥ ऋग्वेदे तु ८ । २४ । १३ "प्रराधसा चोदयाते" इत्यन्तरम् ॥ ६ ॥ (३८६)

भाषार्थः—हे ऋत्विजो ! (इन्द्राय) विद्युत् के लिये (इन्दुम्) सोम रस का (आ सिञ्चत) आसेचन—हवन करो वह (सोम्यम्) सोम सम्बन्धी (मधु) रस को (पिबाति) पीता—शोषता है और (महित्वना) अपनी वृद्धि से (राधांसि) धनधान्यादि को (प्रचोदयते) वृद्धयर्थ प्रेरणा करता है ॥

निघण्टु २ । १० का प्रमाण और ऋ० ८ । २४ । १३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥ (३८६)

अथ सप्तम्याः—ऋष्यादिकमुक्तवत्

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।

३ १ २ २ ३ २ ३ ३ २

कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ ७ ॥ (३८७)

पदपाठः—एत क्रि० । उ, नु अ० । इन्द्रम् २ । स्तवाम क्रि० । सखायः सं० । स्तोम्यम्, नरम्, कृष्टीः २ । यः १ । विश्वाः २ । अभ्यस्ति क्रि० । एकः १ । इत् अ० ॥

अन्वितपदार्थः—(सखायः) हे सुहृदः ! (एत उ) आगच्छतैव (यः) परमेश्वरः (एक इत्) एक एव (विश्वाः कृष्टीः) सर्वान् मनुष्यान् (अभ्यस्ति) अभिभवति तम् (स्तोम्यम्) स्तोमार्हम् (नरम्) सर्वस्य नेतारम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तम् (नु) क्षिप्रम् (स्तवाम) स्तुतं करवाम ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋत्विग्भिर्यज्ञारम्भे परमेश्वरः स्तोतव्यः। यतः स एवेन्द्र पदस्य मुख्यो वाच्यः॥ ऋग्वेदे ८। २४। १९ऽपि ॥७॥ (३८७)

भाषार्थः-(सखायः) हे मित्रो ! (एत उ) आइये २ (यः) जो कि (एक इत्) एक ही (विश्वाः कृष्टीः) सब मनुष्यों को (अभ्यस्ति) तिरस्कृत करने में समर्थ है उस (स्तोम्यम्) स्तुतियोग्य (नरम्) सब के नायक (इन्द्रम्) इन्द्र पद के मुख्य वाच्य परमेश्वर को (नु) शीघ्र (स्तवाम) स्तुत करें॥

मनुष्यों को यज्ञारम्भ में परमात्मा की स्तुति करनी चाहिये। क्योंकि वही इन्द्रादि पदों का मुख्य वाच्य है॥ ऋ० ८। २४। १९ में भी ॥७॥ (३८७)

अथाऽष्टम्याः-नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। उष्णिक्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ८ ॥ (३८८)

पदपाठः-इन्द्राय ४। साम २। गायत क्रि०। विप्राय, बृहते ४। बृहत् २। ब्रह्मकृते, विपश्चिते, पनस्यवे ४॥

अन्वितपदार्थः-(ब्रह्मकृते) वेदकर्त्रे (विपश्चिते) ज्ञानदाय (विप्राय) मेधाविने सर्वज्ञाय (बृहते) महते (पनस्यवे) पनस्यायाऽर्च्याय (इन्द्राय) इन्द्रपदवाच्येषु मुख्याय परमेश्वराय(बृहत्)बृहन्नामकं महद्वा (साम गायत)॥

विप्र इति मेधाविनाम निघं० ३। १५॥ पनस्यतिरर्चतिकर्मा ३। १४॥ व्यत्ययेन कृत्यार्थ उः॥ ऋग्वेदे तु ८। ९८। १ "धर्मकृते" इति पाठः॥ ८॥ (३८८)

भाषार्थः-(ब्रह्मकृते) वेद के कर्त्ता (विपश्चिते) ज्ञानदाता (विप्राय) मेधावी सर्वज्ञ (बृहते) महान् (पनस्यवे) पूजनीय (इन्द्राय) इन्द्र पद के मुख्य वाच्य

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

परमेश्वर के लिये (बृहत्) बृहत् नामक वा बड़ा (साम गायत) सामगान करो॥

निघण्टु ३। १५॥ ३। १४ के प्रमाण और ऋ० ८। ९८। १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ८॥ (३८८)

अथ नवम्याः-गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। उष्णिक्छन्दः॥

२उ ३ २ ३१२३ २३ १२ ३१२

य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे।

१२ ३ १२ ३१२ ३२

ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग॥ ९॥ (३८९)

पदपाठः-यः, एकः १। इत् अ०। वि दयते क्रि०। वसु २। मर्त्ताय, दाशुषे ४। ईशानः, अप्रतिष्कुतः, इन्द्रः १। अङ्ग अ०॥

अन्वितपदार्थः-पुनः पूर्वोक्तं परमात्मानं विशिनष्टि (यः) परमैश्वर्यवान् (ईशानः) सर्वस्येश्वरः (अप्रतिष्कुतः) परैरप्रतिशब्दितः (इन्द्रः) परमात्मा (एक इत्) एक एव (दाशुषे) दानशीलाय (मर्त्ताय) मनुष्याय (वसु) धनादिकम् (अङ्ग) क्षिप्रम् (वि दयते) कर्मानुकूलं विशेषेण ददाति॥

दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्च ६।१।१२ इति चतुर्थ्या दाशुषे॥ अङ्गेति क्षिप्रनाम निरु० ५।१७॥ ऋग्वेदे १।८४।७ ऽपि॥ ९॥ (३८९)

भाषार्थः-(यः) जो (ईशानः) सर्वेश्वर (अप्रतिष्कुतः) जिस के प्रति कोई शब्द नहीं कर सकता ऐसा (इन्द्रः) परमेश्वर (एक इत्) एक ही (दाशुषे) दानी (मर्त्ताय) पुरुष के लिये (अङ्ग) शीघ्र (वसु) दानानुसारि धनादि (वि दयते) विशेष करके देता है॥

निरुक्त ५।१७ अष्टाध्यायी ६।१।१२ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० १।८४।७ में भी॥ ९॥ (३८९)

अथ दशम्याः-विश्वमना ऋषिः। इन्द्रो देवता। उष्णिक्छन्दः॥

१२ ३ १ २ ३१ २२ ३१२

सखाय आशिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ २ ३ २ ३ १२ ३ १२
स्तुष ऊ षु वा नृतमाय धृष्णवे ॥ १० ॥ (३९०)

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥

पदपाठः–सखायः सं० । आशिषामहे क्रि० । ब्रह्म २ । इन्द्राय, वज्रिणे ४ । स्तुषे क्रि० । उ, सु अ० । वः ६ । नृतमाय, धृष्णवे ४ ॥

अन्वितपदार्थः–(सखायः) हे सुहृदः ! (वः) युष्माकं (नृतमाय) नेतृतमाय (धृष्णवे) सर्वस्य धर्षणे क्षमाय स्वयमधृष्याय (वज्रिणे) पापिषु दण्डस्य नेत्रे (इन्द्राय) परमात्मने, यूयम् (ब्रह्म) वेदोक्तं स्तोत्रम् (स्तुषे) प्रशंसत (उ) तथा वयमपि (सु आ शिषामहे) सुष्ठु आशास्महे ॥

स्तुषे इति वचनलकारयोर्व्यत्ययः ॥ शासुअनुशिष्टौ (अदा० प०) व्यत्ययोबहुलम् ३ । १ । ८५ इत्यात्मनेपदम् ॥ ऊ इति संहितायाम्–निपातस्य च ६ । ३ । १३६ इति दीर्घः ॥ सु इति–सुञः ८ । ३ । १०७ इत्यनेन षत्वम् ॥ ऋग्वेदे तु ८ । २४ । १ "आशिषामहि" इत्यन्तरम् ॥ १० ॥ (३९०)

इति चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

भाषार्थः–(सखायः) हे मित्रो ! (वः) तुम्हारे (नृतमाय) अत्यन्त नेता (धृष्णवे) सब को धर्षित कर सके आप धर्षित न हो सके ऐसे (वज्रिणे) पापियों के दण्डप्रदाता (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (ब्रह्म) वेदोक्त (स्तुषे) स्तोत्रपाठ करो (उ) और हम भी (सु आ शिषामहे) भले प्रकार प्रार्थना करते हैं ॥

अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ ॥ ६ । ३ । १३६ ॥ ८ । ३ । १०७ इत्यादि प्रमाण और ऋ० ८ । २४ । १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥ (३९०)

* यह चतुर्थाध्याय में चतुर्थी दशति समाप्त हुई ॥ ४ ॥ *

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

गृणे तदिति पञ्चम्यां दशतावष्ट कीर्तिताः।
आदित्यः पञ्चमीषष्ठ्योः शिष्टा ऐन्द्र्य ऋचश्च षट् ॥
अष्टमी च विराडुक्ता पूर्वाः सप्तोष्णिहस्तथा।

* अथ पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः *

तत्रापि

चतुर्थाऽध्याये पञ्चमी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-प्रगाथ ऋषिः। इन्द्रो देवता। उष्णिक्छन्दः॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये।
१ २र ३ १ २र
यद्ध सि वृत्रमोजसा शचीपते ॥ १ ॥ (३९१)

पदपाठः-गृणे क्रि०। तत् २। इन्द्र सं०। ते ६। शवः २। उपमाम् २। देवतातये ४। यत् ३। हंसि क्रि०। वृत्रम् २। ओजसा ३। शचीपते सं०॥

अन्वितपदार्थः-(शचीपते) हे कर्मपते परमात्मन्! वा कर्माध्यक्ष! विद्युत्! (देवतातये) योगयज्ञाय कर्मयज्ञाय वा (ते) तव (तत्) प्रसिद्धं (शवः) बलम् (उपमाम्) उत्कृष्टम् (गृणे) स्तौमि (यत्) येन (ओजसा) बलेन (वृत्रम्) पापं मेघं वा (हंसि)॥

देवताता इति यज्ञनाम निघं० ३।१७ तस्यैव वर्णव्यत्ययेन देवतातये। (सर्वदेवात्तातिल् ४।४।१४२ पा०) इति तातिलि रूपम्॥ शचीति कर्मनाम २।१ ततोऽग्निष्टोमादयो यज्ञाः कर्माणि भौतिकपक्षे॥ वृत्र इति मेघनाम १।१०॥ ऋग्वेदे तु ८।६२।७ "उपमम्" इति पाठभेदः "भद्रा इन्द्रस्य रातयः" इत्यन्तेऽधिकः पाठश्च॥ १॥ (३९१)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

श्लोकार्थः-

गृणे इत्यादि ५ वीं दशति में सब ८ ऋचा हैं। जिन में ६। ७ वीं का आदित्य देवता है, शेष का इन्द्र। और ८ वीं का विराट् छन्द है, शेष ७ का उष्णिक् ॥

भाषार्थः-(शचीपते) कर्मों के पति ! परमेश्वर ! वा कर्म के प्रधान साधनभूत ! विद्युत् ! (ते) तेरे (तत्) उस (शवः) बल को (देवतातये) योगयज्ञ वा कर्मयज्ञ के लिये (उपमाम्) उत्कृष्टतापूर्वक (गृणे) वर्णित करता हूं (यत्) जिस (ओजसा) बल से (वृत्रम्) पाप वा मेघ का (हंसि) हनन करते हो ॥

निघण्टु ३ । १७ ॥ २ । १ ॥ १ । १० अष्टाध्यायी ४ । ४ । १४२ के प्रमाण और ऋ० ८ । ६२ । ७ का पाठभेदादि संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (३९१)

अथ द्वितीयायाः-भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।

३ १ २र ३ १ २र

अयꣳस सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥ (३९२)

पदपाठः-यस्य ६ । त्यत्, शम्बरम् २। मदे १। दिवोदासाय ४ । रन्धयन्, अयम्, सः, सोमः १ । इन्द्र सं० । ते ४ । सुतः १ । पिब क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(इन्द्र) मेघवर्षक ! विद्युत् ! (यस्य) सोमस्य (मदे) जनिते हर्षे (त्यत्) तम् (शम्बरम्) मेघं (दिवोदासाय) पृथिवीजनितोष्मणे (रन्धयन्) व्यापादयन् भवसि (सः अयं सोमः), (ते) तुभ्यं (सुतः) निष्पादितः (पिब) तं हूयमानं गृहाण ॥

यदा मनुष्याः सोमाद्योषधिजातं हुत्वा इन्द्राख्यं विद्युत्तत्त्वं हर्षयन्ति तदा स इन्द्रो मेघं भूमौ निपात्य, वृष्टयां सत्यां भूमेर्यो हि सस्याद्युत्पादक ऊष्मा निस्सरति तस्मै दिवोदासाय

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हितं करोति । तस्मात् तदाहुतयो होतव्याः सन्ति ॥

त्यच्छब्दस्तच्छब्दपर्यायः । लिङ्गव्यत्ययः॥विद्युतः सम्यक् स्वकार्यकरणं हर्षः॥ दिवोदासस्य दासो वायुविशेषः स हि सततं मेघसिक्ताया भूमेश्च विशेषतो निःसृत्य दिवं गच्छतीति पूर्वं व्याख्यातमेत्र ॥ रध हिंसासंराद्धयोः (दि० प०) इत्यस्यं रन्धयन्निति रूपम् ॥ शम्बर इति मेघनाम निघं० १ । १० शम्बरमिति बलनाम २ । ९ उदकनाम च १ । १२ ऋग्वेदे तु ६ । ४३ । १ "रन्धयः" इति पाठः ॥ २ ॥ (३९२)

भाषार्थः-(इन्द्र) मेघवर्षक ! विद्युत् ! (यस्य) जिस सोम के (मदे) हर्ष में (त्यत् शम्बरम्) उस मेघ को (दिवोदासाय) पृथिवी से निकलने वाले ऊष्मा के लिये (रन्धयन्) गिराता हुवा होता है (सः अयं सोमः) वह यह सोम (ते) तेरे लिये (सुतः) खींचा है (पिब) [इस हवन किये हुवे को] पी ॥

जब मनुष्य सोमादि ओषधियों को होम करते हैं तब इन्द्रनामक मेघ वर्षाने वाली बिजुली को मद (हर्ष) होता है और वह दिवोदास के लिये मेघ को वर्षाता है । द्युलोक का दास एक प्रकार का ऊष्मा है जो सदा भी पृथिवी से निकलता रहता है और मेघ वर्षने पर विशेष करके । वह घास पात अन्न आदि का उत्पादक है । वही दिवोदास है । यह हम पूर्व व्याख्यान कर चुके हैं । बिजुली का भले प्रकार अपना काम करना ही हर्ष जानिये । त्यत् शब्द तत् शब्द का पर्य्याय है । पुल्लिङ्ग का नपुंसकलिङ्ग व्यत्यय है । निघण्टु १ । १० में शम्बर नाम मेघ और १ । १२ में जल और २ । ९ में बल का नाम है ॥ ऋग्वेद ६ । ४३ । १ में " रन्धयः " पाठ है ॥ २ ॥ (३९२)

अथ तृतीयायाः-नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ।

१ २ ३ १ २

एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ २ उ ३ १ २ ३ १ २ र ३ २
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥ (३९३)

पदपाठः—आ अ० । इन्द्र सं० । नः ६ । गधि क्रि० । प्रिय, सत्राजित्, अगोह्य सं० । गिरिः १ । न, विश्वतः अ० । पृथुः, पतिः १ । दिवः ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) विद्युत् ! (नः प्रिय) अस्मत्प्रिय ! (सत्राजित्) सर्वेषां मेघानां जयकर ! (अगोह्य) प्रकाशमयत्वादऽसंवरणीय ! त्वं (गिरिर्न) मेघ इव (विश्वतः पृथुः) सर्वतो विस्तीर्णः (दिवः) अन्तरिक्षस्य (पतिः) पालयिता (आ गधि) आ सर्वतो गच्छसि व्याप्नोषि ॥

जडसंबोधनं वेदस्य शैलीति बहुशः पूर्वं प्रतिपादितमेव । गिरिरिति मेघनाम निघं० १ । १० ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ९८ । ४ " प्रियः सत्राजिदगोह्यः " इति पाठः ॥ ३ ॥ (३९३)

भाषार्थः—(इन्द्र) विद्युत् ! (नः प्रिय) हमारे प्यारे ! (सत्राजित्) सब मेघों को जीतने वाले ! (अगोह्य) प्रकाशमय होने से न छिपने योग्य ! (गिरिः न) मेघ के समान (विश्वतः पृथुः) सब ओर फैला हुआ (दिवः) अन्तरिक्ष का (पतिः) पालक तू (आ गधि) सब ओर व्यापता है ॥

जडसंबोधन वेद की शैली है, यह बहुत वार व्याख्यात कर चुके हैं । गिरि मेघ का नाम है निघं० १ । १० ॥ ऋ० ८ । ९८ । ४ में " प्रियः सत्राजिदगोह्यः " पाठ है ॥ ३ ॥ (३९३)

अथ चतुर्ध्यार्चः—पर्वत ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
२ ३ २ ३ २ २ ३ १ २
येनाहꣳसि न्या३त्रिणं तमीमहे ॥ ४ ॥ ३९४)

पदपाठः—यः १ । इन्द्र सं० । सोमपातमः, मदः १ । शविष्ठ सं० । चेतति क्रि० । येन ३ । आ हंसि क्रि० । नि अ० । अत्रिणम्, तम् २ । ईमहे क्रि० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(शविष्ठ) हे बलिष्ठ ! (इन्द्र) इन्द्र! (यः मदः) यस्ते हर्षः (चेतति) तीव्रतापन्नो भवति (येन) मदेन (सोमपातमः) अतिशयेन सोमस्य पाता त्वम् (अत्रिणम्) जलस्यात्तारं मेघम् (आ-नि-हंसि) निपातयसि (तम्) हर्षम् (ईमहे) वाञ्छामः ॥

ईमहे इति याञ्ञाकर्मा निघं० ३ । १९ शव इति बलनाम २ । ९ ॥ पाञ्चमिकात् (बहुलं छन्दसि ५ । २ । २२२) बहुलवचनात् विनिः । ततः-अतिशायनेतमविष्ठनौ ५ । ३ । ५५ इति इष्ठन् । ततः-विन्मतोर्लुक् ५ । ३ । ६५ इति विनेर्लुक् । टेः ६ । ४ । १५५ इति ठिलोपे शविष्ठ ! ॥ ऋग्वेदे ८ । १२ । १ ऽपि ॥ ४ ॥ (३९४)

भाषार्थः-(शविष्ठ) हे बलिष्ठ ! (इन्द्र) विद्युत् ! (यः मदः) जो तेरा हर्ष (चेतति) तीव्र होता है और (येन) जिस से (सोमपातमः) सोम का अत्यन्त पीने वाला तू (अत्रिणम्) मेघ को (आ-नि-हंसि) गिराता है (तम्) उस हर्ष को हम (ईमहे) चाहते हैं ॥

निघण्टु ३ । १९ ॥ २ । ९ ॥ अष्टाध्यायी ५ । २ । २२२ ॥ ५ । ३ । ५५ ॥ ५ । ३ । ६५ ॥ ६ । ४ । १५५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १२ । १ में भी ॥ ४ ॥ (३९४)

अथ पञ्चम्याः-अरिमिठ ऋषिः । आदित्या देवताः । उष्णिक्छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।

१ २ ३ १ २

आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ ५ ॥ (३९५)

पदपाठः-तुचे, तुनाय ४ । तत् २ । सु अ० । नः ६ । द्राघीयः, आयुः २ । जीवसे अ० । आदित्यासः, सुमहसः १ । कृणोतन क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-हे परमेश्वर ! (नः) अस्माकं (तुचे)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पुत्राय (तुनाय) पौत्राय च (तत् द्राघीयः आयुः) तद्दीर्घतममायुः (जीवसे) जीवनाय (सुमहसः) सुप्रकाशाः (आदित्यासः) आदित्या अदितेर्दिवो जाताः सूर्यादयो लोकाः (कृणोतन) कुर्वन्तु ॥

अर्थात् भवत्कृपया सूर्यादयो लोकाः पुत्रपौत्राणामनुकूलजीवनाय भवन्तु ॥

तुगित्यपत्यनाम निघं० २ । २ ॥ तनोति कुलमिति तुनः पौत्रः । उकारोपजनश्छान्दसः । ऋग्वेदे ८ । १८ । १८ तु "तनाय" इत्येव पाठः ॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम् ॥ ऋ० १ । ८९ । १० अत्र दिवो नामाऽदितिः श्रूयते ॥५॥ (३९५)

भाषार्थः–हे परमेश्वर ! (सुमहसः) सुप्रकाशित (आदित्यासः) अदिति=द्यौ के पुत्र सूर्यादि लोक (नः) हमारे (तुने) पुत्र और (तनाय) पौत्रादि के लिये (जीवसे) जीवनार्थ (तत्) उस (द्राघीयः) अतिदीर्घ (आयुः) आयु को (कृणोतन) करें ॥

अर्थात् आप की कृपा से सूर्यादि लोकों के प्रकाशादि फल हमारे सन्तानों की आयु के वर्धक हों ॥

निघण्टु २ । २ ॥ ऋग्वेद १ । ८९ । १० इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ८ । १८ । १८ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (३९५)

अथ षष्ठ्याः–विश्वमना ऋषिः । आदित्यो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

२ ३ १ २२ ३ १२ ३१२

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।

१२ ३ १ २३१२

अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥ (३९६)

पदपाठः–वेत्थ क्रि० । हि अ० । निर्ऋतीनाम् ६ । वज्रहस्त सं० । परिवृजम् २ । अहरहः २ । शुन्ध्युः १ । परिपदामिव अ० ॥

अन्वितपदार्थः–(वज्रहस्त) हे वज्रवत्तीव्रा हस्ताः किरणा

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यस्य तथाभूत ! सूर्य ! (शुन्ध्युः) शोधकस्त्वम् (निर्ऋतीनाम्) अन्धकाराणाम् (अहरहः) प्रत्यहम् (परिवृजम्) परिवर्जनं (वेत्थ हि) जानास्येव (परिपदामिव) यथा परितः पद्यमानानां पक्षिणां प्रत्यहं प्रातः प्रातः स्वनीडपरित्यागं वेत्थ तथेति भावः ॥

सूर्येण हि अन्धकारः सम्यङ् निवार्यते। यच्च येन सम्यक् क्रियते तत्रैव विदिप्रयोगो लोके दृश्यते जडे वा चेतने वा। निर्ऋतिशब्दो राक्षसपर्यायः। निर्ऋतिर्नाम मृत्योर्देवता। स च तामसोऽन्धकारकोटिस्थः। प्रकाशश्च देवकोटिस्थः। यथाऽमृतेन मृत्युर्निवार्यते तथा प्रकाशेनाऽन्धकारोऽपि ॥ ऋग्वेदे ८। २४। २४ ऽपि ॥ ६ ॥ (३९६)

भाषार्थः-(वज्रहस्त) हे वज्रतुल्य तीव्र किरणवाले सूर्य्य! (शुन्ध्युः) शोधने वाला तू (अहरहः) प्रतिदिन (निर्ऋतीनाम्) अन्धकारों का (परिवृजम्) वर्जना (वेत्थ हि) अवश्य जानता है। (परिपदामिव) जैसे कि प्रातःकाल चारों ओर जाने वाले पक्षियों को अपने २ घोंसलों के वर्जने=छोड़ने को ॥

जिस प्रकार सूर्योदय होते ही पक्षिगण अपने घोंसले छोड़ भाग जाते हैं इसी प्रकार अन्धकार का दूर करना सूर्य भले प्रकार जानता है। अर्थात् अन्य कोई सूर्य्य के समान अन्धकार का वर्जने वाला नहीं है। जो काम जिस से अच्छा बनता है उसी को उस का जानने वाला कहा जाता है, चाहे जड़ हो चाहे चेतन। निर्ऋति शब्द मृत्यु देवता राक्षस का पर्य्याय है। वह तामसी अन्धकार कोटि में है। प्रकाश देवकोटि में है। जैसे अमृत मृत्यु को वर्जता है, वैसे ही प्रकाश अन्धकार को ॥ ऋ० ८। २४। २४ में भी ॥६॥ (३९६)

अथ स्वस्त्ययाः-इरिमिठ ऋषिः। अदित्या देवताः। उष्णिक्छन्दः ॥

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

अपामीवामपास्निधमपसेधत दुर्मतिम्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

आदित्यासो युयोतना नो अꣳहसः ॥ ७ ॥ (३९७)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—अप अ० । अमीवाम् २ । अप । स्त्रिधम् २ । अपसेधत क्रि० । दुर्मतिम् २ । आदित्यासः १ । युयोतन क्रि० । नः २ । अंहसः ५ ॥

अन्वितपदार्थः—(आदित्यासः) आदित्याः सूर्यकिरणाः (अमीवाम्) रोगम् (अपसेधत) नाशयत नाशयन्ति वा (स्त्रिधम्) बाधकं चौरादिकं च (अप) वर्जयन्ति (दुर्मतिम्) दुष्टां कामाद्याक्रान्तां मतिं च (अप) वर्जयन्ति (नः) अस्मान् (अंहसः) पापात् (युयोतन) पृथक्कुर्वन्ति ॥

सूर्यकिरणैर्हि प्रायो रोगा निवार्यन्ते, दस्युचौरादयश्च वर्ज्यन्ते, रात्रौ कामादीनां स्वाभाविकी या बलवत्ता सापि न्यूनीक्रियतेऽतो दुर्मतेः पापाच्चाऽपि कस्मिंश्चिदंशे निवृत्तिः संभवति ॥ ऋग्वेदे ८ । १८ । १० ऽपि ॥ ७ ॥ (३९७)

भाषार्थः—(आदित्यासः) सूर्यकिरणें (अमीवाम्) रोग को (अपसेधत) वर्जती हैं (स्त्रिधम्) बाधक दस्यु चौरादि को (अप) वर्जती हैं (दुर्मतिम्) कामादि विकार से दुष्ट बुद्धि को (अप) वर्जित करती हैं (नः) हम को (अंहसः) पाप से (युयोतन) पृथक् करती हैं ॥

अवश्य सूर्य की किरणों से कई रोग दूर होते हैं, चौरादि का भय निवृत्त होता है, रात्रि में स्वाभाविक रीति पर कामादि के विकार उत्पन्न होते हैं उन को भी सूर्य की किरणें हटाती हैं इसलिये किसी अंश में दुर्मति और पाप से बचाना भी संभव है ॥ ऋ० ८ । १८ । १० में भी ॥ ७ ॥ (३९७)

अथाऽष्टम्याः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वाऽयं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सोतुर्बाहुभ्याꣳ सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥ (३९८)

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः–पिब क्रि० । सोमम् २ । इन्द्र सं० । मन्दतु क्रि० । त्वा २ । अयम् १ । ते ४ । सुषाव क्रि० । हर्यश्व सं० । अद्रिः १ । सोतुः ६ । बाहुभ्याम् ३ । सुयतः १ । न अ० । अर्वा १ ॥

अन्वितपदार्थः–(हर्यश्व) हरयो हारकाः अश्वाः किरणा यस्य तादृश! (इन्द्र) सूर्य! वा विद्युत्! (सोतुः) अभिषवकर्त्तुः (बाहुभ्याम्) भुजाभ्याम् (अयम्) एषः (अद्रिः) ग्रावा (सोमम्) सोमरसम् (ते) तुभ्यम् (सुषाव) सुनोति (न) यथा (सुयतः) सुशिक्षितः (अर्वा) अश्वः [यथाभिलषितं स्थानं सारथेर्हस्ताभ्यां प्रेरितः प्रापयति तद्वत्] तं सोमम् (पिब) गृहाण । सः सोमः (त्वा) त्वाम् (मन्दतु) हृष्टं करोतु ॥

मनुष्यैरुत्तमैर्ग्रावभिः सोमाद्योषधिजातानि सोतव्यानि सूर्य्याय होतव्यानि च, तथासति सूर्यस्य हर्षोऽनुकूला प्रवृत्तिर्जायते । यथा च सुशिक्षितोऽश्वः सुखेन गमयति तथा सुसम्पादिता ग्रावाणोऽपि सम्यग्रसं निष्पादयन्ति ॥

अर्वेत्यश्वनाम निघं० १ । १४ ॥ ऋग्वेदे ७ । २२ । १ ऽपि ॥ ८ ॥ (३९८)

* इति चतुर्थाध्याये पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ *

भाषार्थः–(हर्यश्व) हे हरणशील किरणों वाले ! (इन्द्र) विद्युत् ! वा सूर्य ! (सोतुः बाहुभ्याम्) सोमाऽभिषव करने वाले की बाहुओं से (अयम् अद्रिः) यह पाषाण [ग्रावा] (सोमम् सुषाव) सोम को अभिषुत करता है । (न) जैसे (सुयतः अर्वा) सुशिक्षित घोड़ा [सारथि के हाथों से प्रेरणा किया हुआ अभीष्ट स्थान को पहुंचाता है तद्वत्] उस सोम को (पिब) ग्रहण कर । वह सोम (त्वा) तुझे (मन्दतु) हृष्ट करे ॥

मनुष्यों को योग्य है कि उत्तमोत्तम ग्रावों से सोमरस अभिषुत करके सूर्य

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

के लिये होमें। इस से सूर्य को हर्ष-अनुकूलप्रवृत्ति होती है। और जिस प्रकार सुशिक्षित घोड़ा सारथि के हाथों से अनीष्ट मार्ग में प्रवृत्त रहता है, इसी प्रकार भले प्रकार के ग्रावा भी अनीष्ट उत्तम रस अभिषुत करते हैं। पत्थर के उन साधनों को ग्रावा कहते हैं जिन से सोम अभिषुत होता है। ऋ० १। २२। १ में भी ॥ ८ ॥ (३९८)

* यह चतुर्थाऽध्याय में पाञ्चवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ५ ॥ *

अभ्रातृव्येति दशतौ ककुभो दश संख्यया।
तृतीया मरुतां षष्ठी चेन्द्रस्याऽष्ट प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥

अथ षष्ठी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-सौभरिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। ककुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २
अभ्रातृव्यो अना त्वामनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥ (३९९)

पदपाठः-अभ्रातृव्यः, अना, त्वम्, अनापिः १। इन्द्र सं०। जनुषा ३। सनात् अ०। असि क्रि०। युधा ३। इत् अ०। आपित्वम् २। इच्छसे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(इन्द्र) हे राजन्! यद्यपि (सनात्) चिरात् (जनुषा) जन्मना (त्वम्), (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहितः (अना) नृभिः सैनिकादिभीरहितः (अनापिः) सुहृद्रहितश्च (असि) भवसि (इत्) तथापि (युधा) संग्रामोपलक्षितराजकार्यैः सह (आपित्वम्) सौहार्दम् (इच्छसे) इच्छसि ॥

भ्रातृशब्दात्-व्यन्त्सपत्ने ४। १। १४५ इति व्यनि भ्रा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तृव्यस्ततो नञ्समासः ॥ अना इत्यत्र–ऋतश्छन्दसि ५। ४। १५८ इति कपः प्रतिषेधः ॥ ऋग्वेदे ८। २१। १३ ऽपि ॥ १ ॥ (३९९)

भाषार्थः–(इन्द्र) हे राजन् ! (त्वम्) तू (सनात्) सदा से (जनुषा) जन्म से (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) सैनिकादि नररहित और (अनापिः) सुहृद् वा ज्ञातिरहित है (इत्) तथापि (युधा) युद्धादि राजकार्यों के साथ (आपित्वम्) सौहार्द को (इच्छसे) चाहता है ॥

अष्टाध्यायी ४। १। १४५ ॥ ५। ४। १५८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८। २१। १३ में भी ॥ १ ॥ (३९९)

अथ द्वितीयायाः–सौभरिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। कुकुप्छन्दः ॥

१ २ ३१ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे।

१ २ ३ १ २३१२

सखाय इन्द्रमूतये ॥ २ ॥ (४००)

पदपाठः–यः १। नः ६। इदम्, इदम् २। पुरा, प्र अ०। वस्यः २। आ निनाय क्रि०। तम् २। उ अ०। वः ६। स्तुषे क्रि०। सखायः सं०। इन्द्रम् २। ऊतये ४॥

अन्वितपदार्थः–(सखायः) हे समानख्यातयः ! सुहृदः ! (इदम् इदम्) दर्शनीयतया विद्यमानम् (वस्यः) प्रशस्तं वसु धनम् (यः) राजा (पुरा) पूर्वम् (नः) अस्मभ्यम् (प्र आ निनाय) प्रकर्षेण विजयेनाऽऽनयति (तमु) तमेव विजेतारं धनानेतारम् (इन्द्रम्), (वः) युष्माकं (ऊतये) रक्षायै (स्तुषे) स्तौमि प्रशंसामि ॥

वस्य इत्यत्र वसोरीयसुनीकारलोप आर्षः ॥ ऋग्वेदे ८। २१। ९ ऽपि ॥ २ ॥ (४००)

भाषार्थः–(सखायः) हे मित्रो ! (यः) जो राजा (नः) हमारे लिये (पुरा) प्रथम (इदम् इदम्) देखने योग्य इस (वस्यः) धनादि उत्तम पदार्थ को (प्र आनिनाय) लाकर देता है (तम् उ) उस ही विजयी (इन्द्रम्) राजा की (वः) तुम्हारी (ऊतये) रक्षा के लिये (स्तुषे) प्रशंसा करता हूं ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वसीयः के स्थान में वस्यः यह आर्ष ईकार का लोप है ॥ ऋ० ८ । २१ । ९ । में भी ॥ २ ॥ (४००)

अथ तृतीयायाः—सौभरिर्ऋषिः । मरुतो देवताः । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आगन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो मापस्थात समन्यवः ।

३ १ २

दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥ (४०१)

पदपाठः—आगन्त क्रि० । मा अ० । रिषण्यत क्रि० । प्रस्थावानः सं० । मा । अपस्थात क्रि० । समन्यवः १ । दृढा २ । चित् अ० । यमयिष्णवः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(प्रस्थावानः) शत्रुषु प्रहरणाय प्रस्थानवन्तो वीराः ! (मा आगन्त) न पश्चात् प्रत्यागमनं कुरुत (मा अपस्थात) नैव युद्धविमुखा भवत किन्तु (यमयिष्णवः) नियमनशीलाः शत्रून्वशमाऽऽनेतारो यूयम् (समन्यवः) सक्रोधाः सन्तः (दृढा चित्) दृढान्यपि शत्रुसैन्यानि (रिषण्यत) मारयत ॥

प्रस्थावान इत्यस्योपरि "शत्रूणामुपरि युद्धार्थं गन्तार इत्यर्थः" इति विवरणकारमतेन सामश्रमी ॥ दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति (७ । ४ । ३६) इति रिषण्यतिर्निपातितः ॥ चिदित्येषोऽनेककर्मा निरु० १ । ४ ॥ ऋग्वेदे तु ८ । २० । १ "स्थिराचिन्नमयिष्णवः" इत्यन्तरम् ॥३॥ (४०१)

भाषार्थः—(प्रस्थावानः) हे युद्धार्थ प्रस्थान करने वालो ! मरुतो ! युद्धयज्ञ के ऋत्विजो ! (मा आगन्त) उलटे मत आओ (मा अपस्थात) युद्धविमुख मत होओ किन्तु (यमयिष्णवः) शत्रुओं को वश में लाने वाले तुम (समन्यवः) क्रोधसहित (दृढा) दृढ (चित्) भी शत्रुसैन्यों को (रिषण्यत) मारो ॥

विवरणकारानुकूल सामश्रमी सत्यव्रत जी, अष्टाध्यायी ७ । ४ । ३६ निरुक्त १ । ४ के प्रमाण और ऋग्वेद ८ । २० । १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (४०१)

अथ चतुर्ऋचाः—सौभरिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । ककुप्छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ २३ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
आयाह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
१ २
सोमꣳ सोमपते पिब ॥ ४ ॥ (४०२)

पदपाठः—आयाहि क्रि० । अयम् १ । इन्दवे ४ । अश्वपते, गोपते, उर्वरापते सं० । सोमम् २ । सोमपते सं० । पिब क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(अश्वपते, गोपते), (उर्वरापते) सर्वसस्याढ्या भूमिरुर्वरोच्यते तत्पते ! (सोमपते) सोमादिराजौषधिपते ! राजन् ! (सोमम्) सोमरसम् (पिब) गृहाण (इन्दवे) दीप्राय तुभ्यम् (अयम्) अयमहम् (आयाहि) आयामि उपस्थितो भवामि ॥

यदा राजा विजयमाप्नोति,तदा वशंवदाः सन्तो विपक्षिणोऽपि सोमादिभिरातिथ्यं कुर्वन्ति, सर्वं गवाश्वप्रभृति च तस्माअर्पयन्ति ॥ ऋग्वेदे तु ८ । २१ । ३ " आयाहीम इन्दवोऽश्वपते" इत्यन्तरम् ॥ ४ ॥ (४०२)

भाषार्थः—(अश्वपते) हे घोड़ों के स्वामिन् ! (गोपते) गौओं के स्वामिन् ! (उर्वरापते) धान्ययुक्त पृथिवी के स्वामिन् ! (सोमपते) सोमादि ओषधिवर्ग के रक्षक और स्वामिन् ! (सोमं पिब) सोमरस पीजिये और (इन्दवे) आप प्रकाशमान के लिये (अयम्) यह मैं (आयाहि) प्राप्त होता हूं ॥

जब कि राजा विजय करता है तब सोमादि की भेट लिये शत्रुगण उपस्थित होते हैं कि घोड़े, गौ, पृथिवी आदि सब के आप स्वामी हैं, भेट ग्रहण कीजिये ॥ ऋ० ८ । २१ । ३ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥४॥ (४०२)

अथ पञ्चम्या—ऋष्याद्या उक्ताः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २
त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २२ ३ १२
सꣳस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥ (४०३)

पदपाठः–त्वया ३ । ह, स्वित् अ० । युजा ३ । वयम् १ । प्रति अ० । श्वसन्तम् २ । वृषभ सं० । ब्रुवीमहि क्रि० । संस्थे ७ । जनस्य, गोमतः ६ ॥

अन्वितपदार्थः–(वृषभ) हे कामनापूरक ! राजन् ! (वयम्) सेनापतयः (त्वया ह) त्वयैव (स्वित्) अवश्यम् (युजा) सहायेन (गोमतः) इन्द्रियवतो जीवतः (जनस्य) वीरस्य (संस्थे) संस्थायां मृतौ सत्याम् (प्रति) तत्प्रतिनिधिभूतम् (श्वसन्तम्) जीवन्तमन्यम् (ब्रुवीमहि) युद्धार्थमाह्वयामः ॥ ऋग्वेदे ८ । २१ । ११ ऽपि ॥५॥ (४०३)

भाषार्थः–(वृषभ) हे कामों के पूरा करने वाले ! राजन् ! (वयम्) हम सेनापत्यादि लोग (त्वया ह स्वित्) आप ही की (युजा) सहायता से (गोमतः जनस्य संस्थे) जीवते वीर के मरने पर (प्रति) उस के स्थान में दूसरे (श्वसन्तम्) जीवते हुवे को (ब्रुवीमहि) युद्धार्थ बुलाते हैं ॥ ऋ० ८ । २१ । ११ में भी ॥ ५ ॥ (४०३)

अथ षष्ठ्याः–सौभरिर्ऋषिः । मरुतो देवताः । ककुप्छन्दः ॥

१२ ३क २२ ३२३ १२
गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।

३१२ ३१२ ३ २
रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥ (४०४)

पदपाठः–गावः १ । चित्, घ अ० । समन्यवः १ । सजात्येन ३ । मरुतः, सबन्धवः १ । रिहते क्रि० । ककुभः २ । मिथः अ० ॥

अन्वितपदार्थः–(मरुतः) युद्धयज्ञस्य ऋत्विजो वीराः (समन्यवः) समानतेजस्काः (सजात्येन) सजातित्वेन

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(मिथः) परस्परम् (सम्बन्धवः) समाना भ्रातरः (ककुभः) दिशः (रिहते) लिहन्ति स्पृशन्ति व्याप्नुवन्ति। दृष्टान्तः-(चित् घ गावः) यथा हि सूर्यकिरणाः सतेजस्काः सजातीयत्वेन सबन्धवश्च दिशो व्याप्नुवन्ति, तद्वत् ॥ गाव इति रश्मिनाम निघं० १ । ५ ॥ ऋग्वेदे ८ । २० । २१ ऽपि ॥ ६ ॥ (४०४)

भाषार्थः-(मरुतः) युद्धयज्ञ के ऋत्विज् वीर पुरुष (समन्यवः) समान तेज वाले (सजात्येन मिथः सबन्धवः) समान जाति होने से आपस में भाई भाई (ककुभः) दिशाओं को (रिहते) चाटते=व्यापते हैं। दृष्टान्त-(चित् घ गावः) जिस प्रकार सूर्य की किरणें समान तेज वाली और एक सूर्य से जन्मने के कारण सबन्धु होकर दिशाओं को व्यापती हैं तद्वत् ॥

निघण्टु १ । ५ में " गावः " किरण का नाम है ॥ ऋ० ८ । २० । २१ में भी ॥ ६ ॥ (४०४)

अथ सप्तम्याः-नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं न इन्द्राऽऽभर ओजो नृम्णꣳ शतक्रतो विचर्षणे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥ (४०५)

पदपाठः-त्वम् १ । नः ४ । इन्द्र सं० । आभर क्रि० । ओजः, नृम्णम् २ । शतक्रतो, विचर्षणे सं० । आ अ० । वीरम्, पृतनासहम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(शतक्रतो) हे बहुकर्मन् ! (विचर्षणे) विविधचारैः प्रजाभेदस्य द्रष्टः ! (इन्द्र) राजन् ! (त्वम्), (नः) अस्मभ्यम् (ओजः) बलम् (नृम्णम्) धनं च (आभर) आहर। तथा (पृतनासहम्) संग्रामसहम् (वीरम्), (आ) आभर ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

राज्ञा सेनापतये बलं, धनं, वीराः पुरुषास्त्राहर्त्तव्या ॥ ऋग्वेदे ८ । ९८ । १० ऽपि ॥ ७ ॥ (४०५)

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे बहुकर्मन् ! (विचर्षणे) बहुत चारादि द्वारा प्रजा का भेद देखने वाले ! (इन्द्र) राजन् ! (त्वम्) आप (नः) हमारे लिये (ओजः) बल और (नृम्णम्) धन (आभर) भरती कीजिये । तथा (पृतनासहम्) संग्राम के सहने वाले (वीरम्) वीर पुरुष (आ) भरती कीजिये ॥

राजा को योग्य है कि सेनाध्यक्ष के लिये धन, बल और वीर पुरुष भरती रक्खे ॥ ऋ० ८ । ९८ । १० में भी ॥ ७ ॥ (४०५)

अथाऽष्टम्याः—ऋष्याद्या उक्ताः ॥

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३१२ ३१ २
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
३ २ ३ १ २ ३१ २
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥ (४०६)

पदपाठः—अध, हि अ० । इन्द्र, गिर्वणः सं० । उप अ० । त्वा २ । कामः १= २ । ईमहे, ससृग्महे क्रि० । उदा ३ । इव अ० । ग्मन्तः १ । उदभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(गिर्वणः) हे गिरा वननीय ! (इन्द्र) राजन् ! (त्वा) त्वाम्, वयम् (ईमहे) याचामहे (अध हि) तदैव (कामः) काममम् (उप ससृग्महे) उप संसृजामः । दृष्टान्तः—(इव) यथा (उदा) उदकेन सह (ग्मन्तः) गच्छन्तः पुरुषाः (उदभिः) उदकैः संसृष्टा भवन्ति तद्वत् ॥

ईमहे इति याञ्चाकर्मा निघं० ३ । १९ ॥ सुपां सुलुगित्यादिना ७ । १ । ३९ काममिति द्वितीयैकवचनस्य प्रथमैकवचनमादेशः ॥ छन्दस्युभयथा ४ । ३ । ११७ अनेन ग्मन्त इति सिद्धम् ॥ ऋग्वेदे ८ । ९८ । ७ तु " कामान्महः ससृजमहे । उदेव यन्त उदभिः " इत्यन्तरम् ॥ ८ ॥ (४०६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(गिर्वणः) हे वाणी से सेवनीय ! (इन्द्र) राजन् ! (त्वा) आप से (ईमहे) हम याचना करते हैं (अध हि) तब ही (कामः) अभीष्ट कामना को (उप सस्रुग्महे) समीप स्पर्श करते हैं । दृष्टान्त—(इव) जैसे (उदा ग्मन्तः) जल के साथ चलने वाले (उदभिः) जलों से स्पर्श करते हैं ॥

अर्थात् जो जल के समीप जाते हैं वे जलों को जैसे प्राप्त होते वा जो जल में घुसते हैं वे जैसे सब ओर से तर हो जाते हैं. इसी प्रकार जब हम ऐश्वर्य सम्पन्न के समीप जाकर याचना करते हैं तो कामना तत्काल पूरी होती हैं ॥

निघण्टु ३ । १९ ॥ अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ ॥ ४ । ३ । ११७ के प्रमाण और ऋ० ८ । ९८ । ७ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ८ ॥ (४०६)

अथ नवम्याः—सौभरिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।

३ १ २ २

अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥ (४०७)

पदपाठः—सीदन्तः १ । ते २ । वयः १ । यथा अ० । गोश्रीते, मधौ, मदिरे, विवक्षणे ७ । अभि अ० । त्वाम् २ । इन्द्र सं० । नोनुमः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (गोश्रीते) गवि पृथिव्यां श्रीते पक्के (मधौ) मधुररसे (मदिरे) हर्षकरे (विवक्षणे) प्राणप्रापणशीले सस्यादौ निमित्ते (यथा) (वयः) पक्षिण इतस्तत आगच्छन्ति तथैव सुखेच्छवो वयमपि (ते) त्वाम् (सीदन्तः) गच्छन्तः (त्वाम्) भवन्तम् (अभिनोनुमः) आभिमुख्येनातिशयेन प्रणमामः ॥

परमेश्वरपक्षेऽपि इत्थमेवाऽन्वयः ॥ ऋग्वेदे ८ । २१ । ५ ऽपि ॥ ९ ॥ (४०७)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन्! (गोश्रीते) पृथिवी पर पके (मधौ) मधुर रस वाले (मदिरे) हर्षकारक (विवक्षणे) प्राण पहुंचाने वाले धान्यादि पर (यथा) जैसे (वयः) पक्षिगण आते हैं इसी प्रकार सुखेच्छु हम लोग (ते)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आप को (सीदन्तः) प्र प्त होते हुवे (त्वाम्) आप को (अग्निं नोनुमः) अग्निमुखता से अत्यन्त प्रणाम करते हैं ॥

ईश्वर के विषय में भी इसी प्रकार लगाना चाहिये ॥ ऋ० ८ । २१ । ५ में भी ॥ ९ ॥ (४०७)

अथ दशम्याः-ऋष्यादिकमुक्तम् ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कञ्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।

१ २ ३ १ २

वज्रिंश्चित्रꣳहवामहे॥ १०॥(४०८) इति षष्ठी दशतिः ॥६॥

पदपाठः-वयम् १ । उ अ० । त्वाम् २ । अपूर्व्य सं० । स्थूरम् २ । न, कञ्चित् अ० । भरन्तः, अवस्यवः १ । वज्रिन् सं० । चित्रम् २ । हवामहे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(वज्रिन्) हे दण्डधर ! राजन् ! (अपूर्व्य) अभिनव ! (अवस्यवः) आत्मनो रक्षणमिच्छवः (वयम्), (चित्रम्) विविधकर्माणम् (त्वाम्), (भरन्तः) करादिना भरमाणाः (उ) त्वामेव (हवामहे) आह्वयामहे । (न) यथा (कञ्चित्) कंचित् (स्थूरम्) धान्यादिस्थापनपात्रम् [कुठलाख्यम्] भरन्ति स्वस्यैव यथासमयं पोषणायेति भावः॥

स्थः किच्च (उणा० ५।४) इति स्थाधातोरूरनि प्रत्यये स्थूरः ॥ ऋग्वेदे ८ । २१ । १ तु " वाजे चित्रं हवामहे " इत्यन्तरम् ॥ १० ॥ (४०८)

इत्यौष्णिहं काकुभम् ॥

* इति चतुर्थाऽध्याये षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ *

भावार्थः-(वज्रिन्) हे दण्डधर ! (अपूर्व्य) अभिनव ! युवक ! राजन् ! (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहते हुवे (वयम्) हम लोग (चित्रम्) विविध कर्म वाले (त्वाम्) आप को (भरन्तः) कर देने आदि से भरते हुवे (उ) आप को ही (हवामहे) पुकारते हैं । (न) जैसे (कञ्चित्) किसी (स्थूरम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

धान्यादि धरने के कोठी कुठले को भरते हैं कि आवश्यकता के समय इस से प्राणरक्षा करें ॥

उणादि ५ । ४ का प्रमाण और ऋ० ८ । २१ । १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥ (४०८)

यह उष्णिह् ककुभ् छन्दों का प्रकरण

और

* चतुर्थोऽध्याय में छठी दशति पूर्ण हुई ॥ ६ ॥ *

—०:ॐ:०—

स्वादोरित्यादिदशतौ षड्क्तयो दश कीर्त्तिताः ॥
चन्द्रेति नवमी तत्र वैश्वदेवी मता तथा ॥ १ ॥
प्रतीति दशमी अश्वि-नोरष्टेन्द्रस्य कीर्त्तिताः ॥

अथ सप्तमी दशतिरत्र-

प्रथमायाः-गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा-
२ ३ १ २ ३ १ २
वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥ (४०९)

पदपाठः-स्वादोः ६ । इत्था अ० । विषूवतः, मधोः ६ । पिबन्ति क्रि० । गौर्यः, याः १ । इन्द्रेण ३ । सयावरीः १ । वृष्णा ३ । मदन्ति, शोभथाः क्रि० । वस्वीः १ । अनु अ० । स्वराज्यम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(गौर्यः) गौरवर्णाः गमस्तयः (याः), (इन्द्रेण सयावरीः) सूर्यसहवर्त्तिन्यः (वस्वीः) वासयित्र्यः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(स्वादोः) स्वादुयुक्तस्य (विषूवतः) व्याप्तिमतः (मधोः) मधुरस्य सोमादिरसस्य (पिबन्ति) पानं कुर्वन्ति, (वृष्णा) वर्षकेणेन्द्रेण विद्युता सह (मदन्ति) हृष्टाः प्रतिभान्ति (स्वराज्यम्) स्वस्यैव राज्यं प्रकाशो यस्य तं सूर्यम् (अनुशोभथाः) अनुशोभन्ते। (इत्था) इत्थमेव राजानमनुवर्तिनीभी राज्ञीभिः प्रजातः करादानं शोभा रक्षा निवासश्च विधेयः॥

ऋग्वेदे तु १। ८४। १० "शोभसे" इत्यन्तरम् ॥१॥ (४०९)

भाषार्थः-(गौर्यः) किरणें (याः) जो (इन्द्रेण सयावरीः) सूर्य के साथ रहने वाली हैं (वस्वीः) जो बसाने वाली हैं वे (स्वादोः) स्वादु (विषूवतः) व्याप्ति वाले (मधोः) मधुर सोमादिरस का (पिबन्ति) पान करती हैं। (वृष्णा) वर्षाने वाली बिजुली के सहित (मदन्ति) हृष्ट प्रतीत होती हैं। (स्वराज्यम्) सूर्य के (अनु) साथ (शोभथाः) शोभित होती हैं। (इत्था) इसी प्रकार राजा के साथ रानियें भी प्रजा से करादि ग्रहण, शोभा, रक्षा और निवास करावें॥

ऋ० १। ८४। १० में तो "शोभसे" पाठ है॥ १॥ (४०९)

अथ द्वितीयायाः-ऋष्यादय उक्ताः॥

३ २३ ३२३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३
इत्था हि सोमइन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम्। शविष्ठ वज्रि-
१ २ ३ १ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥२॥ (४१०)

पदपाठः-इत्था, हि अ०। सोमः १। इत् अ०। मदः १। ब्रह्म २। चकार क्रि०। वर्धनम् २। शविष्ठ, वज्रिन् सं०। ओजसा ३। पृथिव्याः ५। निःशशाः क्रि०। अहिम् २। अर्चन् १। अनु अ०। स्वराज्यम् २॥

अन्वितपदार्थः-(शविष्ठ) हे बलिष्ठ! (वज्रिन्) शस्त्रधर! राजन्! (सोमः) सोमाद्योषधिरसः (मदः) हर्षकरः यथा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(ब्रह्म वर्धनम्) महतीं वृद्धिम् (चकार) करोति (इत्था हि इत्) एवमेव हि, त्वमपि (ओजसा) बलेन (अहिम्) आगत्य हन्तारं दस्युम् (पृथिव्याः) स्वराज्यभूमेः (निःशशाः) निरसारय (स्वराज्यम्) स्वस्य राज्यम् (अनु) अनन्तरम् (अर्चन्) सत्कुर्वन् वर्त्तस्व ॥

ऋग्वेदे तु १ । ८० । १ "मदे ब्रह्मा" इत्यन्तरम् ॥२॥ (४१०)

भाषार्थः-(शविष्ठ) हे बलिष्ठ ! (वज्रिन्) दण्डधर ! राजन् ! जिस प्रकार (मदः) हर्षकारक (सोमः) सोमादि ओषधिरस (ब्रह्म) बड़ा (वर्धनम्) बढ़ाव (चकार) करता है (इत्था हि इत्) इस ही प्रकार आप भी (ओजसा) बल से (अहिम्) आ कर मारने वाले दस्युवर्ग को (पृथिव्याः) अपने राज्य की भूमि से (निःशशाः) दूर भगाइये (अनु) और तत्पश्चात् (स्वराज्यम्) अपने राज्य को (अर्चन्) ऋद्ध वृद्ध करते हुवे वर्त्तिये ॥

ऋ० १ । ८० । १ में " मदे ब्रह्मा " यह अन्तर है ॥ २ ॥ (४१०)

अथ तृतीयायाः-अपि ऋष्यादिकमुक्तवत् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ २७ ३ २ ३ २ ३
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः । तमिन्महत्स्वाजिषू-
१ २२ २ १ २२३ १ २
तिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ ३ ॥ (४११)

पदपाठः-इन्द्रः १ । मदाय ४ । वावृधे क्रि० । शवसे ४ । वृत्रहा १ । नृभिः ३ । तम् २ । इत् अ० । महत्सु, आजिषु ७ । ऊतिम् २ । अर्भे ७ । हवामहे क्रि० । सः १ । वाजेषु ७ । प्र अ० । नः २ । अविषत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(वृत्रहा) उपद्रविणां हन्ता (इन्द्रः) राजा वा सेनापतिः (मदाय) हर्षाय (शवसे) बलाय च (नृभिः) वीरैः (वावृधे) वर्धते (तम् इत्) तमेव (ऊतिम्) रक्षकम् (महत्सु), (आजिषु) संग्रामेषु (अर्भे) तथाऽल्पे संग्रामे उपद्रवे वा (हवामहे) आह्वयामः (सः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इन्द्रः (वाजेषु) संग्रामेषु सत्सु (नः) अस्मान् (प्राऽविषत्) प्र रक्षेत् ॥

ऋग्वेदे तु १।८१।१ "ते मर्भे" इत्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (४११)

भाषार्थः-(वृत्रहा) उपद्रवियों का मारक (इन्द्रः) राजा वा सेनापति (मदाय) हर्ष और (शवसे) बल के लिये (नृभिः) वीर पुरुषों से (वावृधे) बढ़ता है (तम् इत्) उस ही (ऊतिम्) रक्षक को (महत्सु आजिषु) बड़े संग्रामों और (अर्भे) छोटे उपद्रवों में (हवामहे) हम पुकारते हैं (सः) वह (वाजेषु) छोटे बड़े सब उपद्रवों में (नः) हमारी (प्राऽविषत्) रक्षा करे ॥

ऋ० १।८१।१ में "तेमर्भे" यह भेद है ॥ ३ ॥ (४११)

अथ चतुर्थ्याः-ऋष्यादय उक्ताः ॥

२३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३कर२र २३ २ ३ १ २ ३ २ग
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् । यद्ध त्यं मायिनं मृगं
३ २ ३ १ २र३ २३ १ २ ३ १ २
तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥ (४१२)

पदपाठः-इन्द्र सं० । तुभ्यम् ४ । इत् अ० । अद्रिवः सं० । अनुत्तम् १ । वज्रिन् सं० । वीर्यम् १ । यत् ३ । ह अ० । त्यम्, मायिनम्, मृगम् २ । तव ६ । त्यत् १ । मायया ३ । अवधीः क्रि० । अर्चन् १ । अनु अ० । स्वराज्यम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(अद्रिवः) अद्रयो मेघाः पर्वता वा तत्तुल्यदुर्गयुक्त ! (वज्रिन्) हे शस्त्रास्त्रधर ! (इन्द्र) राजन् ! (तव), (त्यत्) तत् (अनुत्तम्) अप्रेरितं स्वाभाविकम् (वीर्यम्), (तुभ्यम् इत्) त्वदर्थमेव । नान्यस्त्वत्सदृश इत्यर्थः । (यत्) येन (ह) हि (त्यम्) प्रसिद्धम् (मृगम्) मृगवद्धूर्त्तम् (मायिनम्) छलिनम् (मायया) प्रज्ञया (अवधीः) हंसि (अर्चन्ननु स्वराज्यम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

व्याख्यातः (४१०) पादः ॥

मृगो मार्ष्टेर्गतिकर्मणः। निरु० १।२० ॥ ऋग्वेदे तु १।८०।७ "तमु त्वं मायया" पाठभेदः ॥ ४ ॥ (४१२)

भाषार्थः—(अद्रिवः) हे मेघ वा पर्वततुल्य दुर्गों [क़िलों] वाले ! (वज्रिन्) शस्त्रास्त्र वाले ! (इन्द्र) राजन् ! (तव) आप का (त्यत्) वह (अनुत्तम्) अप्रेरित=स्वाभाविक (वीर्यम्) पुरुषार्थ बल (तुभ्यम् इत्) आप के लिये ही है [आप के सदृश अन्य नहीं] (यत्) जिस बल से (इ) हि (त्यम्) उस (मृगम्) मृगवत् धूर्त्त (मायिनम्) छली शत्रु को (मायया) बुद्धिचातुर्य से (अवधीः) आप मारते हैं (अर्चन्ननु स्व०) यह पाद ४१० मन्त्र में व्याख्यात हो चुका है ॥

निरुक्त १ । २० का प्रमाण और ऋ० १ । ८० । ७ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥ (४१२)

अथ पञ्चम्याः—ऋष्यादयः उक्ताः ॥

२ ३ १ २ ३ २ उ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ उ

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते । इन्द्र नृम्णꣳ

३ २ १ २ ३ १ २ र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननुस्वराज्यम् ॥५॥ (४१३)

पदपाठः—प्रेहि, अभीहि, धृष्णुहि क्रि० । न अ० । ते ६ । वज्रः १ । नियं सते क्रि० । इन्द्र सं० । नृम्णम् १ । हि अ० । ते ६ । शवः १ । हनः क्रि० । वृत्रम् २ । जयाः क्रि० । अपः २ । अर्चन् । अनु । स्वराज्यम् ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (प्रेहि) प्रकर्षेण प्राप्नुहि (अभीहि) हन्तव्याञ्छत्रूनाभिमुख्येन प्राप्नुहि (धृष्णुहि) अभिभव च (ते) तव (वज्रः) प्रहरणम् (न नियंसते) शत्रुभिर्न प्रतिहन्यते (ते) तव (शवः) बलं (हि) निश्चयेन (नृम्णम्) धनमस्ति । राजबलेनैव धनानि रक्ष्यन्ते वर्ध्यन्ते

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ध्यात्मम्–विधुं विधमनशीलं दद्राणं दमनशीलं युवानम् महान्तम् पलितः आत्मा गिरति रात्रौ म्रियते रात्रिः समुदितेत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ परिशिष्टस्य शैलीयं स्पष्टं नूतनाप्रतिभाति॥ समनम् इति संग्रामनाम निघं० २ । १७ कविरिति मेधाविनाम । निघं० ३ । १५ तस्येदं कर्म काव्यम् ॥ अन प्राणने इत्यस्य लिटि कालसामान्ये संपूर्वस्यसमान इति रूपम्॥ऋग्वेदे १ ०।५५।५ ऽपि ॥३ ॥(३२५)

भाषार्थः–तो फिर मित्रों को मरवा कर विजय से क्या लाभ है ? इस के उत्तर में कहते हैं कि–हे राजन् ! (दद्राणम्) शीघ्रगामी (बहूनाम्) बहुत तारों के बीच में (युवानम्) जवान नवीन वा अधिक तेजो धारी (सन्तम्) वर्त्तमान चन्द्रमा को (पलितः) बूढा सूर्य (जगार) निगल जाता है उस के ऊपर के प्रकाश को अपने में संहार कर लेता है इसी प्रकार (समने) संग्राम में (यः) जो (ह्यः) कल (ममार) मरा है (सः) वह (अद्य) आज (समान) भले प्रकार जीता है । (देवस्य) परमेश्वर के (काव्यम्) चातुर्य को (महत्वा) गहरे भाव से (पश्य) देख ॥

अर्थात् धर्मानुसार युद्ध में मरे हुवों का शोक नहीं करना । परमेश्वर की लीला को देखो कि बडा बूढ़ा सूर्य, जवान (छोटे) शीघ्रगामी चन्द्रमा के प्रकाश को निगल जाता है, अगले दिन फिर उस की कला पूरी हो जाती हैं । इसी प्रकार जो शूरवीर आज मृत्यु को प्राप्त हुवे हैं वे कल जन्मान्तर धारण करके अपने किये धर्म का उत्तम फल भोगेंगे । इन का शोक न करना चाहिये ॥

निरुक्त परिशिष्ट २ । २८ में इस का यह अर्थ लिखा है कि—"विधमन शील और दमनशील चन्द्रमा को बूढा सूर्य्य निगलता है । वह कल मरा आज फिर उग आता है । यह अधिदैवत हुवा, अब अध्यात्म सुनिये–विधमनशील और दमनशील युवा महत्तत्त्व को बूढा आत्मा निगल जाता है। यह रात्रि में मर जाता और अगले दिन फिर जाग उठता है । यह आध्यात्मिक अर्थ है"

इस निरुक्त के परिशिष्ट की शैली स्पष्ट नवीन प्रतीत होती है ॥ निघं० २ । १७ ॥ ३ । १५ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । ५५ । ५ में भी ॥ ३ ॥ (३२५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(कम्) कञ्चिन्मित्रम् (वसौ) धनादौ (दधः) दध्याः (अस्मान्) त्वदनुकूलानस्मान् (वसौ दधः) ॥

ऋग्वेदे तु १ । ८१ । ३ " धना " इत्यन्तरम् ॥ (४१४)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (यत्) जब (आजयः) संग्राम (उदीरते) उठते हैं तो (धृष्णवे) जो शत्रु को धर्षण करे उस के लिये (धनम्) धन (धीयते) धारण किया जाता है। आप (मदच्युता) शत्रुओं का मद चुवाने वाले (हरी) घोड़े (युक्ष्व) जोड़िये और (कम्) किसी [शत्रु को] (हनः) वध कीजिये (कम्) किसी [मित्र को] (वसौ दधः) धन में धारण कीजिये (अस्मान् वसौ दधः) हम को धन में धारण कीजिये ॥

ऋ० १ । ८१ । ३ में—" धना " यह पाठ है ॥ ६ ॥ (४१४)

अथ सप्तम्याः—ऋष्यादयोऽप्युक्तवत् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३

अक्षन्नमीमदन्त ह्यवप्रिया अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो

२ ३ १ २ ३ २ उ ३ क्ष २ र ३ १ २

विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ७ ॥ (४१५)

पदपाठः—अक्षन्, अमीमदन्त क्रि० । हि, अव अ० । प्रियाः १ । अधूषत, अस्तोषत क्रि० । स्वभानवः, विप्राः १ । नविष्ठया, मती ३ । योज क्रि० । नु अ० । इन्द्र सं० । ते ६ । हरी २ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (ते) तव आत्मीयौ (हरी) अश्वौ (नु) क्षिप्रम् (योज) योजय विजयायेति शेषः । येन (प्रियाः) प्रीतियुक्ताः (स्वभानवः) स्वयंप्रकाशाः (विप्राः) मेधाविनो विद्वांसः (अक्षन्) भोगान् प्राप्नुयुः (अमीमदन्त) हृष्येयुः (नविष्ठया) नूतनतमया (मती) मत्या सह वर्त्तमानाः (अस्तोषत) त्वाम् स्तुयुः (अव) विरुद्धान् शत्रून् (अधूषत) अपनयेयुः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋग्वेदे १ । ८१ । २ ऽपि ॥ ७ ॥ (४१५)

भाषार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! (ते) आप अपने (हरी) घोड़ों को (नु) शीघ्र (योज) जोड़िये [विजयार्थ] जिस से (प्रियाः) प्रीतियुक्त (स्वभानवः) अपने आप प्रकाश करने वाले (विप्राः) मेधावी विद्वान् लोग (अक्षन्) भोगों को प्राप्त हों (अमीमदन्त) हृष्ट हों (नविष्ठया मती अस्तोषत) अत्यन्त नूतन बुद्धि के सहित वर्त्तमान हुए आप की प्रशंसा करें (अव) विरुद्ध शत्रुगण को (अधूषत) दूर करें ॥

ऋ० १ । ८२ । २ में भी ॥ ७ ॥ (४१५)

अथाष्टम्याः-ऋष्यादयउक्ताः ॥

२ ३ १ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
उपोषु शृणुही गिरो मघवन्माऽतथा इव । कदा नः सूनृतावतः
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ उ ३ क २ र ३ १ २
कर इदर्थयासइद्योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥ (४१६)

पदपाठः-उप, उ, सु अ० । शृणुहि क्रि० । गिरः २ । मघवन् सं० । मा, अतथाइव, कदा अ० । नः, सूनृतावतः २ । करः क्रि० । इत् अ० । अर्थयासे क्रि० । इत् अ० । योज, नु, इन्द्र, ते, हरी ॥

अन्वितपदार्थः-(मघवन्) हे धनाद्यैश्वर्यवन् ! राजन् ! (गिरः) अस्मदीयाः प्रार्थनाः (उप उ) सामीप्येनैव क्षिप्रमेव (सु शृणुहि) सम्यक् शृणु (कदा) कदाचित् (अतथाइव) प्रतिकूलइव (मा) माभूः (नः) अस्मान् (सूनृतावतः) प्रियसत्यात्मिका वाक् सूनृता तद्वतः (करः) कुर्याः (इत्) एव । (अर्थयासे) अर्थये त्वाम् । (इत्) एव (योजान्विन्द्र ते हरी) इति व्याख्यातम् ॥

ऋग्वेदे तु १। ८२ । १ कदा=यदा । इदर्थ०=आदर्थ० । इत्यन्तरम् ॥ ८ ॥ (४१६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(मघवन्) हे धनैश्वर्यवन् ! राजन् ! (गिरः) हमारी प्रार्थनायें (उप च) शीघ्र ही (सु शृणुहि) भले प्रकार श्रवण कीजिये तथा (कदा) कभी (अतथाइव) प्रतिकूल से (मा) मत हूजिये और (नः) हम को (सूनृतावतः) सत्यप्रिय वाणी वाले (इत्) ही (करः) कीजिये । (इत) यही (अर्थयासे) प्रार्थना करता हूं । (योजान्विन्द्र ते हरी) इस की व्याख्या पूर्व मन्त्र के तुल्य है ॥

ऋ० १ । ८२ । १ में-कदा=यदा । इदर्थ०=आदर्थ० । इतना अन्तर है ॥८॥ (४१६)

अथ नवऋचस्याः-त्रितऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ १ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २

चन्द्रमा अप्स्वा३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि । न वो हिरण्य-

१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥(४१७)

पदपाठः-चन्द्रमाः १ । अप्सु ७ । अन्तः अ० । आ धावते क्रि० । दिवि ७ । न अ० । वः ६ । हिरण्यनेमयः १ । पदम् २ । विन्दन्ति क्रि० । विद्युतः १ । वित्तम् क्रि० । मे ५ । अस्य ६ । रोदसी सं० ॥

अन्वितपदार्थः-परमात्माऽऽह-(सुपर्णः) शोभनपतनः (चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (अप्सु) आन्तरिक्ष्यासु (अन्तः) मध्ये (दिवि) सूर्यप्रकाशे (आ धावते) आ धावति शीघ्रं गच्छति (हिरण्यनेमयः) तेजोमयप्रान्ताः (विद्युतः), (वः) युस्माकम् (पदम्) विषयम् (न विन्दन्ति) न प्राप्नुवन्ति (अस्य) एतस्य सूक्ष्मस्य भेदं (मे) मत्तः (रोदसी) हे द्यावापृथिवीस्थौ जनसमूहौ ! (वित्तम्) जानीतम् ॥

परमात्मोपदिशति-हे मनुष्याः ! यथा सूर्यचन्द्रपृथिव्यादिलोकेषु गूढः सम्बन्धोऽस्ति तथैव राजप्रजाजनेषु गूढं सम्बन्धं जानीत ॥ ऋग्वेदे १ । १०५ । १ऽपि ॥९॥ (४१७)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—परमात्मा का उपदेश है कि (रोदसी) हे द्यावा पृथिवी में स्थित जनो ! (सुपर्णः) सुन्दर गति वाला (चन्द्रमाः) चन्द्र लोक (अप्सु) अन्तरिक्ष में होने वाले जलों के (अन्तः) मध्य (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आधावते) दौड़ता है तथा (हिरण्यनेमयः विद्युतः) तेजोमय छोर वाली बिजुलियें (वः) तुम्हारे (पदम्) विषय को (न विन्दन्ति) नहीं प्राप्त होती हैं (अस्य) इस का सूक्ष्म भेद (मे) मुझ से (वित्तम्) जानो ॥

परमात्मा का उपदेश है कि जिस प्रकार सूर्य पृथिवी विद्युदादि पदार्थों में गूढ घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसी प्रकार राजप्रजा जनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है ॥ ऋ० १ । १०५ । १ में भी ॥ ९ ॥ (४१७)

अथ दशम्याः—अवस्युर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

प्रति प्रियतमꣳ रथं वृषणं वसुवाहनम् । स्तोता वामश्विना-

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषिः स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतꣳहवम् ॥१०॥ (४१८)

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥

पदपाठः—प्रति अ० । प्रियतमम्, रथम्, वृषणम्, वसुवाहनम् २ । स्तोता १ । वाम् ६ । अश्विनौ सं० । ऋषिः १ । स्तोमेभिः ३ । भूषति क्रि० । प्रति । माध्वी सं० । मम ६ । श्रुतम् क्रि० । हवम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(माध्वी) मधुरस्वभावौ ! (अश्विनौ) हे द्यावापृथिवीस्थौ जनसमूहौ ! (स्तोता ऋषिः) युवयोः प्रशंसको वेदमन्त्रः (वाम्) युवयोः (वृषणम्) कामपूरकम् (वसुवाहनम्) धनस्य प्रापकम् (प्रियतमं रथम्) प्रसादकतमं रमणीयं मार्गम् (स्तोमेभिः) प्रशंसनैः (प्रति भूषति) समर्थयति (मम) परमेश्वरस्य (हवम्) तमुपदेशम् (श्रुतम्) शृणुतम् ॥

ऋग्वेदे ५ । ७५ । १ ऽपि ॥ १० ॥ (४१८)

* इति द्वितीयाऽध्याये सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ *

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(माध्वी) मधुरस्वभाव (अश्विनौ) हे पृथिवी और द्युलोक के निवासियो ! (स्तोता ऋषिः) प्रशंसा करने वाला वेदमन्त्र (वाम्) तुम्हारे (वृषणम्) कामपूरक (वसुवाहनम्) धनप्रापक (प्रियतमम्) अतिप्रिय (रथम्) रमणीय मार्ग को (प्रति भूषति) समर्थ करता है (मम) मेरे (हवम्) इस उपदेश को (श्रुतम्) श्रवण करो ॥

ऋ० ५ । ७५ । १ मैं भी ॥ १० ॥ (४१८)

आत इत्यादिदशतावृचोऽष्टौ संप्रकीर्त्तिताः ।
उपरिष्टाद्बृहत्योन्त्या षड्क्तयः सप्त चादिमाः ॥१॥
आद्ये द्वे सप्तमी चैवाग्नेय्यस्तिस्रउदीरिताः ।
तृतीयोषोदेवताका सौमी तुर्या प्रकीर्त्तिता ॥ २ ॥
अष्टमी वैश्वदेवी चाऽवशिष्टा इन्द्रदैवताः ।

अथाष्टमी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-वसुश्रुतऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवी-
२ २ ३ २ ३ १ २
षꣳस्तोतृभ्य आभर ॥ १ ॥ (४१९)

पदपाठः-आ अ० । ते २ । अग्ने सं० । इधीमहि क्रि० । द्युमन्तम् २ । देव सं० । अजरम् २ । यत्, ह अ० । स्या १ । ते ६ । पनीयसी, समिद् १ । दीदयति क्रि० । द्यवि ७ । इषम् २ । स्तोतृभ्यः ४ । आभर क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(देव) हे दिव्यगुण ! (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! वा भौतिकाग्ने ! (द्युमन्तम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रकाशवन्तम् (अजरम्) अजीर्णम् (ते) त्वाम् (आ इधीमहि) आत्मनि यज्ञकुण्डादौ वा प्रकाशयेम (यत्) प्रसिद्धा (स्या) सा (ते) तव (पनीयसी) प्रशंसनीयतमा (समिद्) दीप्तिः (द्यवि) आकाशे (दीदयति) प्रकाशं करोति (स्तोतृभ्यः) उपासकेभ्यो याज्ञिकेभ्यो वा (इषम्) आनन्दमन्नं वा (आभर) आहर ॥

ऋग्वेदे ५ । ६ । ४ ऽपि ॥ १ ॥ (४१९)

भाषार्थः-(देव) दिव्यगुणयुक्त ! (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! परमेश्वर ! वा भौतिकाग्ने ! (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (अजरम्) जरारहित (ते) तुझ को (आ इधीमहि) हम आत्मा में वा यज्ञकुण्डादि में प्रकाशित करें (यत् इ) जो कि प्रसिद्ध (स्या) वह (ते) आप की (पनीयसी) प्रशंसा योग्य (समिद्) दीप्ति (द्यवि) आकाश में (दीदयति) प्रकाश करती है (स्तोतृभ्यः) उपासकों वा याज्ञिकों के लिये (इषम्) आनन्द वा अन्नादि (आभर) प्राप्त कराइये ॥

ऋ० ५ । ६ । ४ में भी ॥ १ ॥ (४१९)

अथ द्वितीयायाः-विसद ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे । शीरं पावकशो-

३ २ ३ १२ ३१२ ३ १२ ३ १ २

चिषं विवो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥ २ ॥ (४२०)

पदपाठः-आ अ० । अग्निम् २ । न अ० । स्ववृक्तिभिः ३ । होतारम्, त्वा २ । वृणीमहे क्रि० । शीरम्, पावकशोचिषम् २ । विवः क्रि० । मदे ७ । यज्ञेषु ७ । स्तीर्णबर्हिषम् २ । विवक्षसे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-हे परमेश्वर ! (विवक्षसे) त्वं महान् भवसि, अतः-(न) यथा (शीरम्) अनुशायिनम् (पावकशोचिषम्) शोधकप्रकाशम् (आस्तीर्णबर्हिषम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आस्तीर्णं बर्हिर्यस्मै तम् (अग्निम्), (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादिषु (विवः) कर्मकाण्डिनो विवृण्वन्ति तद्वत् (मदे) हर्षे आनन्दे निमित्ते (त्वा) त्वाम् (स्ववृक्तिभिः) स्वयं कृताभिः स्तुतिभिः (वृणीमहे), ज्ञानकाण्डिन उपासनापराश्च वयमिति शेषः ॥

शीरं पावकशोचिशम्=पावकदीप्तिम् । अनुशायिनमिति । निरु० ४ । १४ ॥ विवक्षसे इति महन्नाम निघं० ३ । ३ ॥ विवोमदे इत्यत्र विमदे इत्यनुचितं सायणाचार्येण व्याख्यातं, वः इति च नैव व्याख्यातम् ॥ ऋग्वेदे तु १० । २१ । १ उत्तरार्धे–यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे विवोमदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे । इत्यन्तरम् ॥ २ ॥ (४२०)

भाषार्थः–हे परमेश्वर ! (विवक्षसे) आप महान् हैं । अतः (न) जैसे (शीरम्) व्यापने वाले (पावकशोचिषम्) शोधक प्रकाश वाले (स्तीर्ण बर्हिषम्) जिस के लिये यज्ञ विस्तीर्ण किया जाय उस (अग्निम्) अग्नि को (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादि यज्ञों में (विवः) कर्मकाण्डी लोग विशेष प्रकार से वरण करते हैं वैसे ही (मदे) आनन्द के निमित्त (त्वा) आप का (स्ववृक्तिभिः) अपनी की हुई स्तुतियों से हम ज्ञानकाण्डी लोग (वृणीमहे) वरण करते हैं ॥

निरुक्त ४ । १४ निघण्टु ३ । ३ के प्रमाण और ऋ० १० । २१ । १ में जो पाठभेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये । सायणभाष्य में (विवोमदे) का (विमदे) करके व्याख्यान अनुचित और (वः) की व्याख्या ही नहीं है ॥ २ ॥ (४२०)

अथ तृतीयायाः–सत्यश्रवा ऋषिः । उषा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती । यथा चिन्नो अबोधयः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥ (४२१)

पदपाठः—महे ७ । नः २ । अद्य अ० । बोधय क्रि० । उषः सं० । राये । ४ । दिवित्मती १ । यथा चित् अ० । नः २ । अबोधयः क्रि० । सत्यश्रवसि, वाय्ये, सुजाते, अश्वसूनृते सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(सत्यश्रवसि) सत्यं श्रवः श्रवणं यस्यां तादृशि ! (सुजाते) शोभनं जातं जन्म यस्यास्तथाभूते ! (अश्वसूनृते) अश्वोव्यापनः प्रियशब्दो यस्यां तथाभूते ! (वाय्ये) विस्तृते ! (उषः) प्रभातवेले ! (यथा चित्) यथैव हि (नः) अस्मान् (अबोधयः) पूर्वमबोधयः तथैव (अद्य) वर्त्तमानेऽपि (दिवित्मती) दीप्तिमती त्वम् (महे राये) महते धनाद्यैश्वर्याय (नः) अस्मान् (बोधय) जागरय ॥

उषःस्तुतिव्याजेन परमात्मोपदिशति, यत्—ये मनुष्याः उषःकाले प्रबोधमाप्नुवन्ति ते महद्धनधान्याद्यैश्वर्यमाप्नुवन्ति उषर्वद्वर्त्तमाना स्त्री च यस्मिन् गृहे भवति तत्रापि धनधान्यादयो वर्धन्ते । यथोषसि यथार्थः श्रवणादिव्यवहारो जायते, यथा चोषसः शोभनं जन्म सर्वेषामाह्लादकं भवति, यथोषसि सर्वजन्तवः प्रियं शब्दं कुर्वन्ति, यथा चोषाः सर्वतोविस्तीर्णा भवति, यथा च प्रकाशयुक्ता वर्त्तते तथैव तत्तद्गुणविशिष्टयोत्तमस्त्रियाऽपि भाव्यम् ॥

ऋग्वेदे ५ । ७९ । १ ऽपि ॥ ३ ॥ (४२१)

भाषार्थः—(सत्यश्रवसि) जिस में ठीक २ श्रवण होता है वैसी ! (सुजाते) जिस का जन्म शोभायुक्त है ऐसी ! (अश्वसूनृते) जिस में प्रिय शब्द व्याप जाता है इस प्रकार की ! (वाय्ये) विस्तार वाली ! (उषः) प्रभात

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

बेला ! (यथा चित्) जिस प्रकार (नः) हम को (अबोधयः) पूर्व जगाती रही है उसी प्रकार (अद्य) अब भी (दिविजमती) प्रकाश वाली तू (महे राये) महाधन धान्यादि के लिये (नः) हम को (बोधय) जगा ॥

इस में उषा की प्रशंसा के साथ परमात्मा का यह उपदेश है कि जो लोग उषः काल-प्रभात बेला में जागते हैं वे उद्यमी कर्मण्य और धन धान्याद्यैश्वर्यशाली होते हैं। और जो स्त्री उषा के समान गुण कर्म स्वभाव वाली होती है उस के घर में लक्ष्मी निवास करती है। जिस प्रकार उषः काल में जगने से यथार्थ श्रवणादि व्यवहार होता है और उषःकाल का जन्म सब को अच्छा लगता है, सब पक्षिगणादि प्यारे शब्द बोलते और उषा सब ओर फैलकर शोभा बढ़ाती है और सब को प्रकाशित करती है, इसी प्रकार स्त्रियों को भी सद्गुणाढ्य होना चाहिये ॥ ऋ० ५ । ७९ । १ में भी ॥ ३ ॥ (४२१)

अथ चतुर्थ्याः-विमद ऋषिः । सोमोदेवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ २ १ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् । अथा ते सख्ये

२ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अन्धसो विवो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥४॥ (४२२)

पदपाठः-भद्रम् २ । नः २ । अपि अ० । वातय क्रि० । मनः, दक्षम् २ । उत अ० । क्रतुम् २ । अथ अ० । ते ६ । सख्ये ७ । अन्धसः ६ । विवः क्रि० । मदे ७ । रणाः, गावः १ । न अ० । यवसे ७ । विवक्षसे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-सोम ! शान्तस्वरूप ! परमेश्वर ! वा चन्द्र लोक ! वा सोम ! ओषधे ! (नः) अस्मान् (भद्रम्) कल्याणकरम् (दक्षम्) चतुरम् (मनः), (उत) च (क्रतुम्) कर्म (वातय) प्रापय (अथ) च (ते) तव (सख्ये) आनुकूल्ये (अन्धसः) भोज्यादेः (मदे) हर्षे, (विवः) वयं त्वां वृणुमः (न) यथा (यवसे) घासे (रणाः) प्रीतिमुक्ताः (गावः), (विवक्षसे) हृष्टत्वं

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्राप्नुवन्ति तद्वत् ॥ चन्द्रेण सोमौषधिप्रयोगेण च मनः प्रसीदतीति प्रसिद्धमेव ॥

अत्रापि सायणभाष्ये पूर्व [२ य] मन्त्रवत् "विवोमदे" इत्यसमीचीनं व्याख्यातम् ॥ ऋग्वेदे तु १० । २० । १ भद्रं नो अपि वातय मनः । इत्येतावदेव पाठसाम्यम् ॥४॥ [४२२]

भाषार्थः—सोम! शान्तस्वरूप! परमेश्वर! वा चन्द्र! वा सोमाख्य ओषधे! (नः) हम को (भद्रम्) सुखदायी (दक्षम्) चतुर (मनः) मन (उत) और (क्रतुम्) शुभ कर्म (वातय) प्राप्त करावे (अथ) और (ते) तेरी (सख्ये) मनकूलवर्त्तिता में (अन्यसः मदे) भोज्यादि के हर्ष में (विवः), हम तेरा स्वीकार करते हैं। (न) जैसे (रणाः) प्रीतियुक्त (गावः) गौवें (यवसे) घास आदि में (विवक्षसे) हर्ष को पाती हैं, तद्वत् ॥

चन्द्रमा के प्रकाश और सोम ओषधि से मन प्रफुल्लित होता है इत्यादि तो प्रसिद्ध ही है ॥ इस में भी (विवोमदे) का व्याख्यान पूर्व (२ य) मन्त्र के समान सायणाचार्य ने ठीक नहीं किया। इस पर (वः) की व्याख्या का तो सत्यव्रत सामश्रमी जी ने भी सायणभाष्य में प्रश्न करके ही छोड़ दिया है ॥ ऋ० १० । २० । १ में केवल "भद्रं नो अपि वातय मनः" इतना पाठ मिलता है ॥ ४ ॥ (४२२)

अथ पञ्चम्याः—गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३१ २ ३२ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २३

क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आवावृते शवः । श्रिय ऋष्व उपा-

२३ २ ३ १ २र २ १ २३१२ ३२

कयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥५॥ (४२३)

पदपाठः—क्रत्वा ३ । महान् १ । अनुष्वधम् २ । भीमः १ । आवावृते क्रि० । शवः १ । श्रियः ६ । ऋष्वः १ । उपाकयोः ७ । नि अ० । शिप्री, हरिवान् १ । दधे क्रि० । हस्तयोः ७ । वज्रम्, आयसम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—हे इन्द्र! सभासेनाध्यक्ष! राजन्! (क्रत्वा)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कर्मणा (महान्) उत्कृष्टोभवान् (अनुष्वधम्) स्वधाम-न्नमनु (शवः) सेनाबलम् (आ वावृते) आवर्त्तयति (भीमः) शत्रुभयंकरः (ऋष्वः) महान् (शिप्री) सुन्दरना-सिको वीरः (हरिवान्) अश्वाद्यारूढः (श्रियः) लक्ष्म्याः (उपाकयोः) समीपवर्त्तिनोः (हस्तयोः), (आयसम्) अयोमयं (वज्रम्) शस्त्राऽस्त्रसमूहम् (नि दधे) नितरां दधाति॥

स्वधेत्यन्ननाम निघं० २। ७ ऋष्व इति महन्नाम ३। ३॥ शिप्रे हनू नासिके वा। निरु० ६। १७ हरी इन्द्रस्येत्यादि-ष्टोपयोजनम् निघं० १। १५॥ ऋग्वेदे तु १। ८१। ४ वावृधे इत्यन्तरम्॥ ५॥ (४२३)

भाषार्थः—हे इन्द्र! सभासेनाध्यक्ष! राजन्! (क्रत्वा) कर्म से (महान्) बड़े आप (अनुष्वधम्) अन्नादि [रस] सहित (शवः) सेना बल को (आ वावृते) व्यूहादि की रीति से रच कर घुमाते हैं। (भीमः) शत्रुओं को भयंकर (ऋष्वः) महान् (शिप्री) सुन्दर ठोड़ी और नासिका वाले वीराकृतियुक्त (हरिवान्) अश्वयुक्त आप (श्रियः उपाकयोः हस्तयोः) लक्ष्मी के समीपवर्त्ती दोनों हाथों में (आयसम् वज्रम्) लोहमय शस्त्र अस्त्रों को (निदधे) नितराम् धारण करते हैं॥

निघण्टु २। ७॥ ३। ३॥ १। १५॥ निरुक्त ६। १७ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० १। ८१। ४ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ५॥ (४२३)

अथ षष्ठ्याः—गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः॥

२ ३ १ २२३ २३१ २ ३ १ २ १ २२

स घा तं वृषणꣳ रथमधितिष्ठाति गोविदम्। यः पात्रꣳहारि-

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २२ ३ १ २

योजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजान्विन्द्र ते हरी॥ ६॥ (४२४)

पदपाठः—सः १। घ अ०। तम्, वृषणम्, रथम् २। अधितिष्ठाति क्रि०। गोविदम् २। यः, पात्रम् १। हारियोजनम्, पूर्णम् २। इन्द्र सं०। चिके-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तति, योज क्रि० । नु अ० । इन्द्र सं० । ते ६ । हरी २ ॥

अन्वितपदार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! (सः घ) सएव (गोविदम्, वृषणं, तं, रथम्) गोः पृथिव्याः राज्यस्य लम्भयितारम् कामानां वर्षकम्, तं, विजयरथम् (अधितिष्ठाति (अधितिष्ठेत् (यः), (पात्रम्) अधिकारी (हारियोजनम्) अश्वानां योजनम् (पूर्णम्) यथार्थम् (चिकेतति) जानाति । [नह्यज्ञो रथी भवेत्] (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! (ते) त्वदीयौ (हरी) अश्वौ (नु) क्षिप्रम् (योज) योजय ॥

ऋग्वेदे १ । ८२ । ४ ऽपि ॥ ६ ॥ (४२४)

भाषार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! (सः घ) वही (तम्) उस (गोविदम्) पृथिवी के राज्य के प्रापक (वृषणम्) कामपूरक (रथम्) रथ में (अधितिष्ठाति) बैठे (यः) जो (पात्रम्) अधिकारी (हारियोजनम्) घोड़ों का जोड़ना (पूर्णम्) पूर्ण (चिकेतति) जानता है [अज्ञानी रथी न होवे] (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! (ते) आप अपने (हरी) घोड़ों को (नु) शीघ्र (योज) जोड़िये ॥

ऋ० १ । ८२ । ४ में भी ॥ ६ ॥ (४२४)

अथ सप्तम्याः-वसुश्रुत ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

२ १ २२ ३ २३ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २ २ ३ १ २

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्त

३ २३ १ २ ३ २ ३१२ ३ २ ३ १ २

आशवो नित्यासो वाजिनइषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥७॥ (४२५)

पदपाठः-अग्निम्, तम् २ । मन्ये क्रि० । यः, वसुः १ । अस्तम्, यम् २ । यन्ति क्रि० । धेनवः १ । अस्तम् । अर्वन्तः, आशवः १ । अस्तम् । नित्यासः, वाजिनः १ । इषम् २ । स्तोतृभ्यः ४ । आभर क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-हे राजन् ! (यः) अग्निः (वसुः) अष्टसु वसुष्वेकः (तम्), (अस्तम्) अस्त्रप्रयुक्तम् (अग्निम्), (मन्ये)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रशंसामि (यम्), (धेनवः) गावः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति। यम् (अस्तम्) प्रक्षिप्तम् (अर्वन्तः) अरणवन्तः (आशवः) शीघ्रगामिनः (वाजिनः) अश्वाः प्राप्नुवन्ति। यम् (अस्तम्) प्रक्षिप्तम् (नित्यासः) रत्नादयो दीर्घकालस्थायिनः पदार्थाः यन्ति। अत एव हे राजन्! (स्तोतृभ्यः) अग्न्यादिपदार्थप्रशंसकेभ्यो विद्वद्भ्यः (इषम्) भरणपोषणसाधनान्नादिकम् (आभर) प्रपूर्धि ॥

ऋग्वेदे ५। ६। १ ऽपि ॥ ७ ॥ (४२५)

भाषार्थः—हे राजन्! (यः) जो (वसुः) ८ वसुओं में एक है (तम् अग्निम्) उस अग्नि को (मन्ये) मैं मानता प्रशंसित करता हूं, (यम्) जिस (अस्तम्) अस्त्र में प्रयुक्त को (धेनवः) गौवें (यन्ति) प्राप्त होती हैं और जिस (अस्तम्) अस्त्रप्रयुक्त को (अर्वन्तः) चालाक (आशवः) शीघ्रगामी (वाजिनः) घोड़े प्राप्त होते हैं जिस (अस्तम्) अस्त्र से फेंके हुवे को (नित्यासः) चिरस्थायी रत्नादि पदार्थ प्राप्त होते हैं। इसलिये हे राजन्! (स्तोतृभ्यः) अग्न्यादि पदार्थों के गुण वर्णन करने वालों के लिये (इषम्) अन्नादि वृत्ति (आभर) पूर्ण कीजिये ॥ ऋ० ५। ६। १ में भी ॥ ७ ॥ (४२५)

अथाष्टम्याः—अंहोमुग्वामदेव्य ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः।

उपरिष्टाद् बृहती छन्दः ॥

२७ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २
न तमꣳहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्।

३ १ २ १ १ २ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति
१ २
द्विषः ॥ ८ ॥ (४२६) इत्यष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—न अ० । तम् २ । अंहः १ । न अ० । दुरितम् १ । देवासः सं० । अष्ट क्रि० । मर्त्यम् २ । सजोषसः सं० । यम् २ । अर्यमा, मित्रः १ । नयति क्रि० । वरुणः १ । अति अ० । द्विषः २ ॥

अन्वितपदार्थः—(सजोषसः) हे प्रीयमाणाः ! (देवासः) सर्वे विद्वांसः ! (यम्) प्रजाजनम् (अर्यमा) न्यायकारी (मित्रः) सर्वहितः (वरुणः) वरणीयगुणः राजा, (द्विषः) द्वेष्टॄन् (अति) उल्लङ्घ्य (नयति) शास्ति (तम्) जनम् (अंहः) पापाचरणम् (न) नैव (अष्ट) व्याप्नोति (न) न च (दुरितम्) पापजनितं दुःखम् व्याप्नोति ॥

ऋग्वेदे तु १०।१२६।१ "नयन्ति" इति पाठः ॥८॥ (४२६)

* इति चतुर्थाध्यायेऽष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ *

इति पाङ्क्तम् ॥

भाषार्थः—(सजोषसः) हे प्रीतियुक्त ! (देवासः) सब विद्वानो ! (यम्) जिस प्रजाजन को (अर्यमा) न्यायकारी (मित्रः) सर्वहितकारी (वरुणः) श्रेष्ठगुणाढ्य राजा, (द्विषः) शत्रुओं को (अति) उल्लङ्घित करके (नयति) लेचलता-शासित करता है (तम्) उस जन को (अंहः) पाप (न अष्ट) नहीं व्यापता और (न) न (दुरितम्) पापजनित दुःख व्यापता है ॥

भले प्रकार राजशासन में सब जन पाप और तज्जनित दुःख भोग से बचते हैं ॥

ऋ० १० । १२६ । १ में (नयन्ति) पाठ है ॥ ८ ॥ (४२६)

* यह चतुर्थाऽध्याय में आठवीं दशति पूर्ण हुई ॥८॥ *

यह इन्द्रविषयक पङ्क्ति छन्दों का प्रकरण पूरा हुआ ॥

परि प्रधन्वप्रभृतौ दशर्चौ दशतौ मताः ।
एतासां तु ऋषिच्छन्दोदेवताश्च पृथक् पृथक् ॥
वक्ष्यन्ते तत्र तत्रैव व्याख्यायां हि परिस्फुटम् ।

अथ नवमी दशतिस्तत्र—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रथमायाः-ऋणञ्चयदृष्यू सहितावृषी । पवमानो देवता । द्विपदा बृहतीछन्दः ॥

२३ २३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २र

परि प्रधन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥ [४२७]

पदपाठः-परिप्रधन्व क्रि० । इन्द्राय ४ । सोम सं० । स्वादुः १ । मित्राय, पूष्णे, भगाय ४ ॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) हे शान्तात्मन् ! परमेश्वर ! (स्वादुः) अकथनीयरसः त्वं (मित्राय) हितकर्त्रे (पूष्णे) पुष्टिकर्त्रे (भगाय) ऐश्वर्यशालिने पुरुषाय (परिप्रधन्व) परितः प्रकर्षेणानन्दं क्षर ॥ ऋग्वेदे ९।१०९।१ऽपि ॥१॥ (४२७)

भाषार्थः-(सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमेश्वर ! (स्वादुः) अकथनीयरस आप (मित्राय) मित्र (पूष्णे) पुष्टिकर्त्ता और (भगाय) ऐश्वर्यशाली पुरुष के लिये (परि प्र धन्व) आनन्द बर्षाओ ॥

ऋ० ९ । १०९ । १ सैं भी ॥ १ ॥ (४२७)

अथ द्वितीयायाः-ऋषिर्देवले उक्ले । पिपीलिकामध्या त्रिपदाऽनुष्टुप्छन्दः ॥

२३ १ २र३ १ २ ३ १२ ३१ २ २१ २

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।

३२३ १ २ ३ १ २

द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥२॥ (४२८)

पदपाठः-परि, उ, सु, प्र अ० । धन्व क्रि० । वाजसातये ४ । परि अ० । वृत्राणि २ । सक्षणिः १ । द्विषः २ । तरध्यै अ० । ऋणयाः १ । नः ६ । ईरसे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-सोम इति पूर्वतोऽनुवर्त्तते । (नः) अस्माकम् (वाजसातये) बललाभाय (सक्षणिः) सहनशीलः (ऋणयाः) ऋणानां यापयिता विनाशयिता त्वम् (उ) अवश्यम् (सु परि प्र धन्व) शोभनं सर्वत आनन्दं क्षर

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(द्विषः) द्वेष्टॄन् (वृत्राणि) अवरोधकान् कामादीञ्छत्रून् (तरध्यै) तरीतुं हन्तुम् (परि ईरसे) पर्येषि ॥

ऋग्वेदे तु ९ । ११० । १ ईयसे इति पाठः ॥२॥ (४२८)

भाषार्थः—सोम की पूर्वमन्त्र से अनुवृत्ति है । हे शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (नः) हमारे (वाजसातये) बललाभ के लिये (सक्षणिः) सहनशील (ऋणयाः) ऋणों को दूर करने वाले आप (उ) अवश्य (सु परि प्र धन्व) उत्तम आनन्द सब ओर से वर्षाइये और (द्विषः) द्वेष करने वाले (वृत्राणि) रुकावट—विघ्न डालने वाले कामादि शत्रुओं को (तरध्यै) मारने को (परि ईरसे) सब ओर से आप प्राप्त हैं ॥

ऋ० ९ । ११० । १ में ईयसे पाठ है ॥ २ ॥ (४२८)

अथ तृतीयायाः—ऋषिर्देवते उक्ते । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१२ ३१ २३२ ३२ ३२३ २३ १ २र

पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥३॥(४२९)

पदपाठः—पवस्व क्रि० । सोम सं० । महान्, समुद्रः, पिता १ । देवानाम् ६ । विश्वा २ । अभि अ० । धाम २ ॥

अन्वितपदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वभाव ! परमात्मन् ! (महान्) अनन्तः (समुद्रः) संमोदन्तेऽस्मिन्भूतानि । निरु० २ । १० सः (देवानाम्), (पिता) जनकः (विश्वा) सर्वाणि (धाम) धामानि (अभि पवस्व) सर्वतः पवित्राणि कुरु ॥

ऋग्वेदे ९ । १०९ । ४ ऽपि ॥३॥ (४२९)

भाषार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (महान्) बड़े (समुद्रः) जिस आप में सब प्राणी आनन्द कर रहे हैं ऐसे (देवानाम्) देवतों के (पिता) पिता आप (विश्वा) सब (धाम) धामों को (अभि पवस्व) सर्वतः पवित्र कीजिये ॥

ऋ० ९ । १०९ । ४ में भी ॥ ३ ॥ (४२९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थ्याः-ऋष्यादय उक्ताः

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥४॥ (४३०)

पदपाठः-पवस्व क्रि० । सोम सं० । महे, दक्षाय ४ । अश्वः १ । न अ० । निक्तः, वाजी १ । धनाय ४ ॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) हे परमात्मन् ! (निक्तः) शुद्धः त्वम् (अश्वो न) विद्युदिव (वाजी) बलिष्ठः (महे) महते (दक्षाय) बलाय (धनाय), च (पवस्व) अस्मद्व्यवहारानिति शेषः ॥

ऋग्वेदे ९ । १०९ । १० तु "महे=क्रत्वे" इतिपाठः ॥४॥ (४३०)

भाषार्थः-(सोम) हे परमात्मन् ! (निक्तः) शुद्धस्वरूप (अश्वो न) बिजुली के समान (वाजी) बलिष्ठ आप (महे दक्षाय धनाय) बड़े बल और धन के लिये (पवस्व) हमारे व्यवहारों को शुद्ध कीजिये ।

ऋ० । ९ । १०९ । १० में महे के स्थान में क्रत्वे पाठ है ॥ ४ ॥ (४३०)

अथ पञ्चम्याः-ऋष्यादय उक्ताः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५॥ (४३१)

पदपाठः-इन्दुः १ । पविष्ट क्रि० । चारुः १ । मदाय ४ । अपाम् ६ । उपस्थे ७ । कविः १ । भगाय ४ ॥

अन्वितपदार्थः-(चारुः) कल्याणस्वरूपः (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् (कविः) मेधावी परमेश्वरः (अपाम्) कर्मणाम् (उपस्थे) उपस्थाने (मदाय) आनन्दाय (भगाय) ऐश्वर्याय च (पविष्ट) अस्मान् पवेत् ॥

कविरिति मेधाविनाम निघं० ३ । १५ मेधावी कस्मान्मेधया तद्वान्भवति मेधा मतौ धीयते। निरु० ३ । १९ भग इति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

धननाम निघं० २ । १० अप इति कर्मनाम निघं० २। १ ॥

ऋग्वेदे ९ । १०९ । १३ ऽपि ॥ ५ ॥ (४३१)

भाषार्थः—(चारुः) कल्याणस्वरूप (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् (कविः) मेधावी परमेश्वर (अपाम्) कर्मों के (उपस्थे) उपस्थान में (मदाय) आनन्द और (भगाय) धनादि ऐश्वर्य के लिये (पवित्र) हम को पवित्र करे ॥

निघण्टु ३ । १५ ॥ २ । १० ॥ २ । १ निरुक्त ३ । १९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०९ । १३ में भी ॥ ५ ॥ (४३१)

अथ षष्ठ्याः—ऋषिर्देवते उक्ते । पिपीलिकामध्या त्रिपदाऽनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३१ २

अनु हि त्वा सुतꣳ सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।

१ २ ३१ २ ३ १ २

वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥६॥ (४३२)

पदपाठः—अनु, हि अ० । त्वा, सुतम् २ । सोम सं० । मदामसि क्रि० । महे, समर्यराज्ये ७ । वाजान् २ । अभि अ० । पवमान सं० । प्र गाहसे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(सोम) ओषधे ! वा परमात्मन् ! (महे) महति (समर्यराज्ये) समानानां मनुष्याणां राज्ये (सुतम्) प्रादुर्भावितं हृदि साक्षात्कृतं वा (त्वा) त्वाम् (हि) एव (अनु मदामसि) अनु पश्चात् हृष्येम=तवानन्देनानन्दिता भवेम । (पवमान) हे पवित्रकारक ! (वाजान्) बलानि (अभि प्र गाहसे) अभितो विलोडयसि ॥

ऋग्वेदे ९ । ११० । २ ऽपि ॥ ६ ॥ (४३२)

भाषार्थः—(सोम) हे ओषधे ! वा परमात्मन् ! (महे) महान् (समर्यराज्ये) जहां सब मनुष्य समान हों, ऐसे राज्य में (सुतम्) उत्पन्न किये वा हृदय में साक्षात् किये (त्वा) तुझ को (हि) ही (अनु मदामसि) पीछे लग के हर्ष वा आनन्द प्राप्त करें । (पवमान) हे पवित्रकारक ! तू (वाजान्) बलों को (अभि प्र गाहसे) सर्वतः विलोडित करता है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋ० ९ । ११० । २ में भी ॥ ६ ॥ (४३२)

अथ सप्तम्याः—वसिष्ठ ऋषिः । मरुतो देवताः । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ ७ ॥ (४३३)

पदपाठः—के १ । ईम् अ० । व्यक्ताः, नरः, सनीडाः १ । रुद्रस्य ६ । मर्याः १ । अध अ० । स्वश्वाः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(अध) इदानीम् (ईम्) ईदृशाः पूर्वमन्त्रोक्ताऽऽनन्दभाजः (रुद्रस्य स्वश्वाः) प्राणस्य शोभना वाहाः (नरः) नीतिमन्तः (व्यक्ताः) श्लक्ष्णचित्ताः (सनीडाः) समानौकसः (मर्याः) मनुष्याः (के) के भवन्ति ? सामर्थ्यान्मरुतः क्रियायज्ञस्य योगयज्ञस्य वा ऋत्विजः इत्युत्तरम् ॥

ऋग्वेदे तु ७ । ५६ । १ " सनीकाः " इति " अधा " इति च पाठौ ॥ ७ ॥ (४३३)

भाषार्थः—(अध) अब (ईम्) ऐसे अर्थात् पूर्वमन्त्रोक्त आनन्दभागी (रुद्रस्य स्वश्वाः) प्राण के सुन्दर ले चलने वाले (नरः) नीतियुक्त (व्यक्ताः) स्निग्धचित्त (सनीडाः) साथ मिलकर रहने वाले (मर्याः) मनुष्य (के) कौन हैं ? उत्तर—सामर्थ्य से मरुत् अर्थात् क्रियायज्ञ वा योगयज्ञ के ऋत्विज् हैं ॥

ऋ० ७ । ५६ । १ में (सनीकाः) और (अधा) पाठ है ॥ ७ ॥ (४३३)

अथाऽष्टम्याः—वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिपदा पदपङ्क्तिश्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् ।

१ १ २ ३ १ २

ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥ (४३४)

पदपाठः—अग्ने सं० । तम् २ । अद्य अ० । अश्वम् २ । न अ० । स्तोमैः ३ । क्रतुम् २ । न अ० । भद्रम्, हृदिस्पृशम् २ । ऋध्याम क्रि० । ते ६ । ओहैः ३ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप! परमात्मन्! वा भौतिकाग्ने! (ते) तव (ओहैः) त्वद्विषयकज्ञानप्रापकैः (स्तोमैः) स्तोत्रैः (अश्वं न) अश्वमिव (क्रतुं न) प्रज्ञामिव च (हृदिस्पृशम्) हृदयस्य प्रियम् (तम्) पूर्वोक्तम् (भद्रम्) सुखमानन्दं वा (अद्य) क्रतुदिते (ऋध्याम) वर्धयाम ॥ ऋग्वेदे ४। १०। १ ऽपि ॥ ८ ॥ (४३४)

भाषार्थः-(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप! परमात्मन्! वा भौतिकाग्ने! (ते) आप के (ओहैः) प्राप्त कराने वाले (स्तोमैः) गुणकीर्त्तनों से (अश्वं न) अश्व के समान और (क्रतुं न) बुद्धि के समान (हृदिस्पृशम् तम् भद्रम्) हृदय के प्यारे उस सुख को (अद्य) आज यज्ञ के दिन (ऋध्याम) हम बढ़ावें ॥

ऋ० ४। १०। १ में भी ॥ ८ ॥ (४३४)

अथ नवम्याः-वामदेव ऋषिः। । वाजिनो देवताः। पुर उष्णिक्छन्दः ॥

३ १२१ १ २२ ३ १ २ ३१२ ३२

आविर्मर्या आवाजं वाजिनो अग्मन्देवस्य सवितुः

३२ ३१ २

सवम्। स्वर्गा ँ अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥ (४३५)

पदपाठः-आविः अ०। मर्याः सं०। आवाजम् २। वाजिनः १। अग्मन् क्रि०। देवस्य, सवितुः ६। सवम्, स्वर्गम् २। अर्वन्तः १। जयत क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(मर्याः) हे मनुष्याः! (आविः) प्रकाशमानाः (वाजिनः) द्युस्थानदेवतासु त्रिंशत्तमा देवताः निघं० ५। ६ (आवाजम्) बलं यावत् (सवितुः देवस्य) प्रेरकस्य देवस्य (सवम्) यज्ञम् (अग्मन्) गच्छन्तु। यूयं च (स्वर्गम्) सुखविशेषम् (अर्वन्तः) प्राप्ताः सन्तः (जयत) उत्कृष्टतया वर्त्तध्वम् ॥

यज्ञानुष्ठानेन सुखप्राप्तिर्जयश्च प्राप्यते इति भावः ॥९॥ (४३५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(आविः) प्रकाशमान (वाजिनः) द्युस्थान पौतिक देवतों में ३० वें देवता निघं० ५। ६ (सवितुः देवस्य) प्रेरक देव के (सवम्) यज्ञ को (आ वाजम्) बल पुष्टि पर्यन्त (अग्मन्) प्राप्त हों और (सर्याः) हे मनुष्यो ! तुम (स्वर्गम्) सुख विशेष को (अर्वन्तः) प्राप्त हुवे (जयत) उन्नता से वर्त्तो ॥

अर्थात्-यज्ञानुष्ठान से सुख विशेष और जय होता है ॥ ९ ॥ (४३५)

अथ दशम्या ऐश्वराधिष्ण्या ऋषयः। पवमानो देवता। द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः॥

१२ ३ १ २३ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २

पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनु पूर्व्यः ॥१०॥ (४३६)

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥

* इति पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमार्धः ॥ *

—○:०:○—

पदपाठः-पवस्व क्रि०। सोम सं०। द्युम्नी, सुधारः, महान् १। अवीनाम् ६। अनु अ०। पूर्व्यः १॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) ओषधे ! (द्युम्नी) अन्नवान्-पुष्टिमान् (सुधारः) शोभना धारा यस्य सः (महान्) उत्तमः (अवीनाम्) रक्षकद्रव्याणां मध्ये (पूर्व्यः) आदिमः (अनु), (पवस्व) शुद्धिं कुरु ॥

सोमस्तथाऽभिषोतव्यो यथा स्वच्छः सुधारः स्यात्। तथा कृतेऽयं क्रमेण पुष्टिदोऽङ्गरक्षकः शोधकश्च जायते ॥

द्युम्नं द्योततेर्यशो वाऽन्नं वेति। निरु० ५। ५॥ ऋग्वेदे ९। १०९। ७ ऽपि ॥ १० ॥ (४३६)

* इति चतुर्थाध्याये नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ *

भाषार्थः-(सोम) ओषधे ! (द्युम्नी) अन्नवान् अर्थात् पुष्टिमान् (सुधारः) सुन्दर धार वाला (महान्) उत्तम (अवीनां पूर्व्यः) रक्षक पदार्थों

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

में मुख्य (अनु) क्रम से (पवस्व) शुद्धि कर ॥

अर्थात् सोम ऐसा खींचना चाहिये जिस से स्वच्छ उत्तम धारायुक्त हो। ऐसा करने से, यह क्रम से पुष्टि, रक्षा और शुद्धि करता है ॥

निरुक्त ५। ५ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९। १०९ । ७ में भी ॥ १० ॥ (४३६)

* यह चतुर्थाध्याय में नवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ९ ॥ *

—○:०:○—

विश्वेति दशतौ चापि द्विपदाः पङ्क्तयो दश ॥
उषस्या सप्तमी वैश्व-देवी षष्ठी ततः पराः ॥ १ ॥
अष्टेन्द्रस्य ऋचः प्रोक्ता इत्थं ज्ञेया विभागशः ॥२॥

अथ दशमी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-ऋषिर्नोपलभ्यते पुस्तकेषु । इन्द्रो देवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

विश्वतोदावन्विश्वतो न आभर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१॥ (४३७)

पदपाठः-विश्वतोदावन् सं० । विश्वतः अ० । नः २ । आभर क्रि० । यम्, त्वा, शविष्ठम् २ । ईमहे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(विश्वतोदावन्) हे सर्वतोदातः ! परमेश्वर ! (नः) अस्मान् (विश्वतः) सर्वतः (आभर) पुष्य (यम्), (त्वा) त्वाम् (शविष्ठम्) बलिष्ठम् (ईमहे) याचामहे । निघं० ३ । १९ ॥ १ ॥ (४३७)

भाषार्थः-(विश्वतोदावन्) हे सब ओर से दाता ! (नः) हम को (विश्वतः) सब ओर से (आभर) पोषित करो (यम्) जिस (त्वा) आप (शविष्ठम्) बलिष्ठ को (ईमहे) हम याचना करते हैं । निघण्टु ३ । १९ ॥ १ ॥ (४३७)

अथ द्वितीयायाः—ऋष्यादिकमुक्तवत् ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ २ ॥ (४३८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-एषः, ब्रह्मा, यः, ऋत्वियः, इन्द्रः १। नाम अ०। श्रुतः १। गृणे क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(एषः) स्तूयमान एषः (ब्रह्मा) स्तोतृणां वर्धयिता (यः) यो हि (ऋत्वियः) प्रत्यृतु हितकरः (नाम) प्रसिद्धौ (इन्द्रः) इन्द्र इति (श्रुतः) विख्यातः (गृणे) तं स्तौमि ॥ २ ॥ (४३८)

भाषार्थः-(एषः) यह (ब्रह्मा) भक्तों का बढ़ाने वाला (यः) जो (ऋत्वियः) प्रत्येक ऋतुओं में हितकारी (इन्द्रः नाम श्रुतः) इन्द्र नाम से विख्यात है, (गृणे) उसे स्तुत करता हूं ॥ २ ॥ (४३८)

अथ तृतीयायाः-त्रिशद्वृष्युर्ऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ॥

३ २ ३ १ २ ३१२ ३१ २र ३१२३२ ३ १ २

ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३॥ (४३९)

पदपाठः-ब्रह्माणः १। इन्द्रम् २। महयन्तः १। अर्कैः ३। अवर्धयन् क्रि०। अहये ४। हन्तवै, उ अ०॥

अन्वितपदार्थः-(अहये हन्तवै) अहिवन्मारकं पापं हन्तुम् (उ) निश्चयेन (ब्रह्माणः) चतुर्वेदविदः (अर्कैः) वेदमन्त्रैः (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (महयन्तः) पूजयन्तः (अवर्धयन्) वर्धयन्ति प्रीतं कुर्वन्तीति सायणोऽपि ॥

नूनं परमेश्वरस्तुत्युपासनाभ्यां मनुष्याः पापेभ्यः पृथक्तिष्ठन्ति परमात्मानं प्रसादयन्ति च ॥

अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति। निरु० ५। ४ महयतीत्यर्चतिकर्मा निघं० ३। १४ ॥ ऋग्वेदेऽपि ५। ३१। ४ उत्तरार्धरूपेणैषैव ॥ ३ ॥ (४३९)

भाषार्थः-(अहये हन्तवै) सर्पतुल्य मारक पाप को मारने के लिये (उ) निश्चय करके (ब्रह्माणः) चतुर्वेदवेत्ता लोग (अर्कैः) मन्त्रों से (इन्द्रम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

परमेश्वर को (महयन्तः) पूजते हुवे (अवर्धयन्) " प्रसन्न करते हैं " यही सायणाचार्य का अर्थ है ॥

निश्चय परमेश्वर की स्तुति उपासनाओं से मनुष्य पापों से बचते और परमात्मा को प्रसन्न करते हैं ॥

निरुक्त ५ । ५ निघण्टु ३ । १५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ५ । ३१ । ४ में उत्तरार्ध ऐसा ही है ॥ ३ ॥ (४३९)

अथ चतुर्थ्याः—ऋषिर्नोपलभ्यते । छन्दोदेवते उक्ते ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥ ४ ॥ (४४०)

पदपाठः—अनवः १ । ते २ । रथम् २ । अश्वाय ४ । तक्षुः कि० । त्वष्टा १ । वज्रम् २ । पुरुहूत सं० । द्युमन्तम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(अनवः) मनुष्याः (अश्वाय) सद्योगमनाय (ते) त्वाम् (रथम्) वाहनम् (तक्षुः) रचितवन्तः (पुरुहूत) हे बहुभिराहूत ! परमात्मन् ! (त्वष्टा) सर्वविद्यया प्रदीप्तः (द्युमन्तम्) प्रकाशमानं त्वाम् (वज्रम्) कामादिशत्रुसंहारकमस्त्रम् रचयति ॥

ईश्वरभक्ताः सद्योमोक्षप्राप्तये परमात्मानमेवाऽवलम्बन्ते स एव तेषां मोक्षमार्गवाहकः ते नैव च शस्त्रत्वेनोपकल्पितेन सर्वपापशत्रून्संहरन्ति ॥

ऋग्वेदेऽपि ५ । ३१ । ४ पूर्वार्धे इत्थमेव, केवलम् (तक्षुः=तक्षन्) इति पाठभेदः ॥ ४ ॥ (४४०)

भाषार्थः—(अनवः) मनुष्य लोग (अश्वाय) शीघ्र मोक्ष प्राप्त्यर्थ (ते) आप को (रथम्) रथ (तक्षुः) बनाते हैं । (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे हुवे ! परमात्मन् ! (त्वष्टा) विद्या से प्रदीप्त पुरुष आप को (द्युमन्तम् वज्रम्) प्रकाशमान शस्त्र बनाता है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ईश्वर के भक्त लोग शीघ्र मोक्षपद को प्राप्त होने के लिये परमेश्वर को ही अपना रथ बनाते और उसी को सर्व पापशत्रुसंहारार्थ शस्त्रभाव से कल्पना करते हैं ॥

ऋ० ५। ३१। ४ में पूर्वार्ध यही है, केवल (तक्षु=तक्षन्) है ॥४॥ (४४०)

अथ पञ्चम्याः—ऋष्यादय उक्तवत् ॥

२ ३२ ३१ २३ २ ३१ २२ ३१ २ ३१ २ ३२

शंपदंमघꣳरयीषिणेनकाममव्रतोहिनोतिनस्पृशद्रयिम५(४४१)

पदपाठः—शम्, पदम्, मघम् १। रयीषिणे ४। न अ०। कामम् २। अव्रतः १। हिनोति क्रि०। न। स्पृशत् क्रि०। रयिम् २॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् हे मघवन्निन्द्र! परमात्मन्! (अव्रतः) अकर्मा यज्ञस्याऽकर्त्ता मनुजः (रयिम्) धनम् (न स्पृशत्) न स्पृशति तथा (कामम्) इष्टपदार्थान् (न हिनोति) न प्राप्नोति। अथ (रयीषिणे) यज्ञे धनदात्रे पुरुषाय (शम्) कल्याणम् (पदम्) स्थानम् (मघम्) धनम् भवतीति शेषः॥

ये हि यज्ञादुत्तमकार्येषु धनादिव्ययं कुर्वन्ति ते धन-धान्यादिपदार्थान्प्राप्नुवन्ति अथेतरे कृपणा दरिद्रा जायन्ते इति भावः॥

रयिरिति धननाम निघं० २। १० मघमिति च॥ हि गतिवृद्ध्योः स्वादिः॥ ५॥ (४४१)

भावार्थः—प्रकरण से—हे इन्द्र! धनवन्! परमात्मन्! (अव्रतः) यज्ञादि सुकृत न करने वाला कृपण पुरुष (रयिम्) धन को (न स्पृशत्) छूने भी नहीं पाता तथा (कामम्) अभीष्ट पदार्थों को (न हिनोति) नहीं प्राप्त होता परन्तु (रयीषिणे) यज्ञादि उत्तम कर्मों में धन देने वाले के लिये (शम् पदम्) कल्याण स्थान और (मघम्) धन होता है॥

जो लोग यज्ञादि उत्तम कार्यों में धनादि व्यय करते हैं वे धन धान्यादि सकल इष्ट पदार्थों को प्राप्त होते हैं और इस के विरुद्ध लोग दरिद्र होते हैं॥

निघण्टु २। १० इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ५॥ (४४१)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ षष्ठ्याः—विश्वेदेवा देवताः । ऋषिश्छन्दश्चोक्तवत् ॥

२३ २३ १२ ३१२ ३ १२ ३१ २३१२

सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥६॥ (४४२)

पदपाठः—सदा अ० । गावः, शुचयः, विश्वधायसः१ । सदा । देवाः, अरेपसः १॥

अन्वितपदार्थः—हे भगवन् ! (विश्वधायसः) विश्वं दानादिना धारयन्ति ते (अरेपसः) पापानुष्ठानरहिताः(देवाः) दानाद्युत्तमगुणाढ्याः पुरुषाः (सदा) सर्वदा (शुचयः)पवित्रा जायन्ते । यथा (गावः सदा) शुचयो भवन्ति । वा—सतत-गमनशीला आदित्यरश्मयो गाव उच्यन्ते, ता यथा अमे-ध्येऽपि प्रपतिता न दूषिता भवन्ति (निघं०१।४,) यद्वा गावः पृथिव्यो यथा शुचयो भवन्ति (निघं० १ । १,) यद्वा गावो वेदवाचो यथा पवित्रा भवन्ति (निघं०१।११,) अथवा गावो गच्छन्त्यो भूमिगता आपो यथा शुद्धा भवन्ति ॥६॥ (४४२)

भाषार्थः—हे परमेश्वर ! (विश्वधायसः) जो विश्व का अन्नादि दान से धारण पोषण करते हैं (अरेपसः) पापाचरण नहीं करते (देवाः) दानादि गुणयुक्त पुरुष हैं वे (सदा शुचयः) सदा पवित्र रहते हैं । जिस प्रकार (गावः सदा) सदा गौ शुद्ध रहती हैं । निघण्टु १ । ४ ॥ १ । ११ ॥ १ । १ के अनुसार गौ शब्द से सूर्यकिरणें वा पृथिवियें वा वेदवाणी या पृथिवी के चलते बहते जल भी समझने चाहियें ॥ ६ ॥ (४४२)

अथ सप्तम्याः—सम्पात ऋषिः । उषा देवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१२३ १२ ३१ २र ३१ २र

आयाहि वनसा सह गावः सचन्त वर्त्तनिं यदूधभिः ॥७॥ (४४३)

पदपाठः—आयाहि क्रि० । वनसा ३ । सह अ० । गावः १ । सचन्त क्रि० । वर्त्तनिम् २ । यत् अ० । ऊधभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—हे परमेश्वर ! (यत्) यदा [उषो

देवता] (वनसा सह) वननीयेन तेजसा साकम् (आयाहि) आयायात् तदैव (गावः) अस्मदीया वाचः (ऊधभिः) दुग्धपूर्णस्तनैः सहिताः (वर्त्तनिम्) मार्गम् (सचन्त) समवगच्छन्तु ॥

प्रातः प्रातरुषोवेलायां वयं वेदवाचः प्राप्नुयामेति कृपया प्रसादं कुरु इति भावः ॥

वाचो गोत्वेन वर्णनं शतपथे १४ । ६ । १२ । १—"वाचं धेनुमुपासीत । तस्याश्चत्वारः स्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकारस्तस्यै द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च । हन्तकारं मनुष्याः । स्वधाकारं पितरस्तस्याः प्राण ऋषभो मनो वत्सः" इति ॥ ऋग्वेदे १० । १७२ । १ ऽपि ॥ ७ ॥ (४४३)

भाषार्थः—हे परमेश्वर ! (यत) जब कि [उषा देवता=प्रातर्वेला] (आयाहि) आवे [तभी] (गावः) गोरूप हमारी वाणियें (ऊधभिः) दुग्ध भरे स्तनों सहित (वर्त्तनिम्) मार्ग को (सचन्त) सङ्गत हों ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल उषा की वेला में वेदवाणियों को हम प्राप्त हों, कृपया ऐसा प्रसाद कीजिये ॥

शतपथ ब्राह्मण १४ । ६ । १२ । १ में वाणी को गोरूप से इस प्रकार वर्णन किया है कि—"वाणीरूप धेनु की उपासना करो । उस के ४ थन हैं । १—स्वाहाकार । २—वषट्कार । ३—हन्तकार और ४—स्वधाकार । उस के दो थन स्वाहाकार और वषट्कार को देवता पीते हैं । तथा हन्तकार को मनुष्य और स्वधाकार को पितर । उस का प्राण बैल है और मन बछड़ा ॥ ऋ० १० । १७२ । १ में भी ॥ ७ ॥ (४४३)

अथाष्टम्याः—ऋषिर्नोपलभ्यते । इन्द्रो देवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥

॥ ८ ॥ (४४४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—उप अ० । प्रक्षे, मधुमति ७ । क्षियन्तः १ । पुष्येम क्रि० । रयिम् २ । धीमहे क्रि० । ते २ । इन्द्र सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! वयम् (मधुमति) आत्मिकानन्दयुक्ते (प्रक्षे) क्षेत्रे (उप क्षियन्तः) उपवसन्तः (रयिम्) विद्यादिधनम् (पुष्येम), (ते) त्वाम् (धीमहे) ध्यायेम ॥

आत्मनो मधुत्वमुक्तं बृहदारण्यकोपनिषदि—"स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः" ४ । ५ । १५ इत्याद्युपक्रम्य—"इदं वै तन्मधु" ४ । ५ । १६ इत्यन्तम् ॥ आत्मनो माधुर्यमात्मज्ञानिन एव जानन्ति, नेतरे मन्दभाग्याः ॥८॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! हम लोग (मधुमति) आत्मिक आनन्दयुक्त (प्रक्षे) क्षेत्र में (उपक्षियन्तः) रहते हुवे (रयिम्) विद्यादि धन को (पुष्येम) पुष्ट करें और (ते) आप का (धीमहे) ध्यान करें ॥

बृहदारण्यकोपनिषद् ४ । ५ । १५-१६ में आत्मा को मधु कहा है । "यही वह आत्मा है जो सब भूतों का अधिपति है" यहां से आरम्भ करके "यही वह मधु है" यहां तक । परन्तु यह आत्मा का माधुर्य रस आत्मज्ञानी ही पान करते हैं, अन्य मन्दभाग्य नहीं ॥ ८ ॥ (४४४)

अथ नवम्याः—ऋष्यादय उक्तवत् ॥

१ २ ३ २ ३१२ ३ १ २र ३२३ ३ १ २र
अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आस्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥
॥ ९ ॥ (४४५)

पदपाठः—अर्चन्ति क्रि० । अर्कम् २ । मरुतः, स्वर्काः १ । आस्तोभति क्रि० । श्रुतः, युवा, सः, इन्द्रः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(स्वर्काः) शोभना अर्काः स्तुतिमन्त्रा येषां ते (मरुतः) जपयज्ञस्य ऋत्विजः (अर्कम्) पूजनीयं देव-

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

मिन्द्रम् (अर्चन्ति) पूजयन्ति (सः), (युवा) महाबलः (श्रुतः) वेदेषु श्रुतः (आस्तोभति) स्तूयते। कर्मणि कर्तृत्वव्यत्ययः ॥

अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्ति। अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति। निरु० ५। ४ ॥ इन्द्रशब्देन परमेश्वरग्रहणे "समस्ततेजः परमेश्वरत्वनिमित्तेन्द्रपदवाच्यः इति मीमांसाभाष्ये शवरः स्वामी,, इति ॥ ९ ॥ (४४५)

भाषार्थः—(स्वर्काः) शोभन मन्त्रों वाले (मरुतः) स्तोत्रयज्ञ के ऋत्विज् लोग (अर्कम्) पूजनीय ईश्वर को (अर्चन्ति) पूजते हैं और (सः) वह (युवा) महाबली (श्रुतः) वेदों में विख्यात (इन्द्रः) परमेश्वर (आस्तोभति) स्तुत किया जाता है ॥

निरुक्त ५। ४ और इन्द्र शब्द से परमेश्वरार्थ ग्रहण में मीमांसाभाष्यस्य शवर स्वामी की सम्मति जो सत्यव्रत सामश्रमी जी ने टिप्पणी में दी है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (४४५)

अथ दशम्याः—ऋष्यादय उक्तवद्बोध्याः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं
२ ३ २ ३ १ २
गायत यं जुजोषते ॥ १० ॥ (४४६)

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥

पदपाठः—प्र अ० । वः ६ । इन्द्राय, वृत्रहन्तमाय, विप्राय ४ । गाथम् २ । गायत क्रि० । यम् २ । जुजोषते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(वृत्रहन्तमाय) आवरणकराणां कामक्रोधादिशत्रूणामतिशयेन विनाशकाय (विप्राय) मेधाविने (इन्द्राय) परमेश्वराय (गाथम्) स्तोत्रम् (प्रगायत) प्रपठत (वः) युष्माकम् (यम्) गाथम्, परमेश्वरः (जुजोषते) सेवते ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सायणभाष्ये (विप्राय) इति मूलस्थं पदं (विप्राः) इति विन्यस्याऽन्यथा व्याख्यातं, (वः) इति च नैव व्याख्यातं दृश्यते ॥ १० ॥ (४४६)

* इति चतुर्थाध्याये दशमी दशतिः ॥ १० ॥ *

भाषार्थः-(वृत्रहन्तमाय) रोकने वाले काम क्रोधादि शत्रुओं के अत्यन्त विनाशक (विप्राय) मेधावी (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (गाथम्) स्तोत्र (प्र गायत) प्रकर्ष से पढ़ो (वः) तुम्हारे (यम्) जिस स्तोत्र को, वह परमेश्वर (जुजोषते) सेवित करता है ॥

सायणाचार्य के भाष्य में (विप्राय) के स्थान में (विप्राः) की व्याख्या अन्यथा है और (वः) की व्याख्या ही नहीं दीखती ॥ १० ॥ (४४६)

* यह चतुर्थाध्याय में दशवीं दशति समाप्त हुई ॥ १० ॥ *

—:o:—

तत्र तत्रैव वक्ष्यन्तेऽचेतीत्यृष्यादयः क्रमात् ॥

अथैकादशी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः-ऋषिर्नोपलभ्यते । अग्निर्देवता । द्विपदा छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः ॥ १ ॥ (४४७)

पदपाठः-अचेति क्रि० । अग्निः, चिकितिः, हव्यवाड् १। न अ० । सुमद्रथः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(सुमद्रथः) सुमान् शोभावान् रथो रमणीयं तेजः स्वरूपं यस्य सः (हव्यवाड्) हव्यं वहति सः अग्निः (न) इव (चिकितिः) चेतनः (अग्निः) परमात्मा (अचेति) अबोधि भक्तैरिति शेषः ॥

यथाग्नेः प्रकाशमयं दिव्यं स्वरूपमस्ति, यथा चाग्निर्हुतं द्रव्यं वहति, तथैव परमात्माऽपि तेजस्स्वरूपः सर्वप्राणिकृतकर्मरूपहव्यानां वोढा च चेतनोऽग्निरुपासकैर्ज्ञायते ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

ऋग्वेदस्य बालखिल्याख्यपरिशिष्टेऽपि ॥१॥ (४४७)

भाषार्थः-(सुनद्रथः) जिस का शोभावान् रथ=रमणीय तेजःस्वरूप है (हव्यवाड्) जो हवन किये द्रव्यों को स्थानान्तरों में पहुंचाता है, उस अग्नि के (न) समान (चिकितिः अग्निः) एक चेतन अग्नि [परमात्मा] (अचेति) उपासकों से ज्ञात किया जाता है जो ज्योतिस्स्वरूप है और प्राणिमात्र के कर्मरूप हव्य का पहुंचाने वाला है ॥

ऋग्वेद के बालखिल्य परिशिष्ट में भी यह पाठ आता है ॥१॥ (४४७)

अथ द्वितीयायाः-बन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । द्विपदा छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ १क २र

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥२॥ (४४८)

पदपाठः-अग्ने सं० । त्वम् १ । नः ६ । अन्तमः १ । उत अ० । त्राता, शिवः १ । भुवः क्रि० । वरूथ्यः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! (अन्तमः) अन्तिकतमः अन्तर्यामित्वात् (उत), (वरूथ्यः) वरणीयो भजनीयः (त्वम्), (नः) अस्माकं (त्राता) रक्षकः (शिवः) सुखदः (भुवः) भव ॥

ऋग्वेदेऽपि ५ । २४ । १ पूर्वार्धे इत्थमेवास्ति ॥२॥ (४४८)

भाषार्थः-(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! (अन्तमः) अन्तर्यामी होने से अत्यन्त समीपस्थ (उत) और (वरूथ्यः) वरणीय भजनीय (त्वम्) आप (नः) हमारे (त्राता) रक्षक और (शिवः) सुखदायक (भुवः) हूजिये ॥

ऋ० ५ । २४ । १ में भी ऐसाही पूर्वार्ध है ॥ २ ॥ (४४८)

अथ तृतीयायाः-ऋष्यादय उक्ताः ॥

२१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २

भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥३॥ (४४९)

पदपाठः-भगः १ । न अ० । चित्रः, अग्निः १ । महोनाम् ६ । दधाति क्रि० । रत्नम् २ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(महोनाम्) महतां मध्ये (भगः न) सूर्य्यइव तेजस्वी (अग्निः) परमात्मा (चित्रः) अद्भुत-स्वरूपः (रत्नम्) रमणीयं विद्यादिधनं [भक्तेभ्यः] (दधाति) धरति ददाति ॥ ३ ॥ (४४९)

भाषार्थः-(महोनाम्) बड़ों में (भगः न) सूर्य्य सा तेजस्वी (अग्निः) परमात्मा (चित्रः) अद्भुतस्वरूप (रत्नम्) विद्यादि धन [भक्तार्थ] (दधाति) धारण करता देता है ॥ ३ ॥ (४४९)

अथ चतुर्थ्याः-इन्द्रो देवता । ऋषिश्छन्दसी उक्ते ॥

१ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २

विश्वस्य प्रस्तोभ पुरो वासन् यदि वेह नूनम् ॥४॥ (४५०)

पदपाठः-विश्वस्य ६। प्रस्तोभ सं० । पुरः २। वासन् १। यदि, वा, इह, नूनम् अ० ॥

अन्वितपदार्थः-(प्रस्तोभ) प्रकृष्टाः स्तोभाः स्तुतयो यस्य तादृशेन्द्र! परमात्मन्! त्वम् (यदि), (विश्वस्य पुरः वासन्) सर्वस्य नगरीर्वासयन् भवसि (वा) तर्हि (इह) अत्रास्माकं पुरः (नूनम्) अवश्यं वासय ॥ ४ ॥ (४५०)

भाषार्थः-(प्रस्तोभ) जिस की सर्वोत्तम स्तुति हैं ऐसे हे इन्द्र ! परमात्मन् ! तू (यदि) यदि (विश्वस्य पुरः वासन्) सब की नगरी वसाता है (वा) तो (इह) यहां हमारी (नूनम्) अवश्य वसाव ॥४॥ (४५०)

अथ पञ्चम्याः-संवर्त्त ऋषिः । उषा देवता । द्विपदा छन्दः ॥

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उषा अप स्वसुष्टमः संवर्त्तयति वर्त्तनिꣳसुजातता ॥५॥(४५१)

पदपाठः-उषाः १। अप अ० । स्वसुः ६। तमः २। संवर्त्तयति क्रि०। वर्त्तनिम् २। सुजातता ३ ॥

अन्वितपदार्थः-हे परमेश्वर ! यथा (उषाः) प्रभातबेला (स्वसुः) भगिन्या रात्रेः (तमः) अन्धकारं (सुजातता)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

सुजाततया (वर्त्तनिम्) निवृत्तिमार्गम् (संवर्त्तयति) प्रत्यावर्त्तयति तथैव भवानस्मद्धृदयान्धकारं नाशयेति भावः ॥

ऋग्वेदे १० । १७२ । ४ ऽपि ॥ ५ ॥ (४५१)

भाषार्थः हे परमेश्वर ! जिस प्रकार (उषाः) प्रभातबेला (स्वसुः) अपनी बहन रात्रि के (तमः) अन्धियारे को (सुजातता) अपने शोभन जन्म से (वर्त्तनिम्) लौटने को मार्ग को (संवर्त्तयति) लौटाती है । इसी प्रकार आप हमारे हृदय के अन्धकार को दूर करें ॥

ऋ० १० । १७२ । ४ में भी ॥ ५ ॥ (४५१)

अथ षष्ठ्याः—सौभर आप्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । द्विपदा छन्दः ॥

३ २र ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ २

इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६॥ (४५२)

पदपाठः-इमा १ । नु अ० । कम् २ । भुवना १ । सीषधेम क्रि० । इन्द्रः १ । च अ० । विश्वे १ । च अ० । देवाः १ ॥

अन्वितपदार्थः—हे परमेश्वर ! (इन्द्रश्च) जीवात्मा तथा (विश्वे च देवाः) सर्वेन्द्रियाणि (नु) च (इमा) इमानि (भुवना) भुवनानि [एते सर्वे वयम्] (कम्) सुखम् (सीषधेम) साधयाम ॥ ऋग्वेदे तु १० । १५७ । १ सीषधामेति पाठः ॥ ६ ॥ (४५२)

भाषार्थः—हे परमेश्वर ! (इन्द्रः) जीवात्मा (च) और (विश्वे च देवाः) समस्त इन्द्रियां (नु) तथा (इमा भुवना) ये भुवन (कम्) सुख को (सीषधेम) साधें ॥

ऋ० १० । १५७ । १ में (सीषधाम) पाठ है ॥ ६ ॥ (४५२)

अथ सप्तम्याः—कवष ऐलुष ऋषिः । इन्द्रो देवता । द्विपदा गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ब ३ १ २ ३ १ २

विस्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ७ ॥ (४५३)

पदपाठः—विस्रुतयः १ । यथा अ० । पथा ३ । इन्द्र सं० । त्वत् ५ । यन्तु क्रि० । रातयः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यथा), (वि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्रुतयः) स्यन्दनशीला नद्यः (पथा) प्रवाहमार्गेण, यन्ति तथैव (त्वत्) त्वत्तः सकाशात् (रातयः) दानानि (यन्तु) प्राप्नुवन्तु ॥ ७ ॥ (४५३)

भाषार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यथा) जिस प्रकार (पथा) प्रवाह मार्ग से (विस्रुतयः) नदियां प्राप्त होती हैं इसी प्रकार (त्वत्) आप से (रातयः) विद्यादि दान (यन्तु) प्राप्त हों ॥ ७ ॥ (४५३)

अथाऽष्टम्याः-भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ १ २र ३१२ ३१२ ३१२ ३१२

अया वाजं देवहितꣳ सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः।८। (४५४)

पदपाठः-अया ३ । वाजम्, देवहितम् २ । सनेम, मदेम क्रि० । शतहिमाः २ । सुवीराः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(अया) अनया प्रार्थनया वयं (देवहितम्) परमेश्वरदत्तम् [ओहाक् त्यागे] (वाजम्) बलम् (सनेम) संभजेम । अपि च (सुवीराः) शोभनपुत्राद्युपेताः (शतहिमाः) शतं हेमन्तान् शतं वर्षाणीति यावत् (मदेम) हृष्येम ॥

ऋग्वेदे ६ । १७ । १५ ऽपि ॥ ८ ॥ (४५४)

भाषार्थः-(अया) इस प्रार्थना से हम (देवहितम्) ईश्वरदत्त (वाजम्) बल को (सनेम) संभाग पूर्वक लेवें और (सुवीराः) सुन्दर पुत्रादि युक्त हम (शतहिमाः) १०० वर्ष पर्यन्त (मदेम) हर्ष को प्राप्त हों ॥

ऋ० ६ । १७ । १५ में भी ॥ ८ ॥ (४५४)

अथ नवम्याः-आत्रेय ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २र ३२३ १ २३१२ ३ १ २

ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥ ९ ॥ (४५५)

पदपाठः-ऊर्जा ३ । मित्रः, वरुणः १ । पिन्वत क्रि० । इडाः, पीवरीम्, इषम् २ । कृणुहि क्रि० । नः ४ । इन्द्र सं० ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! त्वम् तथा (मित्रः) सूर्यः (वरुणः) वृष्टिजलं च यूयं सर्वे (ऊर्जा) ऊर्ग्वैरसः श० ५।१।२।८ रसेन (इडाः) अन्नानि (पिन्वत) पोषयत तथा (नः) अस्मभ्यम् (पीवरीम् इषम्) पुष्टमन्नम् (कृणुहि) कुरु=उत्पादय ॥ ९ ॥ (४५५)

भाषार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप तथा (मित्रः) सूर्य और (वरुणः) वृष्टिजल, ये सब (ऊर्जा) रस से [श० ५।१।२।८] (इडाः) अन्नों को (पिन्वत) पुष्ट करो तथा (नः) हमारे लिये (पीवरीम् इषम्) पुष्ट अन्न को (कृणुहि) करो=उत्पन्न करो ॥ ९ ॥ (४५५)

अथ दशम्याः-वसिष्ठऋषिः। इन्द्रो देवता। एकपदा गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २

इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥१०॥ (४५६) इत्येकादशी दशतिः ॥११॥

पदपाठः-इन्द्रः १। विश्वस्य ६। राजति क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-पूर्वमन्त्रतोऽन्वयः। यतः कारणात् (इन्द्रः) परमेश्वरः (विश्वस्य) सर्वस्य सूर्य्यादेः (राजति) राजा भवति तस्मात्स्वकृपया सूर्य्यवृष्टिजलादीन्प्रेर्य रसयुक्तं पुष्टधान्यादिकमुत्पादयतु इति भावः॥ यजुर्वेदे ३६।८ऽपि ॥१०॥ (४५६)

इति द्विपदमैन्द्रम् ॥

* इति चतुर्थाध्याये एकादशी दशतिः ॥११॥ *

भाषार्थः-पूर्व मन्त्र से अन्वय है। जिस कारण (इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्य) सूर्यादि सब का (राजति) राजा है। इस लिये सूर्य और वर्षा के जल आदि को प्रेरित करके हमारे लिये रसीले पुष्ट धान्यादि उत्पन्न करे ॥ यजुर्वेद ३६।८ में भी ॥ १० ॥ (४५६)

* यह चतुर्थाध्याय में ११ वीं दशति समाप्त हुई *

यह द्विपदा छन्दों वाला इन्द्र का प्रकरण हुआ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

त्रिकद्रुवित्यादिदशतौ दशर्क्वत्राऽष्टिरादिमा ॥
जगत्ययं सहस्रेत्यऽथैन्द्र्या ह्युपनस्तथा ॥ १ ॥
अग्निं होतारमित्येषा अस्तु श्रौषडऽयारुचा ॥
चतस्रोऽत्यष्टयोऽभित्यं तवत्यं नर्यमित्यृचौ ॥ २ ॥
इमे द्वे अतिशक्वर्यावऽष्टी इत्येक ऊचिरे ॥
प्रवोमहेऽतिजगती तमिन्द्रमिति तादृशी ॥ ३ ॥
सौरी ह्ययं सहस्रेति पावमानी त्वया रुचा ॥
अस्तु श्रौषड् वैश्वदेवी मारुती तु प्रवोमहे ॥ ४ ॥
अभित्यमिति सावित्री स्यादाग्नेय्यग्निमित्यसौ ॥
एन्द्र्योऽवशिष्टा इत्येवं छन्दोदैवतनिर्णयः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—"त्रिकद्रुकेषु" इत्यादि [१२ वीं] दशति में दश ऋचा हैं। इन में प्रथम ऋचा का अष्टि छन्द है। दूसरी "अयंसहस्र०" का जगती छन्द है। "एन्द्र्याह्युपनः" इस तीसरी, (१) "अग्निं होतारम्०" इस नवीं, "अस्तुश्रौषट्" इस पांचवीं, और "अयारुचा०" इस सातवीं, इन ४ का अत्यष्टि छन्द है॥ "अग्नित्यम्०" इस आठवीं और "तवत्यन्नर्यम्०" इस दशवीं, (२) इन दो का अति शक्वरी छन्द है और कोई लोग इन दोनों का अष्टि छन्द मानते हैं॥ "प्रवोमहे०" इस छठी और "तमिन्द्रम्०" इस चौथी का अतिजगती छन्द है॥ (३)

अयं सहस्र० इस दूसरी का सूर्य देवता है। अयारुचा० इस सातवीं का पवमान। अस्तुश्रौषट्० इस पांचवीं के विश्वेदेवाः। प्रवोमहे० इस छठी के मरुत्। (४) अग्नित्यम्० इस आठवीं का सविता। अग्निम्० इस नवीं का अग्नि देवता है। शेष (१। ३। ४। ७। १०) का इन्द्र देवता है। यह छन्द और देवता का निर्णय हुवा। (५)॥

अथ द्वादशी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—गृत्समद ऋषिः॥

१ २ ३ १ २२ ३ २ ३ २२

त्रिकद्रुकेषु महिषोयवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३१ २ ३१ २ ३२ १ २ ३ २ ३ २३ १२
वह्निष्णुना सुतं यथावशम् । स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे
३२३१ ३२ ३२ ३१ २२ ३१ २२
महामुरुꣳ सञ्चद्देवो देवꣳ सत्यइन्दुः सत्यमिन्द्रम्॥१॥(४५७)

पदपाठः—त्रिकद्रुकेषु ७ । महिषः १ । यवाशिरम् २ । तुविशुष्मः १ । तृम्पत् क्रि० । सोमम् २ । अपिबत् क्रि० । विष्णुना ३ । सुतम् २ । यथावशम् अ० । सः १ । ईम् अ० । ममाद् क्रि० । महि, कर्म २ । कर्त्तवे अ० । महाम्, उरुम् २ । सः १ । एनम् २ । सञ्चत् क्रि० । देवः १ । देवम् २ । सत्यः, इन्दुः १ । सत्यम्, इन्द्रम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(महिषः) महान् (तुविशुष्मः) तुवि बहु बलमाकर्षणं यस्य सः सूर्यः (तृम्पत्) तृप्यति [केन? तदाह—] (त्रिकद्रुकेषु) ज्योतिर्गौरायुरित्येतन्नामकेषु गवामयननामकस्य ताण्ड्यमहाब्राह्मणस्यचतुर्थप्रपाठकाऽऽद्यखण्डे प्रसिद्धस्य यज्ञस्याऽभिप्लविकेषु त्रिष्वहस्सु (सुतम्) अभिषुतम् (यवाशिरम्) यवमयैः सक्तुभिर्मिश्रितम् (सोमम्), (विष्णुना) व्यापकेन वायुना सह (यथावशम्) यथेष्टम् (अपिबत्) पिबति (सः) सोमः (महि) महत् (कर्म) वृष्टिलक्षणं कर्म (कर्त्तवे) कर्त्तुम् (ईम्) एनं सूर्यम् (ममाद) मादयति (सः), (सत्यः) यथार्थ उत्तमः (देवः) दिव्यः (इन्दुः) सोमः (एनम्) निर्दिश्यमानम् (सत्यं देवम्) सत्यं प्रकाशमानम् (महाम्) महान्तम् (उरुम्) किरणैर्विस्तीर्णम् (इन्द्रम्) सूर्यम् (सञ्चत्) गच्छति ॥

महिष इति महन्नाम निघं० ३ । ३ तुवि इति बहुनाम ३ । १ शुष्ममिति बलनाम २ । ९ सञ्चतिर्गतिकर्मा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२।१४॥ अपस्पृधेथामानृचुरित्यादिना ६।१।३६ यवाशिरम्॥ वश कान्तौ-यथावशम्॥ ऋग्वेदे तु २। २२।१ "यथावशत्" "सत्यमिन्द्रं सत्यइन्दुः" इति पाठभेदः॥ १॥ (४५७)

भाषार्थः—(महिषः) बड़ा और (तुविशुष्मः) बहुत बल अर्थात् आकर्षण वाला सूर्य (तृम्पत) तृप्त होता है [किस से ? सो कहते हैं—] (विकद्रुकेषु) ज्योति गौ आयु इन नामों वाले "गवामयन" नामक यज्ञ जो ताण्ड्यमहाब्राह्मण चतुर्थ प्रपाठक खण्ड एक में प्रसिद्ध है, उस के अभिप्लविक नाम ३ दिनों में (सुतम्) सम्पादित (यवाशिरम्) यव धान्य के सत्तु मिले हुए (सोमम्) सोमरस को (विष्णुना) व्यापक वायु के सहित (अपिबत) पीता है, (सः) वह सोम (ईम्) इस सूर्य को (ममाद) हृष्ट करता है (सः) और वह (सत्यः) सच्चा (देवः) दिव्य (इन्दुः) सोम (एनम्) इस (सत्यं देवम्) सच्चे देव (महाम्) महान् (उरुम्) किरणों से फैले हुवे (इन्द्रम्) सूर्य को (मज्मन) पहुंचता है॥

निघण्टु ३।३॥ ३।१॥ २।९॥ २।१४॥ अष्टाध्यायी ६।१।३६ के प्रमाण और ऋ० २।२२।१ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥१॥ (४५७)

अथ द्वितीयायाः—गौराङ्गिरस ऋषिः॥

३२ ३२३१२ ३१ २३ २ ३२उ ३१२

अयꣳ सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।

३२ ३१ २३२३ १२ ३२३ १२ ३ १२

ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे

३१ २ ३ २

मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥ (४५८)

पदपाठः-अयम्, सहस्रमानवः, दृशः १। कवीनाम् ६। मतिः, ज्योतिः, विधर्म, ब्रध्नः १। समीचीः, उषसः २। समैरयत् क्रि०। अरेपसः, सचेतसः १। स्वसरे ७। मन्युमन्तः, चिताः १। गोः ५॥

अन्वितपदार्थः-(अयम्) प्रत्यक्षः (सहस्रमानवः) बहुप्रकाशः (दृशः) दर्शकः (कवीनां मतिः) मेधाविनां मेधा,नैव सूर्यप्रकाशमन्तरेण तमसि रात्र्यादौ मतिमतां मतिः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रबुद्धा भवति। (विधर्म) विशेषेण धारकं (ज्योतिः), (ब्रध्नः) सूर्यः (समीचीः) समं गच्छन्तीः (उषसः) रक्तवर्णाः प्रभातकारिणीः (समैरयत्) संप्रेरयति। ततो हि–(स्वसरे) दिवसे (मन्युमन्तः) प्रकाशवन्तः चन्द्रमःप्रभृतयः (अरेपसः) तमःपापरहिताः (सचेतसः) सचित्ताः (गोः) आदित्यात् (चिताः) उपचिता भवन्ति॥

अर्थात् सूर्यो बहुप्रकाशः, दर्शकः, अतएव मतिमतां मतेः प्रबोधकृत्, धारकः; स यदा स्वकिरणसमूहेन यत्र यत्र पृथिव्यां चन्द्रमस्यन्यत्र वा लोके उषसः प्रभातवेलाः प्रेरयति तत्र तत्र तदा तदा दिनं जायते, एवं सूर्यात् लोकान्तरेषु प्रकाशः संचीयते॥

मन्यते इति कान्तिकर्मा निघं० २। ६ अस्मादेव मानवशब्दो मन्युशब्दश्च प्रकाशाऽपरपर्यायौ व्याकरणीयौ॥ स्वसराणीत्यहर्नाम निघं० १। ९॥ आदित्योऽपि गौरुच्यते निरु० २। ६॥ २॥ (४५८)

भाषार्थः–(अयम्) यह (सहस्रमानवः) बहुत प्रकाश वाला (दृशः) दिखाने वाला (कवीनां मतिः) बुद्धिवालों की बुद्धिरूप [क्योंकि सूर्य के प्रकाश विना बुद्धिमानों की बुद्धि अन्धकार से दबी रहती है] (विधर्म ज्योतिः) विशेष धारक ज्योति रूप (ब्रध्नः) सूर्य (समीचीः उषसः) सीधी चलने वाली प्रभात कारक किरणों को (समैरयत्) प्रेरित करता है तब–(स्वसरे) दिन में (अरेपसः) तमो रूपी पाप से रहित (सचेतसः) चित्त सहित (मन्युमन्तः) प्रकाशवाले [पृथिवी चन्द्रादि लोक] (गोः) सूर्य से (चिताः) उपचित होते हैं॥

अर्थात् सूर्य बहुत प्रकाशवाला, दिखाने वाला, और इसी से बुद्धिमानों की बुद्धि का जगाने वाला और धारक है। वह जब अपनी किरणों के समूह

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

से जहां २ पृथिवी चन्द्रवा अन्य लोक में प्रभात काल करनेवाली किरणें भेजता है वहां २ तब २ दिन होता है। इस प्रकार सूर्य से लोकान्तरों में प्रकाश संचित वा उपचित होता है॥

निघण्टु २।६॥ १।९ निरुक्त २। ६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥२॥ (४५८)

अथ तृतीयायाः—परुच्छेप ऋषिः॥

१ २ ३ १२ ३२३ १ २र ३१२ ३ १ २ ३
एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पति-
२ ३ १२३१ २ १२ ३ १२ ३२७
रस्ता राजेव सत्पतिः। हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा
३२ ३ २ ३२३ १ २ ३ १ २३ १ २
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये॥३॥ (४५९)

पदपाठः—आ अ०। इन्द्र सं०। याहि क्रि०। उप अ०। नः, परावतः २। न अ०। अयम् १। अच्छ अ०। विदथानीव अ०। सत्पतिः १। अस्ता २। राजेव अ०। सत्पतिः १। हवामहे क्रि०। त्वा २। प्रयस्वन्तः १। सुतेषु७। आ अ०। पुत्रासः १। न अ०। पितरम् २। वाजसातये ४। मंहिष्ठम् २। वाजसातये॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (नः) अस्मान् (परावतः न) दूरे वर्त्तमानानिव (उप आयाहि) उपागच्छ प्राप्नुहि। तत्र दृष्टान्तः—(अयम् सत्पतिः) सतां पृथिव्यादीनामाकर्षणेन रक्षकःसूर्यः (अच्छ) अभिव्याप्तुम् (विदथानीव) यथा विदथानि यज्ञानुपागच्छति[पूर्वमन्त्रोक्तप्रकारेण] तद्वत्। पुनर्दृष्टान्तः—(सत्पतिः) सतां धर्मात्मनां पालकः (राजेव) राजा यथा (अस्ता) अस्तं न्यायासनशालामुपागच्छति तद्वत् (सुतेषु) सोमेष्वभिषुतेषु सत्सु (प्रयस्वन्तः) सोमरसोदकवन्तो वयम् (वाजसातये) बलस्य लाभाय (मंहिष्ठम्) पूज्यतमम् (त्वा) त्वाम् (आ हवामहे)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आहूयामहे। आह्वाने दृष्टान्तः-(पुत्रासः) पुत्राः (पितरम्) जनकं (न) यथा (वाजसातये) बलस्याऽन्नस्य वा लाभाय आह्वयन्ते तद्वत् ॥

परावत इति दूरनाम। निघं० ३। २ विदथ इति यज्ञनाम ३। १७ ततो लिङ्गव्यत्ययेन विदथानि ॥ अस्तमिति गृहनाम ३। ४ प्रय इत्युदकनाम १। १२ ॥ पत्यावैश्वर्ये ६। २। १८ इति सत्पतिपदे पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ॥ सुलुगित्यादिना ७। १। ३९ सुपआकारे-अस्ता ॥ अच्छाभेराप्तमिति शाकपूणिः निरु० ५। २८ ॥ ऋग्वेदे तु १। १३०। १ अस्तम् इत्येव साक्षात्पाठः ॥ ३ ॥ (४५९)

भाषार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर! (नः) हम को (परावतः न) जो तुझ से दूर से हो गये हैं (उप आ याहि) प्राप्त हूजिये। दृष्टान्त-(अयम्) यह (सत्पतिः) सत्=पृथिवी आदि का आकर्षण से रक्षक सूर्य (अच्छ) अभिव्याप्त होने को (विदथानीव) जिस प्रकार यज्ञों को प्राप्त है [पूर्वमन्त्रानुसार] तद्वत् ॥ दूसरा दृष्टान्तः-(सत्पतिः) सज्जनों का पालक (राजेव) राजा जैसे (अस्ता) न्यायासन गृह को प्राप्त होता है, तद्वत् ॥ (सुतेषु) सोम सम्पन्न होने पर (प्रयस्वन्तः) सोमरस रूप जल लिये हुवे हम (वाजसातये) बललाभार्थ (संहिष्ठम्) पूजनीयतम (त्वाम्) आप को (आ हवामहे) पुकारते हैं। पुकारने में दृष्टान्त-(न) जैसे (पुत्रासः) बच्चे (वाजसातये) बल वा अन्न के लाभार्थ (पितरम्) बाप को पुकारते हैं तद्वत् ॥

निघण्टु ३। २ ॥ ३। १७ ॥ ३। ४ ॥ १। १२ ॥ निरुक्त ५। २८ ॥ अष्टाध्यायी ६। २। १८ ॥ ७। १। ३९ के प्रमाण और ऋ० १। १३०। १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (४५९)

अथ चतुर्ऋचस्य:-रेभा ऋषिः ॥

१ २र ३१२ ३२ ३ १ २र ३१२ ३

तामिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रꣳ सत्रा दधानमप्रतिष्कुतꣳ

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २
श्रवाꣳसि भूरि । मꣳहिष्ठोगीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त्त राये
३ १ २ ३१ २ ३ २
नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥ (४६०)

पदपाठः-तम्, इन्द्रम् २। जोहवीमि क्रि०। मघवानम्, उग्रम्, २॥ सत्रा अ०। दधानम्, अप्रतिष्कुतम्, श्रवांसि, भूरि २। मंहिष्ठः १। गीर्भिः ३। आ, च अ०। यज्ञियः १। ववर्त्त क्रि०। राये ४। नः ६। विश्वा, सुपथा २। कृणोतु क्रि०। वज्री १॥

अन्वितपदार्थः-(मघवानम्) धनवन्तम् (उग्रम्) अन्यैरप्रधृष्यम् (अप्रतिष्कुतम्) परैरनवरोध्यम् (सत्रा) सत्यानि (भूरि) भूरीणि (श्रवांसि) यशांसि (दधानम्) धरन्तम् (तम्) पूर्वमन्त्रोक्तम् (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (जोहवीमि) पुनः पुनराह्वये । (मंहिष्ठः) दातृतमः (वज्री) दण्डनायकः (यज्ञियः) यजनीयः स इन्द्रः (आ) सर्वतः (ववर्त्त) वर्त्तते (च) स च (नः) अस्माकम् (गीर्भिः) स्तुतिभिः (राये) धनाय (विश्वा) विश्वान् (सुपथा) शोभनान्पथो मार्गान् (कृणोतु) संपादयतु ॥

सत्रेति सत्यनाम निघं० ३। १०॥ ह्वः संप्रसारणम् ६।१।३२ अभ्यस्तस्य च ६। १। ३३ इति संप्रसारणे जोहवीमि ॥ ववर्तेति व्यत्ययेन ३। १। ८५ परस्मैपदम् ॥ ऋग्वेदे तु ८। ९७। १३ ववर्त्तद्राये इति पाठः ॥ ४ ॥ (४६०)

भाषार्थः-(मघवानम्) अत्यन्त धनवान् (उग्रम्) न दबने वाले (अप्रतिष्कुतम्) जिस के सम्मुख कोई बल न चला सके उस (सत्रा भूरि श्रवांसि) सच्चे बहुत यशों को (दधानम्) धारण किये हुवे (तम्) पूर्व मन्त्र में

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वर्णित (इन्द्रम्) परमेश्वर को (जोहवीमि) बारंबार पुकारता हूं। (मंहिष्ठः) अति दाता (वज्री) दण्डनायक (यष्टियः) पूजनीय वह परमेश्वर (आ) सब ओर (ववर्त्तत्) वर्त्तमान है (च) और (नः) हमारी (गीर्भिः) स्तुतियों से (राये) विद्यादि धनार्थ (विश्वा सुपथा) सब अच्छे मार्ग (कृणोतु) बनावे ॥

निघण्टु ३ । १० अष्टाध्यायी ६ । १ । ३२ ॥ ६ । १ । ३३ ॥ ३ । १ । ८५ के प्रमाण और ऋ० ८ । ९७ । १३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥ (४६०)

अथ पञ्चम्याः—पङ्क्तश्छेप ऋषिः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २
अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं वृणी-

३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
महे इन्द्रवायू वृणीमहे। यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा संदाय न-

२ २ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २२ ३ २ ३ १ २
व्यसे । अध प्र नूनमुपयन्ति धीतयो देवाँ अच्छ न धीतयः

॥ ५ ॥ (४६१)

पदपाठः—अस्तु क्रि० । श्रौषट्, पुरः अ० । अग्निम् २ । धिया ३ । दधे क्रि० । आ, नु अ० । त्यत्, शर्धः, दिव्यम् २ । वृणीमहे क्रि० । इन्द्रवायू २ । वृणीमहे क्रि० । यत्, ह अ० । क्राणा १ । विवस्वते ४ । नाभा ७ । संदाय अ० । नव्यसे ४ । अध, प्र, नूनम्, उप अ० । यन्ति क्रि० । धीतयः १ । देवान् २ । अच्छ, न अ० । धीतयः १ ॥

अन्वितपदार्थः—हे इन्द्र परमेश्वर! अहम् (धिया) प्रणयनादिकर्मणा प्रज्ञया वा (पुरः) संमुखवर्त्तिन्यामव्यवहितायामुत्तरवेद्याम्, वा साक्षात् (अग्निम्) आहवनीयाख्यं, परमेश्वरं वा (आदधे) आदधामि (त्यत्) तत् अग्न्याधानीयं, पारमेश्वरं वा (दिव्यम्) उत्तमम् (शर्धः) बलम् (वृणीमहे), आत्माभिप्रायेण बहुत्वम् (नु) शीघ्रम् (नाभा) वेदिनाभौ, नाभौ

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वा (नव्यसे विवस्वते) नूतनोदिताय सूर्य्याय, प्राणाय वा (संदाय) हव्यं दत्वा, संशोध्य वा (यत्) यदा (ह) प्रसिद्धौ (क्राणा) कर्म कुर्वाणौ (इन्द्रवायू) विद्युद्वायू, मनःप्राणौ वा (वृणीमहे)। तदा (अध) अनन्तरम् (धीतयः धीतयः) अस्मदङ्गुलयः, अस्मत्सर्वकर्माणि वा (देवान्) वाय्वादीन्, प्राणादीन्वा (अच्छ न) अभिव्याप्तुमिव (नूनम्) अवश्यम् (उप प्र यन्ति) प्राप्नुवन्ति । तदिदम् (श्रौषट्) श्रवणम् (अस्तु) भवतु ॥

ऋत्विक्शालायाः पश्चिमविभागे "प्राचीनवंश" नामयज्ञवेद्याः दक्षिणस्यां धनुषाकृतिर्यज्ञकुण्डः। तत्रस्थोऽग्निर्दक्षिणाग्निरुच्यते। उत्तरस्यां कुण्डो न भवति। पश्चिमायां वृत्ताकारो यज्ञकुण्डः। तत्रस्थोऽग्निर्गार्हपत्यसंज्ञः। पूर्वस्यां दिशि चतुरस्रः कुण्डः तत्रस्थोऽग्निराहवनीय इत्युच्यते। पूर्वस्यामेव चैकोऽपरः कुण्डो भवति—स हि उत्तरवेदी परवेदी वोच्यते। तस्या मध्यभूमिर्नाभिरुच्यते। तत्राध्वर्युप्रतीहारिणोः कार्यकलापा भवन्ति, न तु होतुर्होमसम्बन्धोऽग्निसम्बन्धो वा भवति। एवम् "पुरः" पदेन पूर्वीयाऽव्यवहितचतुरस्रवेद्या ग्रहणं कार्यम् ॥ धीरिति कर्मनाम निघं० २।१ ॥ शर्ध इति बलनाम २। ९ ॥ धीतय इति अङ्गुलिनाम २। ५॥ अङ्गुलयः कस्मादऽग्रगामिन्यो भवन्तीति वाग्रगालिन्योभवन्तीति वाऽग्रकारिण्यो भवन्तीति वाऽग्रसारिण्यो भवन्तीत्यादि० निरु० ३। ८ ॥ मन एवेन्द्रः। शतपथे १२। ९। १। १३ ॥ ऋग्वेदे तु १। १३९। १ तत्=त्यत्। विवस्वति=विवस्वते। संदायि=संदाय। नव्यसी=नव्यसे। नूनमुप=सून उप।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इत्यन्तरम् ॥ ५ ॥ (४६१)

भाषार्थः—हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (धिया) प्रणयनादि कर्म से, वा बुद्धि से (पुरः) सामने की व्यवधान रहित उत्तरवेदी में, वा साक्षात् (अग्निम्) आहवनीय नाम अग्नि, वा परमेश्वर को (आ दधे) मैं आधान करता, वा धारण करता हूं । (त्यत्) उस अग्न्याधानसम्बन्धी (दिव्यम्) उत्तम (शर्धः) बल को (वृणीमहे) हम वरते हैं । अपने अभिप्राय से बहुवचन है । (नु) शीघ्र (नाभा) वेदी की नाभि वा अपने नाभिचक्र में (नव्यसे विवस्वते) नये उदय हुए सूर्य, वा प्राण के लिये (संदाय) हव्य देकर, वा शुद्धि करके (यत्) जब (ह) प्रसिद्ध (क्राणा) काम करने वाले (इन्द्रवायू) बिजुली और वायु, वा मन और प्राण को (वृणीमहे) वरण करते हैं, तब (अध) इस के पश्चात् (धीतयः धीतयः) हमारी सब अङ्गुलियें, वा हमारे सब कर्म (देवान्) वायु आदि, वा प्राणादि देवतों को (अच्छ न) अग्निव्याप्त होने के समान (नूनम्) अवश्य (उप प्र यन्ति) प्राप्त होते हैं । सो यह (श्रौषट्) श्रवण (अस्तु) हो ॥

ऋत्विज् लोगों की शाला से पश्चिम की ओर "प्राचीनवंश" नामक यज्ञवेदी की दक्षिण दिशा में धनुष कार एक कुण्ड होता है, उसमें का अग्नि "दक्षिणाग्नि" कहाता है । उत्तर में कुण्ड नहीं होता । पश्चिम में गोलाकार कुण्ड होता है, उस में का अग्नि " गार्हपत्य " कहाता है। पूर्वदिशा में चौखूंटा कुण्ड होता है, उस में का अग्नि " आहवनीय " कहाता है। और पूर्वदिशा में ही पूर्वोक्त कुण्ड से आगे एक अन्य कुण्ड भी होता है उसे " उत्तरवेदी " वा "परली वेदी" कहते हैं। उस के मध्य की भूमि "नाभि" कहाती है । उस में अध्वर्यु और प्रतिहार के कर्म होते हैं। किन्तु होता का होम सम्बन्ध वा अग्निसंबन्ध उस से कुछ नहीं होता। इस प्रकार "पुरः" शब्द से पूर्व दिशा की पहली अव्यवहित चौखूंटी वेदी का ग्रहण है । निघण्टु २ । १ ॥ २ । ९ ॥ २ । ५ निरुक्त ३ । ८ शतपथ १२ । ९ । १ । १३ के प्रमाण और ऋ० १ । १३९ । १ के ५ पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (४६१)

अथ षष्ठ्याः—एवयामरुद्वृषिः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवया-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२ १ २२ ३ १ २२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
मरुत् । प्रशर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनि-
३ १ २
व्रताय शवसे ॥ ६ ॥ (४६२)

पदपाठः–प्र अ० । वः २ । महे ४ । मतयः १ । यन्तु क्रि० । विष्णवे, मरुत्वते ४ । गिरिजाः १ । एवयामरुत् सं० । प्र अ० । शर्धाय, प्रयज्यवे, सुखादये, तवसे, भन्ददिष्टये, धुनिव्रताय, शवसे ४ ॥

अन्वितपदार्थः–परमात्माऽऽशिषमाह–(एवयामरुत्) एवान् ज्ञानप्रदान् वेदान् याति स एवया एवयाश्वासौ मरुन्मनुष्यः एवयामरुत्। तत्संबुद्धौ हे एवयामरुत् ! (महे) महत्त्वलाभाय (मरुत्वते विष्णवे) ऋत्विग्वते यज्ञाय (प्र) प्रकृष्टाय (शर्धाय) बलाय (प्रयज्यवे) प्रयजन्ति येन तस्मै (सुखादये) सुखं यथा स्यात्तथाऽदनाय भोजनाय (तवसे) स्फूर्त्यै (भन्ददिष्टये) कल्याणसुखसंगतये (धुनिव्रताय) चलनकर्मणे (शवसे) मानसबलाय च (गिरिजाः) युष्माकं प्रार्थनावाचि जाताः (मतयः) बुद्धयः (वः) युष्मभ्यम् (प्र यन्तु) प्रकर्षेण प्राप्नुवन्तु ॥ ऋग्वेदे ५ । ८७ । १ ऽपि ॥६॥ (४६२)

भाषार्थः–परमात्मा आशीर्वाद देते हैं कि–(एवयामरुत्) हे ज्ञानप्रापक वेदों के जानने वाले मनुष्य ! (महे) बड़ाई के लिये, (मरुत्वते विष्णवे) ऋत्विजों वाले यज्ञ के लिये, (प्र) उत्तम (शर्धाय) बल के लिये, (प्रयज्यवे) जिस से यज्ञ करते हैं उस के लिये, (सुखादये) सुखपूर्वक भोग के लिये (तवसे) फुर्ती के लिये, (भन्ददिष्टये) कल्याण सुख संगति के लिये, (धुनिव्रताय) चलने फिरने के काम के लिये, (शवसे) और मानस बल के लिये; (गिरिजाः) तुम्हारी प्रार्थनावाणियों में उपजी (मतयः) बुद्धियें (वः) तुम्हें (प्र यन्तु) उच्च भाव से प्राप्त हों ॥ ऋ० ५ । ८७ । १ में भी ॥ ६ ॥ (४६२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ सप्तम्याः आनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः ॥

३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषाꣳसि तरति सयुग्वभिः

२ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ १ २र

सूरो न सयुग्वभिः । धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ॥

२ ३ २३ १ २३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥७॥ (४६३)

पदपाठः—अया, रुचा, हरिण्या ३ । पुनानः १ । विश्वा, द्वेषांसि २ । तरति क्रि० । सयुग्वभिः ३ । सूरः १ । न अ० । सयुग्वभिः ३ । धारा १ । पृष्ठस्य ६ । रोचते क्रि० । पुनानः, अरुषः, हरिः १ । विश्वा २ । यत् अ० । रूपा २ । परियासि क्रि० । ऋक्वभिः, सप्तास्येभिः, ऋक्वभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—पुनः परमात्मोपदिशति—हे मनुष्य ! (अया) अनया (हरिण्या) रसाहरणशीलया (रुचा) दीप्त्या (न) यथा (सूरः) सूर्यः (सयुग्वभिः) सह युक्तैः रश्मिभिः (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (द्वेषांसि) विरुद्धानि तमांसि (तरति) विनाशयति । तथैव (पुनानः) पूतात्मा मनुजः सर्वाणि द्वेषांसि द्वेषादीनि दुर्गुणजातानि (सयुग्वभिः) सहयुक्तैः प्रज्ञानैः तरति । (यत्) यथा च (अरुषः) रूपवान् (हरिः) सूर्यः (पृष्ठस्य धारा) सूर्यस्थस्य धरापृष्ठस्य धरातलस्य धारा ज्योतिर्धारा च (रोचते) प्रकाशते, (विश्वा रूपा) सर्वाणि रूपवन्ति वस्तूनि (सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः) सप्तवर्णमुखैस्तेजोभिः (परियासि) परियाति व्याप्नोति तथैव (पुनानः) पूतात्मा मनुष्योऽपि (ऋक्वभिः) स्तुतिभिः परितो विख्यातो भवति ॥

अरुषमिति रूपनाम निघं० ३ । ७ ॥ ऋग्वेदे तु ८ ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१११ । १ "स्वयुग्वभिः" इति "पृष्ठस्य=सुतस्य" इति "परियात्यृक्वभिः" इति च पाठभेदः ॥ ७ ॥ (४६३)

भाषार्थः—फिर परमात्मा का उपदेश है कि—हे मनुष्य ! (अया) इस (हरिण्या) रस खींचने वाली (रुचा) चमक से (न) जैसे (सूरः) सूर्य (सयुग्वभिः) साथ जुड़ी किरणों से (विश्वा) सब (द्वेषांसि) विरोधी अन्धकारों को (तरति) नष्ट करता है, ऐसे ही (पुनानः) पवित्रात्मा पुरुष सब "द्वेषांसि" द्वेषादि दुर्गुणों को (सयुग्वभिः) साथ जुड़े प्रज्ञानों से नष्ट करता है । (यत्) और जैसे (अरुषः) रूपवान् (हरिः) सूर्य और (पृष्ठस्य धारा) सूर्य के धरातल की ज्योतिरूप धारा (रोचते) चमकती है और (विश्वा रूपा) सब रूप वाली वस्तुओं को (सप्ताध्येभिः ऋक्वभिः) सात रङ्ग रूप मुख वाले तेजों से (परियासि) व्यापता है, ऐसे ही (पुनानः) पवित्रात्मा पुरुष भी (ऋक्वभिः) प्रशंसाओं की सर्वतोविख्याति से व्याप जाता है ॥

निघण्टु ३ । ७ का प्रमाण और ऋ० ८ । १११ । १ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ७ ॥ (४६३)

अथाष्टमी ऋचः—नकुलऋषिः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १
रत्नधामभिप्रियं मतिम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्स-

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥८॥ (४६४)

पदपाठः—अभि अ० । त्यम्, देवम्, सवितारम् २ । ओण्योः ६ । कविक्रतुम् २ । अर्चामि क्रि० । सत्यसवम्, रत्नधाम्, अभिप्रियम्, मतिम् २ । ऊर्ध्वा ३ । यस्य ६ । अमतिः १ । भा ३ । अदिद्युतत् क्रि० । सवीमनि ७ । हिरण्यपाणिः १ । अमिमीत क्रि० । सुक्रतुः १ । कृपा ३ । स्वः अ० ॥

अन्वितपदार्थः—मनुष्यः प्रतिवदति—हे पितः ! (त्यम्) तं त्वाम् (देवम्) सुखदातारम् (ओण्योः सवितारम्) द्यावापृथि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

द्योरुत्पादकम् (कविक्रतुम्) कविः सर्वज्ञा सकलविद्या क्रतुः प्रज्ञा यस्य तम् (सत्यसवम्) सत्यं सवऐश्वर्यं जगद्वा यस्य तम् (रत्नधाम्) रत्नानि रमणीयानि विज्ञानानि हीरकादीनि भुवनानि वा दधातीति तम् (अभिप्रियम्) अभितः प्रीणाति तम् (मतिम्) योविद्वद्भिर्मन्यते तम् (कविम्) वेदविद्याया उपदेष्टारम् (अभि) सर्वतः (अर्चामि) पूजयामि (यस्य) यस्य तव (ऊर्ध्वा) ऊर्ध्वया (भा) भया दीप्त्या (अमतिः) मतिरहिता जडा प्रधानाख्या प्रकृतिः (सवीमनि) प्रसवे सति (अदिद्युतत्) प्रकाशते (हिरण्यपाणिः) तेजोमयः स भवान् (सुक्रतुः) सुकर्मा (कृपा) स्वसामर्थ्येन (स्वः) सूर्यं तदुपलक्षितानन्यलोकांश्च (अमिमीत) निर्मिमीते ॥

ओएयोरिति द्यावापृथिवीनाम निघं० ३। ३० ॥ कविः क्रान्तदर्शनो भवति, कवतेर्वा। निरु० १२। १३॥ सवीमनि प्रसवे। निरु० ६। ७॥ सविता सर्वस्य प्रसविता। निरु० १०। ३१ ॥ स्वरादित्यो भवति स एतानि सारयति। निरु० ५। ४॥ ज्योतिर्हिरण्यम्० शतपथे ४। ३। ४। २१॥ यजुर्वेदे ४। २५ ऽपि। अथर्ववेदे ११। ४। २ ऽपि च ॥ ८ ॥ (४६४)

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के प्रति निवेदन करता है कि—हे पितः! (त्यम्) उन आप (देवम्) सुखदायक (ओएयोः सवितारम्) द्यु और पृथिवी के उत्पादक (कविक्रतुम्) सर्वज्ञ बुद्धि वाले (सत्यसवम्) सच्चे ऐश्वर्य वा सृष्टि वाले (रत्नधाम्) रमणीय प्रज्ञान वा हीरे आदि वा लोकों के धारक (अभि प्रियम्) सब ओर से प्यारे (मतिम्) विद्वानों के माननीय (कविम्) वेदविद्या के उपदेष्टा को (अभि अर्चामि) सर्वतः पूजता हूं। (यस्य) जिस आप की (ऊर्ध्वा भा) उच्च दीप्ति से (अमतिः) जड़ प्रकृति (सवीमनि) उत्पत्ति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

समय पर (अदिद्युतत्) प्रकाशित हो जाती है । (हिरण्यपाणिः) वह तेज-स्वरूप (सुक्रतुः) सुकर्मा आप (कृपा) अपने सामर्थ्य से (स्वः) सूर्य और तदुपलक्षित अन्य लोकों को (अमिमीत) रचते हैं ॥

निघण्टु ३ । ३० ॥ निरुक्त १२ । १३ ॥ ६ । ७ ॥ १० । ३१ ॥ ५ । ४ ॥ शतपथ ४ । ३ । ४ । २१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ यजुः ४ । २५ और अथर्व ११ । ४ । २ में भी ॥ ८ ॥ (४६४)

अथ नवम्याः—परुच्छेप ऋषिः ॥

३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ २
अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुꣳ सहसो जात-
२३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २ ३२ ३ १ २
वेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या
३ २ ३२३ १ २ ३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः
॥ ९ ॥ (४६५)

पदपाठः—अग्निम्, होतारम् २ । मन्ये क्रि० । दास्वन्तम् २ । वसोः ६ । सूनुम् २ । सहसः ६ । जातवेदसम्, विप्रम् २ । न अ० । जातवेदसम् २ । यः १ । ऊर्ध्वया १ । स्वध्वरः, देवः १ । देवाच्या, कृपा ३ । घृतस्य ६ । विभ्राष्टिम् २ । अनु अ० । शुक्रशोचिषः, आजुह्वानस्य, सर्पिषः ६ ॥

अन्वितपदार्थः—पूर्वमन्त्रे ज्ञानकाण्डं प्रतिज्ञातम् । इदानीं कर्मकाण्डं प्रतिजानीते । हे इन्द्र ! परमेश्वर ! अहम् (अग्निम्) (होतारम्) होमनिष्पादकम् (वसोः दास्वन्तम्) स्वविज्ञानवद्भ्यो धनस्य दातारम् (सहसः सूनुम्) बलस्य पुत्रं, बलेन मथ्यमानारण्योर्जायमानत्वात् (जातवेदसम्) जातं वेदः प्रज्ञानं येन तम् (मन्ये) जानामि । दृष्टान्तः—(न) यथा (जातवेदसम् विप्रम्) जातं प्रज्ञानं यस्य तम् मेधाविनम् मन्यन्ते तद्वत् । (यः) अग्निः (देवः) प्रकाशमानः (स्वध्वरः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सुयज्ञः (देवाच्या) देवान्वाय्वादीनञ्चन्त्या (कृपा) सामर्थ्यलक्षणया कृपया (आजुह्वानस्य) आसमन्ताद्ध्रूयमानस्य (सर्पिषः) सरणशीलस्य द्रवीभूतस्य (शुक्रशोचिषः) शुक्रदीप्तेः (घृतस्य) गव्यादेः (विभ्राष्टिम्) विभ्राजम् (अनु) अनुसृत्य (ऊर्ध्वया) ऊर्ध्वयाः ऊर्ध्वं याति सः ॥

अत्र सायणभाष्ये "वष्टि" इत्यमूलं व्याख्यातं दृश्यते। तच्च ऋग्वेदस्थपाठमूलकमनुमीयते ॥ दासतीति दानकर्मा निघं० ३। २० तस्यैव दास्वन्तमिति रूपम् ॥ सह इति बलनाम २। ९ ॥ जातवेदाः कस्माज्जातानि वेद, जातानि वैनं विदुः, जाते जाते विद्यत इति वा, जातवित्तो वा, जातधनो वा, जातविद्यो वा० इत्यादि निरु० ७। १९ ॥ कृप् कृपतेर्वा कल्पतेर्वा। निरु०६। ८॥ सृप्रः सर्पणादिदमपीतरत्सृप्रम्, एतस्मादेव सर्पिर्वा० निरु० ६। १७ ॥ ऋग्वेदे तु १। १२७। १ वसोः=वसुम्। विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा जुह्वानस्य। इति चान्तरम् ॥ ९ ॥ (४६५)

भाषार्थः-पूर्वमन्त्र में ज्ञानकाण्ड की प्रतिज्ञा की, अब कर्मकाण्ड की प्रतिज्ञा करता है कि-हे इन्द्र ! परमेश्वर ! मैं (अग्निम्) अग्नि को (होतारम्) होमसाधक (वसोः दास्वन्तम्) धन का दाता [अपने विषय के विज्ञान वालों को] (सहसः सूनुम्) [बल करके अरणियों में से अग्नि उत्पन्न होता है इस कारण] बल के पुत्र (जातवेदसम्) जिस के प्रकाश से ज्ञान प्रकट होता है ऐसा (मन्ये) मानता हूं ॥ दृष्टान्त-(न) जैसे (जातवेदसं विप्रम्) विद्या जिससे उत्पन्न है उस विद्वान् को ॥ (यः) जो (देवः) प्रकाशमान (स्वध्वरः) यज्ञ का सुधारने वाला अग्नि (देवाच्या) वायु आदि देवतों को जाने वाली (कृपा) सामर्थ्य से (आजुह्वानस्य) हवन किये जाते हुवे (सर्पिषः) ताये हुवे (शुक्रशोचिषः) श्वेतवर्ण (घृतस्य) घी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

की (विभ्राष्टिम् अनु) चमक के साथ (ऊर्ध्वया) ऊपर जाता है ॥

सायण के भाष्य में " वष्टि " पद की व्याख्या है परन्तु यह पद मूल में नहीं है। हां, ऋग्वेद १ । १२७ । १ में " वमो " की जगह " वसुम् " और विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा जुह्वानस्य" पाठ है। उसी की भ्रान्ति से यह सायण भाष्य की भूल का अनुमान होता है। निघण्टु ३ । २० ॥ २ । ९ ॥ निरुक्त ७ । १९ ॥ ६ । ८ ॥ ६ । १७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (४६५)

अथ दशम्याः—गृत्समद ऋषिः ॥

२३ १ २२३१ २ ३२३ २३ २३१२३२
तव त्यन्नर्यं नृतो ऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्।
२ ३२३ १२३ १२३ १२३ २३२ २३ १२३
यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः। भुवो विश्वम-
१२३१२ ३१ २२ ३१२ ३१ २२
भ्यदेवमोजसा विदेदूर्जꣳ शततुक्रुर्विदेदिषम् ॥ १० ॥ (४६६)
इति द्वादशी दशतिः ॥ १२ ॥

पदपाठः—तव ६ । त्यत, नर्यम् १ । नृतः सं० । अपः १ । इन्द्र सं० । प्रथमम्, पूर्व्यम् १ । दिवि ७ । प्रवाच्यम्, कृतम् १ । यः १ । देवस्य ६ । शवसा ३ । प्रारिणाः क्रि० । असु २ । रिणन् १ । अपः २ । भुवः क्रि० । विश्वम् २ । अभि अ० । अदेवम् २ । ओजसा ३ । विदेत् क्रि० । ऊर्जम् २ । शतक्रतुः १ । विदेत् क्रि० । इषम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—इदानीं भगवद्भक्तो भागवतस्य बलस्य महिमानमाह—(नृतः) हे सूर्य्यादीनां नर्त्तयितः ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (तव) (त्यत्) तत् (नर्यम्) नृभ्यो हितम् (दिवि प्रथमम्) गगनमण्डले विस्तृतम् (पूर्व्यम्) सनातनम् (कृतम्) सम्पन्नं (प्रवाच्यम्) प्रशंसनीयम् (अपः) कर्माऽस्ति । यत्—(यः) भवदुपासकः (देवस्य) श्रीमतः (शवसा)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बलेन (असु) असून्प्राणान् (रिणन्) सम्प्राप्नुवन् सन् (अपः) कर्माणि (प्रारिणाः) प्रारभेत [सः] (शतक्रतुः) बहुकर्मा (विश्वम्) सर्वम् (अदेवम्) देवविरुद्धमसुरादिकम् (ओजसा) पराक्रमेण (अभि भुवः) अभि भवेत् (ऊर्जम्) पराक्रमम् (विदेत्) प्राप्नुयात् (इषम्) अन्नादिकं च (विदेत्) प्राप्नुयात् ॥

अत्रापि सायणाचार्येण ऋग्वेदस्थस्य २ । २२ । ४ "भुवत्" इत्यस्यैव व्याख्यानं कृतं दृश्यते, न तु सामवेद पठितस्य "भुव." इत्यस्य । यः=यत् । असु=असुम् । भुवः=भुवत् । विदेत्=विदात् । इति च ऋक्पाठान्तरम् ॥१०॥ (४६६)

* इति चतुर्थाऽध्याये द्वादशी दशतिः ॥ १२ *

इति

श्रीमत्कण्ववंशाऽवतंस-पण्डित हज़ारीलालस्वामिसूनुना,
हस्तिनापुरपार्श्ववर्त्ति-परीक्षितगढ़-निवासिना,
तुलसीराम स्वामिना, कृते सामवेद छन्दआर्चिकभाष्ये
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

भाषार्थः-अब ईश्वरभक्त ईश्वरीय बल की महिमा कहता है-(नृतः) हे सूर्यादि को नचाने वाले ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (तव) आप का (त्यत्) वह (नर्यम्) मनुष्यहितकारी (दिवि प्रथनम्) आकाश में विस्तृत (पूर्व्यम्) सनातन (कृत्नम्) किया हुवा (प्रवाच्यम्) प्रशंसनीय (अपः) कर्म है कि- (यः) जो कोई ईश्वरोपासक (देवस्य शवसा) आप के बल से (असु रिणन्) जीवता हुवा (अपः) कर्मों का (प्रारिणाः) प्रारम्भ करे तो वह (शतक्रतुः) बहुकर्मा (विश्वम् अदेवम्) सब देवविरोधिमात्र का (ओजसा) पुरुषार्थ

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

से (अभि भुवः) तिरस्कार करे और (ऊर्जम्) पराक्रम को (विदेत्) पावे तथा (इषम्) अन्नादि सब सामग्री को (विदेत्) पावे ॥

इस में सायणाचार्य ने सामवेद के पाठ (भुवः) का व्याख्यान न करके ऋग्वेद २ । २२ । ४ के पाठ (भुवत) की व्याख्या की है ॥ ऋ० में-यः=यत् । अभु=अभुम् । विदेत्=विदात् ये भी पाठान्तर हैं ॥ १० ॥ (४६६)

* यह चतुर्थोऽध्याय में बारवीं दशति समाप्त हुई ॥ १२ ॥ *

तथा

कण्ववंशाऽवतंस श्रीमान् पं० स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र,
परीक्षितगढ़ (ज़िला मेरठ) निवासी,
तुलसीराम स्वामिकृत सामवेद छन्दआर्चिक भाष्य में यह
चतुर्थ अध्याय समाप्त हुवा ॥ ४ ॥

—○:०:○—

समाप्तं चैन्द्रं पर्व काण्डं वा ॥ २ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओ३म्

अथ पञ्चमाऽध्यायः

गतमाग्नेयमैन्द्रं च पर्व । इदानीं पावमानं सौम्यं वा पर्व काण्डं वाऽऽरभ्यते। तस्मात्तावत्पवमानपदवाच्यविचारः सोमपदवाच्यविचारो वा कर्त्तव्यः । पवमानसोमेन्द्राग्नि प्रभृतिसर्वपदानां मुख्यो वाच्यस्तु परमेश्वर एव, तत्रैवाऽसीम भावेन तत्तदर्थस्य संघटितत्वात् । इति तु बहुशः पूर्वं निवेदितमेवाऽस्माभिः । अथाधिदैविकार्थविचारः क्रियते । निघण्टुचतुर्थपञ्चमाध्यायस्थपदेषु पवमानपदं न दृश्यते, किन्तु सोमपदं तु पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमखण्डे द्वितीयं नैघण्टुकं विद्यते । वर्ण्यते च भगवता यास्केन पवमानस्य सोमाऽपरपर्यायत्वम् । तदवगमाय निरुक्तपाठमुद्धरामः—

"ओषधिः सोमः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति। बहुलमस्य नैघण्टुकं वृत्तमाश्वर्यमिव प्राधान्येन । तस्य पावमानीषु निदर्शनायोदाहरिष्यामः ॥ २ ॥

(ऋ० ९ । १ । १) स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः ॥ सामवेदेऽपि छ० आ० अ० ५ खं० १ मं० २ इति सा निगदव्याख्याता । अथैषापरा भवति चन्द्रमसो वैतस्य वा ॥ ३ ॥

सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिम्। सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥ ऋ० १० । ८५ । ३ ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिमिति कृथासुत मसोममाह। सोमं यं ब्रह्माणो विदुरिति न तस्याश्नाति कश्चनाऽयज्वेत्यधियज्ञम्। अथाधिदैवतं—सोमं मन्यते पपिवान्यत्सं पिंषन्त्योषधिमिति यजुः सुतमसोममाह। सोमं यं ब्रह्माणो विदुश्चन्द्रमसं न तस्याश्नाति कश्चनाऽदेव इति। अथैषापरा भवति चन्द्रमसो वैतस्य वा ॥ ४ ॥

यत्त्वा देव प्रविबन्ति तत आप्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ऋ० १०।८५।५

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनरिति नाराशंसानभिप्रेत्य पूर्वपक्षाऽपरपक्षाविति वा। वायुः सोमस्य रक्षिता वायुमस्य रक्षितारमाह साहचर्याद्रसहरणाद्वा। समानां संवत्सराणां मास आकृतिः। सोमो रूपविशेषैरोषधिश्चन्द्रमा वा।" निरु० ११। २–५ ॥

तदेवं निरुक्तकृता सोमशब्देनोषधिविशेषो ह्याश्वर्यस्वरूपो गृह्यते। अथ पावमानीषु उदाहरिष्याम इति प्रतिज्ञया पवमानोऽपि सोम एवेति सूच्यते। चद्रमसोऽपि च सोम इति नामोच्यते। सोमपदेन मासस्याऽपि च ग्रहणं सूचितम्। यौगिकार्थपरत्वाच्च यत्र यत्र सोमपवमानपदयोरर्थसंगतिस्तत्र तत्र तत्तद्व्याख्यास्यामः। सन्ति च शतपथब्राह्मणे सोमशब्दस्य बहवोऽर्थाः। यथा—सोमो वै राजा यज्ञः प्रजापतिः। तस्यैतास्तन्वो या एता देवता या एता आहुतीर्जुहोति। श० १२। ६। १। १ सोमाहुतयो ह वा एता देवानां यत्सा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मानि । श० ११ । ५ । ६ । ६ प्राणो वै सोमः । श० ७ । ३ । १ । ४५ ज्योतिः सोमः । श० ५ । १ । ५ । २८ ॥

एवमत्र काण्डे प्राधान्येन वर्ण्यमानस्य सोमस्य पवमानस्य वा तत्र तत्र संभावितार्थग्रहणं सुकरम् ॥

भाषार्थः—आग्नेय और ऐन्द्र नाम के दो पर्व वा काण्ड पूर्ण होकर अब पञ्चमाध्याय के साथ पावमान वा सौम्य पर्व का आरम्भ है । इसलिये प्रथम पवमान वा सोम शब्द के अर्थ का विचार करना चाहिये । पवमान सोम इन्द्र अग्नि आदि पदों का यद्यपि मुख्य और पूर्ण अर्थ तो परमेश्वर ही है क्योंकि असीम भाव से उन २ पदों के अर्थ की संभावना परमात्मा में ही है, यह बात हम कई बार प्रथम निवेदित कर चुके हैं परन्तु तो भी आधिदैविक अर्थ का विचार शेष है सो किया जाता है । निघण्टु के चतुर्थ पञ्चम अध्यायों में जो पद नाम हैं उन में पवमान पद नहीं देखा जाता, परन्तु "सोम" निघण्टु अध्याय ५ खण्ड ५ में दूसरा पद है । और श्रीमान् यास्कमुनि ने सोम और पवमान को एकार्थ भी बतलाया है । इन सब के जानने के लिये हम निरुक्त का पाठ उद्धृत करते हैं:—

"सोम एक ओषधि है और यह सोम शब्द सुनोति धातु से बना है जो कि यह ओषधि भी निचोड़ी वा अर्क खींची जाती है । निघण्टु के अनुसार इस का बड़ा व्याख्यान है । जो आश्चर्य सा है । प्रधानता से पवमानदेवता वाली ऋचाओं में [नमूना] निदर्शनार्थ उदाहरण देंगे ॥ २ ॥

ऋ० ९ । १ । १—स्वादिष्ठया मदिष्ठया० सामवेदेऽपि छ० अ० ५ । द० १ । मं० २

यह सोम विषयक ऋचा निगद में व्याख्यात हो चुकी है । अब यह दूसरी ऋचा है जो इस सोम की वा चन्द्रमा की है ॥ ३ ॥

सोमं मन्यते पपिवान्० ऋ० १० । ८५ । ३

" सोमं०-वधिम् " इतने भाग से यह वर्णन किया है कि असोम को सोम समझ अभिषुत कर लिया हो ॥ "सोमं०-विदुः" इस भाग में यह कहा है कि जो ठीक सोम है उसे पूर्ण विद्वान् जानते हैं और यज्ञ न करने वाला

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उसे नहीं खाता। यह यज्ञविषयक अर्थ हुआ। अब देवताविषयक अर्थ करते हैं-"सोमं०-वधिम्" इतने ऋग्भाग में अन्नौषधि को सोम समझने की भूमि कही है। "सोमं०-विदुः" में चन्द्रमा को सोम कहा है, उसे कोई नहीं खाता, जो अदेव है। अब एक और ऋचा है जो चन्द्रमा की वा इस सोम की है॥४॥

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति० ऋ० १०। ८५। ५

इस ऋचा के पूर्वार्ध में नाराशंसों का अभिप्राय है वा महीने के शुक्ल कृष्ण दो पक्षों का। उत्तरार्ध में वायु को सोम का रक्षक कहा है वाहवर्य से वा रस हरने से। संवत्सरों की आकृति मास है। इस से सोम को या तो रूप विशेषों से ओषधि समझना चाहिये वा चन्द्रमा" ॥ निरुक्त ११। २-५॥

इस प्रकार सोम शब्द से निरुक्तकार ने आश्चर्यगुणयुक्त सोमौषधि का ग्रहण किया है। और "पवमान देवतावाली ऋचाओं में निदर्शनार्थ उदाहरण देंगे" इस से आचार्य ने सोम और पवमान को एकार्थ ठहराया है और चन्द्रमा का नाम भी सोम बतलाया है। तथा सोम पद से महीने का अर्थ भी लिया है। और वेद के अर्थ में यौगिकार्थ की प्रधानता के कारण जिस २ मन्त्र में आये सोम वा पवमान शब्दों का जो २ अर्थ ठीक घटेगा, वह २ किया जायगा। शतपथ ब्राह्मण में भी सोम शब्द के कई एक अर्थ पाये जाते हैं जैसा कि श० १२। ६। १। १ में यज्ञ का नाम सोम है और उस के अङ्ग ये देवता अर्थात् आहुतियें हैं॥ और श० ११। ५। ६। ६ में साम ही सोमाहुति हैं देवतों की॥ तथा श० ७। ३। १। ४५ में प्राण का नाम सोम है। और श० ५। १। ५। २८ में ज्योति को सोम कहा है॥

अथ पञ्चमाध्याये प्रथमा दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-अमहीयुर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे।

१ २उ ३ २ ३ १ २

उग्रꣳ शर्म महि श्रवः॥ १॥ (४६७)

पदपाठः-उच्चा अ०। ते ६। जातम् १। अन्धसः ५। दिवि ७। सत् २। भूमिः १। आददे क्रि०। उग्रम्, शर्म, महि, श्रवः २॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—अग्रिममन्त्रे स्पष्टमुपादीयमानसोमपदानुवृत्तेः—सोम! (ते) तव (अन्धसः) भोजनात् (जातम्) उत्पन्नम् (उग्रम्) प्रभावशालि (शर्म) सुखम् (महि) महत् (श्रवः) यशश्च (दिवि) स्वर्गे सुखस्थाने (सत्) विद्यमानम् (भूमिः) भूमिस्थः पुरुषः (आददे) आदत्ते ॥

अयं भावः—भूमिस्था ये जनाः सोमरसं भुञ्जते ते तज्जन्यं महत्सुखं यशश्चाददते ॥ सोमो हि दुग्धवर्णरसयुक्तलताभ्यो जातो द्रवपदार्थः। यथोक्तमृग्वेदे ९।१०७। ९ सोमो दुग्धाभिरक्षाः। सोमो दुग्धाभ्यः क्षरतीति च तन्निरुक्तभाष्यम् ५।३ ॥ ऋग्वेदे ९।६१।१० ऽपि ॥ १ ॥ (४६७)

भाषार्थः—अगले मन्त्र में स्पष्ट सोम पद के ग्रहण को देखकर प्रकरण से हे सोम! (ते) तेरे (अन्धसः) अन्न-भोजन से (जातम्) उत्पन्न (उग्रम्) प्रभावशाली (शर्म) सुख को और (महि) बड़े (श्रवः) यश को (दिवि) स्वर्ग=सुखस्थान में (सत्) विद्यमान को (भूमिः) भूमिस्थ पुरुष (आददे) ग्रहण करता है ॥

भाव यह है कि—पृथिवी के वे मनुष्य जो सोमरस का भोग लगाते हैं, वे उस से उत्पन्न हुवे बड़े सुख और यश को प्राप्त होते हैं। सोमरस, दुग्ध के समान श्वेत रङ्ग वाली लताओं से निकलता है। यह बात ऋग्वेद ९।१०७।९ में (सोमो दुग्धा०) लिखी है ॥ ऋ० ९।६१।१० में भी ॥ १ ॥ (४६७)

अथ द्वितीयायाः—मधुच्छन्दा ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।

१ २ ३ १ २ ३ १

इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥ (४६८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-स्वादिष्ठया, मदिष्ठया ३। पवस्व क्रि०। सोम सं०। धारया ३। इन्द्राय ४। पातवे अ०। सुतः १॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) सोम ! (इन्द्राय) राज्ञे देवाय वा (पातवे) पातुम् (सुतः) अभिषुतः (स्वादिष्ठया) स्वादुतमया (मदिष्ठया) अतिशयितहर्षयित्र्या (धारया), (पवस्व) प्राप्नुहि॥

मनुष्यैरिन्द्राय विद्युते वृष्टिकर्त्रे होमाय वा राज्ञे सोमस्तथाभिषोतव्यो यथा स्वादिष्ठया मदिष्ठया च धारया सुसंपन्नः स्यात्॥ ऋग्वेदे ९। १। १ऽपि॥ २॥ (४६८)

भाषार्थः-(सोम) सोम ! (इन्द्राय) विद्युत् वा राजा के लिये (पातवे) चूंपने वा पीने के लिये (सुतः) संपन्न किया हुवा (स्वादिष्ठया) स्वादिष्ठ और (मदिष्ठया) अति हर्षकारक (धारया) धारा से (पवस्व) प्राप्त हो॥

अर्थात् मनुष्यों को इन्द्रयागार्थ वा राजार्थ ऐसा सोम खींचना चाहिये जो अतिहर्षकारक और स्वादिष्ठ धार वाला हो॥

ऋ० ९। १। १ में भी॥ २॥ (४६८)

अथ तृतीयायाः-भृगुर्वारुणिर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः।

२ ३ १ २ ३ १ २

विश्वा दधान ओजसा॥ ३॥ (४६९)

पदपाठः- वृषा १। पवस्व क्रि०। धारया ३। मरुत्वते ४। च अ०। मत्सरः १। विश्वा २। दधानः १। ओजसा ३॥

अन्वितपदार्थः-हे सोम ! (ओजसा) बलेन सह (विश्वा) विश्वानि स्फूर्त्यादीनि गुणजातानि (दधानः) धारयन् (च) तथा (मत्सरः) हर्षकरः (वृषा) वीर्योद्रेककरः (मरुत्वते)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इन्द्राय (धारया), (पवस्व) प्राप्नुहि ॥

ऋग्वेदे ९ । ६५ । १० ऽपि ॥ ३ ॥ (४६९)

भाषार्थः—(ओजसा) बल सहित (विश्वा) सब गुणों को (दधानः) धारण किये हुवे (च) और (मत्सरः) हर्षकारक (वृषा) वीर्यवृद्धिकारक सोम ! (इन्द्राय) इन्द्र के लिये (धारया) धार से (पवस्व) प्राप्त हो ॥

ऋ० ९ । ६५ । १० में भी ॥ ३ ॥ (४६९)

अथ चतुर्ऋचस्य—अगहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २ १ १२ ३ १ २ ३ १ २

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।

३ १ २ ३ २

देवावीरघशंसहा ॥ ४ ॥ (४७०)

पदपाठः—यः १ । ते ६ । मदः, वरेण्यः १ । तेन ३ । पवस्व क्रि० । अन्धसा ३ । देवावीः, अघशंसहा १ ॥

अन्वितपदार्थः—हे सोम ! (यः), (ते) तव (वरेण्यः) सर्वैर्वरणीयः (देवावीः) देवानां रक्षणसाधनीभूतः (अघशंसहा) अघशंसानां पापिनां हननसाधनीभूतश्च (मदः) हर्षः (तेन) (अन्धसा) आदरणीयेनाऽन्नेन (पवस्व) प्राप्नुहि ॥

सोममदेन हि देवानां रक्षाऽसुराणां नाशश्च भवति, अतः स सर्वैर्वरणीयो भवति॥ ऋग्वेदे ९। ६१ । १९ ऽपि ॥४॥ (४७०)

भाषार्थः—हे सोम ! (यः) जो (ते) तेरा (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (देवावीः) देवों का रक्षक और (अघशंसहा) असुरों का नाशक (मदः) हर्षकर प्रभाव है (तेन) उस (अन्धसा) आदरयोग्य अन्न से (पवस्व) प्राप्त हो ॥

सोमरस में ऐसा मद=हर्ष है कि जिस से सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों का तिरस्कार होता है, इस से वह सब को स्वीकार करना चाहिये ॥

ऋ० ९ । ६१ । १९ में भी ॥ ४ ॥ (४७०)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ पञ्चम्याः—त्रित ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तिस्रोवाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।

१ २ ३ १ २

हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥ (४७१)

पदपाठः—तिस्रः, वाचः २। उदीरते क्रि०। गावः १। मिमन्ति क्रि०। धेनवः १। हरिः १। एति, कनिक्रदत् क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—सोमयज्ञं वर्णयति—(तिस्रः) ऋग्यजुःसामलक्षणाः (वाचः), (उदीरते) ऋत्विज उच्चारयन्ति (धेनवः) दोग्ध्र्यः (गावः), (मिमन्ति) [दोहार्थम्] शब्दं कुर्वन्ति (हरिः) सोमश्च (कनिक्रदत्) जलमयत्वादग्नौ चिटचिटाशब्दं कुर्वन् निरन्तरम् (एति) गच्छति। सोमधाराऽग्नौ पतति इत्यभिप्रायः॥ गोशब्दकरणेन गवां दोहकालोऽपि सूचितो बोध्यः॥

मा शब्दे जुहोत्यादिः ततो मिमन्ति॥ कनिक्रददिति—चुरादेः क्रन्देः—दाधर्त्तिदर्धर्त्तिदर्धर्षीत्यादिना (७। ४। ६५) निपातनात्॥ ऋग्वेदे १। ३३। ४ऽपि॥ ५॥ (४७१)

भाषार्थः—सोम के यज्ञ का वर्णन करता है—(तिस्रः) ऋग्, यजुः और साम तीन लक्षणयुक्त (वाचः) वाणियों को (उदीरते) ऋत्विज् लोग उच्चारते हैं और (धेनवः गावः) दुधार गौवें (मिमन्ति) [दुहने को] पुकारती हैं तथा (हरिः) सोम (कनिक्रदत्) अग्नि में गिरते हुवे निरन्तर जलमय होने से चिटचिटा शब्द करता हुवा (एति) जाता है॥

अर्थात् सोमरस की धार चिटचिटाती अग्नि में पड़ती है, ऋत्विज् लोग तीनों प्रकार की ऋचाओं का पाठ करते हैं और प्रातः गोदोहनकाल होता है, यह भी सूचित किया है॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अष्टाध्यायी ७ । ४ । ६५ धातुपाठादि प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ।। ऋ० ९ । ३३ । ४ में भी ॥ ५ ॥ (४७१)

अथ षष्ठ्याः—कश्यप ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ (४७२)

पदपाठः—इन्द्राय ४ । इन्दो सं० । मरुत्वते ४ । पवस्व क्रि० । मधुमत्तमः १ । अर्कस्य ६ । योनिम् २ । आसदम् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्दो) हे सोम ! (मधुमत्तमः) अतिशयेन मधुमान् (मरुत्वते) वायुयुक्ताय (इन्द्राय) विद्युते (पवस्व) गच्छ (अर्कस्य) अर्चनीयस्य यज्ञस्य (योनिम्) स्थानं वेदिम् (आसदम्) आतिष्ठामि ॥

वेदाः पार्श्वे उपविश्य मधुमत्तमसोमाहुतयो होतव्या इति भावः ॥ पवस्वेति पवतेर्गतिकर्मणः । निघं० २ । १४ ॥ ऋग्वेदे ९ । ६४ । २२ ऽपि ॥ ६ ॥ (४७२)

भाषार्थः—(इन्दो) सोम ! (मधुमत्तमः) अतिमाधुर्ययुक्त (मरुत्वते इन्द्राय) वायुयुक्त मेघस्थ विद्युत् को (पवस्व) प्राप्त हो (अर्कस्य) यज्ञ की (योनिम्) वेदि को (आसदम्) समीप करके बैठता हूं ॥

अर्थात् वेदि के समीप बैठकर अति मधुर रसयुक्त सोम की आहुतियें दी जाती हैं ॥ निघण्टु २ । १४ में "पवते" यह गत्यर्थक धातु का प्रयोग है ॥

ऋ० ९ । ६४ । २२ में भी ॥ ६ ॥ (४७२)

अथ सप्तम्याः—जमदग्निर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षोरिष्ठाः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ २७ ३ २ १

श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥ (४७३)

पदपाठः-असावि क्रि० । अंशुः १ । मदाय ४ । अप्सु ७ । दक्षः, गिरिष्ठाः, श्येनः १ । न अ० । योनिम् २ । आऽसदत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(मदाय) हर्षाय वृद्धये (अंशुः) सोमः (असावि) अभिषुतो भवति (गिरिष्ठाः) पर्वते जातः, हुतो-मेघस्थो वा (अप्सु) आन्तरिक्ष्यासु (दक्षः) बलवान्प्रवृद्धश्च भवति । सोयं सोमः (श्येनो न) विद्युदिव (योनिम्) कारणम् (आसदत्) अभिगच्छति ॥

सोमः शीतप्रधानेषु पर्वतेषु जायते, वैद्युतबलविशिष्ट-त्वेन तस्य कारणं विद्युत् कथ्यते, हूयमानश्च सः स्वकीयं कारणमापद्यमानः पुनर्वृद्धिं गतो मेघद्वारा पर्वतेषु जायते इत्यभिप्रायः ॥

श्येनास इति अश्वनाम । निघं० १ । १४ विद्युच्चाऽश्वपर्यायः ॥ ऋग्वेदे ९ । ६२ । ४ ऽपि ॥ ७ ॥ (४७३)

भाषार्थः-(मदाय) हर्ष=वृद्धि के लिये (अंशुः) सोम (असावि) खींचा जाता है (गिरिष्ठाः) पर्वत पर उत्पन्न होता, वा मेघमण्डल में स्थित हुवा (अप्सु) अन्तरिक्षजल में (दक्षः) बलिष्ठ होता और बढ़ता है । यह सोम (श्येनो न) बिजुली के समान (योनिम्) अपने कारण को (आसदत्) प्राप्त होजाता है ॥

सोम शीतप्रधान देशों वा पर्वतों में उत्पन्न होता है, विद्युत् के बल विशिष्ट होने से विद्युत् उस का कारण कहा जाता है। वह हवन किया हुवा अपने कारण विद्युत् और मेघ द्वारा पुनः पर्वतादि जन्मभूमियों को पहुंच जाता है ॥

निघण्टु १ । १४ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ६२ । ४ में भी ॥ ७ ॥ (४७३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथाऽष्टम्याः-दूढ्यच्युत आगस्त्य ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥ (४७४)

पदपाठः-पवस्व क्रि० । दक्षसाधनः १ । देवेभ्यः ४ । पीतये ४ । हरे सं० । मरुद्भ्यः ४ । वायवे ४ । मदः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(हरे) हे सोम ! (दक्षसाधनः) बलसाधकः (मदः) हर्षकरः (मरुद्भ्यः) ऋत्विग्भ्यः (वायवे), (देवेभ्यः) अन्यदेव्यावहारिकदेवेभ्यः (पीतये) पानाय (पवस्व) प्राप्नुहि ॥

दक्ष इति बलनाम निघं० २ । ९ ॥ ऋग्वेदे १ । २५ । १ ऽपि ॥ ८ ॥ (४७४)

भाषार्थः-(हरे) सोम ! (दक्षसाधनः) बलसाधक (मदः) हर्षकारक (मरुद्भ्यः) ऋत्विजों के लिये (वायवे) वायु तथा (देवेभ्यः) अन्य व्यावहारिक देवतों के लिये (पवस्व) प्राप्त हो ॥

निघण्टु २ । ९ में " दक्ष " बल का नाम है ॥ ऋ० ९ । २५ । १ में भी ॥ ८ ॥ (४७४)

अथ नवम्याः-काश्यपोऽसित ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
१ २ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥ (४७५)

पदपाठः-परि अ० । स्वानः, गिरिष्ठाः १ । पवित्रे ७ । सोमः १ । अक्षरत् क्रि० । मदेषु ७ । सर्वधाः १ । असि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(गिरिष्ठाः सोमः) पर्वतीयः सोमः (स्वानः) सुवानोऽभिषूयमाणः (पवित्रे) शुद्धे द्रोणकलशादौ (परि अ-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

क्षरत्) परि क्षरति । सहि (मदेषु) हर्षेषु निमित्तेषु (सर्वधाः) सर्वेषां धारकः सर्वैर्वा धार्यः (असि) अस्ति ॥

ऋग्वेदे तु ९ । १८ । १ स्वानः=सुवानः । अक्षरत्=अक्षाः इति पाठौ ॥ ९ ॥ (४७५)

भाषार्थः-(गिरिष्ठाः सोमः) पहाड़ी सोम (स्वानः) खींचा हुवा (पवित्रे) शुद्ध पात्र द्रोणकलशादि में (परि अक्षरत्) निचोड़ा जाता है वह (मदेषु) हर्षार्थ (सर्वधाः) सब का धारण करने वाला वा सबों से धारने योग्य (असि) है ॥

ऋ० ९ । १८ । १ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (४७५)

अथ दशम्याः—ऋष्यादय उक्तवत् ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ र ३ ४ २ र ३ २ ३ १ २

परि प्रिया दिवः कविर्वयाꣳसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति

३ १ २

कविक्रतुः ॥ १० ॥ (४७६) इति प्रथमा दशतिः ॥१॥

पदपाठः-परि अ० । प्रिया २ । दिवः ६ । कविः १ । वयांसि २ । नप्त्योः ६ । हितः १ । स्वानैः ३ । याति क्रि० । कविक्रतुः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(कविक्रतुः) क्रान्तप्रज्ञः (कविः) मेधावी (नप्त्योः) द्यावापृथिव्योः (हितः) हितकरः पुरुषः (स्वानैः) सोममभिषुण्वद्भिरध्वर्युभिः सह (दिवः) स्वर्गस्य = सुखस्थानस्य (प्रिया) प्रियाणि (वयाꣳसि) आयूंषि (परि याति) परितः प्राप्नोति ॥

नप्त्रौ इति द्यावापृथिवीनाम । निघं० ३ । ३० वर्णभेदेन नप्त्योरिति तस्यैव रूपम् ॥

ऋग्वेदे तु ९ । २ । १ सुवानो याति, इत्यन्तरम् ॥१०॥ (४७६)

* इति पञ्चमाऽध्याये प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ *

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(कविक्रतुः) तीव्रबुद्धि (कविः) मेधावी (नप्त्योः हितः) आकाश पृथिवी का हितकारी पुरुष (स्वानैः) सोम खींचने वाले अपने साथी अध्वर्युओं सहित (दिवः) सुखस्थान की (प्रिया वयांसि) प्यारी आयुओं को (परि याति) सब ओर से प्राप्त होता है ॥

निघण्टु ३ । ३० का प्रमाण और ऋ० ९ । ९ । १ का अन्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥ (४७६)

* यह पञ्चमाध्याय में प्रथम दशति समाप्त हुई ॥ १ ॥ *

पवमानस्य गायत्र्यः प्रेत्यस्यां दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः-श्यावाश्व ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २२ ३ २३ १२ ३१२

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।

३२ ३१२

सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥ (४७७)

पदपाठः—प्र अ० । सोमासः, मदच्युतः १ । श्रवसे ४ । नः, मघोनाम् ६ । सुताः १ । विदथे ७ । अक्रमुः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(मदच्युतः) मदप्रस्रवणाः (सुताः) अभिषुताः (सोमासः) सोमाः (नः) अस्माकं (मघोनाम्) हविष्मताम् (विदथे) यज्ञे (श्रवसे) अन्नाय यशसे वा (प्र अक्रमुः) दिवं प्र गच्छन्ति ॥

मघोनां हविष्मतामित्येव सायणः ॥ विदथ इति यज्ञनाम । निघं० ३।१७॥ऋग्वेदेतु ९।३२।१ "मघोनः" इत्यन्तरम्॥१॥(४७७)

भाषार्थः—(मदच्युतः) मद चूने वाले [पके] (सुताः) खींचे हुवे (सोमासः) सोम (नः मघोनाम्) हम हविः वालों के (विदथे) यज्ञ में (श्रवसे) अन्न वा यश के लिये (प्र अक्रमुः) जाते हैं ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघण्टु ३ । १७ और सायणाचार्य के प्रमाण तथा ऋ० ९ । ३२ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (४७७)

अथ द्वितीयायाः-त्रित ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।

१ २ ३ १ २

वनानि महिषाइव ॥ २ ॥ (४७८)

पदपाठः-प्र अ० । सोमासः, विपश्चितः १ । अपः ६ । नयन्त क्रि० । ऊर्मयः १ । वनानि २ । महिषाः १ । इव अ० ॥

अन्वितपदार्थः-(विपश्चितः) बुद्धिवर्धकाः (सोमासः) सोमाः (अपः ऊर्मयः) जलस्य तरङ्गाः (इव), (महिषाः) महान्तः (वनानि) जलानि (प्र नयन्त) प्रतिगच्छन्ति ॥

अपइतिबहुत्वेएकत्वमार्षम् ॥ वनमित्युदकनाम । निघं० १ । १२ ॥ महिष इति महन्नाम ३ । ३ ॥ ऋग्वेदे ९ । ३३ । १ तु-" अपां नयन्त्यूर्मयः " इत्यन्तरम् ॥ २ ॥ (४७८)

भाषार्थः-(विपश्चितः सोमासः) बुद्धिवर्धक सोम (अपः ऊर्मयः) जल की लहरें (इव) सी (महिषाः) महान् (वनानि) जलों के प्रति (प्र नयन्त) जाते हैं ॥

निघण्टु १ । १२ ॥ ३ । ३ इत्यादि प्रमाण और ऋ० ९ । ३३ । १ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥ (४७८)

अथ तृतीयायाः-अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।

२ ३ १ २ ३ १ २

विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥ (४७९)

पदपाठः-पवस्व क्रि० । इन्दो सं० । वृषा, सुतः १ । कृधि क्रि० । नः, यशसः २ । जने ७ । विश्वा २ । अप अ० । द्विषः २ । जहि क्रि० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(इन्दो) सोम ! वा परमेश्वर! (वृषा) वीर्योद्रेककर ! वा कामनापूरक ! (सुतः) अभिषुतः, वा हृदयकमले साक्षात्कृतस्त्वम् (पवस्व) प्राप्नुहि (जने) मनुष्यवर्गे (नः) अस्मान् (यशसः) यशस्विनः (कृधि) कुरु (विश्वा) सर्वान् (द्विषः) शत्रून्कामादीन्वा (अप जहि) नाशय ॥

भौतिकपक्षे-सोमसेविनां वीर्यवृद्धिर्यशः शत्रुपराभवश्च भवितुं शक्य इति भावः ॥

ऋग्वेदे ९ । ६१ । २८ ऽपि ॥ ३ ॥ (४७९)

भाषार्थः-(इन्दो) हे सोम ! वा परमेश्वर ! (वृषा) वीर्यवर्धक, वा कामना पूर्ण करने वाला (सुतः) खींचा हुवा, वा हृदय कमल में साक्षात् किया हुवा तू (पवस्व) प्राप्त हो और (जने) मनुष्यवर्ग में (नः) हम को (यशसः) यशस्वी (कृधि) कर तथा (विश्वा) सब (द्विषः) शत्रुओं, वा काम क्रोधादिकों को (अप जहि) नष्ट कर ॥

भौतिकपक्ष में भाव यह है कि-सोम का सेवन करने वाले मनुष्यों में यश वाले, पराक्रमी और शत्रुओं का नाश करने वाले होने सम्भव हैं ॥

ऋ० ९ । ६१ । २८ में भी ॥ ३ ॥ (४७९)

अथ चतुर्थ्याः-भृगुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
१ २ ३ १ २
पवमानं स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥ (४८०)

पदपाठः-वृषा १ । हि अ० । असि क्रि० । भानुना ३ । द्युमन्तम्, त्वा २ । हवामहे क्रि० । पवमान सं० । स्वर्दृशम् २ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(पवमान) हे पुनान ! पवित्रकारक ! सोम ! वा परमेश्वर ! (भानुना द्युमन्तम्) प्रकाशेन दीप्यन्तम् (स्वर्दृशम्) स्वःसुखस्य दर्शयितारम् (त्वा) त्वाम् (हवामहे) जुहुमः, वा आह्वयामहे (हि) निश्चयेन (वृषा) वीर्यवर्धकः, कामानां पूरको वा (असि) भवसि ॥

भौतिकपक्षे-सोमस्य शुद्धिकरत्वं, प्रकाशवत्त्वं, सुखप्रदत्वम्, वीर्यवर्धकत्वं च प्रतिपादितमिति भावः ॥

ऋग्वेदे तु ९।६५।४ "पवमान स्वाध्यः" इतिपाठः ॥४॥ (४८०)

भाषार्थः-(पवमान) हे पवित्र कारक ! सोम !, वा परमेश्वर ! (भानुना द्युमन्तम्) प्रकाश से दीप्तमान् (स्वर्दृशम्) सुख दिखाने वाले (त्वा) तुझ को (हवामहे) हम हवन करते, वा पुकारते हैं (हि) निश्चय तू (वृषा) वीर्यवर्धक, वा कामनापूरक (असि) है ॥

भौतिकपक्ष में भाव यह है कि सोम शुद्धिकारक, प्रकाश वाला, सुखदायक और वीर्यवर्धक है ॥ ऋ० ९ । ६५ । ४ में (पवमान स्वाध्यः) पाठ है ॥४॥ (४८०)

अथ पञ्चम्याः- कश्यप ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः ।

३ १ २ ३ १ २

सृजदश्वꣳ रथीरिव ॥ ५ ॥ (४८१)

पदपाठः-इन्दुः १। पविष्ट क्रि०। चेतनः, प्रियः १। कवीनाम् ६। मतिः १। सृजत् क्रि० । अश्वम् २ । रथीरिव अ० ॥

अन्वितपदार्थः-(मतिः) मनस्तत्त्वप्रवर्धकः (चेतनः) बुद्धितत्त्वोद्बोधकः (कवीनां प्रियः) अत एव मेधाविनां प्रियः (इन्दुः) सोमः (पविष्ट) प्राप्नुयात् (रथीरिव) यथा रथी (अश्वम्) रथाश्वम् (सृजत्) सजेत् तद्वत् ॥ ऋग्वेदे तु ९ ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

६४ । १० मती इति दीर्घपाठः ॥ ५ ॥ (४८१)

भाषार्थः—(मतिः) मन का बढ़ाने वाला (चेतनः) बुद्धि का जगाने वाला (कवीनां प्रियः) इसी से बुद्धिमानों का प्यारा (इन्दुः) सोम प्रविष्ट) प्राप्त हो (रथीरिव) जैसे रथी (अश्वम्) रथ के घोड़े को (सृजेत्) छोड़े ॥ ऋ० ९ । ६४ । १० में (मती) पाठ है ॥ ५ ॥ (४८१)

अथ षष्ठ्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

१ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
३ १ २ ३ १ २र
शुक्रासो वीरयाऽऽशवः ॥ ६ ॥ (४८२)

पदपाठः—असृक्षत क्रि० । प्र अ० । वाजिनः १ । गव्या ३ । सोमासः १ । अश्वया ३ । शुक्रासः १ । वीरया ३ । आशवः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(गव्या) गवामिच्छया (अश्वया) अश्वानामिच्छया (वीरया) वीराणामिच्छया च (वाजिनः) बलयुक्ताः सुपक्वाः (शुक्रासः) वीर्यकराः (आशवः) स्फूर्त्तिप्रदाः (सोमासः) सोमाः (प्र असृक्षत) [ऋत्विग्भिरग्नौ] प्रकर्षेण हूयन्ते ॥

ये सोमयागमनुतिष्ठन्ति ते गोऽश्ववीरपुरुषादिभिरानन्दिता जायन्ते इति भावः ॥ ऋग्वेदे ९।६४।४ऽपि ॥६॥ (४८२)

भाषार्थः—(गव्या) गौवों की इच्छा से (अश्वया) अश्वों के अभिलाष से (वीरया) और वीर पुरुषों की आकाङ्क्षा से (वाजिनः शुक्रासः आशवः सोमासः) बलिष्ठ वीर्यवर्धक वेगवाले सोम (प्र असृक्षत) [अग्नि में] छोड़े जाते हैं ॥

अर्थात् जो लोग वेदानुकूल सोमयागादि करते हैं उन को गौ, अश्व, वीरपुरुष आदि सब पदार्थों के लिये इच्छा को परमात्मा पूर्ण करता है । ऋ० ९ । ६४ । ४ में भी ॥ ६ ॥ (४८२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ सप्तम्याः—निध्रुविः काश्यप ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३१ २ ३१ २२ ३ १२

पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।

३ १ २२३ १ २

वायुमारोह धर्मणा ॥ ७ ॥ (४८३)

पदपाठः—पवस्व क्रि० । देवः १ । आयुषक् क्रि० वि० । इन्द्रम् २ । गच्छतु क्रि० । ते ६ । मदः १ । वायुम् २ । आरोह क्रि० । धर्मणा ३ ॥

अन्वितपदार्थः—सोम ! (देवः) दिव्यगुणस्त्वम् (आयुषक्) अनुषक्तं यथा स्यात्तथा (वायुम्) पवनम् (धर्मणा) स्वभावेन (आरोह), एवम् (ते मदः) तव हर्षकरः प्रभावः (इन्द्रम्) सूर्यं विद्युतं वा मेघस्थम् (गच्छतु) प्राप्नोतु, अतः (पवस्व) गच्छ ॥

यः सोमो हूयते स वायुमारुह्य मेघस्थमिन्द्रं गच्छति ततः पूर्वमन्त्रोक्तधनधान्यादिवृद्धिर्जायते ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ६३ । २२ देवायुषगिति पाठः ॥ ७ ॥ (४८३)

भाषार्थः—सोम ! (देवः) दिव्यगुणयुक्त तू (आयुषक्) जिस से साथ मिल जावे इस प्रकार (वायुम्) वायु को (धर्मणा) स्वभाव से (आरोह) चढ़ और (ते मदः) तेरा हर्षकारक प्रभाव (इन्द्रम्) सूर्य वा मेघस्थ विद्युत् को (गच्छतु) जावे, इस लिये (पवस्व) प्राप्त हो ॥

जो सोम हवन किया जाता है उस का सारांश वा प्रभाव वायु में चढ़ कर सूर्य और मेघस्थ विद्युत् को प्राप्त होता है इस से पूर्वमन्त्रोक्त फल होते हैं, यह तात्पर्य है ॥ ऋ० ९ । ६३ । २२ में (देवायुषक्) पाठ है ॥ ७ ॥ (४८३)

अथाऽष्टम्याः—अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३ २ ३ १ २२ ३ २

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।

१ २ ३ २ ३ २

ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥ (४८४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः–पवमानः १ । अजीजनत् क्रि० । दिवः ५ । चित्रम् २ । न अ० । तन्यतुम् २ । ज्योतिः, वैश्वानरम्, बृहत् २ ॥

अन्वितपदार्थः–(पवमानः) सोमः हूयमानः सन् (दिवः) आकाशात् (तन्यतुम्) विस्तीर्णम् (बृहत्) महत् (वैश्वानरम्) विश्वेषां नायकस्य विद्युत्तत्त्वस्येदम् (ज्योतिः) (चित्रं न) विचित्रमिव (अजीजनत्) जनयति ॥

अथवा–(पवमानः) पूतात्मा पुरुषः (दिवश्चित्रं न) प्रकाशस्य विचित्रमिव (तन्यतुम्) विस्तीर्णम् (वैश्वानरम्) सर्वनायकस्य परमेश्वरस्येदम् (ज्योतिः) महः (अजीजनत्) आत्मनि प्रकटयति ॥

ऋतन्यृञ्जीत्यादिना (उणा० ४ । २) तनोतेर्यतुचि तन्यतुम् ॥ ऋग्वेदे ९ । ६१ । १६ ऽपि ॥ ८ ॥ (४८४)

भाषार्थः–(पवमानः) सोम [हवन किया हुवा] (दिवः) आकाशसे (तन्यतुम्) विस्तीर्ण (बृहत्) बड़ी (वैश्वानरम्) बिजुली की (ज्योतिः) ज्योति को (चित्रं न) विचित्र सी (अजीजनत्) उत्पन्न करता है ॥

अथवा–(पवमानः) पवित्र पुरुष (दिवश्चित्रं न) प्रकाश के विचित्र से (तन्यतुम्) विस्तीर्ण (वैश्वानरम् ज्योतिः) ईश्वरीय तेज को (अजीजनत्) आत्मा में प्रकट करता है ॥

उणादि ४ । २ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । ऋ० ९ । ६१ । १६ में भी ॥ ८ ॥ (४८४)

अथ नवम्याः–काश्यपोऽसित ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
१ २ ३ १ २
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥ (४८५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-परि अ० । स्वानासः, इन्दवः १ । मदाय ४ । बर्हणा, गिरा ३ । मधो सं०=३ । अर्षन्ति क्रि० । धारया ३ ॥

अन्वितपदार्थः-(स्वानासः) सुवाना अभिषुताः (इन्दवः) सोमाः (बर्हणा, गिरा) बृहत्या वेदवाचा सह (मधो) मध्वया (धारया), (मदाय) वायुविद्युदादि-देवानां मदाय (परि अर्षन्ति) परितो गच्छन्ति यज्ञे ॥

ऋग्वेदे तु ९ । १०।४ "सुवानासः" इति "सुताअर्षन्ति" इति चान्तरम् ॥ ९ ॥ (४८५)

भाषार्थः-(स्वानासः) अभिषुत किये हुवे (इन्दवः) सोम (बर्हणा, गिरा) महती वेदवाणी के साथ (मधो धारया) मधुर धार से (मदाय) [वायु विद्युत् आदि देवों के] मदार्थ (परि अर्षन्ति) सब ओर जाते हैं ॥

ऋग्वेद ९ । १० । ४ में जो पाठान्तर है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥९॥ (४८५)

अथ दशम्याः-ऋष्यादयः पूर्ववत ॥

१३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधिश्रितः । कारुं

३ १ २र ३ १२

बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१०॥ (४८६) इति द्वितीया दशतिः ॥२॥

इति पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥

पदपाठः-परिप्रासिष्यदत् क्रि० । कविः १ । सिन्धोः ६ । ऊर्मौ ७ । अधिश्रितः १ । कारुम् २ । बिभ्रत् १ । पुरुस्पृहम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(कविः) मेधावी पुरुषः (पुरुस्पृहम्) बहुभिः स्पृहणीयम् (कारुम्) स्तोतारं (बिभ्रत्) धारयन्सन् (सिन्धोः) मनसः (ऊर्मौ) तरङ्गे (अधिश्रितः) समाश्रितः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सन् (परिप्रासिष्यदत्) सोममग्नौ परितः प्रक्षिपति ॥

यजमानैः स्तोत्रादिपुरुषैः सह सङ्घीभूय मनः समाधाय सोमाहुतयो होतव्याः इत्यर्थः ॥

मनो वै समुद्रः । शतपथे ७ । ५ । २ । ५२ ॥ कारुरिति स्तोतृनाम निघं ३ । १६ ॥ ऋग्वेदे ९ । १४ । १ तु-कारुम्=कारमित्यन्तरम् ॥ १० ॥ (४८६)

* इति पञ्चमाध्याये द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ *

भाषार्थः-(कविः) बुद्धिमान् यजमान (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहे हुवे (कारुम्) स्तोता ऋत्विज् को (बिभ्रत्) धारण किये हुवे (सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः) मन की लहर पर ठहरा हुवा (परिप्रासिष्यदत्) सोम को अग्नि में होम करता है ॥

अर्थात् यजमान और ऋत्विज् सब को मिल कर यज्ञ में सोम होम करना चाहिये ॥

शतपथ ७ । ५ । २ । ५२ निघण्टु ३ । १६ के प्रमाण और ऋ० ९ । १४ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥ (४८६)

* यह पञ्चमाध्याय में दूसरी दशति पूर्ण हुई ॥ २ ॥ *

—:*:—

यह पांचवां प्रपाठक पूर्ण हुवा ॥ ५ ॥

उपोषु जातमित्यस्यां दशतौ दश कीर्त्तिताः ।
गायत्र्यः सोमदैवत्या विज्ञातव्या मनीषिभिः ॥ १ ॥

अथ तृतीया दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
उपोषु जातमपुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ ३ ॥ (४८७)

पदपाठः–उप, उ, सु अ० । जातम्, अप्तुरम् २ । गोभिः ३ । भङ्गम्, परिष्कृतम्, इन्दुम् २ । देवाः १ । अयासिषुः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः–(देवाः) वायुविद्युदादयः (परिष्कृतम्) स्वच्छीकृतम् (भङ्गम्) यो भज्यते ग्रावभिस्तम् (अप्तुरम्) यो मेघजलेषु गच्छति तम् (सु) शोभनं यथा स्यात्तथा (जातम्) उत्पन्नम् (इन्दुम्) सोमम् (गोभिः) स्व-स्वकिरणैः (उप अयासिषुः उ) सामीप्येन प्राप्नुवन्त्येव ॥ ऋग्वेदे ९ । ६१ । १३ ऽपि ॥ १ ॥ (४८७)

भाषार्थः– (देवाः) वायु बिजुली आदि देवता, (परिस्कृतम्) स्वच्छ किये हुवे (भङ्गम्) पत्थरों से छेते हुवे (अप्तुरम्) मेघस्थ जलों में जाने वाले (सु जातम्) उत्तम उत्पन्न हुवे (इन्दुम्) सोम को (गोभिः) अपनी २ किरणों से (उप उ अयासिषुः) समीप प्राप्त होते ही हैं ॥ ऋ० ९ । ६१ । १३ में भी ॥ १ ॥ (४८७)

अथ द्वितीयायाः–बृहन्मतिराङ्गिरस ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३२उ ३ २ ३ १ २
पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥ (४८८)

पदपाठः–पुनानः १ । अक्रमीत् क्रि० । अभि अ० । विश्वाः, मृधः २ । विचर्षणिः १ । शुम्भन्ति क्रि० । विप्रम् २ । धीतिभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः–(विचर्षणिः) विविधं पश्यन्ति यं सः (पुनानः) सोमः (विश्वाः मृधः) समस्ताः शत्रुसेनाः (अभि, अक्रमीत्) अभितः क्रामति । अतएव तम् (विप्रम्) मेधोद्बोधकत्वान्मेधाविनं सोमम् (धीतिभिः) अङ्गुलिभिः (शुम्भन्ति) संस्कुर्वन्ति ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विचर्षणिः पश्यतिकर्मा । निघं० ३ । ११ मृधइति संग्रामनाम २ । १७ विप्र इति मेधाविनाम ३ । १५ धीत-यइत्यङ्गुलिनाम २ । ५ ॥ ऋग्वेदे ९ । ४० । १ ऽपि ॥ २ ॥ (४८८)

भाषार्थः-(विचर्षणिः) जो विविध प्रकार का देखा जाता है वह (पुनानः) सोम (विश्वाः मृधः) समस्त शत्रुसेनाओं को (अभि, अक्रमीत्) अभिभूत करता है इस लिये उस (विप्रम्) बुद्धितत्त्व को जगाने वाले सोम को (धीतिभिः) अङ्गुलियों से (शुम्भन्ति) संस्कृत करते हैं ॥

निघण्टु ३ । ११ ॥ २ । १७ ॥ ३ । १५ ॥ २ । ५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ४० । १ में भी ॥ २ ॥ (४८८)

अथ तृतीयायाः-असितः काश्यपो जगद्गिर्वा ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

आविशन्कलशꣳसुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।

२ ३ १ २

इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥ (४८९)

पदपाठः-आविशन् १ । कलशम् २ । सुतः १ । विश्वाः २ । अर्षन् १ । अभि अ० । श्रियः २ । इन्दुः १ । इन्द्राय ४ । धीयते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(सुतः) अभिषुतः (इन्दुः) सोमः (विश्वाः श्रियः) समस्ताः सम्पदः (अभि अर्षन्) अभितो गमयन् (कलशम्) द्रोणकलशाख्यम् (आविशन्) प्रविशन् (इन्द्राय) यजमानाय राज्ञे (धीयते) दशापवित्रे स्थाप्यते ॥

ईश्वरपक्षे-(सुतः) शमादिसाधनसंपन्नः (इन्दुः) योगैश्वर्यवान् पुरुषः (विश्वाःश्रियः) सर्वाः योगसम्पदः (अभ्यर्षन्) सर्वतो गमयन् (कलशम्) प्रजापतिम् (आवि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

शन्) आत्मानमाविशन्तं जानन् (इन्द्राय) परमेश्वराय [मुक्तौ] (धीयते) उपस्थितो भवति ॥

प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः । श० ४ । ३ । १ । ६ ॥ ऋग्वेदे ९ । ६२ । १९ तु–"इन्दुरिन्द्राय धीयते,, इत्यस्य स्थाने "शूरो न गोषु तिष्ठति" इत्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (४८९)

भाषार्थः-(सुतः) संम्पन्न किया हुआ (इन्दुः) सोम (विश्वाः श्रियः) सब सम्पदाओं को (अभि, अर्षन्) सर्वतः फैलाता हुवा (कलशम् आविशन्) द्रोणकलश नामक कलशे में प्रविष्ट होता हुवा (इन्द्राय) यजमान राजा के लिये (धीयते) ' दशापवित्र ' पर रक्खा जाता है ॥

ईश्वरपक्ष में–(सुतः) शमादिसंपन्न (इन्दुः) योगैश्वर्य वाला पुरुष (विश्वाः श्रियः अभ्यर्षन्) सब योगसम्पत्तियों को सब ओर फैलाता हुआ (कलशम्) प्रजापति में (आविशन्) अपने को प्रविष्ट जानता हुआ (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (धीयते) उपस्थित होता है ॥

शतपथ ४ । ३ । १ । ६ में प्रजापति को द्रोणकलश कहा है ॥ ऋ० ९ । ६२ । १९ में जो पाठभेद है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (४८९)

अथ चतुर्थ्याः–प्रभूवसुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २ख ३ २

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।

१ २ ३ १ २

कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥ (४९०)

पदपाठः–असर्जि क्रि० । रथ्यः १ । यथा अ० । पवित्रे ७ । चम्वोः ७ । सुतः १ । कार्ष्मन् ७ । वाजी १ । न्यक्रमीत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः–(यथा) (रथ्यः) रथे युक्तो (वाजी) अश्वः (कार्ष्मन्) इतरेतराकर्षणवति संग्रामे (चम्वोः) सेनयोर्मध्ये (न्यक्रमीत्) नितरां क्राम्यति तथैव (सुतः) अभि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सुतःसोमः (पवित्रे) दशापवित्रे (असर्जि) सृष्टो भवति ॥ ऋग्वेदे ९ । ३६ । १ ऽपि ॥ ४ ॥ (४९०)

भाषार्थः-(यथा) जिस प्रकार (रथ्यः) रथ में युक्त (वाजी) घोड़ा (कार्ष्म्यन्) इधर उधर आकर्षण वाले संग्राम में (चम्वोः) दो सेनाओं में (न्यक्रमीत्) नितराम् चलता है, इसी प्रकार (सुतः) संपन्न किया हुवा सोम (पवित्रे) दशापवित्र पर (असर्जि) छोड़ा जाता है॥ ऋ० ९।३६।१ में भी ॥४॥ (४९०)

अथ पञ्चम्याः-मेध्यातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥ (४९१)

पदपाठः-प्र अ० । यत् १ । गावः १ । न अ० । भूर्णयः, त्वेषाः, अयासः १ । अक्रमुः क्रि० । घ्नन्तः १ । कृष्णाम् २ । अप अ० । त्वचम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(न) यथा (भूर्णयः) क्षिप्राः (त्वेषाः) दीप्तिमन्तः (अयासः) अयाः गमनशीलाः (गावः) किरणाः (कृष्णाम् त्वचम्) तमिस्रां संवरणकरीं रात्रिम् (अप घ्नन्तः) विनाशयन्तः (प्र, अक्रमुः) प्रक्रामन्ति तथैव (यत्) ये सोमा अपि प्रकाशकरा भवन्ति ॥

भुरण्यतिर्गतिकर्मा । निघं० २ । १४ ॥ अयगतौ भ्वा० आ० ॥ त्वच संवरणे तु० प० ॥ गाव इति रश्मिनाम । निघं० १ । ५ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ४१ । १ यत्=ये । इत्येव साक्षात् पाठः ॥ ५ ॥ (४९१)

भाषार्थः-(न) जैसे (भूर्णयः) त्वरायुक्त (त्वेषाः) प्रकाशयुक्त (अयासः) गमनशील (गावः) किरणें (कृष्णां त्वचम्) अंधियारी ढकने वाली रात्रि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

को (अप घ्नन्तः) दूर करते हुवे (प्र, अक्रमुः) उत्कृष्टता से चलते हैं, वैसे ही (यत्) जो सोम भी प्रकाशादि के करने वाले होते हैं ॥

निघण्टु २ । १४ ॥ १ । ५ धातुपाठ भ्वा० आ० ॥ तु० प० आदि के प्रमाण तथा ऋ० ९ । ४१ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (४९१)

अथ षष्ठ्याः—निध्रुविर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १२ ३१ २ ३२

अप घ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।

३१ २२ ३ १२

नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥ (४९२)

पदपाठः—अप अ० । घ्नन् १ । पवसे क्रि० । मृधः २ । क्रतुवित् १ । सोम सं० । मत्सरः १ । नुदस्व क्रि० । अदेवयुम्, जनम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(सोम) हे परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मत्सरः) हर्षकारकः (क्रतुवित्) क्रतोः प्रज्ञाया लम्भयिता त्वम् (मृधः) शत्रून् (घ्नन्) नाशयन् (पवसे) प्राप्नोषि, स त्वम् (अदेवयुं जनम्) देवान्यष्टुमऽकामयमानं पुरुषम् (अप नुदस्व) दूरमपसारय ॥

सेव्यमानः परमेश्वरः सोमश्च सर्वशत्रुनिवारको बुद्धि-प्रदो हर्षकरो दस्युविनाशकश्च भवतीत्यभिप्रायः ॥ ऋग्वेदे ९ । ६३ । २४ ऽपि ॥ ६ ॥ (४९२)

भाषार्थः—(सोम) हे परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मत्सरः) हर्षदायक और (क्रतुवित्) बुद्धिलाभकारक तू (मृधः) शत्रुओं को (घ्नन्) विनष्ट करता हुवा (पवसे) प्राप्त होता है । सो तू (अदेवयुं जनम्) देवतों का यजन न चाहने वाले पुरुष को (अप नुदस्व) दूर भगाव ॥

सेवन किया हुवा परमेश्वर और सोमौषधि, सर्वशत्रुओं की निवृत्ति, बुद्धि की वृद्धि, हर्ष का दान और दस्युओं का नाश करता है । यह अभिप्राय है ॥ ऋ० ९ । ६३ । २४ में भी ॥ ६ ॥ (४९२)

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ षष्ठ्याः—ऋष्यादयऽक्कवत् ॥

३ १ २ ३ १ २३ २ ३ २३१२

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।

३ १ २र ३२

हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥ (४९३)

पदपाठः—अया ३ । पवस्व क्रि० । धारया, यया ३ । सूर्यम् २ । अरोचयः क्रि० । हिन्वानः १ । मानुषीः, अपः २ ॥

अन्वितपदार्थः—सोम=परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मानुषीः अपः) मनुष्याणां सम्बन्धीनि कर्माणि (हिन्वानः) प्रेरयन् त्वम् (यया धारया) तेजोधारया, द्रवधारया वा (सूर्यम्) (अरोचयः) दीप्तं करोषि, सूर्यलोके वा प्रकाशं गमयसि (अया) अनयैव (पवस्व) प्राप्नुहि ॥

परमेश्वरः सोमो वा मनुष्यान्कर्मक्षमान्करोति, स्वतेजसा सूर्यं प्रकाशितं, तत्तेज आप्यायितं वा करोति ॥ ऋग्वेदे ९ । ६३ । ७ ऽपि ॥ ७ ॥ (४९३)

भाषार्थः—सोम=परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मानुषीः अपः) मनुष्यों के कर्मों को (हिन्वानः) प्रेरित करता हुवा तू (ययाधारया) जिस तेजोरूप धार वा बहती धार से (सूर्यम्) सूर्य लोक को (अरोचयः) प्रकाशित वा आप्यायित करता है (अया) उसी धार से (पवस्व) प्राप्त हो ॥

परमेश्वर वा सोम मनुष्यों को कर्म करने का सामर्थ्य देता है और सूर्य लोक को अपने तेज वा धार से प्रकाशित वा आप्यायित करता है ॥ ऋ० ९ । ६३ । ७ में भी ॥ ७ ॥ (४९३)

अथाऽष्टम्याः—अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।

३ १ २ ३ २ ३ २

वव्रिवाꣳ सं महीरपः ॥ ८ ॥ (४९४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—सः १ । पवस्व क्रि० । यः १ । आविथ क्रि० । इन्द्रम् २ । वृत्राय ४=२ । हन्तवे अ० । वव्रिवांसम् २ । महीः, अपः २ ॥

अन्वितपदार्थः—सोम ! ओषधे ! (यः) यस्त्वम् (महीः अपः) महान्ति जलानि (वव्रिवांसम्) निरुन्धानम् (वृत्राय) वृत्रं मेघम् (हन्तवे) हन्तुम् (इन्द्रम्) विद्युतं सूर्यं वा (आविथ) तर्पयसि [भ्वा० प०] (सः) स त्वम् (पवस्व) अग्नौ हुतो भव ॥

ईश्वरपक्षे—सोम ! परमेश्वर ! यस्त्वम् (महीः अपः) महान्ति शुभकर्मानुष्ठानानि निरुन्धानं (वृत्राय) वृत्रं पापं हन्तुम् (इन्द्रम्) इन्द्रियाऽधिष्ठातारं जीवात्मानं तर्पयसि, स त्वं (पवस्व) प्राप्नुहि अस्मानिति शेषः ॥ ऋग्वेदे ९ । ६१ । २२ ऽपि ॥ ८ ॥ (४९४)

भाषार्थः—सोम ! ओषधे ! (यः) जो तू (महीः अपः वव्रिवांसम्) भारी जलों को रोके हुवे (वृत्राय) मेघ को (हन्तुम्) हनन करने के लिये (इन्द्रम्) विद्युत् वा सूर्य को (आविथ) तृप्त करता है (सः) वह तू (पवस्व) अग्नि में हुत हो ॥

ईश्वरपक्ष में—सोम ! परमेश्वर ! (यः) जो आप (महीः अपः वव्रिवांसम् वृत्रम्) भारी शुभकर्मों को रोकते हुवे पाप को (हन्तुम्) विनष्ट करने के लिये (इन्द्रम् आविथ) जीवात्मा को तृप्त करते हैं (सः पवस्व) वह आप हमें प्राप्त हों ॥ ऋ० ९ । ६१ । २२ में भी ॥ ८ ॥ (४९४)

अथ नवम्याः—ऋष्यादय उक्तवत् ॥

३ १ २ १ २२ ३ १ २ ३ २३ २
अया वीती परिस्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।

३ १ २ ३ १ २२
अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥ (४९५)

पदपाठः—अया ३ । वीती ३ । परिस्रव क्रि० । यः १ । ते ६ । इन्दो सं० । मदेषु ७ । आ अ० । अवाऽहन् क्रि० । नवतीः, नव २ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(इन्दो) सोम! (अया) अनया (वीतो) वीत्या व्याप्त्या (परिस्रव) क्षर, (यः) यथाविधः सूर्यः (ते मदेषु) त्वज्जनितेषु हर्षेषु सत्सु (नव नवतीः) अष्टौ शतानि दशोत्तराणि ८१० मेघान् (आ) सर्वतः (अवाऽहन्) अवहन्ति॥

अथवा—(इन्दो) परमेश्वर! (अया वीती) अनया व्याप्त्या (परिस्रव) अमृतवृष्टिं कुरु (यः) यथाविधो जीवात्मा (ते मदेषु) त्वत्कृताऽमृतवृष्टिजनितेषु आनन्देषु सत्सु (नव नवतीः) ८१० संख्याकानि पापानि (आ) सर्वतः (अवाहन्)॥

(नव नवतीः) इत्यस्य व्याख्यानं द्वितीयाऽध्यायस्य सप्तमदशतौ पञ्चम्यामृचि (पृष्ठे २९३) (१७९) मन्त्रे द्रष्टव्यम्॥ ऋग्वेदे ९। ६१। १ऽपि॥ ९॥ (४९५)

भाषार्थः—(इन्दो) सोम! (अया वीती) उस व्याप्ति से (परिस्रव) अग्नि में टपक कि (यः) जिस से आप्यायित जो सूर्य (ते मदेषु) तेरे उत्पादित हर्षों के होने पर (नव नवतीः) ८१० मेघों को (आ) सब ओर से (अवाऽहन्) हनन करता है॥

अथवा—(इन्दो) परमेश्वर! (अया वीती परिस्रव) उस व्याप्ति से अमृत वर्षाओ कि (यः) जिस से आप्यायित जीवात्मा (ते मदेषु) आप की की हुई अमृतवृष्टि से उत्पन्न आनन्दों के होने पर (नव नवतीः) ८१० पापों को (आ) सब ओर से (अवाऽहन्) हनन करता है॥

(नव नवतीः) का व्याख्यान विस्तारपूर्वक अध्याय २ दशति ७ ऋचा ५(१७९) पृष्ठ २९३ में कर आये हैं वहां देख लीजिये॥ ऋ० ९। ६१। १ में भी॥९॥ (४९५)

अथ दशम्याः—उक्थ्य ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३१ २२३२उ ३१२ ३ १२

परि द्युक्षꣳ सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ २३ २

स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥ [४९६]

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥

पदपाठः–परि अ० । द्युक्षम्, सनद्रयिम् २ । भरत् क्रि० । वाजम् २ । नः ४ । अन्यसा ३ । स्वानः १ । अर्ष क्रि० । पवित्रे ७ । आ अ० ॥

अन्वितपदार्थः–(स्वानः) सोमः परमेश्वरो वा (नः) अस्मभ्यम् (द्युक्षम्) दीप्तम् (सनद्रयिम्) दीयमानधनम् (वाजम्) बलम् (अन्यसा) अन्नेन सह (परिभरत्) परितः प्रापयेत् तथा (पवित्रे) दशापवित्रे, पवित्रहृदये वा (आर्ष) आर्षतु प्राप्नोति॥

सोमयागेनेश्वरकृपया वा धनं बलं च प्राप्नोति लोकः॥ ऋषी गतौ तुदादिः प० शब्भाव आर्षः॥ ऋग्वेदे तु ९।५२। १ द्युक्षः, सनद्रयिः, सुस्वान इत्यन्तरम् ॥ १० ॥ (४९६)

* इति पञ्चमाध्याये तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥

भाषार्थः–(स्वानः) सोम वा परमेश्वर (नः) हमारे लिये (द्युक्षं सनद्रयिं वाजम्) प्रकाशमान धनदायक बल को (अन्यसा) अन्न सहित (परि भरत्) सब ओर से प्राप्त करावे और (पवित्रे) दशापवित्र पर, वा पवित्र हृदय में (आर्ष) सर्वतः प्राप्त हो ॥

सोमयाग वा ईश्वर की कृपा से मनुष्य धन धान्य बलादि को प्राप्त होते हैं ॥ व्याकरण का प्रमाण और ऋ० ९ । ५२ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥ (४९६)

* यह पञ्चमाध्याय में तीसरी दशति समाप्त हुई ॥ ३ ॥ *

—०:*:०—

अचीति दशतौ सौम्यो गायत्र्यो हि चतुर्दश ॥ १ ॥

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र—

प्रथमाया–मेध्यातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
१ २
सꣳ सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥ (४९७)

पदपाठः-अचिक्रदत् क्रि० । वृषा, हरिः, महान्, मित्रः १ । न अ० । दर्शतः १ । सम् अ० । सूर्येण ३ । दिद्युते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(वृषा) वृष्टिकरोवृष्योवा (हरिः) हरितवर्णो हरणशीलो वा (मित्रः न) सुहृदिव (महान्) सत्काराऽर्हः (दर्शतः) दर्शनीयः सोमः (सूर्येण), (सम्) सह (दिद्युते) प्रकाशते (अचिक्रदत्) अग्नौ प्रक्षिप्तश्चिटचिटाशब्दं च करोति जलमयत्वात् ॥ ऋग्वेदे ९ । २ । ६ ऽपि ॥ १ ॥ (४९७)

भाषार्थः-(वृषा) वृष्टिकारक वा वीर्यवर्धक (हरिः) हरा वा हरणशील (मित्रः न महान्) मित्र के समान सत्काराऽर्ह (दर्शतः) देखने योग्य सोम (सूर्येण सम्) सूर्य के साथ (दिद्युते) प्रकाश करता (अचिक्रदत्) और अग्नि में डाला हुवा चिटचिटा शब्द करता है क्योंकि जलयुक्त होता है ॥ ऋ० ९ । २ । ६ में भी ॥ १ ॥ (४९७)

अथ द्वितीयायाः-भृगुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
२ ३ २ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥ (४९८)

पदपाठः-आ अ० । ते ६ । दक्षं, मयोभुवं, वह्निम् २ । अद्य अ० । वृणीमहे क्रि० । पान्तम् २ । आ अ० । पुरुषस्पृहम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(सोम)! वा परमेश्वर ! (ते) तव स्वभूतं (मयोभुवं) सुखस्य भावयितारम् (आ पान्तम्) सर्वतो रक्षन्तम् (पुरुस्पृहम्) बहुभिः स्पृहणीयम् (दक्षम्) बलस्वरूपं

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(वह्निम्) अग्निं वाहकं प्रकाशकं च (अद्य) यज्ञदिने (आवृणीमहे) सर्वतः स्वीकुर्मः ॥ ऋग्वेदे ९। ६५। २८ऽपि ॥ २ ॥ (४९८)

भाषार्थः—सोम ! वा परमेश्वर ! (ते) तेरे उस (मयोभुवम्) सुखकारक (आ पोन्तम्) सर्वतोरक्षा करते हुवे (पुरुस्पृहम्) बहुतों से कामना किये हुवे (दक्षम्) बल रूपी (वन्हिम्) अग्नि को जो प्रकाशक और प्रापक है (अद्य) आज यज्ञ दिन में (आ वृणीमहे) सब ओर से हम वरण करते हैं ॥ ऋ० ९। ६५। २८ में भी ॥ २ ॥ (४९८)

अथ तृतीयायाः—उचथ्य ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्रे आनय।

३ १ २ ३ १ २

पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥ (४९९)

पदपाठः— अध्वर्यो सं०। अद्रिभिः ३। सुतम्, सोमम् २। पवित्रे ७। आनय, पुनाहि क्रि०। इन्द्राय ४। पातवे अ०॥

अन्वितपदार्थः—(अध्वर्यो) हे एतन्नामक ! ऋत्विक् ! (अद्रिभिः) पाषाणैः (सुतम्) निःसारितस्वरसम् (सोमम्), (पवित्रे) दशापवित्रे (आनय), (इन्द्राय) विद्युते, सूर्याय, राज्ञे यजमानाय वा (पातवे) पातुम् (पुनाहि) शुद्धं कुरु॥ ऋग्वेदे तु ९। ५१। १ "आसृज। पुनीहीन्द्राय" इत्यन्तरम् ॥३॥ (४९९)

भाषार्थः—(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु! (अद्रिभिः सुतं सोमम्) शिलाओं से छेतकर स्वरस निकाले हुवे सोम को (पवित्रे आनय) दशापवित्र पर ला और (इन्द्राय पातवे पुनाहि) इन्द्र अर्थात् सूर्य वा विद्युत् वा यजमान राजा के लिये पीने को स्वच्छ कर ॥ ऋ० ९। ५१। १ में जो पाठभेद है वह संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ३ ॥ (४९९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थ्याः—अवत्सार ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२३२ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र

तरत्स मन्दी धावति धारासुतस्यान्धसः ।

२३ २ ३१ २

तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ (५००)

पदपाठः—तरत्, सः, मन्दी १ । धावति क्रि० । धारासुतस्य, अन्धसः ६ । तरत् । सः । मन्दी । धावति ॥

अन्वितपदार्थः—(धारासुतस्य) धारया सुतस्य सोमरूपस्य (अन्धसः) अन्नस्य [उपभोगेन] (सः) इन्द्रो विद्युत् राजा वा (मन्दी) हृष्टःसन् (तरत्) त्वरन् (धावति) गच्छति (तरत्स मन्दी धावति) इति पुनर्ग्रहणं वीप्सार्थम् ॥ ऋग्वेदे ९ । ५८ । १ ऽपि ॥

निरुक्तपरिशिष्टे (१३ । ६) ऽस्याऋचो व्याख्यानमित्थं कृतमस्ति—"तरति स पापं सर्वं मन्दी यः स्तौति धावति गच्छत्यूर्ध्वां गतिम् । धारासुतस्यान्धसो धारयाऽभिषुतस्य मन्त्रपूतस्य वाचा स्तुतस्येति" ॥ ४ ॥ (५००)

भाषार्थः—(धारासुतस्य) धार बांध कर निचोड़े हुवे सोमरूप (अन्धसः) अन्न के [उपभोग से] (सः) वह इन्द्र अर्थात् विद्युत् वा राजा (मन्दी) हृष्ट पुष्ट (तरत्) तीव्रतायुक्त (धावति) गमन वा प्राप्ति करता है (तरत्स मन्दी धावति) यह दूसरी बार वीप्सा अर्थात् अत्यन्त अभिलाष प्रकट करने को कहा गया है ॥ ऋ० ९ । ५८ । १ में भी ॥

निरुक्त के परिशिष्ट १३ । ६ में इस ऋचा का व्याख्यान इस प्रकार मिलता है कि " वह आनन्दयुक्त जो स्तुति करता है, सब पाप से तरता और उत्तम गति को प्राप्त होता है । धार से निचोड़े, मन्त्र से पवित्र किए, वाणी से स्तुत किये [सोम] का " ॥ ४ ॥ (५००)

अथ पञ्चम्याः—निध्रुविर्ऋषिः । सोमो देवता गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २

आ पवस्व सहस्रिणꣳ रयिꣳ सोम सुवीर्यम् ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २२
अस्मे श्रवाꣳसि धारय ॥ ५ ॥ (५०१)

पदपाठः—आपवस्व क्रि० । सहस्रिणम् , रयिम् २ । सोम सं० । सुवीर्यम् २ । अस्मे ४ । श्रवांसि २ । धारय क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(सोम) ओषधे! वा परमेश्वर! (अस्मे) अस्मभ्यम् (सहस्रिणम्) बहुसंख्यावत् (सुवीर्यम्) शोभनवीर्योपेतम् (रयिम्) धनम् (आ पवस्व) आनय (श्रवांसि) यशांसि (धारय) ॥

सोमयज्ञेनेश्वरकृपया वा धनं वीर्यं यशश्च लभ्यते इति भावः ॥

अस्मे इति—सुपां सुलुगित्यादिना (७ । १ । ३९) शे आदेशः । एवं वेदे सर्वास्वपि विभक्तिषु दृश्यते। तथा च—"अस्मे" ऋ० इत्यत्र प्रथमार्थे। "अस्मे यातं नासत्याः सजोषाः" इतिद्वितीयार्थे । "अस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः" इति तृतीयार्थे। "चतुर्थ्यर्थे तु व्याख्यायमानायामेवर्चि। "अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतः " इति पञ्चम्यर्थे । "ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे" (ऋ० ३ । ३० । १९) अत्र षष्ठ्यर्थे । " अस्मे धत्त वसवः " इति सप्तम्यर्थे ॥ ऋग्वेदे ९ । ६३ । १ ऽपि ॥ ५ ॥ (५०१)

भाषार्थः—(सोम) ओषधे ! वा परमेश्वर ! (अस्मे) हमारे लिये (सहस्रिणम्) बहुत संख्या वाले (सुवीर्यम्) शोभन वीर्य युक्त (रयिम्) धन का (आपवस्व) लाभ करा और (श्रवांसि) यशों का (धारय) धारण करा। अर्थात् सोमयज्ञ और ईश्वर की कृपासे मनुष्यों को धन वीर्य और यश प्राप्त होतेहैं॥

अष्टाध्यायी के "सुपां०" ७ । १ । ३९ इस सूत्र से यहां चतुर्थी विभक्ति को शे आदेश होकर (अस्मे) रूप हुवा और यही रूप सातों विभक्तियों में इसी सूत्र से होता है जैसा कि प्रथमार्थ में, द्वितीयार्थ में, तृतीयार्थ में और

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इसी मन्त्र में चतुर्थ्यर्थ में, पञ्चम्यर्थ में, ऋ० ३ । ३० । १९ में षष्ठ्यर्थ में और सप्तम्यऽर्थ में ऊपर संस्कृत भाष्य में है ॥ ऋ० ९ । ६३ । १ में भी ॥ ५ ॥ (५०१)

अथ षष्ठ्याः-ऋष्यादिकमुक्तवत् ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
३ १ २ ३ १ २
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥ (५०२)

पदपाठः-अनु अ० । प्रत्नासः, आयवः १ । पदं, नवीयः २ । अक्रमुः क्रि० । रुचे ४ । जनन्त क्रि० । सूर्यम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-सोमयज्ञेन सोमोपभोगेन च (प्रत्नासः) पुराणाःवृद्धाः (आयवः) मनुष्याः (नवीयःपदम्) नवयौवनम् (अनु अक्रमुः) अनुक्रामन्ति, अतएव (रुचे) दीप्त्यै (सूर्य्यम्) सूर्य्यमिव तेजःकरं [सोमं] (जनन्त) जनयन्ति॥ ऋग्वेदे ९ । २३ । २ ऽपि ॥ ६ ॥ (५०२)

भाषार्थः-सोम के उपभोग और यजन से (प्रत्नासः आयवः) बूढ़े पुरुष (नवीयः पदम्) नवयौवन को (अनु अक्रमुः) क्रमशः प्राप्त होते हैं, इस कारण (रुचे) प्रकाश के लिये (सूर्यम्) सूर्यवत् तेज करने वाले [सोम] को (जनन्त) लोग उत्पन्न करते हैं ॥ ऋ० ९ । २३ । २ में भी ॥ ६ ॥ (५०२)

अथ सप्तम्याः-भृगुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ १ ३ १ २र ३ १ २
अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
३ १ २ ३ २ ३ २
सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥ (५०३)

पदपाठः-अर्ष क्रि० । सोम सं० । द्युमत्तमः १ । अभि अ० । द्रोणानि २ । रोरुवत् क्रि० । सीदन् १ । योनौ ७ । वनेषु ७ । आ अ० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(सोम) सोमः (द्युमत्तमः) दीप्तिमत्तमः (योनौ) स्थाने (वनेषु) जलेषु (आसीदन्) स्थितः (द्रोणानि) द्रोणकलशाख्यपात्राणि (अभि) लक्षीकृत्य (रोरुवत्) धधधधेति शब्दं कुर्वन् (अर्ष) गच्छति ॥

दशापवित्रमध्यान्निर्गच्छन् द्रोणकलशेषु पतन्सोमो धारया शब्दं करोति ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ६५ । १९ "सीदञ्छ्येनो न योनिमा" इत्यन्तरम् ॥

यद्वा-(सोम) परमेश्वर ! (द्युमत्तमः) अनन्तप्रकाशवांस्त्वम् (योनौ) योनिषु गृहरूपेषु (वनेषु) हृत्कमलेषु (आसीदन्) विराजमानः (द्रोणानि) उपासनायागस्य द्रोणकलशाख्यपात्रभूतानि मनांसि (अभि) लक्षीकृत्य (रोरुवत्) वेदोपदेशं कुर्वन् (अर्ष) प्राप्नुहि अस्मानिति शेषः ॥ योनिरिति गृहनाम । निघं० ३ । ४ ॥ ७ ॥ (५०३)

भाषार्थः-(द्युमत्तमः) दीप्ति युक्त, (योनौ, वनेषु, आसीदन्) अपने स्थान, जलों में, स्थित (द्रोणानि, अभि, रोरुवत) द्रोण कलशों की, ओर, शब्द करता हुआ (सोम) सोमरस (अर्ष) जाता है ॥

जब दशापवित्र में से निकलता और द्रोण कलश में धार बंध कर सोम रस पड़ता है, तो धध धध शब्द करता हुवा सोमसेवियों को आनन्द देता है ॥

यद्वा (सोम) हे परमेश्वर ! (द्युमत्तमः) अनन्त प्रकाश वाले आप (योनौ वनेषु) गृहरूप हृदयकमलों में (आ सीदन्) विराजमान हुवे (द्रोणानि) उपासनारूपी यज्ञ के द्रोणकलश जो हमारे हृदय हैं (अभि) उन की ओर (रोरुवत्) वेदशब्दों का उपदेश करते हुवे (अर्ष) प्राप्त हूजिये ॥ निघण्टु ३ । ४ में योनि=गृह का नाम है ॥ ७ ॥ (५०३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथाऽष्टम्याः कश्यप ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।

१ ३ १ २

वृषा धर्माणि दधिषे ॥ ८ ॥ (५०४)

पदपाठः- वृषा १ । सोम सं० । द्युमान् १ । असि क्रि० । वृषा १ । देव सं० । वृषव्रतः, वृषा २ । धर्माणि २ । दधिषे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(देव) दिव्यगुण ! (सोम) परमेश्वर ! वा ओषधे ! (वृषा असि) अमृतवृष्टिकर्ताऽसि, मेघवर्षको वा (वृषा) वीर्यप्रदः (वृषव्रतः) श्रेष्ठकर्मा (वृषा) वीर्यवान् (द्युमान्) तेजस्वी (धर्माणि दधिषे) धर्म्याणि कर्माणि यज्ञानुष्ठानानि वा धारयसि ॥

सर्वयज्ञानुष्ठानानि शुभकर्माणि चेश्वराऽनुग्रहेण सोमाद्योषधिप्रयोगैश्च सिद्धिमाप्नुवन्ति, बलं वीर्यं च सर्वविधं तत आप्यते ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ६४ । १ दधिषे इति पाठः ॥८॥ (५०४)

भाषार्थः-(देव) दिव्यगुणयुक्त ! (सोम) परमेश्वर ! वा सोमौषधे ! (वृषा असि) तू अमृत वर्षाने वाला, वा मेघ वर्षाने वाला है (वृषा) वीर्यदाता (वृषा) वीर्यवान् (द्युमान्) प्रकाश वाला (वृषव्रतः) श्रेष्ठ कर्म वाला, वा यज्ञवाला तू (धर्माणि दधिषे) धर्मयुक्त कर्मों, वा यज्ञों का धारण करता है ॥

सब यज्ञ वा अन्य उत्तम कर्म, परमेश्वर के अनुग्रह और सोमादि ओषधियों के प्रयोग से सिद्ध होते हैं, तथा सब प्रकार का बल और वीर्य प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ । ६४ । १ में (दधिषे) पाठ है ॥ ८ ॥ (५०४)

अथ नवम्याः-ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।

१ २ ३ १ २ १

इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥ (५०५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-इषे ४ । पवस्व क्रि० । धारया ३ । मृज्यमानः १ । मनीषिभिः ३ । इन्दो सं० । रुचा ३ । अभि अ० । गाः २ । इहि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(इन्दो) सोम ! वा परमेश्वर ! (मनीषिभिः) अध्वर्युभिरुपासकैर्वा (मृज्यमानः) शोध्यमानो, मृग्यमाणो वा (इषे) गोधूमादयेऽन्नाय, आत्मतृप्तिहेतवे ध्यानानन्दरसाय वा (धारया पवस्व) बाहुल्येन प्राप्नुहि, वा धारणया प्राप्नुहि (रुचा) दीप्त्या (गाः) स्तोतॄन् (अभीहि) अभितः प्राप्नुहि ॥

इषम्=अन्नम् निघं० २ । ७ मनीषी=मेधावी निघं० ३ । १५ गौः=स्तोता । निघं० ३ । १६ ॥ ऋग्वेदे ९ । ६४ । १३ ऽपि ॥ ९ ॥ (५०५)

भाषार्थः-(इन्दो) सोम ! वा परमेश्वर ! (मनीषिभिः) यज्ञ के अध्वर्युओं, वा उपासकों से (मृज्यमानः) शोधा जाता हुवा, वा ढूंढा जाता हुवा तू (इषे) गेहूं आदि अन्न के लिये, वा आत्मा की तृप्तिकारक ध्यानानन्दरस के लिये (धारया पवस्व) धार से प्राप्त हो, वा धारणा से प्राप्त हो और (रुचा) चमक से, वा ज्ञान के प्रकाश से (गाः) स्तुतिकर्त्ताओं को (अभि, इहि) सर्वतः प्राप्त हो ॥

निघण्टु २ । ७ ॥ ३ । १५ ॥ ३ । १६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । ऋ० ९ । ६४ । १३ में भी ॥ ९ ॥ (५०५)

अथ दशम्याः-असित ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।

२ ३ १ २ ३ २

अव्या वारेभिरस्मयुः ॥ १० ॥ (५०६)

पदपाठः-मन्द्रया ३ । सोम सं० । धारया ३ । वृषा १ । पवस्व क्रि० । देवयुः १ । अव्याः क्रि० । वारेभिः ३ । अस्मयुः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) अमृतस्वरूप ! परमेश्वर ! वा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओषधे ! (वृषा) अमृतवर्षी, जलवृष्टिहेतुर्वा (देवयुः) देवान्विदुषः कामयमानः, वाय्वादीन्वा कामयमानः (अस्मयुः) अस्मांस्त्वत्सेविनश्च कामयमानः त्वम् (वारेभिः) वरणीयैः स्वैर्गुणैः [अस्मान्] (अव्याः) रक्षेः, अथ (मन्द्रया धारया) गम्भीरयाऽमृतधारया, जलधारया वा (पवस्व) क्षर=वर्ष ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ६ । १ अव्यो वारेष्वस्मयुः इति पाठः ॥ १० ॥ (५०६)

भाषार्थः-(सोम) हे अमृतस्वरूप ! परमेश्वर ! वा ओषधे ! (वृषा) अमृत वर्षी, वा जलवर्षी (देवयुः) देवों=विद्वानों को चाहने वाला, वा वायु आदि देवों को चाहने वाला (अस्मयुः) और हम को चाहने वाला तू (वारेभिः) अपने वरणीय उत्तम गुणों से (अव्याः) हमारी रक्षा कर और (मन्द्रया धारया) गम्भीर अमृतधारा से वा जलधारा से (पवस्व) वृष्टि कर ॥

ऋ० ९ । ६ । १ में (अव्यो वारेष्वस्मयु) पाठ है ॥ १० ॥ (५०६)

अथैकादश्याः-ऋविर्भार्गवो, भारद्वाजो वा ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र

अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः ।

३ १ २र

मन्दान इद्वृषायसे ॥ ११ ॥ (५०७)

पदपाठः-अया ३ । सोम सं० । सुकृत्यया ३ । महान्, सन् १ । अभ्यवर्धथाः क्रि० । मन्दानः १ । इत् अ० । वृषायसे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) अमृतस्वरूप परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मन्दानः) मोदयमानः (सन्), (महान्) सत्कारार्हः त्वम् (इत्) एव (वृषायसे) वृषोमेघइवाचरसि । यतः (अया) अनया (सुकृत्यया) सुकृतया धारया (अभ्यवर्धथाः) अमृतवृष्ट्या, वृष्ट्या वा वर्धयसि ॥ ऋग्वेदे ९ । ४७ । १:-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिद्भ्यवर्धत । मन्दान उद्वृषायते ॥ इत्यन्तरम् ॥ ११ ॥

भाषार्थः-(सोम) अमृतस्वरूप परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मन्दानः) आनन्द (सन्) हुवा (महान्) सत्कारयोग्य तू (इत्) ही (वृषायसे) मेघ के सा काम करता है । क्योंकि (अया सुकृत्यया) इस उत्तम धारा से (अभ्यवर्धयाः) अमृतवर्षा वा वर्षा करके बढ़ाता है ॥ ऋ० ९ । ४७ १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥ (५०७)

अथ द्वादश्याः-जमदग्निर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।

३ १ २र ३ २

हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥ (५०८)

पदपाठः-अयम्, विचर्षणिः, हितः, पवमानः, सः १ । चेतति क्रि० । हिन्वानः १ । आप्यम्, बृहत् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(अयम्) सोमोऽमृतस्वरूपः परमात्मा, ओषधिविशेषो वा (विचर्षणिः) प्रकाशकः (हितः) हितकरः (पवमानः) शुद्धिकरः (सः) स एव (बृहत् आप्यम्) महत् अप्सु कर्मसु भवं कर्मफलम्, जलेषु भवं धान्यं वा (हिन्वानः) प्रेरयन् (चेतति) चेतनां वर्धयति ॥ विचर्षणिः पश्यतिकर्मा । निघं० ३ । ११ ॥ ऋग्वेदे ९ । ६२ । १० ऽपि ॥ १२ ॥ (५०८)

भाषार्थः-(अयम्) यह सोम अमृतस्वरूप परमात्मा, वा ओषधिविशेष (विचर्षणिः) प्रकाशक (हितः) हितकारी (पवमानः) और शुद्धिकारक है । (सः) वह (बृहत्) बड़े (आप्यम्) कर्मफल, वा जलोद्भव धान्य को (हिन्वानः) प्रेरित करता हुवा (चेतति) बुद्धि को बढ़ाता है ॥

विचर्षणि=प्रकाशक । निघं० ३ । ११ ॥ ऋ० ९ । ६२ । १० में भी ॥१२॥ (५०८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ त्रयोदश्याः—अयास्य आङ्गिरसो वा ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २र

प्र न इन्द्रो महे तुन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि ।

३ २ ३ २ ३ १ २

अभि देवाँ अयास्यः ॥ १३ ॥ (५०९)

पदपाठः—प्र अ० । नः ६ । इन्दो सं० । महे, तुने ४ । ऊर्मिम् २ । न अ० । बिभ्रत् १ । अर्षसि क्रि० । अभि अ० । देवान् २ । अयास्यः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्दो) अमृतस्वरूप भगवन् ! वा ओषधे ! (देवान्) उपासकान्, याज्ञिकान्वा (अभ्ययास्यः) अभितो यासि (नः) अस्माकम् (महे) महते (तुने) विज्ञान-धनाय, ध्यान्यादिधनाय वा (ऊर्मिं न) तरङ्गमिव (बिभ्रत्) धारयन् (प्राऽर्षसि) प्रकर्षेण प्राप्नोषि ॥

यथा सोमरसजनितो हर्षो मनुष्याणां हृदयेषु तरङ्ग-मिवोत्पादयति तथा परमात्मप्राप्तिजनित आनन्दो भक्त-जनहृदयेषु तरङ्गमिवोत्पादयतीति तज्ज्ञाएव ज्ञातुमर्हन्ति ॥

तुना इति धननाम । निघं० २ । १० तस्यैव वर्णविप-र्ययेण तुने इति रूपम् ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ४४ । १ प्र ण इन्दो महे तने इति पाठः ॥ १३ ॥ (५०९)

भाषार्थः—(इन्दो) अमृतस्वरूप परमेश्वर ! वा ओषधे ! (देवान्) विद्वान् उपासकों, वा याज्ञिकों को (अभि, अयास्यः) तू सर्वतः प्राप्त होता है और (नः) हमारे (महे) बड़े (तुने) ज्ञान धन, वा धान्यादि धन के लिये (ऊर्मिं न) तरङ्ग वा लहर सी (बिभ्रत) धारण कराता हुवा (प्र, अर्षसि) उच्चभाव से प्राप्त होता है ॥

जिस प्रकार सोमरस से उत्पन्न हुवा हर्ष मनुष्यों के हृदयों में तरङ्ग सी उठाता है, इसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति से उत्पन्न हुवा आनन्द भी उपासकों के हृदय में लहर सी उठाता है और मग्न करदेता है । इस को वे लोग ही जानते हैं, जिन्हें अनुभव है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघण्टु २ । १० का प्रमाण और ऋ० ९ । ४४ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १३ ॥ (५०९)

अथ चतुर्दश्याः—असहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।

२ ३ १ २ ३ २

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥ (५१०)

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥

पदपाठः—अपघ्नन् १ । पवते क्रि० । मृधः २ । अप अ० । सोमः १ । अराव्णः २ । गच्छन् १ । इन्द्रस्य ६ । निष्कृतम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—हे मनुष्याः! (सोमः) सेव्यमानोऽमृतस्वरूपः परमेश्वरः, ओषधिविशेषो वा (अराव्णः) अदातॄनऽयाज्ञिकान् यज्ञविरोधिनो वा पापिनो वा (अपघ्नन्) अपसारयन् (मृधः) शत्रून् (अप) अपसारयन् (इन्द्रस्य) स्वस्य=परमात्मनः (निष्कृतम्) पवित्रं मोक्षाख्यं पदं, इन्द्रपदं वा (गच्छन्) गमयन् (पवते) प्राप्नोति ॥ ऋग्वेदे ९ । ६१ । २५ ऽपि ॥ १४ ॥ (५१०)

* इति पञ्चमाध्याये चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ *

भावार्थः—हे मनुष्यो ! (सोमः) सेवन किया हुवा परमेश्वर, वा सोम (अराव्णः अपघ्नन्) अदाता अयाज्ञिक यज्ञविरोधी पापियों को दूर करता हुवा तथा (मृधः अप) शत्रुओं को दूर करता हुवा (इन्द्रस्य निष्कृतम्) परमात्मा के पवित्र पद मोक्ष को, वा इन्द्रपदवी को (गच्छन्) प्राप्त करता हुवा (पवते) प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ । ६१ । २५ में भी ॥ १४ ॥ (५१०)

* यह पञ्चमाऽध्याय में चौथी दशति समाप्त हुई ॥ ४ ॥ *

—०:*:०—

पुनान इति पञ्चम्यां दशतौ द्वादश स्मृताः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पवमानस्य दैवत्यं बृहती छन्द एव च ॥ १ ॥
भरद्वाजः काश्यपोऽत्रिर्जमदग्निश्च गोतमः ।
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च सर्वासामृषयो मताः ॥ २ ॥

अथ पञ्चमी दशतिस्तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १२३ १ २२ १ २३१
पुनानः सोम धारयाऽपो वसानो अर्षसि । आ रत्नधा
२२३१ २ ३ २ ३१ २३ १२
योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥ (५११)

पदपाठः—पुनानः १ । सोम सं० । धारया ३ । अपः २ । वसानः १ । अर्षसि क्रि० । आ अ० । रत्नधाः १ । योनिम् २ । ऋतस्य ६ । सीदसि क्रि० । उत्सः, देवः, हिरण्ययः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(सोम) हे अमृतस्वरूप परमेश्वर ! त्वम् (धारया) अमृतधारया (पुनानः) पावयन् (अपः) कर्माणि जीवात्मनश्च (वसानः) व्याप्त्याऽऽच्छादयन् (अर्षसि) अस्मान्प्राप्नोषि । अथ च (रत्नधाः), (देवः) दिव्यस्वरूपः (हिरण्ययः) ज्योतिर्मयः (उत्सः) अमृतकूप इव गभीरः (ऋतस्य योनिम्) सत्यस्य वेदस्य कारणमात्मस्वरूपम् (आ सीदसि) सर्वतो व्याप्य वर्त्तसे ॥

सोमपक्षे—(अपः) जलानि (उत्सः) द्रवरूपः (ऋतस्य योनिम्) यज्ञस्य स्थानम् (आसीदसि) अग्नौ हुतः स्वधूमेन सर्वतो व्याप्य वर्त्तसे ॥

ऋतमिति सत्यनाम निघं० ३ । १० ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०७ । ४ "देव हिरण्यय" इत्यन्तरम् ॥ १ ॥ (५११)

श्लोकार्थः—" पुनानः " इत्यादि ५ वीं दशति की १२ ऋचों का पवमान

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

देवता, बृहती छन्द और भरद्वाज, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गोतम, विश्वामित्र और वसिष्ठ, ये सप्त ऋषि हैं ॥ १ । २ ॥

भाषार्थः—(सोम) हे अमृतस्वरूप परमेश्वर ! आप (धारया) अमृत की धारा से (पुनानः) पवित्र करते हुवे (अपः) कर्मों और जीवात्माओं को (वसानः) व्यापक होकर आच्छादित किये हुवे (अर्षसि) हमें प्राप्त होते हैं। और (रत्नधाः) रमणीय पदार्थों के धारण करने कराने वाले (हिरण्ययः) ज्योतिःस्वरूप (उत्सः) कूप के समान गम्भीर अमृत के कूप रूप (देवः) आप (ऋतस्य) सत्य वेद के (योनिम्) कारण अपने निज स्वरूप में (आ सीदसि) सब ओर व्याप कर स्थित हैं ॥

सोम के पक्ष में—(सोम) ओषधे ! (धारया पुनानः) अपनी धार से शुद्ध करता हुवा (अपः) जलों में (वसानः) बसा हुवा (अर्षसि) हमें प्राप्त होता है और (रत्नधाः) रम्यपदार्थों का धारक कराने वाला (देवः) दिव्यगुणयुक्त (हिरण्ययः) चमकीला (उत्सः) द्रवरूप (ऋतस्य) यज्ञ के (योनिम्) स्थान में (आ सीदसि) अपने धूम से सब ओर फैल कर स्थित होता है ॥

निघण्टु ३ । १० का प्रमाण और ऋ० ९ । १०७ । ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (५११)

अथ द्वितीया ॥

२ ३ १ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः । दधन्वाँ यो

२ ३ २ २ उ १ २ ३ २ ३ १ २

नर्यो अप्स्वा ३ न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥ (५१२)

पदपाठः—परि, इतः अ० । सिञ्चत क्रि० । सुतम् २ । सोमः, यः १ । उत्तमम्, हविः १ । दधन्वान्, यः, नर्यः, १ । अप्सु ७ । अन्तः अ० । आसुषाव क्रि० । सोमम् २ । अद्रिभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(यः),(नर्यः) नराणां हितकरोऽध्वर्य्वादिर्मनुष्यः (सोमम् अप्सु अन्तः अद्रिभिः आसुषाव) सोमौषधिं जलानां मध्ये पाषाणैरभिषुणोति (यः सोमः उत्तमम् हविः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अस्तितं (सुतम्) अभिषुतं सोमं (दधन्वान्) धारयन्तो यूयम् (इतः) अस्मिन्त्संसारे (परिषिञ्चत) सर्वतः प्रसारयत हवनेनेति शेषः ॥

यद्वा-(यः) (नर्यः), नराणां हितकरः परोपकारी आत्मज्ञानी पुरुषः (अप्सु अन्तः) कर्मसु अन्तःसाक्षिणं (सोमम्) परमात्मरूपममृतम् (अद्रिभिः) प्राणायामैः (आसुषाव) साक्षात्करोति (यः सोमः) यत्परमात्मरूपममृतम् (उत्तमं हविः) सर्वोत्तमं ग्रहणयोग्यं ज्ञानयज्ञस्य हव्यमस्ति, (सुतम्) तत् साक्षात्कृतममृतं (दधन्वान्) धारयन्तो महात्मानः (इतः) संसारे (परि षिञ्चत) यूयम् सर्वत उपदिशत ॥

इतो इति संहितायां छान्दसं रोरुत्वम् ॥ अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् (उणा० ४ । ६५) इत्यदेः क्रिनि "अद्रिः" प्राणः सर्वभक्षकत्वात् । प्राणस्यान्नमिदं सर्वमित्याद्युक्तत्वात् ॥ अप इति कर्मनाम । निघं० २ । १ ॥ ऋग्वेदे ९ । १०७ । १ ऽपि ॥२॥ (५१२)

भाषार्थः-(यः) जो (सोमः) सोम (उत्तमं हविः) उत्तम हव्यपदार्थ है, उस (सोमम्) सोम को (यः) जो अध्वर्यु आदि पुरुष (अप्सु अन्तः) जलों के मध्य में (अद्रिभिः आसुषाव) पाषाणों से रस खींचता है वह पुरुष (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी है और (सुतम्) खींचे हुवे उस सोम को (दधन्वान्) धारण करने वाले तुम लोग (इतः) इस संसार में (परिषिञ्चत) हवन से सब ओर छिड़को=फैलाओ ॥

यद्वा-(यः) जो (सोमः) परमात्मा रूपी अमृत (उत्तमं, हविः) सर्वोत्तम, ज्ञानयज्ञ का हवि ग्रहणयोग्य पदार्थ है, उस (सोमम्) परमात्मा रूपी अमृत (अप्सु अन्तः) कर्मों के साक्षिभूत को (यः) जो उपासक (अद्रिभिः) प्राणायामों से (आसुषाव) साक्षात्करता है, वह पुरुष (नर्यः) मनुष्यमात्र का हितकारी है और तुम लोग उस (सुतम्) साक्षात् किये हुवे परमात्मा रूपी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अमृत को (दधन्वान्) धारण करते हुवे (इतः) इस संसार में (परिषिञ्चत) सब ओर छिड़को=आत्मज्ञान का उपदेश करो ॥

उणादि ४ । ६५ निघण्टु २ । १ इत्यादि प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०७ । १ में भी ॥ २ ॥ (५१२)

अथ तृतीया-

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ २ ३ २

आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया । जनो न

३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २

पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥३॥ (५१३)

पदपाठः—आ अ० । सोम सं० । स्वानः १ । अद्रिभिः ३ । तिरः अ० । वाराणि, अव्यया २ । जनः १ । न अ० । पुरि ७ । चम्वोः ७ । विशत् क्रि० । हरिः १ । सदः २ । वनेषु ७ । दध्रिषे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(अद्रिभिः) प्राणायामैः (स्वानः) साक्षात्क्रियमाणः (अव्यया) अव्ययानि (वाराणि) सूर्यकिरणतेजांसि यानि सर्वं जगदावृण्वन्ति तानि (तिरः) तिरस्कुर्वन् (हरिः) सर्वस्य ग्रहणकर्त्ता त्वं (सोम) अमृतस्वरूप ! परमेश्वर ! (चम्वोः) द्यावापृथिव्योर्मध्ये (आ विशत्) सर्वतोविशन्भवसि । दृष्टान्तः—(न) यथा (जनः) प्राणिवर्गः (पुरि) नगरे सर्वतो विशन्भवति तद्वत् । स त्वं (वनेषु) एकान्तदेशेषु (सदः) ध्यानस्थानं हृदयदेशम् (दध्रिषे) धार्यसे ॥

यद्वा—(अद्रिभिः) पाषाणैः (स्वानः) अभिषूयमाणः (अव्यया वाराणि तिरः) अव्ययानि सूर्यतेजांसि तिरस्कुर्वन् (हरिः) हरितवर्णः त्वं (सोम) ओषधे ! (चम्वोः) हवनेन द्यावापृथिव्योर्मध्ये (आविशत्), (जनो न पुरि)। स त्वं (वनेषु) जलेषु (सदः) स्थानं (दध्रिषे) ॥

यदा मनुष्यैः शिलादिभिः सोमस्य स्वरसो निःसार्याऽग्नौ

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हूयते, तदा स हरितवर्णधूमरूपेण, सूर्यवत्प्रकाशमानो मेघमण्डलस्थजलेषु स्थानं प्राप्नोति इति भावः ॥

चम्वौ इति द्यावापृथिव्योर्नाम निघं० ३।३० ॥ ऋग्वेदे तु ९।१०७।१० स्वानः=सुवानः। दध्रिषे=दधिषे इत्यन्तरम् ॥३॥ (५१३)

भाषार्थः—(अद्रिभिः) प्राणायामों से (स्वानः) साक्षात् किये जाते हुवे और (अव्यया, वाराणि, तिरः) नहीं घटने वाली, सूर्य की किरणों को, तिरस्कृत [मात] करते हुवे (हरिः) सब का ग्रहण करने वाले आप (सोम) हे अमृतस्वरूप! परमात्मन्! (चम्वोः) द्युलोक और पृथिवीलोकों में (आ विशत) सर्वत्र प्रवेश किये हुवे वर्त्त रहे हैं। दृष्टान्त-(न) जैसे (जनः) प्राणिवर्ग (पुरि) नगर में सर्वत्र प्रविष्ट रहते हैं तद्वत्। वह आप (वनेषु) एकान्त ध्यानयोग्य देशों में (सदः) हृदयकमल रूपी स्थान में (दध्रिषे) धारण किये जाते हैं ॥

यद्वा-(अद्रिभिः स्वानः) शिलबट्टों से स्वरस निकाला जाता हुवा और (अव्यया) न घटने वाली (वाराणि) सब की आच्छादक सूर्यकिरणों को (तिरः) अपनी चमक से तिरस्कृत करता हुआ (हरिः) हरितवर्ण धूम वाला (सोम) ओषधिविशेष! (चम्वोः) हवन से पृथिवी आकाश में (आविशत्) सर्वतः प्रवेश करके वर्त्तमान होता है। (जनो न पुरि) जैसे नगरी में प्राणिवर्ग। और (वनेषु) मेघस्थ जलों में (सदः दध्रिषे) स्थान में धारण कराया जाता है ॥

अर्थात् जब मनुष्य शिलबट्टों से सोम का स्वरस निकाल कर अग्नि में हवन करते हैं, तब हरे रङ्ग के धुवें वाला सोम आकाश और पृथिवी में सूर्यकिरण सा चमकता हुवा मेघस्थ जलों में स्थान पाता है ॥

निघण्टु ३। ३० का प्रमाण और ऋ० ९। १०७। १० का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (५१३)

अथ चतुर्थी ॥

१ २ ३१२ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा। अꣳशोः पयसा
३१ २र३२ ३ १ २ ३ १२
मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥ (५१४)

पदपाठः—प्र अ० । सोम सं० । देववीतये ४ । सिन्धुः १ । न अ० । पिप्ये

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

क्रि० । अर्णसा ३ । अंशोः ६ । पयसा ३ । मदिरः १ । च । जागृविः १ । अच्छ अ० । कोशं, मधुश्चुतम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) हे अमृत! परमेश्वर! (न) यथा (सिन्धुः) समुद्रः (अर्णसा) जलेन (प्र पिप्ये) प्रवृद्धः प्रपूर्णश्च विद्यते, तथा त्वम् (अंशोः पयसा) अमृतजलेन पूर्णोऽसि। अतएव कृपया (मदिरः) हर्षकरः (न) च (जागृविः) चेतनस्त्वम् (देववीतये) विद्वदुपासकतर्पणाय (मधुश्चुतं कोशम्) आत्ममधुनः क्षारयितारं हृदयकोशम् (अच्छ) प्राप्नुहि ॥

यद्वा-(सोम) ओषधिविशेष! (सिन्धुर्न अर्णसा) यथा समुद्रो जलेन, तथा (अंशोः) सोमलताखण्डस्य (पयसा) रसेन (प्र पिप्ये) प्राप्यायसे। अतः (मदिरः) हर्षकरः (जागृविर्न) आलस्यनिवारकश्च (देववीतये) देवतृप्तये (मधुश्चुतम्) मधुनः क्षरणकरं (कोशम्) द्रोणकलशम् (अच्छ) ॥

यथा समुद्रः सर्वतो जलपूर्णोऽस्ति, तथा सोमोऽपि सर्वतो रसपूर्णो हृष्टिपुष्टिप्रदस्तमोनिवारकश्च वर्त्तते। स हि देवयजनाय द्रोणकलशादिषु स्थाप्योपयोक्तव्योऽस्ति। इतिभावः॥

आत्मनो मधुत्वं शतपथे चतुर्दशकाण्डे उक्तम् ॥ ऋग्वेदे ९। १०७। १२ ऽपि ॥ ४ ॥ (५१४)

भाषार्थः-(सोम) हे अमृत! परमात्मन्! (न) जैसे (सिन्धुः) समुद्र (अर्णसा) जल से (प्र पिप्ये) सर्वतः पूर्ण है, ऐसे ही आप (अंशोः पयसा) अमृत रूपी जल से पूर्ण हैं। अतएव कृपा करके (मदिरः) हर्षकारक (न) और (जागृविः) चेतन आप (देववीतये) विद्वान् उपासकों की तृप्ति के लिये (मधुश्चुतं कोशम्) आत्मा रूपी मधु को उपदेश द्वारा फैलाने वाले हृदय कोश को (अच्छ) प्राप्त हों ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यद्वा-(सोम) ओषधिविशेष ! (सिन्धुर्नाऽर्णसा प्र पिप्ये) जैसे समुद्र जल से पूर्ण है, वैसे (अंशोः पयसा) लताखण्ड के रस से तू पूर्ण है, अतः (मदिरः) हर्षकारक (न) और (जागृविः) आलस्यनिवारक (देवपीतये) देवयजन के लिये (मधुश्चुतं कोशम्) मधु टपकाने वाले द्रोणकलश को (अच्छ) प्राप्त हो ॥

जिस प्रकार समुद्र सर्वतः जल से पूर्ण है, इसी प्रकार सोम सर्वतः रस से पूर्ण है। हृष्टपुष्टिकारक, आलस्यनिवर्त्तक वह सोम देवयजन के लिये द्रोण-कलशादि पात्रों में रख कर वर्त्तना चाहिये। यह तात्पर्य है ॥

आत्मा का मधु नाम से वर्णन शतपथ के १४ वें काण्ड में आया है। ऋ० ९। १०७। १२ में भी ॥ ४ ॥ (५१४)

अथ पञ्चमी-

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २

सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधिष्णुभिरवीनाम् । अश्वयेव

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५॥ (५१५)

पदपाठः-सोमः १ । उ अ० । ष्वाणः १ । सोतृभिः ३ । अधि अ० । स्नुभिः ३ । अवीनाम् ६ । अश्वया ३ । इव अ० । हरिता ३ । याति क्रि० । धारया, मन्द्रया ३ । याति । धारया ॥

अन्वितपदार्थः-(इव) यथा (सोमः), (सोतृभिः) अभि-षुण्वद्भिरध्वर्युभिः (अवीनां स्नुभिः) पर्वतानां भागैः पाषाणैः (स्वानः) अभिषूयमाणः (अश्वया) शीघ्रगामिन्या (हरिता) हरितया (धारया), (अधि याति) धूमो भूत्वाऽऽकाशं गच्छति [तथैवोपासितोऽमृतः] (उ) परमात्माऽपि (मन्द्रया) गभीरया (धारया) धारणया [ध्यातः] (याति) भक्तान्प्राप्नोति ॥

अवयः शैलमेषार्काः (अम० ३ । ३ । २०६) ॥ स्नुः प्रस्थः=पर्वतैकदेशः (अम० २ । ३ । ५) ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०७ । ८ षुवाणः इत्यन्तरम् ॥ ५ ॥ (५१५)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(इव) जिस प्रकार (सोमः) सोम (सोतृभिः) अभिषव करने वाले अध्वर्युओं से (अद्रीनाम्) पर्वतों के (स्नुभिः) टुकड़ों=पाषाणों द्वारा (स्वानः) क्षेत कर स्वरस निकाला जाता हुवा (अञ्जया) शीघ्रगामिनी (हरिता धारया) हरी धूमधारा से (अधि याति) ऊपर को जाता है (उ) इसी प्रकार [उपासित अमृत परमात्मा की] (मन्द्रया धारया) गम्भीर धारणा से ध्यान किया हुवा (याति) भक्तों को प्राप्त होता है ॥

अमरकोश ३ । ३ । २०६ ॥ २ । ३ । ५ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०७ । ८ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (५१५)

अथ षष्ठी—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
तवाहꣳ सोम रारण सख्य इन्दो दिवे दिवे। पुरूणि बभ्रो
१ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २
निचरन्ति मामव परिधींरति ताँ इति ॥ ६ ॥ (५१६)

पदपाठः—तव ६ । अहम् १ । सोम सं० । रारण क्रि० । सख्ये ७ । इन्दो सं० । दिवे, दिवे अ० । पुरूणि १ । बभ्रो सं० । निचरन्ति क्रि० । माम् २ । अव अ० । परिधीन् २ । अति अ० । तान् २ । इहि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(बभ्रो) विश्वंभर ! (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (सोम) अमृतरूप ! परमेश्वर ! (अहम् तव सख्ये दिवे दिवे) (रारण) रमे । रणेर्लिट उत्तमे णलि रूपम्। (पुरूणि) बहूनि स्थूलसूक्ष्मादिशरीराणि (माम्), (अव नि चरन्ति) बन्धनेन बाधन्ते (तान् परिधीन्) परितो वर्त्तमानानुपाधीन् (अतीहि) निवार्य प्राप्नुहि । मुक्तिं विधेहीति भावः ॥

यो द्वे च (उणा० १ । २१) इत्यनुवर्त्त्य, कुर्भ्रश्च १ । २२ इति भृधातोः कुः । बिभर्त्ति सर्वमिति बभ्रुर्विष्णुः । विष्णौ बभ्रुः इत्यमरः ३ । ३ । १७० तट्टीकायाम्—विष्णाविति हैमः ॥ ऋग्वेदे ९ । १०७ । १९ ऽपि ॥ ६ ॥ (५१६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(अग्ने) विश्वम्भर! (इन्दो) परमैश्वर्यवन्! (सोम) अमृत! परमात्मन्! (अहं तव सख्ये) मैं आप की आज्ञानुवर्त्तिता में (दिवे दिवे रारण) प्रति दिन रमण करता हूं (पुरूणि) अनेक योनियातनायें (माम्) मुझे (अव नि षरन्ति) सताती हैं। कृपया (तान् परिधीन्) उन उपाधि=बन्धनों को (अतीहि) निवारण करके प्राप्त हूजिये=मुक्ति दीजिये॥

उणादि १। २१, १। २२ अमर ३। ३। १७० तथा हैमकोषादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ९। १०७। १९ में भी॥ ६॥ (५१६)

अथ सप्तमी—

३ १ २ ३१ २२ ३ २ ३ १ २

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि। रयिं पिशङ्गं

३१ २३ २३ १२ ३क २२

बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाऽभ्यर्षसि॥ ७॥ (५१७)

पदपाठः—मृज्यमानः १। सुहस्त्या सं०। समुद्रे ७। वाचम् २। इन्वसि क्रि०। रयिम्, पिशङ्गम्, बहुलम्, पुरुस्पृहम् २। पवमान सं०। अभ्यर्षसि क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(पवमान) हे पवित्रस्वरूप! (सुहस्त्या) सुप्रकाश! परमेश्वर! त्वम् (मृज्यमानः) मृग्यमाणः (समुद्रे) हृदयान्तरिक्षे (वाचम् इन्वसि) वाणीं प्रेरयसि वेदमुपदिशसि अथ च (पिशङ्गम्) पीतवर्णं सुवर्णादि (बहुलम्) प्रभूतम् (पुरुस्पृहं) बहुभिः स्पृहणीयं (रयिं) धनम् (अभ्यर्षसि) अभितो गमयसि प्रयच्छसीत्यर्थः॥

हसिमृग्रिणित्यादिना (उणा० ३। ८६) तनि—हसति प्रकाशते इति हस्तः॥ समुद्र इत्यन्तरिक्षनाम निघं० १। ३, इन्वतिर्गतिकर्मा। निघं० २। १४॥ ऋग्वेदे तु ९। १०७। २१ सुहस्त्य इति ह्रस्वान्तपाठः॥ ७॥ (५१७)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(पवमान) हे पवित्र ! (सुहस्त्या) शोभनप्रकाश ! परमेश्वर ! (मृज्यमानः) अन्वेषण किये हुवे आप (समुद्रे) हृदयान्तरिक्ष में (वाचम् इन्वसि) वाणी को प्रेरित करते हैं=वेदोपदेश करते हैं और (पिशङ्गम्) सुवर्णादि (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहे हुवे (प्रभूतम्) बहुत (रयिम्) धन को (अभ्यर्षसि) सब ओर से प्राप्त कराते=देते हैं ॥

उणादि ३ । ८६ निघण्टु १ । ३ ॥ २ । १४ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०७ । २१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ७ ॥ (५१७)

अथाऽष्टमी-

३ १ २र ३ २३ १२३ २३१२ ३ १ २र
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । समुद्रस्याधि
२१२ ३ १२ ३१२ ३१२
विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ ८ ॥ (५१८)

पदपाठः-अभि अ० । सोमासः, आयवः १ । पवन्ते क्रि० । मद्यम्, मदम् २ । समुद्रस्य ६ । अधि अ० । विष्टपे ७ । मनीषिणः, मत्सरासः, मदच्युतः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(मनीषिणः) विद्वांसः (सोमासः) प्राप्ताऽमृताः (मत्सरासः) अतएव मत्सरा आनन्दमग्नाः (मदच्युतः) मदस्याऽऽनन्दस्य च्यावयितार उपदेष्टारः (आयवः) मनुष्याः (मद्यम्) आनन्दकरं (मदम्) रसम् (समुद्रस्य) हृदयान्तरिक्षस्य (अधि विष्टपे) स्थाने (अभि पवन्ते) अभिषुण्वन्ति ॥

आयवो मनुष्याः निघं० २ । ३ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०७ । १४ विष्टपे=विष्टपि, मदच्युतः=स्वर्विदः इत्यन्तरम् ॥८॥ (५१८)

भाषार्थः-(मनीषिणः) ज्ञानी (सोमासः) जिन्हों ने अमृत पाया है वे (मत्सरासः) इसी से आनन्द में मग्न और (मदच्युतः) आनन्द को उपदेश से फैलाने वाले (आयवः) मनुष्य (मद्यम्) आनन्दकारक (मदम्) रस को (समुद्रस्य) हृदयान्तरिक्ष के (अधि) भीतर (विष्टपे) स्थान में (अभिपवन्ते) संपादित करते हैं ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघण्टु २ । ३ का प्रमाण और ऋ० ९ । १०७ । १४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥ (५१८)

अब नवमी—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ २ १ ३२

पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः । त्वं विप्रो

३ १ २ ३ १ २

अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥ ९ ॥ (५१९)

पदपाठः—पुनानः १ । सोम सं० । जागृविः १ । अव्याः क्रि० । वारैः ३ । परि अ० । प्रियः, त्वम्, विप्रः १ । अभवः क्रि० । अङ्गिरस्तम सं० । मध्वा ३ । यज्ञम् २ । मिमिक्ष क्रि० । नः २ ॥

अन्वितपदार्थः—(सोम) हे अमृत ! (अङ्गिरस्तम) मेधाविश्रेष्ठ ! (त्वम्), (पुनानः) पवित्रः (जागृविः) चेतनः (प्रियः) सर्वहितैषी (विप्रः) सर्वज्ञः (अभवः) असि । कृपया (वारैः) वरणीयैरात्मगुणैः (परि अव्याः) अस्मान्परिरक्षेः । तथा (नः) अस्माकं (यज्ञम्) ज्ञानयज्ञादिकं (मध्वा) मधुनाऽऽनन्दरसेन (मिमिक्ष) सेक्तुमिच्छ । मिहेः सनि रूपम् ॥

विप्रः इति मेधाविनाम निघं० ३ । १५ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०७ । ६ अव्या वारैः=अव्यो वारे, अङ्गिरस्तम=अङ्गिरस्तमः, मिमिक्ष णः=मिमिक्ष नः इत्यन्तरम् ॥ ९ ॥ (५१९)

भाषार्थः—(सोम) हे अमृत ! (अङ्गिरस्तम) हे मेधावियों में उत्तम ! परमेश्वर ! (त्वम्) आप (पुनानः) पवित्र (जागृविः) चेतन (प्रियः) सर्वहितैषी (विप्रः) सर्वज्ञ (अभवः) हैं । कृपा करके (वारैः) अपने वरणीय गुणों से (परि अव्याः) हमारी सब ओर से रक्षा कीजिये । तथा (नः) हमारे (यज्ञम्) ज्ञानयज्ञादि को (मध्वा) आनन्दरस से (मिमिक्ष) सींचने की इच्छा कीजिये ॥

निघण्टु ३ । १५ का प्रमाण और ऋ० ९ । १०७ । ६ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (५१९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ दशमी—

१ २ ३ २३ १ २ ३१२ ३२ ३१२ ३ १
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः । सहस्रधारो अत्य-
२२ ३ १ २ ३ १ २
व्यमर्षति तमीं मृजन्त्यायवः ॥ १० ॥ (५२०)

पदपाठः—इन्द्राय ४ । पवते क्रि० । मदः, सोमः १ । मरुत्वते ४ । सुतः, सहस्रधारः १ । अति अ० । अव्यम् २ । अर्षति क्रि० । तम् २ । ईम् अ० । मृजन्ति क्रि० । आयवः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(मदः) हृष्टिकरः (सुतः) अभिषुतः (सहस्रधारः) बहुधारः (सोमः) ओषधिरस, आत्मिकानन्दरसो वा (मरुत्वते इन्द्राय) ऋत्विग्वते यजमानाय, इन्द्रियाधिष्ठात्रे प्राणवते आत्मने वा (पवते) प्राप्नोति । (ईम्) अतएव (तम्) सोमम् (आयवः) मनुष्याः (मृजन्ति) संपादयन्ति । स च (अव्यम्) रक्षणीयं पुरुषम् (अति) बाहुल्येन (अर्षति) प्राप्नोति ॥ ऋग्वेदे ९ । १०७ । १७ ऽपि ॥ १० ॥ (५२०)

भाषार्थः—(मदः) हर्षकारक (सुतः) संपादित (सहस्रधारः) बहुत धारों वाला (सोमः) ओषधिरस, वा आत्मिकानन्द रस (मरुत्वते इन्द्राय) ऋत्विजों वाले यजमान वा प्राणों वाले इन्द्रियाधिष्ठाता आत्मा के लिये (पवते) प्राप्त होता है, (ईम्) इसी लिये (तम्) उस को (आयवः) मनुष्य मृजन्ति) संपादित करते हैं और वह (अव्यम्) रक्षायोग्य पुरुष को (अति) बहुतायत से (अर्षति) प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ । १०७ । १७ में भी ॥ १० ॥ (५२०)

अथैकादशी—

१ २ ३ १ ३ १ २२ ३ १ २ १ २३१
पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या । त्वꣳ समुद्रः
२३ २२ ३ १ २ ३ १
प्रथमे विधर्मन्देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ ११ ॥ (५२१)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—पवस्व क्रि० । वाजसातमः १ । अभि अ० । विश्वानि, वार्या २ । त्वम् १ । समुद्रः १=७ । प्रथमे ७ । विधर्मन् ७ । देवेभ्यः ४ । सोम सं० । मत्सरः १॥

अन्वितपदार्थः—(सोम) हे अमृत ! परमात्मन् (वाजसातमः) अन्नादीनां दातृतमः (मत्सरः) आनन्ददायकः (त्वम्), (विश्वानि) सर्वाणि (वार्या) वार्याणि वरणीयानि स्तोत्राणि (अभि) लक्षीकृत्य (प्रथमे) विस्तृते वा श्रेष्ठे (विधर्मन्) विशेषण धारके (समुद्रः) समुद्रे हृदयान्तरिक्षे (देवेभ्यः) उपासकेभ्यः (पवस्व) स्वप्राप्तिं विधेहि ॥ ऋग्वेदे तु ९।१०७।२३ "पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या । त्वं समुद्रं प्रथमो विधारयः" इति पूर्वपादत्रयेऽन्तरम् ॥ ११ ॥ (५२१)

भाषार्थः—(सोम) हे अमृत ! परमात्मन् ! (वाजसातमः) अन्नादि के अत्यन्त दाता (मत्सरः) आनन्दस्वरूप और आनन्ददायक (त्वम्) आप (विश्वानि) सब (वार्या) वरणीय स्तोत्रों को (अभि) लक्ष्य करके (प्रथमे) विशाल वा श्रेष्ठ (विधर्मन्) विशेष करके धारक (समुद्रः) हृदयान्तरिक्ष में (देवेभ्यः) अपने उपासकों के लिये (पवस्व) अपनी प्राप्ति का विधान कीजिये ॥ ऋ० ९ । १०७ । २३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥ (५२१)

अथ द्वादशी—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया । मरुत्वन्तो मत्सरा
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयाꣳसि च ॥ १२ ॥ (५२२)

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥

पदपाठः—पवमानाः १ । असृक्षत क्रि० । पवित्रम् २ । अति अ० । धारया ३ । मरुत्वन्तः, मत्सराः १ । इन्द्रिया, हया २ । मेधाम् २ । अभि अ० । प्रयांसि २ । च अ० ॥

अन्वितपदार्थः—(पवमानाः) पवित्रीभूताः (मरुत्वन्तः) मरुतः प्राणास्तद्वन्तो मनुष्याः (मत्सराः) आनन्दमग्नाः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सन्तः (धारया) अमृतधारया (पवित्रम्) परमात्मानम् (अभि) सर्वतः प्राप्य, (हया) हयरूपाणि (इन्द्रिया) इन्द्रियाणि तदुपलक्षितदेहांश्च (मेधाम्) बुद्ध्युपलक्षितान्तःकरणानि (प्रयांसि) धान्योपलक्षितसर्वसांसारिकोपस्करजातानि (च), (असृक्षत) त्यजन्ति=मुक्ता भवन्ति इतिभावः ॥

पवित्रं पुनातेः०००इन्द्रः पवित्रमुच्यते इति निरु० ५ । ६ ॥ प्रयः=अन्नम् । निघं० २ । ७ ॥ ऋग्वेदे ९ । १०७ । २५ ऽपि ॥ १२ ॥ (५२२) ॥ इति बार्हतम् ॥

* इति पञ्चमाऽध्याये पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ *

भाषार्थः-(पवमानाः) पवित्र हुवे (मरुत्वन्तः) प्राणी (मत्सराः) आनन्द में मग्न (धारया) अमृत धारा से (पवित्रम्) पवित्र परमात्मा को (अभि) सर्वतः प्राप्त होकर (हया) घोड़े रूपी (इन्द्रिया) इन्द्रियों को, (मेधाम्) बुद्धि और उस से उपलक्षित मन चित्त अहङ्कार को (च) और (प्रयांसि) धान्यादि सांसारिक सामग्री को (असृक्षत) त्याग देते हैं=मोक्ष पाते हैं ॥

निरुक्त ५ । ६ और निघण्टु २ । ७ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०७ । २५ में भी ॥ १२ ॥ (५२२)

* यह पञ्चमाध्याय में पांचवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ५ ॥ *

तथा यह बृहती छन्दों का प्रकरण हुवा ॥

—⊜:*:⊜—

प्र तु द्रवेति दशतौ त्रिष्टुभो दश कीर्त्तिताः ॥१॥

अथ षष्ठी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-उशना ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २र३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र २ १

प्र तु द्रव परि कोशं निषीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष । अश्वं

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥ (५२३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-प्र, तु अ० । द्रव क्रि० । परि अ० । कोशम् २ । निषीद क्रि० । नृभिः ३ । पुनानः १ । अभि अ० । वाजम् २ । अर्ष क्रि० । अश्वम् २ । न अ० । त्वा, वाजिनम् २ । मर्जयन्तः १ । अच्छ अ० । बर्हिः २ । रशनाभिः ३ । नयन्ति क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-प्रकरणात्-सोम ! (नृभिः) अध्वर्युभिः (पुनानः) शोध्यमानः (प्र द्रव) प्रद्रवसि त्वरया गच्छसि (तु) पुनः (कोशम्) द्रोणकलशम् (अभि परि निषीद) व्याप्य, सर्वतःस्थितो भवसि । (अच्छ) सुष्ठु (वाजिनम्) बलवन्तम् (अश्वम्), (मर्जयन्तः) मार्जयन्तोऽश्वसेवकाः (रशनाभिः) प्रग्रहैः (न) यथा (नयन्ति), तथैव (त्वा) त्वामध्वर्यवः (बर्हिः) यज्ञं नयन्ति स त्वं (वाजम्) बलम् (अर्ष) अर्षसि प्रापयसि ॥

सोमं परिशोध्य, द्रोणकलशे स्थाप्य, अध्वर्यवो यज्ञं नयन्ति, तेन स बलप्रदो भवति । यथा सुशिक्षितान्सुसंस्कृतां-श्चाऽश्वान्युद्धयज्ञं नयन्ति, बलं संपादयन्ति, विजयं चाप्नुवन्ति॥

यद्यपि संहितायां (तु) इत्येव पाठोऽस्ति, परं न जाने सायणाचार्यादिभिः कथं (नु) इत्यस्य व्याख्यानं क्रियते स्म । नापि लेखकप्रमादोऽनुमातुं मूले शक्यः-यतः अशनसाम्नि, वृषौशनसाम्नि, जनस्याभीवर्त्तयोः साम्नोः, त्रिष्टुबौशनसाम्नि, जीवानन्दमुद्रापितपुस्तके, लवपुरपुस्तके चैवं सप्तसु स्थलेषु (तु) इत्येव पाठः ॥ ऋग्वेदे ९ । ८७ । १ ऽपि (तु) इत्येव ॥ १ ॥ (५२३)

भाषार्थः-प्रकरण से-सोम ! (नृभिः) अध्वर्युसंज्ञक मनुष्यों से (पुनानः) शोधा जाता हुवा (प्र द्रव) त्वरा से चलता है (तु) और (कोशम्) द्रोणकलश को (अभि परि निषीद) व्याप=भर कर स्थित होता है । (अच्छ) भले प्रकार से (वाजिनम्) बलवान् (अश्वम्) घोड़े को (मर्जयन्तः) मार्जन करते हुवे

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अश्वसेवक (रशनाभिः) लगामों से (न) जैसे (नयन्ति) ले जाते हैं, वैसे ही (त्वा) तुझ को अध्वर्यु लोग (बर्हिः) यज्ञकुण्ड को ले जाते हैं, वह तू (वाजम्) बल को (अर्ष) प्राप्त कराता है ॥

अर्थात्-सोमरस को स्वच्छ सम्पन्न करके द्रोणकलशादि पात्रविशेष में स्थापित करके अध्वर्यु लोग यज्ञ को ले जाते हैं, उस से वह बलदायक होता है। जैसे कि सुशिक्षित और सुसंस्कृत घोड़ों को युद्धयज्ञ को ले जाते हैं और बल संपादित करते हैं (बल में उपमा है) और विजय को प्राप्त कराते हैं ॥

यद्यपि मूलसंहिता में (तु) पाठ है, परन्तु न जाने किस कारण से सायणाचार्य्यादि ने (नु) की व्याख्या की है। यह भी सन्देह नहीं कर सक्ते कि संहिता में "तु" पाठ अशुद्ध हो और लेखक का प्रमाद हो, क्योंकि-अग्नसाम, वृषौशन साम, जनस्याभीवर्त्त २ सामों और त्रिष्टुबौशन साम इन ५ सामगानों में, जीवानन्द के छापे पुस्तक और पं० गुरुदत्त के लाहोर के छापे पुस्तक और मुम्बई के छपे ऋग्वेद ९। ८७। १ मन्त्रस्थपाठ में; इस प्रकार ८ स्थानों में (तु) ही देखा जाता है, (नु) नहीं ॥ १ ॥ (५२३)

अथ द्वितीयायाः-वृषणो वासित ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २र३१२ ३ २३२३१२ ३ १२ १२

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमाविवक्ति। महि-

३ १२ ३२ ३१ २३ २१क२र ३ १२

व्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२॥ (५२४)

पदपाठः-प्र अ०। काव्यम् २। उशनेव अ०। ब्रुवाणः, देवः १। देवानाम् ६। जनिम् २। आविवक्ति क्रि०। महिव्रतः, शुचिबन्धुः, पावकः १। पदा २। वराहः १। अभ्येति क्रि०। रेभन् १ ॥

अन्वितपदार्थः-(महिव्रतः) वाक्कर्मा (शुचिबन्धुः) पवित्राणां पुरुषाणां बन्धुरिव हितैषी (पावकः) शुद्धः शोधकश्च (देवानां देवः) परमेश्वरः (उशनेव) कामयमानइव [वस्तुतोऽकामोऽपि] (काव्यम्) वेदम् (प्र ब्रुवाणः) उपदिशन् (जनिम्) सोमाद्योषधिजन्म (आविवक्ति) विशेषेण प्रवदति (पदा) पदानि वैदिकानि (अभि) हृदयाभ्यन्तरे (रेभन्) उपदिशन् (वराहः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वरं श्रेष्ठमहः कल्पादिनं यस्य सः कल्पारम्भे (एति) वेद-प्रकाशभूमीन्ऋषीन्प्र प्रोति ॥

यद्यपि परमात्मा स्वयमऽकामोस्ति, परं संसारानुजिघृक्षया कामयमानइव प्रतिकल्पारम्भं पवित्रर्षीणां हृदयेषु वेदोपदेशं कृत्वा दिव्यपदार्थगुणकर्मस्वभावोत्पत्त्यादिकमुपदिशति । स हि वेदद्वारा वाक्प्रवर्त्तकत्वाद्वाक्कर्मा, पवित्रस्वरूपः, पवित्राणां हितकरः, देवानां देवः, काव्यमिवालङ्कारादिगुणोपबृंहितपदवाक्यविशिष्टं वेदमुपदिशन् सर्वमनुगृह्णाति ॥

वशेः कनसिः (उणा० ४ । २३९) वष्टि कामयते स उशना इति ॥ वच परिभाषणे (अदा० प०) व्यत्ययेन विकरणस्य श्लुः ३ । १ । ८५ बहुलं छन्दसीति ७ । ४ । ७८ अभ्यासस्येत्वे-विवक्ति ॥ महीति वाङ्नाम निघं० १ । ११ व्रतमिति कर्मनाम २ । १ ॥ वराहशब्देनात्र केचिदऽज्ञा वराहाऽवतारं वर्णयन्ति । परं न वेदेषु कुत्राप्यऽवताराणां वर्णनं विद्यते, नाऽप्यत्र । न चाऽत्र सायणभाष्येऽप्यवतारपरोऽर्थः । न च वराहशब्दनिर्वचनावसरे यास्केन सोर्थो गृहीतः । यथा-"वराहो मेघो भवति वराहारः । वरमाहारमाहार्षीरिति च ब्राह्मणम् । विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्तेत्यपि निगमो भवति । अयमपीतरो वराह एतस्मादेव । वृहति मूलानि वरं वरं मूलं वृहतीति वा । वराहमिन्द्र एमुषमित्यपि निगमो भवति । अङ्गिरसोऽपि वराहा उच्यन्ते" । इत्यादि निरु० ५ । ४ ॥ वराहः सोमः इति विवरणमतेन सामश्रमी सत्यव्रतः । न हि कश्चन प्राचीनो भाष्यकृदऽत्र

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वराहाऽवतारपरमर्थं स्वीचकार ॥ ऋग्वेदे ९ । ९७ । ७ ऽपि ॥ २ ॥ (५२४)

भाषार्थः-(महिव्रतः) वाणी का करने=बनाने वाला (शुचिबन्धुः) पवित्र पुरुषों का बन्धु के समान हितकारी (पावकः) पवित्रस्वरूप और पवित्रकर्त्ता (देवानां देवः) देवों का देव परमात्मा (उशनेव) चाहता हुवा सा (काव्यम्) वेद का (प्र ब्रुवाणः) उपदेश देता हुवा (जनिम्) सोमादि पदार्थों के जन्म को (आविवक्ति) विशेष करके बतलाता है। (पदा) वेदपदों को (अभि) हृदयाभ्यन्तर में (रेभन्) बतलाता हुवा (वराहः) श्रेष्ठ कल्परूपी दिन वाला (एति) [कल्पारम्भ में वेदप्रकाशक ऋषियों को] प्राप्त होता है ॥

यद्यपि परमात्मा अपने आप निष्काम है, परन्तु संसार पर अनुग्रह की इच्छा से कामना वाला सा जान पड़ता है, वह प्रत्येक कल्परूपी दिन के आरम्भ में पवित्र ऋषियों के हृदय में वेदोपदेश देता हुवा सोमादि उत्तम अमूल्य पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव और जन्म का सविशेष उपदेश करता है। वह वेद द्वारा वाणी का प्रवर्त्तक और बनाने वाला भी होने से वाक्कर्त्ता कहाता है। पवित्रस्वरूप, पवित्रों का हितकारी, देवों का देव, काव्य के समान अलङ्कारादियुक्त वेद का उपदेश करता हुवा, सारे जगत् पर दया करता है ॥

उणादि ४ । २३९ अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ और ७ । ४ । ७८ निघण्टु १ । ११ ॥ २ । १ और निरुक्त ५ । ४ तथा विवरणकार और सत्यव्रत सामश्रमी जी के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

कोई लोग इस में 'वराह' शब्द के आजाने से वराहाऽवतार का वर्णन करते हैं, परन्तु यह अयुक्त है। क्योंकि वेदों में कहीं भी किसी अवतार का वर्णन नहीं, न परमेश्वर का अवतार सम्भव है, और वेदों में निराकार=देहरहित होने का प्रतिपादनहै, और सायणाचार्य ने भी इस मन्त्रके भाष्यमें अवतारका अर्थ नहीं किया, विवरणकार और सत्यव्रतजी भी 'वराह' शब्द का अर्थ 'सोम' दिखाते हैं, अवतार नहीं। निरुक्तकार यास्क मुनि भी वराह शब्द का अर्थ—मेघ, इन्द्र इत्यादि ही करते हैं और अपने अर्थ में ब्राह्मण और वेद के उदाहरण देते हैं। निदान वराह पद से अवतारविशेष का ग्रहण किसी प्राचीन भाष्यकार ने नहीं किया और जो २ विशेषण इस ऋचा में आये हैं, वे वराह में घट भी नहीं सकते ॥ ऋ० ९ । ९७ । ७ में भी ॥ २ (५२४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ तृतीयायाः—पराशर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २२ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २२ ३ २

तिस्रो वाच ईरयति प्र वन्हिर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः

॥ ३ ॥ (५२५)

पदपाठः—तिस्रः, वाचः २ । ईरयति क्रि० । प्र अ० । वन्हिः १ । ऋतस्य ६ । धीतिम् २ । ब्रह्मणः ६ । मनीषाम् २ । गावः १ । यन्ति क्रि० । गोपतिम् २ । पृच्छमानाः १ । सोमम् २ । यन्ति क्रि० । मतयः, वावशानाः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(वन्हिः) परमात्मदत्तं वेदोपदेशं वहन् प्रकाशकऋषिः (तिस्रः वाचः) ऋग्यजुःसामलक्षणाः वाचः तथा (ऋतस्य धीतिम्) सत्यस्य धारणाम् (ब्रह्मणो मनीषाम्) परमात्मनः सत्यां प्रज्ञां च (प्र ईरयति) लोके प्रचारयति, एवं सति (गावः) ताः वेदवाचः (गोपतिं पृच्छमानाः) वाक्पतिं परमात्मानं पृच्छन्त्य इव (यन्ति) अर्थात् सर्वथा परमात्मोपदिष्टानुकूलं बहिर्यान्ति, तथा (मतयः) वेदवाहिनामृषीणां बुद्धयः (वावशानाः) कामयमानाः (सोमम्) सोमादिप्रतिपाद्यमानवस्तुजातं(यन्ति) प्राप्नुवन्ति॥

पूर्वमन्त्रे परमात्मनः सकाशात् प्रातिभासिकं ज्ञानमृषयः प्रपद्यन्ते इत्युक्तम् । अत्र चेदमुच्यते, यत् सर्वथा याथार्थ्येनैव परमात्मोपदिष्टा एव ऋग्यजुःसामलक्षणा वाचो वोढार ऋषयः प्रचारयन्ति, न न्यूनाधिकम् । यथा कश्चिद्दूतः स्वामिनं पृष्ट्वा यथोपदिष्टं स्थानं गच्छति वदति च, तथैव ता ऋष्युच्चारिता वाचोऽपि परमात्मानं पृच्छन्त्य इव यथोपदिष्टं प्रचरन्ति । अतएव च प्रतिपाद्यमानानां

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सोमादिदिव्यपदार्थानां प्राप्तौ ऋषयो न भ्रमं प्राप्नुवन्ति, किन्तु तेषां बुद्धयो यथोपदिष्टानर्थान्प्रतिपद्यन्ते ॥

अत्र तिस्रो वाच इत्यनेन संहितात्रयस्य नास्ति ग्रहणमपि तु चतसृषु संहितासु वर्त्तमानानाम् ऋग्यजुःसामलक्षणवतीनां वाचां ग्रहणमिष्यते । यथाह जैमिनिः—तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। मी० २।१ । ३५ गीतिषु सामाख्या २ । १ । ३६ शेषे यजुः शब्दः २ । १ । ३७ इति ॥

गौः=वाणी निघं० १ । ११ ॥ निरुक्तपरिशिष्टकर्त्तृकं व्याख्यानं त्वित्थम्—" वह्निरादित्यो भवति स तिस्रो वाचः प्रेरयत्यृचो यजूंषि सामान्यृतस्यादित्यस्य कर्माणि ब्रह्मणो मतान्येषएवैतत्सर्वमक्षरमित्यधिदैवतम् । अथाध्यात्मं वह्निरात्मा भवति स तिस्रो वाच ईरयति प्रेरयति विद्यामतिबुद्धिमतामृतस्यात्मनः कर्माणि ब्रह्मणो मतान्ययमेवैतत्सर्वमनुभवतीत्यात्मगतिमाचष्टे (निरु० प० २ । १४)

विवरणकारोऽपि निरुक्तपरिशिष्टमनुसरन्निवैवाह—" तिस्रोवाचः ऋग्यजुःसामानि, अथवा तिस्रो वाचः सत्त्वरजस्तमांसि, अथवा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवृत्तयः । ईरयति प्रेरयति उदकरश्मींश्च । वहतीति वन्हिरादित्यः । ऋतस्य आदित्यस्य धीतिः । अथवा ऋतस्य सत्यस्य ब्रह्मणः । अथवा ऋतस्य धीतिर्यज्ञस्य वा आदित्यस्य वा हय इव—'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते'। ब्रह्मणो मनीषां गावः रश्मयः तेन विसृष्टा अथवा उदकानि। एतमेव गोपतिं रश्मिस्वामिनं वा पृच्छन्त्यइव सोमं यन्ति पृथिवीं वसानाः सर्वोपकाराय सोममादित्यं मतयः प्रज्ञायन्ते विषयान्प्रति प्रकाशन्ते इति रश्मयः । वावशाना आदित्यं यन्ति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रविशन्ति । अध्यात्मये वन्हिरात्मा भवति । वश्यादिगुण-संयोगात् । सः तिस्रो वाचः प्रेरयति । विद्याबुद्धिमनांसि । विद्या महान् । बुद्धिरहङ्कारो मन इति प्राधान्याद्भूतेन्द्रियाणि । ऋतस्यात्मनो धीतिं मनस इष्टानि कर्माणि प्रेरयन्ति । ब्रह्मण आत्मनः । गोपाः गोपायति । आत्मानमिन्द्रियाणि स्वामिनं पृच्छमानाः आत्मानं तदभिप्रायेण शब्दाद्यनुगमनात् । एतमेवमात्मानं सोमं कामयमाना इति यन्ति न भूयः प्रादुर्भवन्ति " ॥ ऋग्वेदे १ । ९७ । ३४ ऽपि ॥ ३ ॥ (५२५)

भाषार्थः—(वह्निः) ईश्वरदत्त ज्ञान के ले चलने वाला ऋषि (तिस्रःवाचः) तीन प्रकार की ऋग्, यजुः और साम लक्षणयुक्त वाणियों को (ऋतस्य धीतिम्) सत्य की धारणा और (ब्रह्मणः मनीषाम्) परमात्मा की सत्य प्रज्ञा को (प्र ईरयति) लोक में प्रचारित करता है, इस लिये (गावः) वेदवाणियें (गोपतिं पृच्छमानाः) वाणीपति=परमात्मा से पूछती हुई सी (यन्ति) बाहर जाती हैं अर्थात् ज्यों की त्यों प्रकाशित होती हैं, तथा (मतयः) वेदवाही ऋषियों की बुद्धियें (वावशानाः) सोमादि वेदप्रतिपादित पदार्थों की कामना करती हुईं (सोमम्) सोमोपलक्षित वस्तुमात्र को (यन्ति) प्राप्त होती हैं ॥

पूर्व मन्त्र में यह कहा गया था कि ऋषि लोग प्रत्येक कल्प के आरम्भ में ईश्वर से प्रातिभासिक ज्ञान को प्राप्त हुवा करते हैं । इस मन्त्र में यह कहा जाता है कि सर्वथा ज्यों का त्यों ही परमात्मा की ओर से हृदय में प्राप्त हुवा ज्ञान जो ऋग् यजुः और साम इन तीन प्रकार की ऋचाओं में वर्णित होता है, उसे ऋषि लोग प्रचार किया करते हैं । न्यूनाधिक कुछ नहीं । जिस प्रकार एक दूत अपने स्वामी से पूछ कर ज्यों का त्यों संदेश ले जाता है, इसी प्रकार वेदवाणियें मानो परमात्मा से पूछ कर चलती हैं । इसी लिये वेदों में प्रतिपादित सोमादि पदार्थों की यथार्थ प्राप्ति वेदवाही ऋषियों को हो जाती है, किसी प्रकार का भ्रम नहीं होता ॥

यहां तीन प्रकार की वाणी कहने से वेदों की ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद इन ३ संहिताओं का ग्रहण नहीं है, प्रत्युत चारों संहिता ऋग् यजुः साम

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथर्व में तीन प्रकार की ऋचा हैं। एक ऋक्, दूसरी यजुः, तीसरी साम। जैसा कि मीमांसादर्शन सूत्र २। १। ३५-३६-३७ में जैमिनि जी ने माना है कि "जिन की अर्थवश से पादव्यवस्था है वे ऋक्, जिन में गीति हैं वे साम, और शेष यजुः" ॥ मीमांसा के सूत्र और निघण्टु १। ११ तथा निरुक्त परिशिष्ट और इस का अनुसरण करते हुवे विवरणकार का मत संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ निरुक्त के परिशिष्ट की व्याख्या सी करते हुवे इस प्रकार कहते हैं कि ३ वाणी ऋग् यजुः साम, वा सत्व रज तम, वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति वृत्तियां। जल और किरणों को वहन करने=ले चलने से सूर्य को वन्हि कहा है। ऋत का अर्थ आदित्य वा ब्रह्म है। मनु के (अग्नौ प्रास्ताहुतिः०) अनुसार आदित्य आहुतियों का वाहक है। गौ शब्द का अर्थ जल वा किरण है। इसी प्रकार गोपति का अर्थ किरणपति=सूर्य है। जिस से पूछती हुई सी मति अर्थात् किरणें चलती हैं। मति नाम किरणों का इस लिये है कि उन से प्रकाश होकर विषयों को जाना जाता है। सोम आदित्य का नाम है, जिस में कामना करती सी किरणें फिर लौट जाती हैं। आध्यात्मिक पक्ष में वन्हि आत्मा का नाम है, क्योंकि वह वश्यादि गुणयुक्त है। वह ३ वाणी, १ विद्या २ बुद्धि ३ मन को प्रेरित करता है। विद्या=महत्तत्व, बुद्धि=अहङ्कार और मन=प्रधानता से भूतेन्द्रियां, ऋत आत्मा की धीति अर्थात् मनचाहे कर्मों को प्रेरित करते हैं। ब्रह्म=आत्मा को जो इन्द्रियों का स्वामी है, इन्द्रियां पृथक् करके काम करती हैं। क्योंकि आत्मा के अभिप्रायानुकूल चलती हैं। इसी प्रकार सोम=आत्मा की कामना करती हुईं उसी में चली जाती हैं, फिर प्रकट नहीं होतीं ॥ ऋ० ९। ९७। ३४ में भी ॥ ३ ॥ (५२५)

अथ चतुर्ऋचस्य-वसिष्ठ ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥(५२६)

पदपाठः-अस्य ६। प्रेषा, हेमना ३। पूयमानः, देवः १। देवेभिः ३। समपृक्त क्रि०। रसम् २। सुतः १। पवित्रम् २। पर्येति क्रि०। रेभन् १। मितेव अ०। सद्म २। पशुमन्ति २। होता १ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(अस्य) वेदस्य (हेमना प्रेषा) सुवर्णमयेनेव बहुमूल्येनाज्ञापनेन (पूयमानः) शोध्यमानः (सुतः) अभिषुतः सोमः (रेभन्) अग्नौ प्रास्तःशब्दं कुर्वन् (पर्येति) समन्तत आकाशं गच्छति। ततो हि (देवः) आदित्यः (देवेभिः) वाय्वादिभिः सह (पवित्रं रसम्) शुद्धं वृष्टिजलम् (समपृक्त) संपर्कयति संयोजयति। सोमस्य रेभतो गगनमण्डलगमने दृष्टान्तमाह-(मितेव) यथा मिता गणनकृत् (होता) पशूनामाव्हानकर्त्ता दोग्धा वा शब्दं कुर्वन् (पशुमन्ति) पशुयुक्तानि (सद्म) सदनानि गोष्ठाख्यानि पर्य्येति तद्वत्॥

यथा पशुपालकः सर्वेभ्यः पशुगृहेभ्यः पशून् आकारयति ततोदुग्धं च गृह्णाति, तथैव हूयमानः सोमोप्याकाशमण्डलं गतो वृष्टिजलं संपाद्य वर्षयति॥

प्रेषेति-प्रेषतेर्गत्यर्थस्य (भ्वा० प०) क्विपि रूपम्। सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिरिति ६। १। १६८ विभक्तेरुदात्तत्वम्॥ हेमनेति- बाहुलकादल्लोपाऽभावः॥ होतेति-ह्वेञः शब्दार्थस्य, बहुलं छन्दसीति ६। १। ३४ संप्रसारणे वा रूपम्॥ ऋग्वेदे ९। ९७। १ऽपि॥ ४॥ (५२६)

भावार्थः-(अस्य) इस वेद की (हेमना) सुवर्ण तुल्य बहुमूल्य (प्रेषा) आज्ञा से [आज्ञानुसार] (पूयमानः) शोधा हुवा और (सुतः) अभिषुत संपन्न हुवा सोम (रेभन्) अग्नि में हवन करने से चिट चिटाता हुवा (पर्येति) गगनमण्डल में सब ओर फैलता है, तब (देवः) सूर्य (देवेभिः) वायु आदि देवों सहित (पवित्रं रसम्) शुद्ध रस को (समपृक्त) छुवाता वर्षाता है। चिट चिटा शब्द करते हुवे सोम के आकाशमण्डल में जाने पर दृष्टान्त-(मितेव) जिस प्रकार

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

गिनने वाला और (होता) बुलाने वा दुहने वाला पुकारता हुवा (पशुमन्ति) पशु वाले (सद्म) घरों में जाता है तद्वत् ॥

जिस प्रकार गवादि पशुओं का संभालने, दुहने वाला, पुकारता हुवा खरक को जाता और दुहता है, इसी प्रकार हवन किया हुवा सोम आकाश रूपी खरक में मेघरूपी पशुओं को पुकारता हुवा मानो जाकर दुहता है ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । १६८ ॥ ६ । १ । ३४ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ९७ । १ में भी ॥ ४ ॥ (५२६)

अथ पञ्चम्याः—प्रतर्दन ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।

३ १ २र ३ १ ९र ३ १ २ ३ १ २र

जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः५(५२७)

पदपाठः—सोमः १ । पवते क्रि० । जनिता १ । मतीनाम् ६ । जनिता । दिवः ६ । जनिता । पृथिव्याः ६ । जनिता । अग्नेः ६ । जनिता । सूर्यस्य ६ । जनिता । इन्द्रस्य ६ । जनिता । उत अ० । विष्णोः ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(सोमः) परमात्माऽमृतः (मतीनां जनिता, दिवो जनिता, पृथिव्याः जनिता, अग्नेर्जनिता, सूर्यस्य जनिता, इन्द्रस्य जनिता), (उत) (विष्णोः) यज्ञस्य (जनिता), (पवते) याज्ञिकान् प्राप्नोति ॥

विवरणकृत्तु—" सोमः पवते—विनियोगोऽस्य चतुर्थेहनि । अधियज्ञपक्षे पर्ण सोमस्य पृथिव्यादीनां जनयितृत्वेन संभवात् यज्ञद्वारेण स्थितिहेतुत्वात् । जनयतीति जनिता, मतीनां जनयिता, दिवो जनयिता, अग्नेर्जनयिता, सूर्यस्य जनयिता, इन्द्रस्य जनयिता । उत अपि विष्णोर्व्याप्नुमत इति । जनयिता पृथिव्यादिभ्यो रसेन वर्धयिता । अधिदेवेनेन्द्रः सोमः । यदात्मनि, तदायमर्थः—सर्वमिदं स्रवति आत्मा सोमः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पवते साधयति भोक्तृत्वात्। आत्मा सत्कारणं वा। प्रधानभूतेन्द्रियाणां जनयिता पृथिव्यादीनां च। द्वयोर्ग्रहणेनान्तरिक्षस्यापि अग्न्यादीनां च स्थानानां तिसृणां विष्णोश्च व्याप्तिमतः" इत्याह ॥

अथ-"सोमः पवते, सोमः सूर्यः प्रसवनाज्जनिता मतीनां प्रकाशकर्मणामादित्यरश्मीनां, दिवो द्योतनकर्मणामादित्यरश्मीनां, पृथिव्याः प्रथनकर्मणामादित्यरश्मीनामग्नेर्गतिकर्मणामादित्यरश्मीनां, सूर्यस्य स्वीकरणकर्मणामादित्यरश्मीनामिन्द्रस्यैश्वर्यकर्मणामादित्यरश्मीनां, विष्णोर्व्याप्तिकर्मणामादित्यरश्मीनामित्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मम्-सोम आत्माप्येतस्मादेवेन्द्रियाणां जनितेत्यर्थः। अपि वा सर्वाभिर्विभूतिभिर्विभूतत आत्मेत्यात्मगतिमाचष्टे" ॥ इति निरुक्तपरिशिष्टकर्त्तृकं व्याख्यानम् ॥ नि० प० २। १२ ॥ ऋग्वेदे ९। ९६। ५ ऽपि ॥ ५ ॥ (५२७)

भाषार्थः-(सोमः) अमृत परमात्मा जो कि (मतीनां जनिता) बुद्धियों का उत्पादक (दिवोजनिता) द्युलोक का उत्पादक (पृथिव्याजनिता) पृथिवी का उत्पादक (अग्नेर्जनिता) अग्नि का उत्पादक (सूर्य्यस्य जनिता) सूर्य का उत्पादक (इन्द्रस्य जनिता) विद्युत् का उत्पादक (उत) और (विष्णोः) यज्ञ का (जनिता) उत्पादक है (पवते) याज्ञिकों को प्राप्त होता है ॥

और विवरणकार यह अर्थ करते हैं कि-"सोमः पवते०। इस का विनियोग यज्ञ के चतुर्थ दिन में है। अधियज्ञ पक्ष के अर्थ में-पर्णसोम पृथिवी आदि का उत्पन्न करने वाला कहना संभव है क्योंकि यज्ञ द्वारा स्थिति का हेतु है। मति, द्युलोक, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और व्याप्ति वाले पदार्थ का भी पृथिव्यादि से रस लेकर बढ़ाने वाला होने से "सोम सब का उत्पादक है" यह अधिदैवत अर्थ हुवा। और आत्मपरक अर्थ करें तो यह होगा कि-आत्मा सोम है, जो सब में बसा है और सब को बनाता है।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भोक्ता होने से आत्मा वा उत्पादन कारण । भूतेन्द्रियों का उत्पादक है और दोनों (पृथिवी तथा द्युलोक) के ग्रहण से मध्यवर्ती अन्तरिक्ष का भी ग्रहण जानो। और उन तीनों स्थानों के अग्न्यादि का भी तथा व्याप्ति वाले पदार्थ का भी " ॥

तथा निरुक्त के परिशिष्टकार ने यह अर्थ किया है कि-" सोमः पवते० ऋचा में सोम सूर्य का नाम है क्योंकि वह उत्पादक है । वह मति=प्रकाश कारक सूर्यकिरणों, द्यु=प्रकट करने वाली सूर्यकिरणों, पृथिवी=फैलाने वाली सूर्यकिरणों, अग्नि=चलने वाली सूर्यकिरणों, सूर्य=स्वीकार करने वाली सूर्यकिरणों, इन्द्र=ऐश्वर्य आकर्षण वशीकरण करने वाली सूर्यकिरणों और विष्णु=व्यापने वाली सूर्यकिरणों का [उत्पादक है] यह देवता पक्ष का अर्थ हुवा । और आत्मा के पक्ष में-सोम आत्मा है क्योंकि वह भी उत्पादक है इन्द्रियादि का । और संपूर्ण विभूतियों से विभु आत्मा है यह आध्यात्मिक अर्थ कहा " । नि० प० २ । १२ ॥ ऋ० ९ । ९६ । ५ में भी ॥ ५ ॥ (५२७)

अथ षष्ठ्याः-वसिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ५ १ २

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ ६ ॥ (५२८)

पदपाठः-अभि अ० । त्रिपृष्ठम् , वृषणम् , वयोधाम् , अङ्गोषिणम् २ । अवावशन्त क्रि० । वाणीः १ । वना २ । वसानः, वरुणः १ । न अ० । सिन्धुः १ । वि अ० । रत्नधाः १ । दयते क्रि० । वार्याणि २ ॥

अन्वितपदार्थः-(वाणीः) वेदवाग्यः (त्रिपृष्ठम्) त्रीणि पृथिवी द्यौरन्तरिक्षं चेति, सवनानि वा स्थानानि यस्य तम् (वृषणम्) कामपूरकं वृष्टिकरं वा (वयोधाम्) वयसोऽन्नस्य आयुषो वा धारकम् (अङ्गोषिणम्) स्तुतिघोषोऽस्मै प्रयुज्यते इति तद्वांस्तम् (अभि अवावशन्त) अभितः प्राप्तये कामयन्ताम् । स हि (वरुणः) वरणीयः परमात्मा, सोमो वा (रत्नधाः) रत्नानां धाता (वार्याणि) वरणीयानि रत्नानि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(वि दयते) विशेषेण ददाति। दृष्टान्तः-(न) यथा (वना) जलानि (वसानः) आच्छादयन् [रत्नधाः] (सिन्धुः) समुद्रो रत्नानि ददाति अन्वेषणपरेभ्यः ॥

यथा परमात्मा लोकत्रयं व्याप्य तिष्ठति, कामान् वर्षयति, आयूंषि प्राणिभ्यो धारयति, स्तुत्यर्हश्चास्ति, तथैव कस्मिंश्चिदंशे सोमोऽपि पृथिव्यामुत्पद्यते, वृष्टिकारकः, अन्नस्योत्पादत्वाद्धारकः, तेनैव च 'अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः' इति हेतोरायुषोऽपि धारकः, प्रशंसार्हश्च विद्यते। वेदवाणी-द्वारा मनुष्याः परमात्मानं सोमं च कामयन्ताम्। यथा समुद्रो रत्नधाः सन् अन्वेषणकर्तृभ्यो रत्नानि ददाति, तथैव परमात्मा, सोमोषाऽपि निजाऽन्वेषणकारकान्प्रयोक्तॄंश्च रत्नैः संयोजयति ॥

सुपां सुलुगित्यादिना (७ । १ । ३९) पूर्वसवर्णे वाणी-रिति ॥ वयः=आयुः प्रसिद्धमेव। वयः=अन्नम् निघं० २। ७॥ "आङ्गूषःस्तोम आघोषः-एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तः, अनेन स्तोमेन वयमिन्द्रवन्तः" निरु० ५ । ११ ॥ ऋग्वेदे तु ९। ९०। २ आङ्गूषाणाम्, सिन्धून्, इति चान्तरम् ॥ ६ ॥ (५२८)

भाषार्थः-(वाणीः) वेदवाणी (त्रिपृष्ठम्) तीन पृथिवी द्यु और अन्तरिक्ष अथवा प्रातःसवन माध्यन्दिनसवन और सायंसवन ये तीनों जिस के स्थान हैं, उस (वृषणम्) कामनापूर्णकर्त्ता, वा वृष्टि के हेतु (वयोधाम्) आयु वा अन्न के धारक (अङ्गूषिणम्) स्तुति वा प्रशंसा के योग्य को (अभि अवावशन्त) सर्वतः कामना करें=चाहें। वह (वरुणः) वरणीय परमात्मा, वा सोम (रत्नधाः) रत्नों का धारक (वार्याणि) वरणीय श्रेष्ठ रत्नों को (वि दयते) विशेष करके देता है। दृष्टान्त-(न) जैसे (वना) जलों को (वसानः) बसाये हुवे (सिन्धुः) समुद्र रत्न धारण किये हुवे है और खोजने वालों को रत्न देता है॥

जिस प्रकार परमात्मा पूर्णरूप से त्रिलोकी में व्याप रहा है, कामना पूर्ण

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

करता है, प्राणियों की आयुः को धारण कराता है और प्रसंशनीय है, इसी प्रकार किसी अंश में सोम भी पृथिवी में उत्पन्न होता, हवन से द्यु और अन्तरिक्ष में भी व्यापता है, वृष्टि करता है, अन्न उत्पन्न करता और "अन्न ही प्राणियों के प्राण हैं" इस कहावत के अनुसार आयु का भी धारण करने वाला और प्रशंसनीय है। इस लिये वेदानुसार मनुष्यों को परमात्मा और सोमादि उत्तम पदार्थों की कामना करनी चाहिये। जिस प्रकार समुद्र में रत्न हैं और खोजने वालों को मिलते हैं, इसी प्रकार परमात्मा के उपासक और सोमादि उत्तम पदार्थों के ढूंढ़ने वालों को भी सब रम्य रत्न पदार्थ प्राप्त होते हैं॥

अष्टाध्यायी ७। १। ३९ निघण्टु २। ७ निरुक्त ५। ११ के प्रमाण और ऋ० ९। ९०। २ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ६॥ (५२८)

अथ सप्तम्याः—पराशर ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३१ २३१ २र ३१२ ३१ २र ३ २ २१

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः। वृषा

३२३ २ ३२१ १ २३१ २र ३ १ २र

पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः॥७॥ (५२९)

पदपाठः—अक्रान् क्रि०। समुद्रः १। प्रथमे ७। विधर्मन् ७। जनयन् १। प्रजाः २। भुवनस्य ६। गोपाः, वृषा १। पवित्रे ७। अधिसानः १। अव्ये ७। बृहत् २। सोमः १। वावृधे क्रि०। स्वानः, अद्रिः १॥

अन्वितपदार्थः—(स्वानः) अभिषूयमाणः (अधिसानः) अभिषिच्यमानः (सोमः), (अव्ये) ऊर्णामये (पवित्रे) दशापवित्रे स्थापितः (प्रथमे) विस्तृते (विधर्मन्) विधारके यज्ञे (अद्रिः) मेघरूपेण परिणतः [निघं० १। १०] (बृहत्) बृहदथा स्यात्तथा (वावृधे) वर्धते, अथ च (भुवनस्य) भूलोकादेः (प्रजाःजनयन्) अन्नोत्पादेन प्रजोत्पादसंभवात् प्रजा उत्पादयन् (गोपाः) गवादिपशुरक्षकस्तृणोत्पादात् (वृषा) वृष्टिहेतुः (समुद्रः) समुद्रवन्त्यापो यस्मात्सः सोमः (अक्रान्) क्रामति सर्वतः॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ईश्वरपक्षे–(अव्ये) अविः शैलस्तदीये (पवित्रे) शुद्धदेशे (स्वानः) ध्यानेनाभिषूयमाणः (अधिसानः) अभिषिच्यमानः (सोमः) आनन्दाऽमृतः (अद्रिः) मेघइव (बृहत्) बृहद्यथा स्यात्तथा (वावृधे) वर्धते। यतः (गोपाः) पृथिव्यादिलोकपतिः (समुद्रः) समुद्रवन्ति लोका यस्मिन् सः परमात्माऽमृतस्वरूपः (भुवनस्य प्रजाः जनयन्), (प्रथमे) विस्तृते (विधर्मन्) विशेषेण धारके गगनमण्डले (अक्रान्) सर्वतः क्रान्तोऽस्ति (वृषा) स कामानां पूरकोऽस्ति ॥

निरुक्तपरिशिष्टकृता त्वेवं व्याख्यातं, यथा–" अत्यक्रमीत्समुद्रआदित्यः परमे व्यवने वर्षकर्मणा जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा सर्वस्य राजा। वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुरित्यधिदैवतम् ॥ अथाध्यात्ममत्यक्रमीत्समुद्र आत्मा परमे व्यवने ज्ञानकर्मणा जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा सर्वस्य राजा। वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुरित्यात्मगतिमाचष्टे" निरुक्तपरिशिष्टे २। १६॥ क्रमतेर्लुङि, तिपि, इडऽभावे, वृद्धौ, सिज्लोपे, मकारस्य–मोनो धातोरिति ८। २। ६४ नकारे अक्रानिति रूपम् ॥ ऋग्वेदे तु ९। ९७। ४० ॥ " भुवनस्य राजा"। इति "सुवानः" इति च पाठस्तस्यैव च निरुक्तपरिशिष्टेऽपि व्याख्यानम् ॥ ७ ॥ (५२९)

भाषार्थः–(स्वानः) अभिषव किया हुवा (अधिसानः) अभिषेक किया जाता हुआ (सोमः) सोमरस (अव्ये) ऊन के (पवित्रे) दशापवित्र पर [स्थापित] (प्रथमे) विस्तृत (विधर्मन्) विशेष धारक यज्ञ में (अद्रिः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मेघरूप में परिणत (बृहत्) बहुत (वावृधे) बढ़ता है और (भुवनस्य) पृथिव्यादि लोक की (प्रजाः) प्रजाओं को (जनयन्) अन्नोत्पत्ति करके उत्पन्न करता हुवा (गोपाः) गौ आदि पशुओं की तृणोत्पत्ति करके रक्षा करने वाला (वृषा) वर्षा करने वाला (समुद्रः) जिस से जल वर्षते हैं, वह सोमरस (अक्रान्) सर्वतः क्रान्त होता है ॥

ईश्वरपक्ष में—(अव्ये) पर्वत के एकान्त (पवित्रे) शुद्ध देश में (स्वानः) ध्यान से अभिषव किया जाता हुवा और (अधिस्वानः) अभिषेचन किया जाता हुवा (सोमः) आत्माऽऽनन्दाऽमृत (अद्भिः) मेघ सा (बृहत्) बहुत (वावृधे) उसंडता=बढ़ता है। क्योंकि (गोपाः) पृथिवी आदि लोकों का पालक (समुद्रः) जिस में लोक लोकान्तर घूम रहे हैं, वह अमृत परमात्मा (भुवनस्य) भूलोकादि की (प्रजाःजनयन्) प्रजाओं को उत्पन्न करता हुवा (प्रथमे) विस्तृत (विधर्मन्) विशेष करके धारने वाले गगनमण्डल में (अक्रान्) सब को आक्रान्त कर रहा है। (वृषा) वह कामना पूरी करता है ॥

निरुक्त के परिशिष्टकार ने इस का व्याख्यान इस प्रकार किया है कि—"आक्रमण करता है समुद्र=आदित्य जो कि वर्षा करने से प्रजा का उत्पादक और सब का राजा है। सोम पवित्र पर स्थित, वृष्टिकारक, अत्यन्त बढ़ता है। यह आधिदैविक अर्थ हुवा। अब आध्यात्मिक अर्थ यह है कि—क्रमण करता है समुद्र=आत्मा, जो बड़े आकाश में ज्ञान द्वारा सब का उत्पादक और राजा है। (उत्तरार्ध का अर्थ पूर्व के तुल्य है) निरुक्तपरिशिष्ट २। १६॥ अष्टाध्यायी ८। २। ६४॥ निघण्टु १। १० इत्यादि के प्रमाण और ऋग्वेद ९। ९७। ४० का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये, तथा निरुक्तपरिशिष्ट में ऋग्वेदस्थ पाठ की ही व्याख्या है ॥ ७ ॥ (५२९)

अथाऽष्टम्याः प्रस्कण्व ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २

कनिक्रन्ति हरिरासृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः। नृभि-

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

र्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥८॥(५३०)

पदपाठः—कनिक्रन्ति क्रि०। हरिः १=२। आसृज्यमानः, सीदन् १। वनस्य ६। जठरे ७। पुनानः १। नृभिः ३। यतः अ०। कृणुते क्रि०। निर्णिजम्, गाम् २। अतः अ०। मतिम् २। जनयत क्रि०। स्वधाभिः ३ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(पुनानः) पवमानः सोमः (यतः) यस्मा च्छुद्धिकरः (नृभिः) मनुष्यैः (आसृज्यमानः) कुण्डस्य समन्तादुपविष्टैरग्नौ हूयमानः (वनस्य) वनैकदेशस्य काष्ठस्य (जठरे) जाठराग्नौ (सीदन्) पतन् स्थितः, (हरिः) हरितं (निर्णिजम्) रूपम् (कृणुते) करोति [धूमभावेन] (कनिक्रन्ति) भृशं शब्दायते चिटचिटाशब्दं करोति च। (अतः) अस्मात्कारणात् (स्वधाभिः) सोमीयहविर्भिः सह (गाम्) वेदमन्त्रोच्चारणरूपां वाणीम् (मतिम्) तदर्थविचारणां च (जनयत) उत्पादयत कुरुतेति यावत् ॥

कनिक्रदत् इति-दाधर्त्ति दर्द्धर्त्ति० (७ । ४ । ६५) इत्यादिनाऽभ्यासस्य निगागमे, अभ्यस्तानामादिरिति (६। १ । १८९) आद्युदात्तत्वे क्रन्दतेर्यङ्लुकि, तिपि, इडऽभावे रूपम् ॥ निर्णिगिति रूपनाम निघं० ३। ७ गौरिति वाङ्नाम निघं० १ । ११ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ९५ । १ "गा अतो मतीः" इति पाठः ॥ सायणाचार्येण चर्ग्वेदस्थो "गाः" इत्येव पाठो व्याख्यातो भ्रमेण ॥ ८ ॥ (५३०)

भावार्थः—(यतः) जिस कारण (पुनानः) सोम पवित्रता का कर्त्ता है, वह (नृभिः) मनुष्यों से (आसृज्यमानः) चारों ओर बैठ कर अग्नि में छोड़ा जाता हुवा (वनस्य) काष्ठ=इन्धन के (जठरे) जाठराग्नि में (सीदन्) रक्खा हुवा (हरिः) हरे (निर्णिजम्) रूप को (कृणुते) करता है अर्थात् अग्नि में हवन करने से हरे धुवें को निकालता है और (कनिक्रन्ति) चड़चड़ाता है। (अतः) इस कारण (स्वधाभिः) आहुतियों के साथ (गाम्) वेदमन्त्रों के उच्चारणरूप वाणी और (मतिम्) उन के अर्थ की विचारणा को (जनयत) उत्पन्न करो। अर्थात् सोम की आहुति, वेदमन्त्रों का उच्चारण और उन के अर्थ का विचार करते हुवे यज्ञ करो ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अष्टाध्यायी ६ । १ । १८९ ॥ ७ । ४ । ६५ निघण्टु ३ । ७ ॥ १ । ११ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ९५ । १ में "गा अनो मतीः" पाठ है, और सायणाचार्य ने वहीं के पाठभेदभ्रम से "गाः" की ही व्याख्या की है ॥८॥ (५३०)

अथ नवम्याः—उशना ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र
सहस्रदाःशतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ९ (५३१)

पदपाठः—एषः, स्यः १ । ते ६ । मधुमान् १ । इन्द्र सं० । सोमः, वृषा १ । वृष्णः ६ । परि अ० । पवित्रे ७ । अक्षाः (ऋ० । सहस्रदाः, शतदाः, भूरिदावा १ । शश्वत्तमम्, बर्हिः २ । आ अ० । वाजी १ । अस्थात् (ऋ० ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्र) हे राजन्! यजमान! (मधुमान्) माधुर्योपेतः (स्यः) सः (पवित्रे) दशापवित्रे स्थितः (सोमः) सोमरसः (वृष्णः ते) यज्ञानुष्ठानेन वृष्टिकर्तुस्तव (शश्वत्तमं बर्हिः) सनातनं यज्ञम् (परि अक्षाः) परिक्षरेत् (एषः), (वृषा) वृष्टिहेतुः [अतएव] (सहस्रदाः) सहस्रसंख्याकस्य धनस्य दाता (शतदाः) शतसंख्याकस्य धनस्य दाता (भूरिदावा) बहुदाता (वाजी) बलवान् सोमः, ते यज्ञं (आ अस्थात्) आतिष्ठतु

स्यश्छन्दसि बहुलम् ६ । १ । १३३ इति स्य इत्यस्य सोर्लोपः ॥ भूरिदावेत्यत्र—आतो मनिन्क्वनिप्वनिपश्च (३ । २ । ७४) वनिप् ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ८७ । ४ वृष्णे, सहस्रसाः, शतसाः, इत्यन्तरम् ॥ ९ ॥ (५३१)

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन्! यजमान! (मधुमान्) मधुर रसयुक्त (स्यः) वह (पवित्रे) दशापवित्र पर स्थित (सोमः) सोमरस (वृष्णः ते) यज्ञ करके वर्षा कराने वाले आपके (शश्वत्तमं बर्हिः) सनातन यज्ञ में (परि अक्षाः) सब

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओर फैले (एषः) यह (वृषा) वर्षा का हेतु (सहस्रदाः) सहस्र का दाता (शतदाः) शत का दाता (भूरिदावा) बहुत का दाता (वाजी) बलयुक्त [सोम] आप के यज्ञ में (आ अस्थात्) सर्वतः स्थित होवे ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । १३३ ॥ ३ । २ । ७४ के प्रमाण और ऋ० ९ । ८७ । ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (५३१)

अथ दशम्याः—प्रतर्दन ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २१ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावाऽपो वसानो अधिसानो अव्ये । अव

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २

द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१०॥ (५३२)

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥

पदपाठः—पवस्व क्रि० । सोम सं० । मधुमान्, ऋतावा १ । अपः २ । वसानः, अधिसानः १ । अव्ये ७ । अव अ० । द्रोणानि, घृतवन्ति २ । रोह क्रि० । मदिन्तमः, मत्सरः इन्द्रपानः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(सोम) सोमरस ! (अपः वसानः) जलान्याच्छादयन् (मधुमान्) माधुर्योपेतः (ऋतावा) यज्ञवान् (अव्ये) अविभवे दशापवित्रे (अधिसानः) अभिषिच्यमानः (मदिन्तमः) हर्षकारकतमः (मत्सरः) हर्षोत्पादकप्रभावयुक्तः (इन्द्रपानः) इन्द्रेण=सूर्येण, विद्युता, वा यजमानेन राज्ञा पातव्यः (पवस्व) प्रामुहि तथा (घृतवन्ति) उदकवन्ति (द्रोणानि) विशिष्टपात्राणि (अव रोह) अवतर ॥

सोमरसाऽभिषवकर्तृभिः सोमरसे मधु प्रक्षिप्य, जलमयमार्द्रं रसं संपाद्य, दशापवित्रे स्थाप्य, उदकरक्षणजात-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

शुद्धानि द्रोणकलशाख्यपात्राणि सु संपन्नानि कृत्वा, तेषु सोमरसः प्रपूर्य निधातव्यः। सहि हृष्टिपुष्टिबलमाधुर्योपेतोहृष्टिपुष्टिबलादिप्रदः संजायते ॥

घृतवन्तीति घृतम्=उदकम् निघं० १। १२ तद्वन्ति ॥ ऋग्वेदे तु ९। ९६। १३ रोह=सीद इति पाठः ॥ १० ॥ (५३२)

* इति पञ्चमाऽध्याये षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ *

भाषार्थः-(सोम) सोमरस ! (अपः वसानः) जलों में मिला हुवा (मधुमान्) मधुर रसयुक्त (ऋतावा) यज्ञवाला (अव्ये) ऊर्णामय दशापवित्र पर (अधिसानः) अभिषेक किया हुवा (मत्सरः) हृष्टिपुष्टियुक्त और (मदिन्तमः) अतिहृष्टिपुष्टिकारक (इन्द्रपानः) इन्द्र=सूर्य विद्युत् वा राजा यजमान के पान योग्य (पवस्व) प्राप्त हो, तथा (घृतवन्ति) जलवाले (द्रोणानि) द्रोणकलशों में (अव रोह) रक्खा जावे ॥

सोमरस के संपादन करने वालों को उस में मिठाई मिला कर, जलतुल्य गीला करके, ऊन के दशापवित्र पर द्रोणकलशों में भर कर, रखके यज्ञ में वर्त्तना चाहिये। वह हृष्टि पुष्टि स्वादु से युक्त, हृष्टि पुष्टि स्वादु बल आदि देता है ॥

निघण्टु १। १३ का प्रमाण और ऋ० ९। ९६। १३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥ (५३२)

* यह पञ्चमाध्याय में छठी दशति समाप्त हुई ॥ ६ ॥ *

—⊂:*:⊃—

प्र सेनानीति सोमस्य त्रिष्टुभो द्वादश स्मृताः ॥ १ ॥
अथ सप्तमी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-प्रतर्दन ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना। भद्रान्कृ-

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते॥१॥ (५३३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः–प्र अ० । सेनानीः, शूरः १ । अग्रे १ । रथानाम् ६ । गव्यन् १ । एति, हर्षते क्रि० । अस्य ६ । सेना १ । भद्रान् २ । कृण्वन् १ । इन्द्रहवान् २ । सखिभ्यः ४ । आ अ० । सोमः १ । वस्त्रा २ । रभसानि २ । दत्ते क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः–सोमसेवी (सेनानीः) सेनाया नेता (शूरः) शत्रूणां बाधकः (गव्यन्) गां भूमिं परकीयराज्यान्तर्गतामिच्छन् (रथानाम् अग्रे प्र एति)। (अस्य) सेनान्यः (सेना) चमूः (हर्षते) हृष्यति । (सोमः) सोमरसः (इन्द्रहवान्) इन्द्रस्य राज्ञः प्रशंसापराञ्छब्दान् (भद्रान्) यथार्थान् (कृण्वन्) कुर्वन् (सखिभ्यः) सुहृद्भ्यः (वस्त्रा) आच्छादकानि (रभसानि) आक्रमणानि (आ दत्ते) स्वीकरोति ॥

गौः=पृथ्वी निघं० १ । १ ॥ ऋग्वेदे ९ । ९६ । १ ऽपि ॥१॥ (५३३)

भावार्थः–सोमसेवी (सेनानीः) सेना का नायक (शूरः) शत्रुओं का बाधक (गव्यन्) शत्रु की भूमि को चाहता हुवा (रथानाम्) रथों के (अग्रे) आगे (प्र एति) चलता है और (अस्य) इस की अधीन (सेना) सेना (हर्षते) हृष्ट होती है । (सोमः) सोमरस (इन्द्रहवान्) इन्द्र=राजा की प्रशंसा के शब्दों को (भद्रान्) यथार्थ सच्चा (कृण्वन्) करता हुवा (सखिभ्यः) मित्रों के हित के लिये (वस्त्रा) दूसरों को ढकलेने वाले (रभसानि) धावों को (आ दत्ते) ग्रहण करता है ॥

गौः=पृथिवी निघं० १ । १ ॥ ऋ० ९ । ९६ । १ में भी ॥ १ ॥ (५३३)

अथ द्वितीयायाः–पराशर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २३ २ ३ २ ३ १ २र १ २

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् । पव-

३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

मान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥२॥ (५३४)

पदपाठः–प्र अ० । ते ६ । धाराः १ । मधुमतीः १ । असृग्रन् क्रि० । वारम् २ । यत् अ० । पूतः १ । अत्येषि क्रि० । अव्यम् २ । पवमान सं० । पवसे क्रि० । धाम २ । गोनाम् ६ । जनयन् १ । सूर्यम् २ । अपिन्वः क्रि० । अर्कैः ३ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(पवमान) सोम ! (मधुमतीः) मधुमत्यः (ते धाराः) तव धाराः, तदा (प्र असृग्रन्) प्र सृज्यन्ते (यत्) यदा (पूतः) शुद्धः सन् (अव्यम्) अविभवं (वारम्) वालं दशापवित्रम् (अत्येषि) अतीत्याग्निमेषि । (गोनाम्) गवां रश्मीनां (धाम) पुञ्जम् (जनयन्) उत्पादयन् (अर्कैः) स्वतेजोभिः (सूर्यम्) आदित्यम् (अपिन्वः) प्रपूरयसि (पवसे) गच्छसि च ॥

सोमरसस्य पूतस्य दशापवित्रादुद्धृत्याग्नौ हुतस्य मधुमत्यो धारा आकाशमण्डले स्वप्रभावेन सूर्यमाप्यायितं कृत्वा वृष्टिशुद्धिहेतवो भवन्ति ॥

गोःपादान्ते ७ । १ । ५७ अनेन गोनाम् इति सिद्धम् ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ९७ । ३१ वारान् । अव्यान् । जनयन्=जज्ञानः । इत्यन्तरम् ॥ २ ॥ (५३४)

भाषार्थः-(पवमान) सोम ! (मधुमतीः) मधुरतायुक्त (ते) तेरी (धाराः) धारें तब (प्राऽसृग्रन्) छूटती हैं (यत्) जब कि (पूतः) स्वच्छ किया हुवा (अव्यं वारम्) ऊन के दशापवित्र को (अत्येषि) लांघ कर अग्नि में जाता है (गोनां धाम) किरणों के पुञ्ज को (जनयन्) उत्पन्न करता हुवा (अर्कैः) अपने तेजों से (सूर्यम्) सूर्य को (अपिन्वः) आप्यायित करता और (पवसे) गगनमण्डल को जाता है ॥

सोमरस को स्वच्छ करके दशापवित्र से लेकर अग्नि में होम करने से उस की मधुर धारें छूटतीं और आकाशमण्डल में अपने तेजोयुक्त सूक्ष्म अवयवों से सूर्य की किरणों को बढ़ाती हुई वृष्टि और शुद्धि करती हैं। यह तात्पर्य है॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ५७ का प्रमाण और ऋ० ९ । ९७ । ३१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥ (५३४)

अथ तृतीयायाः-इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २र
प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमꣳ हिनोत महते धनाय ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
स्वादुः पवतामति वारमव्यमासीदतु कलशं देव इन्दुः॥३॥(५३५)

पदपाठः–प्र अ० । गायत, अभ्यर्चाम क्रि० । देवान् २ । सोमम् २ । हिनोत क्रि० । महते, धनाय ४ । स्वादुः १ । पवताम् क्रि० । अति अ० । वारम्, अव्यम् २ । आसीदतु क्रि० । कलशम् २ । देवः, इन्दुः १ ॥

अन्वितपदार्थः–हे मनुष्याः ! (देवः) दिव्यः (इन्दुः) सोमः (कलशम्) द्रोणकलशम् (आसीदतु) आतिष्ठतु, अनन्तरं (स्वादुः) स्वादुविशिष्टः सोमः (अव्यं वारम्) ऊर्णामयं पवित्रम् (अति) उल्लङ्घ्य (पवताम्) क्षरतु । यूयं च (सोमम्) सोमरसं (हिनोत) अग्नौ जुहुत । तेन (देवान्) वायुप्रभृतीन् (अभ्यर्चाम) अभ्यर्चत । तथा (महते धनाय) महत् धनम् प्राप्तुम् (प्र गायत) वेदमन्त्रोच्चारणं कुरुत ॥

हिनोत इत्यत्र–तप्तनप्तनथनाश्चेति ७ । १ । ४५ तपि सिद्धिः ॥ क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः २ । ३ । १४ इत्यनेन महते, धनायेति चतुर्थ्यौ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ९७ । ४ " सीदाति कलशं देवयुर्नः " इत्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (५३५)

भाषार्थः–हे मनुष्यो ! (देवः) दिव्य उत्तम (इन्दुः) सोमरस (कलशम्) द्रोणकलश में (आसीदतु) रक्खा जावे, फिर (स्वादुः) स्वादयुक्त सोमरस (अव्यम् वारम्) ऊन के दशापवित्र से (अति) उतर कर (पवताम्) छोड़ा जावे । तुम (सोमम्) सोमरस को (हिनोत) अग्नि में हवन करो । उस से (देवान्) वायु आदि देवतों को (अभ्यर्चाम) सत्कृत करो= सुधारो और (महते धनाय) बड़े धन की प्राप्ति के लिये (प्र गायत) अच्छे प्रकार वेदमन्त्रों का उच्चारण करो ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अष्टाध्यायी ७। १। ४५। २। ३। १४ के प्रमाण और ऋ० ९। ९७। ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (५३५)

अथ चतुर्थ्यां-वसिष्ठ ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २ २१

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजꣳ सनिषन्नयासीत्। इन्द्रं

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

गच्छन्नायुधा सꣳशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः॥४॥(५३६)

पदपाठः-प्र अ०। हिन्वानः, जनिता १। रोदस्योः ६। रथः १। न अ०। वाजम् २। सनिषन् १। अयासीत् क्रि०। इन्द्रम् २। गच्छन् १। आयुधा २। संशिशानः १। विश्वा २। वसु २। हस्तयोः ७। आदधानः १॥

अन्वितपदार्थः-हे मनुष्याः! (रोदस्योः) द्यावाभूम्योः (जनिता) हविःप्रापण-वृष्टिकरणाभ्यां वर्धकत्वादुत्पादकः (हिन्वानः) अग्नौ हूयमानः सोमः (वाजं सनिषन्) अन्नं दास्यन् (इन्द्रं गच्छन्) सूर्यं विद्युतं वा गच्छन् (आयुधा संशिशानः) आयुधानि मेघहननाय तीक्ष्णीकुर्वन्निव। तथा सति (विश्वा) विश्वम् (वसु) धनं धान्यं च (हस्तयोः आदधानः) हस्तगतमिव कारयन् (रथो न) रथइव (प्र अयासीत्) प्रकर्षेण गच्छति॥

जनिता मन्त्रे ६। ४। ५३ इति जनिता॥ वाजः=अन्नम् निघं० २। ७ रोदसी=द्यावाभूमी निघं० ३। ३०॥ सुपां सुलुगित्यात्वे ७। १। ३९ विश्वा॥ ऋग्वेदे तु ९। ९०। १ सनिष्यन् इति पाठः। सायणाचार्येण च भ्रमेणाऽत्रापि स एव व्याख्यातः॥ ४ ॥ (५३६)

भाषार्थः-हे मनुष्यो! (रोदस्योः जनिता) द्युलोक और भूमिलोक का उत्पादक [क्योंकि हविः पहुंचाने से द्युलोक और वर्षा के हेतु होकर भूमि का आप्यायन सोमयज्ञ द्वारा होता है] (हिन्वानः) अग्नि में हवन किया

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हुवा (वाजं सनिषन्) जो अन्न देवेगा [वह सोम] (इन्द्रं गच्छन्) इन्द्र=सूर्य वा विद्युत् के समीप जाता हुआ (आयुधा) मानो इन्द्र=सूर्य वा विद्युत् के आयुध=शस्त्रों को मेघहननार्थ (संशिशानः) पैनाता हुआ और (विश्वा) सब (वसु) धन को (हस्तयोः आदधानः) मानो हस्तगत कराता हुआ (रथः न) रथ सा (प्र अयासीत्) आकाश को जाता है॥

अष्टाध्यायी ६। ४। ५३॥ ७। १। ३९ निघण्टु २। ७॥ ३। ३० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ९। ९७। १ में (सनिष्यन्) पाठ है और सायणाचार्य के भाष्य में अन्न से उसी की व्याख्या हो रही है॥ ४॥ (५३६)

अथ पञ्चम्याः—सुदीको वासिष्ठ ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तक्षद्यदी मनसा वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य धर्मन्द्युक्षोरनीके। आदी-

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

मायन्वरमावावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम्॥५॥ (५३७)

पदपाठः—तक्षत् क्रि०। यदि अ०। मनसः, वेनतः ६। वाक् १। ज्येष्ठस्य ६। धर्मन् ७। द्युक्षोः ६। अनीके ७। आत, ईम् अ०। आयन् क्रि०। वरम् २। आवावशानाः १। जुष्टम्, पतिम् २। कलशे ७। गावः १। इन्दुम् २॥

अन्वितपदार्थः—(यदि) यदा (मनसः) स्तोतुः (वेनतः) कामयमानस्य (वाक्) स्तुतिलक्षणा वाणी (धर्मन्) धर्मे=यज्ञे (ज्येष्ठस्य) प्रशस्यस्य (द्युक्षोः) दीप्ततेजस्कस्य सवनस्य (अनीके) प्रमुखे (तक्षत्) संस्करोति (आत्) तदैव (कलशे) द्रोणकलशे स्थितम् (ईम्) इमम् (जुष्टम्) प्रीतिपात्रं (पतिम्) भर्त्तारमिव (वरम्) वरणीयम् (इन्दुम्) सोमम् (आवावशानाः) समन्ततः कामयमानाइव (गावः) दीधितयः (आयन्) प्राप्नुवन्ति॥

यद्यपि यज्ञे द्रोणकलशस्थः सोमोऽग्नौ हुतः सन् सूर्यदीधितिभिः स्वयं संपृक्तो भवति, परन्तु यावदग्नौ नापि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हूयते, यावच्च सोमस्य प्रशंसापरां वाचमेव याज्ञिका उच्चारयन्ति, तदानीमेव सूर्यदीधितयो द्रोणकलशस्थं सोमं पतिमिव कामयमानाः स्त्रियइव संपृक्तं कुर्वन्ति ॥

यदी इति संहितायाम्–निपातस्य चेति ६ । ३ । १३६ दीर्घः ॥ मनो मन्यतेः स्तुतिकर्मणः निघं० ३ । १४ वेनत इति वेनतेः कान्तिकर्मणः निघं० २ । ६ ॥ धर्मन्निति धारणार्थस्य धृधातोः कर्त्तरि मनिपि, सुपां सुलुगित्यादिना (७ । १ । ३९) सप्तमीलुकि रूपम् ॥ गाव इति रश्मिनाम निरु० २ । ६ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ९७ । २२ "ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके" इत्यन्तरम् ॥ ५ ॥ (५३७)

भाषार्थः–(यदि) जब कि (मनसः) प्रशंसा करने वाले (वेनतः) कामना करते हुवे की (वाक्) प्रशंसा वाली वाणी (धर्मन्) धर्म अर्थात् यज्ञ में (ज्येष्ठस्य) बड़े श्रेष्ठ (द्युक्षोः) प्रकाशमान तेज वाले सवन के (अनीके) मुख्य समय में (तक्षत्) घड़ती है (आत्) तभी (कलशे) कलश में स्थित (ईम्) इस (जुष्टम्) प्रीतिपात्र (पतिम्) भर्त्ता के तुल्य (वरम्) वरणीय (इन्दुम्) सोम को (आवावशानाः) सर्वतः कामना करती हुई सी (गावः) किरणें (आयन्) प्राप्त होती हैं ॥

यद्यपि यज्ञ के द्रोणकलश में स्थापित सोमरस का जब अग्नि में होम किया जावे, तब उस सोम का संपर्क किरणों से होवे, परन्तु जितने सवन का आरम्भ ही होता है और सोमरस द्रोणकलश में ही रक्खा रहता है और प्रशंसा करने वाले याज्ञिक पुरुष की वाणी वेदमन्त्रों से उस का वर्णन ही करती है, इतने ही किरणें मानो कोई स्त्रियें अपने प्यारे पति से स्पर्श करती हों, ऐसी कामना सी करती हुई, झट द्रोणकलशस्थित सोमरस से स्पर्श करती हैं॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३६ ॥ ७ । १ । ३९ निघण्टु २ । ६ ॥ ३ । १४ ॥ निरुक्त २ । ६ के प्रमाण और ऋ० ९ । ९७ । २२ के पाठ का भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (५३७)

अथ षष्ठ्याः–नोधा ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः । हरिः

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥६॥ (५३८)

पदपाठः–साकमुक्षः १। मर्जयन्त क्रि०। स्वसारः, दश १। धीरस्य ६। धीतयः १। धनुत्रीः १। हरिः १। पर्यद्रवत् क्रि०। जाः २। सूर्यस्य ६। द्रोणम् २। ननक्षे क्रि०। अत्यः १। न अ०। वाजी १॥

अन्वितपदार्थः–प्रकरणात् सोमः (द्रोणं ननक्षे) द्रोणकलशं व्याप्नोति। अनन्तरम् (धीरस्य) ध्यानशीलस्य होतुः (साकमुक्षः) सहसेचनशीलाः (स्वसारः) सुष्ठुप्रक्षेपकारिण्यः (धनुत्रीः) धनुत्र्यः प्रेरयित्र्यः (दश धीतयः) दशाङ्गुलयः (मर्जयन्त) अलङ्कुर्वन्ति सोमम्। अनन्तरम् (अत्यः) शीघ्रगः (वाजी न) बलवानऽश्वइव सोमः (हरिः) हरितवर्णोभूत्वा (सूर्यस्य), (जाः) अपत्यभूताः दिशः (पर्यद्रवत्) परितो धावति॥

पञ्च स्रुवनिर्मिता अङ्गुलयः, पञ्च च होतुर्दक्षिणहस्तस्येति दशाङ्गुलयः॥ मृजू शौचालङ्कारयोः। चु० उभ०॥ स्वसारः इति धीतय इति चाङ्गुलिनाम निघं० २। ५ जाः इत्यपत्यनाम निघं० २। २ नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा निघं० २। १८॥ ऋग्वेदे ९। ९३। १ऽपि॥ ६॥ (५३८)

भाषार्थः–प्रकरण से सोम प्रथम (द्रोणं ननक्षे) द्रोण कलश में भरा रहता है। फिर (धीरस्य) ध्यानशील होता की (साकमुक्षः) साथ सींचने वाली (स्वसारः) अच्छे फेंकने वाली (धनुत्र्यः) प्रेरणा करने वाली (दश धीतयः) १० अङ्गुलियें (मर्जयन्त) सोम को सुशोभित करती हैं। फिर (अत्यः) शीघ्रगामी (वाजी न) बलवान् अश्व सा [सोम] (हरिः) हरे रङ्ग वाला होकर (सूर्यस्य) सूर्य की (जाः) सन्तानरूप दिशाओं को (पर्यद्रवत्) सब ओर भागता है, अर्थात् अग्नि में हवन किया हुवा हरे धुवें के रूप में सब दिशाओं में फैलता है॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्रुव में जो अङ्गुलियों का आकार होता है, ५ वे और ५ होता के दहिने हाथ की मिलाकर १० अङ्गुलियां जानो ॥

निघण्टु २ । ५ ॥ २ । २ ॥ २ । १८ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ९३ । १ में भी ॥ ६ ॥ (५३८)

अथ षष्ठ्याः—काण्वो घौर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ७ (५३९)

पदपाठः—अधि, यत् अ० । अस्मिन् ७ । वाजिनीव अ० । शुभः १ । स्पर्धन्ते क्रि० । धियः १ । सूरे ७ । न अ० । विशः १ । अपः २ । वृणानः १ । पवते क्रि० । कवीयान् १ । व्रजम् २ । न अ० पशुवर्धनाय ४ । मन्म २ ॥

अन्वितपदार्थः—(यत्) यदा (वाजिनीव) बलवत्यश्वे इव तथा (सूरे न) सूर्ये इव (धियः) प्रज्ञाप्रकाशिकाः (शुभः) याः शोभन्ते ताः (विशः) विशन्ति ताः दीधितयः (अस्मिन्) सोमे (अधि स्पर्धन्ते) अधिकं स्पर्धन्ते=एकस्याः इतराः आधिक्येन प्रकाशन्ते तदा (न) यथा (कवीयान्) चतुरतमो गोपालः (मन्म) मननीयं बोद्धव्यं रक्षणीयं (व्रजम्) गोष्ठं (पशुवर्धनाय), (पवते) गच्छति तथैवाऽयं सोमोऽपि (अपः) मेघजलानि (वृणानः)आच्छादयन् वृष्ट्याहेतुत्वात्पशुवर्धनाय दिवं गच्छति॥

वाजीत्यश्वनाम निघं० १ । १४ ॥ शुभः इत्यत्र क्वचिन्मूलपुस्तकेषु विसर्गो न दृश्यते ॥ पवते इति गतिकर्मा निघं० २ । १४ ॥ कविरिति मेधाविनाम ३ । १५ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ९४ । १ सूर्ये, कवीयन् इति च पाठान्तरम् ॥ ७ ॥ (५३९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(यत्) जब कि (वाजिनीव) जैसे बलवान् घोड़े पर तथा (सूरे न) जैसे सूर्य पर (शुभः) सुहाती हुई (विशः) किरणें (अस्मिन्) इस सोम पर (अधि स्पर्धन्ते) एक दूसरी से बढ़ कर प्रकाश करती हैं, तब (न) जैसे (कक्षीयान्) अतिचतुर गोपालक (मन्म व्रजम्) रक्षा वा सम्मानयोग्य खरक में (पशुवर्धनाय) पशुओं की वृद्धि के लिये (पवते) जाता है। वैसे ही यह सोम भी (अपः) मेघस्थ जलों को (वृणानः) आच्छादित करता हुआ वृष्टि से पशु आदि की वृद्धि के लिये आकाश को जाता है॥

निघं० १। १४॥ २। १४॥ ३। १५ के प्रमाण और ऋ० ९। ९४। १ के पाठ-भेदादि संस्कृत भाष्य में देखिये॥ किन्हीं २ पुस्तकों में मूल में (शुभः) पद विसर्गरहित देखा जाता है॥ ७॥ (५३९)

अथाऽष्टम्याः-मन्युर्वासिष्ठ ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ १
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय। हन्ति
२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा॥८॥ (५४०)

पदपाठः-इन्दुः, वाजी १। पवते क्रि०। गोन्योघाः १। इन्द्रे ७। सोमः १। सहः २। इन्वन् १। मदाय ४। हन्ति क्रि०। रक्षः २। बाधते क्रि०। परि अ०। अरातिम् २। वरिवः २। कृण्वन् १। वृजनस्य ६। राजा १॥

अन्वितपदार्थः-(इन्दुः) क्षरणशीलः (वाजी) बलवान् (गोन्योघाः) गोषु इन्द्रियेषु नितरामोघ ओजो यस्य सः (सोमः), (इन्द्रे) इन्द्रियाधिष्ठातरि अन्तःकरणे (सहः) बलम् (इन्वन्) प्रेरयन्, यद्वा इन्द्रे वृष्टिकर्त्तरि देवे बलं प्रापयन् (पवते) क्षरति। किं च (रक्षः) राक्षसकुलम् (हन्ति) हिनस्ति। अपरं च (अरातिम्) शत्रुम् (परि बाधते) परितः संहरति। ईदृशः सोमः (वरिवः), वरणीयं धनम् (कृण्वन्) कुर्वन्

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(वृजनस्य) बलस्य सैन्यस्य वा (राजा) ऐश्वर्यकृदस्ति ॥

इन्दुरुनत्तेः । उन्देरिच्चादेः (उणा० १।१२) ॥ गोन्योघा इत्यत्राऽस्मन्मते तु ओजः शब्दस्यैव वर्णव्यत्ययेन जस्य घः । सायणाचार्यस्तु गमनशीलनीचीनाग्र–रससंघातः" इत्याहः । तन्मते ओघस्याऽदन्तत्वात् दीर्घपाठश्चिन्त्यएव । " गोनी शब्दो गमनशीलार्थेऽपभ्रंश इत्युदाजहार च पस्पशे पतञ्जलिः" इति सत्यव्रतः सामश्रमी । परं नैतेनौघशब्दस्य सान्तत्वं सिद्धम् ॥ इन्वतिर्गतिकर्मा निघं० २ । १४ ॥ सायणाचार्येणाऽत्र सामवेदेऽपि ऋग्वेद–(९ । ९७ । १०) स्थपाठमनुसृत्याऽरातिरित्यस्यैव व्याख्यानं कृतम् ॥ वृजनमिति बलनाम निघं० २ । ९ राजतिरैश्वर्यकर्मा निघं० २ । २१ च ॥ ८ ॥ (५४०)

भाषार्थः–(इन्दुः) चूने वा टपकने के स्वभाव वाला (बाजी) बलवान् (गोन्योघाः) इन्द्रियों में नितरां बल पुरुषार्थ हो जिस का, ऐसा (सोमः) सोमरस (इन्द्रे) इन्द्रियों के अधिष्ठाता अन्तःकरण में (सहः) बल को (इन्वन्) पहुंचाता हुआ, यद्वा, इन्द्र=वृष्टि के कर्त्ता में बल पहुंचाता हुआ (पवते) चूता, टपकता वा वर्षता है और (रक्षः हन्ति) राक्षसगण का हननकर्ता तथा (अरातिम्) शत्रु का (परि बाधते) सर्वतः संहार करता है । ऐसा सोम (वरिवः) श्रेष्ठ धन को (कृण्वन्) उत्पन्न करता हुवा (वृजनस्य) बल वा सेना का (राजा) ऐश्वर्यकारी है ॥

अर्थात् सोमरस के हवन से इन्द्र वृष्टि करता और मेघों का हनन कर के धान्यादि धन को उत्पन्न करता है और सोमरस के सेवन से शरीर और मन को बल प्राप्त होता है, जिस से शत्रुओं को जीत कर राज्यादि ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उणादि १। १२ निघण्टु २। १५॥ २। ९॥ २। २१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ 'ओन्योघाः' पद में हमारे विचार में तो ओजस् का ओघस् है। ज का घ वर्णव्यत्यय से हुवा है। परन्तु सायणाचार्य ओघ शब्द अकारान्त की व्याख्या करते हैं, उस में दीर्घ पाठ विचारणीय ही रह जाता है। और श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी कहते हैं कि "—'ओनी' शब्द महाभाष्य के पस्पशाह्निक में गमनशील के अर्थ में अपभ्रंश है, ऐसा पतञ्जलि ने लिखा है" उस से 'ओघ' के स्थान में 'ओघाः' पाठ फिर विचारणीय ही रह जाता है॥ सायणाचार्य ने (अरातीः) ऐसा ऋग्वेद ९। ९७। १० का पाठ है, उसी की व्याख्या यहां सामवेद में (अरातिम्) पाठ होने पर भी की है॥८॥ (५४०)

अथ नवमस्याः—कुत्स ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १२३ १२ ३२
अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व। ब्रध्न-
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २३१२ ३ १२३ १२
श्चियस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात्॥९॥ (५४१)

पदपाठः—अया, पवा ३। पवस्व क्रि०। एना २। वसूनि २। मांश्चत्वः १। इन्दो सं०। सरसि ७। प्रधन्व क्रि०। ब्रध्नः १। चित् अ०। यस्य ६। वातः १=६। न अ०। जूतिम् २। पुरुमेधाः १। चित् अ०। तकवे ४। नरम् २। धात् क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(इन्दो) सोम ! (अया) अनया (पवा) पवित्रया धारया (मांश्चत्वः) अश्व इव वेगवान् (सरसि) उदकपूर्णे आकाशे (प्र धन्व) प्र गच्छ। तथा (एना) एनानि (वसूनि) धान्यादीनि धनानि (पवस्व) क्षर वर्षय। (यस्य) यस्य तव (वातः न) वातस्येव (नरम्) नेतारम् (जूतिम्) वेगम् (तकवे) गमनाय (पुरुमेधाः) बहुप्रज्ञः (चित्) च (ब्रध्नः) आदित्यः (चित्) च (धात्) दध्यात्

यज्ञे सुसंस्कृतोऽभिषुतः सोमोऽग्नौ हूयते, तेन आदित्या-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दिभौतिकदेवानामाप्यायनं, तत्पानेन विदुषां याज्ञिकानां चाऽप्यायनं भवति। सोमो हि तरलस्वभावोबुद्धुत्पादको गतिमतां गतेः सहायकश्चास्तीति भावः॥

पवेति–पूञ् पवने क्रया० उ० इत्यस्मात्–अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२। १०१ इति विन् प्रत्ययः। आर्धधातुकलक्षणो गुणः। सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिरिति ६। १।१६९ तृतीयाया उदात्तत्वम्॥ मांश्वत्व इत्यश्वनाम निघं० १। १४ सर इत्युदकनाम निघं० १। १२ धन्वतिर्गतिकर्मा निघं० २। १४ ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च ३। ३। ९७ इति जूतिर्निपातितः॥ तकवे इति गत्यर्थात्तकतेरौणादिके उनि रूपम्॥ ऋग्वेदे तु ९। ९७। ५२ ब्रध्नश्चिदत्र ००० जूतः ००० पुरुमेधः ००० नरं दात्। इति चान्तरम्॥ ९॥ (५४१)

भाषार्थः–(इन्दो) सोम! (अया) इस (पवा) पवित्र धारा से (मांश्वत्यः) अश्ववत् वेगगामी (सरसि) उदकपूर्ण आकाश में (प्र धन्व) फेंका जा, तथा (एना) इन (वसूनि) धान्यादि धनों को (पवस्व) बर्षाव। (यस्य) जिस तेरे (वातः न) वायु के समान (नरम्) ले चलने वाले (जूतिम्) वेग को (तकवे) गमन के लिये (पुरुमेधाः) बहुत प्रज्ञा वाला पुरुष (चित्) भी (ब्रध्नः चित्) और सूर्य (धात्) धारण करे॥

यज्ञ में भले प्रकार अभिषव किया हुवा सोम अग्नि में हवन किया जाता है जिस से सूर्यादि भौतिक देवों का आप्यायन होता है और उस के पान से विद्वान् यज्ञकर्त्ताओं का आप्यायन होता है। सोम तरलस्वभाव वाला, बुद्धि का उत्पादक और गति वालों की गति का सहायक है। यह तात्पर्य है॥

अष्टाध्यायी ३। २। १०१॥ ६। १। १६९॥ ३। ३। ९७॥निघण्टु १। १४॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ । १२ ॥ २ । १४ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ९ । ९७ । ५२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (५४१)

अथ दशम्याः—पराशर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३१ २र ३१२ ३१ २र ३२ १२३

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् । अदधा-

२३१२ ३१ २र ३२३ २३१२

दिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयन्त्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥ (५४२)

पदपाठः—महत्, तत् २ । सोमः, महिषः १ । चकार क्रि० । अपाम् ६ । यत् अ० । गर्भः १ । अवृणीत क्रि० । देवान् २ । अधात् क्रि० । इन्द्रे ७ । पवमानः १ । ओजः २ । अजनयत् क्रि० । सूर्ये ७ । ज्योतिः २ । इन्दुः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(सोमः) सोमरसः, अमृतः परमात्मा वा (यत्) यद्धि (अपां गर्भः) जलानां ग्राहकः, कर्मणां ग्राहको वा (देवान्) वाय्वादीन्, विदुषो वा (अवृणीत) वृणोति पीतः सोमो देवानिन्द्रियाणि वाऽधिष्ठितवान् (तत् महत्), कर्म (महिषः) गुणैर्महान् सोमः (चकार) करोति, तथा (पवमानः) शुद्धिहेतुः सः (इन्द्रे) विद्युति, आत्मनि वा (ओजः) बलम् (अदधात्) दधाति । अथ च सएव (इन्दुः) सोमः (सूर्ये) आदित्ये (ज्योतिः) प्रकाशम् (अजनयत्) जनयति ॥

परमात्मनस्तु सर्वमिदं सुकरमेवेति निर्विवादम्। सोमयागस्य चाऽपि कस्मिंश्चिदंशेऽपां ग्राहकत्वम्, वाय्वादिदेवानां वरणकारकत्वम्, वृष्टिकारके विद्युत्तत्त्वे बलोत्पादकत्वम्, सूर्यरश्मिषु च प्रकाशप्रसारकत्वं सुवचम् ॥

निरुक्तपरिशिष्टकारस्तु—" महत्तत्सोमो महिषश्चका-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रापां यद्गर्भोवृणीत देवानाधिपत्यमदधादिन्द्रे पवमान ओ-जोजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुरादित्य इन्दुरात्मा " इति निरु० प० २ । १७ ॥ महिष इति महन्नाम निघं० ३ । ३ अपः इति कर्मनाम निघं० २ । १ ॥ ऋग्वेदे ९ । ९७ । ४१ ऽपि ॥ १० ॥ (५४२)

भाषार्थः-(सोमः) सोमरस वा अमृत परमात्मा (यत्) जो कि (अपां गर्भः) जलों का ग्राहक वा कर्मों का ग्राहक (देवान् अवृणीत) वायु आदि देवतों, वा विद्वानों वा इन्द्रियों का वरण करता है, (महिषः) गुणों से महान् सोम (तत् महत्) यह बड़ा काम (चकार) करता है । तथा (पव-मानः) शुद्धि का हेतु सोम (इन्द्रे) बिजुली वा आत्मा में (ओजः) बल को (अदधात्) धारण करता है और वही (इन्दुः) सोम (सूर्ये) आदित्य मण्डल में (ज्योतिः) प्रकाश को (अजनयत) उत्पन्न करता है ॥

परमात्मा यह सब करता है, इस में तो विवाद ही नहीं, परन्तु सोम भी किसी अंश तक जलों का ग्राहक, वायु आदि देवों का वा पान करने से इन्द्रियों का वरण करने वाला, वृष्टिकारक, विद्युत्तत्त्व वा आत्मा में बल का धारण करने वाला और सूर्य की किरणों में फैलकर प्रकाश का उत्पन्न करने वाला कहा जा सकता है ॥

निरुक्त के परिशिष्टकार २ । १७ में कहते हैं कि यहां इन्दु=आत्मा वा आदित्य का नाम है । और निघण्टु २ । १ ॥ ३ । ३ के प्रमाण भी संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ९७ । ४१ में भी ॥ १० ॥ (५४२)

अथैकादश्याः-कश्यप ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा । दश

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निꣳसदनेष्वच्छ ११ (५४३)

पदपाठः-असर्जि क्रि० । वक्वा ३ । रथ्ये ७ । यथा अ० । आजौ ७ । धिया ३ ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मनोता, प्रथमा, मनीषा ३। दश, स्वसारः १। अधि अ०। सानौ सं०=७। अव्ये ७। मृजन्ति क्रि०। वह्निम् २। सदनेषु ७। अच्छ अ०॥

अन्वितपदार्थः-(यथा), (आजौ) संग्रामे (रथ्ये) रथैर्युक्ते (वक्ता) वक्ता नायकेन (प्रथमा) प्रथमया श्रेष्ठया (मनोता) मनोतया मनांसि अस्यां प्रोतानि तया (मनीषा) मनस ईषा तया (धिया) प्रज्ञया सर्वथा सावधानया बुद्ध्या (असर्जि) शस्त्राऽस्त्रादिकं सृज्यतेऽश्वादयो वा यथा शब्दं सृज्यन्ते, तथैव (दश), (स्वसारः) अङ्गुलयः (अव्ये) अव्रिःशैलस्तदीये (सानौ अधि) सानुप्रदेशे (सदनेषु) सोमोत्पत्तिस्थानेषु (अच्छ) सुष्ठु सावधानतया (वह्निम्) वोढारं सोमं (मृजन्ति) शोधयेयुः सृजेयुश्च॥

वक्ता-वच्परिभाषणे अदा० प० वनिप्। ततस्तृतीयाया आकारः (७।१।३९)॥ स्वसार इत्यङ्गुलिनाम निघं० २। ५॥ सायणाचार्येण तु "प्रथमः। मनीषी। अजन्ति। सदनानि" इति ऋग्वेदस्थे ९। ९१। १ पाठे सत्यपि महत्यन्तरे त एव पाठा व्याख्यातास्ते चाऽत्राऽसम्बद्धाः॥ ११॥ (५४३)

भाषार्थः-(यथा) जिस प्रकार (आजौ) संग्राम में (रथ्ये) जहां रथादि हों वहां (वक्ता) बोली बोलने वाले नायक से (प्रथमा) श्रेष्ठ (मनोता) जिसमें मन ओत प्रोत हों उस (मनीषा) मन की चलाने वाली (धिया) बुद्धि अर्थात् पूर्ण सावधानी से (असर्जि) अस्त्र शस्त्र वा अश्वादि चलवाये जाते हैं, इसी प्रकार (दश स्वसारः) १० अङ्गुलियें (अव्ये) पर्वत के (अधि सानौ) सानुप्रदेश में (सदनेषु) सोमोत्पत्ति के स्थानों में (अच्छ) भले प्रकार से (वह्निम्) ले चलने की शक्ति वाले सोम को (मृजन्ति) शुद्ध करें और छोड़ें॥

अष्टाध्यायी ७।१।३९ निघं० २। ५ इत्यादि के प्रमाण और ऋ०९।९१।१

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

में जो पाठों के भेद हैं वे संस्कृत भाष्य में देखिये और सायणाचार्य ने पाठों में बहुत भेद होने पर भी उन्हीं ऋग्वेदस्थ पाठों का अनुसरण करके व्याख्या की है। इसी लिये असंबद्धता स्पष्ट जान पड़ती है ॥ ११ ॥ (५४३)

अथ द्वादश्याः—प्रस्कण्व ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १

अपामिवेदूर्मयस्तर्त्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ। नमस्यन्ती-

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १

रुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ १२ ॥ (५४४)

इति सप्तमी दशतिः ॥७॥ इति षष्ठस्याऽर्धः प्रपाठकः ॥

पदपाठाः—अपाम् ६ । इव, इत् अ० । ऊर्मयः, तर्त्तुराणाः १ । प्र अ० । मनीषाः १ । ईरते क्रि० । सोमम् २ । अच्छ अ० । नमस्यन्तीः १ । उप, च अ० । यन्ति क्रि० । सम्, च, आ, च अ० । विशन्ति क्रि० । उशतीः १ । उशन्तम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(मनीषाः) प्रज्ञाः (अपाम् ऊर्मयः इव) जलानां तरङ्गा इव (तर्त्तुराणाः) त्वरमाणाः (इत्) इव (सोमम्) सौम्यगुणविशिष्टं सोमसेविनं पुरुषम् (अच्छ) (प्र ईरते) प्रगच्छन्ति (नमस्यन्तीः) नमः कुर्वन्त्यः सत्कुर्वन्त्य इव (उशतीः) उशन्त्यः (उशन्तम्) कामयमानं सोमम् (उपयन्ति च) सामीप्येन गच्छन्ति च (सं च) संयन्ति संगच्छन्ते च (आ विशन्ति च) प्रविशन्ति च ॥

तर्त्तुराणाः इति तुर त्वरणे जुहोत्यादिः आ० तस्य यङ्लुगन्तस्य शानचि रूपम्। अभ्यस्तानामादिः ६।१।१८९ इत्याद्युदात्तत्वम् ॥ ऋग्वेदे ९ । ९५ । ३ ऽपि ॥ १२ ॥ (५४४)

* इति पञ्चमाऽध्याये सप्तमी दशतिः ॥७॥ * इति त्रैष्टुभम् ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः- (मनीषाः) बुद्धियें (अपाम्) जलों की (ऊर्मयः) तरङ्गों के (इव) समान (तर्तुराणाः) फुरतीली (इत्) सी (सोमम्) सोमरस के मेधन से सौम्यस्वभाव वाले पुरुष को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र ईरते) प्राप्त होती हैं । (नमस्यन्तीः) मानो उस को नमस्कार करती हुई (उशतीः) और चाहती हुई (उशन्तम्) चाहते हुए उस पुरुष के (उप यन्ति च) समीप भी जाती हैं (सं च) और उस से मिलती हैं (आ विशन्ति च) और उस में अपना आवेश करती हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । १८९ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ९५ । ३ में भी ॥ १२ ॥ (५४४)

* यह पञ्चमाऽध्याय में ७ वीं दशति समाप्त हुई ॥ ७ ॥ *

और यह त्रिष्टुप्छन्दों का प्रकरण हुआ ॥

पुरोजितीति दशतौ पावमान्यो नव स्मृताः ॥
अनुष्टुप्छन्दसोऽष्टौ च बृहती सप्तमी मता ॥ १ ॥
ऋषीणां विप्रकीर्णत्वात्तत्र तत्राभिदध्महे ॥

अथ प्रथमा दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः- श्यावाश्व ऋषिः । पवमानो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
३ २ १ २ ३ १ २ ३ क २र
अप श्वानꣳश्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥ १ ॥ (५४५)

पदपाठः- पुरोजिती ४ । वः ६ । अन्धसः ६=४ । सुताय, मादयित्नवे ४ । अप अ० । श्वानम् २ । श्नथिष्टन क्रि० । सखायः सं० । दीर्घजिह्वयम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(सखायः) हे सुहृदः ! (वः), (मादयित्नवे) आनन्ददाय (पुरोजिती) पुरोऽग्रे जितिर्जयो येन तस्मै पुरोजितये (सुताय) अभिषुताय सोमाय (अन्धसः) अन्धसे तृप्तिहेतवेऽन्नाय [तद्रक्षार्थमित्यर्थः] (दीर्घजिह्वयम्) लम्बजिह्वं (श्वानम्), (अप श्नथिष्टन) अपबाधध्वम् ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यज्ञदेशो हि पवित्रतमो देशस्तत्रस्थानां सोमाद्युत्तम-हव्यपदार्थानां रक्षणं श्वादिमांसाहारिजन्तुभ्योऽवश्यंकरणी-यमिति सूचितम् । अस्ति च लोके एतन्मूलक एव प्रवादः । यथा–" शुनीवाध्वरमण्डपम् " इत्यादिः ॥ विनियोगस्त्वा-सां ज्योतिष्टोमे इति विवरणकारः ॥ ईश्वरपक्षेऽपि श्वशब्देन पराऽपकारकाः क्रोधादयोज्ञेयास्तेभ्यो रक्षणमात्मनोन्धसो ध्यानामृतस्य करणीयम् ॥

श्वनुक्षन्पूषन्नित्यादिना (उणा० १ । १५९) श्वयतेः श्वा निपातितः ॥ पुरोजिती इत्यत्र–सुपां सुलुगित्यादिना (७ । १ । ३९) चतुर्थ्येकवचनस्य पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ ऋग्वेदे ९ । १०१ । १ ऽपि ॥ १ ॥ (५४५)

श्लोकार्थः- पुरोजिती० इस दशति में ९ ऋचा हैं, जिन का पवमान देवता है । ७ वीं का बृहती छन्द है । शेष ८ का अनुष्टुप्छन्द है ॥ १ ॥ सब ऋचाओं के भिन्न २ ऋषि हैं, उन का वर्णन उस २ ऋचा के शीर्षक पर ही किया जायगा ॥

भाषार्थः–(सखायः) हे मित्रो ! (वः) तुम्हारे (मादयित्नवे) हर्ष वा आनन्ददायक (पुरोजिती) आगे जय कराने वाले (सुताय) संपादित सोम रूपी (अन्धसः) तृप्तिकारक अन्न के लिये अर्थात् उस की रक्षार्थ (दीर्घजिह्वयम् श्वानम्) लम्बी जीभ वाले कुत्ते को (अप श्वथिष्टन) भगाओ ॥

यज्ञस्थान एक पवित्रस्थान है, उस में रक्खे हुवे सोमादि उत्तम हव्य पदार्थों को कुत्ते और उस से उपलक्षित अन्य लम्बी जीभ वाले जो जीभ निकाल कर पानी पीते हैं उन मांसाहारादि परार्थी हानि करने वाले जन्तुओं से अवश्य बचाना चाहिये । इसी को मूल मान कर लोक में भी कहावत है कि " कुत्ती जैसे यज्ञमण्डप के योग्य नहीं" इत्यादि ॥ "इन ऋचाओं का ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ में विनियोग है " ऐसा विवरणकार लिखते हैं ॥ परमेश्वर विषयक अर्थ में भी श्वन् शब्द से पराये अनिष्ट करने वाले क्रोधादि से अपने ध्यानाऽमृत की रक्षा करना आवश्यक है, जो कि आत्मा की तृप्ति का हेतु ध्यानाऽमृतरूप अन्न है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उणादि १ । १५९ अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०१ । १ में भी ॥ १ ॥ (५४५)

अथ द्वितीयायाः—ययातिर्नाहुष ऋषिः । पवमानो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।

१ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २

पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ २ ॥ (५४६)

पदपाठः—अयम्, पूषा, रयिः, भगः, सोमः, पुनानः १ । अर्षति क्रि० । पतिः १ । विश्वस्य, भूमनः ६ । व्यख्यत् क्रि० । रोदसी, उभे २ ॥

अन्वितपदार्थः—हे सखायः ! (अयं सोमः) असौ सोमः, परमेश्वरो वा (पूषा) पोषकः (भगः) सर्वैर्भजनीयः (रयिः) धनहेतुः (पुनानः) पवित्रतासंपादकः (अर्षति) कलशं वा दिवं वा पवित्रं हृदयं वा प्राप्नोति, तथा (विश्वस्य) सर्वस्य (भूमनः) भूतजातस्य (पतिः) पालयिता (उभे रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (व्यख्यत्) स्वप्रभावेन प्रकाशयति ॥ "विनियोगोऽस्य ज्योतिष्टोमस्य द्वितीयेऽहनि" इति विवरणकृत् ॥ ऋग्वेदे ९ । १०१ । ७ ऽपि ॥ २ ॥ (५४६)

भाषार्थः—हे मित्रो ! (अयं सोमः) यह सोम वा परमात्मा (पूषा) पुष्टिकर्त्ता (भगः) सब को सेवनीय (रयिः) धनदायक (पुनानः) पवित्रता का सम्पादक (अर्षति) कलश वा आकाश वा पवित्र हृदय में प्राप्त होता है । तथा (विश्वस्य) सब (भूमनः) प्राणिवर्ग का (पतिः) पालन करने वाला, (उभे रोदसी) दोनों पृथिवी लोक और द्युलोक को (व्यख्यत्) अपने प्रभाव से प्रकाशित करता है । विवरणकार कहते हैं कि इस का विनियोग ज्योतिष्टोम यज्ञ के दूसरे दिन में है ॥ ऋ० ९ । १०१ । ७ में भी ॥ २ ॥ (५४६)

अथ तृतीयायाः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥३॥ (५४७)

पदपाठः–सुतासः, मधुमत्तमाः, सोमाः १ । इन्द्राय ४ । मन्दिनः, पवित्रवन्तः १ । अक्षरन् क्रि० । देवान् २ । गच्छन्तु क्रि० । वः ६ । मदाः १ ॥

अन्वितपदार्थः–हे सखायः ! (वः) युष्माकं (मदाः) हृष्टियुक्ताः (मन्दिनः) हर्षप्रदाः (मधुमत्तमाः) मधुररसमिश्रिततमाः (इन्द्राय सुतासः) इन्द्रार्थमभिषुताः (पवित्रवन्तः) दशापवित्रादिवन्तः सोमाः (अक्षरन्) सिक्ता भवन्तु, अथ (देवान् गच्छन्तु) ॥ विनियोगोऽस्य तृतीयेऽहनि इति विवरणकृत् ॥ ऋग्वेदे ९ । १०१ । ४ ऽपि ॥ ३ ॥ (५४७)

भाषार्थः–हे मित्रो ! (वः) तुम्हारे (मदाः) हृष्टियुक्त (मन्दिनः) हर्षदायक (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधु मिले हुए (इन्द्राय सुतासः) इन्द्र के लिये अभिषुत किये हुवे (पवित्रवन्तः) दशापवित्रादि वाले (सोमाः) सोम (अक्षरन्) अग्नि में छिड़के जावें और (देवान्) देवताओं को (गच्छन्तु) प्राप्त होवें ॥ इस का विनियोग ज्योतिष्टोम के तीसरे दिन में विवरणकार कहते हैं ॥ ऋ० ९ । १०१ । ४ में भी ॥ ३ ॥ (५४७)

अथ चतुर्थ्याः–मनुः सांवरण ऋषिः । पवमानो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ १ ३ २ ३ १ २
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ४ ॥ (५४८)

पदपाठः–सोमाः १ । पवन्ते क्रि० । इन्दवः १ । अस्मभ्यम् ४ । गातुवित्तमाः, मित्राः, स्वानाः, अरेपसः, स्वाध्यः, स्वर्विदः १ ॥

अन्वितपदार्थः–(इन्दवः) दीप्तिमन्तः (गातुवित्तमाः) गातोर्मार्गस्य लम्भकतमाः (मित्राः) सर्वहितकराः (स्वानाः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्वयंजीविनः (अरेपसः) निष्पापाः (स्वाध्यः) सुध्यानाः (स्वर्विदः) सर्वज्ञकल्पाः (सोमाः) सोमवन्तस्तत्सेविनः पुरुषाः (अस्मभ्यम्), (पवन्ते) प्राप्नुवन्तु ॥

इन्दुरिन्धेः । निरु० १० । ४१ ॥ पवते इति गतिकर्मा निघं० २ । १४ ॥ गातुरिति पृथिवीनाम निघं० १ । १ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०१ । १० सुवाना इति पाठः ॥ ४ ॥ (५४८)

भाषार्थः—(इन्दवः) दीप्तिवाले (गातुवित्तमाः) अधिकतया ठीक मार्ग को पाने और पहुंचाने वाले (मित्राः) सब के हितकारी (स्वानाः) अपने आप जीवन करने वाले (अरेपसः) पापरहित (स्वाध्यः) भले प्रकार से ध्यान करने वाले (स्वर्विदः) लगभग सब कुछ जानने वाले (सोमाः) सोम का सेवन करने वाले लोग (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (पवन्ते) प्राप्त होवें ॥

निरुक्त १० । ४१ निघण्टु २ । १४ ॥ १ । १ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०१ । १० का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥ (५४८)

अथ पञ्चम्याः—ऋजिष्वाम्बरीषौ द्वावृषी । पवमानो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभी नो वाजसातमꣳरयिमर्ष शतस्पृहम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ ५ ॥ (५४९)

पदपाठः—अभि अ० । नः ४ । वाजसातमम्, रयिम् २ । अर्ष क्रि० । शतस्पृहम् २ । इन्दो सं० । सहस्रभर्णसम्, तुविद्युम्नम्, विभासहम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्दो) प्रकाशस्वरूप! (नः) अस्मभ्यम् (वाजसातमम्) अन्नस्य बलस्य वा दातृतमम् (शतस्पृहम्) बहुभिः स्पृहणीयम् (सहस्रभर्णसम्) बहुभरणम् (तुविद्युम्नम्) बहुयशस्वि (विभासहम्) महतः प्रकाशस्याऽभिभवित्र (रयिम्) धनम् (अभि अर्ष) अभितः प्रापय ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वा । निरु० ५ । ५ ॥ "विभासहः शब्दोऽसौ एकत्रात्रैव श्रूयते त्रिवेदसंहितास्विति ध्येयम्" इति सत्यव्रतः सामश्रमी ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ९८ । १ अभि, विभ्वासहम् इति पाठौ ॥ ५ ॥ (५४९)

भाषार्थः-(इन्दो) प्रकाशस्वरूप ! (नः) हमारे लिये (वाजसातमम्) अन्न वा बल के अत्यन्त दाता (शतस्पृहम्) बहुतों से चाहे हुये (सहस्रभर्णसम्) अनेक प्रकार से भरण पोषण करने वाले (तुविद्युम्नम्) बड़े यशस्वी (विभासहम्) बड़े बड़ों के प्रकाश को दबा सकने वाले (रयिम्) विद्यादि धन को (अभि अर्ष) सब ओर से प्राप्त कराइये ॥

निरुक्त ५ । ५ में द्युम्न=अन्न वा यश । सत्यव्रत सामश्रमी कहते हैं कि (विभासह) शब्द यहीं एक स्थान में ३ वेद संहिताओं में आया है ॥ ऋ० ९ । ९८ । १ में (अभि) और (विभ्वासहम्) पाठ हैं ॥ ५ ॥ (५४९)

अथ षष्ठ्याः-ऋजिश्वा काश्यपो ऋषी । पवमानो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वत्सं न पूर्व आयुनि जातꣳ रिहन्ति मातरः ॥ ६ ॥ (५५०)

पदपाठः-अभि अ० । नवन्ते क्रि० । अद्रुहः १ । प्रियम् २ । इन्द्रस्य ६ । काम्यम्, वत्सम् २ । न अ० । पूर्वे, आयुनि ७ । जातम् २ । रिहन्ति क्रि० । मातरः १ ॥

अन्वितपदार्थः-पूर्वोक्ताः सोमसेविनः (अद्रुहः) द्रोहरहिताःसन्तः सर्वस्य प्रियं चरन्तः (इन्द्रस्य) परमात्मनः (प्रियम्) प्रसादकरं (काम्यम्) कमनीयं कर्म (अभि नवन्ते) अभि गच्छन्ति । दृष्टान्तः-(न) यथा (पूर्वे) पूर्वस्मिन् (आयुनि) वयसि (जातम्) उत्पन्नम् (वत्सम्) प्रियं पुत्रं (मातरः) तन्मातरः (रिहन्ति)। प्रेम्णेति शेषः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आयुनि इत्यत्राऽऽयुषीति वक्तव्ये वर्णव्यत्ययेन षस्य नः । नवते इति गतिकर्मा निघं० २ । १४ ॥ ऋग्वेदे ९ । १०० । १ ऽपि ॥ ६ ॥ (५५०)

भाषार्थः- पूर्वोक्त सोमसेवी सौम्य पुरुष (अद्रुहः) किसी से द्रोह नहीं करते, सब पर प्यार करते हैं और (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (प्रियम्) प्यारे (काम्यम्) उत्तम काम्य कर्म को (अभि नवन्ते) प्राप्त करते हैं=अनुष्ठान करते हैं दृष्टान्त-(न) जैसे (पूर्वे आयुनि) पूर्व आयु में (जातम्) उत्पन्न हुवे (वत्सम्) पुत्र पर (मातरः) उन की मातायें (रिहन्ति) [प्रेमसे] प्यार करती हैं ॥

निघण्टु २ । १४ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०० । १ में भी ॥ ६ ॥ (५५०)

अथ सप्तम्याः-ऋषिर्देवते उक्ते । बृहती छन्दः ॥

१ २३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ ३ १

आहर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् । शुक्रा वियन्त्य-

२ ३ १ २ ३१ २२ ३ १ २

सुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥ (५५१)

पदपाठः-आहर्यताय, धृष्णवे ४ । धनुः २ । तन्वन्ति क्रि० । पौंस्यम् २ । शुक्राः १ । वियन्ति क्रि० । असुराय, निर्णिजे ४ । विपाम् ६ । अग्रे ७ । महीयुवः १ ॥

अन्वितपदार्थः-पूर्वोक्ताः सोमसेविनो धीराः (शुक्राः) वीर्यवन्तः (असुराय) पराऽपकाररताय (धृष्णवे) धृष्टाय (आहर्यताय) आक्रमणं कुर्वते दुष्टाय (पौंस्यम् धनुः तन्वति) बाणान् धनुषि सन्धाय प्रहरन्ति । (महीयुवः) भूमिकामाः सन्तः (विपाम्) मेधाविनाम् (अग्रे) पुरस्तात् वर्त्तमानाः (निर्णिजे) रूपार्थम् (वियन्ति) विरुन्धन्ति ॥

यद्यपि सौम्याः पुरुषाः सर्वस्य प्रिये रताः सन्तो वर्त्तन्ते इत्युक्तं पूर्वत्र, परन्तु दुष्टेषु ते दण्डविधानक्षमा धनुर्धारिणो योद्धारो विदुषां पुरोवर्त्तिनो भवन्ति ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हर्यतिर्गतिकर्मा निघं० २ । १४ ॥ निर्णिगिति रूपनाम निघं० ३ । ७ ॥ विपः इति मेधाविनाम निघं० ३ । १५ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ९९ । १ निर्णिजम् । शुक्राम् । वयन्ति इत्यन्तरम् । सायणाचार्येण चाऽत्र वियन्तीति पाठान्तरे सत्यपि वयन्तीति ऋग्वेदीयपाठ एव भ्रान्त्या व्याख्यातः ॥७॥ (५५१)

भाषार्थः—पूर्वोक्त सोमसेवी धीर (शुक्राः) वीर्यवान् ब्रह्मचर्यबलयुक्त मनुष्य (आहर्यताय, धृष्णवे, असुराय) आक्रमण करते हुवे, धृष्ट, असुः=पराई हानि और स्वार्थसाधन में तत्पर पुरुष के लिये (पौंस्यम् धनुः) पौरुषयुक्त धनुष् को (तन्वन्ति) चढ़ाते हैं । (महीयुवः) विजय से पृथिवी को चाहने वाले वे (विपाम्) विद्वानों के (अग्रे) आगे वर्त्तमान हुवे (निर्णिजे) अपने रूप की रक्षा के लिये (वियन्ति) लड़ते हैं ॥

यद्यपि पूर्वोक्त प्रकार के सौम्य पुरुष सब का प्रियाचरण करते हैं, परन्तु जो कोई दुष्ट धृष्ट उन पर आक्रमण करे तो अपने स्वरूप की रक्षा के लिये उन से युद्ध करने में समर्थ होते हैं और विद्वानों के आगे होकर अपनी रक्षा और दुष्टों का दमन कर सकते हैं ॥

निघण्टु २ । १३ ॥ ३ । ७ ॥ ३ । १५ के प्रमाण और ऋ० ९ । ९९ । १ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ सायणाचार्य ने ऋग्वेद के पाठ (वयन्ति) की ही व्याख्या यहां (वियन्ति) पाठ होते हुवे भी भ्रान्ति से की है ॥७॥ (५५१)

अथाऽष्टम्याः—ऋजिश्वाम्बरीष ऋषी । पवमानो देवता ।

अनुष्टुप्छन्दः ॥

२१ १ २३१ २२ ३१ २ ३ १२

परि त्यꣳ हर्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

२ ३२उ ३ २उ ३ १२ ३१ २२

यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ८ ॥ (५५२)

पदपाठः—परि अ० । त्यम्, हर्यतम्, हरिम्, बभ्रुम् २ । पुनन्ति क्रि० । वारेण ३ । यः १ । देवान्, विश्वान् २ । इत्, परि अ० । मदेन ३ । सह अ० । गच्छति क्रि० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः-(त्यम्) तम् (हर्यतम्) सर्वैः स्पृहणीयम् (हरिम्) हरितवर्णम् (बभ्रुम्) श्वेतवर्णं च सोमम् (वारेण) बालेनोर्णामयेन दशापवित्रेण (परि पुनन्ति) परि शोधयन्ति । (यः) सोमः (विश्वान्) सर्वान् (इत्) एव (देवान्) वाय्वादीन् (मदेन) रसेन (सह), (परि गच्छति) समन्ताद्गच्छति ॥ विनियोगोऽस्य नवमेऽहनीति विवरणकृत् ॥ ऋग्वेदे ९ । ९८ । ७ऽपि ॥ ८ ॥ (५५२)

भाषार्थः-(त्यम्) उस (हर्यतम्) सब से चाहने योग्य (हरिम्) हरे और (बभ्रुम्) श्वेतवर्ण सोम को (वारेण) बाल से रचे हुवे दशापवित्र से (परि पुनन्ति) सब प्रकार शोधते हैं । (यः) जो सोम (विश्वान्) सब (इत्) ही (देवान्) वायु आदि देवतों को (मदेन) रसके (सह) साथ (परि गच्छति) सब ओर जाता है ॥ विवरणकार कहते हैं कि इस मन्त्र का विनियोग ज्योतिष्टोम यज्ञ के नवें दिन में है ॥ ऋ० ९ । ९८ । ७ में भी ॥८॥ (५५२)

अथ नवम्याः-प्रजापतिर्ऋषिः । पवमानो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
अप श्वानमराधसꣳ हता मखं न भृगवः ॥९॥ (५५३)

पदपाठः-प्र अ० । सुन्वानाय ४=१ । अन्धसः २ । मर्तः १ । न अ० । वष्ट क्रि० । तद्वचः २ । अप अ० । श्वानम्, अराधसम् २ । हत क्रि० । मखम् २ । न अ० । भृगवः सं० ॥

अन्वितपदार्थः-(भृगवः) हे ज्ञानिनो मनुष्याः ! यः (अन्धसः) सोमाद्यन्नानि (सुन्वानाय) सुन्वानः (मर्तः) मनुष्योऽध्वर्युस्तदुपलक्षिता अन्ये चर्त्विजःसन्ति (तद्वचः) तस्य तेषां वा वचोवचनम् [याचनम्] (न प्रवष्ट) न

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कामयध्वम् अर्थादऽयाचितमेव दक्षिणां तस्मै तेभ्यो वा दत्त, किन्तु (अराधसम्) अधनमऽदक्षिणं (मखम्) यज्ञम् (न हत) न विनष्टं कुरुत। किञ्च (श्वानम्) श्वोपलक्षितान्कर्मविघ्नकारकान्प्राणिनः (अप) अप हत॥

यजमानेनाऽध्वर्युप्रभृत्यृत्विजां याचनावचो न प्रतीक्षणीयं किन्त्वयाचितैव दक्षिणा देया। अदक्षिणो यज्ञो हतो भवति तस्मात्तन्न करणीयम्। एतन्मूलक एव च लोकवादोऽपि (हतो यज्ञस्त्वऽदक्षिणः) इत्यादिः॥ ऋग्वेदे तु ९। १०१। १३ सुन्वानस्यान्धसो मर्त्तो न वृत तद्वचः। इत्यन्तरम्॥९॥ (५५३)

* इति पञ्चमाऽध्यायेऽष्टमी दशतिः॥ ८॥ *

इत्यानुष्टुभम्

भाषार्थः-(मृगवः) हे ज्ञानी मनुष्यो! जो कोई (अन्धसः) सोमादि ओषधिरूप अन्न का (सुन्वानाय) सम्पादन करने वाला (मर्त्तः) मनुष्य अध्वर्यु और उस के उपलक्षण से अन्य ऋत्विज् हैं (तद्वचः) उस के वा उन के वचन [याचना] की (न प्र वष्ट) मत इच्छा करो अर्थात् विना याचना ही दक्षिणा दो और (अराधसम्) विना दक्षिणा के (मखम्) यज्ञ को (न हत) मत नष्ट करो किन्तु (श्वानम्) कुत्ता आदि कर्मविघ्नकारी प्राणिवर्ग को (अप हत) हटावो॥

अर्थात् यजमान को चाहिये कि अध्वर्यु आदि ऋत्विज् लोग जो सोम रस के सेवन आदि कामों को करते हैं उन की याचना की प्रतीक्षा न करे, किन्तु विना मांगे ही श्रद्धा और योग्यतानुसार दक्षिणा दे। और विना दक्षिणा के यज्ञ नष्ट न करे। लोक में भी (विना दक्षिणा यज्ञ हत=नष्ट है) इत्यादि कहावतों का मूल ऐसे मन्त्र ही जान पड़ते हैं॥ ऋ० ९। १०१। १३ में जो अन्तर है वह संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ९॥ (५५३)

* यह पञ्चमाध्याय में आठवीं दशति पूर्ण हुई॥ ८॥ *

—:०ॐ०:—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जगत्योऽभिप्रियाणीति सौम्यो द्वादश संमताः ।
ऋषीणां विप्रकीर्णत्वाद्दृश्यन्ते तत्र तत्र हि ॥ १ ॥

अथ नवमी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-कविर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २
अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः १ (५५४)

पदपाठः-अभि अ० । प्रियाणि २ । पवते क्रि० । चनोहितः १ । नामानि २ । यह्वः १ । अधि अ० । येषु ३ । वर्धते क्रि० । आ अ० । सूर्यस्य, बृहतः ६ । बृहन् १ । अधि । रथम्, विष्वञ्चम् २ । अरुहत् क्रि० । विचक्षणः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(चनोहितः) चनसेऽन्नोत्पादाय हितः (यह्वः) महान् सोमः (नामानि) नमनशीलानि (प्रियाणि) जगतः प्रीणयितॄणि जलानि (अभि पवते) सर्वतो वर्षयति (येषु) अन्तरिक्षस्थेषु जलेषु (अधि) उपर्याकाशे (वर्धते) प्रवृद्धो भवति (बृहतः) महतः (सूर्यस्य) आदित्यमण्डलस्य [किरणेषु] (विष्वञ्चं रथम्) तिर्यग्गामिनं मेघमण्डलरूपं रथम् (विचक्षणः) विलक्षणप्रकाशवान् (बृहन्) महान्त्सोमः (अध्यारुहत्) ॥

तथैव मनुः ३ । ७६ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ चन इत्यन्ननाम निरु० ६ । १६ यह्व इति महन्नाम निघं० ३ । ३ ॥ ऋग्वेदे ९ । ७५ । १ ऽपि ॥ १ ॥ (५५४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(चनोहितः) अन्नोत्पत्ति के लिये हितकारी (यह्वः) महान् सोम (नामानि) नम्रशील (प्रियाणि) जगत् का प्रीणन करने वाले जलों को (अभि पवते) सब ओर से वर्षाता है। (येषु) जिन अन्तरिक्षस्थ जलों के (अधि) ऊपर आकाश में (वर्धते) प्रवृद्ध होता है। (बृहतः, सूर्यस्य) बड़े आदित्य मण्डल की [किरणों में] (विष्वञ्चं रथम्) तिरछा चलने वाले रथ में (विचक्षणः) विलक्षण प्रकाश वाला (बृहन्) बढ़ता हुआ सोम (अध्यरुहत्) चढ़ता है॥

ऐसा ही मनु ने भी कहा है कि "अग्नि में छोड़ी आहुति सूर्य को प्राप्त होती है और सूर्य से वर्षा, उस से अन्न, उस से वीर्य, उस से प्रजा उत्पन्न होती है" ३। ७६॥ निरुक्त ६। १६ निघं० ३। ३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। ऋ० ९। ७५। १ में भी॥ १॥ (५५४)

अथ द्वितीयायाः—कविर्ऋषिः। पवमानो देवता। जगती छन्दः॥

३ १२ ३ १ २३ २ ३ १ २ ३२३२३ १२ १ २

अचोदसोनो धन्वन्त्विन्दवः प्रस्वानासो बृहद्देवेषु हरयः। वि चिद-

३ २ ३२३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

श्राना इषयो अरातयोर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः॥२॥(५५५)

पदपाठः—अचोदसः १। नः ६। धन्वन्तु क्रि०। इन्दवः १। प्र अ०। स्वानासः १। बृहत् २। देवेषु ७। हरयः १। वि, चित् अ०। अश्नानाः, इषयः, अरातयः, अर्यः १। नः ६। सन्तु, सनिषन्तु क्रि०। नः ६। धियः १॥

अन्वितपदार्थः—(अचोदसः) अनन्यप्रेरिताः (स्वानासः) अभिषूयमाणाः (हरयः) हरितधूमभावपरिणताः, हारका वा (इन्दवः) सोमाः, आत्मानो वा (नः) अस्माकं (देवेषु) वाय्वादिषु, इन्द्रियेषु वा (बृहत्) यथा स्यात्तथा (प्र धन्वन्तु) प्रकर्षेण गच्छन्तु। (चित्) तथा (नः) अस्माकम् (अरातयः) दानरहिताः (अर्यः) अरयः शत्रवः इव (इषयः) विषयानिच्छन्तः कामादयः (वि-अश्नानाः) निर्विषयाः (सन्तु), (नः) अस्माकं (धियः) प्रज्ञाः कर्माणि वा (सनिषन्तु) संभक्तानि भवन्तु॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

धन्वतिर्गतिकर्मा निघं० २। १४॥ ऋग्वेदे तु ९। ७९। १ "दिवेषु हरयः। वि च नशन्नइषो अरातयोर्यो नशन्त सनिषन्त" इति भेदः॥ २॥ (५५५)

भाषार्थः-(अवोदसः) अनन्यप्रेरित (स्वानासः) अभिषुत किये जाते हुवे (हरयः) हरित धूम रूप में परिणत, वा हरणस्वभाव वाले (इन्दवः) सोम, वा आत्मायें (नः) हमारे (देवेषु) वायु आदि देवतों, वा इन्द्रियों में (बृहत्) बहुत (प्र धन्वन्तु) उच्चता से प्राप्त होवें। (चित्) तथा (नः) हमारे (अरातयः) दानरहित (अर्यः) शत्रुतुल्य (इषयः) विषयेच्छु कामादिगण (वि-अशनाः सन्तु) निर्विषय होजावें और (नः) हमारी (इषयः) बुद्धियें, वा कर्म (सनिषन्तु) संविभाग को प्राप्त होवें॥

निघण्टु २। १४ का प्रमाण और ऋ० ९। ७९। १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ २॥ (५५५)

अथ तृतीयायाः-ऋष्यादय उक्तवत्॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एष प्रकोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः।

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभ्यृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः॥ ३॥ (५५६)

पदपाठः-एषः १। प्र अ०। कोशे ७। मधुमान् १। अचिक्रदत् क्रि०। इन्द्रस्य ६। वज्रः १। वपुषः ५। वपुष्टमः १। अभि अ०। ऋतस्य ६। सुदुघाः, घृतश्चुतः, वाश्राः १। अर्षन्ति क्रि०। पयसा ३। च अ०। धेनवः १॥

अन्वितपदार्थः-(एषः) अयम् (इन्द्रस्य वज्रः) विद्युतो वज्रइव प्रहरणसाधनीभूतः (वपुषः) वीजानां वप्तुरन्यस्मात् (वपुष्टमः) अतिशयेन वप्ता। [वीजावापस्य सोमकर्तृकत्वात्। सोमो वै रेतोधाः इति श्रुतेः] (मधुमान्) माधुर्योपेतः सोमः (कोशे) द्रोणकलशादौ (प्र अचिक्रदत्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रकर्षेण शब्दायते (च) तथा (ऋतस्य) उदकस्य (धेनवः) धारयित्र्यः (सुदुघाः) शोभनदोहाः (घृतश्चुतः) उदकस्य च्यावयित्र्यः (वाश्राः) शब्दं कुर्वन्त्यः (पयसा) जलेन (अभि अर्षन्ति) अभि वर्षन्ति ॥

ऋग्वेदे तु ९। ७७। १ वपुष्टरः। अभीमृतस्य। पयसेव। इत्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (५५६)

भाषार्थः (एषः) यह (इन्द्रस्य वज्रः) इन्द्र का वज्र तुल्य प्रहार का साधन (वपुषः, वपुष्टमः) बोने वाले से अधिक बोने वाला [क्योंकि सोम ही अन्न और ओषधियों का उत्पादक है] (मधुमान्) मधुरतायुक्त सोम (कोशे) द्रोण कलशादि में (प्र अचिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता है (च) और (ऋतस्य) जल की (धेनवः) धारण करने वाली (सुदुघाः) भले प्रकार दुहने योग्य (घृतश्चुतः) जल को टपकाने वाली (वाश्राः) शब्द करती हुई (पयसा) जल से (अभि अर्षन्ति) सब ओर वर्षती हैं॥

ऋ० ९। ७७। १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (५५६)

अथ चतुर्थ्यार्चः—ऋषिगण ऋषिः। पवमानो देवता। जगती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३१ २ ३२३ ३ २ ३१ २१

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतꣳ सखा सख्युर्न प्रमिनाति

३१२ १२ ३२१ १२ ३ १२ ३१२ ३१२

संगिरम्। मर्यइव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना

१२

पथा ॥ ४ ॥ (५५७)

पदपाठः—प्र, उ अ०। अयासीत् क्रि०। इन्दुः १। इन्द्रस्य ६। निष्कृतम् २। सखा १। सख्युः ६। न अ०। प्रमिनाति क्रि०। संगिरम् २। मर्यः १। इव अ०। युवतिभिः ३। समर्षति क्रि०। सोमः १। कलशे ७। शतयामना, पथा ३॥

अन्वितपदार्थः—(इन्दुः) सोमो, जीवात्मा वा (इन्द्रस्य) विद्युतः, परमेश्वरस्य वा (निष्कृतम्) स्वच्छं पदम् (प्रो अया-

सीत्) उन्नता भूत्वा गच्छति (सख्युः) अनुकूलवर्त्तनः (सखा) अनुकूलवर्त्ती सन् (संगिरम्) शब्दं वाचं वा (न प्रमिनाति) न हिनस्ति । किन्तु (इव) यथा (मर्यः) मनुष्यः (युवतिभिः) स्त्रीजनैः (समर्षति) प्रीत्या संगच्छते, तद्वत् (सोमः) सोम आत्मा वा (कलशे) द्रोणकलशे, प्रजापतौ वा [श० ४ । ३ । १ । ६] (शतयामना) शतयाम्ना (पथा) मार्गेण संगच्छते ॥

मर्या इति मनुष्यनाम निघं० २ । ३ छन्दसि निष्टर्क्य० इत्यादिना (पा० ३ । १ । १२३) सिध्यति ॥ ऋग्वेदे ९ । ८६ । १६ ऽपि ॥ ४ ॥ (५५७)

भाषार्थः-(इन्दुः) सोम, वा जीवात्मा (इन्द्रस्य) विद्युत्, वा परमात्मा के (निष्कृतम्) स्वच्छ पद को (प्रो अयासीत्) उन्नत होकर प्राप्त होता है (सख्युः) अनुकूलवर्ती के (सखा) अनुकूल रहता हुआ (संगिरम्) सुन्दर शब्द, वा वाणी को (न प्रमिनाति) नहीं नष्ट करता है किन्तु (इव) जैसे (मर्यः) मनुष्य (युवतिभिः) युवतियों के साथ (समर्षति) प्रीति से संगत होता है वैसे (सोमः) सोम , वा आत्मा (कलशे) द्रोण कलश, वा परमात्मा में (शतयामना पथा) अनेकों की गति वाले मार्ग से प्राप्त होता है ॥

निघण्टु २ । ३ और अष्टाध्यायी ३ । १ । १२३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ८६ । १६ में भी ॥ ४ ॥ (५५७)

अथ पञ्चम्याः-कविर्भार्गव ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः । हरिः

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ५(५५८)

पदपाठः-धर्त्ता १ । दिवः ६ । पवते क्रि० । कृत्व्यः, रसः, दक्षः १ । देवानाम् ६ । अनुमाद्यः १ । नृभिः ३ । हरिः, सृजानः, अत्यः १ । न अ० । सत्वभिः ३ । वृथा अ० । पाजांसि २ । कृणुषे क्रि० । नदीषु ७ । आ अ० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(सत्वभिः) प्राणिभिः (नृभिः) नेतृभिः ऋत्विग्भिः (सृजानः) सृज्यमानः (देवानामनुमाद्यः) देवानां हर्षकरः (दिवः धर्त्ता) द्युलोकस्य धारकः (कृत्व्यः) कृतः संपादितः (रसः) रसात्मकः (दक्षः) बलकरः (हरिः) हरितवर्णः सोमः (अत्यः न) अश्वइव वेगेन (पवते) क्राम्यति तथा (नदीषु) नद्यादिजलप्रवाहेषु (वृथा) अयत्नेनैव (पाजांसि) बलानि (आ कृणुषे) आकरोति ॥

दक्ष इति बलनाम निघं० २ । ९ ॥ अत्य इत्यश्वनाम १ । १४ ॥ पाज इति बलनाम २ । ९ ॥ विनियोगोऽस्याष्टमेऽहनि इति विवरणकृत् ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ७६ । १ कृणुते इत्येत्र पाठः, सायणेन च स एव व्याख्यातः ॥ ५ ॥ (५५८)

भाषार्थः—(सत्वभिः नृभिः) प्राणधारी नेता ऋत्विजों से (सृजानः) अभिषुत किया हुवा (देवानामनुमाद्यः) देवतों का हर्षकारक (दिवः धर्ता) द्युलोक का धारक (कृत्व्यः) संपादन किया हुआ (रसः) रसरूप (दक्षः) बलकारक (हरिः) हरितवर्ण सोम (अत्यः न) घोड़े के समान वेग से (पवते) जाता है तथा (नदीषु) नदी आदि जलप्रवाहों में (वृथा) विना यत्न ही (पाजांसि) बलों को (आ कृणुषे) सब ओर से बढ़ाता है॥

निघण्टु २ । ९ ॥ १ । १४ ॥ २ । ९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ विवरणकार कहते हैं कि इस का यज्ञ के अष्टम दिन में विनियोग है ॥ ऋ० ९ । ७६ । १ में तो "कृणुते" पाठ है और सायणाचार्य ने उसी की व्याख्या यहां भी कर दी है ॥ ५ ॥ (५५८)

अथ षष्ठ्याः—कविर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्ना प्रतरीतोषसां दिवः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्राणा सिन्धूना कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनी-
१ २
षिभिः ॥ ६ ॥ (५५९)

पदपाठः–वृषा १। मतीनाम् ६। पवते क्रि०। विचक्षणः, सोमः १। अह्नाम् ६। प्रतरीता १। उषसाम् ६। दिवः ६। प्राणा १। सिन्धूनाम् ६। कलशान् २। अचिक्रदत् क्रि०। इन्द्रस्य ६। हार्दि २। आविशन् १। मनीषिभिः ३॥

अन्वितपदार्थः–(मतीनाम्) प्रज्ञानां (वृषा) वर्षकः (विचक्षणः) विशेषेण प्रकाशकः (अह्नाम्) दिवसानाम् (उषसाम्) प्रभातानाम् (दिवः) द्युलोकस्य च (प्रतरीता) उद्बोधकः (सिन्धूनाम्) नदीनाम् (प्राणा) प्राणः [वृष्ट्या पूरकत्वात्] (सोमः) सोमः (कलशान्) द्रोणकलशान् प्रति (अचिक्रदत्) शब्दायते [तथा] (मनीषिभिः) बुद्धिमद्भिर्याज्ञिकैर्हूयमानः (इन्द्रस्य) विद्युतः (हार्दि) हृदयम् (आविशन्) प्रविशन्निव (पवते) गच्छत्याकाशम् ॥

सोमयागेन बुद्धिवर्धकानि जलानि मेघा वर्षन्ति, अतः सोमस्य मतीनां वर्षकत्वम् ॥ सिन्धव इति नदीनाम निघं० १ । १३ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ८६ । १९ अह्नः । उषसः । प्राणा सिन्धूनां कलशां अवीवशन् । इत्यन्तरम् ॥ विनियोगोस्य तृतीयेऽहनीति विवरणकृत् ॥ ६ ॥ (५५९)

भाषार्थः–(मतीनां वृषा) बुद्धियों का वर्षाने वाला, (विचक्षणः) विशेष से प्रकाशक, (अह्नाम्, उषसाम्, दिवः) दिनों, प्रभातों और द्युलोक का (प्रतरीता) जगाने वाला, (सिन्धूनाम् प्राणा) नदियों का [वर्षा से] पूर्ण करने वाला (सोमः) सोम (कलशान्) द्रोण कलशों के प्रति (अचिक्र-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दत्) शब्द करता है और (मनीषिभिः) बुद्धिमान् याज्ञिकों से हवन किया जाता हुआ (इन्द्रस्य) विद्युत के (हार्दि) हृदय में (आविशन्) प्रविष्ट होता हुआ सा (पवते) आकाश को जाता है ॥

निघण्टु १ । १३ का प्रमाण और ऋ० ९ । ८६ । १९ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ विवरणकार कहते हैं कि इस का विनियोग सोम यज्ञ के तीसरे दिन में होता है ॥ ६ ॥ (५५९)

अथ सप्तम्याः-रेणुर्भार्गवऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि । चत्वार्य

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २३१ २र

न्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥७॥ (५६०)

पदपाठः-त्रिः अ० । अस्मै ४ । सप्त, धेनवः १ । दुदुह्रिरे क्रि० । सत्याम्, आशिरम् २ । परमे, व्योमनि ७ । चत्वारि, अन्या, भुवनानि २ । निर्णिजे ४ । चारूणि २ । चक्रे क्रि० । यत् अ० । ऋतैः ३ । अवर्धत क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(यत्) यदा सोमः (ऋतैः) यज्ञैः (अवर्धत) वृद्धिं गतो भवति तदा (सप्त), (धेनवः) वाचः (अस्मै) सोमाय (सत्याम्) यथार्थाम् (आशिरम्) आशिषं (दुदुह्रिरे) प्रपूरयन्ति । तथाऽयं सोमः (परमे) बृहति (व्योमनि) आकाशे (अन्या) अन्यानि (भुवनानि) पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं दिशश्चेति (चत्वारि), (निर्णिजे) शोधयितुम् (चारूणि) कल्याणानि (चक्रे) करोति ॥

" विनियोगोऽस्याभिप्लवे । अस्मै सोमाय । सप्त धेनवः सप्तच्छन्दांसि । त्रिः=प्रातःसवनमाध्यन्दिनसवनतृतीयसवनेषु दुदुह्रिरे । अथवा त्रिस्त्रिभिः सवनैः सप्त धेनवः सप्ताहोरात्राः वषट्कारिणः । होता, मैत्रावरुणः, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता,

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नेष्टा, अच्छावाकः, आग्नीध्रः। एतेषां वाचो दुह्यन्ते। अथवा धेनवो दुह्यन्ते सत्यामाशिरम् आग्नयणीयं मिश्रणं वा। परमे प्रकृष्टे व्योमनि स्थाने यज्ञे वा। चत्वारि अत्यग्निष्टोम उक्थः षोडशी अतिरात्रश्चतुर्थः। अथवा पृथिवी अन्तरिक्षं द्यौर्दिश इति। अथवा चत्वारो वेदाः। अथवा चत्वारो महर्त्विजः। अथवा चत्वारः समुद्राः। भुवनानि निर्णिजे चतुर्दश भुवनानि सप्त भूरादयो लोकाः सप्त पातालानि तान्यपि चारूणि चक्रे कृतवान्। केन प्रकारेण नयतः ऋतैरत्नैर्यज्ञैः सत्यैर्वा अवर्धत। अथवा तत्तस्मै सप्त धेनवः सप्त रश्मयः। दुदुह्रिरे। अथवा सप्ताऽग्नयः। अथवा सप्त पावकजिह्वाः। सप्त मातरो वा भूरादयो लोकाः। सप्त पातालानि, सप्त सोमसंस्थाः। सप्त समुद्राः, सप्त द्वीपानि, सप्त स्वराः। एता दुदुह्रिरे सप्त। आशिरमुदकं परमे व्योमनि चत्वारि अन्या भुवनानि पृथिव्यादीनि चारूणि चक्रे। यत्तु ऋतैर्यज्ञैरवर्धतेत्यथवा त्रिः अस्मै सप्त धेनवः सप्त प्राणाः शीर्षण्या इति। त्रिः उत्पत्तिस्थितिप्रलयेषु। सत्यामवितथामाशिरं ज्ञानं चत्वारि भुवनानि जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ततुरीयासु अद्वैतावस्थे नित्यम् तैर्जनैरवर्धत विज्ञानाय।" इति विवरणकारः॥ ऋग्वेदे तु ९। ७०। १ दुदुह्रे। परमे=पूर्व्ये। इत्यन्तरम् ॥ ७ ॥ (५६०)

भाषार्थः—(यत्) जब कि सोम (ऋतैः) यज्ञों से (अवर्धत) बढ़ता है [तब] (सप्त) ७ सात (धेनवः) वाणियें (अस्मै) इस सोम के लिये (सत्याम्) सच्चे (आशिरम्) आशिष् को (दुदुह्रिरे) पूरित करती हैं। तथा यह सोम (परमे) बड़े (व्योमनि) आकाश में (अन्या चत्वारि) अन्य चार (भुव-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नानि) भुवन अर्थात् पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौः और दिशाओं को (निर्णिजे) शुद्ध करने के लिये (चारूणि) सुन्दर कल्याणरूप (चक्रे) करता है ॥

विवरणकार कहते हैं कि " इस का विनियोग ३ तीसरे दिन में होता है। इस सोम के लिये। ७ धेनु=७ छन्द। ३=प्रातः, माध्यन्दिन और तृतीय सवनों में पूरित करते हैं। अथवा ३ सवनों से ७ धेनु=७ अहोरात्र, वषट्कारी लोग=१ होता २ मैत्रावरुण ३ ब्राह्मणाच्छंसी ४ पोता ५ नेष्टा ६ अच्छावाक ७ आग्नीध्र; इन की वाणियें दुही जाती हैं। अथवा धेनुओं से दुहा जाता है सच्चा आशिर=आम्रयण वा मिश्रण। उत्तम व्योम=स्थान वा यज्ञ में। ४ अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी और अतिरात्र चौथा। अथवा पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौ और दिशायें। अथवा ४ वेद। अथवा ४ महाऋत्विज्। अथवा ४ समुद्र। भुवनों को शोधने के लिये=१४ भुवन-७ भूरादि लोक ७ पाताल; इन को भी कल्याण रूप करता है। किस प्रकार से? जब कि ऋत=रत्नों वा यज्ञों से बढ़ता है। अथवा उस के लिये ७ धेनु=७ किरणें प्रपूरित करती हैं। अथवा ७ सूर्यकिरणों के रङ्ग। अथवा ७ अग्नि की लपटें। वा ७ माता=भू आदि लोक। ७ पाताल=७ सोमसंस्था वा ७ समुद्र वा ७ द्वीप वा ७ स्वर। ये ७ पूरित करते हैं। आशिर=उदक। बड़े आशय में। ४ अन्य भुवनों=पृथिव्यादिकों को सुन्दर करता है। जब यज्ञों से बढ़ता है। अथवा ७ धेनु=७ शिरःस्थानी प्राण। ३ उत्पत्ति स्थिति प्रलयों में सत्य ज्ञान को। ४ भुवन=जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीयावस्थाओं में=अद्वैत अवस्था वाले में नित्य। उन मनुष्यों से विज्ञानार्थ बढ़ता है ॥ " ऋ० ९। ७०। १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ७ ॥ (५६०)

अथाऽष्टम्याः—वेनोभार्गव ऋषिः। पवमानो देवता। जगतीच्छन्दः॥

१ २ ३ १२३ १२३१ ८२ ३१२ ३२ २ ३

इन्द्राय सोम सुषुतः परिस्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह। मा ते

१२ ३२३ १२ ३२३ १२

रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्तिवन्दवः॥८॥(५६१)

पदपाठः—इन्द्राय ४। सोम सं०। सुषुतः १। परिस्रव क्रि०। अप अ०। अमीवा १। भवतु क्रि०। रक्षसा ३। सह, मा अ०। ते ६। रसस्य ६। मत्सत

क्रि० । द्रुयाविनः १ । द्रविणस्वन्तः १ । इह अ० । सन्तु क्रि० । इन्दवः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् !, वा सोम ! (सुषुतः) सुष्ठु ध्यातः, वा सुष्ठु अभिषुतः त्वम् (इन्द्राय) जीवात्मने, वा विद्युते (परिस्रव) अमृतं स्रावय, वा वृष्टिसंपादनयोग्यतां संपादय । (अमीवा) रोगः (रक्षसा) वाय्वादिगतदुर्विकारेण सह (अप भवतु) दूरतोऽस्तु । (ते) तव (रसस्य) रसेन (द्रुयाविनः) द्रुयं सत्याऽनृतं तद्युक्ताः पापिनः (मा मत्सत) न माद्यन्तु, किन्तु (इह) यज्ञे (इन्दवः) त्वदीयाः रसाः (द्रविणस्वन्तः) भक्त्यादिधनवन्तो, धान्यादिधनवन्तो वा (सन्तु) ॥ ऋग्वेदे ९ । ६८ । १ ऽपि ॥ ८ ॥ (५६१)

भाषार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! , वा सोम ! (सुषुतः) भले प्रकार साक्षात् किया हुवा, वा अभिषुत किया हुवा तू (इन्द्राय) जीवात्मा, वा विद्युत् के लिये (परिस्रव) अमृत बर्षाव , वा वृष्टि की योग्यता का संपादन कर । (अमीवा) रोग (रक्षसा सह) वायु आदि में स्थित दुष्ट विकार के साथ (अप भवतु) दूर हो । (ते) तेरे (रसस्य) आनन्दरस , वा रस से (द्रुयाविनः) झूंठ सच वाले पापी लोग (मा मत्सत) न हृष्ट हों किन्तु (इह) इस ध्यानयज्ञ में, वा क्रियायज्ञ में (इन्दवः) तेरे रस (द्रविणस्वन्तः) भक्तिभावादि धन, वा धान्यादि धन वाले (सन्तु) होवें ॥

ऋ० ९ । ६८ । १ मैं भी ॥ ८ ॥ (५६१)

अथ नवम्याः— भरद्वाजो बसुर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगतीच्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभिगाआचिक्रदत् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

पुनानो वारमत्येष्यव्यꣳ इयेनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ९ (५६२)

पदपाठः—असावि क्रि० । सोमः, अरुषः, वृषा, हरिः, राजा १ । इव अ० ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दस्मः १। अभि अ०। गाः २। अचिक्रदत् क्रि०। पुनानः १। वारम् २। अत्येषि क्रि०। अव्यम् २। श्येनः १। न अ०। योनिम् २। घृतवन्तम् २। आसदत् क्रि०॥

अन्वितपदार्थः- (अरुषः) रूपवान् (हरिः) हरितधूमवर्णः (वृषा) वृष्टिकरः (पुनानः) अभिषूयमाणः (राजा) प्रकाशमानः (सोमः) (असावि) पूर्वम् सम्पाद्यते, अथ (दस्मः) दस्यत्युपक्षयति अन्धकारमिति दस्मो विद्युति विद्योतमानः (गाः) पृथिवीः (अभि) अभिलक्ष्य (इव), (अचिक्रदत्) शब्दायते=गर्जति। (अव्यम्) अविभवमूर्णामयम् (वारम्) बालं दशापवित्रम् (अत्येषि) अत्येति (श्येनो न) श्येन इव बलवान् (घृतवन्तम्) उदकवन्तम् (योनिम्) स्थानमाकाशम् (आसदत्) प्राप्नोति॥ विनियोगोऽस्य नवमेहनीति विवरणकृत्॥

अरुषम् इति रूपनाम निघं० ३। ७॥ इषियुधीन्धिदसीत्यादिना (उणा० १। १४५) मकि-दस्मः॥ गौरिति पृथिवीनाम निघं० १। १॥ घृतमित्युदकनाम १। १२॥ ऋग्वेदे तु ९। ८२। १ पर्येति। आसदम्। इत्यन्तरम्॥ ९॥ (५६२)

भाषार्थः-(अरुषः) रूपवान् (हरिः) हरित धुवें के वर्णवाला (वृषा) वृष्टिकारक (पुनानः) अभिषुत किया हुवा (राजा) प्रकाशमान (सोमः) सोम (असावि) प्रथम अभिषुत किया जाता है, फिर (दस्मः) अन्धकार का निवारक बिजुली में चमकता हुवा (गाः) पृथिवियों की ओर (अभि) लक्ष्य करता हुवा (इव) सा (अचिक्रदत्) शब्द करता है (अव्यम्) और ऊर्णामय (वारम्) दशापवित्र को (अत्येषि) उल्लङ्घित करता है और (श्येनो न, श्येन=बाज़ सा बलवान् (घृतवन्तम्) जलयुक्त (योनिम्) आकाश स्थान को (आसदत्) प्राप्त होता है॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इस का विनियोग नवमें दिन में विवरणकार ने माना है ॥ निघण्टु १ । १ ॥ १ । १२ ॥ ३ । ७ उणादि १ । १४५ के प्रमाण और ऋ० ९ । ८२ । १ के पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (५६२)

अथ दशम्याः–वत्सप्रीर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

२ ३ २ उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ उ ३ १ २

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

बर्हिषदो वचनवन्तऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे १०(५६३)

पदपाठः–प्र अ० । देवम् २ । अच्छ अ० । मधुमन्तः, इन्दवः १ । असिष्यदन्त क्रि० । गावः १ । आ, न अ० । धेनवः, बर्हिषदः, वचनवन्तः १ । ऊधभिः ३ । परिस्रुतम् २ । उस्रियाः १ । निर्णिजम् २ । धिरे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः–(मधुमन्तः इन्दवः) माधुर्य्योपेताः सोमाः (वचनवन्तः) शब्दयुक्ताः सन्तः (अच्छ) अभिव्याप्य (देवम्) विद्युतमिन्द्रम् (प्र असिष्यदन्त) ग्रहाख्येभ्यो घटेभ्यः परिस्रुत्य गच्छन्ति । तथा (गावः) सूर्यदीधितयः (धेनवः) दुग्धदात्र्यः (उस्रिया न) गाव इव (बर्हिषदः) यज्ञस्थिताः सत्यः (परिस्रुतम्) परितः प्रस्रुतम् (निर्णिजम्) शुद्धिकरम् [तं सोमम्] (ऊधभिः) वक्षोभिः (आ, धिरे) आदधति ॥

यदा सोमा ग्रहाख्यघटेभ्योऽग्नौ हूयमानत्वेन शब्दयुक्ता आकाशे वृष्टिकरमिन्द्राख्यं विद्युत्तत्त्वं गच्छन्ति, तदा आधारभूताः सूर्यदीधितयो यज्ञस्थिताः सत्यस्तान्सोमान् धारयन्ति । तत्र दृष्टान्तः–यथा दुग्धदात्र्यो गाव ऊधभिर्दुग्धं धारयन्ति तद्वत् । घटाश्च त्रिषु सवनेषु चतुस्त्रिंशद्भवन्ति । ते यथा–प्रातःसवने पञ्चविंशतिसंख्याकाः १–उपांशुः २–

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्तर्यामः ३-ऐन्द्रवायवः ४-मैत्रावरुणः ५-आश्विनः ६-शुक्रः ७-मन्थी ८-आग्रयणः ९-उक्थः १०-ध्रुवः ११-२३ त्रयोदशर्तुग्रहाः २४-ऐन्द्राग्नः २५-वैश्वदेवश्चेति ॥ माध्यन्दिनसवने चतुःसंख्याकाः-त्रयोमारुत्वतीयाश्चतुर्थो माहेन्द्रः ॥ तृतीयसवने पञ्चसंख्याकाः १-आदित्यः २-सावित्रः ३-महावैश्वदेवः ४-पात्नीवतः ५-हारियोजनश्चेति देवोद्देशांशशो हि चतुस्त्रिंशत् । उस्रिया इति गोनाम निघं० २ । ११ ॥ ऋग्वेदे ९ । ६८ । १ ऽपि ॥ १० ॥ (५६३)

भाषार्थः-(मधुमन्तः) माधुर्य्ययुक्त (इन्दवः) सोम (वचनवन्तः) शब्दयुक्त हुवे (अरुह) व्याप कर (देवम्) इन्द्रनामक विद्युत् को (ग्रहं, असिष्यदन्त) ग्रहनामक घटों में से टपक [निकल] कर जाते हैं तथा (गावः) सूर्य की किरणें (बर्हिषदः) जो कि यज्ञ में स्थित हैं वे (परिस्रुतम्) उस टपके हुवे (निर्णिजम्) शुद्धिकारक सोम का (आ धिरे) आधान करती हैं (न) जैसे (धेनवः उस्रियाः) दुधार गौवें (ऊधभिः) थानों से दूध का आधान करती हैं ॥

अब हम उन घटों के नाम बताते हैं कि जो व्यावहारिक भिन्न भिन्न देवतों की आहुति देने के लिये सोम से भरे हुवे रक्खे जाते हैं । ३ सवनों में ३४ घट होते हैं । प्रातः सवन में २५ होते हैं । जैसा कि १-उपांशु २-अन्तर्याम ३-ऐन्द्रवायव ४-मैत्रावरुण ५-आश्विन ६-शुक्र ७-मन्थी ८-आग्रयण ९-उक्थ १०-ध्रुव ११-से २३ तक तेरह ऋतुग्रह २४-ऐन्द्राग्न और २५-वैश्वदेव ॥ माध्यन्दिन सवन में ४ होते हैं । ३ मारुत्वतीय, चतुर्थ माहेन्द्र ॥ तृतीय सवन में ५ होते हैं । १-आदित्य २-सावित्र ३-महावैश्वदेव ४-पात्नीवत और ५-हारियोजन ॥ ३४ ॥ निघण्टु २ । ११ में उस्रिया गौ का नाम है ॥ ऋ० ९ । ६८ । १ में भी ॥ १० ॥ (५६३)

अथैकादश्याः-अत्रिर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

१ २ ३क२र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र १ २

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुꣳ रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते । सिन्धो-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ २ ३१२ ३१२ ३ २ ३२३ १ २

रुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणꣳहिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते११ (५६४)

पदपाठः—अञ्जते, व्यञ्जते, समञ्जते क्रि०। क्रतुम् २। रिहन्ति क्रि०। मध्वा ३। अभ्यञ्जते क्रि०। सिन्धोः ६। उच्छ्वासे ७। पतयन्तम्, उक्षणम् २। हिरण्यपावाः १। पशुम् २। अप्सु ७। गृभ्णते क्रि०॥

अन्वितपदार्थः—(हिरण्यपावाः) हिरण्येन ज्योतिषा पुनन्ति ते अध्वर्यवः (क्रतुम्) यज्ञम् (अञ्जते) विस्तारयन्ति (व्यञ्जते) व्यक्तीकुर्वन्ति (समञ्जते) समीक्षयन्ति तथा (पशुम्) प्रकाशेन दर्शकं सोमम् (अप्सु) जलेषु (गृभ्णते) गृह्णन्ति (मध्वा) माक्षिकादिना (अभ्यञ्जते) संपर्कयन्ति [तथा] (सिन्धोः) समुद्रस्य (उच्छ्वासे) मेघमण्डले (पतयन्तम्) गच्छन्तं सोमम् (रिहन्ति) आस्वादयन्ति च॥ विनियोग उपहव्ये प्रवर्ग्ये चेति विवरणकृत्॥

पत्लृ पतने इत्यस्मात्स्वार्थिके णिचि छान्दसे वृद्ध्यऽभावे च पतयन्तम्॥ पशुः पश्यतेरिति नैरुक्तमिति सायणोऽपि॥ ऋग्वेदे तु ९। ८६। ४३ मधुना। आप्सु। इत्यन्तरम्॥११॥ (५६४)

भाषार्थः—(हिरण्यपावाः) ज्योति से पवित्र करने वाले अध्वर्यु लोग (क्रतुम्) यज्ञ को (अञ्जते) विस्तारित करते (व्यञ्जते) प्रकट करते और (समञ्जते) भले प्रकार से देखते भालते हैं। तथा (पशुम्) प्रकाश से दिखाने वाले सोम को (अप्सु) जलों में (गृभ्णते) ग्रहण करते और (मध्वा) शहद आदि मिठाई से (अभ्यञ्जते) सानते हैं। तथा (सिन्धोः) समुद्र के (उच्छ्वासे) श्वासरूप मेघमण्डल में (पतयन्तम्) गिरते हुये को (रिहन्ति) चखते हैं॥ इस का विनियोग उपहव्य और प्रवर्ग्य में विवरणकार मानते हैं॥

व्याकरण और निरुक्त तथा सायणाचार्य के संमत प्रमाण तथा ऋ० ९। ८६। ४३ के पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ११॥ (५६४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ द्वादश्याः-पवित्र ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
१ २ ३ २उ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत

॥ १२ ॥ (५६५) इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥

पदपाठः-पवित्रम् १ । ते ६ । विततम् १ । ब्रह्मणस्पते सं० । प्रभुः १ । गात्राणि २ । पर्येषि क्रि० । विश्वतः अ० । अतप्ततनूः १ । न अ० । तत् २ । आमः १ । अश्नुते क्रि० । शृतासः १ । इत् अ० । वहन्तः १ । सम् अ० । तत् २ । आशत क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(ब्रह्मणस्पते) वेदस्य स्वामिन्! परमेश्वर! वा ब्रह्मणोवेदविदो रक्षक! सोम! (ते) तव (पवित्रम्) पवित्रत्वम् (विततम्) सर्वतो विस्तीर्णं वर्तते (प्रभुः) प्रभावशाली त्वम् (विश्वतः) सर्वतः (गात्राणि) देहावयवान् (पर्येषि) परितोगच्छसि । परन्तु (अतप्ततनूः) व्रताचरणादितपश्चर्ययाऽततप्तदेहः पुरुषः (आमः) अपक्वः (तत्) त्वदीयं पवित्रत्वम् (न, अश्नुते) नाप्नोति । (इत्) अथ, ये (शृतासः) पक्वाःसन्ति ते (तत्) पवित्रत्वम् (सम् आशत) समश्नुवन्ति ॥

एतेनैव मूढाश्चक्राङ्किताः आत्मानं वैदिकं मन्यन्ते, तप्तभुजैकदेशा न तु तप्तसर्वाङ्गाः । इयमेव श्रीसत्यव्रतस्य सम्मतिः । वस्तुतोऽस्य विनियोगो ज्योतिष्टोमतृतीयेहनि ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ८३ । १ वहन्तस्तत्समाशत इत्यन्तरम् ॥१२॥ (५६५)

* इति पञ्चमाध्याये नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ *

इति जागतम् ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(ब्रह्मणस्पते) हे वेद के पति ! परमात्मन् !, वा चतुर्वेदविद् ब्रह्मा के रक्षक ! सोम ! (ते) तेरी (पवित्रम्) पवित्रता (विततम्) विस्तृत है, (प्रभुः) प्रभावशाली तू (सर्वतः) सब ओर से (गात्राणि) देह के अङ्गों को (पर्येषि) व्यापता है। परन्तु (अतप्ततनूः) देह से व्रताचरणादि तप न करने वाला पुरुष (आमः) कच्चा है और (तत्) उस पवित्रताको (न अश्नुते) नहीं भोगता। किन्तु (श्रृतासः) जो परिपक्व हैं, वे (तत्) उस पवित्रता को (सम् आशत) भोगते हैं ॥

इसी से अज्ञानवश चक्राङ्कित लोग केवल अग्नितप्त चक्रादि से भुजा का एक देश दग्ध करवा कर समस्त शरीर से तप न करने पर ही अपने को वैदिक मानते हैं। वस्तुतः इस का विनियोग ज्योतिष्टोम के तीसरे दिन में है। यही सत्यव्रत जी की सम्मति है। ऋ० ९। ८३। १ में का पाठव्यत्ययमात्र संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १२ ॥ (५६५)

* यह पञ्चमाध्याय में नवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ९ ॥ *

यह जगती छन्दों का प्रकरण समाप्त हुवा ॥

—०ॐ०—

इन्द्रमच्छेति खण्डेऽस्मिन् ऋचो द्वादशसंख्यकाः ।
उष्णिहः पावमान्योऽत्र वक्ष्यन्तऋषयः पृथक् ॥१॥

अथ दशमी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—अग्निश्चाक्षुष ऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रमच्छ सुताइमे वृषणं यन्तु हरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥ (५६६)

पदपाठः—इन्द्रम् २ । अच्छ अ० । सुताः, इमे १। वृषणम् २ । यन्तु क्रि० । हरयः १ । श्रुष्टे अ० । जातासः, इन्दवः, स्वर्विदः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(इमे) एते (सुताः) अभिषुताः (जातासः) उत्पन्नाः (स्वर्विदः) स्वःसुखं प्रापयन्ति ते

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(हरयः) हरितधूमपरिणताः (इन्दवः) सोमाः (श्रुष्टे) श्रुष्टौ क्षिप्रम् (वृषणम्) वृष्टिकरम् (इन्द्रम्) विद्युतम् (अच्छ) सुष्ठु (यन्तु) गच्छन्तु ॥

श्रुष्टी इति क्षिप्रनाम निघं० ४ । ३ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०६ । १ श्रुष्टीत्येव पाठश्चाऽपि ॥ १ ॥ (५६६)

भाषार्थः-(इमे) ये (सुताः) अभिषव किये हुवे (जाताः) उत्पन्न हुवे (स्वर्विदः) सुखदायक (हरयः) हरे धूम के रङ्ग के (इन्दवः) सोम (श्रुष्टे) शीघ्र (वृषणम् इन्द्रम्) वृष्टिकारक विद्युत् को (अच्छ) अच्छे प्रकार (यन्तु) प्राप्त हों ॥

निघण्टु ४ । ३ में श्रुष्टी शीघ्र का नाम है और ऋ० ९ । १०६ । १ में पाठ भी ठीक श्रुष्टी ही है ॥ १ ॥ (५६६)

अथ द्वितीयायाः-चक्षुर्मानव ऋषिः । पवमानो देवता: । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परिस्रव ।

३ २ १ ३ २ १ २ ३ १ २

द्युमन्तꣳ शुष्ममाभर स्वर्विदम् ॥ २ ॥ (५६७)

पदपाठः-प्रधन्व क्रि० । सोम सं० । जागृविः १ । इन्द्राय ४ । इन्दो सं० । परिस्रव क्रि० । द्युमन्तम्, शुष्मम् २ । आभर क्रि० । स्वर्विदम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (इन्दो) परमेश्वर ! (जागृविः) चेतनस्वरूपस्त्वम् (प्र धन्व) प्राप्नुहि [अस्मानिति शेषः] (इन्द्राय) जीवात्मने [कृपया] (परिस्रव) अमृतं वर्षय । तथा (स्वर्विदम्) मोक्षदम् (द्युमन्तम्) प्रदीप्तं (शुष्मम्) बलम् (आभर) आहर ॥

भौतिकपक्षे-(इन्दो) द्रवरूप ! (सोम) सोम ! (जागृविः) चेतनतासम्पादकः (इन्द्राय) विद्युते (प्र धन्व)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रकर्षेण गच्छ (परिस्रव) सर्वतः स्रव । (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्तम् (स्वर्विदम्) सुखदम् (शुष्मम्) शत्रुशोषकं बलम् (आभर) ॥

धन्वतिर्गतिकर्मा निघं० २ । १४ ॥ शुष्ममिति बलनाम २ । ९ ॥ ऋग्वेदे ९ । १०६ । ४ ऽपि ॥ २ ॥ (५६७)

भाषार्थः-(सोम) हे शान्तस्वरूप ! (इन्दो) परमेश्वर ! (जागृविः) चेतनस्वरूप आप (इन्द्राय) जीवात्मा के लिये (परिस्रव) अमृत वर्षाइये (प्र धन्व) और [हमें] प्राप्त हूजिये । तथा (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (स्वर्विदम्) मोक्षदायक (शुष्मम्) बल (आभर) पहुंचाइये ॥

भौतिक पक्ष में-(इन्दो) गीले ! (सोम) सोमरस ! (जागृविः) शरीर को चेताने वाला (इन्द्राय) विद्युत् के लिये (प्र धन्व) प्राप्त हो और (परिस्रव) वृष्टि कर और (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (स्वर्विदम्) सुखदायक (शुष्मम्) बल को (आभर) पहुंचा ॥

निघण्टु २ । १४ और २ । ९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०६ । ४ में भी ॥ २ ॥ (५६७)

अथ तृतीयायाः-पर्वतनारदावृषी । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

सखाय आनिषीदत पुनानाय प्रगायत ।

२ ३ २ ३१ २र ३ २

शिशुं न यज्ञैः परिभूषत श्रिये ॥ ३ ॥ (५६८)

पदपाठः-सखायः सं० । आनिषीदत क्रि० । पुनानाय ४ । प्रगायत क्रि० । शिशुम् २ । न अ० । यज्ञैः ३ । परिभूषत क्रि० । श्रिये ४ ॥

अन्वितपदार्थः-(सखायः) हे सुहृदः ! (आनिषीदत) आगत्योपविशत तथा (पुनानाय) पवमानाय (प्रगायत) गुणवर्णनं कुरुत । तथा (श्रिये) शोभायै (यज्ञैः) मखैः (परिभूषत) संस्कुरुत । दृष्टान्तः-(शिशुं न) यथा बालकं संस्कारैर्भूषयन्ति तद्वत् ॥ ऋग्वेदे ९ । १०४ । १ ऽपि ॥३॥ (५६८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-(सखायः) हे मित्रो ! (आनिषीदत) आओ बैठो और (पुनानाय) शुद्धिकारक पवमान=सोम के लिये (प्रगायत) गुण वर्णन करो तथा (यज्ञैः) यज्ञों से (श्रिये) शोभा के लिये (परिभूषत) सुसंस्कृत=सुशोभित करो । दृष्टान्त-(न) जैसे (शिशुम्) बालक को संस्कारों से भूषित=शोभित करते हैं, तद्वत् ॥ ऋ० ९ । १०४ । १ में भी ॥ ३ ॥ (५६८)

अथ चतुर्थ्याः-ऋष्यादय उक्तवत् ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ ४ ॥ (५६९)

पदपाठः-तम् २ । वः ६ । सखायः सं० । मदाय ४ । पुनानम् २ । अभि-गायत क्रि० । न अ० । हव्यैः ३ । स्वदयन्त क्रि० । गूर्तिभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः-(सखायः) हे सुहृदः ! (वः) युष्माकम् (मदाय) हर्षायाऽऽनन्दाय (पुनानम्) शुद्धिकरम् (तम्) सोमम् यूयम् (अभिगायत) अभितोगुणैः कीर्त्तयत । (हव्यैः) हवनयोग्यैरितरैर्मध्वादिभिर्मिश्रणद्रव्यैः (स्वदयन्त) स्वादूकुरुत (न) यथा (गूर्त्तिभिः) सत्कारैः (शिशुम्) बालकं सत्कुर्वन्ति तद्वत् ॥

गूर्त्तिभिरिति गूर्धयतेरर्चतिकर्मणो रूपम् निघं० ३ । १४ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०५ । १ हव्यैः=यज्ञैरिति पाठः ॥ ४ ॥ (५६९)

भाषार्थः-(सखायः) हे मित्रो ! (वः) तुम अपने (मदाय) हर्ष=आनन्द के लिये (पुनानम्) पवित्रताकारक (तम्) उस सोम को (अभिगायत) प्रशंसित करो (हव्यैः) और हव्य मधु आदि द्रव्यों के मिलाने से (स्वदयन्त) स्वादु बनाओ (न) जैसे (शिशुम्) बालक को सत्कृत करते हैं, तद्वत् ॥

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघण्टु ३ । १४ का प्रमाण और ऋ० ९ । १०५ । १ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥ (५६९)

अथ पञ्चम्याः त्रितऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक् छन्दः ॥

३ १ २२३१२ ३२ ३२ ३ १ २
प्राणा शिशुर्महीनाꣳहिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

२ ३ १२ ३१ २३१२ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥ (५७०)

पदपाठः–प्राणा १ । शिशुः १ । महीनाम् ६ । हिन्वन् १ । ऋतस्य ६ । दीधितिम् २ । विश्वा २ । परि अ० । प्रिया २ । भुवत् क्रि० । अध, द्विता अ० ॥

अन्वितपदार्थः–(महीनाम्) भूमीनां भूमिस्थानां मनुष्यादीनाम् (शिशुः) बालक इव (प्राणा) प्राणः प्राणाधारः सोमः (ऋतस्य) यज्ञस्य (दीधितिम्) दीप्तिम् (हिन्वन्) प्रापयन् (विश्वा) विश्वानि (प्रिया) प्रियाणि हवींषि (परि भुवत्) परिभवति=सर्वोपरिभावेन वर्त्तते इत्यर्थः । (अध) अथ (द्विता) द्विधा पृथिव्यामन्तरिक्षे च भवति ॥ विनियोगः षष्ठेऽहनि ॥

ऋग्वेदे तु ९ । १०२ । १ क्राणा इति पाठः । सायणेन चाऽत्रापि स एव व्याख्यातः ॥ ५ ॥ (५७०)

भाषार्थः–(महीनाम्) भूमियों अर्थात् भूमिनिवासी मनुष्यादि का (शिशुः) बालक समान (प्राणा) प्राणाधार सोम (ऋतस्य दीधितिम् हिन्वन्) यज्ञ की दीप्ति को प्राप्त कराता हुवा (विश्वा) सब (प्रिया) प्यारे हव्यों को (परिभुवत्) तिरस्कृत [मात] करता है अर्थात् सर्वोपरि हव्य है (अध) और (द्विता) दो प्रकार पृथिवी और अन्तरिक्ष में स्थित होता है ॥

विनियोग इसका छठे दिन में है ॥ ऋ० ९ । १०२ । १ में प्राणा=क्राणा पाठ है और सायणाचार्य ने यहां भी उसी का अर्थ कर दिया है ॥ ५ ॥ (५७०)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ षष्ठ्याः-मनुर्ऋषिः । पवमानो देवता । सप्तिकछन्दः ।

१२ ३१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

२ ३२३ १२

आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ६ ॥ (५७१)

पदपाठः-पवस्व क्रि० । देववीतये ४ । इन्दो सं० । धाराभिः ३ । ओजसा ३ । आ अ० । कलशम् २ । मधुमान् १ । सोम सं० । नः ६ । सदः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(इन्दो) सोम ! (धाराभिः) प्रवाहैः (ओजसा) बलेन (देववीतये) वाय्वादिदेवभोजनाय (पवस्व) परिक्षर तथा (सोम) ओषधे ! (मधुमान्) माधुर्य्योपेतः (नः) अस्माकम् (कलशम्) द्रोणकलशाख्यम् (आ सदः) ॥

अथवा-(इन्दो) परमेश्वर ! (देववीतये) देवानां विदुषामुपासकानां प्राप्त्यर्थम् (पवस्व) तान्प्राप्नुहि (ओजसा) अनन्तेन सामर्थ्येन (मधुमान्) आनन्दस्वरूपः (सोम) शान्तस्वरूप ! भगवन्! (धाराभिः) अमृतद्रवप्रवाहैः (नः) अस्माकम् (कलशम्) हृदयघटम् (आ सदः) ॥

वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु इति धातोर्देव पूर्वात् देववीतये । प्रथमार्थे खादनार्थो द्वितीयार्थे च गत्यर्थः । नवमेचाऽहन्यस्य विनियोगं प्राह विवरणकारः ॥ ऋग्वेदे ९ । १०६ । ७ ऽपि ॥ ६ ॥ (५७१)

भाषार्थः-(इन्दो) सोम ! (धाराभिः) प्रवाहों से (ओजसा) बलपूर्वक (देववीतये) वायु आदि देवों के भोजनार्थ (पवस्व) जा । तथा (सोम) ओषधे ! (मधुमान्) माधुर्ययुक्त (नः) हमारे (कलशम्) द्रोणकलश में (आ सदः) स्थित हो ॥

अथवा—(इन्दो) परमेश्वर ! (देववीतये) विद्वान् उपासकों को

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मिलने के लिये (पवस्व) प्राप्त हूजिये (ओजसा) अपने अनन्त सामर्थ्य से (मधुमान्) आनन्दस्वरूपयुक्त (सोम) शान्तस्वरूप ! भगवन् ! (धारा-सिः) अमृतद्रव के प्रवाहों से (नः) हमारे (कलशम्) हृदय घट में (आ सदः) विराजिये ॥

वी धातु का ऋक से भोजनार्थे और गत्यर्थ मान कर देववीतये प्रयोग है। इस का अग्निष्टोम यज्ञ के ९ वें दिन में विनियोग है। यह विश्वरणकार का मत है ॥ ऋ० ९ । १०६ । ७ वें भी ॥ ६ ॥ (५७१) ॥

अथ सप्तम्याः—अग्निर्ऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं विधावति ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥ (५७२)

पदपाठः—सोमः, पुनानः १ । ऊर्मिणा ३ । अव्यम्, वारम् २ । विधावति क्रि० । अग्रे ७ । वाचः ६ । कनिक्रदत् क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(पुनानः) पूयमानः (पवमानः) अन्यान् पवित्रयन् (सोमः), (ऊर्मिणा) तरङ्गेण सह (अव्यम्) अविभवं (वारम्) बालम् दशापवित्रम् (विधावति) विविधं गच्छति । तथा (वाचः) वेदमन्त्रोच्चारस्य (अग्रे) अग्रे वर्त्तमानः (कनिक्रदत्) शब्दायते ॥

अथवा—(पवमानः) पावयन् (पुनानः) स्वयं पवित्रश्च (सोमः) शान्तआत्मा (वाचः) वेदवाचः (अग्रे) तदनुसारेण (कनिक्रदत्) शब्दमुच्चारयति । तथा (ऊर्मिणा) मनस उन्नत्या (अव्यम्) अवेः सूर्यस्येदं (वारम्) मण्डलम् (विधावति) विशेषेण गच्छति ॥

विनियोगोऽस्य चतुर्थेऽहनि ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०६ । ७ अव्यः इति पाठः ॥ ७ ॥ (५७२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—(पुनानः) पवित्र और (पवमानः) अन्यों को पवित्र करने वाला (सोमः) सोम (ऊर्मिणा) लहरी के साथ (अव्यम्) ऊन के (वारम्) दशापवित्र को (विधावति) विविध प्रकार से चलता है। तथा (वाचः) वेदमन्त्रोच्चारण के (अग्रे) आगे [साथ २] (कनिक्रदत्) शब्द करता है ॥

अथवा—(पुनानः) स्वयं पवित्र और (पवमानः) अन्यों को पवित्र करने वाला (सोमः) शान्त आत्मा (ऊर्मिणा) मानस उन्नति से (अव्यं वारम्) सूर्य के मण्डल को (विधावति) विशेष कर प्राप्त होता है ॥

इस का विनियोग चौथे दिन में है ॥ ऋ० ९ । १०६ । १० में अव्यः पाठ है ॥ ७ ॥ (५७२)

अथाऽष्टम्याः—द्वितऋषिः । पवमानोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।

३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥ (५७३)

पदपाठः—प्र अ० । पुनानाय, वेधसे ४ । वचः १ । उच्यते क्रि० । भृतिम् २ । न अ० । भर क्रि० । मतिभिः ३ । जुजोषते ४ ॥

अन्वितपदार्थः—(पुनानाय) पवित्राय (वेधसे) बुद्धितत्त्ववते, मेधाविने वा (सोमाय) ओषधये, वा आत्मने (वचः) इदं वचनम् (प्रोच्यते) उपदिश्यते । यत्—(मतिभिः) बुद्धिभिः (जुजोषते) वारं वारं सेवितवते तस्मै (भृतिम्) वेतनम् (न) इव (भर) ॥

वेधा इति मेधाविनाम निघं० ३ । १५ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०३ । १ उच्यते=उद्यतम् । इति पाठः ॥ ८ ॥ (५७३)

भाषार्थः—(पुनानाय) पवित्र (वेधसे) बुद्धितत्त्वयुक्त, वा मेधावी (सोमाय) सोमौषधि, वा शान्तात्मा के लिये यह (वचः) वचन (प्रोच्यते) कहा जाता है कि (मतिभिः) बुद्धियों से (जुजोषते) अत्यन्त सेवा करने वाले के लिये (भृतिम् न) नौकरी सी (भर) भरो ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋग्वेद ९ । १०१ । १ में उच्यते=उद्यतम् पाठ है ॥ निघण्टु ३ । १५ में मेधाः=बुद्धिमान् का नाम है ॥ ८ ॥ (५७३)

अथ नवर्चस्याः-पर्वतनारदावृषी । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ ९ ॥ (५७४)

पदपाठः-गोमत् २ । नः ४ । इन्दो सं० । अश्ववत् २ । सुतः १ । सुदक्ष सं० । धनिव क्रि० । शुचिम् २ । च अ० । वर्णम् २ । अधि अ० । गोषु ७ । धारय क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(इन्दो) परमेश्वर !, वा सोम ! (सुदक्ष) सुबल ! (सुतः) हृदये ध्यातः, अभिषुतो वा (नः) अस्मभ्यम् (गोमत्) गवादिक्षीरदपशुमत्, वा इन्द्रियवत् तथा (अश्ववत्) अश्वादिवाहनयुक्तं, वा प्राणयुक्तम् [धनं बलं च] (धनिव) धन्व प्रापय (च) तथा (गोषु) पशुष्विन्द्रियेषु वा (शुचिं वर्णम्) सुन्दरं स्वरूपम् (अधि धारय) ॥

धन्वतिर्गत्यर्थः-निघं० २ । १४ व्यत्ययो बहुलम् ३ । १ । ८५ इति वर्णविकारे, धनिव ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०५ । ४ धनिव=धन्व । शुचिं च=शुचिं ते । धारय=दीधरम् इत्यन्तरम् ॥ ९ ॥ (५७४)

भाषार्थः-(इन्दो) परमेश्वर ! वा सोम ! (सुदक्ष) सुन्दरबलवन् ! (सुतः) हृदय में ध्यान किये हुये, वा अभिषुत किये हुवे (नः) हमारे लिये (गोमत्) गौ आदि दुग्धदायक पशुयुक्त, वा इन्द्रिययुक्त और (अश्ववत्) अश्वादि सवारी वाले, वा प्राण वाले [धन और बल] को (धनिव) प्राप्त कराइये (च) और (गोषु) गवादि पशु, वा इन्द्रियों में (शुचिं वर्णम्) शुद्ध रङ्ग (अधिधारय) धारित कीजिये ॥

निघण्टु २ । १४ अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०५ । ४ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (५७४)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ दशम्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

३ १ २ ३१२३१ २र

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।

१ २३ १२३१ २

गोभिष्टे वर्णमभिवासयामसि ॥ १० ॥ (५७५)

पदपाठः—अस्मभ्यम् ४ । त्वा, वसुविदम् २ । अभि अ० । वाणीः १ । अनूषत क्रि० । गोभिः ३ । ते ६ । वर्णम् २ । अभिवासयामसि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—प्रकरणात् परमेश्वर !, वा सोम ! (वाणीः) वाण्यः=वेदवाचः (वसुविदम्) ज्ञानादिधनस्य धान्यादेर्वा लम्भयितारम् (त्वा) त्वाम् (अस्मभ्यम्) अस्महितार्थमेव (अभि अनूषत) स्तुवन्ति, गुणान्कीर्त्तयन्ति वा । वयम् (गोभिः) वेदवाग्भिः (ते) तव (वर्णम्) स्वरूपम् (अभिवासयामसि) विजानीमः ॥

ऋग्वेदे ९ । १०४ । ४ ऽपि ॥ १० ॥ (५७५)

भाषार्थः—प्रकरण से—हे परमेश्वर ! , वा सोम ! (वाचः) वेदवाणी (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (वसुविदम् त्वा) ज्ञानादि, वा धान्यादि धन के प्रापक तुझ को (अभिअनूषत) स्तुत करती हैं, वा गुण बताती हैं । हम (गोभिः) इन वेदवाणियों से (ते) तेरे (वर्णम्) स्वरूप को (अभि वासयामसि) जानते हैं ॥

ऋ० ९ । १०४ । ४ में भी ॥ १० ॥ (५७५)

अथैकादश्याः—अग्निश्चाक्षुष ऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१२ ३२उ ३२३१२ ३ १ २

पवते हर्यतो हरिरतिह्वराꣳसि रꣳह्या ।

३क२र ३ १ २ ३२३१२

अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ ११ ॥ (५७६)

पदपाठः—पवते क्रि० । हर्यतः २ । हरिः १ । अति अ० । ह्वरांसि २ । रंह्या ३ । अभ्यर्ष क्रि० । स्तोतृभ्यः ४ । वीरवत्, यशः २ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—(हरिः) धूमरूपः सोमः (हूरांसि) कौटिल्यं कुर्वतः (हर्यतः) गच्छतः पदार्थान् (अति) उल्लङ्घ्य (रंह्या) वेगेन (पवते) गच्छति । तथा (स्तोतृभ्यः) यजमानादिभ्यः (वीरवत्), (यशः) कीर्तिम् (अभ्यर्ष) प्रापयति ॥ विनियोगः प्रथमेऽहनि ॥

पवते इति गतिकर्मा निघं० २ । १४ हर्यतीत्यपि गतिकर्मा ॥ हूर्छ कौटिल्ये इत्यस्मात् हूरः ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०५ । १३ अभ्यर्षन् इत्यन्तरम् ॥ ११ ॥ (५७६)

भाषार्थः—(हरिः) धूम बना सोम (हूरांसि) कुटिल (हर्यतः) इधर उधर जाते हुवे पदार्थों को (अति) उल्लङ्घन करके (रंह्या) वेग से (पवते) जाता है । तथा (स्तोतृभ्यः) यजमानादि स्तोताओं के लिये (वीरवत्) वीर सहित (यशः) कीर्त्ति (अभ्यर्ष) प्राप्त कराता है ॥ विनियोग प्रथम दिन में है ॥

निघण्टु २ । १४ इत्यादि प्रमाण और ऋ० ९ । १०५ । १३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥ (५७६)

अथ द्वादश्याः—द्वित ऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

परि कोशं मधुश्चुतꣳ सोमः पुनानो अर्षति ।

३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

अभि वाणीरृषीणाꣳ सप्ताऽनूषत ॥ १२ ॥ (५७७)

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ इत्यौष्णिहम् ॥

पदपाठः—परि अ० । कोशम्, मधुश्चुतम् २ । सोमः, पुनानः १ । अर्षति क्रि० । अभि अ० । वाणीः १ । ऋषीणाम् ६ । सप्त १ । अनूषत क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः (पुनानः) शोधयन् (सोमः) सोमः (मधुश्चुतम् कोशम्) मधुरजलवर्षकं मेघमण्डलम् (पर्यर्षति) परिगच्छति [इत्यादि, यशः] (ऋषीणाम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मन्त्राणाम् (सप्त) गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पङ्क्तिः त्रिष्टुप् जगती चेति ७ (वाणीः) वाण्यः (अभिअनूषत) स्तुवन्ति ॥

ऋग्वेदे तु ९ । १०३ । ३ मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति इत्यन्तरम् ॥ १२ ॥ (५७७)

* इति पञ्चमाध्याये दशमी दशतिः ॥ १० ॥ *

भाषार्थः—(पुनानः सोमः) पवित्र करता हुवा सोम (मधुश्चुतं कोशम्) मीठा जल चुवाने वाले मेघमण्डलरूप कोश को (परि अर्षति) सब ओर से जाता है । [इत्यादि, यश] (ऋषीणाम्) वेदमन्त्रों की (सप्त) गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पङ्क्ति त्रिष्टुप् और जगती ७ (वाणीः) वाणियें (अभि अनूषत) सर्वतः वर्णित करती हैं ॥

ऋ० ९ । १०३ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १२ ॥ (५७७)

* यह पांचवें अध्याय में दशवीं दशति पूर्ण हुई ॥ १० ॥ *

यह उष्णिक्छन्दों का प्रकरण हुआ ॥

——:०:*:०:——

पवस्वेति दशत्यां तु ककुभोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥
ससुन्वे इति गायत्री यवमध्येति केचन ॥ १ ॥
अक्षरव्यूहनादेषा ककुबेवेति केचन ॥
एष स्य धारया सुतः प्रगाथः काकुभोन्तिमः ॥ २ ॥
ऋषीणां विप्रकीर्णत्वात्तत्र तत्राभिदध्महे ॥

" पवस्व " इत्यादि ग्यारहवीं दशति में ८ ऋचा हैं । जिन में ५ वीं " ससुन्वे " इत्यादि गायत्रीछन्द की है । शेष ककुप्छन्द की हैं । कोई लोग ५ वीं को यवमध्या गायत्री कहते हैं ॥

विपरीता यवमध्या । पिं० ३ । ५८ ॥

यद्यादान्त्यौ पादौ लघ्वक्षरौ, मध्यमो बह्वक्षरश्च भवति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तदा यथा यवोमध्ये स्थूलस्तथात्वाद्यवमध्येति प्रोच्यते ॥३॥

जब कि पहला और अन्त का पाद थोड़े अक्षरों वाला और मध्यम पाद बहुत अक्षरों से युक्त हो तब जैसे जौ (यव) बीच में से मोटा होता है, उस के तुल्य होने से यह " यवमध्या " कहाती है ॥ १ ॥ कोई कहते हैं कि यह (५ वीं) अक्षरव्यूहन से ककुप् ही है। " एष स्य धारया सुतः " इत्यादि अन्त की दो ऋचों का प्रगाथ फिर ककुप् है ॥ २ ॥ ऋषि भिन्न २ हैं, इस लिये उस २ ऋचा के ऊपर ही कहते जावेंगे ॥

अथैकादशी दशतिस्तत्र–

प्रथमायाः–गौरिवीतिः शाक्त्य ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ १

महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥ (५७८)

पदपाठः–पवस्व क्रि० । मधुमत्तमः १ । इन्द्राय ४ । सोम सं० । क्रतुवित्तमः, मदः, महि, द्युक्षतमः, मदः १ ॥

अन्वितपदार्थः–(सोम) परमेश्वर ! वा ओषधे ! (क्रतुवित्तमो मदः) अतिशयेन प्रज्ञायाः कर्मणो वा प्रापक आनन्दः, हर्षो वा (मधुमत्तमः) अत्यन्तमाधुर्य्योपेतः (महि) मंहनीयः (द्युक्षतमो मदः) प्रकाशकतमोवा हर्षप्रदस्त्वम् (इन्द्राय) जीवात्मने, विद्युत्तत्त्वाय वा (पवस्व) प्राप्नुहि ॥

ऋग्वेदे ९ । १०८ । १ ऽपि ॥ १ ॥ (५७८)

भाषार्थः–(सोम) परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुरता से युक्त (क्रतुवित्तमः) अतिशय प्रज्ञा वा कर्म का प्राप्त कराने वाला (मदः) आनन्द, वा हर्षदायक (महि) पूजनीय, वा सत्करणीय (द्युक्षतमो मदः) प्रकाश की बहुतायत वाला आनन्दस्वरूप, वा हर्षप्रद तू (इन्द्राय) जीवात्मा, वा विद्युत्तत्त्व के लिये (पवस्व) प्राप्त हो ॥

ऋ० ९ । १०८ । १ में भी ॥ १ ॥ (५७८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ द्वितीयायाः-ऊर्ध्वसद्मा ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३२उ ३ १२ ३ १ २३ २

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दीदिहि देव देवयुम् ।

१ २२ ३ १ २

वि कोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥ (५७९)

पदपाठः-अभि अ० । द्युम्नम्, बृहत्, यशः २ । इषस्पते सं० । दीदिहि क्रि० । देव सं० । देवयुम् २ । वि अ० । कोशम्, मध्यमम् २ । युव क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(इषस्पते) अन्नस्य पते! परमेश्वर! वा सोम! (देव) प्रकाशादिदिव्यगुणयुक्त! (अभिद्युम्नम्) अभितः प्रकाशितम् (बृहत्), (यशः) कीर्त्तिनामकम्, अन्नं वा जलं (दीदिहि) प्रकाशय । तथा (देवयुम्) देवान्विदुषः कामयमानं, वा वायवादीन्कामयमानम् (मध्यमं कोशम्) हृदयकोशं, वा मेघमण्डलम् (वि युव) उद्घाटय ॥

यश इत्यन्ननाम निघं० २ । ७ जलनाम च १ । १२ अभिदीदिहि इत्यत्र-आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ८ । १ । ७२ इति अविद्यमानत्वेन पादादित्वात्, आमन्त्रितस्यचेति ८ । १ । १९ निघातो न । किन्तु आमन्त्रितस्य च ६ । १ । १९८ इत्याद्युदात्त एव ॥ कोशम् इति मेघनाम निघं० १ । १० ॥ विनियोगोऽस्य पञ्चमेऽहनि ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०८ । ९ देवयुः इति पाठः ॥ २ ॥ (५७९)

भाषार्थः-(इषस्पते) अन्न के पति! परमेश्वर!, वा सोम! (देव) दिव्यप्रकाशादिगुणवन्! (अभि) सर्वतः (द्युम्नम्) प्रकाशित (बृहत्) बड़े (यशः) कीर्त्ति, वा अन्न जल को (दीदिहि) प्रकाशित कीजिये । तथा (देवयुम्) विद्वानों, वा वायु आदि देवों को चाहने वाले (मध्यमं कोशम्) बीच के कोश हृदय को, वा मेघमण्डल को (वि युव) खोल दीजिये

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अष्टाध्यायी ८ । १ । ७२ । ८ । १ । १९ ॥ ६ । १ । १९८ । निघण्टु २ । ७ ॥ १ । १२ ॥ १ । १० के प्रमाण और ऋ० ९ । १०८ । ९ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ इस का विनियोग पांचवें दिन में है ॥ २ ॥ (५७९)

अथ तृतीयायाः—ऋजिश्वा ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २३१२ ३ २ ३ १ २२३१२ ३१२

आ सोता परि षिञ्चताऽश्वं न स्तोममप्तुरꣳ रजस्तुरम् ।

३ १२३१२

वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥ (५८०)

पदपाठः—आ अ० । सोत, परिषिञ्चत क्रि० । अश्वम् २ । न अ० स्तोमम्, अप्तुरम्, रजस्तुरम्, वनप्रक्षम्, उदप्रुतम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—हे ऋत्विजः ! (अश्वं न) अश्वमिव वेगवन्तम् (स्तोमम्) प्रशंसनीयम् (अप्तुरम्) अपां प्रेरकं (रजस्तुरम्) तेजसां च प्रेरकम् (वनप्रक्षम्) जल-संपृक्तम् (उदप्रुतम्) उदके प्लवमानं सोमम् (आ सोत) अभिषुणुत तथा (परिषिञ्चत) सर्वतः प्रसारयत ॥

सोतेत्यत्र तप्तनप्तनथनाश्च ७ । १ । १४५ इति तस्य तबाऽऽदेशः ॥ रजो रजतेः, ज्योतीरजउच्यते । उदकं रज उच्यते । इत्यादि निरु० ४ । १९ ॥ ऋग्वेदे तु ९ । १०८ । ७ वनक्रक्षमित्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (५८०)

भाषार्थः—हे ऋत्विजो ! (अश्वं न) अश्व के समान वेगवान् (स्तोमम्) प्रशंसनीय (अप्तुरम्) जलों के प्रेरक (रजस्तुरम्) और तेज के प्रेरक (वन-प्रक्षम्) जल से मिले हुवे (उदप्रुतम्) जल में तिरने वाले सोम को (आ सोत) अभिषुत करो (परिषिञ्चत) और सब ओर फैलावो ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । १४५ निरुक्त ४ । १९ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०८ । ७ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (५८०)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ चतुर्ऋचस्याः-कृतयशा ऋषिः । पवमानो देवता । ककुच्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एतमु त्यं मदच्युतꣳ सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २

विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥ (५८१)

पदपाठः-एतम् २ । उ अ० । त्यम्, मदच्युतम्, सहस्रधारम्, वृषभम्, २ । दिवः ६ । दुहम् २ । विश्वा, वसूनि २ । बिभ्रतम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(त्यम्) तं पूर्वप्रकरणोक्तम् (एतम् उ) एतमेव (मदच्युतम्) मदस्य हर्षस्य च्यावयितारम् (सहस्रधारम्) असंख्यधारम् (वृषभम्) वृष्टिकरम् (दिवः) द्युलोकस्य (दुहम्) दोग्धारम् (विश्वा) विश्वानि (वसूनि) धान्यादीनि धनानि (बिभ्रतम्) धारयन्तं सोमम् । आसोत परिषिञ्चतेति पूर्वत्राऽन्वयः ॥

ऋग्वेदे तु ९ । १०८ । ११ दुहः इत्यन्तरम् ॥ ४ ॥ (५८१)

भाषार्थः-(त्यम्) उस पूर्व प्रकरण में कहे (एतम् उ) इस ही (मदच्युतम्) हर्ष के टपकाने वाले (सहस्रधारम्) असंख्यधार (वृषभम्) वर्षाने वाले (दिवः) द्युलोक को (दुहम्) दुहने वाले (विश्वा वसूनि बिभ्रतम्) समस्त धान्यादि धन को धारण करते हुवे सोम का [अभिषव करो और सब ओर फैलावो] यह पूर्व मन्त्र में अन्वय है ॥

ऋ० ९ । १०८ । ११ में दुहः पाठ है ॥ ४ ॥ (५८१)

अथ पञ्चम्याः-ऋणव ऋषिः । पवमानो देवता । गायत्री, यवमध्या, बा ककुप् वा छन्दः ॥

१ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२

स सुन्वे योवसूनां योरायामानेता यज्ञानाम् ।

२ ३ १ २ ३ २

सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥ (५८२)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—सः १। सुन्वे क्रि०। यः १। वसूनाम् ६। यः १। रायाम् ६। आनेता, यः १। इडानाम् ६। सोमः, यः १। सुक्षितीनाम् ६॥

अन्वितपदार्थः—(यः सोमः), (वसूनाम्) वसुसंज्ञकानामष्टानां देवानाम् (आनेता) प्रापयिता (यः), (रायाम्) धान्यादिधनानाम् आनेता, (इडानाम्) भूमीनाम् आनेता, (यः), (सुक्षितीनाम्) सुन्दरमनुष्याणामानेतास्ति (सः) सोमः (सुन्वे) अभिषूयेत ॥

क्षितयइति मनुष्यनाम निघं० २। ३॥ इडेति पृथिवीनाम १। १॥ ऋग्वेदे ९। १०८। १३ऽपि॥ विनियोगोऽस्य षष्ठेऽहनि दृश्यते॥ ५॥ (५८२)

भावार्थः—(यः सोमः) जो सोम (वसूनाम्) वसुसंज्ञक ८ देवों का (आनेता) प्राप्त कराने वाला है, (यः) जो (रायाम्) धान्यादि धनों का प्रापक है, (यः) जो (इडानाम्) भूमियों का प्रापक है (यः) जो (सुक्षितीनाम्) सुन्दर मनुष्यों का प्रापक है (सः) वह सोम (सुन्वे) अभिषुत किया जावे॥

निघण्टु १। १॥ २। ३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ९। १०८। १३ में भी॥ इस का विनियोग छठे दिन में देखा जाता है॥ ५॥ (५८२)

अथ षष्ठ्याः—शक्तिर्ऋषिः। पवमानो देवता। ककुप्छन्दः॥

२ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २

त्वꣳ ह्या३ङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः।

३ १ २ ३ १ २

अमृतत्वाय घोषयन्॥ ६॥ (५८३)

पदपाठः—त्वम् १। हि अ०। अङ्ग सं०। दैव्यम् २। पवमान सं०। जनिमानि २। द्युमत्तमः १। अमृतत्वाय ४। घोषयन् १॥

अन्वितपदार्थः—(अङ्ग) हे प्रिय ! (पवमान) परमात्मन् !, वा सोम ! (त्वं हि) त्वमेव (द्युमत्तमः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रकाशकतमः (दैव्यम्) देवानां विदुषाम् इमानि दैव्यानि (जनिमानि) जन्मानि (अमृतत्वाय) मोक्षाय (घोषयन्) ज्ञापयन्निवाऽसि ॥

परमात्मा हि विदुषां याज्ञिकानां वा इमानि जन्मानि मोक्षभावाय घोषयन् वर्तते। सोमोऽपि यदाग्नौ हुतः शब्दं करोति तदा यज्ञकर्तृणामन्तःकरणशुद्धयोत्तरोत्तरं ज्ञानप्राप्त्या मोक्षं घोषयन्निवास्ते ॥ तृतीयेऽहन्यस्य विनियोगः ॥

ऋग्वेदे तु ९। १०८। ३ दैव्या। घोषयः इत्यन्तरम् ॥ ६ ॥ (५८३)

भाषार्थः—(अङ्ग) हे प्रिय ! (पवमान) पवित्र परमात्मन् !, वा सोम ! (त्वं हि) तू ही (द्युमत्तमः) अत्यन्त प्रकाशमान (दैव्यम्) विद्वानों के (जनिमानि) जन्मों को (अमृतत्वाय) मोक्षभाव के लिये (घोषयन्) विख्यात करता हुआ सा वर्तमान है ॥

परमात्मा विद्वानों वा याज्ञिकों के जन्मों को मोक्षभाव के लिये विख्यात करता हुआ है। सोम भी जब अग्नि में हवन किया हुआ शब्द करता है तब यज्ञकर्त्ताओं के अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा उत्तरोत्तर ज्ञान की प्राप्ति से मानो मोक्ष को विख्यात करता है ॥

इस का विनियोग तीसरे दिन में है ॥ ऋ० ९। १०८। ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥ (५८३)

अथ सप्तम्याः—उरुर्ऋषिः। पवमानो देवता। ककुप्छन्दः ॥

३१ ५२ ३२ ३ १२ ३१३

एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः ।

१२३२३१२

क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥ (५८४)

पदपाठः—एषः, स्यः १। धारया ३। सुतः १। अव्या ३। वारेभिः ३। पवते क्रि०। मदिन्तमः १। क्रीडन् १। ऊर्मिः १। अपाम् ६। इव अ० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः–(स्यः) सः (एषः) असौ (सुतः) अभिषुतः सोमः (अव्या) अविभवैः (वारेभिः) बालैः (अपाम्) जलानाम् (ऊर्मिः) तरङ्गः (इव), (क्रीडन्) संक्रीडमानः (मदिन्तमः) हर्षकतमः (धारया), (पवते) गच्छति ॥

सप्तमेऽहन्यस्य विनियोगो दृश्यते ॥ ऋग्वेदे ९ । १०८ । ५ ऽपि ॥ ७ ॥ (५८४)

भाषार्थः–(स्यः) वह (एषः) यह (सुतः) अभिषव करके निकाला हुआ सोम (अव्या) ऊनी (वारेभिः) दशापवित्र के बालों से (अपाम्) जल की (ऊर्मिः) लहर (इव) सा (क्रीडन्) उमरता हुआ (मदिन्तमः) अतिहर्षकारक (धारया) धारा से (पवते) बहता है ॥

इस का सप्तम दिन में विनियोग देखा जाता है ॥ ऋ० ९ । १०८ । ५ में भी ॥ ७ ॥ (५८४)

अथाऽष्टम्याः–ऋजिश्वा ऋषिः । पवमानो देवता । ककुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ १ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २

य उस्रिया अपिया अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा । अभि

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २ ३ १

व्रजं तत्रिषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज(ओ३म् वर्मीव धृष्णवा

२

रुज) ॥ ८ ॥ (५८५)

इत्येकादशी दशतिः ॥ ११ ॥

इति काकुभम् ॥

इति षष्ठः प्रपाठकः समाप्तः ॥ ६ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-यः १। उस्रियाः, अपियाः २। अन्तः अ०। अश्मनि ७। निः अ०। गाः २। अकृन्तत् क्रि०। ओजसा ३। अभि अ०। व्रजम् २। तत्निषे क्रि०। गव्यम्, अश्व्यम् २। वर्मीव अ०। धृष्णो सं०। आरुज क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(धृष्णो) धृष्णुर्धर्षणशीलः (यः) सोमः (उस्रियाः) उत्सरणशीलाः (अपियाः) अप्याः आन्तरिक्ष्याः (गाः) किरणाऽपरनाम्नीः (अश्मनि अन्तः) मेघमध्ये स्थिताः (ओजसा) बलेन (निरकृन्तत्) निरगमयत् [सः] (गव्यम्) गोसंबन्धि (अश्व्यम्) अश्वसंबन्धि च (व्रजम्) समूहम् (अभि तत्निषे) अभितो वृष्ट्या तनोति। तथा (वर्मीव) वर्मधारी वीरइव (आरुज) दुष्टशत्रून् विनाशयति॥ द्विःपाठोऽध्यायसमाप्तिसूचकः केषुचित्पुस्तकेषु, न सर्वत्र॥

सोमयागेन वृष्टिस्ततस्तृणादिना गवाश्वादिवृद्धिः सोमसेवनेन च शत्रुनाशनक्षमबलप्राप्तिः सुलभैव वेद्या॥

अश्मेति मेघनाम निघं० १। १०॥ उस्रिया इति गोनाम २। ११॥ उस्रियेति गोनामोत्स्राविणोऽस्यां भोगाः उस्रेति च निरु० ४। १९॥ आप इत्यन्तरिक्षनाम निघं० १। ३॥ तत्निषे इति—छन्दसि लिट् ३। २। १०५ इति छान्दसो लिट्प्रयोगः॥ ऋग्वेदे तु ९। १०८। ६ अप्याः। अश्मनः। इति पाठभेदौ॥ ८॥ (५८५)

छन्दआर्चिकग्रन्थोऽपि केषांचिन्मतेऽत्रैव समाप्यते।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अपरे तु आरण्यकाख्यस्य चतुर्थकाण्डस्याऽवसाने छन्दोग्रन्थसमाप्तिं मन्यन्ते ॥

* इति पञ्चमाध्याये एकादशी दशतिः ॥ ११ ॥ *

इति श्रीमत्कण्व वंशावतंस पण्डितहज़ारीलालस्वामि सूनुना
हस्तिनापुरपार्श्ववर्त्ति परीक्षितगढ़निवासिना
तुलसीरामस्वामिना कृते सामवेदभाष्ये
पञ्चमोध्यायः ॥ ५ ॥

इति पावमानं पर्व ॥३॥

भावार्थः—(धृष्णो) धर्षणशील (यः) जो सोम (उस्रियाः) गौओं (अपियाः) अन्तरिक्ष में स्थित (गाः) किरणों को (अश्मनि अन्तः) मेघ के मध्य में स्थित हुइयों को (निरऽकृन्तत्) निकालता=वर्षाता है [वह सोम] (गव्यम्) गौवों के और (अश्व्यम्) घोड़ों के (व्रजम्) समुदाय को (अभि तत्निषे) वर्षा से विस्तृत करता है। तथा (वर्मीव) कवचधारी वीर पुरुष सा (आरुज) शत्रुदल को नष्ट करता है ॥ ( ) कोष्ठक के मध्यस्थ पाठ दो वार जो पढ़ा है, किन्हीं २ पुस्तकों में है और अध्याय की समाप्ति सूचनार्थ है ॥

सोमयज्ञ से वर्षा, उस से तृणादि, उस से गौ आदि दुग्धदायक पशु और घोड़े आदि सवारियों की वृद्धि तथा सोम के सेवन से शत्रुनाशनयोग्य बल की प्राप्ति सुलभ ही है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघण्टु १ । १० ॥ २ । ११ ॥ १ । ३ निरुक्त ४ । १९ अष्टाध्यायी ३ । २ । १०५ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०८ । ६ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥८॥ (५८५)

यह पञ्चमाध्याय में ११ वीं दशति पूर्ण हुई ॥ ११ ॥ *

तथा यह ककुप्छन्दों का प्रकरण भी पूर्ण हुआ ॥

यह छठा प्रपाठक समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

कई लोगों के मत में छन्दआर्चिक ग्रन्थ भी यहीं समाप्त माना जाता है। परन्तु अन्य लोग अगले छठे अध्याय आरण्यक काण्ड की समाप्ति पर छन्द आर्चिक की समाप्ति मानते हैं ॥

कण्ववंशावतंस श्रीमान् पं० स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र,

परीक्षितगढ़ (ज़िला मेरठ) निवासी

तुलसीराम स्वामि कृत

सामवेदभाष्य में यह पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

यह पवमान पर्व ३ समाप्त भी हुआ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओ३म्

अथ षष्ठाऽध्यायः

छन्दआर्चिके मुख्यानि त्रीणि पर्वाणि—आग्नेयमैन्द्रं पावमानं चेति। वक्ष्यमाणमारण्यकं पर्वापि छन्दआर्चिकेन्तर्भूतमेव। परंत्वऽत्र नास्ति कस्याश्चिदेकस्या देवतायावर्णनमपि तु बहूनाम्। अतएव नेदं पर्वत्रयेन्तर्भावयितुं शक्यमासीत्। आरण्यकपदनिवर्चनं तु—

अरण्यान्मनुष्ये ४। २। १२९

इत्यस्योपरि—पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वक्तव्यम्। अरण्येऽधीयते आरण्यकोऽध्याय इति॥

आरण्यकाऽभिधः षष्ठोऽध्यायोव्याक्रियतेऽधुना।
तत्रेन्द्रेत्यादिकानां तु पञ्चपञ्चाशतां क्रमात्॥ १॥
ऋषिच्छन्दोदैवतानि तत्र तत्राभिदध्महे॥

भाषार्थः—छन्दआर्चिक में मुख्य तीन पर्व हैं १—आग्नेय २—ऐन्द्र ३—पावमान। यह अगला आरण्यक पर्व भी छन्दआर्चिक के अन्तर्गत ही है, परन्तु इस में मुख्य करके किसी एक देवता का वर्णन नहीं है किन्तु बहुतों का है। इसी से एक के सा नाम भी नहीं प्रसिद्ध हुवा। आरण्यक शब्द का अर्थ यह है कि जो वन में पढ़ा जावे, वह अध्याय। इस विषय में अष्टाध्यायी ४। २। १२९ और इस के वार्त्तिक और उदाहरण संस्कृत भाष्य में देखिये॥

अब आरण्यक नाम छठे अध्याय का भाष्य आरम्भ किया जाता है, इस में "इन्द्र" इत्यादि ५५ ऋचाओं के ऋषि देवता छन्दों को क्रम से वहां २ वर्णित करते जांयगे॥ १॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ प्रथमा दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १र २र
इन्द्र ज्येष्ठं न आभर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः । यद्दिधृक्षेम
३ १ २ ३ १ ३ २र
वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥ १ ॥ (५८६)

पदपाठः-इन्द्र सं० । ज्येष्ठम् २ । नः ४ । आभर क्रि० । ओजिष्ठम्, पुपुरि, श्रवः २ । यत् ३ । दिधृक्षेम क्रि० । वज्रहस्त सं० । रोदसी, उभे २ । सुशिप्र सं० । पप्राः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(वज्रहस्त) आयुधपाणे !, वा अशनिधर ! (सुशिप्र) शोभननासिक ! (इन्द्र) राजन्, वा विद्युत्तत्व ! (यत्) येन (उभे रोदसी) द्यावाभूमी (पप्राः) पूरयसि, तत् (ज्येष्ठम्) महत् (ओजिष्ठम्) बलवत्तरम् (पुपुरि) पूरकं तृप्तिदं (श्रवः) अन्नम् (नः) अस्मभ्यम् (आभर) आहर । तथा यत् वयं (दिधृक्षेम) धारयितुमिच्छेम तदाभर ॥

इन्द्रशब्देनाऽत्र राज्ञो विद्युतश्च रूपकालङ्कारेण वर्णनं ज्ञेयं, राजा हि स्पष्टमेव वज्रधरो भवति सुनासिकश्च, पूरयति चान्नेन पानेन च सर्वाः प्रजाः । विद्युदपि वृष्ट्या द्यावापृथिवी तर्पयति, विद्युतः प्रहारएव वज्रोज्ञेयश्चमत्कारश्च नासिका ॥

अत्र केचित् वज्रहस्तादिविशेषणदर्शनेन भ्रान्ताः स्वर्गस्थः कश्चित् पुरुषाकृतिरिन्द्र इति शङ्कन्ते । निरुक्तपाठेन च केचिदज्ञाः भ्रमनिमग्ना भवन्ति, अतस्तद्भ्रमनिरासाय प्रकरण-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

गतः सर्वोऽपि निरुक्तपाठो लोकभाषयाऽत्र व्याख्यातुं युक्तः स यथा लोकभाषाव्याख्यायां द्रष्टव्यः ॥

ऋग्वेदे तु ६ । ४६ । ५ भरँ । यद्दिधृक्षेम=येनेमे चित्र । ओभे । इत्यन्तरम् ॥ १ ॥ (५८६)

भाषार्थः-(वज्रहस्त) आयुध वा शस्त्र हाथ में रखने वाले ! वा कड़क को धारित करने वाले ! (सुशिप्र) सुन्दर नासिका-युक्त ! (इन्द्र) राजन् ! वा विद्युत् ! (यत्) जिस से (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक और भूमि को (पप्राः) पूरित करता है [वही] (ज्येष्ठम्) बहुत (ओजिष्ठम्) बलिष्ठ (पुपुरि) तृप्तिकारक (अवः) अन्न (नः) हमारे लिये (आभर) प्राप्त कर । तथा जो हम (दिधृक्षेम) धारण करना चाहें वह भी ॥

इन्द्र शब्द से यहां राजा और पक्षान्तर में विद्युत् का ग्रहण है । राजा को तो स्पष्ट ही वज्रधारी और सुन्दर नासिकादि अङ्गों से युक्त तथा अन्न-वर्धक कहना ठीक है । विद्युत् के पक्ष में यह रूपकालङ्कार है । विद्युत् का प्रहार वज्रतुल्य है और चमक नासिका की उपमा देने में युक्त है ॥

यहां कोई २ लोग वज्रहस्तादि विशेषण देख कर और निरुक्त में देवतों के पुरुषाकार होने के वर्णन को देख कर शङ्का में पड़ते हैं कि कहीं यह स्वर्गस्थ पुरुषाकार माने हुवे इन्द्र का वर्णन तो नहीं है ? उन के भ्रम निवारणार्थ उस प्रकरण का सब निरुक्त उदाहरणों और अर्थों सहित नीचे लिखा जाता है:-

"अथाकारचिन्तनं देवतानाम् । पुरुषविधाः स्युरित्येकं चेतनावद्धि स्तुतयो भवन्ति तथाभिधानानि । अथापि पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते ॥

ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू ॥

अर्थात् अब देवताओं के आकार का विचार करते हैं । एक प्रकार देवतों का मनुष्याकार है क्योंकि चेतन के समान स्तुतियां हैं और नाम भी । और मनुष्यों के अङ्गों का वर्णन भी पाया जाता है (जैसा कि-)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥
ऋ० ६ । ४७ । ८ ॥

अर्थ-(इन्द्र) हे राजन् ! (स्थविरस्य) जिस विद्याविनयवृद्ध (ते) आप के (शरणा) शत्रुनाशक (बृहन्ता) बड़ी (ऋष्वा) श्रेष्ठ (बाहू) भुजाओं को हम (उपस्थेयाम) उपस्थित होवें (विद्वान्) वह आप विद्वान् जिस से (नः) हम को (उरुम्) बहुत (स्वर्वत्) सुखयुक्त (ज्योतिः) प्रकाश और (अभयम्) भयरहित (स्वस्ति) सुख और (लोकम्) दर्शन को (अनुनेषि) प्राप्त कराते हो ॥

इस में राजा को मनुष्याकार देवता मान कर प्रशंसा (स्तुति) की है । दूसरा उदाहरण निरुक्तकार ने देवता के मनुष्याकार होने का यह दिया है कि-

यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते

इस का अर्थ यह है कि हे (मघवन्) धनवन् ! राजन् ! (यत्) जो कि (ते) आप की (काशिः) मुट्ठी है वह (संगृभ्णा) संग्रह करने वाली हो॥ काशिर्मुष्टिः । निरुक्त ६ । १ । फिर निरुक्तकार कहते हैं कि-

" अथापि पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः । आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि । कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।

अर्थात् मनुष्यों के से द्रव्यों का भी वर्णन देवतों में पाया जाता है । जैसा कि नीचे के मन्त्र में है-

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥
ऋ० २ । १८ । ४ ॥

अर्थ-(इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजन् ! (हूयमानः) बुलाये हुवे आप (द्वाभ्यां हरिभ्याम्) दो हरणशील पदार्थों से युक्त यान द्वारा (आयाहि) आइये (चतुर्भिः) चार से (आ) आइये (षड्भिः) छः से (आ) आइये (अष्टाभिः) आठ से (आ) आइये (दशभिः) दश हरणशील पदार्थों से युक्त

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यान के द्वारा आइये (अयम्) इस (सुतः) उत्पन्न किये रस के (सोमपेयम्) सोमपानार्थ आइये (सुनख) हे सुन्दर यन्त्र वाले ! (मृधः) संग्रामों को (मा कः) न कीजिये ॥

अर्थात् राजा को योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों से सम्पादित यन्त्रादि निर्मित यानों द्वारा जावे आवे । सज्जनों से सोमपानादि आदर सत्कार ग्रहण करले, संग्राम न करे ॥ फिर निरुक्त ने दूसरा प्रतीक नीचे लिखे मन्त्र का दिया है:-

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥

ऋ० ३ । ५३ । ६ ॥

अर्थ-(इन्द्र) हे राजन् ! (यत्र) जिस गृह में (बृहतः) बड़े (रथस्य) विमान रथ और (वाजिनः) अग्निजन्य घोड़े का (निधानम्) स्थापन और (विमोचनम्) खोलने का (दक्षिणावत्) दक्षिणा के तुल्य है (गृहे) जिस आप के गृह में (कल्याणीः) सुखदायिका (जाया) स्त्री है उस (अस्तम्) गृह को [निघण्टु ३ । ४] (प्रयाहि) आइये जाइये और (सोमम्) सोमरस को (अपाः) पीजिये, जिस से (सुरणम्) अच्छे प्रकार संग्राम हो । तथा निरुक्त-

अथापि पौरुषविधिकैः कर्माभिः । अद्धीन्द्र
पिब च प्रस्थितस्य । आ श्रुत्कर्ण श्रुधी हवम् ॥

अर्थात् निरुक्तकार कहते हैं कि मनुष्यों के से काम भी देवतों के वेद में पाये जाते हैं । जैसा कि-(इन्द्र) हे राजन् ! (अद्धि) भोजन कीजिये (पिब च) और पान कीजिये । इत्यादि । और (श्रुत्कर्ण) सुनने की शक्ति रूप कान वाले ! (हवम्) पुकार को (आ श्रुधि) सब ओर से श्रवण कीजिये ॥

यहां तक निरुक्तकार ने यह बताया है कि मनुष्यों के से कर्म, मनुष्यों के से वाहनादि और मनुष्यों के से अङ्ग देवतों के वेद में वर्णन किये प्रतीत होते हैं । इस से मनुष्य भी दान, दीपन, द्योतनादि गुणों से इन्द्रादिपदवाच्य देवता हैं । इस से आगे निरुक्तकार यह बतलाते हैं कि वायु, सूर्य, अग्नि आदि पदार्थ जो मनुष्याकार नहीं हैं, वह भी देवता हैं । यथा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अपुरुषविधाः स्युरित्यपरमपि तु यद्दृश्यतेऽपुरुषविधं तदथाऽग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति । यथो एतच्चेतनावद्धिस्तुतयो भवन्तीत्यचेतनान्यप्येवं स्तूयन्ते । यथाऽक्षप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानि । यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्त इत्येचेतनेष्वप्येतद्भवति । अभिक्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः इतिग्रावस्तुतिः । यथो एतत्पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैरित्येतदपि तादृशमेव । सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनमिति नदीस्तुतिः । यथो एतत्पौरुषविधिकैः कर्मभिरित्येतदपि तादृशमेव । होतुश्चित्पूर्वे हविरद्धमाशतेति ग्रावस्तुतिरेव । अपि वोभयविधाः स्युरपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युर्यथा यज्ञो यजमानस्यैष चाख्यानसमयः । निरुक्ते ७ । ७ ॥

अर्थात् निरुक्तकार कहते हैं कि बहुत से देवता मनुष्याकार नहीं भी हैं । जैसे देखा जाता है कि अग्नि, वायु, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा ये देवता हैं । जिस प्रकार चेतनों की प्रशंसा पाई जाती है वैसी जड़ (अचेतन) देवतों की भी पाई जाती हैं । जैसे कि अक्ष से लेकर ओषधि पर्यन्त हैं । और जिस प्रकार मनुष्याकार अङ्गों से स्तुति पाई जाती हैं, ऐसी अचेतन जड़ पदार्थों की भी प्रशंसा पाई जाती हैं । " पत्थरों के हरे मुख " (हरे मसाले पीसने से) कहे गये हैं । और जिस प्रकार चेतनों के वाहनादि द्रव्यों का वर्णन है इसी प्रकार जड़ पदार्थों के भी वाहनादि का वर्णन देखा जाता है । जैसा कि "नदी ने सुखदायक रथ जोड़ा " (प्रवाह से अभिप्राय है) ॥ और जिस प्रकार मनुष्याकार देवतों के कर्म पाये जाते हैं इसी प्रकार अचेतनों के भी । जैसा कि " होता से पहले सिल बट्टों ने मसाला चाट लिया " यहां देखा जाता है । इस से या तो देवता दोनों प्रकार के हों, अथवा मनुष्याकारों के ही कर्म रूप देवता निराकार हों, जैसे यजमान मनुष्याकार देवता और उस का कर्म "यज्ञ" निराकार देवता है । और यह आख्यान का समय है"

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऋ० ६ । ४६ । ५ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (५८६)

अथ द्वितीयायाः-वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य । ततो

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २

ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥२॥ (५८७)

पदपाठः-इन्द्रः, राजा १ । जगतः, चर्षणीनाम् ६ । अधिक्षमा ७ । विश्वरूपम् १ । यत् १ । अस्य ६ । ततः ५ । ददाति क्रि० । दाशुषे ४ । वसूनि २ । चोदत् क्रि० । राधः २ । उपस्तुतम् २ । चित्, अर्वाक् अ० ॥

अन्वितपदार्थः-(राजा) प्रजापालको राजा (जगतः) जङ्गमस्य पश्वादेः (चर्षणीनाम्) मनुष्याणां च (इन्द्रः) ईश्वरोस्ति यतोऽसावीष्टे । (यत्) यच्च (अधिक्षमा) भूमौ (विश्वरूपम्) समस्तरूपं धनम् तत् (अस्य) राज्ञ एवास्ति । (ततः) तस्मात्स्वभूताद्धनात् (दाशुषे) दानादिपुण्यशीलाय प्रजाजनाय (वसूनि) धनानि (ददाति), (चित्) तथा (अर्वाक्) अस्मदभिमुखम् (उपस्तुतम्) अभीष्टं (राधः) धनम् (चोदत्) प्रेरयेत् ॥

चर्षणय इति मनुष्यनाम निघं० २ । ३ क्षमेति पृथिवीनाम १ । १ दाशुषे इति दानकर्मणो दाशतेः । दाश्वान्साह्वान् मीढ्वांश्च ६ । १ । १२ इति सिध्यति ॥ राध इति धननाम निघं० २ । १० ॥ ऋग्वेदे तु ७ । २७ । ३ अधिक्षमि विषुरूपं यदस्ति । इत्यन्तरम् ॥ २ ॥ (५८७)

भाषार्थः-(राजा) प्रजापालक राजा (जगतः) जङ्गम पशुआदि तथा (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (इन्द्रः) ईश्वर अर्थात् स्वामी है । तथा (यत्) जो कुछ (विश्वरूपम्) सब प्रकार का धन है (अस्य) इसी राजा का है ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(ततः) उस अपने धन में से (दाशुषे) दानादि करने वाले पुरुषार्थी पुरुष के लिये (वसूनि) धन (ददाति) राजा देता है। (चित्) और (अर्वाक्) हमारे सामने को (उपस्तुतम्) मनोवाञ्छित (राधः) धन को (चोदत्) प्रेरित करे॥

निघण्टु २। ३॥ १। १॥ २। १०॥ अष्टाध्यायी ६। १। १२ के प्रमाण और ऋ० ७। २१। ३ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ २॥ (५८७)

अथ तृतीयायाः—वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ क २र

यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनꣳस्वः।

१ २ ३ १ २ ३ २

इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत्॥ ३॥ (५८८)

पदपाठः—यस्य ६। इदम् १। आ अ०। रजोयुजः ६। तुजे, जने ७। वनम्, स्वः १। इन्द्रस्य ६। रन्त्यम्, बृहत् १॥

अन्वितपदार्थः—(यस्य), (रजोयुजः) ज्योतिर्युक्तस्य (इन्द्रस्य) राज्ञः (रन्त्यम्) रमणीयं (बृहत्) महत् (वनम्) संभजनीयं (इदम्) उक्तम् (स्वः) सुखम् (तुजे जने) दातरि पुरुषे (आ) समन्ततो वर्त्तते [सः अस्मभ्यं धनं प्रेरयेदिति पूर्वेणान्वयः]॥

रजोरजतेः। ज्योतीरज उच्यते। निरु० ४। १९॥ तुजे इति तुज्जतेर्दानार्थस्य रूपम् निघं० ३। २०॥ ३॥ (५८८)

भाषार्थः—(यस्य) जिस (रजोयुजः) ज्योतिवाले (इन्द्रस्य) राजा का (रन्त्यम्) रमणीय (बृहत्) बड़ा (वनम्) संभाग करने योग्य (इदम्) यह (स्वः) सुख (तुजे जने) दानी पुरुष के निमित्त (आ) सब ओर वर्त्तमान है [वह हमारे लिये धन को प्रेरित करे] यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है॥ निरुक्त ४। १९ निघण्टु ३। २० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥३॥ (५८८)

अथ चतुर्थ्याः—शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। चतुष्पाज्जगती छन्दः॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ १ २
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय। अथादि-
३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
त्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥ (५८९)

पदपाठः–उत् अ० । उत्तमम् २ । वरुण सं० । पाशम् २ । अस्मत् ५ । अव अ० । अधमम् २ । वि अ० । मध्यमम् २ । श्रथाय क्रि० । अथ अ० । आदित्य सं० । व्रते ७ । वयम् १ । तव ६ । अनागसः १ । अदितये ४ । स्याम क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः–(आदित्य) सूर्यवत्तेजस्विन्! (वरुण) वरणीय! राजन्! (अस्मत्), (उत्तमम् मध्यमम् अधमम्) (पाशम्) त्रिविधं पाशम् (उत् अव वि श्रथाय) शिथिलीकुरु (अथ वयम्), (तव व्रते) त्वदीये नियमे (अदितये) अखण्डनाय (अनागसः) निरपराधाः (स्याम)॥

ऋग्वेदे तु १। २४। १५ अथावयमादित्य व्रते इत्यन्तरम् ॥ ४ ॥ (५८९)

भाषार्थः–(आदित्य) सूर्यवत् प्रकाशमान! (वरुण) वरणीय! राजन्! (अस्मत्) हम से (उत्तमम् मध्यमम् अधमम्) उत्तम मध्यम अधम तीनों (पाशम्) बन्धन (उत् अव वि श्रथाय) शिथिल कर दीजिये (अथ) और (वयम्) हम लोग (तव व्रते) आप के नियम में (अदितये) दुःख वा खण्डन से रहित होने के लिये (अनागसः) अपराधरहित (स्याम) होवें ॥

ऋ० १ । २४ । १५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥ (५८९)

अथ पञ्चम्याः–गृत्समद ऋषिः । पवमानो देवता ।
चतुष्पाज्जगती छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २र २र ३ १ २
त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं विचिनुयाम शश्वत् ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१२ ३ १ २ ३ १२३ १२ ३ २ ३१
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥ (५९०)

पदपाठः-त्वया ३ । वयम् १ । पवमानेन ३ । सोम सं० भरे ७ । कृतम् २ । विचिनुयाम क्रि० । शश्वत् अ० । तत् २ । नः ६ । मित्रः, वरुणः १ । मामहन्ताम् क्रि० । अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी १ । उत अ० । द्यौः १ ॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (त्वया), (पवमानेन) पवित्रयता सहायेन (वयम्), (भरे) भरणीये गृहाश्रमे (कृतम्) कर्म (विचिनुयाम) विदधीमहि (नः) अस्माकं (तत्) कर्म (मित्रः) प्राणः (वरुणः) अपानः (अदितिः) बुद्धिः (सिन्धुः) अन्तरिक्षम् (पृथिवी) भूमिः (उत) च (द्यौः) द्युलोकः (मामहन्ताम्) वर्धयन्तु, इति कृपया विधेहि ॥ ऋग्वेदे ९ । ९७ । ५८ ऽपि ॥ ५ ॥ (५९०)

भाषार्थः-(सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (पवमानेन) पवित्र करने वाले (त्वया) आप की सहायता से (भरे) भरण पोषण करने योग्य गृहाश्रम में (कृतम्) कर्म को (विचिनुयाम) संगृहीत करें और (नः) हमारे (तत्) उस कर्म को (मित्रः) प्राण (वरुणः) अपान (अदितिः) बुद्धि (सिन्धुः) अन्तरिक्ष (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) द्युलोक (मामहन्ताम्) बढ़ावें । ऐसी कृपा कीजिये ॥ ऋ० ९ । ९७ । ५८ में भी ॥ ५ ॥ (५९०)

अथ षष्ठ्याः-वामदेव ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । एकपाज्जगती छन्दः ॥

३ १र २र ३२उ३ २
इमं वृषणं कृणुतैकामिन्माम् ॥ ६ ॥ (५९१)

पदपाठः-इमम् , वृषणम् २ । कृणुत क्रि० । एकम् २ । इत् अ० । माम् २ ।

अन्वितपदार्थः-पूर्वोक्ता मित्रादयः (इमम् माम्),(एकम्

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इत्) एकमसहायमेव (वृषणम्) कामानां वर्षकं पूरकं (कृणुत) कुरुत ॥ ६ ॥ (५९१)

भाषार्थः–पूर्वोक्त मित्रादि गण (इमम्) इस (मम्) मुझ (एकम्) असहाय को (इत्) ही (वृषणम्) कामनाओं का पूर्ण करने वाला (कृणुत) करें । अर्थात् परमात्मन् ! आप की कृपा से प्राणादि हमारे अनुकूल हों ॥ ६ ॥ (५९१)

अथ सप्तम्याः–असहीयुर्ऋषिः । पवमानो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २३ १२ ३१ २
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
३ १२ २२
वरिवोवित्परिस्रव ॥ ७ ॥ (५९२)

पदपाठः–सः १ । नः ६ । इन्द्राय, यज्यवे, वरुणाय ४ । मरुद्भ्यः ४ । वरिवोवित् १ । परिस्रव क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः–(सः) पवित्रस्वरूपः परमात्मा (नः) अस्माकम् (वरिवोवित्) धान्यादिधनलम्भकस्त्वम् (यज्यवे) यष्टव्याय (इन्द्राय) विद्युते (वरुणाय) अपानाय (मरुद्भ्यः) वायुभ्यः (परिस्रव) वृष्टिक्षमतां संपादय ॥

"स उ प्राणस्य प्राणः" इत्यादिबहूपनिषत्प्रमाणैः परमात्मनः प्राणाऽपानाऽऽदीनां तत्तत्कार्येषु प्रवर्त्तकत्वम् ॥ वरुणपदेनाऽत्र मेघस्थजलप्रसारणहेतोरपानस्य ग्रहणे मन्त्रलिङ्गम्–"नीचीनवारं वरुणः कबन्धम् ॥ ऋ० ४ । ४ । ३० । ३" कबन्धं मेघम् । इत्यादि च निरु० १० । ४ ॥ ऋग्वेदे ९ । ६१ । १२ ऽपि ॥ ७ ॥ (५९२)

भाषार्थः–(सः) वह पवित्र परमात्मा (नः) हमारे (वरिवोवित्) धान्यादि धन के दिलाने वाले आप (यज्यवे) यजन करने योग्य (इन्द्राय)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विद्युत् (वरुणाय) अपान और (मरुद्भ्यः) वायुओं के लिये (परिस्रव) वृष्टि करने की योग्यता दें ॥

"परमात्मा प्राणों का भी प्राण है" इत्यादि उपनिषदों के प्रमाणों से सिद्ध है कि परमात्मा प्राण अपानादि को अपने २ काम में प्रवृत्त करने वाला है ॥ वरुण पद से यहां मेघस्थ जल को नीचे खसकाने वाले अपान नामक वायुविशेष के ग्रहण में ऋग्वेद ४ । ४ । ३० । ३ और निरुक्त १० । ४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ६१ । १२ में भी ॥ ७ ॥ (५९२)

अथाऽष्टम्याः—असहीयुर्ऋषिः । पवमानो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १र २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।

१ २

सिषासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥ (५९३)

पदपाठः—एना २ । विश्वानि २ । अर्यः १ । आ अ० । द्युम्नानि २ । मानुषाणाम् ६ । सिषासन्तः १ । वनामहे क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—हे परमात्मन् ! वयम् (मानुषाणाम्) मनुष्याणाम् (एना) एतानि (विश्वानि) सर्वाणि (द्युम्नानि) अन्नानि (अर्यः) अभिगच्छन्तः (सिषासन्तः) संभक्तुमिच्छन्तश्च (आ वनामहे) संभजामहे ॥

द्युम्नं द्योततेर्यशो वाऽन्नं वा । निरु० ५ । ५ ॥ ऋग्वेदे ९ । ६१ । ११ ऽपि ॥ ८ ॥ (५९३)

भाषार्थः—हे परमात्मन् ! हम लोग (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (एना) इन (विश्वानि) सब (द्युम्नानि) अन्नों को (अर्यः) प्राप्त करते और (सिषासन्तः) बांटना चाहते हुवे (आ वनामहे) सब ओर से न्यायपूर्वक बांटते हैं ॥

निरुक्त ५ । ५ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ६१ । ११ में भी ॥ ८ ॥ (५९३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अष्ट नवऋचः—आत्मा ऋषिः । अन्नं देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३१२ ३ २ ३२ ३ १२३१ २ ३१२३ १२
अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
२ ३ १२३ २७ ३१ २ ३२७ ३१२३१ २
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥९॥ (५९४)

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥

पदपाठः—अहम् १ । अस्मि क्रि० । प्रथमजाः १ । ऋतस्य ६ । पूर्वम् १ । देवेभ्यः ५ । अमृतस्य ६ । नाम १ । यः १ । मा २ । ददाति क्रि० । सः १ । इत्, एवम् अ० । आवत् क्रि० । अहम्, अन्नम् १ । अन्नम्, अदन्तम् २ । अद्मि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—परमात्मा, अन्नं वा प्राह—हे मनुष्याः! (अहम्), (देवेभ्यः) विद्युदादिभ्यः (प्रथमजाः) पूर्वजः (अस्मि) भवामि (ऋतस्य) सत्यस्य (अमृतस्य), (नाम) प्रख्यावकं वस्तु (पूर्वम्) प्राचीनम् अहमस्मि, (यः) पुरुषः (मा ददाति) ब्रह्मज्ञानं ददाति, अन्नं वा ददाति (सः), (इत्) एव (एवम्) इत्थम् (आवत्) प्राणिनो रक्षति । यस्तु संकीर्णो लोभी प्राणिभ्यो मामऽदत्वा मां विजानात्यन्नमत्ति वा, तम् (अन्नम् अदन्तम्) ब्रह्मज्ञानान्नं, भौतिकान्नं वाऽदन्तम् (अहम्) परमेश्वरोऽन्नं वा (अन्नम्) सर्वैः स्वोदरे धृतो व्यापकत्वात्, भक्षयत्वाद्वा (अद्मि) भक्षयामि नाशयामि ॥

परमात्मा वदत्यहम् सर्वस्य सर्वोत्तममन्नं प्राणाधारोऽस्मि । अतएव ब्रह्मज्ञानिना मां विज्ञाय सर्वेभ्यो ज्ञानं देयं, यश्च स्वयमेव सर्वोत्तमं मामन्नमत्ति, न कस्मैचिदुपदिशति, तमहमद्मि नाशयामि । "अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः" इत्याद्युपनिषद्वचांस्यप्येतन्मूलान्येव वेदानि ॥

पक्षान्तरेऽन्नमाह—अहमेव सर्वदेवेभ्यो वायुप्रभृतिभ्यस्तत्तत्स्थित्यर्थं पूर्वं जातमस्मि। मम दानं सर्वैरतिथ्यादिभ्यः करणीयं, ये चाऽदत्वा स्वयमेवाऽदन्ति तानहं विनाशयामि ॥

एतद्वक्संबन्धे निरुक्तपरिशिष्टम् १४ । १–१० द्रष्टव्यं, यद्विस्तरभियाऽत्र नोद्धृतमस्माभिः ॥ ९ ॥ (५९४)

* इति षष्ठाध्याये प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ *

भाषार्थः—परमात्मा वा अन्न कहता है कि-हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (देवेभ्यः) वायु विद्युत् आदि देवतों से (प्रथमजाः) पूर्वज (अस्मि) हूं और (ऋतस्य) सच्चे (अमृतस्य) अमृत का (नाभा) टपकाने वाला हूं। (यः) जो पुरुष (मा ददाति) मेरा दान करता है (सः इत्) वही (एवम्) ऐसे (आवत्) प्राणियों की रक्षा करता है। [और जो किसी को न देकर आप ही खाता है] उस (अन्नम् अदन्तम्) अन्न खाते हुवे को (अहम् अन्नम्) मैं अन्न (अद्मि) खा जाता हूं=नष्ट कर देता हूं ॥

अर्थात् परमात्मा कहता है कि मैं सब का प्राणाधार जीवनाधार होने से अन्न हूं। जो लोग स्वयं मुझ को जान कर अन्यों के लिये मेरा दान करते हैं अर्थात् ब्रह्मज्ञानोपदेश करते हैं, वे प्राणियों की रक्षा करते और पुण्यभागी होते हैं, परन्तु अन्यों को उपदेश न करने वाले ज्ञानित्वाऽभिमानियों को मैं नष्ट कर देता हूं ॥

दूसरे पक्ष में कल्पना की रीति पर अन्न कहता है कि प्रत्येक देवता से पूर्व मैं हूं। कोई वस्तु अपने भक्ष्य (मुझ) बिना नहीं रह सकती। इस लिये जो लोग मेरा दान (अन्नदान) करते हैं वे प्राणियों की रक्षा करते हैं और जो असुर केवल अपना ही पेट पालते हैं, अन्य अतिथि आदि को अन्न दान नहीं करते, उन उदरम्भरियों को मैं अन्न नष्ट कर देता हूं ॥

इस ऋचा के सम्बन्ध में निरुक्त परिशिष्ट १४ । १–१० तक देखना चाहिये, जो विस्तार के भय से हमने यहां उद्धृत नहीं किया ॥ ९ ॥ (५९४)

* यह षष्ठाऽध्याय में प्रथम दशति पूर्ण हुई ॥ १ ॥ *

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च ।

१ २ ३ २ ३ १ २

परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ १ ॥ (५१५)

पदपाठः-त्वम् १ । एतत् २ । अधारयः क्रि० । कृष्णासु, रोहिणीषु ७ । च अ० । परुष्णीषु ७ । रुशत्, पयः २ ॥

अन्वितपदार्थः-हे परमात्मन् ! (कृष्णासु) कृष्णवर्णासु (रोहिणीषु) रोहितवर्णासु (परुष्णीषु) पर्ववतीषु [निरु० ९ । २६] (च) । नदीषु गोषु वा (एतत्) दीप्तिमत् (पयः) जलं दुग्धं वा (त्वम् अधारयः) धारितवानसि ॥

रोहिणीषु इत्यत्र-वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४ । १ । ३९ इति ङीपूतस्य नश्च ॥ रुशदिति वर्णनाम रोचतेर्ज्वलतिकर्मणः निरु० २ । २० ॥ ऋग्वेदे ८ । ९३ । १३ ऽपि ॥ २ ॥ (५९५)

भावार्थः-हे परमात्मन् ! (कृष्णासु) काली (रोहिणीषु) लाल (च) और (परुष्णीषु) पर्वों वाली [निरु० ९ । २६] नदी वा गौवों में (एतत्) इस (रुशत्) चमकते हुवे (पयः) जल वा दुग्ध को (त्वम्) आपने (अधारयः) धारित किया है ॥

अष्टाध्यायी ४ । १ । ३९ निरुक्त ९ । २६ ॥ २ । २० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९३ । १३ में भी ॥ १ ॥ (५९५)

अथ द्वितीयायाः-पवित्र ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ ३ १ २ ३ १
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा-
२
दधुः ॥ २ ॥ (५९६)

पदपाठः—अरूरुचत् क्रि० । उषसः ६ । पृश्निः, अग्रियः, उक्षाः १ । मिमेति क्रि० । भुवनेषु ७ । वाजयुः १ । मायाविनः १ । ममिरे क्रि० । अस्य ६ । मायया ३ । नृचक्षसः, पितरः १ । गर्भम् २ । आदधुः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—सोमयज्ञफलमाह—(उषसः), (पृश्निः) स्प्रष्टाऽऽदित्यः (अग्रियः) मुख्यः (अरूरुचत्) सुष्ठु तपति (उक्षाः) मेघः (भुवनेषु) लोकेषु (वाजयुः) बलमन्नं वेच्छन् (मिमेति) गर्जति भृशम् (मायाविनः) प्रज्ञावन्तः (अस्य) सोमस्य (मायया) प्रज्ञातत्त्वेन (ममिरे) निर्मिता भवन्ति (नृचक्षसः) मनुष्याणां दर्शकाः (पितरः) पालकाश्चन्द्रकराः (गर्भम्) ओषधीषु गर्भम् (आदधुः) आदधति ॥

पृश्निरादित्यो भवति निरु० २ । १४ ॥ वाज इत्यन्ननाम निघं० २ । ७ बलनाम च २ । ९ ॥ उक्षा जलस्य सेक्ता पर्जन्य इति सायणः ॥ मायेति प्रज्ञानाम निघं० ३ । ९ ॥ पिता पाता वा पालयिता वा । निरु० ४ । २० ॥ तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः । निरु० ४ । २० ॥ इत्यनेनाऽपि पाक्षिकोऽर्थः ॥ पितरो जगद्रक्षका रश्मयो गर्भमादधुर्वृष्ट्यर्थम् इति सायणाचार्यः ॥ ऋग्वेदे तु ९ । ८३ । ३ बिभर्त्ति भुवनानि । इत्यन्तरम् ॥ २ ॥ (५९६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः—सोमयज्ञ का फल कहते हैं—(उषसः पृश्निः) उषा को छूने वाला सूर्य (अग्रियः) मुख्य (अरुरुचत्) उत्तमता से तपता है और (उक्षाः) मेघ (भुवनेषु) लोकों में (वाजयुः) अन्नोत्पत्ति वा बलवृद्धि चाहता हुआ (मिमेति) सदा गर्जता है और (मायाविनः) बुद्धि वाले (अस्य) इस सोम के (मायया) बुद्धितत्त्व से (ममिरे) बनते हैं और (नृचक्षसः) मनुष्यों को प्रकाश देने वाली (पितरः) चन्द्रकिरणें (गर्भम्) ओषधियों में गर्भ का (आदधुः) आधान करती हैं ॥

निरुक्त २ । १४ ॥ ४ । २० ॥ निघण्टु २ । ७ ॥ २ । ९ ॥ ३ । ९ तथा सायणभाष्य के प्रमाण और ऋ० ९ । ८३ । ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥ (५९६)

अथ तृतीयायाः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥ (५९७)

पदपाठः—इन्द्रः १ । इत् अ० । हर्योः ६=३ । सचा अ० । संमिश्लः १ । आ अ० । वचोयुजा ३ । इन्द्रः, वज्री, हिरण्ययः १ ॥

अन्वितपदार्थः—ननु केन नियन्त्रेदं जगत् सूर्यचन्द्रविद्युदादिसहितं नियमितमित्यत आह—(इन्द्रः) परमेश्वरः (इत्) हि (वचोयुजा) वचोयुग्भ्याम् (हर्योः) हरिभ्यां सूर्याचन्द्रमोभ्याम् (सचा) सह, व्यापकत्वेन (आसंमिश्लः) सर्वतः संमिश्लो वर्त्तते (इन्द्रः) परमात्मा (वज्री) दण्डधरः (हिरण्ययः) ज्योतिःस्वरूपश्चास्ति । तेनैवेदं सर्वं नियमितमिति भावः ॥

ज्योतिर्वै हिरण्यम् ॥ श० ६ । ७ । १ । २ ॥ ऋग्वेदे १ । ७ । २ ऽपि ॥ ३ ॥ (५९७)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भावार्थः-इस पूर्वोक्त सूर्य, चन्द्र, मेघ, बिजुली आदि का नियन्ता कौन है ? इस के उत्तर में कहते हैं कि-(इन्द्रः) परमेश्वर (इत्) ही (वचोयुजा) वचनबद्ध (हर्योः) सूर्य चन्द्रमाओं के (सधा) साथ व्यापक होने से (आ संमिश्लः) सर्वत्र मिला हुआ है (इन्द्रः) वही परमेश्वर (वज्री) दण्ड देने वाला और (हिरण्ययः) ज्योतिःस्वरूप है । इसी से यह जगत् नियमित है ॥

शतपथ ६ । ७ । १ । २ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ७ । २ में भी ॥ ३ ॥ (५९७)

अथ-चतुर्थ्याः-ऋष्यादय उक्तवत् ॥

२३ १ २ ३ १ २

इन्द्र वाजेषु नोव सहस्रप्रधनेषु च ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥ (५९८)

पदपाठः-इन्द्र सं० । वाजेषु ७ । नः २ । अव क्रि० । सहस्रप्रधनेषु ७ । च अ० । उग्रः १ । उग्राभिः, ऊतिभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (उग्रः) अप्रधृष्यस्त्वम् (उग्राभिः) अप्रधृष्याभिः (ऊतिभिः) रक्षाभिः (वाजेषु) साधारणयुद्धेषु (च) तथा (सहस्रप्रधनेषु) बहुधनलाभयुक्तेषु महायुद्धेषु (नः) अस्मान् (अव) रक्ष ॥ वाजे इति संग्रामनाम निघं० २ । १७ ॥ ऋग्वेदे १ । ७ । ४ ऽपि ॥ ४ ॥ (५९८)

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (उग्रः) महाबली होने से किसी से न दबने वाली आप (उग्राभिः) न दबने वाली (ऊतिभिः) रक्षाओं से (वाजेषु) छोटे संग्रामों (च) और (सहस्रप्रधनेषु) बड़े २ संग्रामों में (नः) हम को (अव) बचाइये ॥

निघण्टु २ । १७ में वाजे संग्राम का नाम है ॥ ऋ० १ । ७ । ४ में भी ॥ ४ ॥ (५९८)

अथ पञ्चम्याः-प्रथ ऋषिः विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ १ २

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २

धातुर्द्युतानात्सवितुश्चविष्णोरथन्तरमाजभारा वसिष्ठः ५ (५९९)

पदपाठः– प्रथः १ । च अ० । सप्रथः १ । च । नाम १ । आनुष्टुभस्य, हविषः ६ । हविः, यत् १ । धातुः, द्युतानात् , सवितुः ५ । च । विष्णोः ५ । रथन्तरम् २ । आजभार क्रि० । वसिष्ठः १ ॥

अन्वितपदार्थः–(यस्य आनुष्टुभस्य हविषः) यस्याऽनुष्टुबादिछन्दोयुक्तस्य वाग्रूपस्य हव्यस्य (प्रथः च सप्रथः च नाम), अस्तीति शेषः (यत् हविः) यद्धव्यम् (वसिष्ठः) वाग्रूपम् तदेव (धातुः) विधातुः (द्युतानात् सवितुः) प्रकाशमानात् प्रसवितुः (च), (विष्णोः) परमात्मनः सकाशात् (रथन्तरम्) रथन्तरोपलक्षितानि सामानि (आजभार) आजहार ॥

वैदिकी वागेव परमात्मनः सकाशाद्रथन्तरादिसामानि आहरति इति भावः ॥ वाग्वै वसिष्ठः । श० १४ । ९ । २ । २ ॥ अनुष्टुभा युक्त आनुष्टुभस्तस्य ॥ धाता सर्वस्य विधाता । निरु० ११ । १० ॥ सविता सर्वस्य प्रसविता । निरु० १० । ३१ ॥ विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा । निरु० १२ । १८ ॥ ऋग्वेदे १० । १८१ । १ ऽपि ॥ ५ ॥ (५९९)

भावार्थः–(यस्य) जिस (आनुष्टुभस्य) अनुष्टुप् आदि छन्दोयुक्त (हविषः) ग्रहण करने योग्य वाणीरूप हवि का (प्रथः च सप्रथः च नाम) प्रथ और सप्रथ विख्यात नाम है और (यत् हविः) जो हव्य (वसिष्ठः) वेदवाणी रूपी है, वही (धातुः) जगत् के विधाता (च) और (सवितुः) उत्पादक (विष्णोः) परमात्मा से (रथन्तरम्) रथन्तरादि नामक सामों को (आजभार) लाता है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अर्थात् वेदवाणी रूप हव्य ही, जो अनेक छन्दोयुक्त है, रथन्तरादि संज्ञायुक्त अनेक सामों की सूचना देता है ॥

शतपथ १४ । ९ । २ । २ निरुक्त ११ । १० और १० । ३१ तथा १२ । १८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । १८१ । १ में भी ॥ ५ ॥ (५९९)

अथ षष्ठ्याः-गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

नियुत्वान्वायवागह्ययꣳ शुक्रो अयामि ते ।

१ २ ३ १ ३ २

गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६ ॥ (६००)

पदपाठः-नियुत्वान् १ । वायो सं० । आगहि क्रि० । अयम्, शुक्रः १ । अयामि क्रि० । ते ४ । गन्तासि क्रि० । सुन्वतः ६ । गृहम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(वायो) प्राणादे ! वा सर्वगेश्वर ! (नियुत्वान्) ईश्वरः सामर्थ्योपेतस्त्वम् (आगहि) आ गच्छ प्राप्नुहि (अयम्) एषः (शुक्रः) शुक्रःसोमः अथवा शुद्ध आत्मा (ते) तुभ्यम् (अयामि) नियतोऽस्ति (सुन्वतः) अभिषुण्वतः अथवा ध्यायतः पुंसः (गृहम्) वेश्म अथवा हृदयम् (गन्तासि) प्राप्तो भवसि ॥

नियुत्वानिति ईश्वरनाम निघं० २ । २२ ॥ वायुर्वातेर्वेतेर्वा स्याद्गतिकर्मणः । निरु० १० । १ ॥ ऋग्वेदे २ । ४१ । २ ऽपि ॥ ६ ॥ (६००)

भाषार्थः-(वायो) प्राणादि वायु ! वा सर्वगेश्वर ! (नियुत्वान्) सामर्थ्ययुक्त [आप] (आगहि) प्राप्त हूजिये (अयम्) यह (शुक्रः) श्वेत सोम, अथवा शुद्ध आत्मा (ते) आप के लिये (अयामि) नियमित है । (सुन्वतः) अभिषव करने वाले अथवा ध्यान करने वाले के (गृहम्) घर अथवा हृदयरूपी घर को (गन्तासि) आप प्राप्त होते हैं ॥

निघण्टु २ । २२ ॥ निरुक्त १० । १ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० २ । ४१ । २ में भी ॥ ६ ॥ (६००)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ सप्तम्याः-नृमेधपुरुमेधावृषी । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २२ ३१२ ३१२

यज्ञायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।

१२३१२ ३१२ ३१२२

तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥७॥ (६०१)

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥

पदपाठः-यत्त्र अ० । जायथाः क्रि० । अपूर्व्य, मघवन् सं० । वृत्रहत्याय ४ । तत् अ० । पृथिवीम् २ । अप्रथयः क्रि० । तत् अ० । अस्तभ्नाः क्रि० । उतो अ० । दिवम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(मघवन्) हे मखवन् ! वा धनवन् ! परमेश्वर ! (यत्) यदा (वृत्रहत्याय) अज्ञानान्धनिवारणाय (जायथाः) हृदये साक्षाद्भवसि (अपूर्व्य) अविद्यमानः पूर्व्यो यस्मात्तादृशेश ! अनादे ! (तत्) तदा (पृथिवीम्) भूमिम् (अप्रथयः) प्रथितां प्रभूतसुखयुक्तां करोषि (उतो) च (तत्) तदैव (दिवम्), (अस्तभ्नाः) सदाधारां करोषि ॥

यदैव मनुष्याः परमात्मानं ध्यायन्ति स च साक्षाद्भवत्यनुभूतस्तदैव द्यावापृथिव्योः समीचीना स्थितिः संपद्यते ॥ ऋग्वेदे तु ८ । ८९ । ५ उत द्यामिति पाठः ॥७॥ (६०१)

* इति षष्ठाध्याये द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ *

भावार्थः-(मघवन्) हे यज्ञ वा धन वाले ! परमेश्वर ! (अपूर्व्य) हे अनादे ! (यत्) जब कि आप (वृत्रहत्याय) अज्ञाननिवारणार्थ (जायथाः) हृदय में साक्षात् अनुभव में आते हैं (तत्) तब (पृथिवीम्) पृथिवी को (अप्रथयः) सुख से बढ़ाते (उतो) और (तत्) तभी (दिवम्) द्युलोक को (अस्तभ्नाः) अच्छा आधार देते हैं ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अर्थात् जब मनुष्य परमात्मा का ध्यान करते हैं और वह साक्षात् अनुभव को प्राप्त होता है तभी भूमि और द्युलोक की अच्छी सुधरी अवस्था होती है॥ ऋ० ८। ८९। ५ में। उत द्याम्-पाठ है॥ ७॥ (६०१)

* यह षष्ठाध्याय में दूसरी दशति पूर्ण हुई॥ २॥ *

अथ तृतीया दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-वामदेव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

२ ३ १ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृꣳहतु॥ १॥ (६०२)

पदपाठः-मयि ७। वर्चः २। अथो अ०। यशः २। अथो। यज्ञस्य ६। यत्, पयः १। परमेष्ठी, प्रजापतिः १। दिवि ७। द्यामिव अ०। दृंहतु क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(परमेष्ठी) सर्वव्यापी (प्रजापतिः) प्रजापालकः (मयि) उपासके (वर्चः) ब्राह्मं तेजः (अथो) अथ (यशः) कीर्त्तिम् (यत्), (यज्ञस्य) होमादेः (पयः) जलम् [तत्] (दृंहतु) वर्धयतु। दृष्टान्तः-(दिवि) आकाशे (द्यामिव) द्युलोकं यथा वर्धयति तद्वत्॥ १॥ (६०२)

भाषार्थः-(परमेष्ठी, प्रजापतिः) सर्वव्यापी प्रजापालक (मयि) मुझ में (वर्चः) ब्राह्म तेज (अथो) और (यशः) कीर्त्ति (अथो) तथा (यत्) जो कि (यज्ञस्य) यज्ञ का (पयः) जल है [उस को] (दृंहतु) बढावे। दृष्टान्त-(दिवि) आकाश में (द्यामिव) जैसे द्युलोक को बढ़ाता है तद्वत्॥ १॥ (६०२)

अथ द्वितीयायाः-गोतम ऋषिः। पवमानो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २

सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व॥ २॥ (६०३)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-सम् अ० । ते ६ । पयांसि १ । सम्, उ अ० । यन्तु क्रि० । वाजाः १ । सम् । वृष्ण्यानि १ । अभिमातिषाहः सं० । आप्यायमानः १ । अमृताय ४ । सोम सं० । दिवि ७ । श्रवांसि, उत्तमानि २ । धिष्व क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(अभिमातिषाहः) हे गर्वनिवारक ! (सोम) शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (ते) त्वदीयानि त्वद्दत्तानि (पयांसि) जलानि (संयन्तु) संगतानि भवन्तु (उ) तथा (वाजाः) अन्नानि (सम्) संगतानि भवन्तु (वृष्ण्यानि) वीर्याणि च सङ्गच्छन्ताम् । (आप्यायमानः) महतो महांस्त्वम् (अमृताय) मोक्षकरणाय (दिवि) आकाशे (उत्तमानि), (श्रवांसि) अस्मद्यशांसि (धिष्व) धारय ॥ ऋग्वेदे १ । ९१ । १८ ऽपि ॥ २ ॥ (६०३)

भाषार्थः-(अभिमातिषाहः) हे गर्व दूर करने वाले ! (सोम) शान्त ! परमात्मन् ! (ते) आप के दिये हुवे (पयांसि) जल (सं यन्तु) सङ्गत होवें (उ) और (वाजाः) अन्न (सम्) सङ्गत हों (वृष्ण्यानि) वीर्य भी सङ्गत हों । (आप्यायमानः) महान् से महान् आप (अमृताय) मोक्षदान के लिये (दिवि) आकाश में (उत्तमानि श्रवांसि) उत्तम यशों को (धिष्व) धारण कराइये ॥ ऋ० १ । ९१ । १८ में भी ॥ २ ॥ (६०३)

अथ तृतीयायाः-ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

२ ३ १२ ६२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १२

त्वामिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः । त्वमा

२२ ३ २ऽ १ २ ३ १ २२ ३ १२ २२

ततनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥३॥ (६०४)

पदपाठः-त्वम् १ । इमाः, ओषधीः २ । सोम सं० । विश्वाः २ । त्वम् । अपः २ । अजनयः क्रि० । त्वम् । गाः २ । त्वम् । आतनोः क्रि० । उरु, अन्तरिक्षम् २ । त्वम् । ज्योतिषा ३ । वि अ० । तमः २ । ववर्थ क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(सोम) परमात्मन् ! (त्वम् इमाः

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

त्रिश्वाः ओषधीः अजनयः । त्वं गाः) पशून् [अथापि पशुनामेह भवति । निरु० २ । ५ । अजनयः] (त्वम् अपः), [अजनयः] (त्वम् उरु अन्तरिक्षम् आतनोः, त्वम् ज्योतिषा तमः वि ववर्थ) ॥ ऋग्वेदे तु १ । ९१ । २१ त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षम् इति पाठः ॥ ३ ॥ (६०४)

भाषार्थः—(सोम) परमात्मन् ! (त्वम्) आपने (इमाः) इन (विश्वाः) सब (ओषधीः) ओषधियों को (अजनयः) उत्पन्न किया है (त्वम्) आपने ही (अपः) जलों को (त्वम्) और आपने ही (गाः) गौ आदि पशुओं को उत्पन्न किया है [निरुक्त २ । ५] (त्वम्) आपने ही (उरु) बड़े (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक और उस के पदार्थों को (आतनोः) फैलाया है (त्वम्) आपने ही (ज्योतिषा) ज्योति से (तमः) अन्धकार को (वि ववर्थ) अस्त व्यस्त किया है ॥

ऋ० १ । ९१ । २१ में "त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षम्" पाठ है ॥ ३ ॥ (६०४)

अथ चतुर्ऋच्याः—मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।

१ २ ३ १ २

होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥ (६०५)

पदपाठः—अग्निम् २ । ईडे क्रि० । पुरोहितम् २ । यज्ञस्य ६ । देवम्, ऋत्विजम्, होतारम्, रत्नधातमम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—हे परमेश्वर ! त्वाम् (अग्निम्) प्रकाशमानं प्रकाशयन्तं च (पुरोहितम्) सर्वगत्वात्सर्वस्याग्रे निहितं साक्षिणम् (यज्ञस्य देवम्) ज्ञानादियज्ञजातस्य प्रकाशकम् (ऋत्विजम्) प्रत्यृतु पूजनीयम् (होतारम्) सर्वस्य दातारं ग्रहीतारं च (रत्नधातमम्) अतिशयेन रमणीयानां पदा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

र्थानां धातारम् (ईडे) स्तौमि ॥ अथवा यज्ञस्य देवर्त्विग्घोत्रादिसर्वसाध्यकार्यस्याऽसहायं कार्यसाधकम् ॥

निरुक्तकृता यास्केन त्वेवं व्याख्यायते–" अग्निमीळ्ठेऽग्निं याचामीळ्ठिरध्येषणाकर्मा पूजाकर्मा वा । पुरोहितो व्याख्यातो यज्ञश्च । देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता । होतारम् ह्वातारम् । जुहोतेर्होतेत्यौर्णवाभः । रत्नधातमं रमणीयानां धनानां दातृतमम्"निरु० ७ । १५ पुरोहितः पुर एनं दधति । निरु० २।१२॥ स्वरसन्निवेशश्चेत्थम् । ऋग्वेदीयेयमादिमर्क् । अग्निशब्दोऽव्युत्पत्तिपक्षे फिषोन्तउदात्तः १ इति फिट्सूत्रेणान्तोदात्तः । व्युत्पत्तिपक्षे च–आद्युदात्तश्च ३।१। ३ इति प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः । अङ्गेर्नलोपश्च । उणा० ४ । ५० इति निः । द्वितीयैकवचनेऽम्–सुप्त्वादनुदात्तः । अमि पूर्वः ६।१ । १०७ इति एकादेशः । एकादेशउदात्तेनोदात्तः ८ । २ । ५ इत्युदात्तः । ईळ्ठे–तिङ्ङतिङः ८।१।२८। इति निघातः । उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ८। ४। ६६ इति स्वरितः । स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् १ । २ । ३९ इति ळ्ठे इत्यस्यैकश्रुतिः । पुरः शब्दोन्तोदात्तः । पूर्वाधरावराणाम्० ५ । ३ । ३९ इत्यसिप्रत्ययस्वरात् । हितशब्दोऽपि धाञ्धातोःक्तप्रत्यये–दधातेर्हिः ७ । ४ । ४२ इति ह्यादेशे प्रत्ययस्वरे चान्तोदात्तः । पुरोऽव्ययम् १ । ४ । ६७ इति गतिसंज्ञायां–कुगतिप्रादयः २ । २ । १८ इति समासे समासान्तो-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दात्ते, तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीया० ६। २। २ इत्यादिनाऽव्यय पूर्वपदप्रकृतिस्वरेण, गतिकारकोपपदात्कृत् ६। २। १३९ इति कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेथाथादिस्वरे च पूर्वपूर्वापमर्दैन प्राप्ते, गतिरनन्तरः ६।२। ४९ इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः। पुरश्शब्दाकारस्य संहितायामेकश्रुतौ प्राप्तायाम्, उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः १। २। ४० इत्यादनुदात्तः। ऋत्विक्शब्दः कृदुत्तरप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तः। होतृशब्दस्तृन्नन्तोनित्स्वरेणाद्युदात्तः। रत्नशब्दोनव्विषयस्येत्याद्युदात्तः। रत्नानि दधाति स रत्नधाः। समासस्वरेण कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण वान्तोदात्तः। तमपः पित्त्वादनुदात्तत्वे स्वरितैकश्रुती इत्यादि शास्त्रानुकूलमूह्यम्॥ ऋग्वेदे १। १। १ ऽपि॥ ४॥ (६०५)

भाषार्थः—हे परमेश्वर! (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप (पुरोहितम्) सर्वव्यापक होने से सब के आगे वर्त्तमान (यज्ञस्य) यज्ञ के (देवम्) प्रकाशक (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय (होतारम्) सब के दाता और आदाता (रत्नधातमम्) संपूर्ण रम्य पदार्थों को बहुतायत से धारण करने वाले [आप की] (ईडे) स्तुति करता हूं॥

अथवा ज्ञानयज्ञ के आप ही अग्नि, आप ही पुरोहित, आप ही देवता, आप ही ऋत्विज्, आप ही होता हैं। एकेले ही आप सर्व कार्य साधते हैं॥

निरुक्त ७। १५ और २। १२ फिट् सूत्र १ उणादि ४। ५० अष्टाध्यायी ६। १। ३॥ ६। १। १०७॥ ८। २। ५॥ ८। १। २८॥ ८। ४। ६६॥ १। २। ३९॥ ५। ३। ३९॥ ७। ४। ४२॥ १। ४। ६७॥ २। २। १८॥ ६। २। २॥ ६। २। १३९॥ ६। २। ४९॥ १। २। ४० इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० १। १। १ में भी॥ ४॥ (६०५)

अथ पञ्चम्याः—वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१२ ३२र ३२३२३१ २३१ र२र १२

तेमन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिःसप्त परमं नाम जानन्। ता जा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ २३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
नतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥५॥ (६०६)

पदपाठः–ते ६ । अमन्वत क्रि० । प्रथमम् , नाम २ । गोनाम् ६ । त्रिः–सप्तपरमम् , नाम २ । जानन् क्रि० । ताः १ । जानतीः १ । अभ्यनूषत क्रि० । क्षाः १ । आविर्भुवन् क्रि० । अरुणीः १ । यशसा ३ । गावः १ ॥

अन्वितपदार्थः–पूर्वमन्त्रतोऽनुवृत्तेः । अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! (क्षाः) पृथिवीस्थाः प्रजाः (ते) तव (नाम) ओंकारादिकम् (गोनाम्) गवां वेदवाचां मध्ये (प्रथमम्) मुख्यम् (अमन्वत) मन्यन्ते । तथा (त्रिः-सप्तपरमम्) तत्तव नाम त्रिभिर्गुणितानां सप्तानामेकविंशतिच्छन्दोजातियुक्तानां वेदमन्त्राणां परमं प्रधानम् (नाम),(जानन्) जानन्ति । (ताः) प्रजाः (जानतीः) जानन्त्यः सत्यः (अभ्यनूषत) त्वां स्तुवन्ति । (गावः) वाचः (यशसा) भवदीयकीर्त्या (अरुणीः) अरुण्यो दीप्तिमत्यः (आविर्भुवन्) आविर्भवन्ति ॥

गोनामित्यत्र–गोः पादान्ते ७ । १ । ५७ इति नुट् ॥ त्रिःसप्त छन्दांसि यथा=गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पङ्क्तिः त्रिष्टुप् जगतीति सप्त ७ । अतिजगती शक्वरी अतिशक्वरी अष्टिः अत्यष्टिः धृतिः अतिधृतिरिति सप्त ७ च । कृतिः प्रकृतिः विकृतिः संस्कृतिः अतिकृतिः उत्कृतिश्चेति च ७ सप्तैवम् २१ एकविंशतिः ॥ ऋग्वेदे तु ४ । १ । १६ गोनाम्=गवाम् । परमं नाम जानन्=मातुः परमाणि विन्दन् ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

क्षा=ब्रा । आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः=आविर्भुवदरुणी-र्यशसा गोः । इत्यन्तरम् ॥ ५ ॥ (६०६)

भाषार्थः—पूर्व मन्त्र में से अनुवृत्ति लेकर, अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! (क्षाः) पृथिवीस्थ प्रजायें (ते) आपके (नाम) ओंकारादि नाम को (गोनाम्) वेदवाणियों में (प्रथमम्) मुख्य (जनन्वत) जानती हैं और (त्रिःसप्तपरमम्) ३ गुणे ७=२१ प्रकार के छन्दोयुक्त वेदमन्त्रों में प्रधान (नाम) नाम (जानन्) जानती हैं । (ताः) वे (जानतीः) जानती हुई प्रजायें (अभ्यनूषत) आप की स्तुति करती हैं । (वाचः) वाणियें (यशसा) आप की कीर्त्ति से (अरुणीः) दीप्तियुक्त (आविर्भुवन्) प्रकट होती हैं ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ५७ का प्रमाण और २१ छन्दों के २१ नाम तथा ऋ० ४ । १ । १६ के पाठों के भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥ (६०६)

अथ षष्ठ्याः—गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२३ १२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ऋ२२ २३ २ ३

समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति । तमू शुचिं

१२ ३ १ २३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २

शुचयो दीदिवाꣳसमपान्नपातमुपयन्त्यापः ॥ ६ ॥ (६०७)

पदपाठः—सम् अ० । अन्याः १ । यन्ति, उपयन्ति क्रि० । अन्याः । समानम् , ऊर्वम् २ । नद्यः १ । पृणन्ति क्रि० । तम् २ । ऊ अ० । शुचिम् २ । शुचयः १ । दीदिवांसम् , अपान्नपातम् २ । उपयन्ति । आपः १ ॥

अन्वितपदार्थः—अग्ने ! परमेश्वर ! यथा—(अन्याः आपः) काश्चिदापः (ऊर्वम्) समुद्रमध्यवर्त्तिनं वडवानलम् (संयन्ति) संगच्छन्ते (अन्याः), (उपयन्ति) उप=समीपे गच्छन्ति । काश्चिच्च (नद्यः) नद्योभूत्वा (समानम्) सह (पृणन्ति) ददति जलमिति शेषः (उ) एवमेव (तम्) तं त्वाम् (शुचिम्) पवित्रम् (दीदिवांसम्) प्रकाशमानतमम् (अपांनपातम्) कर्मणां न पातयितारम् (शुचयः) पवित्राःपूर्वोक्ता वाचः (उपयन्ति)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

साक्षात्परंपरया वा प्राप्नुवन्ति ॥

यद्वा, एकधनाख्या आपोऽन्याः । वसतीवर्र्याख्या अन्याः । ताश्च चात्वालोत्करयोर्मध्ये संगच्छन्ते । ततो मेघमण्डलं गत्वा नद्यो भूत्वा समुद्रं गच्छन्ति । "सोमकण्डनाय यैर्जलमानीयते ते कुम्भा एकधनाः । एकं धनं सोम रूपं यत्रेति" वेददीपे (यजुर्भाष्ये ५ । ७) "उत्तरवेदिनिचयार्थं यत्र भूप्रदेशे मृदं खनति स प्रदेशश्चात्वाल उच्यते" इति च तत्रैव ५ । ७ ॥ "रुक्योत्खातां मृदमुत्करे क्षिपेत् " इत्यपि तत्रैव १ । २५ ॥ पृणतिर्दानकर्मा निघं० ३ । २० ॥ ऋग्वेदे तु २ । ३५ । ३ उपयन्त्यापः=परितस्थुरापः इत्यन्तरम् ॥ ६ ॥ (६०७)

पदार्थः—अग्ने ! परमेश्वर ! जिस प्रकार (अन्याः आपः) कोई जल तो (अर्वम्) समुद्र में स्थित बड़वानल में (सं यन्ति) मिल जाते हैं (अन्याः) और दूसरे जल (उपयन्ति) समीप तक पहुंचने पाते हैं । और कोई (नद्यः) नदी बन कर (समानम्) एक साथ (पृणन्ति) अपने को देते हैं (उ) ऐसे ही (तम्) उन (दीदिवांसम्) अत्यन्त प्रकाशमान (अपांनपातम्) कर्मों के न गिराने वाले आप को (शुचयः) पवित्र पूर्वोक्त वाणियें (उपयन्ति) समीप प्राप्त होती हैं, उन में कोई साक्षात् और कोई परम्परा से आप का वर्णन करती हैं ॥

यद्वा, एक प्रकार के जल जो यज्ञ में "एक धन" कहाते हैं और दूसरे जो "वसतीवरी" संज्ञक जल कोते हैं वे सब चात्वाल और उत्कर नामक स्थानों में मिल कर, मेघमण्डल द्वारा वर्ष कर, नदी बन कर, समुद्र को प्राप्त होते हैं। अन्य सब पूर्व के तुल्य है । वेददीप (यजुर्भाष्य) ५ । ७ में लिखा है कि जिन घड़ों से सोमकण्डनार्थ जल लाया जाता है, वे "एकधन" कहाते हैं । इसी से उन के जल को भी एकधन कह सकते हैं । तथा वहीं लिखा है कि उत्तरवेदि के निचयार्थ जिस भूमिभाग में मिट्टी खोदते हैं वह स्थान

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

" वात्साल " कहाता है और " उत्कर " भी यज्ञ के स्थानविशेष का नाम है। वेददीप १। २५ में लिखा है कि "स्रुच" नाम यज्ञपात्रविशेष से उखाड़ी हुई मिट्टी को "उत्कर" नामक स्थान में डाले॥ निघण्टु ३। २० का प्रमाण और ऋ० २। ३५। ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ६॥ (६०७)

अथ सप्तम्याः—वामदेव ऋषिः। रात्रिर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

१२ १२ ३१ २३१२ १२ ३१ २२ १२३२

आप्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्समीर्त्सति। अभूद्भद्रा

३१२३ १२३ १२३ १२

निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री॥ ७॥ (६०८)

पदपाठः—आप्रागात् क्रि०। भद्रा, युवतिः १। अह्नः ६। केतून् २। समीर्त्सति, अभूत् क्रि०। भद्रा, निवेशनी १। विश्वस्य, जगतः ६। रात्री १॥

अन्वितपदार्थः—हे अग्ने! प्रकाशस्वरूप! परमात्मन्! (भद्रा) सांसारिकसुखकरी (युवतिः) संहननाङ्गी दृढा (विश्वस्य जगतः भद्रा निवेशनी) सर्वस्य प्राणिवर्गस्य समीचीना स्वापयित्री (रात्री) निशा तत्तुल्या मोहाऽवस्था वा भवद्ध्यानपराङ्मुखकरी (अभूत्) भवति, (आप्रागात्) साऽस्मान्प्रत्यागच्छति। सैव (अह्नः) दिवसस्य प्रकाशस्य वा (केतून्) रश्मीन् (समीर्त्सति) क्षिप्रान् कर्त्तुमिच्छति, ततोऽस्मान् पाहीति भावः॥

अहः कस्मादुपाहरन्त्यस्मिन्कर्माणि। निरु० २। २०॥ ईर्ते इति गतिकर्मा निघं० २। १४ ततः सनि छान्दस ईर्त्सतीति प्रयोगः॥ ७॥ (६०८)

भाषार्थः—हे अग्ने! प्रकाशस्वरूप! परमात्मन्! (भद्रा) सांसारिक क्षणिक सुखदायिनी (युवतिः) दृढ़ (विश्वस्य) सब (जगतः) जगत् की (भद्रा) भली (निवेशनी) सुलाने वाली (रात्री) रात्री वा मोहाऽवस्था जो आप के ध्यान से पराङ्मुख करने वाली (अभूत्) है, (आप्रागात्) हम पर चढ़ी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आती है। वही (अह्नः) दिन वा ज्ञानप्रकाश की (केतून्) किरणों को (वनीर्वसति) दूर करना चाहती है। उस से हमें बचाइये। यह तात्पर्य है॥ निरुक्त २। २० निघण्टु २। १५ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥५॥ (६०८)

अथाऽष्टम्याः—भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। वैश्वानरो देवता। जगती छन्दः॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे।
३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये॥८॥ (६०९)

पदपाठः—प्रक्षस्य, वृष्णः, अरुषस्य ६। नु अ०। महः १। प्र अ०। नः ६। वचः १। विदथा ७। जातवेदसे, वैश्वानराय ४। मतिः १। नव्यसे ४। शुचिः, सोमः १। इव अ०। पवते क्रि०। चारुः १। अग्नये ४॥

अन्वितपदार्थः—हे अग्ने! (प्रक्षस्य) संपृक्तस्य व्याप्तस्य (वृष्णः) कामानां सेक्तुः (अरुषस्य) आरोचमानस्य तव (महः) पूजापरं (नः) अस्माकं (वचः) वचनम् (नु) शीघ्रम् (प्र) प्रभवतु। तथा (जातवेदसे) जातं वेदो ज्ञानं यस्मात्तस्मै (वैश्वानराय) सर्वेषां नायकाय तुभ्यं परमेश्वराय (शुचिः) पवित्रा (मतिः) प्रज्ञा [गच्छतु] (इव) यथा (नव्यसे अग्नये) नूतनायाऽविर्भावितायाऽग्नये (चारुः) शोभनः (सोमः), (विदथा) विदथे यज्ञे (पवते) गच्छति, तद्वत्॥

अरुषीरारोचनात् निरु० १२। ७॥ वैश्वानरः कस्माद्विश्वान्नरान्नयति। इत्यादि॥ निरु० ७। २१॥ विदथ इति यज्ञनाम निघं० ३। १७॥ जातवेदाः कस्माज्जातानि वेद, जातानि वैनं विदुर्जाते जाते विद्यत इति वा, जातवित्तो वा जातधनो वा जातविद्यो वेत्यादि। निरु० ७। १९॥८॥ (६०९)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः-हे अग्ने ! परमात्मन् ! (प्रक्षस्य) सब से हुवे हुवे (वृष्णः) सर्व कामनाओं के वर्षाने वाले (अरुषस्य) प्रकाशमान आप की (महः) पूजापरक (नः) हमारा (वचः) वचन (नु) शीघ्र (प्र) सफल हो । तथा (जातवेदसे) जिन आप से ज्ञान प्रकट हुवा है उन (वैश्वानराय) सर्वनियन्ता आप के लिये (शुचिः) पवित्र (मतिः) बुद्धि प्राप्त हो (इव) जैसे (नव्यसे) नये उत्पन्न किये (अग्नये) अग्नि के लिये (चारुः) सुन्दर (सोमः) सोम (विदथा) यज्ञ में (पवते) प्राप्त होता है, तद्वत् ॥

निरुक्त १२ । ७ ॥ ७ । २१ ॥ ७ । १९ निघण्टु ३ । १७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥ (६०९)

अथ नवम्याः-भरद्वाज ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १र २र ३ १र २र १ १ २

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपान्नपाच्च मन्म ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ड ३ १ २

मा वो वचाꣳसि परिचक्ष्याणि वोचꣳसुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥ ९ ॥ (६१०)

पदपाठः-विश्वे, देवाः १ । मम ६ । शृण्वन्तु क्रि० । यज्ञम् २ । उभे, रोदसी १ । अपान्नपात् १ । च अ० । मन्म २ । मा अ० । वः ६ । वचांसि, परिचक्ष्याणि २ । वोचम् क्रि० । सुम्नेषु ७ । इत् अ० । वः ६ । अन्तमाः १ । मदेम क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-हे अग्ने ! परमेश्वर ! (विश्वे) सर्वे (देवाः) विद्वांसो भौतिकाश्च (उभे), (रोदसी) रोदस्यौ द्यावापृथिव्यौ (च) तथा (अपान्नपात्) अग्निर्दूतः (मम) मदीयं (मन्म) माननीयं (यज्ञम्), (शृण्वन्तु) गृह्णन्तु (वः) युष्माकं (परिचक्ष्याणि) निन्दार्हाणि (वचांसि मा वोचम्), (वः) युष्माकम् (अन्तमाः) सामीप्यं प्राप्तः (सुम्नेषु) सुखेषु (इत्) एव (मदेम) मोदेय ॥

अपान्नपात्तनूनपात्रा व्याख्यातः । इत्यादि निरु० १० । १८

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तनूनपादाऽऽज्यं भवति। नपादित्यनन्तरायाः प्रजाया नामधेयम् । निरु० ७। ५ आप इत्यन्तरिक्षनाम निघं० १। ३ नपादित्यपत्यनाम २। २ इत्यादिनाऽग्नेरपान्नपात्संज्ञा बोध्या ॥ वः इत्यादरार्थे परमात्मनि बहुवचनप्रयोगः ॥ सुम्नमिति सुखनाम निघं० ३। ६ ॥ मदेमेत्यन्तमा इति च वचनव्यत्ययः (३। १। ८५) ऋग्वेदे तु ६। ५२। १४ यज्ञम्=यज्ञिया इतिपाठः ॥ ९ ॥ (६१०)

भाषार्थः—हे अग्ने ! परमात्मन् ! (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् और भौतिक देव (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक (च) और (अपान्नपात्) देवदूत अग्नि (मम) मेरे (मन्म) माननीय (यज्ञम्) यज्ञ को (शृण्वन्तु) ग्रहण करें। और मैं (वः) आप के (परिचक्ष्याणि) निन्दायोग्य (वचांसि) वचनों को (मा वोचम्) न बोलूं। तथा (वः) आप के (अन्तमाः) अतिसमीपस्थ हुवा मैं (सुम्नेषु इत्) सुखों में ही (मदेम) हृष्ट होऊं ॥

निरुक्त १०। १८ ॥ ७। ५ ॥ निघण्टु १। ३ ॥ २। २ ॥ ३। ६ ॥ अष्टाध्यायी ३। १। ८५ इत्यादि पर संस्कृतभाष्य में ध्यान देना चाहिये ॥ ऋ० ६। ५२। १४ में यज्ञम्=यज्ञियाः पाठ है ॥ ९ ॥ (६१०)

अथ दशम्याः—वामदेव ऋषिः। त्रिङ्कोक्ता देवताः। महापङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३
यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती। यशो भगस्य विन्दतु

१ २ ३ १ २ ३ २ १ ३ २ ३ १ २
यशो मा प्रतिमुच्यताम् । यशस्व्या३स्याः सꣳसदोऽहं प्रव-

३ १ २
दिता स्याम् ॥ १० ॥ (६११)

पदपाठः—यशः २। मा २। द्यावापृथिवी १। यशः २। मा २। इन्द्रबृहस्पती १। यशः १। भगस्य ६। विन्दतु क्रि०। यशः १। मा अ०। प्रतिमुच्यताम् क्रि०। यशस्वी १। अस्याः ६। संसदः ६। अहम्, प्रवदिता १। स्याम् क्रि० ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अन्वितपदार्थः—हे अग्ने ! परमात्मन् ! (मा) माम् (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिव्यौ (यशः) कीर्त्तिम् प्रापयेतामिति शेषः । (मा) माम् (इन्द्रबृहस्पती) इन्द्रो राजा बृहस्पतिर्विद्वाँश्च (यशः) कीर्त्तिम् प्रापयेताम् । (भगस्य) ऐश्वर्यस्य (यशः) कीर्त्तिः (विन्दतु) प्राप्नोतु । (यशः) कीर्त्तिः (मा प्रति मुच्यताम्) न पृथग्भवतु । (यशस्वी) प्रतिष्ठितः (अहम्), (अस्याः संसदः) विद्वत्सभायाः (प्रवदिता) प्रागल्भ्येन वक्ता (स्याम्) ॥१०॥ (६११)

भाषार्थः—हे अग्ने ! परमेश्वर ! (मा) मुझे (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक (यशः) कीर्त्ति को प्राप्त करावें । (मा) मुझे (इन्द्रबृहस्पती) राजा और विद्वान् पुरुष (यशः) यश को प्राप्त करावें । (भगस्य) ऐश्वर्य का (यशः) यश (विन्दतु) प्राप्त होवे । (यशः) यश (मा प्रतिमुच्यताम्) कभी न छोड़े । (यशस्वी) कीर्त्तिवाला (अहम्) मैं (अस्याः) इस (संसदः) विद्वत्सभा का (प्रवदिता) प्रगल्भता से बोलने वाला (स्याम्) होऊं ॥ १० ॥ (६११)

अथैकादश्याः—हिरण्यस्तूप ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३क२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ २ ३

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री । अह-

२ ३ २ ३१ २ ३ २ ३१ २ ३१ २

न्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ ११ ॥ (६१२)

पदपाठः—इन्द्रस्य ६ । नु अ० । वीर्याणि २ । प्रवोचम् क्रि० । यानि २ । चकार क्रि० । प्रथमानि २ । वज्री १ । अहन् क्रि० । अहिम् २ । अनु अ० । अपः २ । ततर्द क्रि० । प्र अ० । वक्षणाः २ । अभिनत् क्रि० । पर्वतानाम् ६ ॥

अन्वितपदार्थः—(इन्द्रस्य) सूर्यस्य वा विद्युतः (वीर्याणि) पराक्रमभूयिष्ठानि कर्माणि (प्रवोचम्) वर्णयामि (यानि)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यानि वीर्याणि (वज्री) वज्रवानिन्द्रः (प्रथमानि) विख्यातानि (चकार) करोति । तान्याह–(अहिम्) मेघम् (अहन्) हन्ति, (नु) क्षिप्रम् (अनु) पश्चात् (अपः) जलानि (तदर्द) हिनस्ति प्रवाहयति (पर्वतानाम्) मेघानाम् (वक्षणाः) नदीः (प्र अभिनत्) कूलद्वयकर्षणेन प्रवाहयति ॥

विद्युतः प्रहारः प्रपातो वा वज्रः ॥ अहिरिति पर्वत इति च मेघनाम निघं० १। १० ॥ वक्षणा इति नदीनाम १ । १३ ॥ अथास्य कर्म रसानुप्रदानं, वृत्रवधो, या च का च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत् । निरु० ७ । १० ॥ वृत्रवधो मेघवध इति च तत्रैव तद्भाष्यम् ॥ ऋग्वेदे १ । ३२ । १ ऽपि ॥ ११ ॥ (६१२)

भाषार्थः–(इन्द्रस्य) सूर्य वा विद्युत् के (वीर्याणि) पराक्रमयुक्त कर्मों को (प्रवोचम्) वर्णित करता हूं (यानि) जिन को कि (वज्री) वज्र वाला इन्द्र (प्रथमानि) मुख्य और विख्यात (चकार) करता है । वे ये हैं–(अहिम्) मेघ को (अहन्) मारता (अनु) फिर (नु) शीघ्र (अपः) जलों को (तदर्द) बहाता और (पर्वतानाम्) मेघों की (वक्षणाः) नदियां (प्र अभिनत्) तोड़ता अर्थात् दोनों किनारों में रगड़ कर बहाता है ॥

बिजुली का प्रहार वा गिरना वज्र कहा गया है ॥ निघण्टु १ । १० ॥ १ । १३ निरुक्त ७ । १० और उस के भाष्य का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥ (६१२)

अथ द्वादश्याः–विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् । त्रिधा-

२ ३ १ २ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥ १२ ॥ (६१३)

पदपाठः–अग्निः १ । अस्मि क्रि० । जन्मना ३ । जातवेदाः १ । घृतम् १ ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मे ६। चक्षुः १। अमृतम् १। मे ६। आसन् ७। त्रिधातुः, अर्कः १। रजसः ६। विमानः १। अजस्रम्, ज्योतिः, हविः १। अस्मि क्रि०। सर्वम् १॥

अन्वितपदार्थः—(अग्निः), (जन्मना) जन्मत एव (जातवेदाः) जातप्रकाशः (अस्मि) भवामि, (घृतम्) आज्यम् (मे) मम (चक्षुः) प्रकाशकम् [अस्ति] (मे) मम (आसन्) आस्ये मुख्ये (अमृतम्) मरणरहितमऽविनाशि ज्योतिरस्ति (त्रिधातुः) त्रेधात्मनो धारयितास्मि १—(रजसः) अन्तरिक्षस्य (विमानः) अधिष्ठाता (अर्कः) प्राणोस्मि २—(अजस्रम्) निरन्तरम् (ज्योतिः) सूर्यरूपेणाऽस्मि ३—(सर्वम्) अशेषेण (हविः) हव्यम् (अस्मि) भवामि ॥

यदाग्निः प्रादुर्भवति तदैव प्रकाशस्याऽपि प्रादुर्भावः। घृतसेचनेनाऽग्नेश्चक्षुष्यञ्जनमिव प्रक्षिप्यते। एतेन घृतभोजनस्य चक्षुर्हिततापयुक्ता। अग्निरेव प्राणसूर्यहव्यरूपेण त्रिधा वर्त्तमानोऽस्ति। अन्तरिक्षे प्राणत्वेन, दिव्यादित्यत्वेन, पृथिव्यां च सर्वहविस्त्वेन। सर्वाण्याग्नेयवस्तूनि हि अग्नेः प्रकाशवर्धकानि घृतादीनि सन्ति। उत्तमपुरुषत्वेन प्रयोगस्तु वर्णनवैचित्र्यमात्रम्॥ ऋग्वेदे तु ३। २६। ७ त्रिधातुरर्कः=अर्कस्त्रिधातुः। अजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम्=अजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम। इत्यन्तरम्॥ १२॥ (६१३)

भाषार्थः—(अग्निः अस्मि) मैं अग्नि हूं। जो कि (जन्मना) जन्म से ही (जातवेदाः) ज्ञान के साधन प्रकाश का उत्पादक हूं। (घृतम्) घृत (मे) मेरा (चक्षुः) प्रकाशक है (अमृतं मे आसन्) अमृत=प्रकाश मेरे मुख में है (त्रिधातुः) तीन प्रकार अपने को धारण करने वाला हूं १—(अर्कः) प्राण

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रूप हो कर (रजसः) अन्तरिक्ष का (विमानः) अधिष्ठाता हूं । २-(अजस्रं ज्योतिः) निरन्तर ज्योति=सूर्य हो कर द्युलोक का अधिष्ठाता हूं । ३-(सर्वम् हविः) सब हव्य (अस्मि) मैं हूं ॥

अर्थात् जब अग्नि प्रकट होता है तभी साथ ही प्रकाश भी प्रकट होता है । घी का सेवन मानो अग्नि की आंख में अञ्जन डाल कर प्रकाश को बढ़ाना है । इसी से यह भी जतलाया है कि घृत का भोजन आंखों को गुणदायक है । अग्नि ही प्राणादि ३ रूपों से स्थित है । १-प्राण होकर अन्तरिक्ष, २-सूर्य हो कर द्युलोक और ३-सब हव्य पदार्थों में व्याप कर पृथिवीका अधिष्ठाता है । जो प्रकाश के बढ़ाने वाले घृतादि हव्य पदार्थ हैं, वे सब आग्नेय हैं । तभी तो अग्नि के सहायक हैं ॥ अग्नि जड़ पदार्थ में भी उत्तम पुरुष के साथ वर्णन करना वेद की विचित्र मनोहर शैली मात्र है ॥ ऋ० ३ । २६ । ७ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १२ ॥ (६१३)

अथ त्रयोदश्याः—ऋष्यादय उक्ताः ॥

२ ३ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३१२ २२३ १२ २ ३

पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणꣳ सूर्यस्य । पाति

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः।१३।(६१४)

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥

पदपाठः—पाति क्रि० । अग्निः १ । विपः ६ । अग्रम् , पदम् २ । वेः ६ । पाति । यह्वः १ । चरणम् २ । सूर्यस्य ६ । पाति । नाभा ७ । सप्तशीर्षाणम् २ । अग्निः । पाति । देवानाम् ६ । उपमादम् २ । ऋष्वः १ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्निः) व्यापकोऽग्निः (वेः) गन्त्र्याः (विपः) रिपः पृथिव्याः (अग्रम्) मुख्यम् (पदम्) स्थानम् (पाति) रक्षति । (यह्वः) महानऽग्निः (सूर्यस्य) आदित्यस्य (चरणम्) पदं स्थानम् (पाति), (अग्निः) स एव (नाभा) नाभावन्तरिक्षे (सप्तशीर्षाणम्) सप्तगणं मरुद्गणम् (पाति) । (ऋष्वः) महानऽग्निः (देवानाम् उपमादम्) यज्ञम् (पाति) ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथवा-(विपः) मेधावी (अग्निः) पूज्य ईश्वरः (वेः) गन्तुर्जीवात्मनः (अग्रं पदम्) मुख्यं स्थानं मोक्षपदम् (पाति), (यह्वः) महान्परमात्मा (सूर्यस्य) चरणशीलस्यात्मनः (चरणम्) गतिम् (पाति), (अग्निः) स एवेश्वरः (नाभा) नाभिमण्डले (सप्तशीर्षाणम्) पञ्चेन्द्रियमनोबुद्ध्याख्यसप्ततेजोभिर्युक्तं जीवात्मानम् (पाति)। (ऋष्वः) महान् परमात्मा (देवानाम्) इन्द्रियाणाम् (उपमादम्) हर्षकरमात्मानम् (पाति) ॥

विपः इति वर्णव्यत्ययेनैकस्मिन्पक्षे रेफस्य वकारः। रिपइति पृथिवीनाम निघं० १।१ ॥ वेरिति वेतेर्गतिकर्मणो रूपम्। निघं० २। १४ ॥ यह्वइति ऋष्वइति च महन्नाम ३। ३ ॥ सुपां सुलुगित्यात्वे (३।१।३९) नाभा ॥१३॥ (६१४)

* इति षष्ठाऽध्याये तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ *

भाषार्थः-(अग्निः) व्यापक अग्नि (वेः) गतिस्वभाव वाली (विपः) पृथिवी के (अग्रम्) मुख्य (पदम्) स्थान की (पाति) रक्षा करता है (यह्वः) महान् अग्नि (सूर्यस्य) सूर्य के (चरणम्) पद=स्थान की (पाति) रक्षा करता है। (ऋष्वः) महान् अग्नि ही (देवानाम्) देवतों के (उपमादम्) हर्षकारक यज्ञ की (पाति) रक्षा करता है ॥

अथवा-(विपः) विद्वान् (अग्निः) पूजनीय ईश्वर (वेः) चलने के स्वभाव वाले जीवात्मा रूप पक्षी के (अग्रं पदम्) मुख्य पद=मोक्षधाम की (पाति) रक्षा करता है। (यह्वः) महान् आत्मा (सूर्यस्य) गतिशील आत्मा की (चरणम्) गति की (पाति) रक्षा करता है (अग्निः) वही पूज्य परमेश्वर (नाभा) नाभिमण्डल में (सप्तशीर्षाणम्) ५ इन्द्रियें ६ ठा मन ७ वीं बुद्धि वाले जीवात्मा की (पाति) रक्षा करता है। (ऋष्वः) महान् परमात्मा (देवानाम्) इन्द्रियों के (उपमादम्) हर्षकारक जीवात्मा की (पाति) रक्षा करता है ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निघण्टु १ । १ ॥ २ । १५ । ३ । ३ ॥ अष्टाध्यायी ३ । १ । ३९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १३ ॥ (६१४)

* यह छठे अध्याय में तीसरी दशति पूर्ण हुई ॥ ३ ॥ *

—:*:—

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-वासदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २

भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि । स त्वं

२ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २

नोअग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चोदृशे दाः ॥ १ ॥ (६१५)

पदपाठः-भ्राजन्ती १ । अग्ने, समिधान दीदिवः सं० । जिह्वा १ । चरति क्रि० । अन्तः अ० । आसनि ७ । सः, त्वम् १ । नः ६ । अग्ने । पयसा ३ । वसुवित् १ । रयिम् २ । वर्चः २ । दृशे ४ । दाः क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-(अग्ने) परमेश्वर ! (समिधान) सम्यक् प्रकाशमान ! (दीदिवः) सर्वोपरिविराजमान ! (भ्राजन्ती) त्वदनुग्रहेण प्रकाशमाना (जिह्वा), (अन्तः आसनि) अन्तर्मुखे (चरति) खादति चलति वा (सः त्वम् अग्ने), (वसुविद्) धनधान्यादिलम्भकः (पयसा) दुग्धेन सह [बाल्ये एव] (रयिम्) धनम् (वर्चः) तेजः (दृशे) दर्शनाय प्राप्तये (दाः) ददासि ॥

पद्दन्न इत्यनेन ६ । १ । ६३ आस्यस्याऽऽसन् ॥१॥ (६१५)

भाषार्थः-(अग्ने) परमेश्वर ! (समिधान) प्रकाशमान ! (दीदिवः) सर्वोपरि विराजमान ! (भ्राजन्ती) आपके अनुग्रह से प्रकाश करती हुई (जिह्वा) जीभ (अन्तः आसनि) भीतर मुख में (चरति) खाती वा चलती है (सः) वही (त्वम्) आप (अग्ने) अग्ने ! (वसुविद्) धनधान्य के

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आपः (पयसा) दुग्ध के साथ [बाल्यावस्था में हो] (रयिम्) धन और (अर्चः) तेज (दृशे) देखने को (दाः) देते हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । ६३ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥ (६।५)

अथ द्वितीयायाः—वामदेवऋषिः । ऋतवो देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ १र २र ३ १र २र

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।

३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र

वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥२॥(६१६)

पदपाठः—वसन्तः १ । इत्, नु अ० । रन्त्यः, ग्रीष्मः १ । इत्, नु । रन्त्यः । वर्षाणि १ । अनु अ० । शरदः १ । हेमन्तः, शिशिरः १ । इत्, नु । रन्त्यः ॥

अन्वितपदार्थः—अग्ने ! परमेश्वर ! भवत्कृपया (वसन्तः) चैत्रवैशाखरूपऋतुः (रन्त्यः) रमणीयोभवतु (इत्) तथा (नु) निश्चयेन (ग्रीष्मः) ज्यैष्ठाषाढात्मकऋतुः (रन्त्यः) रमणीयोस्तु (इत् नु वर्षाणि) वर्षाः श्रावणभाद्रपदस-ज्ञ्यन्यो ऋतुः (अनु) तदनु (शरदः) आश्विनकार्त्ति-काख्यऋतुः (हेमन्तः) मार्गशीर्षपौषवर्त्ती ऋतुः (इत् नु), (शिशिरः) माघफाल्गुनविशिष्टऋतुः (रन्त्यः) रमणीयोऽस्तु ॥

अत्र प्रासङ्गिकं निरुक्तमपि (४ । २७) द्रष्टव्यम्—

" सप्तयुंञ्जन्तिरथमेकंचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं तत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ ऋ०

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेकचारिणम् । चकतेर्वा चरतेर्वा क्रामतेर्वा । एकोऽश्वोवहति सप्तनामाऽऽदित्यः सप्ताऽस्मै रश्मयो रसानभिसंनामयन्ति सप्तैनमृषयः स्तुवन्तीति वा ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दमपीतरन्नामैतस्मादेवाभिसंनामात् । संवत्सरप्रधान उत्तरोर्धर्चः—त्रिनाभिचक्रम् ऋतुः संवत्सरो ग्रीष्मो वर्षा हेमन्त इति । संवत्सरः संवसन्तेऽस्मिन्भूतानि । ग्रीष्मो ग्रस्यन्तेस्मिन्रसा वर्षा वर्षत्यासु पर्जन्यो हेमन्तो हिमवान् हिमं पुनर्हन्तेर्वा हिनोतेर्वा । अजरमजरणधर्माणमनर्वमप्रत्यृतमन्यस्मिन् । यत्रेमानि सर्वाणि भूतान्यभिसंतिष्ठन्ते तं संवत्सरं सर्वमात्राभिः स्तौति—'पञ्चारे चक्रे परिवर्त्तमान, इति पञ्चर्त्तुतया । पञ्चर्त्तव: संवत्सरस्येति च ब्राह्मणं, हेमन्तशिशिरयोः समासेन । षडर आहुरर्पितमिति षड्ऋतुतया । अराः प्रत्यृता नाभौ । षट् पुनः सहतेः ॥

द्वादशारं नु हि तज्जराय । द्वादश प्रधयश्चक्रमेकम् । इति मासानाम् । मासा मानात् । प्रधिः प्रहिता भवति ॥ तस्मिन्साकं त्रिंशता न शङ्कवोर्पिताःषष्टिर्न चलाचलासः ॥ षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतानि संवत्सरस्याहोरात्रा इति च ब्राह्मणं समासेन ॥ सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ सप्त च वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहोरात्रा इति च ब्राह्मणं विभागेन " ॥२॥ (६१६)

भाषार्थः—हे अग्ने ! परमेश्वर ! आप की कृपा से (वसन्तः) चैत्र वैशाख २ मासों का ऋतु (रन्त्यः) रमणीय हो (इत्) और (नु) निश्चय (ग्रीष्मः) ज्येष्ठ आषाढ़ २ मासों का ऋतु (रन्त्यः) रमणीय हो (इत्) और (नु) निश्चय (वर्षाणि) श्रावण भाद्रपद का ऋतु (अनु) तत्पश्चात् (शरदः) आश्विन कार्त्तिक का ऋतु (हेमन्तः) मार्गशिर पौष का ऋतु (इत्) और (नु) निश्चय (शिशिरः) माघ फाल्गुन का ऋतु (रन्त्यः) रमणीय हो ॥

इसी प्रसङ्ग का निरुक्त भी ४ । २७ देखने योग्य है । उस का अर्थ यह है कि—" सप्त युञ्ज० " ऋ० एक चक्र अर्थात् एक प्रकार चलने वाले रथ को ७

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जोड़ते हैं। चक्र शब्द चकति वा चरति वा क्रामति से बना है। एक अश्व से चलता है जिस के ७ नाम हैं, वह सूर्य है। उस की ७ किरणें (रश्मि) हैं। रश्मि इस लिये कहाती हैं कि उस को रस पहुंचाती हैं। इसी बात को यूं भी कहा करते हैं कि इस की ७ ऋषि स्तुति किया करते हैं। यह ऋषि नाम भी इसी कारण है कि किरणें रस को पहुंचाती हैं॥ अगले आधे मन्त्र में संवत्सर का वर्णन है। संवत्सर नाम का चक्र है। ३ नाम ग्रीष्म वर्षा और हेमन्त हैं। इस को संवत्सर इस से कहते हैं कि इस में सर्व भूतमात्र बसते हैं। ग्रीष्म इस से कहाता है कि उस में रस ग्रसे जाते हैं। वर्षा इस लिये कि उस में मेघ वर्षता है। हेमन्त इस से कि उस में हिम (पाला वा बर्फ़) पड़ता है। हिम शब्द हन्ति वा हिनोति से बना है। संवत् को अजर इस लिये कहा कि यह पुराणा नहीं पड़ता, सदा नवीन है। अनर्व इस लिये है कि और में और नहीं समाता। जिस संवत् में ये सब प्राणी जन्मते मरते रहते हैं, उस का वर्णन सब प्रकार से विभाग करके किया जाता है। जैसा कि 'पञ्चारे चक्रे०' इस में ५ ऋतु करके वर्णन हैं। 'संवत्सर की ५ ऋतु हैं, ऐसा ब्राह्मण में भी कहा है, हेमन्त और शिशिर को मिलाकर एक करने से। 'षडर आहुरर्पितम्, इस स्थान में षट् ऋतु करके वर्णन है। अराः इस लिये कहाते हैं कि अरे नाभि में पोये रहते हैं। और षट् शब्द सहति से बना है। 'द्वादशारम्' इत्यादि वाक्य में १२ मासों के विभाग से वर्णन है। मास इस लिये कहाते हैं कि इन से काल को मापते हैं। अधि चारों ओर का घेरा कहाता है॥ 'तस्मिन्साकंत्रिंशता०' इत्यादि में संवत्सर चक्र की ३६० कील गिनायी हैं। ब्राह्मण में भी लिखा है कि संवत्सर के दिन रात्रि मिलाकर ३६० हैं। 'सप्त शतानि विंशतिश्च०' इस स्थान में ७२० कहे हैं। ये भिन्न २ दिन और रात्रि को बांट कर ७२० कील जानो। यह भी ब्राह्मणवाक्य है"॥ २॥ (६१६)

अथ तृतीयायाः-नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

३१२ ३ १२ ३२ ३१२

सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

१र २र ३१२ ३१२ ३२

स भूमिꣳ सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥३॥ (६१७)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः–सहस्रशीर्षाः १ । पुरुषः, सहस्राक्षः, सहस्रपात्, सः १ । भूमिम् २ । सर्वतः अ० । वृत्वा अ० । अत्यतिष्ठत् क्रि० । दशाङ्गुलम् २ ॥

अन्वितपदार्थः–अग्ने ! परेश ! (सहस्रशीर्षाः) बहुशिरोयुक्तः (सहस्राक्षः) बहुनेत्रः (सहस्रपात्) बहुपादः (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे शेतेऽसौ (सः) स भवान् (भूमिम्) ब्रह्माण्डाख्याम् (सर्वतः) सर्वप्रदेशेषु अन्तर्यामितया (वृत्वा) आवृत्य (दशाङ्गुलम्) हृदयम् (अत्यतिष्ठत्) उल्लङ्घ्य स्थितोभवति ॥

भवानेव सर्वेश्वर इति भावः । " सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः सोऽयं 'सहस्रशीर्षाः' सहस्रशब्दस्योपलक्षणत्वात् अनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः । यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तः पातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम् । एवं सहस्राक्षत्वं सहस्रपादत्वं च । " इति सायणाचार्यः ॥

सहस्रशीर्षाः इति विसर्गश्छान्दसः ॥ ऋग्वेदे तु १० । ९० । १ सर्वतः=विश्वत इति, यजुर्वेदे च ३१ । १ वृत्वा=स्पृत्वा इत्यन्तरम् ॥ ३ ॥ (६१७)

भाषार्थः–हे अग्ने ! परमात्मन् ! (सहस्रशीर्षाः) जिस में बहुत शिर (सहस्राक्षः) बहुत आंख (सहस्रपात्) बहुत पांव हैं (सः) वह आप (भूमिम्) ब्रह्माण्ड भूमि को (सर्वतः) बाहर भीतर सर्वत्र (वृत्वा) व्यापकर (दशाङ्गुलम्) हृदय देश को (अत्यतिष्ठत्) उल्लङ्घन करके स्थित हैं ॥

अर्थात् आप ही सर्वेश्वर हैं । सायणाचार्य कहते हैं कि " संपूर्ण प्राणियों का समष्टि रूप ब्रह्माण्ड रूपी देहवाला विराट् नाम जो पुरुष वह सहस्रशीर्षाः है । सहस्र शब्द के उपलक्षणार्थ होने से यह अर्थ हुवा कि वह अनन्त शिरों से युक्त है । जो २ सर्व प्राणियों के शिर हैं वे २ सब उस ब्र-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ब्रह्माण्ड देह के अन्तर्गत होने से उसी पुरुष के कहे गये हैं। ऐसे ही सहस्राक्ष और सहस्रपात् होना जानो[१]। यजुः। ३१। १ और ऋ० १०। ९०। १ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (६१७)

अथ चतुर्थ्याः—ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

३ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।

२ ३ २ ३ क २ र ३ २ ३ २

तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनाऽनशनेअभि ॥ ४ ॥ (६१८)

पदपाठः—त्रिपात्, ऊर्ध्वः १। उदैत् क्रि०। पुरुषः, पादः १। अस्य ६। इह, अ०। अभवत् क्रि०। पुनः, तथा अ०। विष्वङ् १। व्यक्रामत् क्रि०। अशनाऽनशने २। अभि अ० ॥

अन्वितपदार्थः—अग्ने ! परमात्मन् ! (अस्य) भवतः (पादः) एकदेशः (इह) जगति (पुनः) वारं वारम् (अभवत्) भवति (त्रिपात्) संसारस्पर्शराहित्ये बहुल-सच्चिदानन्दस्वरूपः (पुरुषः) पूर्णः परमात्मा (ऊर्ध्वः) संसाराद् बहिः (उदैत्) उच्चभावेन वर्त्तते। (तथा) योऽसौ पादः सहि (अशनाऽनशने) अशनं भोजनादि-व्यवहारोपेतं चेतनं प्राणिजातम्, अनशनं तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकम्, तदुभयम् (विष्वङ्) प्रत्यगात्मभावभावितः सन् (अभि व्यक्रामत्) अभिव्याप्य वर्त्तते ॥

अर्थात् परमात्मा महान्, जगच्च तदेपक्षयात्यणुतमम्। अतो जगदिदं परमात्मैकदेशे वर्त्तमानमस्ति, न परमात्मवत्सर्वगम्। परमात्मैकदेशव्याप्त्यैव च व्याप्तमिदं सर्वमिति ॥ ऋग्वेदे तु १०। ९०। ४ यजुषि च ३१। ४ तथा= ततः। अशनानशने=साशनानशने, इत्यन्तरम् ॥४॥ (६१८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भाषार्थः— अग्ने ! परमात्मन् ! (अस्य) इन आप का (पादः) एक देशमात्र (इह) इस जगत् में (पुनः) बार बार (अभवत्) होता है और (त्रिपात्) शेष आपका सच्चिदानन्दस्वरूप संसार के स्पर्श से रहित ही (पुरुषः) पूर्ण (ऊर्ध्वः) संसार से बाहर (उदैत्) उच्चभाव से रहता है (तथा) तथा जो जगत् में आया हुवा एक देश है वह (अशनाऽनशने) खाने आदि व्यवहारयुक्त चेतन प्राणिवर्ग और उस से रहित अचेतन पर्वत नदी आदि पदार्थ, इन दोनों में (विष्वङ्) छिपा हुवा (अभि व्यक्रामत्) अभिव्याप्त होकर स्थित है॥

अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा अनन्त है, वैसे जगत् परमात्मा के बराबर अनन्त नहीं है, किन्तु परमात्मा के एक देश में सब जगत् बार २ सृष्टिकाल में स्थित रहता है, शेष परमात्मा जगत् के बाहर बहुलता से वर्त्तमान है, परमात्मा जितना जगत् में है, उतना ही सब चेतनाऽचेतन को अपनी एकदेशीय व्याप्ति से व्याप्त कर देता है ॥ ऋ० १० । ९० । ४ और यजुः ३१ । ४ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥ (६१८)

अथ पञ्चम्याः—ऋष्यादय उक्ताः ॥

१ २ ३ २ उ ३ २ ३ २ उ ३ १ २

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्या ऽमृतं दिवि ॥५॥(६१९)

पदपाठः—पुरुषः १ । एव अ० । इदम्, सर्वम्, यत्, भूतम्, यत्, १ । च अ० । भाव्यम् १ । पादः १ । अस्य ६ । सर्वा, भूतानि १ । त्रिपात् १ । अस्य । अमृतम् १ । दिवि ७ ॥

अन्वितपदार्थः—उपादानकारणप्रधानसहितः परमात्मा पुरि शयनात्पुरुष इत्युच्यते (इदम्) वर्त्तमानम् (यद्भूतम्) यद् गतसृष्टिस्थम् (यत् च भाव्यम्) यदनागतकल्पभावि जगत् (सर्वम्) कालत्रयस्थं तत्सर्वं (पुरुषः) विराट् (एव) निश्चयेनोच्यते (अस्य) भवतः (पादः)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

एकदेशः (सर्वा) सर्वाणि (भूतानि) प्राणिजातानि (अस्य) भवतो हि (त्रिपात्) अवशिष्टं स्वरूपम् (अमृतम्) अमरम् (दिवि) अवकाशे विद्यते ॥

यद्यपि "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्याद्युपनिषत्प्रतिपादितं परं ब्रह्म-इयत्तया परिच्छिन्नं नास्ति, तथा सति पाद कल्पना न संभवति, तथापि ब्रह्मापेक्षया जगतोल्पतमत्वज्ञापनार्था पादत्वेनोक्तिः॥ ऋग्वेदे तु १०।९०। २ यजुषि च ३१। २ पूर्वार्धमात्रतुल्यता ॥ उत्तरार्धस्तु यजुषः ३१। ३ उत्तरार्धेन समानकल्पः॥ ५॥ (६१९)

भाषार्थः-उपादान कारण प्रकृति वा प्रधान सहित परमात्मा को यहां 'पुरुष' कहा है, क्योंकि वह पुर्=ब्रह्माण्ड में शयन करता है। (इदम्) यह वर्त्तमान कल्पस्थ जगत् (यत्) और जो (भूतम्) भूत कल्पस्थ (च) और (यत् भाव्यम्) जो होने वाले कल्प में स्थित जगत् है (सर्वम्) यह सब (पुरुषः) पुरुष (एव) निश्चय कहा जाता है। (अस्य) इन आप का (पादः) एक पादमात्र (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणी हैं (अस्य) और इन आप के (त्रिपाद्) तीन पाद (अमृतम्) अमर (दिवि) अवकाश=रिक्त स्थानमात्र में हैं॥

यद्यपि परमात्मा को "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि उपनिषदों में अनन्त माना है, इस लिये वह "इतना है" इस परिमाण में नहीं आसकता और परमाणाऽतीत पदार्थ में पादकल्पना नहीं बन सकती, परन्तु यह त्रिकालस्थ जगत् परमात्मा की अपेक्षा बहुत छोटा है। इस बात के वर्णन करने को पादकल्पना करके वर्णन कर दिया है॥ ऋ० १०। ९०। २ यजुः ३१। २ से पूर्वार्ध की तुल्यता और यजुः ३१। ३ से उत्तरार्ध की कुछ न्यून तुल्यता है॥५॥ (६१९)

अथ षष्ठ्याः-ऋष्यादयः पूर्ववत्॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाꣳश्च पूरुषः।

३ १ २ ३ १ २र ३ १र २र ३ १ २

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाऽतिरोहति ॥६॥ (६२०)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः–तावान् १ । अस्य ६ । महिमा १ । ततः अ० । ज्यायान् १ । च अ० । पूरुषः १ । उत अ० । अमृतत्वस्य ६ । ईशानः १ । यत् १ । अन्नेन ३ । अतिरोहति क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः–अतीताऽनागतवर्त्तमानरूपजगदाधारो योस्ति (तावान्), सर्वः (अस्य) पुरुषस्य (महिमा) सामर्थ्यविशेषोऽस्ति न तु केवलस्तावानेव (च) किन्तु (पूरुषः) पुरुषस्तु (ततः) महिम्नः (ज्यायान्) अतिशयेन महान् (यत्), (अन्नेन) प्राणिनां भोग्येन (अतिरोहति) जीवति तस्य (उत) तथा (अमृतत्वस्य) मोक्षस्य (ईशानः) अधिष्ठाताऽपि स एव पुरुषो वर्त्तत इति भावः ॥

ऋग्वेदे तु १० । ९० । ३ एतावान् । अतः । इत्यन्तरम् । उत्तरार्धस्य १० । ९० । २ तुल्यो द्वितीयया ॥ ६ ॥ (६२०)

भाषार्थः–भूत भविष्यत् वर्त्तमान जगत् का आधार जितना है, (तावान्) उतना सब (अस्य) इस परमात्मा का (महिमा) सामर्थ्य विशेष है, न कि केवल इतना ही परमात्मा है । (च) किन्तु (पूरुषः) परमात्मा तो (ततः) उस महिमा से (ज्यायान्) अत्यन्त महान् है । (यत्) जो कुछ (अन्नेन) अन्न से (अतिरोहति) उपजता है उस का (उत) और (अमृतत्वस्य) मोक्ष का (ईशानः) अधिष्ठाता परमात्मा ही है ॥

ऋ० १० । ९० । २ के उत्तरार्ध से तुल्यता है और १० । ९० । ३ के पूर्वार्ध में " एतावान्, अतः " इतना पाठान्तर है ॥ ६ ॥ (६२०)

अथ सप्तम्याः–नारायण ऋषिः । स्रष्टा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

ततो विराडऽजायत विराजो अधि पूरुषः ।

२ ३ १ २ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥७॥ (६२१)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः—ततः ५ । विराट् १ । अजायत क्रि० । विराजः ६ । अधि अ० । पूरुषः, सः, जातः १ । अत्यरिच्यत क्रि० । पश्चात् अ० । भूमिम् २ । अथो अ० । पुरः २ ॥

अन्वितपदार्थः—(ततः) तस्मात् पुरुषात् निमित्तात् (विराट्) ब्रह्माण्डदेहः (अजायत) उत्पन्नो भवति (विराजः) ब्रह्माण्डदेहस्य (अधि) अधिष्ठाता (पूरुषः) परमात्माऽस्ति (सः) विराट् (जातः) उत्पन्नः सन् (पश्चात्) अनन्तरम् (भूमिम्) पृथिवीम् (अथो) तथा (पुरः) प्राणिदेहान् ग्रामनगरादीन् वा (अत्यरिच्यत) अतिरिच्य वर्त्तमानो भवति ॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते। इत्यादिप्रमाणैः परमात्मनः परमपुरुषस्योपादानकारणत्वं नैव शङ्कनीयम् ॥ यजुर्वेदे ३१ । ५ ऽपि ॥ ऋग्वेदे तु १० । ९० । ५ ततः=तस्मादिति पाठभेदः ॥ ७ ॥ (६२१)

भाषार्थः—(ततः) उस निमित्त कारण पुरुष से (विराट्) ब्रह्माण्डदेह (अजायत) उत्पन्न हुवा करता है (विराजः) ब्रह्माण्ड देह का (अधि) अधिष्ठाता (पूरुषः) परमात्मा होता है (सः) वह (जातः) उत्पन्न हुवा ब्रह्माण्ड देह (पश्चात्) फिर (भूमिम्) पृथिवी (अथो) और (पुरः) ग्राम नगरादि वा प्राणिदेहों को (अत्यरिच्यत) लांघकर वर्त्तमान रहा करता है। अर्थात् ग्राम नगरादि सब उसके भीतर आजाते हैं, वह इन सब से बड़ा होता है॥

" परमात्मा का कोई कार्य वा करण नहीं है " इत्यादि प्रमाणों से यह शङ्का नहीं करनी चाहिये कि इस मन्त्र में वा ऐसे ही अन्य मन्त्रों में परमात्मा से विराट् की उत्पत्ति में परमात्मा उपादान कारण हो॥ यजुः ३१ । ५ में भी ॥ ऋ० १० । ९० । ५ में—ततः=तस्मात् पाठभेद है॥ ७ ॥ (६२१)

अथाऽष्टम्याः—वामदेव ऋषिः । द्यावापृथिवी देवते । त्रिष्टुप् (उपरिष्टाज्ज्योतिः) छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
द्यावापृथिवी भवतꣳ स्योने ते नो मुञ्चतमꣳहसः ॥ ८ ॥ (६२२)

पदपाठः—मन्ये क्रि० । वाम् २ । द्यावापृथिवी सं० । सुभोजसौ २। ये २। अप्रथेथाम् क्रि० । अमितम् २ । अभि अ० । योजनम् २ । द्यावापृथिवी सं० । भवतम् क्रि० । स्योने, ते १ । नः २ । मुञ्चतम् क्रि० । अंहसः ५ ॥

अन्वितपदार्थः—(द्यावापृथिवी) परमेण पुरुषेण सृष्टे ! तेन व्याप्ते ! च द्यावापृथिव्यौ ! (वाम्) युवाम् युष्मत्स्थप्राणयप्राणिवर्गौ च (सुभोजसौ) शोभनपालयित्र्यौ (मन्ये)। (ये) ये द्यावापृथिव्यौ (अमितम्) ज्ञातुमशक्यम् (योजनम्) देशम् (अभि अप्रथेथाम्) विस्तृते भवथः (ते, द्यावापृथिवी) द्यावापृथिव्यौ ! (नः) अस्मान् (अंहसः) दुःखात् पापाद्वा (मुञ्चतम्), (स्योने) सुखदायिन्यौ (भवतम्) स्तम् ॥ जडसंबोधनं वैदिकी शैली एव नान्यत् ॥ ८ ॥ (६२२)

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) परम पुरुष से रचित ! और उसी से व्याप्त द्युलोक और पृथिवीलोको ! और उन में स्थित प्राणि तथा अप्राणिवर्गो ! (वाम्) तुम २ को (सुभोजसौ) भले प्रकार से पालन करने वाले (मन्ये) मानता हूं (ये) जो तुम (अमितम्) अपरिमित (योजनम्) देश तक (अभि अप्रथेथाम्) व्याप्त होकर फैले हो (ते) वे तुम (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोको ! (नः) हम को (अंहसः) दुःख वा पाप से (मुञ्चतम्) छुड़ावो और (स्योने) सुखदायक (भवतम्) होओ ॥ जड़ संबोधन वैदिक शैलीमात्र है ॥ ८ ॥ (६२२)

अथ नवम्याः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१२ ३ १२ ३१ २ ३२३ १२
हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।
१ २ ३१२ ३१२ ३१२
तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥९॥ (६२३)

पदपाठः—हरी १। ते ६। इन्द्र सं०। श्मश्रूणि १। उतो अ०। ते ६। हरितौ, हरी १। तम्, त्वा २। स्तुवन्ति क्रि०। कवयः, पुरुषासः, वनर्गवः १॥

अन्वितपदार्थः—परमेण पुरुषेण सृष्ट ! (इन्द्र) सूर्य ! (ते) त्वदीयानि (श्मश्रूणि) मुखलोमानीव किरणजातानि (हरी) हरीणि हारकाणि सन्ति (उतो) अपि च (ते) त्वदीयौ (हरी) अश्वाविव धारणाकर्षणाख्यौ गुणौ (हरितौ) हरणशीलौ स्तः। (तं त्वा) त्वाम् (वनर्गवः) सेवनीयवाचः (कवयः) मेधाविनः (पुरुषासः) पुरुषाः (स्तुवन्ति) वेदानुसारतो वर्णयन्ति ॥

हरी इत्यत्र शेश्छन्दसि बहुलम् ६।१।७० इति हरिशब्दाच्छेर्लुक् ॥ हरी इन्द्रस्य निघं० १।१५ ॥ पुरुषासइत्यत्राऽऽज्जसेरसुक् ७।१।५० ॥ वननीयाः संभजनीयाः सेवनीया गावो वाचो येषां ते वनर्गवः—वर्णागमो वर्णविपर्ययश्चेति, व्यत्ययो बहुलम् ३।१।८५ इत्यस्य व्याख्यानं, ततोरेफागमः, गोस्त्रियोरुपसर्जनस्येति १।२।४८ ह्रस्वः॥ जडसंबोधनं परिपाटीमात्रम् ॥ ९ ॥ (६२३)

भाषार्थः—(इन्द्र) परम पुरुष के रचे हुवे ! सूर्य ! (ते) तेरी (श्मश्रूणि) किरण रूप मूछें (हरी) हरण करने वाली हैं (उतो) और (ते) तेरे (हरी) अश्व के समान धारण और आकर्षण गुण (हरितौ) हरण करने वाले हैं (तम्) उस (त्वा) तुझ को (कवयः) बुद्धिमान् (वनर्गवः) सेवनीय

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वैदिकी वाणी वाले (पुरुषासः) पुरुष (स्तुवन्ति) वेदानुसार वर्णित करते हैं॥
अष्टाध्यायी ६। १। ७॥ ७। १। ५०॥ ३। १। ८५॥ १। २। ४८॥
निघण्टु १। १५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ९॥ (६२३)

अथ दशम्याः-वामदेव ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

२उ ३ १२ ३ २३ २३ १२३२
यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत।
१२३ १२१ २३ १२ ३ १ २
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सꣳसृजामसि॥१०॥ (६२४)

पदपाठः-यत्, वर्चः १। हिरण्यस्य ६। यत् १। वा अ०। वर्चः। गवाम् ६। उत अ०। सत्यस्य, ब्रह्मणः ६। वर्चः। तेन ३। मा २। संसृजामसि क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(हिरण्यस्य यत् वर्चः, उत गवाम् यत् वर्चः, सत्यस्य ब्रह्मणः वर्चः, तेन) वर्चसा (मा) अस्मान्। वचनव्यत्ययः। (संसृजामसि) संसृष्टान्कुर्याम॥

हिरण्यं कस्माद्ध्रियते आयम्यमानमिति वा, ह्रियते जनाज्जनमिति वा, हितरमणं भवतीति वा, हृदयरमणं भवतीति वा, हर्यतेर्वा स्यात्प्रेप्साकर्मणः। निरु० २। १०॥ सत्यं कस्मात्सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा। निरु ३। १३॥ गौरिति निघं० १। १॥ १। ४॥ १। ११॥ ३। १६॥ ४। १ बहुर्थःपरमत्र विशिष्टः किरणार्थोन्वितोबोध्यः॥ सꣳसृजामसीत्यत्रेदन्तोमसि ७। १। ४६ इति मस्यादेशः॥ १०॥ (६२४)

भाषार्थः-(हिरण्यस्य) सुवर्ण का, वा ज्योति का, वा लक्ष्मी का (यत्) जो (वर्चः) तेज है (उत) और (गवाम्) किरणों वा अन्य गोशब्दवाच्य पदार्थों का (यत्) जो (वर्चः) तेज है (सत्यस्य) त्रिकालैकरस (ब्रह्मणः) ब्रह्म का (वर्चः) जो तेज है (तेन) उस तेज से (मा) हम लोग अपने को (संसृजामसि) संसर्ग वाला करें॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निरुक्त २ । १० ॥ ३ । १३ । निघण्टु १ । १ ॥१ । ४ ॥ १ । ११ ॥ ३ । १६ ॥ ४ । १ और अष्टाध्यायी ७ । १ । ४६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥१०॥(६२४)

अथैकादश्याः–वामदेव ऋषिः । इन्द्रोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२३ १२ ३ २ ३ २ ३क २३१ २

सहस्तन्न इन्द्र दद्धयोज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।

२३ १ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

क्रतुं न नृम्णꣳस्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥ ११ ॥ (६२५)

पदपाठः–सहः, तत् २ । नः ४ । इन्द्र सं० । दद्धि क्रि० । ओजः २ । ईशे क्रि० । हि अ० । अस्य, महतः ६ । विरप्शिन् सं० । क्रतुम् २ । न अ० । नृम्णम्, स्थविरम् २ । च अ० । वाजम् २ । वृत्रेषु ७ । शत्रून्, सहना २ । कृधि क्रि० । नः २ ॥

अन्वितपदार्थः–(इन्द्र) परमेश्वर ! (नः) अस्मभ्यम् (सहः) शत्रूणामभिभवनरूपम् (तत् ओजः) बलम् (दद्धि) देहि (विरप्शिन्) हे महन् ! (हि) यस्मात् (अस्य महतः), बलस्य वा ब्रह्माण्डस्य (ईशे) त्वमेवेश्वरोसि (क्रतुं न) यथाकर्म (नृम्णम्) धनम् (स्थविरं वाजम्) स्थायि धान्यादिकं (च), देहि (नः) अस्मान् (वृत्रेषु) आवरकेषु दुष्टशत्रुषु (शत्रून् सहना) शत्रूणां सहैव हननयोग्यान् (कृधि) कुरु ॥

विरप्शीति महन्नाम निघं० ३ । ३ नृम्णमिति धननाम २ । १० ॥ ११ ॥ (६२५)

भाषार्थः–(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये (सहः) शत्रुओं का दमन करने वाला (तत्) वह (ओजः) बल (दद्धि) दीजिये (विरप्शिन्) हे महन् ! (हि) क्योंकि (अस्य महतः) इस बड़े बल वा ब्रह्माण्ड के (ईशे) आप ईश्वर हैं (च) और (क्रतं न) कर्मानुसार (नृम्णम्)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

धन (च) और (स्थविरं वाजम्) स्थिर धान्यादि [दीजिये] (नः) हम को (वृत्रेषु) पापियों में (शत्रून्) शत्रुओं का (सहना) साथ घातक (कृधि) कीजिये ॥ निघण्टु ३।३॥२।१० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥ (६२५)

अथ द्वादश्यावाश्वदेव ऋषिः । गौर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

३ १ २ ३१२ ३१२३ १ २ ३२३ १ २ ३२
सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्दुव्यूधनीः । उरुः

३२३१ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३१ २
पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥१२॥(६२६)

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥

पदपाठः—सहर्षभाः, सहवत्साः १ । उदेत क्रि० । विश्वा, रूपाणि २ । बिभ्रतीः, दुव्यूधनीः १ । उरुः, पृथुः, अयम् १ । वः ४ । अस्तु क्रि० । लोकः १ । इमाः, आपः, सुप्रपाणाः १ । इह अ० । स्त क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—गावः ! (विश्वा) विश्वानि (रूपाणि) गौरादीनि (बिभ्रतीः) बिभ्रत्यः (दुव्यूधनीः) सायंप्रातः कालयोर्द्विविधान्यूधांसि यासां ताः दुव्यूधन्यः (सहर्षभाः) सवृषभाः (सहवत्साः), (उदेत) उच्चभावेन प्राप्नुत (वः) युष्मभ्यम् (अयं लोकः), (उरुः) बहुः (पृथुः) विस्तीर्णः (अस्तु) भवतु (इमाः) एताः (आपः), (सुप्रपाणाः) सुपेयाः सन्तु । एवं सुखिन्यो यूयम् (इह) लोके (स्त) भवत ॥

उरुःपृथुरिति पदाभ्यामायामविस्तरावुच्येते ॥ जड़संबोधनं शैलीमात्रम् ॥ अनेकरूपाः वृषभैर्वत्सैश्च सहिताः कालद्वयदोहाः विस्तृतविशालगोष्ठाः सुपेयजलस्थानयुक्ताश्च गावः सदा रक्षणीया इत्यभिप्रायः ॥ १२ ॥ (६२६)

* इति षष्ठाध्याये चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ *

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भावार्थः—गौवो ! तुम (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों को (बिभ्रतीः) धारण करती हुई (दुह्यूधोः) सायं प्रातःकाल दूध देने वाली (सहर्षभाः) सांड़ों सहित (सहवत्साः) बछड़ों सहित (उदेत) उच्चभाव से प्राप्त होओ (वः) तुम्हारे लिये (अयम्) यह (लोकः) स्थान (उरुः) लम्बा (पृथुः) चौड़ा (अस्तु) होवे (इमाः) ये (आपः) जल (सुप्रपाणाः) सुन्दर पीने योग्य होवें । इस प्रकार (इह) इस लोक में (स्त) सुखयुक्त हो ओ ॥

जड़सम्बोधन वैदिक परिपाटीमात्र है । तात्पर्य यह है कि गौवों को सांड़ों बैलों बछड़ों सहित, दो काल दुग्ध देने वाली रखना चाहिये और उन के गोष्ठ (खरक) लम्बे चौड़े विशाल हों , पीने को सुन्दर स्वच्छ जल हो ॥ १२ ॥ (६२६)

* यह छठे अध्याय में चौथी दशति पूर्ण हुई ॥ ४ ॥ *

—:०*०:—

अथ पञ्चमी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—वैश्वानर ऋषिः । अग्निः पवमानो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।

३ १ २ ३ १ २

आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥ (६२७)

पदपाठः—अग्ने सं० । आयूंषि २ । पवसे, आसुव क्रि० । ऊर्जम् , इषम् २ । च अ० । नः ४ । आरे १ । बाधस्व क्रि० । दुच्छुनाम् ६=२ ॥

अन्वितपदार्थः—(अग्ने !) प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! वा भौतिकाग्ने ! त्वम् (आयूंषि) अस्माकमायूंषि (पवसे) पवित्रयसि, स त्वम् (नः) अस्मभ्यम् (ऊर्जम्) रसम् (इषम्) अन्नं (च), (आसुव) प्रेरय प्रापय । तथा (दुच्छुनाम्) दुष्टान् शुन इव वर्त्तमानान् राक्षसान् (आरे) अस्मत्तो दूरतएव (बाधस्व) संपीडय ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आरे इति दूरनाम निघं० ३ । ३६ ॥ यजुर्वेदे १९ । ३८ ॥ ३५ । १६ ऽपि ॥ ऋग्वेदे चा ९ । ६६ । १९ ऽपि ॥ १ ॥ (६२७)

भाषार्थः-(अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! वा भौतिकाग्ने ! (आयूंषि) हमारी आयुओं को (पवसे) तू पवित्र करता है, वह तू (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) रस (च) और (इषम्) अन्न को (आसुव) प्रेरित कर प्राप्त करा । तथा (दुच्छुनाम्) दुष्ट कुत्तों के समान राक्षसों को (आरे) हम से दूर [निघं० ३ । २६] (बाधस्व) बाध=भगा ॥ यजुः १९ । ३८ तथा ३५ । १६ में और ऋ० ९ । ६६ । १९ में भी ॥ १ ॥ (६२७)

अथ द्वितीयायाः-विभ्राट् सूर्यपुत्र ऋषिः । सूर्यो देवता । जगती छन्दः ॥

३ २ ३१ २ ३ २७ ३१२३१२३१२

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।

१२ ३ १ २३१२३ १२ ३१ २ ३ १२ २२

वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्त्ति बहुधा विराजति ॥ २ ॥ (६२८)

पदपाठः-विभ्राट् १ । बृहत् २ । पिबतु क्रि० । सोम्यम्, मधु, आयुः २ । दधत् १ । यज्ञपतौ ७ । अविह्रुतम् २ । वातजूतः, यः १ । अभिरक्षति क्रि० । त्मना ३ । प्रजाः २ । पिपर्त्ति क्रि० । बहुधा अ० । विराजति क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(विभ्राट्) विभ्राजमानो विशेषेण दीप्यमानः सूर्यः (बृहत्) परिवृढम् (सोम्यम्) सोममयम् (मधु पिबतु) । किंकुर्वन् ? (यज्ञपतौ) यजमाने (अविह्रुतम्) अकुटिलमकण्टकम् (आयुर्दधत्) सन्, अन्नं वा धारयन् (यः) सूर्यः (वातजूतः) वातोजूतो गमितो येन सः (त्मना) आत्मना स्वेन स्वरूपेण (प्रजाः अभिरक्षति), तथा (पिपर्त्ति) पालयति तथा (बहुधा विराजति) ॥

विभ्राडिति ज्वलतिकर्मणोभ्राजतेः । निघं० १ । १६ ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सोम्यमित्यत्र–सोममर्हति यः ४ । ४ । १३७ इत्यनुवर्त्य–मये च ४।४। १३८ इति यः ॥ अविह्रुतमिति नञ्विपूर्वस्य ह्वरतेः–ह्रु ह्वरेश्छन्दसि ७ । २ । २१ इति ह्रु इत्यादेशे रूपम् ॥ आयुरित्यन्ननाम निघं० २ । ७ ॥ त्मनेति–मन्त्रेष्वाऽऽङ्या-देरात्मनः ६ । ४ । १४१ इत्यनेनाद्याऽऽकारलोपे रूपम् ॥ यजुर्वेदे तु ३३ । ३० पुपोष । पुरुधा । इत्यन्तरम् । ऋग्वेदे १० । १७० । १ ऽपि यजुस्तुल्यः पाठः ॥ २ ॥ (६२८)

भाषार्थः–(विभ्राट्) प्रकाशमान सूर्यलोक (बृहत्) बहुत (सोम्यम्) सोमयुक्त (मधु) मधुर रस को (पिबतु) पीवे=खींचे (यः) जो सूर्य (यज्ञपतौ) यजमान के निमित्त (अविह्रुतम्) अकण्टक (आयुः) आयु वा अन्न का (दधत्) धारण करता हुवा (वातजूतः) वायु के चलाने वाला (त्मना) अपने आपे से (प्रजाः) प्रजाओं को (पिपर्त्ति) पालता है (अग्निरक्षति) सब ओर से रक्षा करता है और (बहुधा) बहुत सा (वि-राजति) प्रकाश करता है ॥

यजुः ३३ । ३० और ऋ० १० । १७० । १ का पाठभेद और अष्टाध्यायी ४ । ४ । १३७ ॥ ४ । ४ । १३८ ॥ ७ । २ । २१ ॥ ६ । ४ । १४१ निघण्टु १ । १६ ॥ २ । ७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥ (६२८)

अथ तृतीयायाः–कुत्साऋषयः । सूर्योदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ २ ३ १

द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥३॥(६२९)

पदपाठः–चित्रम् २ । देवानाम् ६ । उदगात् क्रि० । अनीकम् २ । चक्षुः १ । मित्रस्य, वरुणस्य, अग्नेः ६ । आप्राः क्रि० । द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम् २ । सूर्यः, आत्मा १ । जगतः, तस्थुषः ६ । च अ० ॥

अन्वितपदार्थः–(सूर्यः) प्रसिद्धः, परमात्मा वा (देवानाम्) ज्योतिर्गणानाम् (चित्रम) नानाविधम् (अनीकम्) समुदा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यम् (उदगात्) उल्लङ्घ्योदेति=सर्वोपरि प्रकाशते । तथा (मित्रस्य) प्राणस्य (वरुणस्य) अपानस्य (अग्नेः) प्रसिद्धस्य (चक्षुः) प्रकाशकः प्रसारकश्चास्ति। तथा (जगतः) जङ्गमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्य (च), (आत्मा) गन्ता व्यापकोऽसित । स हि (द्यावापृथिवी) द्यावाभूमी (अन्तरिक्षम्), चेति लोकत्रयम् (आप्राः) समन्तात् पिपर्त्ति ॥

सर्वस्य स्थावरजङ्गमस्य सूर्योजीवात्मेव जीवनहेतुरत आत्मेत्युक्तम् । उदिते हि सूर्ये मृतप्रायं जगत् पुनश्चेतनायुक्तं सदुपलभ्यते ॥ " चायनीयं देवानामुदगमदनीकम् " इत्यादि निरुक्त (१२ । १६) मपि द्रष्टव्यम् ॥ यजुर्वेदे ७ । ४२ ॥ १३ । ४६ ऽपि। ऋग्वेदे चा १ । ११५ । १ ऽपि ॥३॥ (६२९)

भाषार्थः-(सूर्यः) सूर्यलोक वा परमात्मा (देवानाम्) देवों=तारागणों वा ज्योतिर्गणों के (चित्रम्) विचित्र (अनीकम्) समूह को (उदगात्) लांघ कर उदय होता है अर्थात् सर्वोपरि प्रकाशमान है । तथा (मित्रस्य) प्राण (वरुणस्य) अपान और (अग्नेः) अग्नि का (चक्षुः) प्रकाशक प्रेरक है । तथा (जगतः) चलने वाले (च) और (तस्थुषः) स्थावर=न चलने वाले जगत् का (आत्मा) आत्मा है । वही (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्) द्युलोक भूलोक अन्तरिक्ष लोक इन तीनों को (आप्राः) सब ओर से पालित पोषित करता और प्रकाश से भरपूर करता है ॥

संपूर्ण स्थावर जङ्गम का आत्मा सूर्य को इस लिये कहा है कि जैसे जीवात्मा शरीरेन्द्रियों का जीवनहेतु है, वैसे ही सूर्य चराचर का जीवनहेतु है। सूर्य के उदय होते ही मृतसमान चराचर फिर चेतन हो जाते हैं ॥ निरुक्त १२ । १६ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ यजुः ७ । ४२ और १३ । ४६ में तथा ऋ० १ । ११५ । १ में भी ॥ ३ ॥ (६२९)

अथ चतुर्थ्याः-सार्पराज्ञी ऋषिः । सूर्योदेवता । गायत्री छन्दः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१र २र ३१२३ २१२ ३२

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।

३१२ ३१ २

पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥ (६३०)

पदपाठः–आ अ० । अयम्, गौः, पृश्निः १ । अक्रमीत्, असदत् क्रि० । मातरम् २ । पुरः अ० । पितरम् २ । च अ० । प्रयन् १ । स्वः अ० ॥

अन्वितपदार्थः–(अयम्) एषः (गौः) स्वकक्षायां गतिशीलः (पृश्निः) आदित्यलोकः (प्रयन्) स्वकक्षायां भ्राम्यन् सन् (असदत्) स्वकक्षायां तिष्ठति । तथा (मातरम्) भूमिम् (पितरम्) द्युलोकम् (स्वः) अन्तरिक्षलोकं (च) । (पुरः) स्वस्याऽग्रे (आ अक्रमीत्) आक्रामति लोकत्रयमवभासते स्वयं चैकत्रैव तिष्ठतीति भावः ॥

गौरादित्योभवति गमयति रसान्० निरु० २ । १४ पृश्निरादित्यो भवति० निरु० २ । १४ ॥ पुषादिद्युताद्यृलृदितः परस्मैपदेषु ३ । १ । ५५ इत्यङि–असदत् ॥ यजुर्वेदे ३ । ६ ऋग्वेदे चा १० । १८९ । १ ऽपि ॥ ४ ॥ (६३०)

भाषार्थः–(अयम्) यह (गौः) अपनी कक्षा में गमनशील वा रसों का चलाने वाला (पृश्निः) सूर्यलोक (प्रयन्) स्वस्थान में घूमता हुआ (असदत्) स्थित है । तथा (मातरम्) पृथिवी माता (पितरम्) द्युलोक पिता (च) और (स्वः) मध्यस्थ अन्तरिक्ष लोक को (पुरः) सामने (आअक्रमीत्) आक्रान्त करता है ॥

अर्थात् सूर्य अपने स्थान में स्थित होकर घूमता हुवा ही लोकत्रय को प्रकाशित करता है ॥ निरुक्त २ । १४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । यजुः ३ । ६ और ऋ० १० । १८९ । १ में भी ॥ ४ ॥ (६३०)

अथ पञ्चम्याः–ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

१ १ २ ३२उ ३ १ २ ३२

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२र ३१ २र

व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥ (६३१)

पदपाठः—अन्तः अ० । चरति क्रि० । रोचना १ । अस्य ६ । प्राणात् ५ । अपानती १ । व्यख्यत् क्रि० । महिषः १ । दिवम् २ ॥

अन्वितपदार्थः—(अस्य) सूर्यस्य (रोचना) रोचमाना दीप्तिः (अन्तः) शरीरमध्ये (प्राणात्) नाडीभिर्वायोरूर्ध्वं निर्गमनात् (अपानती) नाडीभिर्वायुमधो नयन्ती सती (चरति) वर्त्तते। यद्वा । अन्तः द्यावापृथिव्योर्मध्येऽस्य सूर्यस्य रोचमाना दीप्तिः प्राणात् उदयनात् अपानती अस्तमयं गच्छन्ती चरति। एवं (महिषः) पृथिव्यपेक्षया महान्सूर्यः (दिवम्) अन्तरिक्षम् (व्यख्यत्) प्रकाशयति ॥

मुख्यप्राणस्य प्राणनाद्याः पञ्च वृत्तयः—प्राणनम्, अपाननम्, उदाननम्, व्याननम्, समाननं चेति । तत्र सूर्यस्य प्रकाश एव प्राणस्य प्रेरकत्वात् स्थावरजङ्गमेषु प्राणनमपाननं च कारयति । शिष्टं सुगमम् ॥

अपानतीत्यत्र—अपपूर्वादनितेः लटःशतृशानचावप्र० ३ । २ । १२४ इत्यादिना शतरि, उगितश्च ४ । १ । ६ इति ङीपि, शतुरनुमोनद्यजादी ६ । ३ । १७३ इति नद्या उदात्तत्वम् ॥ रोचनेत्यत्र—अनुदात्तेतश्च हलादेः ३ । २ । १४९ इति युच् ॥ महिष इत्यत्र—अविमह्योष्टिषच् (उणा० १ । ४५) इति महेष्टिषच् । छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ३ । ४ । ६ इतिकालसामान्ये लुङि, अस्यतिवक्तीत्यादिना ३ । १ । ५२ च्लेरङ् ॥ महिष इति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

महन्नाम निघं० ३ । ३ महान्कस्मान्मानेनाऽन्याऊजहातीति शाकपूणिर्महनीयो भवतीति वा । निरु० ३ । १३ ॥ यजुर्वेदे ३ । ७ तथर्ग्वेदे १० । १८९ । २ ऽपि ॥ ५ ॥ (६३१)

भाषार्थः-(अस्य) इस सूर्य की (रोचना) चमक (अन्तः) शरीर के भीतर वा द्युलोक और भूलोक के बीच में (प्राणात्) वायु के ऊर्ध्व गमन से (अपानती) वायु का अधोगमन कराती हुई अथवा उदय से अस्त करती हुई (चरति) विचरती है । ऐसे (महिषः) पृथिवी से बड़ा सूर्य (दिवम्) अन्तरिक्ष को (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है ॥

मुख्य प्राण की प्राण अपान उदान समान व्यान नामक पांच ५ वृत्तियें हैं, उन में से प्राण को सूर्य की चमक प्रेरित करती है तब स्थावर जङ्गमों के शरीरों में वायु का नीचे ऊपर जाना आदि व्यवहार होता है । शेष स्पष्ट है ॥

अष्टाध्यायी ३ । २ । १२४ ॥ ४ । १ । ६ ॥ ६ । १ । १७३ ॥ ३ । २ । १४९ ॥ ३ । ४ । ६ ॥ ३ । १ । ५२ ॥ उणादि १ । ४५ ॥ निघण्टु ३ । ३ ॥ निरुक्त ३ । १३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ यजुः ३ । ७ ऋ० १० । १८९ । २ में भी ॥ ५ ॥ (६३१)

अथ षष्ठ्याः-ऋष्यादय उक्ताः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिꣳशद्धाम विराजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रतिवस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥ (६३२)

पदपाठः-त्रिंशद्धाम २ । विराजति क्रि० । वाक् १ । पतङ्गाय ४ । धीयते क्रि० । प्रतिवस्तोः, अह अ० । द्युभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः-(पतङ्गाय) सूर्याय (वाक्) वेदवाक् (धीयते) ध्रियते । सा चेत्थम् (अह) अहो ! (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिनम् (द्युभिः) दीप्तिभिः पतङ्गः सूर्यः (त्रिंशद्धाम) त्रिंशद्घटीपरिमितं दिनं यावत् (विराजति) विराजते प्रकाशते ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे २ । ३ । ५ इति त्रिंशद्रात्रमित्यत्र द्वितीया ॥ वस्तोरित्यहर्नाम निघं० १ । ९ ॥ द्युभिरिति–द्योतत इति सतः । निरु० १ । ६ ॥ अहइति च ह इति च विनिग्रहार्थौ पूर्वेण संप्रयुज्येते । अयमहेदं करोत्ययमिदं ह करिष्यतीति । निरु० १ । ५ ॥ यजुर्वेदे ३ । ८ ऋग्वेदे १० । १८९ । ३ ऽपि ॥ ६ ॥ (६३२)

भाषार्थः–(पतङ्गाय) सूर्य के लिये (वाक्) वेदवचन (धीयते) धारण किया जाता है कि (अह) अहो (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन (द्युभिः) किरणों से [सूर्य] (त्रिंशद्रात्र) ३० घटीपरिमित दिनपर्यन्त (विराजति) प्रकाशता है ॥

अष्टाध्यायी २ । ३ । ५ निघण्टु १ । ९ निरुक्त १ । ६ ॥ १ । ५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ यजुः ३ । ८ ऋ० १० । १८९ । ३ में भी ॥ ६ ॥ (६३२)

अथ सप्तम्याः–कावषः प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।

१ २ ३ १ २

सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥ (६३३)

पदपाठः–अप अ० । त्ये १ । तायवः १ । यथा अ० । नक्षत्रा १ । यन्ति क्रि० । अक्तुभिः ३ । सूराय, विश्वचक्षसे ४ ॥

अन्वितपदार्थः–(विश्वचक्षसे) सर्वस्य प्रकाशकाय (सूराय) सूर्याय सूर्यार्थं (यथा) येन प्रकारेण (नक्षत्रा) नक्षत्राणि तारकाः (अक्तुभिः) रात्रिभिः सह (अपयन्ति) अपगच्छन्ति तथैव (त्ये) ते (तायवः) तस्करा अप्यप गच्छन्ति ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अर्थात् यदि सूर्यो न स्यात् तर्हि सर्वदा रात्रिरेव स्यात् तस्कराश्च लुण्ठनं कुर्युर्लोकस्य । परमात्मा वा न स्यात्, तर्हि अज्ञानान्धकारः सर्वत्र स्यात् सर्वः सर्वेण लुण्ठनमवाप्नुयात्, वेदोपदेशमन्तरा धर्माऽधर्मज्ञानाऽप्रवृत्तेः॥

तायुरिति स्तेननाम निघं०३।२४ अक्तुरिति रात्रिनाम १। ७ नक्षत्राणि नक्षतेर्गतिकर्मणः इति सायणलिखितं निरुक्तम्॥ ऋग्वेदे १। ५०। २ऽपि ॥ ७ ॥ (६३३)

भाषार्थः-(विश्वचक्षसे) सब के प्रकाशक (सूराय) सूर्य के लिये (यथा) जैसे (नक्षत्रा) नक्षत्र=तारागण (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (अपयन्ति) भाग जाते हैं, ऐसे ही (त्ये) वे भी जोकि (तायवः) चोर हैं, भाग जाते हैं ॥

अर्थात् यदि सूर्य न हो तो सदा रात्रि रहे और तस्कर लोग संसार की लूट मार किया करें। अथवा परमात्मा न हो तो संसार में वेदोपदेश के अभाव से धर्माऽधर्म का ज्ञान प्रवृत्त न हो और ऐसा होने पर सब सब को लूटें खसोटें और बड़ी दुरवस्था हो जावे ॥ ऋ० १। ५०। २ में भी ॥ ७ ॥ (६३३)

अथाऽष्टम्याः-ऋष्यादिकमुक्तवत् ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।

१ २ ३ १ २

भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥ (६३४)

पदपाठः-अदृश्रन् क्रि०। अस्य ६। केतवः १। वि अ०। रश्मयः १। जनान् २। अनु अ०। भ्राजन्तः, अग्नयः १। यथा अ० ॥

अन्वितपदार्थः-(अस्य) सूर्यस्य (केतवः) प्रज्ञापकाः (रश्मयः) किरणाः (जनान्) प्राणिनः (अनु) लक्षीकृत्य (व्यदृश्रन्) विदृश्यन्ते (यथा), (भ्राजन्तः) प्रकाशमानाः (अग्नयः) पावका दृश्यन्त इति भावः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

केतुरिति प्रज्ञानाम निघं० ३ । ९ ॥ यजुर्वेदे ८ । ४० तथा ऋग्वेदे तु १ । ५० । ३ अदृश्रम् इति पाठः ॥ ८ ॥ (६३४)

भाषार्थः-(अस्य) इस सूर्य की (केतवः) प्रकाशक (रश्मयः) किरणें (जनान्) प्राणियों को (अनु) लक्ष्य करके (वि अदृश्रन्) विविधप्रकार से दीखती हैं (यथा) जैसे (भ्राजन्तः) दहकते हुवे (अग्नयः) अङ्गारे ॥

निरघटु ३ । ९ का प्रमाण और यजुः ८ । ४० तथा ऋ० १ । ५० । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥ (६३४)

अथ नवम्याः-अपि ऋष्यादय उक्ता एव ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
२ ३ १ २ ३ २
विश्वमाभासि रोचनम् ॥ १ ॥ (६३५)

पदपाठः-तरणिः, विश्वदर्शतः, ज्योतिष्कृत् १ । असि क्रि० । सूर्य सं० । विश्वम् २ । आभासि क्रि० । रोचनम् २ ॥

अन्वितपदार्थः-(सूर्य) आदित्य ! त्वं (तरणिः) तमसस्तारयिता (विश्वदर्शतः) सर्वस्य दर्शकः (ज्योतिष्कृत्) प्रकाशकरः (असि) भवसि (विश्वम्) सर्वम् (रोचनम्) प्रकाशमानम् (आभासि) प्रकाशयसि ॥

"रात्रौ हि अस्तमये चन्द्रादिषु सूर्यकिरणाः प्रतिफलिता अतोन्धकारं निवारयन्ति । यथा द्वारस्य दर्पणोपरि निपतिताः सूर्यरश्मयो गृहान्तर्वर्ति तमो निवारयन्ति तद्वदित्यर्थः " इति सायणभाष्यात् सायणसमयेऽपि चन्द्रादीनां सूर्येण प्रकाश्यत्वं प्रसिद्धमासीत्, इति सिध्यति । न चैतत्कथनं सत्यं यदाऽऽधुनिकैर्विदेशीयैरेव विज्ञैरिदमाविष्कृतमिति ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यद्वा-(सूर्य) हे अन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरक ! परमात्मन् ! (तरणिः) संसाराब्धेस्तारयितासि । यस्मात्त्वं (विश्वदर्शतः) सर्वैर्मुमुक्षुभिर्दर्शतो द्रष्टव्यः साक्षात्कर्त्तव्य इत्यर्थः (ज्योतिष्कृत्) ज्योतिषां सूर्यादीनां कर्त्ता (असि) भवसि । चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायतेत्यादि [यजु० ३१।१२] श्रुतेः। (विश्वम्) सर्वं दृश्यजातम् (रोचनम्) रोचमानम् यथा स्यात्तथा (आभासि) प्रकाशयसि । तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति इति मुण्डकोपनिषद्वचनात् २ । १० तथैव च श्वेताश्वतरोपनिषद्वचसश्च ६ । १४ ॥ अर्त्तिसृधृधम्यम्यश्यवितॄभ्योनिः । (उणा० २ । १०२) इति तरतेरनि प्रत्यये तरणिः ॥ भृमृदृशीत्यादिना (उणा० ३।११० दृशेरतचि दर्शतः ॥ यजुर्वेदे ३३ । ३६ ॥ ऋग्वेदे १ । ५० । ४ चाऽपि ॥ ९ ॥ (६३५)

भाषार्थः-(सूर्य) हे सूर्य ! तू (तरणिः) अन्धकारादि से तिराने वाला है (विश्वदर्शतः) क्योंकि सब का दिखाने वाला है । क्योंकि (ज्योतिष्कृत्) प्रकाश करने वाला (असि) है, (विश्वम्) सब (रोचनम्) चमकते पदार्थ को (आभासि) तू ही चमकाता है ॥

इस पर सायणाचार्य ने भी लिखा है कि " रात्रि में सूर्यास्त होने पर चन्द्रादि पर सूर्य की किरणें गिर कर लौटतीं और अन्धकार को निवृत्त करती हैं । जैसे गृह के द्वार पर दर्पण में सूर्य की किरणें पड़तीं और वहां से लौट कर गृह के भीतर का अन्धकार हटाती हैं, तद्वत् " इस से जाना जाता है कि सूर्य के प्रकाश से चन्द्रादि का प्रकाशित होना विदेशीय आधुनिक विद्वानों का नवीन आविष्कार (ईजाद) नहीं है, किन्तु वैदिक विज्ञान है और सायणाचार्य के समय तक लोग इस को जानते रहे ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यद्वा-हे (सूर्य) अन्तर्यामी होने से सब के प्रेरक! परमात्मन्! (तरणिः) आप संसार समुद्र से तिराने वाले और (विश्वदर्शतः) सब मुमुक्षुओं को देखने=साक्षात् करने योग्य और (ज्योतिष्कृत्) सूर्य चन्द्रादि ज्योतियों के बनाने वाले (असि) हैं॥ यजुः ३१। १२ में भी लिखा है कि सूर्यचन्द्रादि को परमपुरुष ने उत्पन्न किया। (विश्वम्) सब (रोचनम्) प्रकाशमान जगत् को (आभासि) आप ही प्रकाशित करते हैं। जैसा कि मुण्डकोपनिषद् २। १० और श्वेताश्वतरोपनिषद् ६। १४ में कहा है कि "उसी के प्रकाश से सब चमकते हैं" इत्यादि॥ सायणभाष्य, यजुः ३१। १३, मुण्डक २। १०, श्वेताश्व० ६। १४, उणादि २। १०२॥ ३। ११० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ यजुः ३३। ३६ और ऋ० १। ५०। ४ में भी॥ ९॥ (६३५)

अथ दशम्याः-अपि ऋष्यादय उक्तवत्॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्।
३ २उ ३क ३ २
प्रत्यङ् विश्वꣳ स्वर्दृशे॥ १०॥ (६३६)

पदपाठः-प्रत्यङ् १। देवानाम् ६। विशः २। प्रत्यङ्। उदेषि क्रि०। मानुषान् २। प्रत्यङ्। विश्वम् २। स्वः अ०। दृशे ४॥

अन्वितपदार्थः-हे सूर्य! वा परमात्मन्! [पूर्वतोऽनुवर्त्य] त्वम् (दृशे) दर्शयितुं वा द्रष्टुं (देवानां विशः) मरुन्नामकान् देवान् [मरुतो वै देवानां विश इति श्रुत्यन्तरात्, इतिसायणः] (प्रत्यङ् उदेषि) अभिमुखमुदेषि। तथा (मानुषान्) मनुष्यान् (प्रत्यङ्) समक्षीकृत्योदेषि। तथा (विश्वम्) समस्तम् (स्वः) द्युलोकमपि (प्रत्यङ्) प्रत्यङ् उदेषि॥

देवानां विशो मरुतोऽन्तरिक्षलोकस्थाः, मनुष्याः पृथिवीलोकस्थाः, ये च द्युलोकस्थाः, तान्सर्वान् लोकत्रयवर्त्ति-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नोऽपि सर्वत्र सूर्यः परमात्मा च प्रत्यङ् एवोदेति, न क्वचित् तिर्यक् प्रतीयते । [तस्मात्सर्वएव मन्यन्ते मां प्रत्युदगात् इति] इति सायणः ॥ ऋग्वेदे १ । ५० । ५ ऽपि ॥१०॥ (६३६)

भाषार्थः—सूर्य ! वा परमात्मन् ! [पूर्वमन्त्र से अनुवृत्ति लेकर] आप (दृशे) सब को सब कुछ दिखाने वा देखने के लिये (देवानां विशः) देवतों की प्रजा अर्थात् मरुत=वायु के स्थान अन्तरिक्षलोकस्थों के (प्रत्यङ् उदेषि) सामने उदय होते वा वर्त्तमान रहते हैं तथा (मानुषान्) मनुष्यलोक=पृथिवी लोकस्थों के भी (प्रत्यङ्) सामने वर्त्तमान होते हैं और (विश्वम्) समस्त (स्वः) द्युलोकस्थों के भी (प्रत्यङ्) सामने हैं ॥

अर्थात् सूर्य सदा सब के सामने ही उदय होता है, सायणाचार्य भी कहते हैं कि इसी से सब कोई सूर्य को यह जानता है कि मेरे सामने उदित हुवा है ॥ तथा परमात्मा भी तीनों लोकों की प्रजा के सामने हैं, कोई उस से छिपाकर कुछ नहीं कर सक्ता ॥ ऋ० १ । ५० । ५ में भी ॥ १० ॥ (६३६)

अथैकादश्याः—अपि ऋषिदेवताछन्दांस्युक्तानि वेद्यानि ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।

१ २ ३ १ २

त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥ (६३७)

पदपाठः—येन ३ । पावक सं० । चक्षसा ३ । भुरण्यन्तम्, जनान् २ । अनु अ० । त्वम् १ । वरुण सं० । पश्यसि क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(पावक) सर्वस्य शोधक ! (वरुण) वरणीय ! वाऽनिष्टनिवारक ! सूर्य ! वा परमात्मन् ! (जनान्) प्राणिनः (भुरण्यन्तम्) धारयन्तं पोषयन्तंवा इमं लोकत्रयसमूहम् (येन चक्षसा) प्रकाशेन (अनु) क्रमेण (पश्यसि) प्रकाशयसि तं प्रकाशं स्तुम इति वाक्यशेषः । यद्वा—उत्तरस्यामृचि उदेषीति सम्बन्धोऽनुसन्धेयः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तथा च यास्कः—वरुणो व्याख्यातः तस्यैषा भवति—येना पावक चक्षसा०००भुरण्युरिति क्षिप्रनाम भुरण्युः शकुनिर्भूरिमध्वानं नयति स्वर्गस्य लोकस्यापि वोढा तत्संपाती भुरण्युरनेन पावकख्यानेन भुरण्यन्तं जनाँ अनु त्वं वरुण पश्यसि। तत्ते वयं स्तुम इति वाक्यशेषोऽपि वोत्तरस्याम् ॥२२॥ येना पावक चक्षा०००विद्यामेषि रजस्०००व्येषि द्यां रजश्च पृथु महान्तं लोकमहानि च मिमानोऽक्तुभीरात्रिभिः सह पश्यन् जन्मानि जातानि सूर्य। अपि वा पूर्वस्याम् ॥ २३ ॥ येना पावक०००प्रत्यङ् देवानां विशः०००प्रत्यङ्ङिदं सर्वमुदेषि प्रत्यङ्ङिदं सर्वमभिविपश्यसीति। अपि वैतस्यामेव ॥२४॥ येना पावक ०००तेन नो जनानभिविपश्यसि ॥ (निरु० १२ । २५) यजुर्वेदे ३३ । ३२ ऋग्वेदे १ । ५० । ६ चाऽपि ॥ ११ ॥ (६३७)

भाषार्थः—(पावक) सब के शोधक ! (वरुण) वरणीय वा अनिष्ट के रोकने वाले ! सूर्य ! वा परमात्मन् ! (जनान्) प्राणियों का (भुरण्यन्तम्) धारण वा पोषण करते हुवे इस लोकत्रय को (येन) जिस (चक्षसा) प्रकाश से (अनु) क्रमपूर्वक (पश्यसि) आप प्रकाशित करते वा देखते हैं [उस प्रकाश की हम प्रशंसा करते हैं] यह अध्याहारवाक्य जानिये। यद्वा—अगली ऋचा में "उदेषि" क्रिया से अन्वय करके [उस प्रकाश से आप उदय को प्राप्त होते हैं] यह अर्थ जानिये ॥ यास्क मुनि ने निरुक्त में इस मन्त्र के अगले पिछले दोनों मन्त्रों को मिला कर तीनों की व्याख्या जो कुछ की है वह निरुक्त अ० १२ के २२ । २३ । २४ । २५ खण्डों के प्रमाण संस्कृतभाष्य में संपूर्ण उद्धृत हैं, वहीं देखिये। यजु० ३३ । ३२ और ऋ० १ । ५० । ६ में भी ॥ ११ ॥ (६३७)

अथ द्वादश्याः—ऋष्यादय उक्ता एव ॥

१२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२ ३ १ २

पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ १२ ॥ (६३८)

पदपाठः—उत अ० । द्याम् २ । एषि क्रि० । रजः, पृथु २ । अहा २ । मिमानः १ । अक्तुभिः ३ । पश्यन् १ । जन्मानि २ । सूर्य सं० ॥

अन्वितपदार्थः—(सूर्य) आदित्य ! वा परमात्मन् ! त्वम् (अहा) अहानि (अक्तुभिः) रात्रिभिः (मिमानः) उन्मानयन्, तथा (जन्मानि) जननवन्ति भूतजातानि (पश्यन्), वा दर्शयन् (पृथु) विस्तीर्णम् (द्याम्) आकाशम् (रजः) लोकम् (उद् एषि) उदेषि ॥

अहोरात्रविभागः सूर्येणैव, परमात्मना वा क्रियते । जगत्त्रयवर्त्तिप्राणिवर्गस्य दर्शनसाहाय्यं चेति भावः ॥

लोका रजांस्युच्यन्ते निरु० ४ । १९ ॥ ऋग्वेदे तु १ । ५० । ७ विद्यामेषि इत्यन्तरं, तदनुसारि च यास्केनेत्थं व्याख्यातम्—"व्येषि द्यां रजश्च पृथु महान्तं लोकमहानि च मिमानोक्तुभीरात्रिभिः सह पश्यञ्जन्मानि जातानि सूर्य । निरु० १२ । २३ ॥ १२ ॥ (६३८)

भाषार्थः—(सूर्य) सूर्य ! वा परमात्मन् ! तू (अहा) दिनों को (अक्तुभिः) रात्रियों से (मिमानः) मापता हुआ और (जन्मानि) प्राणियों को (पश्यन्) दिखलाता वा देखता हुवा (पृथु) विस्तृत (द्याम्) आकाश (रजः) लोक को (उदेषि) उदय वा प्राप्त हो रहा है ॥

दिन रात्रि का विभाग स्पष्ट सूर्याधीन वा परमात्माधीन तो है ही । और तीन लोक के रहने वाले प्रत्येक प्राणी को देखने की सहायता भी वही ही देता है ॥

निरुक्त १२ । २३ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ५० । ७ में भी ॥ १२ ॥ (६३८)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ त्रयोदश्याः-ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ २ ३ कर्र

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।

१ २ ३ १ २

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥ (६३९)

पदपाठः-अयुक्त क्रि० । सप्त, शुन्ध्युवः २ । सूरः १ । रथस्य ६ । नप्त्यः २ । ताभिः ३ । याति क्रि० । स्वयुक्तिभिः ३ ॥

अन्वितपदार्थः-(सूरः) सूर्यः (रथस्य) रमणीयस्य स्वस्वरूपस्य (नप्त्यः) न पातयित्रीः (शुन्ध्युवः) शोधिकाः (सप्त) सप्तवर्णाः गभस्तीः (अयुक्त) युनक्ति (ताभिः, स्वयुक्तिभिः) स्वेन युक्ताभिर्गभस्तिभिः (याति) स्वकक्षायां चलति ॥

शुन्ध्युवः शुन्ध्युरादित्यो भवति शोधनात् निरु० ४।१६ ॥ सप्त सृप्तासंख्या सप्तादित्यरश्मय इति वदन्ति । निरु० ४। २६ ॥ सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः सप्त होमाः । मुण्डको० २ । १ ॥ ऋग्वेदे १ । ५० । ९ ऽपि ॥ १३ ॥ (६३९)

भाषार्थः(सूरः) सूर्य (रथस्य) अपने रमणीयस्वरूप के (नप्त्यः) न गिराने वाली (शुन्ध्युवः) शुद्ध करने वाली (सप्त) सात ७ रङ्ग की किरणों को (अयुक्त) जोड़ता है और (ताभिः) उन (स्वयुक्तिभिः) अपनी जोड़ी हुई किरणों से (याति) अपने स्थान में घूमता है ॥

शुद्ध करने से सूर्य और उस की किरणों को शुन्ध्यु कहते हैं । निरुक्त ४। १६ ॥ ४। २६ और मुण्डकोपनिषद् २ । १ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ५० । ९ में भी ॥ १३ ॥ (६३९)

अथ चतुर्दश्याः-ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

३ १ २ ३ २ ३ २३ १२

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

३ १ २
शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥ (६४०)

पदपाठः-सप्त १ । त्वा २ । हरितः १ । रथे ७ । वहन्ति क्रि० । देव, सूर्य सं० । शोचिष्केशम् २ । विचक्षण सं० ॥

अन्वितपदार्थः-(देव) दिव्यगुण ! (विचक्षण) सर्वस्य प्रकाशयितः ! (सूर्य) आदित्य ! (शोचिष्केशम्) तेजः-केशम् (त्वा) त्वाम् (सप्त हरितः) हारका रश्मयोऽश्वाः (रथे) रमणीये स्वरूपे (वहन्ति) नयन्ति ॥

अर्थात् स्थिरोऽपि सूर्यलोकः सप्तवर्णैरश्मिभिरस्मानन्यांश्च लोकान्प्राप्तइवोपलभ्यते ॥

हरित आदित्यस्य इति निघं० १ । १५ ॥ अश्वः कस्मादश्नुतेऽध्वानं महाशनो भवतीति वा । निरु० २ । २७ ॥ सप्त ऋषयः इति रश्मिनाम निघं १ । ५ ॥ रश्मिर्यमनात् निरु० २ । १५ ॥ शोचिरिति ज्वलतोनाम निघं० १ । १७ ॥ केशी केशा रश्मयस्तैस्तद्वान्भवति००० केशीदं सर्वमिदमभिविपश्यति, केशीदं ज्योतिरुच्यते इत्यादित्यमाह निरु० १२ । २५ ॥ सप्तैतानादित्यरश्मीनयमादित्यो गिरति० इति निरुक्तपरिशिष्टे २ । २१ ॥ ऋग्वेदे १ । ५० । ८ऽपि ॥ १४ ॥ (६४०)

* इति षष्ठाऽध्याये पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ *

इति-चतुर्थमारण्यं पर्वाऽऽरण्यं काण्डं वा ॥

इति—

श्रीमत्कण्ववंशाऽवतंस—पण्डित—हज़ारीलालस्वामिसूनुना,

हस्तिनापुरपार्श्ववर्त्ति—परीक्षितगढ़निवासिना,

तुलसीराम स्वामिना

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कृते सामवेदभाष्ये षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

इति-

सामवेदसंहितायां छन्दआर्चिकोनाम पूर्वार्धः समाप्तः ॥१॥

भाषार्थः-(देव) दिव्यगुणयुक्त ! (विचक्षण) सब के प्रकाशक ! (सूर्य) सूर्य ! (शोचिष्केशम्) तेज रूपी केशों वाले (त्वा) तुझ को (सप्त) सात ७ (हरितः) हारक किरणें (वहन्ति) प्राणियों तक पहुंचाती हैं ॥

यद्यपि सूर्य एकत्र स्थित है, परन्तु अपनी ७ रङ्ग की किरणों से हमें तथा अन्य लोकों को प्राप्त समझा जाता है ॥

निघण्टु १ । १५ ॥ १ । ५ ॥ १ । १७ निरुक्त २ । २७ ॥ २ । १५ ॥ १२ । २५ निरुक्तपरिशिष्ट २ । २१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ५० । ८ में भी ॥ १४ ॥ (६४०)

* यह छठे अध्याय में पांचवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ५ ॥ *

यह-

चौथा आरण्य काण्ड वा आरण्य पर्व समाप्त हुआ ॥

और यह-

श्रीमत्करववंशावतंस पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र,

परीक्षितगढ़ (ज़िला-मेरठ) निवासी,

तुलसीराम स्वामी

के रचित सामवेदभाष्य में छठा अध्याय समाप्त हुवा ॥ ६ ॥

तथा-

सामवेदसंहिता का छन्दआर्चिक नाम पूर्वार्ध समाप्त हुआ ॥ १ ॥

—:०*०:—

ओं शन्नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओ३म्

अथ महानाम्न्यार्चिकः

एता महानाम्न्योन छन्दआर्चिकान्तर्गता नाप्युत्तरार्चिकान्तर्भूता अपि तु छन्दआर्चिकान्ते उत्तरार्चिकादौ च मध्ये पृथक् महानाम्न्यार्चिकाङ्गभूता उपलभ्यन्ते। एवमारण्यगानेऽपि समाप्तेऽनन्तरं महानाम्नीसामगानपाठः सर्वपुस्तकेषूपलभ्यते। सायणभाष्ये च नैवासां परिशिष्टत्वमुक्तं, परं न जाने श्रीसत्यव्रतसामगेन केन हेतुनासां परिशिष्टत्वमभ्यनुज्ञातम्?

ऐन्द्र्य एता महानाम्न्यः शक्वर्यो वा विकर्षिताः।
पञ्चभिः सहिता अन्ते पुरीषपदनामभिः ॥ १ ॥
एताः प्रकृतितस्तिस्र उपसर्गैस्तु संयुताः।
नवसंख्या इति प्राहुर्वेदाध्ययनशालिनः ॥ २ ॥
ऐतरेयब्राह्मणेऽपि शस्त्रे षोडशिनामके।
तिस्रः प्रोक्ता महानाम्न्यस्त्रैलोक्यात्मविवर्णनात् ॥३॥

नन्वेताः शक्वर्यश्चेत् षट्पञ्चाश (५६) दक्षराः स्युः ? चतुर्विंशत्यादिचतुरुत्तरमिति (पिङ्गले) गायत्रीप्रभृतीनामतिधृत्यन्तानां छन्दसामस्माभिर्भाष्यारम्भे (११) पृष्ठे दर्शितानां मध्ये षट्पञ्चाशदक्षरा शक्वरी प्रोक्ता। एता ऋचस्तु शक्वर्या अधिकाक्षराः सन्ति। तस्मादासामुपसर्गाक्षरैराधिक्यं न तु स्वत इति ज्ञायते सायणभाष्यादपि। अथ के उपसर्गाः के च शाक्वराः पादा इत्युच्यते—

प्रथमायाम्—"विदामघवन्विदा०" इति द्विपदर्गुपसर्गः। ततः "शिक्षाशचीनांपते" इत्यादास्त्रयोऽष्टाक्षराः शाक्वराः पादाः। ततः "स्वर्णांशुः" इति पञ्चाक्षरः पादः। अत्रा-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

क्षरविश्लेषेण पञ्चाक्षरत्वं ज्ञातव्यम् । " प्रचेतनप्रचेतय " इत्यष्टाक्षरः पादः । एतौ द्वावुपर्गसंज्ञकौ । "इन्द्र द्युम्नाय न इषे" इति पादोऽष्टाक्षरः शाक्करः । "एवाहिशक्रः" इत्यादास्त्रयः शाक्कराः पादाः । "आयाहि पिब मत्स्व" इत्यष्टाक्षरः पाद उपसर्गः ॥

द्वितीयायाम्–" विदारायेसुवीर्यम्० " इति द्विपदोपसर्गः । "मंहिष्ठवज्रिन्नृजुसे" इत्यादिकास्त्रयोष्टाक्षराः शाक्कराः पादाः । ततः "अंशुर्नशोचिः" इति पञ्चाक्षरः पादः । " चिकित्वो अभि नोनय" इति च पादः । एतौ द्वावुपसर्गाख्यौ । "इन्द्रोविदे तमु स्तुहि" इत्यष्टाक्षरः शाक्करः पादः । "ईशे हि शक्रः" इति पञ्चाक्षरः पाद उपसर्गः । "तमूतये हवामहे " इत्यादास्त्रयोऽष्टाक्षराः शाक्कराः पादाः । " क्रतुश्छन्दऋतं बृहत् " इत्येषपाद उपसर्गः ॥

अथ तृतीयायाम्–" इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे० " इति द्विपदोपसर्गः । " सनःसवर्षदतिद्विषः " इत्यादास्त्रयोष्टाक्षराः शाक्करा पादाः । "अंशुर्मदाय" इति पञ्चाक्षरः पादः । " सुम्नआधेहि नो वसो " इत्यष्टाक्षरः पादः । इति द्वावुपसर्गाख्यौ । " पूर्त्तिः शविष्ठ शस्यते " इति पादोष्टाक्षरः शाक्करः । "वशी हि शक्रः" इति पञ्चाक्षरउपसर्गः । " नूनं तन्नव्यं सन्न्यसे " इत्यादास्त्रयोष्टाक्षराः शाक्कराः पादाः । "शूरो यो गोषु गच्छति०" इति द्वौ पादावुपसर्गौ ॥

एवं प्रथमायां सप्त शाक्कराः पादाः । पञ्चोपसर्गाः । एवमेव द्वितीयायां, तृतीयायां तु सप्त शाक्करपादाः षडुपसर्गाः । इत्युक्तार्थो निदानकल्पे सूत्रादिकं सम्यगालोचयद्भिः पूर्वाचार्यैः श्लोकद्वये संगृह्य दर्शितः । स यथा—

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रथमं द्विपदा त्रीणि शाक्कराणि पदान्यतः ।
पञ्चार्णाऽष्टाक्षरौ चोपसर्गावेकश्च शाक्करः ॥१॥
पञ्चार्णउपसर्गोथ त्रयस्ते बहिरन्तिमाः ।
इयमाद्या, द्वितीयैवं, तृतीया पुनरन्तिमः ।
अधिकोऽष्टाक्षरः पादउपसर्गइति स्थितिः ॥२॥

अत्र सर्वत्रोपसर्गान्परित्यज्य केवलशाक्करपादगताक्षर संख्यायां, षट्पञ्चाशदक्षराएयेवाऽवशिष्यन्ते ॥

एतासु गीयते साम यत्तच्छाक्करमुच्यते ।
तत्पञ्चमेह्नि पृष्ठेषु होतुः पृष्ठं विधीयते ॥१॥
उपसर्गैस्संयुतानामासामिन्द्रोधिदेवता ।
माध्यंदिनं यत्सवनं सर्वमैन्द्रमिति स्थितम् ॥२॥

आश्वलायनेन त्वत्र स्वब्राह्मणमनुसरता, कस्मिंद्विशेषोऽनुष्टुप् गायत्री संपादनादिर्दर्शितः । स यथा–

" प्रचेतन प्रचेतयाऽहि पिब मत्स्व ।
क्रतुश्छन्दऋतं बृहत सुम्नआधेहि नोवसो" । इत्यनुष्टुप् ।
" चिकित्वो अभि नो नय शूरो यो गोषु गच्छति ।
सखा सुशेवो अद्वयुः" इति गायत्री ।

एवं यतस्ततः पदानि संगृह्य याज्ञिकप्रयोगसौकर्यायैष कल्पः । अस्माभिस्तु अर्थसौकर्याय पूर्वोक्तप्रकारेण छन्दोनुसंधानं विहितम् ॥

भाषार्थः–अब " महानाम्न्यार्चिक " का आरम्भ किया जाता है । ये महानाम्नी ऋचायें न तो पिछले छन्दआर्चिक में अन्तर्गत हैं और न अगले उत्तरार्चिक में गिनी जाती हैं । किन्तु छन्दआर्चिक के अन्त और उत्तरार्चिक के आदि में बीचला एक महानाम्न्यार्चिक नाम भिन्न ही तीसरा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आर्चिक है। इसी प्रकार आरण्यगान समाप्त होने पर ही महानाम्नी ऋचों का सामगान पाठ गानग्रन्थ में भी सब पुस्तकों में पाया जाता है और सायणभाष्य भी ऐसा ही है। परन्तु न जाने श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी ने किस कारण इस को परिशिष्ट समझा है?

भोकार्थ-ये महानाम्नी एक प्रकार से शक्करी छन्द की ऋचा हैं, जिन का इन्द्र देवता है और जिन के अन्त में पुरीष पद नाम से प्रसिद्ध ५ पद हैं ॥ १ ॥ ये मूल में तीन ३ ऋचा हैं परन्तु उपसर्गों के सहित वेदपाठी लोग इन्हें ९ नव करके पढ़ते हैं ॥ २ ॥ ऐतरेय ब्राह्मण षोडशी शस्त्र में भी तीन ३ ही महानाम्नी कही हैं, त्रैलोक्यात्मा के विशेष वर्णन से ॥ ३ ॥

अब प्रश्न यह है कि यदि ये शक्करी छन्द की ऋचा हैं तो इन में छप्पन २ अक्षर होने चाहियें। क्योंकि चतुर्विंशति २४ अक्षरों से लेकर चार २ अक्षर बढ़ाते हुवे जो पिङ्गलानुसार गायत्री से अतिधृति पर्यन्त २१ छन्द हम ने भूमिका भाष्यारम्भ पृष्ठ (११) में लिखे हैं, तदनुसार ५६ अक्षर की शक्करी होती है। परन्तु इन महानाम्नियों में तो ५६ से अधिक अक्षर पाये जाते हैं?

उत्तर यह है कि स्वतः तो इन में भी ५६ ही अक्षर हैं। परन्तु बीच २ में "उपसर्ग" नामक पाद मिल रहे हैं, जिन से अधिक अक्षर जान पड़ते हैं। यही बात सायणाचार्य ने भी स्वीकार की है॥

अब प्रश्न यह है कि बताओ कौन २ से शक्करी के पाद हैं? और कौन कौन से उपसर्ग हैं?

उत्तर-प्रथम ऋचा में (विदामघवन्विदा०) इत्यादि द्विपदा ऋचा उपसर्ग है। फिर (शिक्षा शचीनां पते) इत्यादि आठ २ अक्षरों के तीन शक्करी के पाद हैं। फिर (स्वर्णशुः) यह पांच अक्षर का पाद है [यहां अक्षर=व्यञ्जनों को पृथक् २ करके पञ्चाक्षर माने गये हैं] और (प्रचेतन प्रचेतय) यह आठ अक्षर का पाद, ये दो उपसर्ग हैं। (इन्द्र द्युम्नाय न इषे) यह आठ अक्षरों का शक्करी का पाद है। (एवाहि शक्रः) इत्यादि तीन शक्करी के पाद हैं। (आयाहि पिब मत्स्व) यह आठ अक्षर का पाद उपसर्ग है॥

दूसरी महानाम्नी में-(विदा राये सुवीर्यम्०) इत्यादि द्विपदा उपसर्ग है। (मंहिष्ठ वज्रिन्नृजुषे) इत्यादि तीन पाद आठ २ अक्षरों वाले शक्करी के हैं। फिर (अंशुर्न शोचिः) यह पांच अक्षर का पाद और (चिकित्वो अभि नोनय) यह पाद, ये दोनों उपसर्ग हैं। (इन्द्रो विदे तमु स्तुहि) यह

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आठ अक्षर का शाक्कर पाद है। (ईशे हि शक्रः) यह पांच अक्षरों का उपसर्ग पाद है। (तमूतये हवामहे) इत्यादि आठ २ अक्षरों के तीन पाद शाक्कर हैं। (ऋतुश्छन्दऋतं बृहत्) यह पाद उपसर्ग है॥

तीसरी में-(इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे०) इत्यादि द्विपदा उपसर्ग है। (स नः स्वर्षदति द्विषः) इत्यादि आठ २ अक्षरों के ३ तीन शाक्कर पाद हैं। (अंशुर्मदाय) यह पांच अक्षरों का पाद, तथा (बृहन्नाधेहि नो वसो) यह आठ अक्षर का पाद, ये दो उपसर्ग हैं। (पूर्त्तिः श्रविष्ठ श्रस्यसे) यह आठ अक्षरों का शाक्कर पाद है। (वशी हि शक्रः) यह पांच अक्षरों का उपसर्ग है। (नूनं तन्नश्चयं संन्यसे) इत्यादि आठ २ अक्षरों के तीन पाद शाक्कर हैं। (शूरो यो गोषु गच्छति०) इत्यादि दो उपसर्ग हैं॥

इस प्रकार पहिली महानाम्नी में आठ २ अक्षरों के ७ सात शक्करी के पाद होकर ५६ अक्षरों का शक्करी छन्द हुवा, शेष पांच पाद उपसर्ग हैं। ऐसे ही दूसरी में भी। तीसरी में सात शक्करी के पाद और छः उपसर्ग हैं॥

इसी तात्पर्य को निदानकल्प में सूत्रादि को भले प्रकार से विचारने वाले पूर्वाचार्यों ने दो श्लोकों में संग्रह करके दिखलाया है। जैसा कि- (देखो श्लोक संस्कृत भाष्य पृष्ठ ८३३ पं० १ में)॥

इस प्रकार इन तीनों में उपसर्गाऽक्षरों को छोड़ कर प्रत्येक में शाक्करी छन्द के आठ २ अक्षरों के सात २ पादों से ५६ छप्पन २ अक्षर ही बचते हैं, जितना कि १ एक शक्करी छन्द होता है॥

श्लोकार्थ-इन महानाम्नियों में जो साम गाया जाता है वह भी शाक्कर साम ही कहा जाता है। वह (यज्ञ के) पञ्चम दिन में पृष्ठों में होता का पृष्ठ विधान किया गया है॥ १॥ इन उपसर्गसहितों का इन्द्र देवता है। (यज्ञ का) माध्यंदिन जो सवन है वह सब इन्द्र देवता वाला है। यह मर्यादा है॥ २॥

परन्तु आश्वलायन ने अपने ब्राह्मण के अनुसार कोई एक अनुष्टुप् और गायत्री का सम्पादनादि दिखाया है। जैसा कि " प्रचेतन प्रचे० " इत्यादि (देखो पूरे श्लोक संस्कृत भाष्य पृष्ठ ८३३ पं० १४ में) अनुष्टुप् और " चिकित्वो० " इत्यादि गायत्री॥ इस प्रकार जहां तहां के पद छोड़ कर उस ने यज्ञसम्बन्धी प्रयोग की सुगमता के लिये कल्पना की हैं। और हमने मूल का अर्थ

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

समझने की सुगमता के विचार से पूर्वोक्त छन्द का निश्चय किया है ॥

अथ प्रथमास्तिस्रः सर्वासां प्रजापतिर्ऋषिः ॥

३ १ २ १ २ ३ १र २र ३ १ २ १ २

विदा मघवन्विदा गातुमनुशꣳ सिषोदिशः । शिक्षा शचीनां पते

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

पूर्वीणां पुरूवसो ॥ १ ॥ (६४१) आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वा-

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ऽ३र्णाꣳ शुः । प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥२॥ (६४२)

३ २उ ३ २ ३ १र २र १ २ ३ २ ३ १ २

एवाहि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः । शविष्ठ वज्रिन्नृजसे मꣳहिष्ठ

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

वज्रिन्नृजस आयाहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥ (६४३)

पदपाठः=विदाः क्रि० । मघवन् सं० । विदाः । गातुम् २ । अनुशंसिषः क्रि० । दिशः २ । शिक्ष क्रि० । शचीनाम् ६ । पते सं० । पूर्वीणाम् ६ । पुरूवसो सं० ॥ १ ॥ आभिः ३ । त्वम् १ । अभिष्टिभिः ३ । स्वः, न अ० । अंशुः १ । प्रचेतन सं० । प्रचेतय क्रि० । इन्द्र सं० । द्युम्नाय ४ । नः ४ । इषे ४ ॥२॥ एव, हि अ० । शक्रः १ । राये ४ । वाजाय ४ । वज्रिवः सं० । शविष्ठः, वज्रिन् सं० । ऋजुसे क्रि० । मंहिष्ठ सं० । वज्रिन् । ऋजुसे । आयाहि, पिब, मत्स्व क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः-तत्र तावदृक्षु द्विपदामुपसर्गमाह-(मघवन्) मखवन् ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (विदाः) त्वं सर्वं वेत्सि (गातुम्) पृथिवीं यजमानस्योपासकस्य गन्तव्यं देशम् (विदाः) जानासि । अतः (दिशः) मार्गान् (अनुशंसिषः) अनुशंसोपदिश बोधयेति यावत् । अथ शाक्करभागमाह-(पुरूवसो) पुरु प्रभूतं वसु विद्यादि धनमस्य तादृश ! (पूर्वीणाम्) सनातनीनाम् (शचीनाम्) प्रज्ञानां (पते) स्वामिन् ! (आभिः), (अभिष्टिभिः) अभ्येषणाभिः प्रार्थनाभिरस्मदीयाभिः स्तुतिभिः (त्वम्), (शिक्ष)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

देहि विद्मादिधनमिति शेषः । पुरूवसो इति विशेषणसामर्थ्याद्वसूनीति कर्मोपलभ्यते । अथोपसर्गभागमाह–(स्वः) सूर्यः (न) इव (अंशुः) व्यापकः (प्रचेतन) प्रकाशयितः ! (प्रचेतय) कृपयाऽस्मान् बुद्धिमतः संपादय । अथोभयभागमाह–(हि) यस्मात् (शक्रः) शक्तिमान् त्वम् (नः) अस्मभ्यम् (इषे) अन्नाय (द्युम्नाय) यशसे च (एव) निश्चयेनाऽसि । अथ शाङ्करभागमाह– (वज्रिवः) हे दुष्टेषु दण्डस्य धर्त्तः ! (राये) धनाय (वाजाय) बलाय प्रसन्नो भवेति शेषः । (शविष्ठ) अतिबलिष्ठ ! (वज्रिन्), (ऋज्रसे) प्रसाध्यसे (मंहिष्ठ) पूज्यतम ! (वज्रिन् ऋज्रसे) ॥ अथोपसर्गेण परमेश्वरः प्रार्थितः सन् उत्तरमाह–(आयाहि) आगच्छ वत्स ! (पिब) अमृतपानं कुरु (मत्स्व) हृष्टोभव ॥

विदा इति विदेर्लेटि रूपम् लिङर्थे लेट् ३ । ४ । ७ पा० ॥ गातुरिति पृथिवीनाम निघं० १ । १ गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतय इत्यपि निगमो भवति, गमनं यज्ञाय गमनं यज्ञपतये । निरु० ४ । २ ॥ शंसिषइति शंसतेर्लेटो रूपम् । लेटोऽडाटौ ३ । ४ । ९४ इति अट् ॥ शचीति प्रज्ञानाम निघं० ३ । ९ ॥ शिक्ष इति शिक्षतेर्दानकर्मणः निघं० ३ । २० ॥ स्वरादित्यो भवति निरु० २ । १४ ॥ अंशुरिति अश्नोतेर्व्याप्तिकर्मणः निघं० २ । १८ ॥ द्युम्नं द्योततेर्यशोवाऽन्नं वा निरु० ५ । ५ ॥ ऋज्रुतिः प्रसाधनकर्मा निघं० ३ । ५ ॥ ३ ॥ (६४३)

भाषार्थः–प्रथम उपसर्गभाग द्विपदा का अर्थ कहते हैं–(मघवन्) हे यज्ञवाले ! परमेश्वर ! (विदाः) आप सब जानते हैं (गातुम्) यजमान

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उपासक के गन्तव्य देश को (विदाः) जानते हैं। इस लिये (दिशः) मार्गों का (अनुशंसिषः) उपदेश कीजिये=बताइये । अब शक्वरी छन्द का भाग कहते हैं-(पुरुवसो) हे बहुत विद्यादि धन वाले ! (पूर्वीणां धीनां पते) हे सनातन बुद्धियों के स्वामिन् ! (आभिः) इन (अभिष्टिभिः) स्तुतियों से (त्वम्) आप (शिक्ष) विद्यादि धन दीजिये क्योंकि आप बहुधन हैं। अब फिर उपसर्गभाग कहते हैं-(स्वः) सूर्य के (न) तुल्य (अंशुः) व्यापने वाले आप हैं। (प्रचेतन) हे प्रकाशकारक ! (प्रचेतय) कृपया हमें चेताइये। अब दोनों भाग कहते हैं-(हि) क्योंकि (त्वम्) आप (नः) हमारे लिये (इषे) अन्न (द्युम्नाय) और यश के लिये (शक्तः) समर्थ (एव) निश्चय हैं। अब शक्वरी का भाग कहते हैं-(वज्रिवः) हे दुष्टों के ऊपर दण्डधारक ! (राये) धन के लिये और (वाजाय) आत्मिक बल के लिये [प्रसन्न हूजिये] (शविष्ठ) हे बलिष्ठ ! (वज्रिन्) दण्डधर ! (ऋज्रवे) आप को प्रसन्न किया जाता है। (मंहिष्ठ) हे पूजनीयतम ! (वज्रिन्) वज्र वाले ! (ऋज्रवे) आप को प्रसन्न किया जाता है ॥ अब उपसर्ग भाग द्वारा पूर्वोक्त प्रार्थित परमात्मा प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं कि (आयाहि) आ, और (पिब) अमृत को पी, और (मत्स्व) आनन्दित हो ॥

अष्टाध्यायी ३ । ४ । ७ ॥ ३ । ४ । ९४ निघण्टु १ । १ ॥ ३ । ९ ॥ ३ । २० ॥ २ । १८ ॥ ३ । ५ निरुक्त ४ । २ ॥ २ । १४ ॥ ५ । ५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ (६४३)

अथ द्वितीयास्तिस्रः

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २

विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँअनु । मꣳहिष्ठ

३ २ ३ १२ २२ ३ १ २ २२ २२ ३

वज्रिन्नृज्रसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥ यो मꣳहिष्ठो म-

१ २ ३ २७ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ २२

घोनामꣳशुर्न शोचिः । चिकित्वो अभि नोनयेन्द्रो विदे तमु

२ ३ २ ३ २७ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स्तुहि ॥ ५ ॥ ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजि-

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

तम् । स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥ ६ ॥ (६४६)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-विदाः क्रि० । राये ४ । सुवीर्यम् २ । भुवः क्रि० । वाजानाम् ६ । पतिः १ । वशान् २ । अनु अ० । संहिष्ठ, वज्रिन् सं० । ऋजुसे क्रि० । यः, शविष्ठः १ । शूराणाम् ६ ॥ ४ ॥ यः, संहिष्ठः १ । मघोनाम् ६ । अंशुः १ । न अ० । शोचिः १ । चिकित्वः सं० । अभि अ० । नः २ । नय क्रि० । इन्द्रः १ । विदे क्रि० । तम् २ । उ अ० । स्तुहि क्रि० ॥ ५ ॥ ईशे क्रि० । हि अ० । शक्रः १ । तम् २ । ऊतये ४ । हवामहे क्रि० । जेतारम्, अपराजितम् २ । सः १ । नः २ । स्वर्षत् क्रि० । अति अ० । द्विषः २ । क्रतुः, छन्दः, ऋतम्, बृहत् १ ॥

अन्वितपदार्थः-अथ प्रथममुपसर्गं द्विपदामाह-(वाजानाम्) बलानां सेनानाम् (पतिः) नायकस्त्वम् (वशान्) स्वाधीनान् (अनु) अनुकूलान् (भुवः) भावयेः । स त्वम् (राये) धनाय (सुवीर्यम्) शोभनं वीर्यम् (विदाः) लम्भय प्रापय ॥ अथ शाक्करभागमाह-(संहिष्ठः) सत्करणीयतम ! (वज्रिन्) शस्त्रधर ! (ऋजुसे) प्रसाध्यसेऽस्माभिः (यः) यस्त्वम् (शूराणाम्) वीरपुरुषाणां मध्ये (शविष्ठः) अतिशूरोसि । (यः) यश्च त्वम् (मघोनाम्) धनवतां मध्ये (संहिष्ठः) दातृतमोसि ॥ अथोपसर्गमाह-(चिकित्वः) हे चिकित्वन् ! ज्ञानवन् ! (अंशुः) सूर्यः (न) इव (शोचिः) शोचिष्मान् त्वम् (नः) अस्मान् (अभि) अभितः (नय) गमय ॥ अथोभयभागमेकीकृत्याह-(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (विदे) प्राप्नोति (तम् उ) तं त्वामेव (स्तुहि) स्तवामः (हि) यस्मात् (शक्रः) शक्तिमांस्त्वम् (ईशे) ईशिषे ॥ अथ शाक्करोभागः-(तम्) परमैश्वर्यशालिनम् (अपराजितं जेतारम्), (ऊतये) रक्षायै (हवामहे) आह्वयामहे (सः), (द्विषः) द्वेष्टॄन् (अति) उल्लङ्घ्य (नः) अस्मान् (स्वर्षत्) गमयेत् ॥ अथोपसर्गभागमाह-(क्रतुः) यज्ञः (छन्दः) वेदः (ऋतम्) सत्यम् (बृहत्) महत्परिवृढम् "भवतु" इति शेषः ॥

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भावार्थः—सेनापतिः स्वबलेन परान्स्वाधीनान् कुर्यात्, धनधान्यादैश्वर्यप्राप्तये वीरान् वर्धयेत्, शस्त्राऽस्त्राणां धर्त्ता, सत्करणीयः, सर्वैः प्रसाधनीयः, बलिनां बलिष्ठः, धनिनां धनी दातृतमः, ज्ञानवान्, सूर्यइव तेजस्वी, सेनाजनानां सर्वतो नेता रक्षकश्च, स्तुत्यः, शक्तिमान्, विजयी, अपराजितः, सर्वापद्वेष्वाहूतः सन् सत्वरं रक्षकः, शत्रूणां दूरे गमयिता च स्यात् ॥

भुवः इति लेटोरूपं, भूसुवोस्तिङि ७ । ३ । ८८ इति गुणाऽभावः ॥ मंहते इति दानकर्मणः निघं० ३ । २० मंहिष्ठः ॥ मघमिति धननाम निघं० २ । १० तद्वतां मघोनाम् ॥ चिकित्वः इत्यत्र—मतुवसोरुः संबुद्धौ ८ । ३ । १ पा० इति मतोरुः ॥ आङ्क्तेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३ । २ । १३४ तृन् १३६ इति जेतारम् ॥ इन्द्र इति "इन्दतेर्वैश्वर्यकर्मणः निरु० १० । ८ ॥ स्वरतिर्गतिकर्मा निघं० २ । १४ ततो लेटि स्वर्षत् ॥ ऋतमिति सत्यनाम निघं० ३ । १० ॥ ६ ॥ (६४६)

भाषार्थः—प्रथम द्विपदा उपसर्ग कहते हैं—(वाजानाम्) सेनाओं के (पतिः) पति (वशान्) स्वाधीन और (अनु) अनुकूल (भुवः) बनाइये और (राये) धनप्राप्ति के लिये (सुवीर्यम्) सुन्दर पुरुषार्थ को (विदाः) प्राप्त कराइये ॥ अब शाक्कर भाग कहते हैं—(महिष्ठ) हे अतिसत्कारयोग्य ! (वज्रिन्) शस्त्रों अस्त्रों के धर्त्ता ! (ऋज्रमे) आप प्रसन्न किये जाते हैं । (यः) जो कि आप (शूराणाम्) शूरवीरों में (शविष्ठः) बलिष्ठ हैं (यः) और जो आप (मघोनाम्) धनवानों में (मंहिष्ठः) अति दानी हैं ॥ अब उपसर्गभाग कहते हैं—(चिकित्वः) हे ज्ञानवन् ! (अंशुः) सूर्य के (न) तुल्य (शोचिः) प्रकाशयुक्त आप (नः) हम को (अभि) सब ओर से (नय) ले चलिये ॥ अब उपसर्ग और शाक्कर दोनों भाग मिला कर कहते हैं—(इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त (विदे) प्राप्त होता है (तम्) उस को (उ) ही (स्तुहि)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हम स्तुत करते हैं (हि) क्योंकि (शक्रः) वह शक्तिमान् (ईशे) सब को दबा सकता है ॥ अब शाक्वरभाग कहते हैं–(तम्) उस (अपराजितम्) न हारने वाले किन्तु (जेतारम्) जीतने वाले को (ऊतये) रक्षार्थ (हवामहे) हम पुकारते हैं (सः) वह (द्विषः) शत्रुओं को (अति) लांघ कर (नः) हम को (स्वर्षत्) ले जावे ॥ अब उपसर्ग फिर कहते हैं–जिस से (क्रतुः) यज्ञ (छन्दः) वेद और (ऋतम्) सत्य (महत्) बहुत हो ॥

अर्थात् सेनापति अन्यों को स्वाधीन करे, धनादि ऐश्वर्य के लिये उत्तम पुरुषार्थ को बढ़ावे, शस्त्रास्त्रों का धारक, सत्कारयोग्य, सब को प्रसन्न करने योग्य, बलियों में बलिष्ठ, धनियों में सर्वोत्तम धनी और दाता, ज्ञानवान्, सूर्य के समान तेजस्वी, सेना के पुरुषों का नायक और रक्षक, स्तुतियोग्य, शक्तिमान्, विजयी, न हारने वाला, जहां उपद्रव हो वहीं रक्षार्थ जाने वाला और शत्रुओं का भगाने वाला होना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ७ । ३ । ८८ ॥ ८ । ३ । १ ॥ ३ । २ । १३४–१३५ ॥ निघण्टु ३ । २० ॥ २ । १० ॥ २ । १४ ॥ ३ । १० निरुक्त १० । ८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ६ ॥ (६४६)

अथ तृतीयास्तित्रः–

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १२३१२ १२
इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् । स नः
३२३ २ ३ १ २ ३२३१३ १२३ १२ ३
स्वर्षदतिद्विषः स नः स्वर्षदतिद्विषः ॥ ७ ॥ पूर्वस्य यत्ते अद्रिवो
१२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २
ऽछ्शुर्मदाय । सुम्न आधेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ॥
३ २उ ३ २ ३१२ २२ ३ १ २ ३१२ २२
वशी हि शक्रो नूनं तं नव्यश्छंसन्यसे ॥ ८ ॥ प्रभो जनस्य
३ २ १ २३ २उ ३ १ २३ १ २ ३२३
वृत्रहन्समर्येषु ब्रवावहै । शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो
१२ ३ १ २ ३२ ३२ ३१२ २२
अद्वयुः ॥ ९ ॥ (६४१)

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदपाठः-इन्द्रम् २। धनस्य ६। सातये ४। हवामहे क्रि०। जेतारम्, अपराजितम् २। सः १। नः ६। स्वर्षत् क्रि०। अति अ०। द्विषः २। सः। नः। स्वर्षत्। अति। द्विषः ॥ ७ ॥ पूर्वस्य ६। यत १। ते ६। अद्रिवः सं०। अंशुः १। मदाय ४। सुम्ने ७। आधेहि क्रि०। नः २। वसो सं०। पूर्त्तिः १। शविष्ठ सं०। शस्यते क्रि०। वशी १। हि अ०। शक्रः १। नूनम् अ०। तत्, नव्यम् २। संन्यसे क्रि० ॥ ८ ॥ प्रत्नो सं०। जनस्य ६। वृत्रहन् सं०। सम् अ०। अर्येषु ७। ब्रवावहै क्रि०। शूरः, यः १। गोषु ७। गच्छति क्रि०। सखा, सुशेवः, अद्वयुः १ ॥

अन्वितपदार्थः-द्विपदामुपसर्गमाह-वयमुपासकाः (धनस्य) धार्यस्य विद्यादिधनस्य (सातये) लाभाय (जेतारम् अपराजितम् इन्द्रम्) परमेश्वरम् (हवामहे) आह्वयामहे। शाक्करमाह—(सः) परमेश्वरः (नः) अस्माकं (द्विषः) कामक्रोधालस्यादिदुर्गुणान् (अति स्वर्षत्) अपनयेत्। एतदर्थम्। (सः नः द्विषः) सोस्माकं द्वेष्यान् (अति स्वर्षत्) अपगमयेत्। वेदे प्रायिकोयं द्विरुक्तिः-योस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्म इत्यादिः। एतया खलु द्वेष्टॄणां द्वेष्याणां च विनाशः प्रार्थ्यते। (अद्रिवः) न दीर्यत इत्यऽद्रिर्वज्रस्तद्वन्! इन्द्र! (पूर्वस्य) सनातनस्य (ते) तव उपासका वयं स्म इति शेषः। अथोपसर्गमाह-(वसो) हे मोक्षधाम्नि वासयितः! (अंशुः) त्वदीयकिरणरूपो ध्यानानन्दलवः (मदाय) निरतिशयानन्दाय भवति। स त्वम् (नः) अस्मान् (सुम्ने) सुखे (आधेहि) स्थापय। अथ शाक्करोपसर्गौ सहेवाह-(शविष्ठ) हे बलिनां बलिष्ठ! (पूर्त्तिः) त्वत्कृतं पालनं पोषणं च (शस्यते) कथ्यते प्रशस्यते (हि) यस्मात् (शक्रः) त्वं सर्वशक्तिमान् (वशी) सर्वस्य नायकश्चासि।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अथ शाक्करभागमाह–(प्रभो) हे प्रभो ! (वृत्रहन्) दुष्ट-निवारण ! (तत्) तस्मात् (नूनम्) निश्चयेन (नव्यम्) आधुनिकं क्षणभङ्गुरं जगत्सुखम् (संन्यसे) संन्यस्यामि त्यजामि । येन (अर्यपु) स्वामिषु संन्यासिषु (संव्रवावहै) शिष्यशिक्षकभावेन संवादं कुर्याव । अथोसर्गभागमाह, किं विषयकं संवादं कुर्यावित्याह–(यः) परमेश्वरः (शूरः) ज्ञानी (सखा) सर्वसुहृद् (सुशेवः) सुसुख आनन्दस्वरूपः (अद्वयुः) अद्वितीयः (गोषु) पृथिव्यादिसर्वलोकेषु (गच्छति) व्यापकत्वेन गतो वर्त्तते, तद्विषयकं संवादं कुर्यावेति संबन्धः ॥

शेवमिति, सुम्नमिति च सुखनाम निघं० ३ । ६ ॥ नव्यमिति नूतननाम निघं० ३ । २९ ॥ संन्यसे इत्यत्र–व्यत्ययो बहुलम् ३ । १ । ८५ इत्यनेनात्मनेपदं विकरणलुक् च। सह सुपेति २ । १ । ४ योगविभागात् संनिभ्यां समासः । छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् ८ । १ । ३८ इत्युदात्तत्वम् । अर्यः स्वामिवैश्ययोः ३ । १ । १०३ इत्यर्यपु ॥ शुसिचिमीनां दीर्घश्च (उणा० २ । २५) इत्यनेन शुङ्इति गत्यर्थात्सौत्र-धातोरकूप्रत्यये शूरः ॥ ९ ॥ (६१९)

भाषार्थः–द्विपदा उपसर्ग को प्रथम कहते हैं–हम उपासक लोग (धनस्य) विद्यादि धन के (सातये) लाभार्थ (अपराजितम्) न हारने वाले किन्तु (जेतारम्) विजय करने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त को (हवामहे) पुकारते हैं ॥ शक्करी छन्द का पाद कहते हैं–(सः) वह परमात्मा (नः) हमारे (द्विषः) द्वेष करने वालों को (अति स्वर्षत) दूर करे (सः) वह (नः) हमारे (द्विषः) द्वेषपात्रों को (अतिस्वर्षत) दूर करे इस लिये वेद में ऐसी परिपाटी प्रायः है, जैसा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कि [योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः] इत्यादि से द्वेष्टा और द्वेष्य दोनों के नाश की प्रार्थना आया करती हैं। (अद्रिवः) हे अखण्डवज्रधर ! (पूर्वस्य ते) सनातन आप के [उपासक हम हैं]। (अंशुः) आप की किरणरूप ध्यानानन्द का लेश (मदाय) अत्यन्त आनन्द के लिये होता है। वह आप (नः) हम को (सुम्ने) सुख में (आधेहि) स्थित करें। अब शक्करी और उपसर्ग भाग को साथ २ कहते हैं-(शविष्ठ) हे बलिष्ठ ! (पूर्त्तिः) आप का किया पालन पोषण (शस्यते) प्रशंसित है (हि) क्योंकि (शक्रः) आप सर्वशक्तिमान् (वशी) लोकत्रय को वश में रखने वाले हैं। अब शाक्कर भाग कहते हैं-(प्रभो) हे प्रभो ! (वृत्रहन्) हे दुष्टनिवारक ! (तत्) इस कारण (नूनम्) निश्चय (नव्यम्) नूतन क्षणभङ्गुर सांसारिक सुख को (संन्यसे) मैं त्याग करके संन्यासी होता हूं। जिस से (अर्यैषु) संन्यासी स्वामियों में (संव्रवावहै) भले प्रकार एक दूसरे से संवाद करें। अब उपसर्ग भाग में यह कहते हैं कि किस विषय का संवाद करें (यः) जो (शूरः) ज्ञानी (सखा) सब का मित्र (सुशेवः) आनन्दस्वरूप और (अद्वयुः) अद्वितीय है वही (गोषु) पृथिवी आदि सब लोकों में (गच्छति) व्यापक होकर वर्त्तमान है। उस के विषय में संवाद करें, यह संबन्ध जानिये ॥

निघण्टु ३ । ६ ॥ ३ । २८ अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ ॥ २ । १ । ४ ॥ ८ । १ । ३८ ॥ ३ । १ । १०३ उणादि २ । २५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥ (६४९)

अथ पञ्च पुरीषपदानि ॥

३ २ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ २ ३ १ २ ३ २ ३

एवा ह्येऽ३ऽ३ऽ३व एवाँह्यग्ने एवा हीन्द्र ।

३ १र २र ३ १र २र

एवा हि पूषन् एवा हि देवाः ॥ १० ॥ (६५०)

इति महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः ॥ २ ॥

पदपाठः-एव, हि, एव, एवम्, हि अ० । अग्ने सं० । एव, हि । इन्द्र सं० । एव, हि । पूषन् सं० । एव, हि । देवाः सं० ॥

अन्वितपदार्थः-अथ पुरीषपदानि व्याख्यायन्ते । तानि सर्वाण्यैन्द्राण्येव तद्गुणयोगात्तत्रत्यतृतीयपदेन चाऽग्न्यादि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पदैरिन्द्र एव वर्ण्यते । तत्र प्रथमं पदमाह–(एव, हि, एव) यथोक्तं तथैव सर्वं वर्त्तते ॥ अथ द्वितीयं पदमाह–(अग्ने) हे प्रकाशक ! (एवं हि) यथोक्तमेव सत्यमस्ति ॥ तृतीयं पदमाह–(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् ! (एव हि) पूर्वोक्तमेव तथ्यमस्ति ॥ चतुर्थं पदमाह–(पूषन्) हे सर्वस्य पोषक ! (एव, हि) एवंगुण एवासि । पञ्चमं पदमाह–(देवाः) हे अन्ये पूर्वार्धप्रोक्ता देवाः ! (एव, हि) पूर्वोक्तप्रकारका एव यूयम् नात्र विचारणा संशयो वेत्यर्थः ॥

"इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्तीन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यं च गरुत्मन्तम्" निरु० ७ । १८ इति प्रामाण्यादत्राग्निपूषादिशब्दैरिन्द्र एव स्तुतो बोध्यः ॥ १० ॥ (६५०)

इति

श्रीमत्कण्ववंशावतंस–पण्डित–हज़ारीलालस्वामिसूनुना,
हस्तिनापुरपार्श्ववर्त्ति–परीक्षितगढ़निवासिना,
तुलसीरामस्वामिना
कृते सामवेदभाष्ये महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः ॥ २ ॥

भाषार्थः–अब पांच पुरीष पदों की व्याख्या करते हैं । ये सब इन्द्र देवता के हैं । क्यों कि इन्द्र का सम्बन्ध पीछे से चला आता है और यहां भी तीसरे पद में इन्द्र शब्द आया है । शेष अग्नि आदि नाम भी इस कारण इन्द्र=परमेश्वर के ही समझने चाहियें जैसा कि निरुक्त ७ । १८ में लिखा है कि " इसी महान् अग्नि महान् आत्मा एक आत्मा को विद्वान् लोग इन्द्र मित्र वरुण अग्नि दिव्य गरुत्मान् आदि नामों से बहुत प्रकार वर्णन करते

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हैं ॥ ॐ उन में से प्रथम पद-(एव, हि, एव) जैसा कि पूर्वार्ध में वर्णन कर आये, वह ठीक है। द्वितीय पद-(अग्ने, एवं, हि) हे प्रकाशस्वरूप और प्रकाशकर्त्ता ! ऐसा ही आप का वर्णन है जैसा पूर्व कहा। तृतीय पद-(इन्द्र एव हि) हे परमैश्वर्यवन् ! ऐसा ही है। चतुर्थ पद-(पूषन्, एव, हि) हे पालक पोषक ! ऐसा ही है ॥ पञ्चम पद-(देवाः) हे पूर्वोक्त देवो ! (एव हि) यथोक्त ही आप के गुण कर्म स्वभाव और प्रशंसा है ॥

यह समस्त छन्दआर्चिक और महानाम्न्यार्चिक का उपसंहार है ॥ ॥ १० ॥ (६५०)

यह

श्रीमान् कण्ववंशावतंस पं० हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र,

परीक्षितगढ़ ज़िला मेरठ निवासी,

तुलसीराम स्वामि कृत

सामवेदभाष्य में महानाम्न्यार्चिक नाम

दूसरा आर्चिक संपूर्ण हुवा ॥ २ ॥

(देखो पृष्ठ ४९८)

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धानि	शुद्धानि
५००	१५	गहरेष्ठाम्	गह्वरेष्ठाम्
५०२	१४	ज्ञते	ज्ञक्ते
५१५	१	पृच्छयत	पृच्छ्यते
५३७	७	प्रपूर्द्धि	पिपूर्द्धि
५९७	६	लौटने को	लौटने के
६०४	१८	धमात्मनाम्	धर्मात्मनाम्
६०५	७	सुलु	सुपांसुलु
६०८	९	धनुषाकृति	धनुराकृति

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धानि	शुद्धानि
६२६	१२	माशब्दे	माङ्शब्दे
६२६	१२	मिमन्ति	व्यत्ययेन मिमन्ति
६२६	१२	घुरादेः	भौवादिकस्य
६२६	१३	दधर्त्ति	दधर्त्ति
६२८	६	आन्तरिक्षयासु	अन्तरिक्षयासु
६५९	९	ध्यान्यादि	धान्यादि
६६१	१५	वाप्य	व्याप्य
६९३	२१	स्थाप्य	स्थापयित्वा
७३५	१२ से आगे	०००	पत गतौ वा घुरादिः अदन्त-त्वाद्वृद्धयभावे

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

Compiled
1999-2000

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri